

॥ श्रीः ॥

श्रीचरकाचार्येण प्रतिसंस्कृता  
**चरकसंहिता.**

मधुगन्धिव्यासि-श्रीकृष्णलाल-कृतभाषानुवाद-  
समलंकृता संशोधिता परिवर्दिता च ।

यह ग्रन्थ

रामलाल श्रीकृष्णलालने  
मुंबई

के टाईपसे विभूषित "मुंबईमित्राख्य"

पत्रालयमें छपवाकर प्रसिद्ध किया ।

सन् १९६० सन् १९०३

Registered under Act XXV of 1867.

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
गुल्मचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः		वर्तिप्रयोग	७३८
गुल्मोत्पत्तिका हेतु	७३०	हिङ्गवादि चूर्ण विधि	"
गुल्मके स्थान भेद	"	वातगुल्म में अन्यप्रयोग	७३९
वातिक गुल्म का हेतु	"	शल्यादि चूर्ण	"
वातिक गुल्मके लक्षण	७३१	अन्यप्रयोग	"
पैत्तिक गुल्मका हेतु	"	अन्यप्रयोग	"
पैत्तिक गुल्मके लक्षण	"	लहसनकादूध	"
श्लेष्मिक गुल्मका हेतु	"	शिलाजीतका प्रयोग	७४०
श्लेष्मिक गुल्मके लक्षण	"	अन्यप्रयोग	"
द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण	"	गुल्ममें वस्तिविधान	"
त्रिदोषज गुल्मके लक्षण	७३२	गुल्मपरतैलविधान	"
रक्त गुल्मका कारण	"	गुल्मपर घृतविधान	"
वातज गुल्ममें चिकित्साक्रम	"	नीलिन्यादि घृत	७४१
अन्य विधि	७३३	वातगुल्म में पथ्यादि विधि	"
अन्यविधि	"	पित्तगुल्मकी चिकित्सा	"
पैत्तिक गुल्म में चिकित्साक्रम	"	रोहिण्यादि घृत	"
गुल्ममें रक्त मोक्षण विधि	७३४	त्रायमाणाघ घृत	७४२
अपक्व गुल्मके लक्षण	"	आंघलकादि घृत	"
विदह्यमान गुल्म के लक्षण	"	द्राक्षादि घृत	"
सपक्व गुल्मके लक्षण	"	वासाघृत	"
कफज गुल्मका चिकित्सादि वर्णन	७३५	दूसरात्रायमाण घृत	७४३
बमनोपग रोगी	"	पैत्तिक गुल्मके अन्यउपचार	"
कफज गुल्ममें अन्य प्रयोग	७३६	कफगुल्म का चिकित्साक्रम	"
गुल्ममें क्षारविधि	"	कफगुल्म में स्वेदन विधि	७४४
गुल्म में अरिष्ट	"	दशमूली घृत	"
त्र्यूपणादि घृत	७३७	भल्लातकादि घृत	"
त्र्यूपणादि घृत की अन्य विधि	"	पंचकोल घृत	"
अन्य प्रयोग	"	मिश्रक स्नेह	७४५
हिङ्गवादि घृत	"	कफगुल्म में वैरेचनिक औषध	"
हवुवादि घृत	"	हरितक्यादि प्रयोग	"
विण्पल्यादि घृत	७३८		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
कफगुल्म में वस्ति के प्रयोग	७४६	अन्यभासव	७५५
कफगुल्म में चूर्णादिप्रयोग	७४६	प्रमेहपर अन्यचिकित्सा	"
पथ्यादि वर्णन	७४६	प्रमेह में निदान परिवर्जन	७५६
कफगुल्मपर अन्यउपचार	७४६	मधुप्रमेह का लक्षण	"
असाध्यगुल्मके लक्षण	७४९	प्रमेह को साध्यासाध्यत्व	"
रक्तगुल्म की चिकित्सा का क्रम	७४७	पिडकाओं की चिकित्सा	७५७
रक्तगुल्म के अन्यउपचार	७४७	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
अदृश्यमान रुधिर में वस्ति	७४७	कुष्ठचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः	
प्रवर्तमान रुधिर में उपचार	७४८	कुष्ठोत्पत्ति काहेतु	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	७४८	कुष्ठके पूर्वरूप	७५८
प्रमेहाचिकित्सितं नाम पष्ठोऽध्यायः		कुष्ठों के नाम	"
प्रमेह का निदान	७४९	कपाल कुष्ठ के लक्षण	"
कफादि प्रमेह की सम्प्राप्ति	७४९	औदुम्बर कुष्ठ के लक्षण	७५९
प्रमेहों की संख्या	७४९	मंडलकुष्ठ के लक्षण	"
दोषरूपों की संख्या	७५०	मृष्यजिह्व कुष्ठके लक्षण	"
बीसप्रकार के प्रमेहों की पहचान	७५०	पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण	"
दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि	७५१	सिध्म कुष्ठके लक्षण	"
वातज प्रमेह को असाध्यत्व	७५१	काकणक कुष्ठके लक्षण	"
प्रमेहके पूर्वरूप	७५१	एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके लक्षण	"
स्थूलकृश प्रमेह की चिकित्सा	७५१	किटिम कुष्ठके लक्षण	७६०
प्रमेही के अन्यउपचार	७५१	वैपादिक कुष्ठके लक्षण	"
प्रमेही को पथ्य	७५१	अलसक के लक्षण	"
कफप्रमेह में अन्यविधि	७५२	दद्रुमण्डल के लक्षण	"
प्रमेहों पर सामान्य प्रयोग	७५२	चर्मदल के लक्षण	"
कफ प्रमेह कर कपाय	७५३	पामा के लक्षण	"
पित्तप्रमेह पर कपाय	७५३	विस्फोटक के लक्षण	"
कफपित्तप्रमेह पर प्रयोग	७५४	शतारूके लक्षण	७६१
अन्यप्रयोग	७५४	विचारिणिका के लक्षण	"
सब प्रकार के प्रमेहपर वनाथ	७५४	कुष्ठोंकोदोषपरत्व	"
मध्यासव	७५४		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
कुष्ठों में चिकित्साक्रम	७६१	अन्यतैल	७७०
कुष्ठकी पहचान	"	विषादिका की चिकित्सा	"
घातजादि कुष्ठों के लक्षण	"	मण्डल कुष्ठपरलेप	७७१
कुष्ठको असाध्यत्व	७६२	छःप्रकार के लेप	"
दोपानुसार चिकित्साक्रम	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	"	अभ्यङ्गप्रयोग	"
कुष्ठ में स्थापनप्रयोग	७६३	घृतप्रयोग	७७२
कुष्ठ में अनुवासनप्रयोग	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठ में नस्य प्रयोग	"	पदपलघृत	७७३
अन्यक्रम	"	महातिक्तघृत	"
रक्तमोक्षण विधि	"	महाखदिर घृत	७७४
पित्तकुष्ठ की चिकित्सा	७६४	किमिनाशकप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	७६५	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग	"	शिवत्रकुष्ठपर प्रयोग	७७५
कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग	"	कुष्ठपर अन्यलेप	"
सुप्त कुष्ठनाशक प्रयोग	"	शिवत्रकुष्ठ के भेद	७७६
मध्वासव का प्रयोग	"	शिवत्र को असाध्यत्व	"
कनकविन्दु अरिष्ट	७६६	शिवत्रकुष्ठकी उत्पत्ति का हेतु	"
शिवत्रकुष्ठनाशकप्रयोग	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कुष्ठपरपध्यापध्य	७६७	<b>राजयक्ष्माचिकित्सितं नाम अष्टमोऽध्यायः</b>	
कुष्ठपरलेप	"	राजयक्ष्मा के विषयमें प्राचीनइतिहास	७७७
दूसरालेप	"	चन्द्रमाकी क्षमा प्रार्थना	"
कुष्ठपर अन्यलेप	"	यक्ष्मा के पर्थ्यायवाची शब्द	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	७६८	यक्ष्माके मनुष्यलोकमें आनेका कारण	७७८
सातप्रकारके कपायादियोग	७६९	यक्ष्मा के चारहेतु	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	"	अथवा आरम्भका लक्षण	"
"	"	वेगसंधारणजन्य यक्ष्मा	"
कनेरका तैल	"	क्षयजन्य यक्ष्माका हेतु	७७९
अन्यप्रयोग	"	विषमासनसे उत्पन्न यक्ष्मा	७७९
अन्यतैल	"	राजयक्ष्मा के पूर्वरूप	७८०
कनकक्षीर तैल	७७०	राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा	७८०
सिध्मलेप	"		



विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रुद्ध स्रोतों से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति	७८१	अवगाहनविधि	७९३
उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नाम	"	उद्धर्तनविधि	"
यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार	"	पथ्यतम भोजन	७९४
प्रतिश्याय के लक्षण	"	यक्ष्मामे अन्यपथ्य	"
राजयक्ष्मा के विशेष लक्षण	७८२	यक्ष्मा में अन्य उपचार	"
राजयक्ष्मा में स्वरभंग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
यक्ष्मा में अन्य उपद्रव	"	अर्शसां चिकित्सितं नामनवमोऽध्यायः	"
अरुचि की परीक्षा	७८३	अर्शके भेद	७९५
प्रतिश्यायादि छः रोगों की चिकित्सा	"	अर्शका स्थान	"
अन्यप्रयोग	७८४	सहजअर्श की आकृति	७९६
अन्य संशयमनक्रिया	"	सहजअर्शरोगी के लक्षण	"
दोषाधिक्य में संशोधन विधि	७८५	उक्तउपद्रवों का कारण	७९७
स्नेहवर्णन	७८६	उत्तरकालजअर्श के लक्षण	"
लेह के चारप्रयोग	"	दोषपरत्व से अर्शका आकार	७९८
अन्यप्रयोग	"	वातप्रवल अर्श के लक्षण	"
दुरालभाद्यघृत	७८७	पित्तज अर्श के लक्षण	७९९
जीवन्त्यादि घृत	"	कफजअर्श के लक्षण	८००
बलाद्य घृत	"	द्वन्द्वजादि अर्श के लक्षण	"
यक्ष्मा में अन्यप्रयोग	"	अर्श के पूर्वरूप	"
अन्यप्रयोग	७८८	अर्श के नाम विशेषका कारण	८०१
मृदाग्नि में कर्तव्य	"	अर्शको कष्टसाध्यत्व	"
अतिसारनाशक योग	"	असाध्य अर्श के लक्षण	८०२
अन्यप्रयोग	७८९	साध्यके लक्षण	"
वैरस्यनाशक प्रयोग	"	साध्य अर्श में कर्तव्य कर्म	"
कफ विधावनपांचप्रयोग	"	कर्मभ्रंश के उपद्रव	"
यवानोपाद्व	७९०	शुष्क अर्शकी चिकित्सा	"
ताडीसपत्रादिवाटिका	"	अर्श में अन्य प्रयोग	८०३
यक्ष्मारोग में मांसव्यवस्था	७९१	अर्शपर लेप	"
दोषपरत्व से यक्ष्मा में मांसविधान	"	अर्श में पेय औषध	८०४
यक्ष्मा में मद्य के गुण	७९२	अन्य प्रयोग	८०५
अन्यप्रयोग	"	अन्य प्रयोग	"
	"	तत्कारिष्ट	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अर्शमें तक्रप्रयोग	८०६	अवगाहन प्रयोग	८१८
तक्र सेवनका क्रम	"	अर्शपर घृत	८१९
अर्शपर पेयाविधि	८०७	पिच्छावस्ति, सिद्धावस्ति	"
अर्शपर यथागू	"	अनुवासनवास्तिप्रयोग	८२०
अर्शपर पय्याविधि	"	होत्रादि घृत	८२०
अर्शपर घृत के प्रयोग	८०८	अत्राकंगुष्पादि घृत	"
चव्यादि घृत	८०८	सेव्यासेव्यका संक्षिप्त वर्णन	८२१
नागरादि घृत	८०९	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पिप्पल्यादि घृत	"	अतीसार चिकित्सितं नाम दशमो	
हरीतकी प्रयोग	"	अध्यायः	
अर्शपर पथ्य	८१०	अतीसार की प्रागुत्पत्ति	८२२
अर्शपर मर्धाविधि	"	वातातिसार के हेतु	८२३
अनुवासनके योग्य मनुष्य	"	पित्तातिसार के रूपादि	८२३
अनुवासानिक तैल	"	कफातिसार के हेतुरूपादि	८२४
निरूहण प्रयोग	८११	त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि	८२५
हरीतक्यारिष्ट	"	कृच्छ्रसाध्य के लक्षण	"
दन्त्यारिष्ट	८१२	असाध्य के लक्षण	८२६
फलारिष्ट	"	साध्यातिसारका चिकित्साक्रम	"
दुरालभारिष्ट	"	आगन्तु अतिसारके लक्षण	८२७
कनकारिष्ट	८१३	आगन्तु अतिसारमें चिकित्साक्रम	"
रक्तार्श की चिकित्सा	८१४	प्रमथ्या के प्रयोग	"
घातकफानुबन्धी रक्तार्शके लक्षण	"	अतीसारमें अन्नपानादि प्रयोग	८२८
रक्तार्श में चिकित्साक्रम	"	प्रवाहिका की चिकित्सा	८२९
रक्तस्राही औषध	८१५	चांगेरी घृत	"
कुटजादि क्वाथ	"	चव्यादि घृत	८३०
अन्यप्रयोग	८१६	पित्तातिसार की चिकित्सा	"
अर्शपर घृत प्रयोग	"	पित्तातिसार पर छःप्रयोग	८३१
रक्तार्शपर पेया	८१७	पिच्छावस्तिविधान	८३२
अन्य प्रयोग	"	रक्तातिसार पर अन्यप्रयोग	"
परिपेकादि प्रयोग	८१८	रक्तातिसार का वर्णन	८३३
		अन्य प्रयोग	"
		मुदपाद की चिकित्सा	८३४
		रक्तामिश्रित मलमें चिकित्सा	८३५

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
मद के अन्य अवगुण	८५९	द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽ-	
युक्तिर्वाजित मद्यपान के दोष	८६०	ध्यायः ।	
युक्तिपूर्वक मद्यकेगुण	"	निजागन्तु व्रणों के लक्षण	८७४
प्रथम मदके गुण	"	आगन्तु व्रण के हेतु	"
मद्यपानमें कर्तव्य	८६१	निजव्रणों का कारण	८७५
राजसादि प्रकृतिमद्यकेवर्णन	"	वातजव्रण के लक्षण	"
मद्यकेयोग्य साथी	८६२	वातजव्रणका चिकित्साक्रम	"
वातप्राय मदात्ययकी उत्पत्तिकाकारण	८६३	पित्तजव्रणके लक्षण और चिकित्सा	"
वातिक मदात्यय के लक्षण	"	कफजव्रण के लक्षणादि	"
पित्तज मदात्ययका वर्णन	"	दोनों व्रणों के भिन्न २ भेद	"
कफप्राय मदात्ययका वर्णन	"	व्रणके बीस भेद	८७६
मदात्यय के रूप	८६४	तीनप्रकारकी परीक्षा	"
मदात्यय में चिकित्साक्रम	"	चारहप्रकार के दूषित व्रण	"
मद्य के चार अनुरस	८६५	व्रणके अठस्थान	"
वातशमन में मद्यका प्रयोग	८६६	व्रणकी आठगन्ध	८७७
वातोत्थव्रण मदात्यय में चिकित्सा	"	चौदहप्रकार के स्त्राव	"
पित्त मदात्ययमें चिकित्सा	८६७	व्रण के सोलह उपद्रव	"
कफपित्त मदात्यय में चिकित्सा	८६८	व्रणशान्त न होने के कारण	"
पित्त मदात्यय में सेवनीय कर्म	"	व्रणोंका साध्यासाध्यात्व	"
मदात्ययजन्यदाह में कर्तव्यकर्म	८६९	व्रण में प्रथम कर्तव्य	८७८
कफ मद्य की तृपा के उपाय	८७०	छत्तीस प्रकारकी चिकित्सा	"
कफ मदात्ययमें अन्यप्रयोग	८७१	व्रणके पूर्वरूप में कर्तव्य	"
अन्य प्रयोग	"	शोफनाशकलेप	"
अन्य प्रयोग	"	शोफपर पुलाटिस	८७९
अन्य उपचार	"	विदग्ध शोथके लक्षण	"
मदात्यय में दूधके प्रयोग	८७२	पकाशोथ के लक्षण	"
ध्वंसक के लक्षण	८७३	पक्व शोथ के भेदनकर्तृद्रव्य	"
विट्क्षार के लक्षण	"	उष्णकारके शस्त्रकर्म	"
उक्त रोगों की चिकित्सा	"	पाटन के योग्य शोथ	"
सध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	व्यथन योग्यव्रण	८८०

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
छेदनीयव्रण	८८०	सान्निपातिक उन्मादके हेत्वादि	"
लेखन के योग्यरोग	"	आगन्तुउन्माद के हेत्वादि	"
प्रच्छन्नकेयोग्य रोग	"	भूतोन्माद के लक्षण	"
सीधन के योग्यव्रण	"	देवादि के शरीरमें प्रविष्टहोनेमेंदृष्टान्त	"
पीडन के योग्यव्रण	"	देवोन्मत्त के लक्षण	८८९
पीडनद्रव्य	"	अभिचारोन्माद के लक्षण	"
अन्यप्रयोग	"	पितृगणकृतउन्माद	"
अस्थिभग्न में प्रयोग	८८१	गन्धर्वोन्माद के लक्षण	"
वातप्रधान व्रणों में कर्म	"	यक्षोन्मादके लक्षण	"
व्रणों पर प्रयोग	८८२	राक्षसोन्माद के लक्षण	"
एषणीय व्रण	"	ग्रहाराक्षसोन्मत्त के लक्षण	८९०
एषणा के भेद	"	पिशाचोन्मत्त के लक्षण	"
शोधनीयव्रण	"	देवादिकृतउन्मादकी विधि	"
शोधनद्रव्य	"	असाध्यउन्मादके लक्षण	८९१
रोपणीय व्रणों की चिकित्सा	८८३	मन्त्रादिद्वारा चिकित्स्यरोगी	"
व्रणपर पथ्यविधि	८८४	वातजउन्माद में चिकित्साक्रम	८९२
अग्निर्कर्म के योग्यव्रण	"	कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम	"
अग्निर्कर्म के अयोग्य व्याक्ति	"	वमन.दि का फल	"
अन्यप्रयोग	८८५	आचारविभ्रम में उपाय	"
व्रणपर दालजमने की विधि	"	स्मृतिवर्द्धक उपाय	"
अभ्यासका संक्षिप्त वर्णन	८८६	आगन्तुकउन्माद में उपाय	"
उन्मादचिकित्सितं नामचतुर्थोऽध्यायः	"	उन्मादनाशकप्रयोग	८९३
उन्मादके हेतु	"	कल्याणकघृत	"
उन्मादके सामान्यलक्षण	"	महाकल्याणकघृत	"
उन्माद के सामान्यभेद	८८७	महापैशाचिकघृत	"
वातजउन्माद का हेतु	"	लशुनायघृत	८९४
वातजउन्माद के लक्षण	"	अन्यलशुनादिघृत	"
पित्तजउन्माद के हेतु	"	अन्यघृत	८९५
पित्तजउन्माद के लक्षण	"	पुरानेघी के गुण	"
कफजउन्माद के हेतु	"	नस्याञ्जन प्रयोग	"
कफजउन्माद के लक्षण	८८८		"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
अन्य प्रयोग	८९६	महागद में चिकित्सा क्रम	९०६
"	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	९०६
"	"	क्षतक्षीण चिकित्सितं नाम षोडशो-	
"	"	ध्यायः	
"	८९७	क्षतरोगका हेतु	"
उन्माद में फस्त	"	क्षीणरोग का हेतु	"
अन्य प्रयोग	"	क्षतक्षीणके लक्षण	९०७
अन्य प्रयोग	"	साध्यासाध्य लक्षण	"
उन्मादेके अयोग्य व्यक्ति	८९९	क्षत में चिकित्सा	"
उन्माद मुक्तके लक्षण	"	एलादिवटिका	९०८
अध्यायका उपसंहार	"	अमृतप्राश घृत	९०९
अपस्मार चिकित्सितं नाम पञ्चदशो-		स्वदंष्ट्रादि घृत	९१०
ध्यायः		धात्र्यादि घृत	९११
अपस्मार की निशक्ति	"	सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके कारण	"	दूसरा सर्पिर्गुड	९१२
अपस्मारके वेगका रूप	"	तीसरा सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके भेद	९००	चतुर्थ सर्पिर्गुड	"
घातज अपस्मार के लक्षण	"	व्याप्तक की चिकित्सा	९१३
पैक्षिक अपस्मारके लक्षण	"	सैन्धवादि चूर्ण	९१४
श्लेष्मिक अपस्मारके लक्षण	"	पादव चूर्ण	"
साग्निपातिकअपस्मार के लक्षण	"	वर्द्धमान नागबलाका प्रयोग	"
वासाध्य अपस्मार	"	क्षतक्षीण में विशेषदृष्टव्य	९१५
अपस्मारके वेगोंका काळ	९०१	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
अपस्मार के चिकित्सा क्रम	"	शय्यधुचिकित्सितं नाम सप्तदशो-	
पंचगव्य घृत	"	निजशोधके कारण	९१६
महापंचगव्य घृत	"	आमन्तुक के लक्षण	"
अन्य प्रकारके घृत	९०२	शोफके भेद	"
अन्यप्रयोग	"	वातिक शोध का हेतु	"
अन्यप्रयोग	९०३	नामपरत्व से शोषों के भेद	"
महागद की उत्पत्ति	९०६	शोक के सामान्य लक्षण	९१७

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
वाताधिक्यशोफ के लक्षण	९१७	चिप्प शोफ के लक्षण	९२८
पित्ताधिक्य शोफके लक्षण	"	विदारिका के लक्षण	"
कफाधिक्य शोफ के लक्षण	"	विस्फोटक शोफ के लक्षण	"
असाध्य शोफके लक्षण	"	कक्षाके लक्षण	"
साध्यशोफ के लक्षण	"	मसूरकादि के लक्षण	"
चिकित्साक्रम	९१८	अंत्रशुद्धि आदि के लक्षण	९२९
सूजन में त्याग के योग्यपदार्थ	"	भगन्दर का वर्णन	"
कफजशोफपर प्रयोग	"	श्लीपद का वर्णन	"
वातजशोफ में प्रयोग	९१९	जालगर्दभ शोधका वर्णन	"
कण्डारिचरिष्ट	९२०	आगन्तु शोफ का वर्णन	९३०
अष्टशत अरिष्ट	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पुनर्नवाचरिष्ट	"	उदरचिकित्सितं नाम अष्टादशोऽध्यायः	
त्रिलफारिष्ट	९२१	अग्निवेशका प्रण	"
पिप्पल्यादि चूर्ण	"	उदर विषयमें आत्रेयकावाक्य	९३१
क्षारादि वटिका	"	उदर रोग के हेतु	"
अन्य प्रयोग	९२२	उदर रोग के पूर्वरूप	"
हरितक्यादि प्रयोग	"	उदररोग की साधारण उत्पत्ति	९३२
पटोलादि घृत	९२३	उदररोग के साधारण लक्षण	"
चित्रकादि घृत	"	उदररोगों की संख्या	"
चित्रकोथित घृत	९२४	वातके कारण उदर रोग	"
शोधपर यवागू	"	वायुजन्य उदररोग के लक्षण	"
शैलेय तैल	९२५	पिचोदर का कारण	९३३
पित्तज शोफ पर तैलादि	"	पिचोदर के लक्षण	"
कफज शोफ पर तैलादि	"	कफोदर के हेतु	"
अन्य शोफों के नाम	९२६	कफोदर के लक्षण	९३४
गलगंड शोफ	"	साम्निपातिक उदररोग के हेतु	"
शोफों में चिकित्सा क्रम	९२७	साम्निपातिक उदर रोग के लक्षण	"
अन्य ग्रन्थियों का वर्णन	"	प्रीहोदर के कारण	"
वर्जनीय ग्रन्थि	"	प्रीहोदर कीशुद्धि	"
अलर्जी के लक्षण	९२८	प्रीहोदर के लक्षण	९३५

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
यक्ष्मादर के हेतु	९३५	उदरपरलेपनादि प्रयोग	९४३
यक्ष्मादर के लक्षण	"	पिप्पल्यादिघृत	"
छिद्रोदर के हेतु	९३६	नागरादिघृत	९४४
छिद्रोदर के लक्षण	"	चित्रकघृत	"
जलोदर के हेतु	"	यबादिघृत	"
जलोदर के लक्षण	"	पटोलादि चूर्ण	"
चिकित्सा के योग्य उदर रोग	९३६	गवाक्ष्यादिचूर्ण	९४५
जलोत्पत्तिक्रम	९३७	नाराच चूर्ण	"
जलोदरमें उपद्रव	"	हड्डपादि चूर्ण	"
उदररोगों की छिद्रता	"	नीलन्यादि चूर्ण	"
उदर रोगोंसे नष्ट होने का फाल	"	सेण्डु के दूध का घी	"
त्याग्यात्याग्य उदररोग	"	स्तुहीक्षीर का अनुपान	"
अजातोदक उदर के लक्षण	९३८	अन्यप्रयोग	९४७
यातोदर में चिकित्साक्रम	"	आजकरीप का प्रयोग	९४८
विरेचन के अयोग्य व्याक्ति	९३९	उदररोग में भोजन	"
पित्तोदर में चिकित्साक्रम	"	त्रिदोषज उदर में कर्त्तव्य	९४९
कफोदर में चिकित्साक्रम	९४०	उदररोग में सर्वाविप्रयोग	९५०
सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम	"	उदररोग में शस्त्रकर्म	"
ग्रीहोदर में चिकित्सा क्रम	"	जातोदकउदर में शस्त्रकर्म	९५१
उदररोग में कर्त्तव्यकर्म	"	अभ्यायका संक्षिप्तवर्णन	"
उदररोग में प्रयोग	"	ग्रहणीरोग चिकित्स्मिन्तेनामएकोन	
रोहीतकघृत	९४१	विशोऽध्यायः	
अन्यप्रयोग	"	अग्नि को मूलत्व	९५२
यक्ष्मादर में चिकित्सा	"	अग्नि की प्रधानता का कारण	"
छिद्रोदर में कर्त्तव्य कर्म	"	अन्न से रसादि की विधि	"
जलोदर में चिकित्सा	९४२	भोजन से दोष की उत्पत्ति	९५३
उदररोगों में साधारण विधि	"	इष्ट अन्न के गुण	"
उदर में वार्जित कर्म	"	पंचभूतात्मक आहारके गुण	"
उदरमेंतक्रप्रयोग	"	रससे रक्तादि की उत्पात्ति	"
उदर में दुग्धप्रयोग	९४३	अग्निवेशका प्रदन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रससे रक्तवने का कारण	९५४	अन्यप्रयोग	९६२
मांस और मेद की रीति	"	मरिचादि चूर्ण	९६३
अस्थि की विधि	"	यवागू विधि	"
मज्जा की उत्पत्ति	"	भोजनादि विधि	"
शुक्रकी उत्पत्ति	९५५	तक्रके गुण	९६४
धीर्य के निकलने की रीति	"	तक्रारिष्ट	"
पृथक् २ मलोंका वर्णन	"	चन्दनादि घृत	"
जठराग्नि की उत्कृष्टता	९५६	नागराय चूर्ण	९६५
ग्रहणी दोषों का कारण	"	भूनिम्बाद्य चूर्ण	"
अग्नि के दूषितहोने का कारण	"	यचाद्य चूर्ण	"
अजीर्ण अन्न के लक्षण	"	किराततिक्ताद्य चूर्ण	९६६
भिन्नदोषों से संसृष्ट विपन्न	"	अन्य चूर्ण	"
भिन्नजठराग्नि के कर्म	९५७	अनुपानादि वर्णन	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	मध्वासव	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	दूसरा मध्वासव	९६७
ग्रहणीरोग के पूर्वरूप	"	दुरालभासव	९६७
ग्रहणी का विशेषवर्णन	"	मूलासव	"
ग्रहणी रोग के भेद	९५८	पिण्डासव	९६८
वातिक ग्रहणी के हेतु	"	मध्वारिष्ट	"
वातिक ग्रहणी के लक्षण	"	पीपलामूलादि प्रयोग	९६९
पैत्तिक ग्रहणी का हेतु	"	क्षारघृत	"
पैत्तिकग्रहणी के लक्षण	९५९	पिप्पलीमूलादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणी का हेतु	"	मल्लतकादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणीरोग के लक्षण	"	दुरालभादि क्षार	९७०
ग्रहणी की चिकित्सा	"	भूनिम्बादि क्षार	"
द्विपंचमूल्यादिघृत	९६०	हरिद्रादि क्षार	"
त्र्यूपणादिघृत	९६१	क्षार वटिका	"
पंचमूलादि घृत और चूर्ण	"	वत्सकादि क्षार	"
मल परीक्षा	"	त्रिफलादि क्षार	९७१
चित्रकादि चूर्ण	९६२	ग्रहणी दोष में अन्य नियम	"



विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठाङ्कः
ग्रहणी दोष में आचर्यिकी क्रिया	९७२	द्राक्षा घृत	९८२
अत्यग्नि के उपद्रवादि	९७३	हरिद्रादि घृत	"
अत्यग्नि की शान्ति का उपाय	९७४	पाण्डुरोग में प्रयोग	"
अत्यग्नि में भोजनादि क्रम	"	कामला रोग में अन्यप्रयोग	९८३
समशन के लक्षण	९७५	"	"
विषम भोजन के लक्षण	"	"	"
अध्यशन के लक्षण	"	"	९८४
दिन के भोजन का वर्णन	"	नवायसचूर्ण	"
रात्रि के भोजन का वर्णन	९७६	मंझूर वटिका	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	ताप्यादि चूर्ण	९८५
पाण्डुरोगचिकित्सितं नामार्विशोऽध्यायः		योगराज वटिका	"
पाण्डुरोग के भेद	९७७	शिलाजतुवटिका	"
पाण्डुरोग की उत्पत्ति	"	पुर्ननवादि प्रयोग	९८६
पाण्डुरोग के हेतु	"	अवलेह प्रयोग	"
पाण्डुरोग का पूर्वरूप	९७८	घात्र्याबलेह	९८७
पाण्डुरोग के साधारण लक्षण	"	मंझूर गुटिका	"
वातजपाण्डुरोग के लक्षण	"	गुडारिष्ट	"
पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण	"	अन्य अरिष्ट	"
कफज पाण्डुरोग के लक्षण	९७९	घात्र्यारिष्ट	९८८
साग्निकांतिक पाण्डुरोग के लक्षण	"	मृतिका भक्षण में उपाय	"
मृदुलक्षणजन्य पाण्डुरोग	"	मृतिका दोषपरघृत	"
असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण	९८०	अन्य उपाय	९८९
कामलारोग के लक्षण	"	शाखाश्रित कामला के लक्षण	"
कुम्भकामला के लक्षण	"	पाण्डुरोग में अन्य उपचार	"
पाण्डुरोग में चिकित्सा विधान	९८१	हर्लमक के लक्षण	९९०
स्नेहन घृत	"	हर्लमक में चिकित्सा	"
दाडिमाघ घृत	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कटुकाय घृत	"	ह्रिकशवाचचिकित्सितं नाम एक	
पथ्या घृत	"	विशोऽध्यायः	
दन्त्याघ घृत	९८२	अग्निवेश का प्रश्न	९९१
		अत्रेय का उत्तर	९९१

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
हिक्काश्वास का स्थानादि विवर्ण	९९१	कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग	१००२
हिक्काश्वासके भेद	"	तमकश्वास में अन्यप्रयोग	१००३
हिक्काश्वास की उत्पत्तिके साधारणहेतु	९९२	मुक्तादि चूर्ण	"
हिक्का के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	"
श्वास के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	१००४
महाहिक्का के लक्षण	९९३	उत्तरोर्गों में घृतविधान	"
गम्भीरा हिक्का के लक्षण	"	दशमूलादि घृत	"
व्यपेता हिक्का	"	तेजोवत्यादि घृत	"
क्षुद्रा हिक्का	९९४	अन्यप्रयोग	१००५
अन्नजा हिक्का का लक्षण	"	उत्तरोर्गों में संशमन द्रव्योंका विधान	"
हिक्का का साध्यासाध्य वर्णन	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
श्वासकी उत्पत्ति	९९५	कासचिकित्सितं नामद्वाविंशोऽध्यायः	
महाश्वास का लक्षण	"	कास के भेद	१००६
उर्ध्वश्वास का लक्षण	"	खांसी के पूर्वरूप	"
छिन्नश्वास के लक्षण	"	कासका लक्षण	"
तमकश्वास के लक्षण	९९६	कास में विषमशब्द का हेतु	"
प्रतमकश्वास के लक्षण	९९७	वातजकास निदान	"
सन्तमकश्वास के लक्षण	"	वातजखांसी के लक्षण	"
क्षुद्रश्वास के लक्षण	"	पित्तजकासका निदान	१००७
हिक्का और श्वास में चिकित्सा	९९८	पित्तजकासके लक्षण	"
स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम	"	कफजकासके हेतु	"
अन्यधूमपान	"	कफज कास के लक्षण	"
अस्त्रेय रोगी	९९९	क्षतजकासका हेतु	"
भिन्न२ अवस्थाओं में चिकित्सा	"	क्षतजकासके लक्षण	१००८
वमनका निषेध	१०००	क्षतजकासका हेतु	"
हिक्का और श्वास में यूष	"	क्षतजकासके लक्षण	"
उत्तरोर्गोंपर ययागू	१००१	कासका साध्यासाध्य वर्णन	"
उत्तरोर्गोंपर अन्यप्रयोग	"	वातजकास में चिकित्साक्रम	१००९
"	१००२	कंठकारी घृत	"
अन्यप्रयोग	"	पिप्पल्यादि घृत	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
त्र्यूपणाद्यधृत	१००९	क्षतजकासमें विरेचन	१०११
रास्नाद्यधृत	१०१०	दशमूलादि धृत	"
विडंगादि चूर्ण	"	गुडूच्यादि धृत	१०२२
क्षारादिचूर्ण	"	कासमर्दादि धृत	"
हृतालभादिप्रयोग	१०११	धात्रीफलदि धृत	"
चित्रकादि धृत	"	हरीतक्यावलेह	"
अगस्त्योक्तरसायन	"	अन्य अवलेह	१०२३
अन्यप्रयोग	१०१२	पद्मकाद्यवलेह	"
धूमपान विधि	"	जीवन्त्याद्यवलेह	"
धूमपान का प्रयोग और गुण	"	अन्य प्रयोग	१०२४
धूमपान के अन्य प्रयोग	१०१३	अन्य यूपादि प्रयोग	"
यूपादि प्रयोग	"	अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन	१०२५
पित्तजकासमें चिकित्साक्रम	१०१४	छर्दिचिकित्सितं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः	
पांचअवलेह	"	छर्दि के भेद	"
पित्तकास में अन्य प्रयोग	१०१५	वमन के पूर्वरूप	"
अन्य प्रयोग	"	वातजवमन का निदान	१०२६
अन्य यूपादि प्रयोग	"	वातजवमन के लक्षण	"
स्थिरादि दूधधाधृत	१०१६	पित्तजवमनका निदान	"
कफजकास में चिकित्साक्रम	"	पित्तजवमन के लक्षण	"
कफजकास में पेयद्रव्य	१०१७	कफजवमनका निदान	"
अन्यप्रयोग	"	कफजवमन का लक्षण	"
कफजकासनाशक चारप्रयोग	"	सन्निपातजवमन का निदान	१०२७
दशमूलादि धृत	१०१८	सन्निपातजवमन का लक्षण	"
कण्टकारी धृत	"	प्राणनाशक वमन के लक्षण	"
कुल्य्यादिधृत	"	द्विष्टार्थ संयोगज वमन के लक्षण	"
कफजकासमें अन्य विधि	१११९	असाध्यवमन के लक्षण	"
क्षतजकासमें चिकित्साक्रम	"	वमनचिकित्सा का क्रम	"
पिप्पल्यादि अवलेह	"	कफपित्तनाशक वमनविरेचन	१०२८
धूमपानके द्रव्य	१०२०	वातजवमन की चिकित्सा	"
क्षतजकास में चिकित्साक्रम	१०२१	पित्तजवमन में चिकित्सा	"
		कफकीवमन में चिकित्सा	१०२९
		सान्निपातिकवमन में चिकित्सा	१०३०

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
दृष्टसंयोगज यमन में उपाय	१०३०	विषकी त्रिदोषानुगामित्व	१०४२
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३१	विषसेमरनेके हेतु	"
तृष्णाचिकित्सितनाम चतुर्विंशोऽध्यायः		विषद्वारा मृत्यु लक्षण	"
तृषारोगका हेतु	१०३२	विषमें चिकित्साभेद	"
तृषाका प्राग्रूप	"	विषमवन्धनादिविधि	१०४३
तृषाके लक्षण	"	विषदूषित रक्तकापरिणाम	"
यातजतृषाका हेतु	१०३३	घर्षण प्रयोग	"
यातजतृषाका लक्षण	"	विषकेकैलनेमें रक्तकी प्रधानता	"
पित्तजतृषाका हेतु	"	विषवेग लक्षण	१०४४
पित्तजतृषाके लक्षण	"	प्रथमद्वितीय वेगोंमें चिकित्सा	"
फफजतृषा	"	तृतीयादि वेगोंमें चिकित्सा	"
अग्नि और पवनको तृषाका कारणत्व	१०३४	मृतसंजीवनी घटिका	१०४५
तृषा के अन्य कारण	"	अगद गन्धहस्ती	१०४७
तृषारोग में चिकित्सा	"	महागन्ध हस्ती	"
शीतोष्णजलकी विधि	१०३८	विषरोगनाशक अन्यप्रयोग	१०४९
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३९	क्षारागद	१०५०
विषचिकित्सितनाम पंचविंशोऽध्यायः		विषदाता प्रेम्प की परीक्षा	१०५१
विषकी उत्पत्ति	"	अग्निद्वारा अन्नकी परीक्षा	"
विषकीयोन्म्यादि संख्या	"	पात्रस्थ भोजन की परीक्षा	"
जंगमविषकीयोनि	१०४०	विषयुक्त पेयकी परीक्षा	"
स्थावरविषका वर्णन	"	विषयुक्त अन्नपान सेवन का फल	"
गरविषका वर्णन	"	सर्पों के भेदादि वर्णन	१०५३
जंगमविषकाकार्य	"	सर्पों की परीक्षा	"
स्थावरविषके कर्म	"	उक्त सर्पों के विषके गुण	"
दोनोंविषों का परस्पर विरोध	"	दर्वाकर के दंशका लक्षण	"
सातों वेगोंके कर्म	"	मंडली के दंशका लक्षण	"
चौपाँचोंके वेगका वर्णन	१०४१	राजिमान के दंशका लक्षण	"
पक्षियोंके विषवेग	"	सर्पों के छिद्र भेद	"
विषके दशगुण	"	गर्भिन्यादि सर्पोंकी के लक्षण	१०५४
ऊपरकहे द्रव्ये गुणोंके कर्म	"		

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
गोहृदयका लक्षण	१०५४	वातिक विष में चिकित्सा	१०५८
भयंकर दंशके लक्षण	"	पैत्तिक विष में चिकित्सा	"
अवस्थानुसार दंशके लक्षण	"	इलैमिक विष में चिकित्सा	"
सर्पके दाँतों का वर्णन	१०५५	शीतक्रियोपयोगी विष	१०५९
दाँतों में विष का प्रमाण	"	बीछूके विष में चिकित्सा	"
दंशका वर्णन	"	उच्चिर्दिग विष में चिकित्सा	"
कीटों का वर्णन	"	त्रिदोषज विषके लक्षण	"
दूषी विषके लक्षण	"	अन्य सर्पोंके लक्षण	"
प्राणहर दंष्ट्र के लक्षण	"	सविष शरीरके लक्षण	"
दूषीविषके दंशके लक्षण	"	विषरोग में चिकित्सा	"
मकड़ी के दंशलक्षण	"	सर्व शोथनाशक योग	१०६०
छतादष्ट मनुष्य के लक्षण	१०५६	अन्य प्रयोग	१०६१
चूहेके दंश और विषके लक्षण	"	छताविष की चिकित्सा	"
किरकैटाके दंशके लक्षण	"	मकड़ी विष की अन्य चिकित्सा	१०६२
धीछूके दंशके लक्षण	"	किरकैट विषकी चिकित्सा	"
कणभके लक्षण	"	वृश्चिक विषकी चिकित्सा	"
उच्चिर्दिगके दंशके लक्षण	"	मंडूक विषकी चिकित्सा	"
मंडूकदंशके लक्षण	"	मत्स्य विषकी चिकित्सा	"
मन्थदंशके लक्षण	१०५७	जोक विष की चिकित्सा	१०६३
जोकदंशके लक्षण	"	विश्वम्भरादि विषकी चिकित्सा	"
गडगौडिकाके दंशके लक्षण	"	कांतर विषकी चिकित्सा	"
शतपदीके लक्षण	"	छपकड़ी विषकी चिकित्सा	"
मशकदंशके लक्षण	"	दन्त और नख में चिकित्सा	"
मक्षिका दंशके लक्षण	"	शंकाविष में उपाय	१०५४
मन्दविष सर्पके लक्षण	"	विषरोग में पथ्यविधान	"
विषको सर्व देहाश्रितत्व	१०५८	विष में वर्जितकर्म	"
अन्यविषाक्त कीड़ों की प्रकृति	"	चतुष्पददष्ट के लक्षण	"
वातिक विषके लक्षण	"	चतुष्पददष्ट में उपाय	१०६५
पैत्तिक विषके लक्षण	"	गरविष के लक्षण	"
भौतिक विषके लक्षण	"	गरविषके अन्य लक्षण	"

विषय	पृष्ठांकः
गरविष में वैद्यका कर्त्तव्य ....	१०६५
अन्यप्रयोग ....	१०६६
अमृतघृत ....	”
अध्यायका उपसंहार ....	”
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ....	१०६७
<b>त्रिमर्मीयचिकित्सितं नाम षड्विंशो-</b>	
<b>अध्यायः ।</b>	
मर्मसंख्या ....	”
कुपितवात के कर्म ....	”
उदावर्त्तजन्यरोग ....	१०६८
वातजरागों में चिकित्सा ....	”
उदावर्त्त में वार्त्तविधि ....	”
अन्यप्रयोग ....	१०६९
निराहणवर्त्ति विधान ....	”
अन्यकर्त्तव्य कर्म ....	”
अण्डी के तेलकी मात्राका प्रमाण १०७०	
विरचन के पश्चात्कर्म ....	”
उदावर्त्त में चिकित्साकेप्रयोग ....	”
मूत्रकृच्छ्रका निदान ....	१०७१
कृच्छ्रतासे प्रत्यावकाकारण....	”
वातजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण ....	”
पित्तजमूत्र कृच्छ्रकेलक्षण ....	१०७२
कफजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण ....	”
सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण ....	”
अश्मरीनिदान ....	”
अश्मरी की आकृति ....	”
अश्मरी के कर्म ....	”
शर्करालक्षण ....	”
अन्यअश्मरीकाकारण ....	१०७३
वातजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ....	”

विषय	पृष्ठांकः
पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ....	१०७४
कफजमूत्रकृच्छ्र में ” ....	१०७५
सन्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा.....	”
अश्मरी में चिकित्सा ....	”
अन्यप्रयोग ....	१०७६
रेतोविघातकृच्छ्र में चिकित्सा ....	१०७७
रक्तोद्भयमूत्रकृच्छ्र में उपाय ....	”
मूत्रकृच्छ्र में वर्जित कर्म ....	१०७८
हृद्दोग की उत्पत्तिका कारण ....	”
हृद्दोग के उपद्रव ....	”
वातजहृद्दोग के विशेष लक्षण ....	”
पित्तजहृद्दोग के लक्षण ....	”
कफजहृद्दोग के लक्षण ....	”
सन्निपातिकहृद्दोग के लक्षण ....	”
वातजहृद्दोग में चिकित्सा ....	”
श्रूयणादिवृत ....	१०७९
पित्तजहृद्दोग में चिकित्सा ....	१०८०
कफजहृद्दोग की चिकित्सा ....	”
सन्निपातिकहृद्दोग में चिकित्सा ....	१०८१
कुमिजन्यहृद्दोग ” ....	”
पीनसरोग का निदान ....	१०८२
वातजपीनस के लक्षण ....	”
पित्तजपीनस के लक्षण ....	”
कफजपीनसके लक्षण ....	”
सन्निपातिकपीनस के लक्षण ....	”
प्रतिश्याय के दूषितहोनेकाकारण ....	”
दूषित प्रतिश्यायके लक्षण ....	”
छींकका कारण ....	१०८३
शोष का कारण ....	”
प्रतीनाहके लक्षण ....	”

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
स्त्रावका लक्षण	१०८३	पित्तजपीनस में चिकित्सा	१०८८
अपीनस का लक्षण	"	कफजपीनस में चिकित्सा	"
पूतिनासाके लक्षण	"	नस्यादिप्रयोग	"
घ्राणपाक के लक्षण	"	शिरोरोग में चिकित्सा	१०८९
नासाशोथ का हेतु	"	वातापित्तज शिरोरोग में उपाय	"
अर्बुदका कारण	"	मायूर घृत	१०९०
पूयरक्तका कारण	१०८४	महामायूर घृत	"
अरुः का कारण	"	पित्तजशिरोरोगमें चिकित्सा	१०९१
शिरोरोग का निदान	"	कफजशिरो रोग की चिकित्सा	"
वातजमुखरोग का लक्षण	"	उत्तरोगों की चिकित्सा	१०९१
पित्तजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग चिकित्सा	१०९२
कफजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग में कवलप्रह	"
साम्निपातिकमुखरोग के लक्षण	"	दन्तमंजन	"
मुखरोग के अन्य भेद	"	कण्ठरोगकी चिकित्सा	"
अरुचिके भेद	१०८५	पीतक चूर्ण	१०९३
वातमरुचिके लक्षण	"	मृद्रीकादि चूर्ण	"
पित्तजमरुचिके लक्षण	"	खदिरादि वटिका	१०९४
कफजमरुचि के लक्षण	"	अरोचक चिकित्सा	"
शोकादिजन्यमरुचि के लक्षण	"	कवलप्रह के चार प्रयोग	१०९५
वातजकर्णरोग के लक्षण	"	वातजस्वर भेद की चिकित्सा	"
पित्तजकर्णरोग के लक्षण	"	पित्तजस्वरभेद की चिकित्सा	"
कफजकर्णरोग के लक्षण	"	कफजस्वर भेद की चिकित्सा	"
साम्निपातिक कर्णरोग के लक्षण	१०८६	रक्तजस्वरभेद की चिकित्सा	१०९६
वातजनेत्ररोग का लक्षण	"	साम्निपातजस्वरभेद की चिकित्सा	"
पित्तज नेत्ररोग का लक्षण	"	कर्णरोग में चिकित्सा विधि	"
कफजनेत्ररोग के लक्षण	"	कर्णपूरण प्रयोग	"
साम्निपातिक नेत्ररोगके लक्षण	"	क्षार तैल	"
खाड्यनिदान	"	नेत्र रोग में चिकित्साक्रम	१०९७
वातजपीनस में चिकित्सा	"	दोषानुसार नेत्रचिकित्सा	"
तैलप्रयोग	१०८७	नेत्ररोग में वार्तिक्रिया	१०९८

विषय	पृष्ठांकः
सर्वदोषनाशिनी वर्त्ती	१०९८
दूसरा प्रयोग	"
अन्य प्रयोग	१०९९
दृष्टिप्रदा वर्त्ती	११००
अन्य अंजन	"
खादित्य चिकित्सा	११०१
महामालादय घृत	"
अप्याय का उपसंहार	११०२
ऊरुस्तम्भचिकित्सितनामसप्तविंशोऽध्यायः ।	
ऊरुस्तम्भ का हेतु	११०४
ऊरुस्तम्भ की उत्पत्ति	"
ऊरुस्तम्भके लक्षण	"
ऊरुस्तम्भ का पूर्वरूप	११०५
साध्यासाध्यऊरुस्तम्भ का लक्षण	"
ऊरुस्तम्भ में अकर्तव्य कर्म	"
अकर्तव्य कर्मोंका हेतु	"
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा विधि	११०६
ऊरुस्तम्भ में अन्य औषध	"
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा	"
ऊरुस्तम्भ पर पांचप्रयोग	"
ऊरुस्तम्भके उपद्रवों की चिकित्सा	११०७
ऊरुस्तम्भपर लेप	११०८
अन्यलेप	"
अप्यायका संक्षिप्त वर्णन	११०९
वातव्याधिचिकित्सितनामअष्टाविंशोऽध्यायः ।	
वायु की उत्कृष्टता	"
वायुके भेद	"
प्राणवायु के स्थान और कर्म	१११०
उदानवायु के स्थान और कर्म	"

विषय	पृष्ठांकः
समानवायु के स्थान और कर्म	१११०
व्यानवायु के स्थान और कर्म	"
अपानवायु के स्थान और कर्म	"
विमार्गस्थ पंच वायु के कर्म	"
सर्वाङ्गादि व्याधियों का हेतु	११११
वायु के रूपादि	"
व्यक्तवायु के लक्षण	"
कोष्ठाश्रित वायु के कर्म	१११२
सर्वाङ्गगत वायु के कर्म	"
गुदस्थ वायु के कर्म	"
आमाशयस्थ वायु के कर्म	"
पक्वाशयस्थ वायु के कर्म	"
त्वक्स्थवायु के कर्म	"
रक्तगत वायु के कर्म	"
मांसमेदोगत वायु के कर्म	"
गज्जास्थिगत वायु के कर्म	१११३
शुक्रस्थ वायु के कर्म	"
स्नायुगत वायु के कर्म	"
शिरागत वायु के कर्म	"
सन्धिगत वायु के कर्म	"
अर्द्धाङ्गगत वायु के कर्म	"
मन्याश्रित वायु के लक्षण	१११४
अन्तरायाय के लक्षण	"
पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण	"
वहिरायाय के लक्षण	"
हनुग्रहके लक्षण	"
आक्षेपकके लक्षण	१११५
दंढापतानक के लक्षण	"
अर्दितरोग के लक्षण	"



विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
पक्षाघात के लक्षण	१११५	वृषमूलादि तैल	११२७
गृध्रसी के लक्षण	"	रास्ना तैल	"
खल्ली का लक्षण	"	तैलकी उत्कृष्टता	११२८
पित्तावृतवायुमार्ग के लक्षण	१११६	पित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
कफावृतवायुमार्ग के लक्षण	"	कफावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	११२९
रक्तावृतवायु के लक्षण	"	कफापित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
मांसावृतवायुके लक्षण	"	शिरोगत वात में चिकित्सा	"
मेदसावृतवायु के लक्षण	"	उरःस्थवात में चिकित्सा	"
हृद् से आवृतवायु के लक्षण	१११७	रक्तावृतवात में चिकित्सा	"
मज्जावृत वायु के लक्षण	"	आल्यवात में चिकित्सा	"
शुक्रावृतवायु के लक्षण	"	मांसावृतवात में चिकित्सा	"
अनावृत वायु के लक्षण	"	अन्नावृतवात में चिकित्सा	११३०
मूत्रावृतवायु के लक्षण	"	मूत्रस्थवात में चिकित्सा	"
बर्चोवृतवायु के लक्षण	"	पुरीषस्थवात में चिकित्सा	"
साध्यासाध्य वातरोगों के नाम	"	स्वस्थानस्थदोष की चिकित्सा	"
वातरोग में चिकित्सा क्रम	१११८	पंचवायु का परस्पर आवरण	"
अर्दितरोग में चिकित्सा	११२०	प्राणावृत व्यानवायु के लक्षण	"
पक्षाघात में चिकित्सा	"	व्यानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
ग्रधसी में चिकित्सा	"	प्राणावृत समानवायुके लक्षण	११३१
हनु रोग में चिकित्सा	"	समानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
वातरोग में चिकित्सा	"	प्राणावृत उदानवायुके लक्षण	"
वातरोग में वृंहण द्रव्य	११२१	उदानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
उपनाह प्रयोग	"	प्राणावृत अपानवायुके लक्षण	"
चित्रकादि धृत	११२२	अपानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
निर्गुडीतैल	११२३	व्यानावृत अपानवायुके लक्षण	"
बला तैल	११२५	आपाना वृत व्यानके लक्षण	"
उक्त तैलके गुण	"	समानावृत व्यानवायुके लक्षण	११३२
अमृतादि तैल	११२६	उदानावृत व्यानवायुके लक्षण	"
रास्नातैल	"	उदानादिवायु में चिकित्सा क्रम	"
मूलादि तैल	"		

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
प्राणवायु में कर्तव्य	११३३	पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण	११३९
पित्तावृत प्राणवायुके लक्षण	"	कफाधिक वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत प्राणवायुके लक्षण	"	संसृष्टवातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत उदानके लक्षण	"	वातरक्तको साध्यामाध्यत्व	"
कफावृत उदानके लक्षण	"	सोपद्रव वातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत समानवायुके लक्षण	"	सुचिकित्स्य वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत समानवायुके लक्षण	"	वायुमकोपमें चिकित्साक्रम	११४०
पित्तावृत व्यानके लक्षण	"	वातरक्तमें चिकित्साक्रम	"
कफावृत व्यानके लक्षण	"	वाह्य वातरक्तमें कर्म	"
पित्तावृत अपानके लक्षण	११३४	गम्भीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म	"
कफावृत अपानके लक्षण	"	घातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा	११४१
कफपित्तावृत के लक्षण	"	कफोत्तरवातरक्तमें चिकित्सा	"
प्राणोदानवायु को गुरुता	"	कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
उपेक्षितवायुके उपद्रव	"	रक्तपित्तोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
वैद्यको उपदेश	"	वातरक्तमें वर्जितकर्म	"
आवृत्तवायु में चिकित्सा	११३५	वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य	"
अपानावृत प्राणवायु में चिकित्सा	"	श्रावण्यादि घृत	११४२
पित्त और कफावृत वायु की चिकित्सा	"	बलादि घृत	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	तामलक्यादि घृत	"
वातशोणित चिकित्सितनाम एकोन-		पारूपक घृत	"
त्रिंशोऽध्यायः		क्षिपंचमूलादि घृत	"
वातरक्तके हेतु	११३६	द्राक्षादि घृत	११४३
वातरक्तके स्थान	११३७	गुड्यादि घृत	"
वातरक्तके पूर्वरूप	"	जीविकादि घृत	"
वातरक्तके भेद	"	अन्यप्रयोग	११४४
उत्तानवातरक्तके लक्षण	११३८	यण्ड्यादि तैल	११४५
गम्भीरवात रक्त के लक्षण	"	सुकुमारक तैल	११४६
उभयाश्रितवात रक्त के लक्षण	"	अमृताख्य तैल	"
वाताधिक वातरक्त के लक्षण	"	महापशतैल	११४७
रक्ताधिकवातरक्त के लक्षण	"		

विषय	पृष्ठांकः
खुडाकपधतैल	११४७
वलादि तैल	११४८
सहस्रपाक तैल	"
भारनादि तैल	"
पिंडतैल	"
शतपाकमधुपर्णी तैल	"
गुडूच्यादि तैल	"
कफप्रधानवातरक्तमें चिकित्सा	११५१
वातरक्तमें पथ्यविधि	"
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	११५२

योनिग्यापच्चिकित्सतंनानामत्रिशोऽ-

ध्यायः

योनिरोगों कीसंख्या	११५३
वातलयोनिरोगोंके लक्षण	"
वित्तलयोनिरोगोंके लक्षण	११५४
इलैमिक योनिरोगोंके लक्षण	"
सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण	"
रक्तपित्तजन्मयोनिरोग	"
अरजस्कायोनि लक्षण	"
अचरणायोनिके लक्षण	११५५
अतिचरणायोनिके लक्षण	"
प्राक्चरणायोनिके लक्षण	"
अपप्लुतायोनिके लक्षण	"
परिप्लुतायोनि के लक्षण	"
उदावृतायोनिके लक्षण	"
उदावर्तिनीयोनिके लक्षण	११५६
कणिनीयोनिके लक्षण	"
पुत्राणी के लक्षण	"
अन्तर्मुखीयोनिके लक्षण	"

विषय	पृष्ठांकः
सूचीमुखीके लक्षण	११५६
शुष्कायोनि के लक्षण	"
वामिनी के लक्षण	"
षण्डी के लक्षण	११५७
महायोनि के लक्षण	"
योनिरोगों में दोषपरत्व	"
वातजरोगोंमें चिकित्सा	"
पित्तजरोगों में क्रिया	११५८
कफजयोनिरोगों में क्रिया	"
सान्निपातिक योनिरोगों में चिकित्सा	"
वायुजन्मयोनिरोग में चिकित्सा	"
अन्य प्रयोग	"
काश्मर्यादि घृत	११५९
अन्य प्रयोग	"
अन्य पित्तु	"
अन्य प्रयोग	११६०
कफपित्तजरोगों में क्रिया	"
शतावरी घृत	"
अन्य उपाय	"
कफजयोनिरोगों में चिकित्सा	"
योनिशोधक तैल	११६१
अन्य प्रयोग	"
धातक्यादि तैल	"
अन्य प्रयोग	११६२
योनिरोगोंमें अषलेह	"
योनिरोगमें वस्तिर्गम	"
रक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
वातजरक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
पैक्षिकरक्तप्रदरमें चिकित्सा	११६३

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
पुण्यानुचूर्ण	११६३	क्षयजह्विता	११७२
प्रदर में अन्यचिकित्सा	११६३	असाध्य ह्विता	"
रक्तयोन्यादि की चिकित्सा	११६४	अन्य ह्विताओंको असाध्यत्व	"
घाभिनीऔर आप्ठतायोनिमें चिकित्सा	"	कैवर्त्यकी संक्षिप्त चिकित्सा	११७३
कार्मनीयोनि में चिकित्सा	११६५	वीजोपघातकी चिकित्सा	"
उदावृतायोनि की चिकित्सा	"	ध्वजभंग की चिकित्सा	"
घहिर्निष्क्रान्त योनिकीचिकित्सा	"	जरासंभव कैवर्त्यकी चिकित्सा	"
पांडुप्रदरमें चिकित्सा	"	प्रदर वर्णन	११७४
योनिस्त्रावमें चिकित्सा	११६६	प्रदर के भेद	"
पिच्छलायोनिकी चिकित्सा	"	वातप्रदर के हेतु	"
योनिमें अन्यदोषोंकी चिकित्सा	"	वातजप्रदर के लक्षण	"
योनिचिकित्साका उपसंहार	"	पित्तजप्रदर के हेतु	११७५
शुक्रदोषका प्रकर्ण	११६७	पित्तजप्रदर के लक्षण	"
बीजके विगडनेमें दृष्टान्त	"	कफजप्रदर के हेतु	"
धीर्य के दूषितहोनेका कारण	"	कफजप्रदर के लक्षण	"
दूषितशुक्रके भेद	११६८	सान्निपातिकप्रदर का हेतु	"
वातदूषितशुक्रके लक्षण	"	सान्निपातिकप्रदर के लक्षण	"
पित्तदूषित शुक्रके लक्षण	"	दुष्किंसास्त्रयी	"
कफदूषित शुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध ऋतु के लक्षण	११७६
अन्यहेतुओंसेदूषितशुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध आर्तव के लक्षण	"
अवसादी शुक्रके लक्षण	"	स्तन्यदोष के लक्षण	११७७
शुद्धशुक्रके लक्षण	"	वातदूषित दुग्धके अवगुण	"
शुक्रदोष में साधारण प्रयोग	११६९	पित्तदूषित दूध के अवगुण	११७८
ह्विताके अन्यकारण	"	कफदूषित दुग्ध के अवगुण	"
ह्विताके साधारण लक्षण	"	स्तन्यशोधन में वमन	"
वीजोपघातक ह्विताके लक्षण	११७०	विरचन विधि	११७९
ध्वजभंग के हेतु	"	स्तन्यदोष में पथ्य	"
ध्वजभंग के लक्षण	"	स्तन्यशोधक प्रयोग	"
जरासंभवह्विता के लक्षण	११७१	स्तन्यदोष में चिकित्सा	११८०
		स्तन्यशोधक उप	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
फेनिल स्तन्य का उपाय	११८०	जांगल देशके लक्षण	११९०
रूक्षतानाशक प्रयोग	"	आन्पदेश के लक्षण	११९१
विवर्णता नाशक प्रयोग	"	साधारण देशके लक्षण	"
दुर्गन्धि नाशक प्रयोग	११८१	उत्कृष्ट देशजात औषध	११९२
दूधकी सिग्धता का उपाय	"	औषध संग्रह विधि	"
दूधकी पिच्छिलता का उपाय	"	औषधियों की रक्षाविधि	"
दूधकी गुरुता का उपाय	"	दोषानुसार प्रयोग विधि	११९३
बालकों की मात्रा का विचार	११८२	मैनफलका वर्णन	"
शिशुपक्ष में गृहीत कर्म	"	वमन कराने की विधि	११९४
पथ्यापथ्य का लक्षण	११८३	वमन कराने के मंत्र	"
प्रलेपादि जन्मरोग	"	मैनफल का घृत	११९६
चिकित्सा विचार	"	फलाद्यल्लेह	"
दिन विचार	"	मैनफलके नामान्तर	११९७
रोगीविचार	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
औषधविचार	"	जीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः	"
पंचत्रायु में औषधसेवन	"	जीमूतके पर्याय शब्द	११९८
व्याधिविचार	११८४	जीमूतके गुण	"
जीर्णलक्षण	"	जीमूतके प्रयोग	"
शतुविचार	"	अन्य प्रयोग	"
कारुविचार	११८५	अन्य प्रयोग	११९९
औषधकी मात्रा का प्रमाण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
देशानुसार साध्यद्रव्य	"	इक्ष्वाकुकल्पनाम तृतीयोऽध्यायः	"
शास्त्र विरुद्ध क्रियाका निर्देश	११८६	इक्ष्वाकुके पर्यायशब्द	१२००
निवृत्तरोग में औषध सेवन	११८७	इक्ष्वाकुके गुण	"
पथ्यन्तरे विधि	"	इक्ष्वाकुके कल्प	"
अन्वने में पथ्य विधि	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	धामार्गकल्पनाम चतुर्थोऽध्यायः	"
अध्याय का उपसंहार	११८८	धामार्गक के पर्यायशब्दों का शब्द	१२०२
इतिविचारसंग्रह स्थानम्		धामार्गकके गुण	"
अथ कल्पस्थानम्		धामार्गककी कल्पना	"
मदनकल्पनामप्रथमोऽध्यायः		अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०३
वमनदि की निरुक्ति	११८९	यस्यकल्पनाम प्रथमोऽध्यायः	
देहनेर	११९०	यस्यकले नाम	१२०४

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
वस्तुके भेद	१२०४	लोषके कल्प	१२१६
वस्तुके गुण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१७
वस्तुके कल्प	"	महावृक्षकल्पनामदशमोऽध्यायः	
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०५	सैन्धुसाध्यरोम	१२१८
कृतवेधन कल्पनाम पष्ठोऽध्यायः		सैन्धु के भेद	"
कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम	"	सैन्धु के नाम	"
कृतवेधन के गुण	"	सैन्धु के लाने की विधि	"
कृतवेधन के कल्प	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२२०
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०६	सप्तलाशंखिनी कल्पनामएकादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृत्कल्पनाम सप्तमोऽध्यायः		सप्तलाशंखिनी के नामान्तर	"
त्रिवृत्के नाम	१२०७	उत्तरोर्मों में दोनों की कल्पना	"
निसोथ के गुण	"	अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२२१
निसोथ के भेद	"	दन्तीद्रवन्ती कल्पनामद्वादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृत् के गुण	"	दन्तीद्रवन्ती के नामान्तर	१२२२
निसोथ की मात्रा	१२०८	उक्तद्रव्यों के कल्प	"
पेक्षिक प्रकृति वालोंका विरेचन	१२०९	बरेचिनक चूर्ण	१२२४
कफप्रकृति के लिये विरेचन	"	दन्ती द्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन	१२२६
कफाधिक्यमें राजाओं के योग्यविरेचन	"	स्वरसमे भावितकरनेका कारण	१२२७
कल्याणक गुटिका	१२१०	तांक्ष्णविरेचन के लक्षण	"
व्योषादि विरेचन	१२११	औषधिकीतांक्ष्णताका कारण	"
दशमेदकों का प्रयोग	"	मध्यऔषधके लक्षण	"
भिन्न २ वृत्त के विरेचन	१२१२	हीनऔषधका लक्षण	१२२८
उपसंहार	१२१४	सुखासुखसाध्यरोगी	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	मृदुऔषध का विधान	१२२९
चतुर्गुलकल्पनामअष्टमोऽध्यायः		वस्तिकर्म के योग्य रोगी	१२३०
चतुर्गुल के अन्यनाम	"	स्नेहन के योग्य रोगी	"
अमलतास के गुण	१२१५	उपसंहार	१२३१
अमलतास के रखने की विधि	"	मानपरिभाषा	"
अमलतास के कल्प	"	स्नेहपाक के भेद	१२३२
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१६	स्नेहशकों की प्रयोग विधि	१२३३
तिलवृक्षकल्पनामनवमोऽध्यायः		मान के भेद	"
लोष के नाम	"	कालिंगमान	"
		कल्पस्थानका संक्षिप्त वर्णन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अयसिद्धिस्थानम्		शिरोविरेचनकी विधि	१२४२
कल्पनासिद्धिर्नामप्रथमोऽध्यायः		सम्पक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण	"
अग्निवेशका प्रश्न	१२३४	असम्पक् शिरोविरेचन के लक्षण	"
स्वेदनकाल का निर्णय	"	शिरोविरेचनका अतियोग	"
स्नेहनस्वेदन का फल	१२३५	वस्ति प्रयोगके अन्य नियम	"
पेयादिसे अन्तराग्नि की वृद्धिका दृष्टान्त	"	पंचकर्म के पीछे वर्जितकर्म	"
घमन विरेचनके देग	१२३६	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२४३
घमन विरेचनकी अवधि	"	पञ्चकर्मयसिद्धिर्नामद्वितीयोऽध्यायः	
घमन विरेचन में प्रथमवेगोंका निषेध	"	पंचकर्मके अयोग्यव्यक्ति	१२४४
सम्यावभित के लक्षण	"	घमनके अयोग्य व्यक्ति	"
असम्यग्घमनके लक्षण	"	उक्तरोगियोंके अवस्य होनेका कारण	"
अतिघमनके लक्षण	"	घमनका अप्रतिषेध	१२४६
सम्यग्विरिक्तके लक्षण	"	घमनीयव्यक्ति	"
असम्यग्विरिक्तके लक्षण	१२३७	अविरेच्यरोगी	"
अतिविरिक्त के लक्षण	"	उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होनेका	१२४८
वस्तिकेगुण	१२३८	कारण	"
निरुहणवस्तिके गुण	"	विरेचनके योग्यव्यक्ति	"
अनुवासनके गुण	"	अनास्थाप्यरोग	"
पृंहणवस्तिके अयोग्यव्यक्ति	१२३९	अनास्थापनका कारण	१२४९
संशोधनवस्तिकानिषेध	"	आस्थाप्यरोग	१२५०
वायुजन्यरोगों में वस्तिको प्रधानता	"	अनुवासनके अयोग्यरोगी	"
सम्पक् प्रयुक्तवस्तिके लक्षण	१२४०	उक्तरोगोंमें अनुवासनके न देने ]	"
सम्पक् प्रयुक्त निरुहके लक्षण	"	का कारण ]	"
असम्पक् निरुहित के लक्षण	"	अनुवासनके योग्यव्यक्ति	१२५१
अतिनिरुहितके लक्षण	"	शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी	"
सम्पक् अनुवासितके लक्षण	"	शिरोविरेचन न देनेका कारण	१२५१
असम्पक् अनुवासितके लक्षण	१२४१	शिरोविरेचनके योग्यरोगी	१२५२
अत्यनुवासितके लक्षण	"	नस्यकर्मविधि	"
वस्तियों की संख्या	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अध्यायका उपसंहार	११५३	कफावृत वस्ति में उपाय	१२६७
वस्तिस्त्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः		अतिभोजनावृत वस्तिके लक्षण	"
वस्तिका प्रमाण	११५४	उत्तरोश में उपाय	"
वस्तिकी परिधिका प्रमाण	११५५	पुरीषावृतवस्तिके लक्षणोपाय	"
भिन्न २ वस्तियोके गुण भेद	११५६	ऊर्ध्वगति वस्ति के लक्षण	१२६८
वामपार्श्वसे वस्तिप्रणिधानका कारण	११५७	ऊर्ध्वगतवस्ति में उपाय	"
निरूहण द्रव्यका प्रमाण	११५८	उपेक्ष्यवस्ति	"
शयनका नियम	"	मुक्तस्नेह का पदचात् कर्म	"
भोजनादि नियम	११५९	उष्णोदक के गुण	"
वातनाशक निरूहण प्रयोग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	१२७०
अरण्ड तैल की वस्तिकेगुण	"	नेत्रवस्ति व्यापादिका सिद्धिर्नाम पञ्च-	
पित्तरोगनाशक निरूहवस्ति	११६०	मोऽध्यायः	
पित्तरोगनाशक अन्य विधि	"	वर्जितवस्तिनल	"
कफनाशक वस्ति	११६१	ह्रस्वादि वस्ति नल के उपद्रव	"
वायुनाशक वस्ति	११६२	वर्जित वस्ति	१२७१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	११६३	विषमादिवस्तिर्यो के उपद्रव	"
स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽ-		प्रणता की अज्ञताके उपद्रव	"
ध्यायः		दृतादि प्रणीतवस्ति के कर्म	"
वातनाशक अनुवासन विधि	१२६४	तिर्यक् बन्धन के लक्षण	१२७२
वसाप्रयोग	"	पीडन के उपद्रव	"
अन्यतैल	"	कम्पनमें उपद्रव	"
अनुवासनीयवृत्	"	अतिप्रणीत वस्ति के उपद्रव	"
स्नेहवस्तिके गुण	१२६६	मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण	"
स्नेहवस्ति में छः आपत्ति	"	अतिपीडित वस्ति के लक्षण	"
वस्ति में विघ्न के कारण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
वातावृत स्नेहवस्तिके लक्षण	"	वमनविरेचन व्यापत् सिद्धिर्नाम षष्ठो	
वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय	१२६७	ऽध्यायः	
पित्तावृत वस्ति के लक्षण	"	संशोधन का समय	१२७३
कफावृत वस्ति के लक्षण	"	अविरेक्परोगी	"



विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
स्नेहस्वेदसे संशोधन का दृष्टान्त	१२१४	अतियोग व्यापचिकित्सा	१२८५
अजीर्ण भोजन में संशोधन निषेध	"	कलमव्यापल्लक्षण	"
मात्रावत् औषध के लक्षण	"	कलमव्यापचिकित्सा	१२८६
सम्पयोग करनेवाली औषध	"	आध्मान व्यापल्लक्षण	"
वमन विरेचन का पूर्व कर्म	१२७६	आध्मान व्यापचिकित्सा	१२८७
शुद्धि के लक्षण	"	ह्रिस्काव्यापचिकित्सा	"
पेया के योग्यरोगी	"	हृदयचिकित्सा	"
तर्पणादिक्रम के योग्य रोगी	"	ऊर्ध्वव्यापचिकित्सा	"
जीर्ण औषध के लक्षण	१२७६	प्रवाहिका व्यापचिकित्सा	१२८८
जीर्णावशिष्ट औषध के लक्षण	"	शिरशूलके लक्षण	१२८९
असम्पृक्त औषध के दशउपद्रव	"	शिरशूल चिकित्सा	"
अजीर्ण में विरेचनपान के अवगुण	"	अंगशूल लक्षण	"
वमनकर्ता औषध से विरेचन	"	अंगशूल चिकित्सा	"
वमन विरेचन योग में उपाय	१२७८	परिकर्तिकाकी चिकित्सा	१२९०
अतियोगनाशक प्रयोग	"	पितरक्त में चिकित्सा	"
वमनातियोग प्रयोग	"	अध्यायका उपसंहार	" १२९१
निःसृत जिह्वा में उपाय	"	प्रासूतयोगिकसिद्धिर्नाम अष्टमोऽध्यायः	
बाग्रह में चिकित्सा	"	वर्षवर्द्धन निरूह	१२९२
ऐंठा होने का कारण	१२८०	पंचतित्त निरूहवर्द्धन	"
ऐंठकी चिकित्सा	"	क्रामेनाशक वस्ति	"
पीत औषधोंके वमननिग्रहमें उपद्रव	१२८१	वृष्यवस्ति	"
शोणित की परीक्षा	१२८२	नौउपद्रव	१२९२
दूसरी परीक्षा	"	अध्यायका उपसंहार	१२९६
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२८४	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
अस्तिव्यापदिकासिद्धिर्नामसप्तमोऽध्यायः		त्रिमर्माय सिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः	
वस्ति के रोग	"	मर्मस्थानोंमें गुरुता	१२९७
अयोग व्यापल्लक्षण	"	हृदयाभिघातके उपद्रव	१२९८
अयोग व्यापचिकित्सा	१२८५	शिरमें चोट के उपद्रव	"
अतियोग व्यापल्लक्षण	"	अस्तिमें चोटके उपद्रव	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
वातोपसृष्ट हृच्चिकित्सा	१२९९	वक्त्रा का आकारादि वर्णन	१३०६
वातोपसृष्ट शिरकी चिकित्सा	"	उत्तर वस्ति में पथ्यादि वर्णन	"
वातोपसृष्टवस्तिमें चिकित्सा	१३००	स्त्री को उत्तर वस्ति	१३०७
मर्म प्रकर्णका उपसंहार	"	स्त्रियों की वस्तिका प्रमाण	"
अपतंत्रकके लक्षण	"	शंखकके सहेतु लक्षण	"
अपतानकके लक्षण	१३०१	अर्द्धावभेदक के सहेतु लक्षण	१३०८
तन्द्रारोगका हेतु	"	अर्द्धावभेदक की चिकित्सा	"
तन्द्राके लक्षण	"	सूर्यावर्त में उपाय	१३०९
तन्द्रामें चिकित्सा क्रम	१३०२	सूर्यावर्त के सहेतु लक्षण	"
वस्तिरोगों के भेद	"	अनन्तयात के लक्षण	"
मूत्रैकसाद के लक्षण	"	शिरःकम्प के लक्षण	"
मूत्रजटरकी सहेतु चिकित्सा	"	शिरोरोग में नस्य को प्रधानता	"
मूत्रकृच्छ्र के लक्षण	१३०३	नस्यकर्म के भेद	"
मूत्रोसंगके लक्षण	"	नावनादि के लक्षण	"
मूत्रसंक्षयके लक्षण	"	नस्य के कर्म	१३१०
मूत्रातीतके लक्षण	"	रेबन साध्यरोग	"
वाताग्नीलाके लक्षण	"	तर्पणसाध्यरोग	"
वातवस्तिके लक्षण	"	शमनसाध्यरोग	"
उष्णवस्तिके लक्षण	"	विरेचनद्रव्य	"
वातकुंडलिका के लक्षण	१३०४	तर्पण द्रव्य	"
मूत्रमण्डिके लक्षण	"	तर्पण की रीति	"
विडविघातके लक्षण	"	आध्मापन की विधि	१३११
वस्तिकुंडल के लक्षण	"	शिरोविरेचन के पश्चात्कर्म	"
कुंडली भूतवस्तिके लक्षण	१३०५	नस्य कर्मके अनुचितकाल	१३१२
उत्तरवस्तिका वर्णन	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
उत्तरवस्तिकी मात्राका प्रमाण	"	वस्ति सिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः	"
उत्तरवस्तिके देनेकी रीति	"	आस्थापनयोग्यव्यक्ति	१३१३
वस्तिकी गतिका वर्णन	१३०६	वस्तियों के गुण	१३१४
प्रत्यागमनका उपाय	"	दृढ़ वस्ति के अयोग्यरोगी	"

विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
संशोधन वास्तिके अयोग्य व्यक्ति	१३१४	भेद बकरी के लिये प्रयोग	१३२२
चातनाशक प्रयोग	१३१५	श्रोत्रियादि के रोगों रहनेका कारण	"
पित्तनाशक प्रयोग	"	अन्य सदारोगियोंका वर्णन	"
कफनाशक प्रयोग	"	निरुहण का पश्चात् कर्म	१३२३
पक्वाशय शोधन प्रयोग	१३१६	घालक और वृद्ध कोनिरुहण	"
शुक्रवर्द्धन प्रयोग	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
स्रावहाहिक प्रयोग	"	<b>उत्तरासिद्धिर्नामद्वादशोऽध्यायः</b>	
परिस्त्राव में प्रयोग	"	संशोधन के पीछे पेयादि विधि	१३२४
दाहनाशक प्रयोग	"	अग्नि संदीपनक्रम	"
परिकर्तिका में वास्ति	१३१७	प्रकृतिगत के लक्षण	"
प्रवाहिका नाशक प्रयोग	"	अप्रकृतिगतको वर्जितकर्म	१३२५
अतिभोगनाशक प्रयोग	"	वर्जोपचार सेवन के अवगुण	"
जीवशोणित में वास्ति	"	उच्चभाषण के उपद्रव	"
रक्तापित्त में प्रयोग	१३१८	रथक्षोभ के उपद्रव	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	अतिचक्रमणके उपद्रव	१३२६
अध्यायका उपसंहार	"	अत्यासनके उपद्रव	"
<b>फलमात्रासिद्धिर्नाम एकादशोऽध्यायः</b>		अर्जीण भोजन के उपद्रव	"
फलविषय में भिन्न २ मत	१३१९	अहित भोजन के उपद्रव	"
विषय विशेषसे फलोंको उत्कृष्टत्व	"	दिवास्वप्न के उपद्रव	"
मदनफल की उत्कृष्टता	१३२०	मैथुन के उपद्रव	"
सुवस्ति का प्रमाण	१३२१	उच्चभाषणजन्यरोगोंमें उपाय	१३२७
सुवस्ति की मात्राका प्रमाण	"	रथक्षोभजन्यरोगोंमें उपाय	"
निरुहका साधारण प्रयोग	"	अजीणाध्यशनजरोगोंमें उपाय	"
हार्धिको निरुहण प्रयोग	"	विषमभोमनादिजन्यरोगोंमें उपाय	"
ऊंटको निरुहण प्रयोग	"	दिवास्वप्नजरोगोंमें उपाय	"
गोंके लिये प्रयोग	"	मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय	१३२८
घोड़े के लिये प्रयोग	"	यापनवास्तिकी विधि	"
खरोष्ट्र प्रयोग	"	दूसरीयापनवास्ति	१३२९

तीसरी विधि	१३२९	चौबीसवीं विधि	१३३३
चौथी विधि	"	पच्चीसवीं विधि	१३३४
पांचवीं विधि	१३३०	छत्तीसवीं विधि	"
छटी विधि	"	सत्ताईसवीं विधि	"
सातवीं विधि	"	अट्ठाईसवीं विधि	"
आठवीं विधि	"	स्नेह प्रकर्ण	"
नवीं विधि	१३३१	उक्तवास्ति की विधि	१३३५
दसमी विधि	"	उक्तवास्ति के गुण	"
ग्यारहवीं विधि	"	बलादिस्नेह	"
बारहवीं विधि	"	सहचरादि स्नेह	१३३६
तेरहवीं विधि	"	वास्तिसेयनमेंवर्जित कर्म	१३३७
चौदहवीं विधि	१३३२	वास्तिवोंकी संख्या	१३३७
पन्द्रहवीं विधि	"	उक्तवास्ति में आस्थापन विधि	१३३८
सोलहवीं विधि	"	अतिसेवितयापनके उपद्रव	"
सत्रहवीं विधि	"	उक्तउपद्रवोंमें चिकित्सा	"
अठारहवीं विधि	"	अतिसेयनका निषेध	"
उन्नीसवीं विधि	१३३३	सिद्धिस्थानके लक्षण	"
बीसवीं विधि	"	इसग्रन्थका फल	"
इक्कीसवीं विधि	"	तंत्रयुक्तियोंका वर्णन	१३३९
बाईसवीं विधि	"	ग्रन्थकोशस्त्रसेसमानता	१३४०
तेईसवीं विधि	"	ग्रन्थका गौरव	१३४०

इति अनुक्रमणिका समाप्ता

## तिव्वअकवर ।

यद्यपि बहुत से छोटे २ यूनानी ग्रंथ अवतक छप चुके हैं परन्तु ऐसा बड़ा और प्रतिष्ठित ग्रन्थ अब तक नहीं छपा था इस के लिये बहुत से सज्जन मनुष्यों की इच्छा थी ॥ इस में रोगों के निदान अत्यन्त अनोखे ढंग पर विस्तारपूर्वक दिये गये हैं और उसके पास ही उस रोग की चिकित्सा भी दी गई है हमारे आयुर्वेद में जैसे चरक; सुश्रुत, वाग्भटादि ग्रन्थ बहुमान्य और प्रतिष्ठित हैं उसी तरह यूनानी यह ग्रन्थ भी उच्चश्रेणी में विराजमान है—यह बात कितनी ही बार देखी गई है कि जब आयुर्वेदीय वैद्य और बड़े २ डाक्टर किसी रोगमें आशाहीन होजाते हैं तब यूनानी हकीमों के छोटे २ सुस्वे तीग से अधिक काम देजाते हैं । भारतवर्ष में सहस्रों मनुष्यों की प्रकृति ऐसी बदल गई है कि यूनानी इलाज ही उनकी प्रकृति के अनुकूल पड़ता है । इन सब बातों को विचारकर हमने सोचा कि हमारी हिन्दी ऐसे अनुपम ग्रन्थसे सुशोभित क्यों न हो और उर्दू फारसी न पढ़े हुए हमारे भाई इस से क्यों वाञ्छित रहें, और सब अमीर गरीब इस ग्रन्थ से समान भाग ला भ लठावें इसी हेतु से हमने इस ग्रन्थ का उर्दू से भाषानुवाद करके छपा है यह ग्रंथ मुम्बई के स्वास्थ्य अक्षरों में चिकने बढिया कागज से छपा है । आशा है कि सब हकीम वैद्य छोटे बड़े अमीर गरीब शौकीन रोग इसकी एक २ प्रति अपने पास र-

खेंगे और तन्दुरुस्ती रखने के लिये अमि-  
ति लाभ लठावेंगे यह प्रायः १२५० पृष्ठ  
में समाप्त हुआ है की० ७) रु० ढाक।।)

## बूटीप्रचार ।

यह वैद्यकका छोटासा ग्रन्थ अपने ढंगका एकही है इसको स्वर्गधासी महात्मा महंत मुखरामदासजी ने जीवनभर अपने अनुभव किये हुए चुटुकुलों से भराहै बड़े से बड़े और छोटे से छोटे रोगों के बहुत ही सुगम उपाय लिखे हैं यह पुस्तक प्रत्येक ग्रहस्ती को सदैव अपने अपने घर में रखना उचित है इसके पास होने से साधारण रोगों में वैद्य और हकीमों के पास दौड़ने की आवश्यकता नहीं रहैगी, इस पुस्तक को विदेशमें भी साथ रखने से मनुष्य अपना और अपने साथियों का रोग दूर कर सकता है इन सब बातों के सिवाय धातुओं के जारण मारण की विधि जंगल की जड़ी बूटी द्वारा बहुतही सहज लिखी है तथा औषधि प्रस्तुत करने की प्रणाली भी विधिपूर्वक लिखी है । जिन जिन जड़ी बूटियों का नाम इस पुस्तक में आया है उन सबके ऐसे सुन्दर चित्र दिये हैं मानों अक्सही खींच दिया है. ये चित्र प्रायः २०२ से अधिक हैं पुस्तक के अंतमें नागेश्वर यंत्र वालुका यंत्र मृगांगयंत्र आदिके कितने ही अद्भुत और उपयोगी चित्र दिये हैं । इस तरह सब मिलाकर यह पुस्तक प्रायः २०० पृष्ठ में सम्पूर्ण हुई है मूल्य विलायती कपडे की जिल्द का १) रु० ढाक म० =)

स्मरणशक्ति, मेधा, आधेय्यता, सारगावस्था, प्रभा, वर्णन, स्वरकी स्पष्टता, देह और इन्द्रिय गण में उत्तम बल, वाक्शक्ति, प्रणति और कांति प्राप्त करता है ।

**रसायन की निरुक्ति ।**

लाभोपायोद्विगस्तानारसादीनारसायनम्  
अर्थ—रसादि उत्तम धातुओं के प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है इससे इसे रसायन कहते हैं ।

**वाजीकरणके लक्षण ।**

अपत्यसन्तानकरयत्सद्यःसमर्हणम् ।  
वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्तिपः  
भयत्यतिमियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते ।  
जीर्यतोऽप्यस्यंशुकफलवयेनरह्यते ॥  
मभूतशालःसालीवयेनचत्योयधामहान् ।  
भयत्यर्च्योबहुमतःप्रजानांमुबहुमजः ॥  
सन्तानमूलयेनेहमेत्यचानन्त्यमश्नुते ।  
यदाश्रियंवलं पुष्टिवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिस के सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है, जो तत्काटही आल्हाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री सगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है, जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यार होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है । जिस के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य वृद्धि होकर फलवान् होता है । जैसे वृद्ध देह बहुतसी शाखा प्रशखाओं से युक्त हो कर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतसी सन्तानों से युक्त होकर शोभित

होता है । जो सन्तान की मूल कारण है उसके सेवन करने से मनुष्य अनन्त यश, श्री, बल, पुष्टि प्राप्त करता है उमेही वाजीकरण कहते हैं ॥

स्वस्थस्योजस्करन्वेतद्वाटिविधं मोक्तव्यं पथम् ।  
यद्व्याधिनिर्घातकरं वक्ष्यते तच्चि-  
कित्सिते ॥ चिकित्सितार्थ एतावान्वि-  
काराणां यदापथम् । रसायनविधिश्चाग्रे  
वाजीकरणमेव च ॥

अर्थ—जो दो प्रकार की औषध कहा है एक स्वस्थके लिये ओजस्कर दूसरा रोगनाशक । जो रोगनाशक है ये इस चिकित्सा स्थान में कही जायगी, आगे रसायनविधि और वाजीकरण औषधका वर्णन किया जायगा ॥

**अभेपज का लक्षण**

अभेपजमिति ज्ञेयं विपरीतं यदापथात् ।  
तदसेव्यं निषेप्यन्तु मवक्ष्यामि यदापथम् ॥

अर्थ—जो इन औषधों से विपरीत होती है उसे अभेपज कहते हैं, यह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अब इस जगह सेव्य औषधि का वर्णन किया जायगा ।

**रसायन के भेद**

रसायनानां द्विविधं मयोगमृपयोविदुः ।  
कुटीमावेशिकं चैव वातातपिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियोंने रसायनके दो प्रकार के प्रयोग वर्णन किये हैं उन में से एक को कुटीमावेशिक और दूसरे को वातातपिक कहते हैं ॥

**कुटीमावेशिक की विधि ॥**

कुटीमावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते ।

नृपवैद्यद्विजातीनांसाधूनांपुण्यकर्मणां  
निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्त्योपकरणेपुरे ॥ द्वि  
शिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥  
विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भासूक्ष्मलोच-  
नाम् । घनभित्तिप्लुतसुखांसुस्पष्टांमनसः  
प्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यां  
स्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्ज  
वर्थापधद्विजाम् ॥

अर्थ—प्रथम कुटीप्रवेशिक की विधि  
वर्णन की जाती है । साधु तथा पुण्यकर्मा  
राजवैद्य और द्विजातियों के निवासस्थान  
में जहां किसी प्रकार का भय न हो और  
जो उत्तम भी हो और जहां सब प्रकार की  
सामग्रियों भी उपस्थित हो सकती हों, एक  
स्थान लेवै, इस स्थान के उत्तर वा पूर्वकी  
ओर एक अच्छी सी भूमि में एक कुटी  
बनवावै । कुटी खूब लम्बी चौड़ी और ऊं-  
ची होनी चाहिये, इस कुटी के बाहर तीन  
परकोटा होने चाहिये और इन परकोटाओं  
में बापुके आने जाने के लिये छोटे छोटे छि-  
द्र भी रखवै । कुटी की भीत मोटी होवेऔर  
इस में प्रत्येक ऋतुका सुख होवै अर्थात्  
बह कुटी ग्रीष्मऋतु में शीतल और शीत  
ऋतु में गरम रहे यह स्वच्छ मनोहर,  
कुत्सित शब्दों से रहित, स्त्री वर्जित, अभीष्ट  
सामग्रियों से युक्त हो और उस में वैद्य  
और पथ और द्विजों का सदा संग रहे ॥

अथोद्गमनेशुकैतिथिनसत्रपूजिते । मुहूर्त  
करणोपेतेप्रशस्तेकृतवापनः ॥ धृतिस्मृति  
पलंकृत्वावध्यानः समाहितः ॥ विधूय

मानसानन्दोपानमैत्रीभूतेषुचिन्तयन् ॥ दे  
वताः पूजयित्वाग्रेद्विजातींश्चप्रदक्षिणम् ।  
देवगोब्राह्मणानकृत्वाततस्तांमविशेत्कु-  
टीम् ॥ तस्यांसंशोधनैः शुद्धः सुखीजात  
बलः पुनः । रसायनप्रयुज्जीततत्पवक्ष्या-  
मिशोधनम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त विधि से स्थान तयार करा  
के सूर्य के उत्तरायण काल में शुक्लपक्षके  
शुभ तिथि, नक्षत्र मुहूर्त, करण में हजामत  
बनवाकर, धृति, स्मृति और बल धारण  
करके श्रद्धायुक्त और एकाम्रचित्त होकर  
मानसिक दोषों को दूर करे और सम्पूर्ण  
प्राणियों में मैत्रीभाव स्थापनकरे, तदनन्तर  
प्रथम देवताओं का पूजन और फिर गोद्वि-  
जादि का पूजन करके इनकी प्रदक्षिणा कर  
के उस स्थान में प्रवेश करे । प्रवेश करने  
के पीछे संशोधन योगों से देहको शुद्धकरे  
फिर सुखीहोनेपर बललाभ करने के निमित्त  
रसायन द्रव्यों का सेवन करे ।

अब प्रथम संशोधन विधिका वर्णन किया  
जाता है ॥

### संशोधन विधि

हरीतकीनांचूर्णानिसैन्धवामलकेगुडम् ।  
वचाविडंगरजनीपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥  
पिवेदुष्णाम्बुनाजन्तुः स्नेहस्वेदोपपादितः  
तेनशुद्धशरीरायकृतसंमार्जनायच ॥  
त्रिरात्रयावकंद्वयात्पश्चाद्वाहवापिसपिपा ।  
सप्ताहवापुराणस्पयावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥

अर्थ—हरड, सैधानमक, आंवला, गुड,  
बच, बायविडंग, हलदी, पौण्ड, मोंठ, इन

सबका पूर्ण गरमजल के साथ फाँके परन्तु इससे प्रहिले स्नेहन और स्वेदन कर्म कर लेवें । जब संशोधन से देह शुद्ध होजाय तब स्नानादि करके मलकी शुद्धि के लिये तीनरात्रि तक यवागू पान करे अथवा पाँच दिन तक घृतपान करे अथवा सात दिनतक पुराने चावलों को माढ़ लेवे ॥

शुद्धकोष्ठान्तुतज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् ।

वयम्भक्तिसात्म्यज्ञोयोगिकस्यस्यद्भवेत्

अर्थ—जब कौठा शुद्ध जान पड़े तब रसायन का प्रयोग करे । रोगी को आयु, प्रकृति और सात्म्यका विचार करके जिसके लिये जैसी रसायन हितकारी हो उस को वैसीही देवे ।

हरीतकी वर्णन ।

हरीतकीपञ्चरसामुष्णामलवर्णाशिवाम्  
दोषानुलोमिनीलध्वीविद्यादीपनपाचनीम्  
आयुष्यापीष्टीकीधन्यावयसःस्थापनीप-  
राम् । सर्वरोगप्रशमनीशुद्धीन्द्रियबलप्र-  
दाम् ॥ कुष्ठगुल्ममुदावर्तशोषपाण्ड्वामयं  
मदम् । अशोसिग्रहणीदोषपुराणविपम  
ज्वरम् ॥ हृद्रोगसशिरोरोगमतीसारमरो-  
चकम् । कासप्रमेहमानाहृष्टीहानमुदर-  
नयम् ॥ कफप्रसेकवैस्वर्यविवर्णकामलान्  
कुमीन् । श्वस्युन्तमकंछर्दिहैज्यमगाव  
सादनम् ॥ सोतोविबन्धानविविधानम-  
लेपहृदयोरसोः । स्मृतितुद्धिमोहञ्जये  
च्छीघ्रहरीतकी ॥

अर्थ—हरीतकी में लवणरस को छेड़कर पाँचरस है इस से इसे पंचरसामी कहते हैं

यह उष्ण लवणरस, रहित कल्याण करने वाली, दोषानुलोमिनी, हलकी और दीपन पाचनमी होती है । यह हरड़ आयु को हितकारी, पुष्टिकर्ता, धन्य, उत्तम, वयः स्थापन करने वाली, सर्व रोगनाशिनी, बुद्धि इन्द्रियगणऔर बलको बढ़ानेवाली होती है तथाकोड़, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पुरानाज्वर, विपमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतीसार अरुचि, खाँसी प्रमेह, आनाह, प्राँहा, नवीन उदररोग, कफप्रसेक, वैस्वर्य, विवर्णता, कामलारोग क्षमीरोग, शोथ, तमकस्वास, वमन, ह्रीवता, अङ्गोंकी शिथिलता, अनेक प्रकारके स्नातविवंध, हृदयप्रलेप, स्मरणशक्ति का नाश, बुद्धिभ्रम, इन सब को हरड़ शीघ्रही जीतलेती है ।

हरीतकी के अयोग्य व्यक्ति ।

अजीर्णिनोरुसभुजःस्त्रीमद्यविपकार्पिताः  
सेवरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णादिताक्षये ॥

अर्थ—अजीर्णरोगी, रुक्ताभोजी, स्त्रियों, मद्य, विपमक्षी, भुधा, तृष्णा, और उष्णतासे पीडित मनुष्यों को हरड़का सेवन करना उचित नहीं है ॥

आंवले के गुण ।

तानुगुणास्तानिकर्माणिविद्यादामलकी-  
प्वपि । यान्युक्तानिहरितकयावीर्यस्यतु  
विपर्ययः

अर्थ—जो जो गुण और कर्म हरड़ के वर्णन किये गये हैं वेही गुण और कर्म आंवले में भी होतेहैं केवल वीर्यमें अन्तर होता है अर्थात् हरड़का वीर्य उष्ण है और आंवले का शीतल ।



अतःश्वामृतकल्पानिविद्यात्कर्मभिरीदृशैः  
हरीतकीनांशस्यानिभिपगामलकानिच।  
अर्थ—ऊपर कहेहुये गुण और कर्मों के  
कारण वैद्य हरड़ और आंवलेको अमृत कल्प  
कहते हैं ।

ओषधीनांपराभूमिर्हिवान्शैलसत्तमः  
तस्मात्फलानितज्जानिग्राहेयत्कालजानि  
तु ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेफालेयथा-  
विधि । आदित्यपवनञ्जायासलिलप्री-  
णितानिच ॥ यान्यजग्धान्यपूतीनिनि-  
व्रणान्यगदानितु । तेषाम्प्रयोगंवक्ष्यामि-  
फलानां कर्मचोत्तमम् ॥

अर्थ—ओषधियों के उत्पन्न होने का  
सर्वोत्तम स्थान हिमालयपर्वत है, इसलिये  
जिससमय जिस ओषधके लानेकी इच्छा हो  
उसे वही से लावै । समय समय पर विधि  
पूर्वक ऐसी ओषधों को लावे जो रस और  
वीर्य से परिपूर्ण हों, सूर्य की धूप वायु छाया  
और जल के संसर्ग से अच्छी तरह फली  
हों, जो अजग्ध हों अर्थात् जिनको कोई  
पशु न चरगया हो (अजग्धकी जगह अदग्ध  
शब्द भी है = बिना जलीहुई), बिनागली  
खोलकों तथा रोगों से रहित हों । अब हम  
उन ओषधों के उत्तम २ प्रयोग फल और  
कर्मांश वर्णन करेंगे ।

ब्राह्म रसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशपलोन्मि-  
तान्। हरीतकीसहस्रश्चत्रिगुणामलकंनवम्  
विदारिगन्धाष्टहतींशुभिपणीनिदिग्धिकाम्  
विद्यादिदारिगन्धाद्यंश्वदंशपञ्चमद्रणम्।

विल्वाग्रिमन्थश्वोनाककाश्मर्यमधपाट-  
लाम् । पुनर्नवासर्पपण्यौवलांमैरण्डमेवच  
जीवकर्पभकौमेदांजीवन्तींसशतावरीम् ।  
शरेश्वदर्भकासानांशालीनांमूलमेवच ॥  
इत्येषांपञ्चमूलानांपञ्चानामुपकल्पयेत्  
भागान्यथोक्तास्तत्सर्वसाध्यंदशगुणेऽ-  
म्भसि ॥ दशभागवशेषान्तुपूतन्तद्ग्राहये-  
द्रसम् । हरीतकीश्चताः सर्वाः सर्त्राण्याम-  
लकानिच। तानिसर्वाण्यनस्थीनिफला-  
न्यापोध्यकूर्जनैः। विनीयतस्मिन्निर्घृहेचू-  
र्णानीमानिदापयेत् ॥ मण्डूकपर्ण्याः पि-  
प्यल्याः शैलपुष्पाः प्लवस्यच । श्रुस्तानां  
सविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा ॥ मधुक-  
स्यहरिद्रायावचायाः कनकस्यच । भागां  
श्रुत्पुलानकुत्वासूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ।  
सितोपलासहस्रन्तुचूर्णितन्तुलयाधिकम्  
तैलस्यद्वाढकंतत्रदद्यात्रीणिचसर्पिषः ॥  
साध्यमोदुम्बरेपात्रेतत्सर्वमृदुनाग्निना ।  
ज्ञात्वालेह्यमदग्धश्चक्षीतक्षौद्रेणसंसृजेत्  
क्षौद्रप्रमाणेस्नेहार्द्धतत्सर्वघृतभाजने ॥  
तिष्ठेतसमर्च्छितंतत्स्यमात्रांकालेप्रयोजयेत्  
मानोपरुन्ध्याद्वाहारमेवंमात्राजरांमति ॥  
पट्टिकः पयसाचात्रजीर्णभोजनमिष्येत ।  
वैखानसात्रालखिल्यास्तथाचानयेत्पोध-  
नाः ॥ रसायनमिदं प्राश्यवभूवुरमिता  
युयः । सुक्त्वाजीर्णवयश्चाग्न्यमवापुस्त  
रुणंवयः ॥ वीततन्द्रालमाश्वासानिरात-  
काः समाहिताः । मेधास्मृतिरलोपेता  
धिररात्रंतपोधनाः ॥ ब्राह्मंतपोब्राह्मचर्यं  
चेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः । रसायनमिदंब्राह्म

रम्भःपरमायुरवाप्नुयादिति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, पांचोंपच मूलका काय, पीपल, शहत, मुलहठी, का-कोली, क्षीरकाकोली केंच, जीवक, ऋषभक, और क्षीरविदारी इन सबका कल्क और दूध, दूध से आठगुना विदारी कंदका रस मिलाकर इन सब को सर्पिष्कुम्भ अर्थात् बत्तीस सेर घृत में पकावै। इस घृतकी मात्रा का प्रयोग अग्नि बलके समान करे। औषध के पचने पर दूध और घी के साथ साठी चावलों को खाय ऊपर से उष्णोदक पान करे। इस घृत के सेवन करने से बुढ़ापा रोग, पाप, अभिचार और भय दूर होकर अतुल शारीरिक और इन्द्रिय बलकी प्राप्ति होगी सम्पूर्ण प्रकार के कामोंमें हतोत्साह न होगा और आयु भी दीर्घ होगी।

हरीतक्यादिरसायनका दूसराप्रयोग हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिराव-चाविडङ्गामृतबलीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमबल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्कराभ्यामपिचसन्नीयामलकस्वरसशतपल पीतमामलकचूर्णमयःचूर्णचतुर्भागसम्प-युक्तंपाणितलमात्रम्मातःमातःप्राश्यययो-क्तेनविधिनासायंयूपेणपयसावासरिपिंक्तं शालिपष्टिकमश्नीयात्। त्रिवर्षमयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति श्रुतमवतिष्ठते स-र्वा मयाः प्रशाम्यन्ति विषमविषं भवति गात्रे गात्रमश्मयत् स्थिरं भवति अदृश्यो भूतानां भवतीति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, हल्दी,

शालपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहठी, पीपल, सफेद खैर इनके साथ दूध और घीको सिद्ध करे। जब यह ठंडा हो जाय तब इसमें घी और खंड मिलादे। तदनन्तर इसमें स्वरसपीत ( आंवलेके रसमें भावना दिये हुये ) आंवले का सौपल चूर्ण पच्चीस पल लोहचूर्ण मिलावै। पूर्वोक्त विधिके अनुसार हथेली भर अर्थात् दो तोले प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करे। सायंकालके समय मांस-यूप और दूध के साथ घृत मिलाहुआ सा-ठेचावलों का भात खाय। इस रसायनका तीनवर्ष पर्यन्त सेवन करने से आयु सौ वर्षकी होजाती है और बुढ़ापा पास नहीं आता है। सुनीहु वातमहुत दिवसतक विस्मृत नहीं होती है। सम्पूर्ण रोग शांत होजाते हैं विषमय होजाता है। देहमें पथरके समान दृढता होजाती है, प्राणियोंमें अदृश्य हो जाता है अर्थात् ऐसा दृष्ट-पुष्ट होजाता है कि आदमियों की उसपर निगाह नहीं टहरती है।

प्रथम पाद का उपसंहार

यथामराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा ॥  
तथा भवन्महर्षिणां रसायनविधिः पुरा ॥  
न जरा न च दौर्बल्यं न नातुर्यं निधनं न च  
जंशुर्वर्षसहस्राणिरसायनपराः पुरा ॥  
न केवलं दीर्घमिहायुरश्नते, रसायनं यो वि-  
धिवन्निपेयते । गतिं स देवापि निपेयितां शु-  
भां प्रपद्यते शर्मतयोतिचाक्षयमिति ॥

अर्थ—जैसे देवताओं को अमृत, सपों को सुधा, ये जैसेही प्राचीन समयमें ऋषियों

के लिये रसायन विधि थी । पूर्वकाल में रसायन सेवन करने वालों के पास सहस्र वर्ष पर्यन्त बुढ़ापा, दुर्बलता, रोग और मृत्यु नहीं आते थे ।

जो मनुष्य विधिपूर्वक रसायन सेवन करता है उसको केवल दीर्घायुही नहीं मिलती है, किन्तु उसे देव और ऋषि गण सेवित शुभगति और अक्षयकल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्पड्योगाःपरिकीर्तिताः । रसायनानां सिद्धानामायुर्वैरजुर्वर्तते ॥

अर्थ—अभयामलकीयाध्याय के इस प्रथम पाद में छः रसायन प्रयोगों का वर्णन किया गया है, इन सिद्ध रसायनों के सेवन से दीर्घायु मिलती है ।

चिकित्सितेऽभयामलकीयोरसायनपादः प्रथमः

द्वितीयः पादः ।

अथातः प्राणकामीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्राणकामीयनामक रसायन पाद की व्याख्या करेंगे ।

रसायन की प्रशंसा ।

प्राणकामाः शुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदिति सुतहितकरमचिन्त्या उत्तमभावमायुष्यमारोग्यकरं वयसः स्थापनं निद्रातन्द्राश्रमकलमालस्यदीर्घव्यापहमनिलकफपित्तसाम्यकरं, स्पर्धकरमव-

द्धमांसहरं, अन्तरधिसन्धुक्षणं, प्रभावणोत्तमस्वरोत्तमकरं, रसायनविधानमनेन च्यवनादयो महर्षयः पुनर्युवत्वमाप्नुः । नारीणां चेष्टतमावभूतुः । स्थिरसमस्तविभक्तमांसाः सुसंहतस्थिरशरीराः सुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाः सर्वताम्रतिहतपराक्रमाः केशसहाश्वा ।

अर्थ—हे प्राणों को चाहनेवाले इस अमृतरूप रसायन कथा का श्रवण करो । यह अदितिमुत देवताओं को भी हितकारी होती है, इसका प्रभाव अचिन्त्य और अदम्य है, यह आयुको बढ़ानेवाली, आरोग्यता करनेवाली, वयःस्थापनकर्त्ता, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्लम, आलस्य और दुर्बलता को दूर करनेवाली होती है, वात पित्त कफ इन तीनों दोषों की समानता करती है, शरीर को दृढ़ करती है, मांस को ढीलापन को दूर करती है, जठराग्निको बढ़ाती है प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्कृष्ट करता है, रसादि धातुओंकी उत्कर्षता करती है । इस रसायन के सेवन से ध्यवन से आदि लेकर बहुत से ऋषि बुद्धिसे जवान होगये हैं । नारियों में अधिक हर्षयुक्त हुए हैं । उन के शरीर का मांस दृढ़, समान और सुडौल होगया है । उन के शरीर सुसंहत और दृढ़ होगये हैं, उन के बल, वर्ण और इन्द्रियगण प्रकुण्डित होगये हैं । किसीजगह उन के पराक्रम का परामव नहीं हुआ है और वे परिश्रम के कामों को सहतेवाले भी होगये हैं ।

मात्रांपौर्वाहिकःप्रयोगः । सात्त्विकपेक्षः  
चाहारविधिनापराहिकस्तस्यप्रयोगाद्-  
र्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वैण ॥

अर्थ—एक सहस्र आंवले और इतनीही पीपल लेकर ढाक के क्षारजलमें ऐसे भिजो-  
द्वये कि वे सब डूब जाय, जब वे खार के  
सब जलको पीले तब उन्हें छाया में सुखा  
लेंवे, फिर गुठलियां निकालकर पीस ले, इस  
चूर्ण में चौगुना घी और शहत मिलावे और  
चौथाई खांड डालदे इन सब को सानकर  
घी को चिकनी हांडी में भरकर छः महीने  
तक पृथ्वी में गाढ़देवे । तदुपरान्त इसे  
निकालकर अम्रितल के अनुसार प्रतिदिन  
प्रातःकाल इसका सेवन करे । अपरान्त  
में सात्त्व्य भोजन करे । इस रसायन के  
सेवन करने से वृद्धावस्था से रहित सौवर्ष  
की आयु होजाती है तथा इसके अन्यगुण  
पूर्वोक्त घृत के समान हैं

आंवले का चूर्ण ।

आमलकचूर्णादकमेकविंशतिरात्रमामल  
कसहस्रंस्वरसपरिपीतंमधुघृतादकाभ्यां  
द्वाभ्यामिक्कीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्करा  
चूर्णचतुर्भागसम्भयुक्तंघृतभाजनस्थंम्राष्ट्र-  
पिभस्मराशानिदध्यात्तद्वर्पान्तेसात्त्व्यापे  
क्षिप्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्दर्पशतमजरमायु  
स्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वैण ।

अर्थ—आंवले के एक आढ़क चूर्ण को  
सहस्र आंवले के रस में इक्कीस दिन तक  
भिजो रखे । फिर इस में एक २ आढ़क  
शहत और घृत मिलाकर सानले फिर इस

में आठवां भाग पीपल और चौथाई खांड  
डालकर सबको मिलावे और घी की हांडी  
में भरकर वर्षाकृत में राख के ढेर में दाव  
देवे वर्षा व्यतीत होने पर इसका मात्रा के  
अनुसार सेवन करे, सात्त्व्य भोजन करे ।  
इस चूर्ण के सेवन करने से वृद्धावस्था रहित  
सौ वर्षकी आयु होजाती है, इस के गुण भी  
पूर्वोक्त रसायन के समान होते हैं ।

विडङ्गावलेह ।

विडंगतण्डुलचूर्णानामाढकम्पिप्पलीत-  
डुलानामध्यर्द्धाढकंसितोपलायाः सर्पि-  
स्तैलमध्वर्द्धाढकै पङ्क्तिभिरकीकृतघृतंभाज  
नस्थंम्राष्ट्रपिभस्मराशानिदध्यात्तद्वर्पान्ते  
यावदक्षीः ॥

अर्थ—वायाविडंग की मिगी का चूर्ण  
एक आढ़क, पीपलकी मिगी का चूर्ण एक  
आढ़क, भित्री आधाआढ़क, घृत आधा  
आढ़क, तैल आधा आढ़क, और शहत  
आधा आधाआढ़क, इन छःओंको मिलाकर  
घी की हांडी में भरकर प्राष्ट्रघातु में राख  
के ढेर में गाढ़देवे । इसके गुण भी पूर्वोक्त  
रसायन के समान हैं ।

आंवलोंका दूसरा अवलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमार्द्रपला  
शद्रोण्यांसपिधानायांचाप्यमनुद्वमन्त्यामा-  
रण्यगोमयाग्निभिरुपस्येदयेत् । तानिमु-  
स्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोध्याद-  
केनपिप्पलीचूर्णानामाढकेनचविडंगतण्डु-  
लचूर्णानामध्यर्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानि  
द्वाभ्यांद्वाभ्यांआढकाभ्यांतैलस्यमधुनःस

पिपश्वसंयोज्यशुचौदद्वृतभावितेकुम्भेस्था  
पयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्धप्रयोगः तस्यप्र  
योगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं  
पूर्वेण ॥

अर्थ—सुभूमिजातानामित्यादि पूर्वोक्तगुण-  
सम्पन्न एक सहस्र आंवले लेकर पीले पलास  
की द्रोणी ( हांडी सदूक ) में बन्द कर के  
ऐसी तरह से ढकदेवै कि उस मेंसे भाफ न  
निकल सके, फिर उस द्रोणी के चारों ओर  
आरने ऊपलों की आग ऐसी रीति से  
जलावे कि द्रोणी को भवका तौ लगे पर  
जले नहीं । इस आगकी तेजी से आंवले  
सँज जायंगे । उनको निकालकर ठंडा कर  
के गुठली निकाल डाले और उन्हें पीस लेवै  
फिर इस में एक आड़क पीपलका चूर्ण, एक  
आड़क वायविडंग का चूर्ण, डेढ़ आड़क  
शर्करा, तथा दो दो आड़क तेल, शहत और  
धी इन सबको मिलाकर एक स्वच्छ दृढ वृत्त  
की हांडी में भरकर इक्कीस दिन तक धरा  
रहने दे फिर प्रयोग करे । इस औषध के  
प्रयोग करने से सौ वर्ष की आयु होती है  
शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

नागवला रसायन ।

पंचनिकुशास्तीर्णेऽग्निग्धकृष्णमधुरमृत्ति-  
कंसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यपगतविषन्वाप-  
दपवनसलिलाग्निदोषैर्कृष्णवल्मीकश्मशा-  
नचैत्योपररसवर्जितेऽश्लेषयर्तुमुखपवनस-  
लिलादित्यसंवितातामनिन्नेऽनुपहता  
मनभ्यारूढामवालामजीर्णा अधिगतवी-  
रामजीर्णपुराणपर्णामराज्ञातान्यपर्णान्त

पासितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्च-  
नःस्वास्तिवाचयित्वाद्रिजातान्सुमुहूर्तेना  
गवलांमूलतउद्धरेत् । तेषामुपक्षालिताना  
न्त्वक्पिण्डमाद्रमात्रंअक्षमात्रंवारदृष्ट्वा-  
पिष्टमालोढ्यपयसामातः प्रयोजयेत्तूर्णान्  
कृतानिवापिवत्पर्यसामधुसर्पिर्भ्यांवासं  
योज्यमभयेत् । जीर्णचक्षीरसर्पिर्भ्यांशा-  
लिपाष्टिकमश्रीयात् । संवत्सरप्रयोगाद-  
स्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वं  
नेतिनागवलारसायनम् ॥

अर्थ—माघ वा फाल्गुन के महीने में  
स्नानादि से पवित्र होकर देवताओं का  
पूजन करके ब्राह्मणों से स्वास्ति वाचन करा  
के शुभ मुहूर्त में ऐसी नागवला को जड़से  
उखाड़ लावे जो धन्वन देश के ऐसे स्थान  
में उत्पन्न हुई हो जहां बहुतसी कुशा उत्पन्न  
हो, जहां की मिट्टी चिकनी काली, मधुर वा  
पीली हो जहां सेह जानवर न रहता हो,  
जहां विपदोप वातदोष जल दोष वा अग्निका  
उपद्रव न हो जहां खेती, सांपकी बांवी,  
श्मशान, चैत्य (वालिभूमि) और ऊपर भूमि  
न हो, जहां प्रत्येक ऋतु में सुखदायक हवा  
जल और धूप आती जाती हो जो निम्न स्था-  
नमें उत्पन्न हुई हो जो अनुपहत हो अर्थात्  
किसी कोड़े ने न खाई हो, जो अनप्यरूढा हो  
अर्थात् जिस पर और कोई पौदा आदि न  
उगा हो, जो न नवीन और न पुराना हो  
हो, जो पूर्णवर्ष हो जिसके पत्ते पुराने वा

गलेद्वय न हों, जिसमें अन्यपक्षे न आये हों इस नागबलाकी जड़को खूब धोकर पीसड़ा-ले इसमें दो या चार तोले दूध मिलाकर प्रातःकाल पान कर अथवा फंकी लेकर ऊपरसे घी और शहत मिलाहुआ दूध पानकरे। इस औषधके पत्रने पर दूध और घी के साथ शालीचांवल या साठी चांवल का भातखाय एक घरसतक इसका सेवन करने से सौ वर्षकी आयु होजाती है, इसके शेषगुण पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं। यह नागबलारसायन है।

बलातिबलाचन्दनायुखधपतिनिशखदिर  
शिशुपासनस्वरसाः पुनर्नवान्ताश्चापधयो  
दशयेवयःस्थापनव्याख्यातास्तेपांस्वर-  
सानागबलायत्स्वरसानामलाभेत्स्वयंस्व-  
रसविधिः चूर्णानामाढकमाढकमुदकस्या  
होरावस्थितं मृदितपूर्तस्वरसवत्प्रयोज्यम्

अर्थ—बला अतिबला, चन्दन, अगर, धौ, तैनिश, खदिर शोशम, असन, तथा पुनर्नवान्त ये दस औषधें वयः स्थापन गणमें वर्णन की गई हैं, इन सबका रस नागबलाके सदृश पान करनेसे नागबला के समान गुण कारक होता है। जो स्वरस न निकलसके तो एक आढक चूर्णलेकर चतुर्गुण जलमें एक रात दिन भिजोदेवे पीछे उन को हाथमें मलकर छान इनका स्वरस के सदृश प्रयोग करे

भट्टातकी क्षीररसायन

भट्टातकान्यनुपहतान्यनामयान्यापूर्णर-  
सप्रमाणवीर्याणिपक्वजाम्बवप्रकाशानि  
भुचौभुकेयामासेसंगृह्यवपत्वेमापपत्वे

वानिधापयेत् । तानिचतुर्मासस्थितानि  
सहसिसहस्येवामासेप्रयोक्तमारभेत ॥  
शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरः पूर्वैन्दुश्रभ  
ह्लातकान्यापोध्याष्टगुणेनाम्भसासाध-  
येत् । तेषांरसमष्टभागावशिष्टपूतसपय-  
स्कम्पिवेत्सर्पिपान्तर्मुखमभ्यज्यतान्ये  
कैकभट्टातकोत्कर्षापकर्षेणदशभट्टा-  
तकान्यात्रिंशतःप्रयोज्यानि ॥ नातः  
परमुत्कर्षःप्रयोगविधाननसहस्रपरोभ-  
ल्लातकप्रयोगः । जीर्णेवसर्पिपाप-  
यसाशालिपट्टिकाशनमुपचारःप्रयोगान्ते  
चद्विस्तावत्पयसैवोपचारःतत्प्रयोगाद्  
र्षशतमजरंवयस्तिप्रतीतिसमानपूर्वेणोति  
भट्टातकीक्षीरम् ॥

अर्थ—अनुपहत, रोग रहित, पूर्णप्रमाण पूर्णवीर्य, पकीहुई जामनके सदृश कृष्णवर्ण भिलाये आपाढ मासके शुक्लपक्षमें छाकर जाँके ढेर या उडद के ढेर में गाढ़देवे और चार महीने पीछे निकालकर अगहन वा पौष के महीनेमें इनका प्रयोग करना प्रारम्भ करे। भिलाये सेवन करनेसे पहिले शीतल, स्निग्ध और मधुर, द्रव्यों से शरीर का संशोधन करे। प्रथमही दस भिलायों को पीसकर अठगुने जल में भिद करे जब जल जलते २ आठवें भाग रह जाय तब उसे छानकर दूधके साथ पान करे। भिलायों के सेवन करने से पहिले मुख के भीतर घी चुपड़ लेवे। इन दस भिलायों को एक २ के बढ़ानेसे तीस तक सेवन करे। और

फिर एक २ घटाकर दसतक आजाय । यह एक सहस्र भिलयेका सर्वोत्कृष्ट प्रयोग इस तरह है कि प्रथम एक भिलायेसे एक २ को शब्दद्वारा दस पर्यन्त सेवन करे फिर एक एक घटाकर एक तक सेवन करे इस तरह सब मिलकर १०० भिलाये हुए, जब ये पच जाय और किसी प्रकारका उपद्रव न करे तब एकसे लेकर तीस तक बढ़ाता जाय, ये सब चारसौ पेंसठ हुए और फिर एक एक घटाने लगे अर्थात् २९ से लेकर एक तक ले आवै ये सब चार सौ पैंतीस हुए इस तरह  $९९ + ४९ + ४६९ \times ४३९$  सब मिलकर पूरे एक सहस्र हुए । जब भिलाया पचजाया करे तब दूध और भातका सेवन करे, इसी तरह सहस्र भिलावेके प्रयोगके पीछे सायंकाल और प्रातःकाल दूध भातही का सेवन करता रहै । इस प्रयोगसे सौ वर्ष पर्यन्त बुढापा पास नहीं आता है, इस के दोष गुण पूर्वोक्त रसायनों के समान हैं, यह भल्लातकी क्षीर का प्रयोग है ।

भल्लातकमधु ।

भल्लातकानाञ्जर्जरकृतानांपिष्टस्वेदनं  
पूरयित्वाभूमावाकण्ठन्निखातस्यस्नेहभा  
वितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योदुपेना  
पिधायकृष्णमृत्तिकावलिप्तगोमयाग्निभि  
रुपस्वेदयेत्तेपायःस्वरसःकुम्भंप्रपद्येततम  
एभागमधुसम्प्रयुक्तं द्विगुणवृतमद्यात् । त  
त्प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीतिसमा  
नंपर्वेण ॥

अर्थ—भिल्लायोंको शुद्ध करकेकूट डालै

फिर एक चिकनी हांडीमें भरै जिसके तले मे तिन चार छोटे छोटे छिद्र हों और उस के ऊपर एक सरवा ढक देवै इस हांडी का मुख काली चिकनी मिट्टीसे बन्द कर दे, इस हांडी के नाँचे एक और चिकनी हांडी लगाकर नीचेकी हांडीके मुख और ऊपरकी हांडी के पेंदे को भी चिकनी मिट्टीसे बन्द करदे इन हांडियों को कंठ पर्यन्त पृथ्वीमें गाढकर उपलों की आग चारों ओर लगा दे जब ऊपर की हांडीमेंसे रस टपक टपक कर नीचे की हांडीमें आजाय तब उसे निकाल ले । इस रसका आठवां भाग शहत और दुगुना घृत डालकर सेवन करे । इस भल्लातकमधु के सेवन करनेसे पूर्ववत् सौ वर्ष पर्यन्त बुढापा पास नहीं आता है ॥

भल्लातक तैल ॥

भल्लातकतैलपात्रं सपयस्कं मधुकेन कलकं  
नाक्षमात्रेण शतपाकं कुर्व्यात् समानं पूर्व्वेण ॥

अर्थ—भिलाये का तेल एक आदक लेकर दूध और मुलहठी के साथ साँवार पाक करके अक्षमात्र प्रतिदिन सेवन करे तो पूर्वोक्त रसायनों के समान गुणप्रद होवे

भिलाये के अन्य प्रयोग ।

भल्लातकक्षीरं, भल्लातकस्रांद्रं, भल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकं, भल्लातकयूपोभ  
ल्लातकसर्पिर्भल्लातकपल्लवं, भल्लातकसक्तवोभल्लातकलवणम्भल्लातकनर्पण  
मिति भल्लातकविधानमुक्तं भवतीति ॥

अर्थ—भल्लातकक्षीर, भल्लातकमधु, भल्लातकतैल और इसी तरह गुडभल्लातक, भल्लातकयूप, भल्लातकसर्पि, भल्लातकपल्ल, भल्लातक

तकसक्तु, भल्लातकलवण, और भल्लातक  
तर्पण येदस प्रकार की रसायन होती हैं ॥

द्वितीय पादका उपसंहार ।

भवतिचात्र । भल्लातकानितीक्ष्णानि  
पाकीन्यप्रिसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पा  
निप्रयुक्तानियथाविधि ॥ एतेदशविधा  
स्त्वेषांप्रयोगाःपरिकीर्तिताः । रोगप्रकृति  
सात्स्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रयोजयेत् ॥ क-  
फजोनसरोगोऽस्तिनविवन्धोस्तिकश्चन।  
यन्नभल्लातकह्न्यातुशीघ्रेमेधाश्रिवर्धनम्  
प्राणकामाःपुरार्जाणाश्च्यवनान्धामहर्षयः  
रसायनैः शिबरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥

ज्ञानन्तपोब्रह्मचर्यमध्यात्मध्यानमेवचादी-  
र्घायुषोयथाकामंसंभृत्यत्रिदिवंगताः। तस्मा  
दायुःप्रकर्षार्थमप्राणकामैःसुत्वार्थिभिः। र-  
सायनत्रिभिःसव्योषिभिवत्सुसमाहितैः॥

अर्थ—भिलाये अग्नि के समान तक्ष्ण  
और पाचक होते हैं यदि यथारीति से  
इनका प्रयोग किया जाय तो ये अमृत के  
समान गुणदायक हैं ॥ भिलाये के ये दस  
प्रयोग वर्णन किये गये हैं । रोग प्रकृति  
और सात्स्य के अनुसार इनका प्रयोग  
करे । कोई ऐसा कफज और विवन्ध रोग  
नहीं है जो भिलाये से दूर न होता हो,  
प्राचीनकाल में जर्मे की इच्छा करने वाले  
वृद्ध प्यवननादिक महर्षियों ने इन कल्याण-  
कारक रसायनों का सेवन किया था और  
दायित्व हीगये थे । इन महर्षियों ने अमृत  
ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान, ध्यान और  
दीर्घायु प्राप्त करके अन्तमे स्वर्गलाभ किया

था- अतएव जो कोई प्राणकामी और सुखार्थी  
अपनी आयुको बढ़ाना चाहे उसे उचितहै कि  
भ्यानपूर्वक विधिवत् रसायनों का सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितपिणा  
निर्दिष्टाः प्राणकामीयेसप्तदशमहर्षिणोति

अर्थ—प्राणियों में हित रखनेवाले भग-  
वान् पुनर्वसु ने रसायनों के ये सत्रह प्रयोग  
इस प्राणकामीयाध्याय में वर्णन किये हैं ।  
प्राणकामीयोनाम द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—=+)\* X \*(+==—

तृतीयः पादः

अथातःकरप्रचित्तीयंरसायनपादंव्या-  
ख्यास्यामइतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम करप्रचितिय नामक तृतीय  
पादकी व्याख्या करते हैं ॥

आमलकायसरसायन ॥

करप्रचितानांयथोक्तयुगानामामलकानां  
मुदूतास्थानांशुष्कचूर्णितानांपुनःमाघेफा-  
ल्युनेवामासोत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपी-  
तानांपुनःशुष्कचूर्णोक्तानामाढकगेकंप्रा-  
श्येत् ॥ अथजीवनीयानांबृंहणीयानांस्त-  
न्यजननानांशुक्रवर्दनानांवयःस्थापनानांप-  
हिविरेचनशताश्रितोयोक्तानामौषधानां  
चन्दनागुरुधवातिनिशखदिराशिशपासन  
साराणाञ्जाणुशीश्छन्तानांक्षिसानानां  
पाविभोतकपिप्लीवचाचव्याचित्रकवि-



म्भसासाधयेत् । तस्मिन्नाढकावशेषेरते  
मुपूतेतान्यामलकचूर्णानिदत्वागोमपात्रि  
भिर्विशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत्  
यावदुपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्याय  
सीधुपात्रेष्व्वास्तीर्यशोषयेत् । मुशुष्कं कृ-  
ष्णाजिनस्योपरिद्वपदिश्लक्ष्णपिट्टमयः  
स्थाल्यान्निधापयेत्सम्यक् । तच्चूर्णमयी  
चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामाग्नि-  
बलमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥

अर्थ—पूर्वोक्तगुण सम्पन्न आंवलों को  
माघ या फागुनके महीने में हाथसे तोड़कर  
छाँटे और उनकी गुठली निकालकर छोटे २  
टुकड़े करले फिर आंवलों के रस की इक्की-  
स भावना देकर सुखाकर फिर चूर्ण करके  
एक आढक तयार कर लेवै । पीछेपद्वि-  
रेचनशताश्रितीय अध्याय में कहे हुए  
जीवनीय, वृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन  
और वयःस्थापनगणोक्त औषधों को ले-  
कर छोटे २ टुकड़े करके एक पात्रमें  
रख ले और उसी में चन्दन, अगर, धौ,  
सैर, शीशम और असन इनका सार लेवै  
तथा हरड़, बहेड़ा, पीपल, बच, चव्य, चीता  
वायविडंग इन सब औषधियों को तोल में  
एक आढक लेवै और दसगुने जलमें चढ़ा  
कर सिद्ध करलेवै जब एक आढक रस  
शेष रहजाय तबउसे छानकर पूर्वोक्त आं-  
वलेका चूर्ण डालकर ऊपले, बांसकी लकड़ी  
या सरकंडे की आग से धीरे धीरे पकावै,  
जब रस न रहै और जलने भी न पावै इसे  
अग्नि पर से उतार कर एक लोह के पात्र में

फैलाकर सुखा लेवै । फिर काले मृग के  
चर्म पर एक शिला बिछाकर इसे चारीक  
पीसकर एक लोहेके पात्रमें भरकर रख  
देवै । इस चूर्णमें अष्टमांश लोह चूर्णमिला-  
कर धौ और शहत के साथ अग्निबल  
के अनुसार प्रतिदिन सेवन करै ।

अमलकायसरसायनकेगुण ।

एतद्रसायनपूर्ववसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः ।  
जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्ये चतद्विधाः ॥ प्रयु-  
ज्यप्रयतामुक्ताः श्रमव्याधिजराप्रयाताया  
वदिच्छन्तपस्तेषु तत्प्रभावान्महाबलाः ॥  
तपसाब्रह्मचर्येण ध्यानैर्न प्रशमेन च । रसा-  
यनविधानेन कालयुक्तेन चायुषा ॥ स्थि-  
तामहर्षयः पूर्वनिहिक्लिष्टाश्चिद्रसायनम् । ग्राम्या  
णामन्यकार्याणां सिद्धिश्च प्रयतात्मनाम् ॥  
इदं रसायनञ्चक्रे ब्रह्मावर्षसहस्रिकम् ।  
जराव्याधिप्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ॥

अर्थ—बहुत पुराने समय में इसरसायन  
को बशिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि,  
भरद्वाज, भृगु तथा अन्यान्य वैसेही बहुत  
से ऋषियों ने नियमित रीति से सेवन  
किया था, इस के सेवन करने से ये, श्रम  
व्याधि, जरा और अन्य रोगों से मुक्त  
होकर महाबली होगये थे और इसके प्रभाव  
से स्वेच्छापूर्वक तप करते रहे । तप, ब्रह्म-  
चर्य, ध्यान, शान्ति और रसायन प्रयोगों के  
द्वारा जो आयुर्की वृद्धि होती है उसपर कुछ  
प्रमुख नहीं होता है पहिले महर्षियों ने कोई  
रसायन सेवन नहीं कीथी । ग्राम्य, धर्म,  
अन्यकार्य तथा अत्रितेन्द्रियतामें भी अतुल्य

होने से उनकी सिद्धि नहीं होसकती है। यह सहस्रवार्षिकी रसायन ब्रह्माने बनाई है इस के सेवन करने से बुढ़ापा और रोग शान्त होजातेहैं तथा बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ताहै।

केवल आमलकरसायन ।

संवत्सरंपयोद्वर्त्तिर्गामध्येवसेत्सदा । सा  
विहीमनसाध्यायनृब्रह्मचारीजितेन्द्रियः॥

संवत्सरान्तेपौर्णमासीवापांशुर्वाफाल्गुर्णितया  
अहोपवासीशुद्धधर्मविश्यामलकीवनम् ॥

वृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतफलम् ॥  
गृहीत्वापाणिनातिष्ठजपनृब्रह्मामृतंक्षणम्॥

तदाहोवश्यममृतंयसत्यामलकंक्षणम् ।  
शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच ॥

भवन्त्यमृतसंयोगात्तानियावन्तिभक्षयेत् ॥  
जीवेद्वर्षसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः ॥

सौहित्यमपांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः ॥  
स्वयंचास्योपतिष्ठन्तिश्रीर्विदावाक्यरूपिणी॥

अर्थ—एक वर्ष पर्यन्त केवल दूध पीकर  
गौओंके बीच में रहै, मनमें सावित्रीका ध्यान  
करता हुआ ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रिय व्रत  
धारण करे। जब इस तरह एक वर्ष व्यतीत  
होजाय तब एक दिन निराहार रहकर  
स्नानादि से पवित्र होकर पौष, माघ या  
फाल्गुनकी पूर्णमासी के दिन आंवले के वन  
में घुसजाय और एक बड़े आंवले के वृक्षपर  
जो फलों से लदा हो चढ़जाय और डालों  
से एक फल को हाथ से तोड़ कर ब्रह्मामृत  
मंत्र का जाप करे, इस जाप के करने से  
नाक्षत्र आंवले के फल में अमृत का संचार  
होना और उस आंवले में शर्करायुक्त मधुर

स्वाद होजायगा तथा वह सिग्ध और मृदु  
भी होगा, उसी समय आंवले को खाळे। इस  
के सेवन करने से युवावस्थाही में सहस्रवर्ष  
पर्यन्त जीवेगा उस समय इन फलों को  
पेट भरकर खालेने से देवताओं के सदृश  
कांति होती है और लक्ष्मी तथा सरस्वती  
स्वयं उस के पास आकर वास करेंगी ।

लौह रसायन ।

त्रिफलायारसेमृतेगवांक्षोरचलावणे । क्र-  
मेणचेहुदीक्षारेकिंशुकक्षारएवच ॥ ती-

क्ष्णायसस्यपत्राणिवन्दिवर्णानिसाधयेत् ।  
चतुरङ्गुलदीर्घाणिसमोत्सेधतनूनिच ॥

ज्ञात्वातान्यज्जनाभानिमूक्ष्मचूर्णानिकारये  
त् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच ॥

युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाक्षिते ।  
संवत्सरंनिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥

दद्यादालोडनंमासेसर्वत्रालोडयन्बुधः ॥  
संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिषा ॥

प्रातःप्रातर्वलापेक्षीसात्स्यज्जीर्णेचभोजन-  
म् । एषएवचलोहानांप्रयोगःसम्प्रकीर्तितः

अनेनैवविधानेनहेम्नश्चरजतस्यच ॥  
आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत् ।

नाभिघातर्नचातर्कैर्जरयानचमृत्युना ॥  
अधृष्यःस्याद्गजप्राणःसदाचातिवलेन्द्रियः

धीमान्यशस्वीचाविसद्विधुतधारमहाबलः  
भवेत्सर्माप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम् ।

अर्थ—कांतिसार लोह के चारअंगुल लम्बे  
चौड़े बहुत पतले पत्र बनवाकर अग्नि में

सुरन्वासुरस्न गरमकर करके क्रम से त्रिफला  
के काथ, गोमूत्र, नमकक्षार, गोदीक्षार, पला-

शङ्खार में भिजोवै, जब अंजनके समान रंग होजाय तब महीन पिसवा डाले । इस चूर्ण को शहत और आंवले के रस में सानकर लोहवत् करके घी के चिकने घड़े में भरकर जोंके ढेरमें बरस दिनतक दवा रखें, प्रति-मास इस घड़े को निकाल कर कुम्भस्थ द्रव्यों को हिलाता रहै, बरस दिनके व्यतीत होने पर शहत और घी के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल बल के अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे ! औषधके पचने पर सात्व्य भोजनकरे।

यह लौह-रसायन का प्रयोग वर्णन किया गया है, इसीतरह सुवर्ण रसायन और रूप रसायन की भी विधि हैं । यह प्रयोग आयुवर्द्धक, सिद्ध और रोगनाशक है । इस प्रयोग के सेवन से चोट, रोग, बुढ़ापा और मृत्यु, कुछ असरनहीं करसक्ते हैं ! उस के प्राण हाथीके समान दृढ हो जातेहैं । उस की इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान् होजाती हैं वह पुरुष धामान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध, धृतधारी और महाबली होजाता है । इस लौह-रसायन का प्रयोग एक वर्ष पर्वन्त करने से फलप्रद होता है ॥

ऐन्द्रिरसायन ।

ऐन्द्रिमत्स्याक्षिकोत्राह्वाविचात्राहसुवर्चला  
पिप्पल्येलवणहेमशंसपुष्पीविषहृष्टतम् ।  
एवान्निप्रवकान्भागान्हेमसर्पिर्विपैर्विना ॥  
द्वौयवौतत्रेहन्त्रस्तुतिलन्द्याद्विषस्य च ।  
सर्पिषधपलन्द्यात्तद्वैकध्वं प्रयोजयेत् ॥  
घृतप्रभूतंसक्षौद्रजर्णोचाभं प्रशस्यते ॥  
जराव्याधिमशमनं स्मृतिमेधाकरम्परम् ।

आयुष्यपौष्टिकं वल्यं स्वरवर्णप्रसादनम् ॥  
परमोजस्करं चैतत्तसिद्धमेतत्तरसायनम् ।  
नैनप्रसहते कृत्यानालक्ष्मीर्न विपन्नरुक् ॥  
श्वित्रं सकुण्डजठराणि गुल्माः घ्नीहापुराणो  
विषमज्वरश्च ॥ मेधास्मृतिज्ञानहराश्च  
रोगाः शाम्यन्त्येननातिबलाश्च वाताः ॥

अर्थ... इन्द्रायणकीजड, मछेंछी, ग्राही, वच, ब्राह्मसांचोली, पापल, नमक ये सब दवा जो भर लेवे, सुवर्ण दो जो, विष, तिलभर, घृत एक पल, इन सबको एकत्र करके सेवन करे ! इस औषध के पचने पर घृतप्लुत मधुमिश्रित भोजन करे ! यह रसायन जरा-नाशक, व्याधिशमनकर्ता, अत्यन्त स्मृतिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, आयुवर्द्धक, पुष्टिकर्ता, बलकर, स्वरवर्द्धक, वर्णप्रसादक अत्यन्त ओजस्कर है इस सिद्ध रसायन को सेवन करनेवाले के पास न अलक्ष्मी, न विष और रोग जातेहैं ! इस रसायन के सेवन से श्वित्रकुण्ड, जठररोग गुल्मरोग, घ्नीहा, विषमज्वर, पुरातनज्वर, मेधा-स्मृति-ज्ञाननाशकरोग, तथा बलवान् वातरोग नष्ट होजातेहैं ।

मेध्यरसायन ।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टी  
मधुकस्य चूर्णम् ॥ रसो गुह्यश्च स्तुतः सुमूल  
पुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ।  
आयुः प्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निव  
र्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानि चैतानि रसा  
यनानि मेध्याविशेषेण च शंखपुष्पी ।

अर्थ—दूधके साथ मण्डूकपर्णी का रस वा मुलहठीका चूर्ण, वा गिलोयका रस

वा शलपुष्पी की जड़ और पुष्पका कल्क सेवन करने से आयु बढ़ती है, रोग नष्ट होजाते हैं, बल अग्नि, वर्ण और स्वर बढ़ते हैं । ये चारों रसायन मेधावर्द्धक हैं । इनमें से शलपुष्पी अधिक मेधावर्द्धक है ।

### पीपलरसायन ।

पञ्चपदसप्तदश वापिप्पलीर्मधुसार्पिणा ॥  
रसायनगुणान्वेपीसमामेकांमयोजयेत् ।  
तिस्रस्तिस्तुपूर्वाङ्गेभुक्त्वाग्नेभोजनस्यच  
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभावितामृतभर्जिताः ।  
प्रयोज्यामधुसार्पिभ्यांरसायनगुणैपिणा  
जेतुङ्गासंक्षयंशोषंश्वासंहिकाङ्गलामयान् ।  
अर्शासिग्रहणीदोषं पांडुतांविषमज्वरम् ।  
विस्वर्यपीनसंशोफं गुल्मवातबलासकम् ॥

अर्थ—जो रसायन के सदृश गुण चाहते हैं उन्हें उचित है कि प्रतिदिन पांच, छः सात, वा दश पीपल घृत और शहतके साथ एक वर्ष पर्यन्त सेवन करें । अथवा पीपलोंको ढाकके खारकी भावना देकर घृत में भूनलें और भोजन करने से पहिले प्रतिदिन दुपहरसे पूर्व शहत में मिलाकर तीन पीपल खाय तो खांसी, क्षय, शोष, स्वास, हिचकी, गलेकेरोग, अर्श, ग्रहणारोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, विस्वरता, पित्त, शोक, गुल्म, वातरोग, कफरोग ये सब नष्ट होजाते हैं वर्द्धमान् पीपल ।

कमवृद्ध्यादशाहानिदशपिप्पलिकंदिनम्  
वर्द्धयत्पयसासार्द्धतथाचापनयेत्पुनः । जी  
रोजोर्गेचभुङ्गीतपट्टिकंक्षीरसर्पिणा ॥ पि  
प्पलीनांसहस्रस्ययोगोऽयंरसायनम् ।

पिप्पलावलिभिः सेव्याः शृतामध्यबलेनैरः ।  
शीतीकृताहस्वबलयोज्यादोषामयान्प्रति  
दशपिप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः पद्मकीर्तितः ।  
वृंहणंस्वर्यमायुष्यप्लीहोदरविनाशनम् ॥  
प्रयोगोयस्त्रिपर्यन्तः सकनीयान्सचावलेः  
वयसः स्थापनं मध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥

अर्थ—प्रतिदिन दश दश पीपल बढ़ाता हुआ दुग्धके साथ सेवन करें इसी तरह फिर घटाता हुआ लेजाय यह दश दिनका प्रयोग है औषध के पचनेपर दूध भात का भोजन करें । यह सहस्र पीपलों का प्रयोग रसायन है । बलवान् पुरुष इन सब को पीसकर सेवन करें, मध्यबलवाला पीपलों का काथ पान करें, ह्रस्वबलवाला पीपलों का शीत कपाय सेवन करें, इस तरह दोष और रोग के अनुसार इसका सेवन करें, यह छः की मध्यम और तीनकी निम्न है यह दुर्बल पुरुषों के लिये अच्छी है । वर्द्धमान् पीपल का सेवन वृंहणकर्षी स्वरवर्द्धक, शीहानाशक, उदररोगनाशक वयःस्थापनकर्ता और मेघ्य है ।

### त्रिफला रसायन

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भुक्ते देविभीतके  
भुक्त्वा तु मधुसार्पिभ्यां श्रित्वा र्यामलकानि  
चाप्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलायारसायनम्  
जीवेद्दर्पशतं पूर्णमजरोग्याधिरेव च ॥

अर्थ—प्रथम दिनका आहार पचने पर ही प्रातः काल एक हरड़ खाड़े, तदुपरान्त भोजन करने से पहले दो बहेड़े खाड़े,

भोजन करनेके पश्चात् शहत और घीके साथ चार आंवले खावे, इसतरह एकवर्ष पर्यन्त इस त्रिफला रसायनका सेवन करतारहे तौ अजर और व्याधिरहित होकर सौवर्षपर्यन्त जीता रहे ।

### दूसरी त्रिफला रसायन ।

त्रैफलेनायसीपत्रीकल्केनालेपयेन्नवाम् ॥  
तमहोरात्रिकलेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्  
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णं तत्र प्रशस्यते ॥ अज  
रोऽहम्समाभ्यासाज्जीवेत्तस्य समाश्रितम् ।

अर्थ—त्रिफला को घोटकर लुगदी बनाकर एक नवीन लोहेके पात्रपर छेप कर दिया करै और एकरातादिन तक उसी पर रहने दे दूसरे दिन उतारकर शहत और जडके साथ सेवन करै । औषधके पचने पर घृतप्लुत आहार करै इसतरह बरसदिन तक इस रसायन के सेवन करनेसे सौ वर्ष पर्यन्त अजर और अरोग रहकर जीतारहेगा ।

### तीसरी त्रिफला रसायन ।

मधुकेन तु गाक्षीर्यापि प्लव्यात्तौद्रसर्पिणा ॥  
त्रिफलासितया चापियुक्ता सिद्धं रसायनम् ।

अर्थ—मुलहठी वा बंशलोचन वा पीपलवा शहत और घृतके साथ भी त्रिफलाका सेवन करना रसायन है अथवा मिश्री के साथ त्रिफला की फकी लेंवै ॥

### चौथी त्रिफला रसायन

सर्वलोहे सुवर्णेन वचयामधुसर्पिणा ॥ वि  
ड्ङ्गपिप्पलीभ्यांच त्रिफलालवणेन च ।  
संवत्सरमयोगेण मेधास्मृतिवल्प्रदा ॥ भ-  
वत्यायुष्यदा धन्याजरारोगानेवर्हणी ।

अर्थ—सर्व प्रकारके लोहोंके साथ वच के साथ, शहत घीके साथ, वायविड्ङ्ग पीपल के साथ अथवा लवण के साथ एक वर्ष तक त्रिफला का सेवन करना मेधावर्द्धक, स्मृति-कारक, बलप्रद, आयुवर्द्धक धन्य और जरा-रोगनाशक होता है ।

### शिलाजतु प्रयोग ।

अनम्लश्च कपायश्च कटुपाकः शिलाजतु ।  
नात्युष्णशीतधातुभ्यः चतुर्भ्यस्तस्य सम्भ-  
वः । हेमन्श्च रजतात्तन्नाद्वारकृष्णाय साद-  
पिः ॥ रसायनं तद्विधिभिस्तद्वृष्यन्तश्च चरो  
गनुत् । वातपित्तकफघ्नश्च निर्युद्धैस्तत्सुभा-  
वितम् ॥ वीर्योत्कर्षपरं याति सर्वैरैकशो  
ऽपि वा । मक्षिणोद्धृतमप्येन पुनस्तत्प्रक्षि-  
पेद्रसे ॥ कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य  
भावना ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन लोहैश्चूर्णी-  
कृतैः सह ॥ तत्पीतं पयसा दद्याद्दीर्घमायुः  
सुखान्वितम् । जराव्याधिप्रशमनं देहदा-  
र्ढ्यकरं परम् ॥ मेधास्मृतिकरं बल्यं क्षीरा-  
शीतप्रयोजयेत् । प्रयोगः सप्तसप्ताहास्त्र-  
यश्चैकथसप्तकः ॥

अर्थ—शिलाजीत अनम्ल, कपाय, कटुपाकी और शीतलतारहित होता है ॥ यह सौचा रूपा, तांबा और लोहा इन चार धातुओं से उत्पन्न होता है इसमें से लोहज शिलाजतु उत्तम होता है : इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह रसायन, वृष्य और रोगनाशक है । वात पित्तकफनाशक द्रव्यों की इसे भावना देनेसे यह उत्तम वीर्यत्पादक होजाता है । इन तीनों प्रकार के कायोंको मिलकरा वा

अलग अलग कुछ २ उष्णकायकी शिला-  
जीतको सात दिवस तक भावना दें। यह  
इसको भावना देनेकी विधि है। फिर इसको  
पीसकर सब प्रकारके छेह चूर्णोंके साथ मि-  
लाकर दूधके साथ पान करे तो दीर्घायु और  
सुख मिले। यह शिलाजीत जराब्याधिनाशक  
देहको अत्यन्त दृढकारक मेधावर्द्धक स्मृति-  
कारक और धन्य है। इस पर दूधका अनु-  
पान करे। इसके प्रयोगकी अबधि सात सप्ताह  
तीन सप्ताह, और एक सप्ताह भी है।

शिलाजतुकी मात्रा ।

निर्दिष्टसिद्धिस्तस्यपरोमध्योवरस्तथा ।  
प्लवमर्द्धपलं कर्पोमात्रातस्य त्रिधामता ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और निरुद्ध ये तीन  
प्रकार की मात्रा शिलाजीत की हैं यथा एक  
पलकी उत्तम आधेपलकी मध्यम और एक  
कर्पकी निरुद्ध ।

शिलाजतुके जातिभेद ।

जातेर्विशेषसन्निधितस्यवक्ष्याम्यतः परम्  
हेमाद्याः सूर्यसन्तताः स्रवन्ति गिरिधातवः ।

जत्वा भर्मदुमृत्ताभं यन्मलं तच्छिलाजतु

अर्थ—अब हम शिलाजतुकी भिन्न २ जा-  
तियों का विधिपूर्वक वर्णन करते हैं। सूर्य  
के तात्रतापसे सुवर्णादिक धातु जो पहाड़ों  
से चुचा निकलती हैं उनमें लाखके सदृश  
कोमल मृत्तिकाकी आभा के समान जो मैल  
होता है उसे शिलाजतु कहते हैं।

सुवर्णजशिलाजतुके लक्षण ।

मधुरश्च सतिक्तश्च जपापुष्पानि भक्ष्यः ।

विपाके कटुशीतश्च सुवर्णस्यानिस्रवः ॥

अर्थ—स्वादमें मधुर कुछ तीखापन लिये  
जपापुष्पके समान कान्तियुक्त, कटुपाकी और  
शीत लक्षणोंसे युक्त सुवर्णजन्य शिलाजतु होता है।

रूप्यजशिलाजतु के लक्षण ।

रूप्यस्य कटुः श्वेतः शीतः स्वादु विपच्यते ।

अर्थ—कटु, श्वेतवर्ण, शीतल और पाक  
में मधुर शिलाजतु रूप्यज होता है।

ताम्रजशिलाजतु के लक्षण ।

ताम्रस्य र्वाहकण्डाभस्ति कोष्णः कटुपच्यते

अर्थ—मयूरके फंठके समान, तिक्त, उष्ण  
और कटुपाकी शिलाजतु ताम्रज होता है।

लौहज शिलाजतुके गुण ।

यस्तु गुलुकाभासस्तिक्कोलवणान्वितः ।

कटुर्विपाके शीतश्च सर्वश्रेष्ठः सचायसः ॥

गोमूत्रगन्धयः सर्वे सर्वैकर्मसु यौगिकाः ।

रसायनप्रयोगेषु पश्चिमस्तु यि शिष्यते ॥

अर्थ—गुग्गुलुके समान कान्तिवाला, तिक्त  
लवणरसयुक्त, कटुपाकी शीतल और गोमूत्र

की सी गन्धवाला शिलाजतु लौहज होता है  
यह सबसे अच्छा होता है। सब प्रकार के

शिलाजीत सब कामोंमें प्रयोग किये जाते हैं  
परन्तु रसायन प्रयोगमें लौहज सर्वोत्कृष्ट होता है।

शिलाजीत का गुण ।

यथाक्रमं वातपित्तश्लेष्मपित्तकफे त्रिषु ।

विशेषतः प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः ।

अर्थ—सुवर्णज शिलाजीत धातुपित्त को दूर  
करता है, इसी तरह रूप्यज कफपित्तको ताम्र  
ज कुष्ठको और लौहज सन्निपात को दूर करता है।

शिलाजीत पर पथ्यापथ्य ।

शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनिगुणैश्च

वर्जयेत्सर्वकालं नु कुलं तथान्परिवर्जयेत् ॥

तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वादधमनोभेदनापरम् ।

लोकेदृष्टास्ततस्तेषामप्रयोगं प्रनिविध्यते ॥

पयांसिभुक्तानिरसाः स्यूपाः तोयंसमूत्रम्

विचिधाः कषायाः आलोडनार्थं द्विरिजस्य

शस्तास्तेतेप्रयोज्याः प्रसमीक्ष्यकार्यम् ॥

नसोऽस्तिरोगोऽभुविसाध्यरूपः शिलाह-

र्ययन्नजयेत्प्रसह्य ॥ तत्कालयोगैर्विधिभिः

प्रयुक्तं स्वस्थस्यचोर्जाविपुलाददाति ॥

अर्थ—शिलाजीत सेवन करने वाला विदाही

और गुरु पदार्थोंको त्याग कर देवे कुलथी

का सर्वथा त्याग कर देवे ये शिलाजीत के

अत्यन्त विरुद्ध हैं और विशेष करके पत्थरका

भेदन करनेवाली है यह बात लौकिक प्रसिद्ध

है इसलिये कुलथी का प्रयोग निषेध किया

है । दूध शुक्त, मांसरस, मांसयूप, जल, गोमूत्र

तथा अन्यकषायोंमेंसे किसी के साथ रोगके

अनुसार शिलाजीत का प्रयोग किया जाता

है । पृथ्वीमें कोई ऐसा साम्य रोग नहीं है जो

शिलाजीतसे अच्छा न हो सक्ताहो । काला-

नुसार विधिवत् प्रयोग किये जाने से स्वस्थ

पुरुष को भी अत्यन्त बलकारक है ।

तृतीयपादका संक्षिप्तवर्णन

करप्रचितिकैपाददशपद्महर्षिणा ।

रसायनानांसिद्धानांसंयोगाः समुदाहृताः

अर्थ—इस करप्रचितिक नाम पाद में

महर्षि पुनर्वसुने सिद्ध रसायनोंके सोलह प्रयो-

ग वर्णन किये हैं ।

इति करप्रचितिकोनामरसायनपादस्तृतीयः

चतुर्थः पादः ।

अथात आधुर्वेदसमुत्थानोपरसायनपाद-

व्याख्यास्यामइतिहंस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

कि अब हम आधुर्वेदीय समुत्थानक नाम च-

तुर्थ पादकी व्याख्या करते हैं ।

प्राचीन इतिहास ।

ऋषयः खलुकदाचिच्छालीनायायावरा

श्रग्राम्यौपध्याहाराः सन्तः साम्पग्निका

मन्दचेष्टाश्च नातिकल्याणाश्च प्रायेण बभूवुः

ते सर्वा सामितिकर्तव्यता नाम समर्थाः सन्तो

ग्राम्ययासकृतमात्मदोषं मत्वा पूर्वा निवास-

मपगतग्राम्यदोषं मत्वा शिवं पुण्यमुदारं मेध्य

मगम्य मसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वय-

क्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचि-

न्त्याहुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरि

तं दिव्यतीर्थं पथि प्रभावमतिशरण्या हिमव

न्तममराधिपतिगुप्तजग्मुः भृग्वह्निरोऽग्नि-

वशिष्टकश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासित

गौतमप्रभृतयो महर्षयः । तानिन्द्रः सहस्र

हमरगुरुवरोऽब्रवीत् । स्वागतं ब्रह्मविदां

ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणामस्ति । ननु

वोग्लानिरप्रभावत्वं वैश्यर्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्य

वासकृतमसुखमसुखानुबन्धञ्च ग्राम्योहि

वासोमूलमज्ञानान्तर्कृतं पुण्यकृद्भिर-

नुग्रहः प्रजानां स्वशरीरमरक्षिभिः कालश्चा

यमाधुर्वेदोपदेशस्य ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजा

नाञ्चानुग्रहार्थमाधुर्वेदमश्विनो महं

प्रयच्छतां ॥

अर्थ—किसी समय ऐसा हुआ कि विनीत

स्वभाव और यज्ञशील ऋषिगण ग्राम्य औ-

पध और आहारके सेवन से प्रायः मन्दचेष्टि-

त और उपायरहित हो गये तथा अपने क-

सर्व कामोंके करनेमें भी असमर्थ होगये । तब वे विचार करने लगे कि यह हमारे गाँवोंमें बसने के दोषका कारण है और यह निश्चय कर लिया कि पूर्व निवासही ग्राम्य दोषोंसे रहित है इस हेतु से वे कल्याणमय पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों से अगम्य, गंगाका उत्पत्तिस्थान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नरों से सेवित, नानाप्रकारके रत्नों से युक्त, अचिन्त्य अमृत प्रभावशाली, ब्रह्मर्षि सिद्ध चारणोंसे सेवित, दिव्यतार्थ और औषधोंका प्रमवस्थान, अतिशरण्य (शरण लेने के योग्य) और इन्द्रसे रक्षित हिमालयपर गये । इन ऋषियोंमें भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, और असित गीतम आदि बहुतसे ऋषिये । सहस्राक्ष अमरेश्वर उन ऋषियों से कहने लगे कि हे ब्रह्मविद् ! हे ज्ञानधन ! हे तपोधन ! हे ब्रह्मर्षियो ! आपका आगमनशुभ है हे ऋषियों ! गाँवके रहनेसे आपलोगों के मुखपर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाग्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःखजनित चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं । ग्राम्य वासही सब दुर्जों का मूल है । आपलोगों ने अपने पुण्य स्वभावसे प्रजाके हितके लिये अपने शरीर का कुछ विचार न करके ग्रामोंमें बसना स्वीकार किया । यही आयुर्वेदके उपदेशका समय है, इस आयुर्वेदको ऋषिगण और अपनी प्रजाके अनुग्रहके लिये अश्विनाकुमारोंने मुझे सिखायाथा ।

आयुर्वेदोत्पात्तिक्रम ।

प्रजापतिरश्विभ्यां, प्रजापतयेब्रह्मा, प्रजा-

नामल्पमायुर्जराव्याधिवहुलमसुखमसुखानुबन्धं, अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयं मत्वा पुण्यतममायुः प्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतं विशरण्यमुदात्तं भवन्तो भक्तः श्रोतुमर्हस्युपधारयितुं प्रकाशयितुं प्रजानुग्रहार्थं भार्प्यब्रह्म च मैत्रीक्षारुण्यमात्मनश्चानुत्तमं पुण्यमुदारं ब्राह्ममक्षयं कर्मेति । तच्छ्रुत्वा विबुधपाति वचनमृषयः सर्वे एवापरवरमृगिभस्तुष्टुः महृष्टास्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रः तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यः संक्रम्योवाच तत्सर्वमनुप्रेयमयञ्च शिवकालोरसायनानां दिव्याश्चौषधयो हि मवत प्रभवाः प्रासवीर्याः ॥

अर्थ—इसी आयुर्वेदका उपदेश प्रजापतिने अश्विनाकुमारोंको किया था । हमी आयुर्वेदका उपदेश ब्राह्मने प्रजाओंको जराव्याधिप्रस्त, अल्पायु, असुख, अमुखानुबन्धी, अशुभकर्मकर्त्ता देखकर तथा अल्पायु होनेसे अल्पतप, इन्द्रियदमन, नियम, दान, अध्ययनकी और निरुत्साहित देखकर प्रजापति दक्षको उपदेश दिया था कि जिससे ये उपाधियां शान्त होवें । यह आयुर्वेद पुण्यतम, आयुर्वर्द्धक जराव्याधिनाशक, बलकारक, अमृतोपम, कल्याणकारक, शरण्य और उदात्त है । इस आयुर्वेदको मुझे सुनिये धारण कीजिये और प्रजा के अनुग्रहके लिये इसका प्रकाश कीजिये क्योंकि ब्रह्माही ऋषियोंका आश्रितस्थान है, वही मैत्री है, मैत्रीही कारण है । आत्मा का कारण्यही उत्कृष्ट और उदार पुण्य है वही पुण्य ब्राह्म और अक्षय कर्म है इन्द्रके



वचनको मुनकर सम्पूर्ण ऋषि ऋग्वेदोक्त मंत्रोत्त इन्द्रकी प्रशंसाकरने लगे और प्रसन्न होकर उसकी बातको सराहने लगे । तदनन्तर इन्द्रने आयुर्वेदाष्टतकी व्याख्या ऋषियोंसे की और कहा कि ये सब कर्म अनुष्ठानके योग्य हैं, रसायन बनानेका यही उत्तम काल है क्योंकि हिमालय पर उत्पन्न होनेवाली दिव्य औषधियां भी मौजूदहैं जो इस समय पूर्णवीर्य हैं ।

### इन्द्रोक्त रसायन

तद्यथा ऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशतावरीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागबलास्थिरावचाच्छत्रातिच्छत्रामेदामहामेद्राजीवनीयाश्चान्याःपयसामयुक्ताः । पन्मासात्परमायुर्वयश्चतरुणमनामयस्त्वंस्वरवर्णसम्पदमुपचर्यमेधां स्मृतिमुत्तमबलमिष्टाश्वापरान्भावानावहन्तिसिद्धाः । इन्द्रोक्तं रसायनम् ॥

अर्थ—इन्द्रायण, ब्राह्मी, काकोली, दुह्री श्रावणी, महाश्रावणी, सितावर, विदाकरीन्द, जीवन्ती, सांठ, नागबला, शालिपर्णी, वच, छत्रा, अतिछत्रा, मेदा, महामेदा, तथा अन्यान्य जीवनीय औषधोंको छः महीने तक दुग्धके साथ सेवन करें तो दीर्घायु, तरुणावस्था, निरोगता, स्वर और वर्णकी स्वच्छता पुर्याई, मेधा, स्मृति, उत्तम बल, तथा और और भी इच्छित फलोंकी प्राप्ति होतीहै । यह इन्द्रोक्त रसायन है ॥

ब्रह्मसुवर्चलादि औषधियोंके लक्षण

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्याक्षीरापुष्क

रसदृशपत्रा आदित्यपर्णीनामौषधिर्याक्षीर्य कान्तेतिविशायते सुवर्णक्षीरासूर्यमण्डलाकारपुष्पीच । नारीनामौषधिरश्वलेति विशायतेयापुनरजसदृशपत्रा । काष्ठगोधानामौषधिर्गोधाकारा सर्पानामौषधिः सर्पाकारा । सोमनामौषधिराजपञ्चदशपर्णसोमइवहीयते वर्धतेच । पद्मानामौषधिपद्माकारजरापद्मरक्तापद्मगन्धा । अजानामौषधिश्चूडनीतिविशायते । नीलानामौषधिमृत्नीलक्षीरानीलपुष्पालताप्रतानबहुला ।

अर्थ—एक ब्रह्मसुवर्चला औषध होती है जिसे हिन्दी में ब्रह्मसाचौली कहते हैं, इसका दूसरा नाम हिरण्यक्षीरा है, इसके पत्ते कमलके सदृश होतेहैं । एक आदित्यपर्णी होतीहै उसे सूर्यकान्ता कहतेहैं । इसका दूध सुवर्णके समान पीला और फूल सूर्यमण्डल के आकार के सदृश होताहै । एक नारी नामकी औषध होतीहै इसको अश्वबला कहते हैं, इसके पत्ते बकरे के समान होते हैं । एक काष्ठगोधा औषध होती है इसका आकार गोधाके सदृश होताहै, सर्पा नामकी औषधी होती है इसका आकार सर्पका सा होता है । एक सोम औषध होतीहै इसे सोमलता भी कहते हैं यह औषधियोंकी राजाहै, इसमें पन्द्रह पत्ते होतेहैं, यह चन्द्रमा की तरह घटती बढ़ती है अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमाकी कलाके साथ एक एक पत्ता बढ़ता जाता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमाके घटने के साथही एक एक पत्ता घटता चला जाताहै ( इसका विशेष वर्णन सुश्रुत, मीहता

में लिखा है, एक पद्म नाम की औषधि है इसका आकार पद्म के समान होता है यह पद्म के सदृश लाल तथा पद्म के समान ही गंधयुक्त होती है । एक अजा नाम की औषधी होती है इसे अजदृग्गी कहते हैं । एक नीला औषधी होती है इसका दूध और फूल नीले होते हैं इसमें लताप्रतान बहुत होते हैं ।

**पूर्वोक्त औषधियों की सेवनविधि ।**

इत्यासामग्रानामौषधीनां यांयामेवोपाधिलभेत तस्यास्तस्याः स्वरसस्य सौहित्यत्वात् स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यां सापिधानायादिग्वासाः शयीतातम्रमलीयतेषाम्मासेन पुनः पुनः सम्भवति तस्याजम्पयः प्रत्यवस्थापनं पण्मासेन देवतानुकारी भवति । वयोवर्णस्वराकृतिष्वलप्रभाभिः । स्वयंचास्य सर्ववाचोगतानि शादुर्भवन्ति । दिव्यं चास्य चक्षुः श्रोत्रं भवति । गतिर्योजनसहस्रं दशवर्षसहस्राण्यायुरनुपद्रवं चेति ॥

अर्थ—इन आठ औषधियों में से जो मिलसके उसका पेट भरकर पान करले और तेल से गुपड़ा हुई टकनेवालों एक ढाककी द्रोणी में नम्र होकर सो जाय इस तरह छः मास में उस का पुनर्जन्म होजाता है । इसको बकरी के दूधका अनुपान करावे । छः महीने में वह मनुज्य वय वर्ण, स्वर आकृति, बल और प्रभा इन कर के देवताओं के सदृश होजाता है । भूत बातों के विषय में स्फूर्ति होता है, इसके आँख और कान दिव्य होजाते हैं इस को सहस्र योजन की गति और उपद्रवरहित दस सहस्र वर्ष की आयु होजाता है ।

**भवति चात्र ।**

दिव्यानामौषधीनां यः प्रभावः स भवद्विधैः शक्यः सोऽदुमशक्यः तु न सोऽदुमकृतात्मभिः । औषधीनां प्रभावेण तिष्ठतांस्वेच चर्तमाने । भवतानि खिलं श्रेयः सर्वमेवोपपत्स्यते ॥ वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च प्रयतैर्नियतात्मभिः । शक्या औषधयो ह्येताः सेवितुं विषयाभिजाः तास्तु क्षेत्रगुणैस्तेषां मध्यमेन च कर्मणा । मृदुवीर्यतरास्तासां वीर्यश्रेयः स एव तु ॥ पर्येष्टुन्ता प्रयोक्तुं वा येऽसमर्थाः सुखार्थिनः रसायनविधिस्तेषां मयः यः प्रशस्यते ॥

अर्थ—इन दिव्य औषधियों का जो प्रभाव है उसको आपसरी के ही सहसक्त हैं और कोई आजितेन्द्रिय उनको नहीं सहसक्त है इन औषधियों के प्रभाव से अपने अपने मार्गों में स्थित होकर आप सम्पूर्ण कल्याणों को प्राप्त करसकेंगे । प्रयत्नवान् और जितेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थी इन रसायन औषधों को सहन करसकेंगे यदि वे उनके देशकी उत्पन्न होंगी क्योंकि ये सब औषधियाँ क्षेत्रगुण से मृदुवीर्य होती हैं, इनकी क्रिया मध्यम होती है, परन्तु सेवनकी विधि एकही है ।

जो सुखामिलायी इन औषधों के सेवन करने वा द्रुढने में असमर्थ हैं वे नीचे लिखी हुई विधि से सेवन करें ।

**इन्द्रोक्तब्राह्मरसायन ।**

वल्यानाञ्जीवनोयानां वृंहणीयाश्च यादश वयसः स्थापनानाञ्च खदरस्यासनस्य च । खर्जूरानां मधूकानां मुस्तानां मुत्पलस्य च । मृदूकानां विट्कानां वचापाः चित्रकस्य च ॥

शतावर्षाः पयस्यायाः पिप्पल्याजोद्वकस्य-  
च । ऋद्धयानागवलापाश्चहरिद्रापाध्व-  
स्पच । त्रिफलाकण्टकायोंश्चविदायाश्च  
न्दनस्यतु । इक्षूणांशरमूलानांश्रीपर्ण्या  
स्तिनिशस्यच ॥ रसाः गृह्य कृष्य कृशाद्याः  
पलाशक्षारएवच । एषांपलोन्वितान्भागान्  
न्यपयोगव्यचर्तुगुणम् ॥ द्वेपात्रेतिलतैलस्यद्वे  
चगव्यस्यसर्पिः । तत्साध्यं सर्वमेकत्रसु  
सिद्धं स्नेहमुद्धरेत् ॥ तत्रामलकचूर्णानां  
मादकं शतभाविताम् । स्वरसेनैवदातव्यं  
क्षौद्रस्पाभिन्नवस्यच । शर्कराचूर्णपात्र  
ज्वरस्थमेकमदापयेत् । तुगासीर्याः सपि  
प्ल्याः स्याप्यं संमूर्च्छितं चतत् । शुचीं  
मार्तिकं कुम्भे प्रासायैतु भाविते ॥ मात्राम-  
ग्निसमां तस्य तत ऊर्ध्वं मयोजयेत् ॥ हेम  
ताम्रमवालानामयसः स्फटिकस्यच । सु-  
क्तावैद्यैश्च शैलानां चूर्णानां रजतस्यच ॥ प्र-  
क्षिप्य पोडशी मात्रां विहायायासं मैथुनम्  
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत पट्टिकक्षीरसर्पिषा ॥  
सर्वरोगप्रशमनं हृत्पयमायुष्यमुत्तमम् । स-  
त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।  
परमृजस्करं चैव वर्णस्वरकरं तथा । विषा-  
लक्ष्मीप्रशमनं सर्ववाचे गतप्रदम् ॥ सिद्धार्थं  
ताञ्चाभिन्नवयश्च प्रजापत्यत्वं त्रयशश्च  
लोके ॥ प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदं यथावद्र-  
सायनं ब्राह्ममुदारवीर्यम् ॥

अर्थ—वल्ग, जीवनीध, वृहणीध, वयः-  
ध्यान, इन गणोंकी दश दश औषधें त-  
था खैर, असन, खजूर, महुआ, मोया, उ-  
पल, दाल, वायावेडंग, वच, चीता, सिता-

वर, काकोली, पीपल, जौगक, ऋद्धि, ना-  
गवला, हलदी, धौ, त्रिफला, कटेरी, विदा-  
रीकंद, चन्दन, इक्षुरस, शरमूलरस, श्रीपर्णी-  
रस, तिनिश और पलाशक्षार ये सब एक  
एक पल लेवे इन सब औषधियों से चौगुना  
गौका दूध दोपात्र ( आठक ) तिलका तैल,  
दोपात्र गौका धी इन सबको मिलाकर पका-  
ये जब अच्छी तरह सिद्ध होजाय तब चि-  
कनाई के भागको अलग निकाल लेवे, इस  
में आंवलेके रससे सौ बार भावना दियाहुआ  
आंवलेका चूर्ण एक आठक डाल देवे, न-  
याशहत एक आठक, शर्करा एक आठक,  
वंशलोचन और पीपल एक प्रस्थ डालकर  
सबको मिलावे, फिर पन्द्रह दिनतक इसे  
एक चिकनी घी की हांडीमें भरकर धरे  
तदुपरान्त अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा  
का प्रयोग करे । औषधकी मात्रासे सौलहवां  
हिस्सा सुवर्ण, तांबा, मृगा, लोहा, स्फटिक  
मोती, वैदूर्य, शंख और रूपे का चूर्ण मि-  
लावे । औषधके सेनवकालमें परिश्रम और  
मैथुनका परित्याग करदेवे । औषधके पचने  
पर दूध घी मिलाकर चावलों का भात  
खाय । यह रसायन सम्पूर्ण रोगोंकी नाश  
करनेवाली, वृष्य और उत्तम आयुवर्द्धक है  
सत्व स्मृति, शरीर, अग्नि, बुद्धि, और इन्द्रि-  
यों में बलवर्द्धक है, यह अत्यन्त ऊर्जाकर,  
वर्णप्रसादक, स्वरवर्द्धक, विष अलक्ष्मीनाशक  
तथा वचन को सिद्ध करने वाला है इसरसा-  
यनके सेवन करनेसे मनोवाञ्छित कार्योंकी  
सिद्धि, नवीन वय, संततिप्रियत्व और लोक

में यश होता है । जो इन सब बातोंकी इच्छा करनेवाला है उसे उचित है कि वह इस उदात्तवीर्य ब्राह्मरसायन को सेवन करे ॥

समर्थानामरोगाणान्धीमत्तान्निर्यतात्मनां  
कुटीप्रवेशः क्षमिणां परिच्छदवतांहितः । अ-  
तोऽन्यथातुयेतेपांसैर्यमारुतकोविधिः ॥

ताभ्यां श्रेष्ठतरः पूर्वो विधिः स तु सुदुष्करः ।  
रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्यथाधयो यदि  
यथास्वमौपधन्तेपांकार्यमुक्त्वारसायनम्

अर्थ—सामर्थ्यवान्, निरोगी, बुद्धिमान्  
जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परिच्छदवान्  
( जिन के पास ओढ़ने पहरनेका सामान है )  
पुरुषोंके लिये कुटीप्रावेशिक रसायन बहुत  
अच्छी होती है । और जो ऊपरकहे हुये ल-  
क्षणोंसे विपरीत लक्षणवाले हैं उनको सौर्य-  
मारुतिक विधि अच्छी है, परन्तु इनमें पहिली  
उत्तम और साध्य है । रसायन विधि में गढ़-  
बड़ होजानेसे यदि रोग उत्पन्न होजाय तो  
रसायन सेवनको बन्दकरके प्रथम उनरोगों  
की विधिपूर्वक चिकित्सा करे ।

विनारसायनरसायनवत्फल ॥

सत्यवादिनमक्रोधनिवृत्तमथमेषुनात् ॥

अहिंसकमनायासम्प्रशान्तप्रियवादिनम्  
याज्यशौचपरंधीरंदानानित्यंतपस्विनम् ।

देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुद्वार्चनेरतम् ।

आनृशंस्यपरन्तित्यंतित्यंकरुणवेदिनम् ॥

समजागरणं स्वप्नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥

देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिशमनहृत्कृतम् ॥ श-  
स्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।

उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्म  
नांधर्मशास्त्रपरं विद्यान्तरं नित्यरसायनम् ॥

अर्थ—सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुनका  
सेवन न करनेवाला, अहिंसक, अपरिश्रमी,  
शान्त, प्रियवादी, यजनकर्त्ता, पवित्रतापरायण,  
धीर, दानकर्त्ता, तपस्वी, गां, देवता, ब्राह्मण,  
आचार्य, गुरु, वृद्ध, इनकी सेवामें परायण,  
निष्ठुरतारहित, दयापरायण, उचित कालमें  
जगने और सोनेवाला, नित्यप्रति दूध, घी, खाने  
वाला, देश और कालके प्रमाणका जानने-  
वाला युक्तिज्ञ, अनहंकारी, सदाचार परायण, एक  
धर्मावलम्बी, अध्यात्मज्ञानवेत्ता, वृद्धोंका सेवक,  
आस्तिक, और जितेन्द्रियों का उपासक, धर्म  
शास्त्रपरायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे  
नौभी नित्यरसायन सेवन का फल प्राप्त करता है  
गुणैरतैः समुद्दिष्टैः प्रयुङ्क्तेयोरसायनम् ।

रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्समश्नुते

अर्थ—जो पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न  
रसायनका सेवन करता है, वह यथोक्त रसा-  
यन गुणों को प्राप्त करता है ।

रसायन के योग्यायोग्य पुरुष ।

यथास्थूलमनिर्वाहदोषान्शरीरमानसा  
रसायनगुणैर्जन्तुर्गुज्यतेनफदाचन ॥ यं

गाहायुः प्रकर्षार्थं जरारोगनिर्वहणाः । मन

शरीरशुद्धानां सिध्यन्ति प्रयतात्मनाम् ।

तदेतन् भवेद्वाच्यं सर्वमेव हतात्मसु । अर

जभ्यो द्विजातिभ्यः शूद्रपाये पुनास्ति च

अर्थ—शारीर और मानसिक दोषों

विना दूरकिये जो पुरुष रसायन सेवन क

है उसको रसायनका कुछ फल नहीं मिल

है । आयुवर्द्धक और जरा व्याधिनाशक

योग वर्णन किये गये हैं वे मानसिक,

पूर्वक अश्विनीकुमारोंका पूजन करतेहैं ।

तौ क्यामृत्यु, व्याधि और जराप्रस्त तथा सदाही दुखी मनुष्योंको अपने सुखके लिये वैद्योंका पूजन अनुचितहै ॥

वैद्यका गुरुवत् पूजन ।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ॥ प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्य प्राणाचार्य्यः साहसिमतः ।

अर्थ—मनुष्यों को शीलवान्, मतिमान् द्विजाति, शास्त्रपारग और प्राणाचार्य्य वैद्यकी गुरुवत्, पूजा करनी चाहिये ।

विद्यासमाप्तौभियजस्वतीयाजातिरुच्यते अन्तुतेवैद्यशब्दोद्विजातिःपूर्वजन्मना ।

विद्यासमाप्तौब्राह्मणासत्त्वमार्पणमथापिवां ॥

ध्रुवमावशतिज्ञानात्तस्मादेवोत्रिजःस्मृतः ॥

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशंदहितैर्नसमाचरेत् ॥

प्राणाचार्य्यबुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥

अर्थ—भियज् द्विजाति होताहै परन्तु वैद्यक विद्याको समाप्तकर लेनेपर त्रिजाति होजाता है, तबही यह वैद्य कहलाताहै । पूर्वजन्म द्वारा यह वैद्य नहीं कहलाताहै मनुष्य विद्या को समाप्तमें ब्राह्मण वा आर्यसत्त्वमें निश्चय प्रवेश करताहै और फिर वैद्यका ज्ञान प्राप्त करने पर त्रिजकहलाताहै ।

जो मनुष्य दीर्घजीवनकी इच्छा करता है उसे उचितहै कि वैद्यको न गाली देनकोसै न उसके साथ कोई अहित कार्य्य करे ।

रोगी और वैद्यका धर्म

चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः

नोपाकरोतिर्वैद्यायनास्तितस्येहानिष्कृतिः

भिपगव्यातुरान्सर्वान्स्वप्नानिवयन्वान्

आवाधेभ्योद्विंसरसेदिच्छन्धम्ममनुत्तमम्

अर्थ—यह प्रतिज्ञा करने पर कि मैं अमुक

उपकार करूंगा और आराम होने पर वैद्यके

लिये यदि वह उपकार न किया जाय तौ

उसका कल्याण नहींहै और वैद्यकोभी उचित

है कि सम्पूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान

देने और उत्तमोत्तम धर्मप्राप्तिकी इच्छा करता

हुआ रोगों से उसकी रक्षा करे ।

धर्मार्थार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः ॥

प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्षरम्

नारमार्थनापिकामार्थमथभूतदयांमति ॥

वर्ततेयःचिकित्सायांससर्वमतिवर्तते ।

अर्थ—महर्षियोंने धर्म अर्थ और कामकी

प्राप्तिके लिये आयुर्वेदका प्रकाश किया क्योंकि

वे धर्मपरायणथे और उनकी इच्छा मोक्ष धाम

प्राप्त करनेकी थी । जो बिना अपनी किसी

अर्थकामकी स्वार्थ सिद्धिके केवल प्राणियों पर

दयाकर के चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं वे

सर्वोत्कृष्ट होते हैं ।

जीविकार्थ चिकित्सा निषेध ।

कुर्वतेयेतुष्ट्यर्थंचिकित्सापण्याविक्रयम् ॥

तेहिवाकाश्चनराशिपांसुराशिमुपासते ।

अर्थ—जो जीविकाके लिये चिकित्सा को

वेचते है वे सुवर्णके ढेरको छोडकर धूलके

ढेरको समेटते हैं ।

वैद्यको यशप्राप्तिका उपाय ।

दारुणैः कृत्वा तानाग्नेयैश्च

चिकित्सायां यशस्यतां प्राप्नुयान्

धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते ॥

नहिजीवितदानादिदानमन्यद्विशिष्यते।  
परोभूतदयार्थमिति मत्वाचिकित्सया ॥

वर्ततेयःससिद्धार्थःसुखमत्यन्तमश्नुते ।

अर्थ—मनुष्य दारुण रोगोंसे पीडित हो-  
कर यमालयकी ओर आकर्षित होतेहैं । जो  
यमपाशोंका छेदन करके जीवदान देताहै उ-  
सके समान धर्मार्थपरायण और दाता इस  
संसारमें दूसरा नहींहै । जीवदानके अतिरिक्त  
और कोई विशेष दान नहींहै । प्राणियोंमें  
दया करनेसे अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं  
है इस बात को जानकर जो चिकित्सामें  
प्रवृत्त होतेहैं उन्हींका मनोरथ सिद्ध होताहै  
और वेही सुख भोगते हैं ।

इस पादका संक्षिप्त वर्णन ।

आयुर्वेदसमुत्थानं दिव्यौषधिविधिः शुभः ॥

अमृताल्पान्तरगुणं सिद्धं रत्नरसायनम् ॥

सिद्धेभ्यो ब्रह्मचारिभ्यो यदुवाचामरेश्वरः ॥

आयुर्वेदसमुत्थाने तत्सर्वसम्भकाशितम् ।

अर्थ—इस आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य  
रसायनोंके प्रयोग तथा जो कुछ इन्द्रने ऋ-  
षि महारभओंसे कहाहै वह सब इस पाद में  
वर्णन किया गया है ।

आयुर्वेदसमुत्थानयोरसायनपादः चतुर्थः ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाविरचिता-  
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सि-  
तस्थाने रसायने विकल्पनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातः संयोगशरमूलीयं वाजीकरणपादं  
व्याख्यास्याम इति हस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

रमूलीय वाजीकरणपादकी व्याख्याकरेंगे ।

वाजीकरणके गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमायवा-  
न् । तदायत्तौ हि धर्मार्थमीति श्रयः स एव च

पुत्रस्यायतनं ह्येतद्गुणाश्च ते सुताश्रयाः ।

वाजीकरणमग्न्यूश्च क्षेत्रं स्त्रीयामहर्षिणी ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय पुरुषको नित्यही वाजी-  
करण करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ,  
प्रीति और यशसे वाजीकरणकेही आश्रित  
हैं । पुत्र भी वाजीकरण केही आश्रित है  
और पूर्वोक्त धर्मार्थादि चारों गुण पुत्रके आ-  
श्रितहैं और रोम रोममें हर्ष उत्पन्न करनेया-  
ली स्त्री वाजीकरणका सर्वोत्तम क्षेत्र है अ-  
र्थात् वाजीकरण सेवनका फल स्त्रीमें प्रकट होताहै

इष्टाद्येकेकशोऽप्यर्थाः परं प्रीतिकराः स्मृताः ॥

किंपुनः स्त्रीशरीरे ये संघातेन व्यवस्थिताः ।

संघातो हीन्द्रियार्थानां स्त्रीपुनान्यत्राव्ययते ।

स्याश्रयो हीन्द्रियार्थेयः स प्रीतिजननोऽ-

धिकः ॥ स्त्रीपुप्रीतिविशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्र-

तिष्ठति ॥ धर्मार्थस्त्रीपुलक्ष्मीश्च स्त्रीपु-

लोकाः प्रातिष्ठिताः ॥

अर्थ—रूपरसादि इन्द्रियोंके पांचों विषय  
अत्यन्त प्रीतिकारक वर्णन कियेगयेहैं, और  
जब ये पांचों विषय एक स्त्रीमें एकत्र हैं तो  
स्त्री अत्यन्तप्रीतिकी खानहीस्त्रियोंके अतिरिक्त  
ये विषय और किसीजगह एकत्रित नहींहै।  
जो इन्द्रियार्थ स्त्रीमें आश्रितहै वह अत्यन्त प्राप्ति-  
वर्द्धकहै । विशेषकरके स्त्रियोंमेंही प्रीति प्राप्ति  
और स्त्रियोंमेंही सन्तान प्राप्तिष्ठितहै, धर्म  
और अर्थ स्त्रियोंमेंही प्राप्तिष्ठितहै, इसी तरह लक्ष्मी

प्रयोजयेत् ॥ एष हृष्यः परोयोगो वृहणो व-  
लवर्द्धनः ॥ अनेनाश्वइवोदीर्णो लिङ्गम-  
र्षयते स्त्रियाम् ॥

अर्थ—शरमूल, इक्षुमूल, काण्डेक्षु, इक्षु-  
बालिका, सितावर, क्षीरकाकोली, विदारी-  
गंध, कटेरी, जीवन्ती, जीवक, मेदा, वीर  
( बाराहीकन्द ) ऋषभक, खरैटी, ऋद्धि,  
गोखरू, रास्ता, केंच, सांठ, इन सबको  
तीन तीन पल लेवै । एक आढक मापकलाय  
इन सबको मिलाकर एक द्रोण जलमें चढा-  
दे और चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै  
फिर इसमें मुलहटी, दाख, अंजीर, पीपल,  
केंच, महुआ, खिजूर, सितावर ये सब पीस  
कर मिलादेवै फिर विदारीकंदका रस, आंव-  
लेका रस, ईखका रस और घी ये चारों  
एक २ आढक और एक द्रोण दूध चढा  
कर पकावै पकते पकते जब घी वचरहै त-  
ब उसे छानले फिर उसमें शर्करा और व-  
शलोचन एक एक प्रस्थ, पीपल चारपल,  
काली मिरच एक पल, दालचीनी आधे  
पल, इलायची आधेपल, केसर आधेपल  
और शहत दो कुडब डालकर सबको मिला  
लेवै । इसमें से एक एक पलकी गोली  
बनाकर अग्निबलके अनुसार प्रयोग करै ।  
यह योग अत्यन्त वृष्य, वृहणकर्त्ता और  
बलवर्द्धक होताहै । इस प्रयोगके सेवन क-  
रनेसे अश्ववत् खीगमन में प्रवृत्त होवै ।

वाजीकरण घृत ।

मापाणामात्मशुभायावीजीनानामाढकं नवम्  
जीवकर्षभकौवीरामेदामृदिशतावरीम् ।  
गंधुकंचाश्वगन्धाश्चसापयेत्कुडबोन्मि-

ताम् ॥ रसेतस्मिन् घृतप्रस्थं गव्यं दशगुण-  
पयः । विदारीणां रसप्रस्थं प्रस्थमिधुरस-  
स्य च । दत्वामृद्विनासाध्यं सिद्धं सर्पि-  
निधापयेत् । शर्करायास्तु गाक्षीर्याः क्षौद्र-  
स्य च पृथक् पृथक् ॥ भागांश्चतुष्पलांस्तत्र  
पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ।  
पलपूर्वमतोलीद्वा ततोऽन्नमुप योजयेत् ॥

यइच्छेदक्षयं शुक्रं शेषस्योत्तमं वलम् ॥

अर्थ—नये उरद एक आढक, नये केंच  
के बीज एक आढक, जीवक, ऋषभक, बारा-  
हीकंद, मेदा, सितावर, मुलहटी और असगंध  
इन सबको एक एक कुडब लेवै चौगुने जल  
में चढाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर  
छानले फिर उस में एक प्रस्थ गौका घी,  
दसगुना दूध, विदारीकंदका रस एकप्रस्थ,  
ईखका रस एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर  
मन्दी मन्दी आग पर पकावै, जब घृत शेष  
रहजाय तब उसे निकालकर शर्करा, वशलो-  
चन, शहत प्रत्येक चार चार पल, पीपल  
एक पल लेकर ऊपर कहेहुए गुटकाकी तरह  
एक २ पलका सेवन करै, औषध सेवन के  
पश्चात् भोजन करै । इसके सेवन करनेसे  
शुक्र अक्षय और पुंजननेन्द्रिय अत्यन्त बलिष्ठ  
होजाती है ॥

वाजीकारण पिण्डरस ।

शर्करामापविदलास्तु गाक्षीरीपयो घृतम्  
गोधूमचूर्णपश्यानि सर्पिष्युत्कारिकां पचेत्  
तानातिपकामृदितां कौवकुटे मधुरे रसे ॥  
सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्णैः यथा सान्द्रो भवेद्रसः ।  
एष पिण्डरसो हृष्यः पौष्टिको बलवर्द्धनः  
अनेनाश्वइवोदीर्णो वलीलिङ्गं समर्पयेत्

शिशितित्तिरिहंसानामेवंपिण्डरसोमतः॥

अर्थ—शर्करा, उरदकी दाह का चून, वंशलोचन, दूध, घी, और गेहूँका चून इन सबको मिलाकर लपसी बनावे । पकाते समय जब कुछ पकजाय तबही इसमें कुतकुटमांसरस डालदेवै और गरममें ही सुगंधित द्रव्य इलायची आदि डालकर धीरेधीरे चलाता रहै यहाँतक कि वह गाढापड़जाय । यह पिण्डरस अत्यन्त वृष्य पुष्टिकर्ता और बलवर्द्धक होता है, इसके सेवन से घोडेके समान रतिकरने में इच्छा होती है । मोर, तीतर और हंसों का पिण्डरस भी इसीतिरह बनता है ।

बलकारकरस ।

घृतमापान्सवस्ताण्डानसाधयेन्माहिपे-  
रसे । भर्जयेत्तरसंपूतंफलाम्लंनवसर्पिणि ॥  
ईपत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः ।

एषवृष्यश्चवर्ष्यश्चवृहणश्चरसोत्तमः॥

अर्थ—घी, उरद, बकरेके अंडकोप इनको भेंसके मांसरसमें पकाकर रसको निकाल लेवै इन रसमें ताजी घी, फलोंकी खटाई, थोडा सा नमक धनियाँ, जीरा, सोंठ मिलाकर सेवन करै । यह रस वृष्य, बलकर्ता, वृहणकर्ता और बहुत उत्तम होता है ।

दूसरा वृष्यरस ।

चट्कास्तिचरिरसेतित्तिरीनकौक्कुटेरसेकुक्कु-  
टान्वाहिणरसेहंसेवाहिणमेवचानवसर्पि-  
पिसन्तप्तान्फलाम्लान्कारयेद्देसान् । मधुरा-  
न्वायथासात्स्म्यगन्धाद्वान्वलवर्द्धनान्॥

अर्थ—चटकमांसको तीतरके मांसरस में, तीतरके मांसको मुर्गेके मांसरसमें, मुर्गमांसको मोरके मांसरसमें, मोरमांस को हंसके मांसरस

में सिद्ध करके गरम गरम को ताजी घी में छोंककर अनारदाने की खटाई और इलायची आदि मसाले डालकर मिश्रीसे मीठा कर के सेवन करै तो बलकी वृद्धि होय ।

वृष्यमांस ।

हृषिश्वट्कमांसांनान्गत्वायोऽनुपिवेत्यप्य-  
नतस्यबलशैथिल्यस्यानशुक्रक्षयोनिशि ।

अर्थ—जोपेट भरकर चटकमांस खाकर ऊपरसे दूधपीले रात्रि में उसका बल तथा शुक्र कभी क्षीण न होगा ।

वृष्य प्रयोग ।

मापयूपेणयोभुक्त्वाघृताढ्यंपाठिकौदनम् ।  
पयःपिवतिरात्रिसकृत्स्नान्जागर्त्सिवेगवान्  
ननास्वपितिरात्रीपुनिस्तब्धेनचशेषशा ॥  
तप्तःकुक्कुटमांसांनान्भृष्टानान्करेतसि नि-  
स्त्रावपमत्स्याण्डरसंभृष्टसर्पिर्भिक्षयेत् ॥  
हंसवाहिणदक्षानामेवमण्डानिभक्षयेत् ।

अर्थ—मांयूप के साथ घृतप्लुत भात खाकर उपरसे दूध पीवे वह ऐसा वेगवान् होजाय कि रात्रिभर न सोवै । अथवा मगर के वीर्यमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्ति पर्यंत सेवन करै तो शेषकी निस्तब्धतासे रात्रिमें नींद न आवै । अथवा मछली के अंडोंके रसको निकालकर घृतमें भूनकर खाय अथवा हंस, मोर या मुर्गेके अंडोंके रसको इसी तरह सेवन करै तो वाजीकरण होता है ।

वाजीकरण सेवनीविधि ।

स्रोतःमुशुदेज्यमलेशरीरेवृष्यंयदाद्यं हित-  
मत्तिकालेवृष्यायतेतेनपरमनुष्यः । तद्-  
वृहणञ्चैवलमदञ्च । तस्मात्पुराशोध-  
नमेवंकार्यंवलानुरूपंनदिवृष्ययोगाः ।



सिध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः स्निग्धैश्च वासा  
सिरागयोगाः ॥

अर्थ—शरीरके शुद्ध होनेपर तथा स्रोतः-  
समूह के शुद्ध होनेपर यदि वृष्यपदार्थोंका  
सेवन किया जाय तो उसके सेवन से मनुष्य  
बलके समान वृष्य हो जाता है और उसही समय  
वह वृष्य पदार्थ वृंहणकर्ता और बलवर्द्धक होता  
है । सलिये पदार्थोंके सेवनसे पहिले वमन वि-  
चनादिसे शरीरको शुद्ध कर लेना चाहिये बिना  
देह की शुद्धिके वृष्य योग निष्फल होते हैं जैसे  
मैले वस्त्रको रंगनेसे उसपर रंग नहीं चढ़ता है ।  
प्रथम पादका संक्षिप्त वर्णन ।

वाजीकरणसामर्थ्यसंस्त्रीयस्य चैव यः ॥

ये दोषानिरपत्यानां गुणाः पुन्रवताश्च ये ।

उक्तास्ते शरमूलीये पादे पुष्टिवलपदाः ॥

शपञ्चसंयोगावीर्यापत्याविवर्द्धनाः ॥

अर्थ—इस शरमूलीय नामक प्रथम पाद में  
वाजीकरणके योग्य स्त्रीको क्षेत्रत्व, जिसको  
जो स्त्री वाजीकरण योग्य, निःसन्तान पुरुष  
के दोष, सन्तानवाले पुरुषके गुण तथा पुष्टि  
और बल बढ़ाने वाले, वीर्योत्पादक तथा सन्ता-  
नोत्पादक पन्द्रह प्रयोगोंका वर्णन किया गया है  
चिकित्सितेशरमूलीयो वाजीकरण पादः प्रथमः ॥

द्वितीयपादः ।

अथात आसिक्तक्षीरीयवाजीकरणपादे  
व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि-अब हम आसिक्तक्षीरीय नाम द्वितीय  
पादकी व्याख्या करेंगे ।

सन्तानोत्पादक गुटिका ।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमधुर्गन्धुद्रपष्टिकम् ।

अथैतत्तृतीयपादः ।

क्षुण्णं विमर्दिते क्षीरे पीडयेत् सुसमाहितः ।  
गृहीत्वा तं रसं पूतं गन्धेन पयसा सह । बीजा-  
नामात्मगुप्ताया धान्यमापरसेन च ॥ बला-  
याः सर्पपण्यैश्च जीवन्त्या जीवकस्य च । ऋ-  
द्धचर्षभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्य च ॥ शता-  
वर्षा विदार्याश्च द्राक्षा खजूरयोरपि । संयु-  
क्तमात्रया वैद्यः साधयेत्तत्र चावपेत् ॥ तुगा-  
क्षीर्या समापाणां शालीनां पष्टिकस्य च ।  
गोधूमानाञ्च चूर्णानियैः स सान्द्रीभवेद्रसः ।  
सान्द्रीभूतञ्च तं कुर्यात्प्रभूतमधुशर्करम् ।  
गुडिकावदरैस्तुल्यास्ताश्च सर्पिपेसाधये-  
त् ॥ तापय शिमशुज्जानः क्षीरमांसरसाशनः ॥  
पश्यत्यपत्यं विपुलं वृद्धोऽप्यात्मजमभयम् ॥

अर्थ—पूर्णरस, हरे और शुद्ध साठी  
चांवलको दूधमें भिजोवै जब बहुत भी-  
ज जाय तब उन्हें खरल करले और दूधमें  
घोलकर वस्त्र में छान लेवै । इस रस में  
गौका दूध मिलावै । फिर इसमें केंचके  
बीज, धनिया, मापरस, खरैटी, मुद्रपर्णी  
मापपर्णी, जीवन्ती, जीवक, आदि, ऋषभक  
काकोली, गोखरू, मुलहठी, सितावर, विदा-  
रीकन्द, दाख, खिजूर, इन सबका काथ उ-  
समें मिलाकर पका लेवै जब ये पकने पर  
आजाय तब बंशलोचन, उरदका चून,  
शाठी चांवलका चून, पष्टिक चून, गेहूँका  
चून इन को धी में भूनकर उसमें डालदे  
और कलछीसे चलाता रहे जबतक वह गा-  
ढा होजाय, गाढा होनेपर शहत और सकेद  
बुरा बहुतसा डालदे, फिर इसकी बेरकी  
बराबर गोली बनाकर धी में तल लेवै ।  
अपनी अग्निके बलके अनुसार इसका से-

वनकर और ऊपर खुद दूध पीवै, खुदमां-  
सरस पीवै। इस बाजीकरणके सेवन करने  
से बुढ़ापे भी दीर्घजीवी सन्तान होती है।

द्वितीय प्रयोग।

चटकानांसहसा नादक्षणांशिखिनांतथा।

शिथुमारस्यनकस्याभिषक्त्युक्राणिसंहरत्।  
गव्यंसर्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवसामपि ।

पट्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णगोधूममेवच ॥

एभिःपूपलिकाःकाय्याःशङ्कुल्योवर्तिका

स्तथा ॥ पूपाधानाश्चविविधाभक्ष्याश्च ।

न्येपृथग्विधाः । एषांप्रयोगाद्भक्ष्याणां

स्तब्धेनापूर्णरेतसा ॥ शेषसावाजिवद्या

तियावदिच्छंस्त्रियोनरः ।

अर्थ—चटक, हंस, मुर्गी, मोर, शिशुमार

और मगरका घीय लवे तथा गीका घी

शूकरकी चर्बी, चटककी चर्बी तथा चानलों

का चून और गेंहूँका चून इनसबको मिला-

कर पूरी। शङ्कुली बावाटी अथवा और तरह

तरहके भक्ष्य पदार्थ बनालेवै। इनका सेवन

करनेसे शैफेन्द्रिय स्तब्ध और शुक्रसे भरी

हुई रहती है अथच पुरुष इच्छानुसार स्त्री

गमन करसकता है।

तीसरा प्रयोग।

आत्मगुप्ताफलंमापःखर्जूरानिशतावरीम्

शृङ्गाटकानिमृद्धीकांसाधयेत्प्रसृतोन्मितां

क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंपतत्प्रस्यावशेषतम् ।

शुद्धेनवाससापूतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ।

शर्करायास्तुगादीर्याःसर्पिषोऽभिनवस्य

च॥ तत्पाययेतसञ्चैद्रपट्टिकान्नश्चभोजये

त्। जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्द

ति॥ नरोऽपत्यंयुविपुलंयुवैवचसहृष्यति।

अर्थ—केंचकेवाजि, उरद, खिजूर, सितावर-

सिंघाडे और दाख इनसब को एक एक प्र-

सृत ( ८ तोले ) लेवै इनमें एक प्रस्थ दूध

और एक प्रस्थ [ ६४ तोले ] जल डालकर

सिद्ध करै। एक प्रस्थ जल शेष रहने पर

उत्तारकर छान डाले और इस रसमें शर्क-

रा, वंशलोचन और तार्जी घी प्रत्येक तनि तीन

प्रसृत मिलादेवै इस आपैध को शहतमें मिलाकर

सेवनकरै चावलको भात खाय, जराप्रस्त आ-

र निर्वल मनुष्य भी इसके सेवनसे युवाकी त-

रह आल्हादित होकर बहुत सन्तानप्राप्तकरेगा

चौथा प्रयोग

खर्जूरिमस्तकंमापानपयस्यांसशतावरीम्

खर्जूराणिमधूकानिमृद्धीकामजडाफलम्

पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलिलाढ

के। तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंविषाचयेत्।

क्षीरशेषेणतेनाद्यात्पृताढ्यंपट्टिकांदिनम्॥

सशर्करेणसंयोगेपपट्टप्यःपरस्मृतः ।

अर्थ—खिजूर, उरद, क्षीरकाकोली, सिता-

वर, खिजूर, महुआ, दाख, केंचके कीज

इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक

जलमें चढ़ादेवै जब चौथाई रहजाय तब

छानकर इस रसमें एक प्रस्थ दूध पकावै

जब जल जलजाय और दूध शेष रहजाय

तब उसका सेवनकरै। ऊपरसे घृतप्लुत

भातका भोजनकरै भातमें सफेद बुरामी मि-

लालेवै। यह अत्यन्त वृष्य योग है।

पाँचवां प्रयोग।

जीवकर्षभक्तौभेदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम्॥

खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

शृङ्गाटकींविदारञ्चिनवसार्पःपयोजलम्

शहत और खांड मिलाकर पानकरै तौ नि-  
श्चय सन्तान होय ।

### अन्यप्रयोग ॥

त्रिशत्सुपिष्टाः पिप्पल्यः प्रकुञ्चेतैलसर्पिपोः  
भृष्टाः सशर्कराशोद्राः क्षीरधारावदोहिताः ।  
पीत्वा ययावल् चोद्धपष्टिकं क्षीरसर्पिपा ।  
धृक्त्वानरात्रिमस्तब्धं लिङ्गं पश्यति नाक्षरत्

अर्थ—तीस पीपलों को पीसकर चार तो-  
ले घी तेल में भून लेवै, फिर इसमें खांड  
और घी मिलाकर एक पात्रमें धरले और  
उसी पात्रमें गौ का दूध दोहकर बलके  
अनुमार पान करै और ऊपर से दूध, घी  
और भातका भोजन करै तो रात्रिभर शोफेन्द्रिय  
शिथिल न होगी और स्तम्भता भी होगी ॥

### अन्यप्रयोग ॥

श्वदंष्ट्राया विदाय्याश्चरसेक्षीरचतुर्गुणे ।  
घृताढ्यः साधितो वृष्यामोपपाष्टिकपायसः ॥

अर्थ—गोखरुकारस, विदारीकन्दकारस इ-  
न दोनोंसे चैगुना दूध लेकर उरद और  
सठौचावल्फो खीर बनाकर घी डालकर  
भोजनकरै तो यह भी वृष्य है ॥

### अन्यप्रयोग ॥

फलानां जीवनीयानां स्निग्धानां रुचिका-  
रिणाम् । कुडवश्चूर्णितानां स्यात्स्वयंगुप्ता  
फलस्य च ॥ कुडवश्चैव मापाणां द्रौढौ च  
तिलमुद्गयोः ॥ गोधूमशालिचूर्णानां कुडव कु  
डवो भवेत् ॥ सर्पिषः कुडवश्च कस्तुर्वै  
क्षीरसंयुतम् । पक्त्वा पूषलिकाः खादेद्  
ह्यस्युर्यादियाः पितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और रुचिकारक जीवनीय  
गणोंके द्रव्योंके फलोंका एक कुडवचूर्ण, के

चके वीजोंका चूर्ण एक कुडव, उरद का  
चूर्ण दोकुडव, तिलकाचून दोकुडव, मूंगका  
चून दोकुडव, मेहकाचून एककुडव, शाली-  
चावलों का चून एक कुडव घी, दो कुडव  
इन सबको दूधमें गांढकर घीमें उतार लेवै  
परन्तु जिसके बहुत स्त्रियां हो वही इसका  
प्रयोग करै ॥

### अन्यप्रयोग ॥

घृतं शतावरीगर्भक्षीरेदशगुणे पचेत् । शर्क-  
रापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्वृष्यमुत्तमम् ॥

अर्थ—घी और सितावरकी गुली को दस  
गुने दूध में पकावे फिर इस में खांड, पी-  
पल और शहत मिलाकर भोजन करै तौ  
वह उत्तम वृष्य प्रयोग होवै ॥

### अन्यप्रयोग ॥

कर्पमधूकचूर्णस्य घृतं क्षाद्रैः समांशिकम् ।

प्रयुक्तं पयश्चानुनित्यवेगः स नाभवेत् ॥

अर्थ—मुलहटाका चूर्ण एककर्प और इसमें  
बराबरका घी शहत मिलाकर चाटले ऊपर  
से दूध पीले तौ अत्यन्त वेगकी प्राप्तिहोवै ॥

### अन्यप्रयोग ॥

घृतक्षीराशनो निर्भो निर्ग्याधिर्नित्यगोषु वा  
सङ्कल्पप्रवणो नित्यनरः स्त्रीषु वृष्यते ॥

अर्थ—यदि दूध और घीका सेवन ऐसा  
पुरुष करै जो निर्भय, व्याधिरहित आन्हिक  
कर्मका करनेवाला और संकल्प करनेवाला हो  
तौ विजारकी तरह स्त्रियोंसे रमण करै ।

### अन्यप्रयोग ॥

कृतैककृत्याः सिद्धार्थी ये चान्योऽन्यानुयति-  
नः । कलामुवाहाये तुल्याः सत्वेन वयसा च  
ये ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशालिशौचस-

मन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोका  
गतव्यथाः ॥ येतुल्यशीलायेमक्तायोपि-  
यायेमियम्बदाः । तैर्नरः सहविस्रब्धः सुवय  
स्यैष्टपायते ।

अर्थ—एकही कर्मके करनेवाले, सिद्ध संकल्प,  
अन्योन्यानुवर्ती, बाह्यफला तथा सत्व और  
वयमें परस्पर तुल्य, सत्कुलोद्भव, प्रशंसनीय,  
चतुर, शील सम्पन्न, पवित्रता परायण भोगि-  
या, हृष्ट, शोकरहित, गतव्यथ, समान शीलस-  
म्पन्न, अन्योन्य प्रेमी, प्रियवक्ता ऐसे समान वय  
वाले पुरुषोंके साथ रहनेसेभी मनुष्य वृष्य होताहै।  
अन्यप्रयोज ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्याविभूषणैः  
गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ।  
विहङ्गानां स्तेरिष्टैः स्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः ।  
संवाहनैर्वस्त्रीणामिष्टानाञ्च बृपायते ॥

अर्थ—तैलमर्दन, उबटना, स्नान, अतर-  
लगाना, फूलमाला धारणकरना, आभूषण  
पहरना, सुखदायक घर, सेज, आसनोंपर  
सौना बैठना, सुन्दर साव्रत हलके मनोनु  
कूल वस्त्र धारणकरना, चित्ताकर्षक पक्षियों  
के कलरव श्रवणकरना, स्त्रियोंके भूषणोंकी  
छनाछन श्रवणकरना, सुन्दर मनोनुकूल  
स्त्रियोंसे पगचप्पी करना इन कार्यों से भी  
मनुष्य वृष्य होताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

मत्तद्विरेकाचरिताः सपत्न्याः सलिलाशयाः ।  
जात्युत्पलमुगन्धीनिशीतगर्भगृहाणि च ॥  
नद्यः फेनोत्तरीयाश्च गिरयो नीलसानवः ।  
उन्नतिर्नीलमेघानां रम्यचन्द्रोदयानिशाः ।  
वायवः सुखसंस्पर्शाः कुमुदाकारगन्धिनः ।

रतिभोगक्षमाराग्यः सङ्कोचागुरुबलभाः ॥  
सुखाः सहायाः परपुष्टयुष्टाः फुल्लावनान्ता  
विशदान्नपानाः गान्धर्वशब्दश्च सुगन्धमा  
ल्याः सत्त्वं विशालं निरुपद्रवञ्च । सिद्धा  
र्थताचाभिनवश्च कामः स्त्रीचायुधं सर्वमि-  
हात्मजस्या वयोनवजातमदश्च कालो ह-  
र्षस्य योनिः परमानराणाम् ॥

अर्थ—ऐसे जलाशयोंपर विहारकरना  
जहां खिलेहुए कमलोंपर मृतवाले भौरे गुं-  
जार कर रहे हों, जहां चमेली और कमलकी  
सुगन्ध की महक भाररही हो, शीतल घरहों,  
जहां झगदार नदियां बहरही हों, ऐसे पर्वतों  
पर विहारकरना जिनके नीलवर्ण के शिखर  
अत्यन्त शोभायुक्त हों, काली २ घटा सिरके  
ऊपर धिर आई हो, रात्रिमें जब चन्द्रमाकी  
शीतलचांदनी छिटफ रही हो, जहां कुमोदनियें  
के गन्धसे सुगन्धित पवन शरीरको स्पर्श  
करता हो, रमणके योग्य जाड़ेकी रात्रियों में,  
जहां बड़े बूढ़ोंका सकोचन हों, जहां सुखो  
त्पादक सम्पूर्ण सामान उपस्थित हो, खिलेहुए  
उपबनों में जहां कोकिला कुहुक मार रहे हो,  
विशद अन्नपान का सेवन हो, गाने धजाने  
की मन्द २ तान कान में प्रवेश कर रही हो  
सुगन्धित फूलमाला धारण कर रखे हों,  
विशाल और उपद्रव रहित सत्व सेवन, सिद्ध  
संकल्पता, नित्य नई अभिलाषाका पूर्ण होना  
कामदेवकी शस्त्र रूप स्त्रियोंकी उपस्थिति, नवी  
नवय, वसन्त ऋतुये सबवतें मनुष्योंको हार्पित  
करने वाली हैं ॥

तृतीयपादका संक्षिप्त वर्णन

प्रहर्षयानयोयोगान्याख्यातादशपञ्च च ।

लीचांबलकाचून, साठीचांबलकाचून, इनमें खांड विदारीकन्द और तालमखाना डालकर दूधमें मांढ कर घीमें टिकडी उतार लेवै, इनको खाकर ऊपरसे दुग्ध पानकरै तौ बहुत ही शीघ्र अत्यन्त वृषताकी प्राप्तिहोती है ॥

### अन्य प्रयोग

शर्करायास्तुलैकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः ।  
प्रस्थोविदार्य्याः चूर्णस्यपिप्पल्याः प्रस्थएव  
च । अर्द्धाढकन्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्पाभि-  
नवस्यच ॥ तत्सर्वमूर्च्छितंतिष्ठेन्मासिके  
घृतभाजने । मात्रामभिसमांतस्यप्रातःप्रातः  
प्रयोजयेत् ॥ एषवृष्यः परंयोगः बल्योबृंह  
णएवच ।

अर्थ—खांड एकतुला, गौकाधी एक तुला, विदारीकन्द एकप्रस्थ, पीपल एक प्रस्थ, वंशलोचन आधा आढक, नयामधु आधा आढक, इन सबको मिलाकर घी की चिकनी हांडीमें भरदे, अग्निघट के अनु-सार प्रतिदिन प्रातः काल इसकी मात्रा सेवन करे । यह योग अत्यन्त वृषताकारक, बलकारक और बृंहणकर्त्ता है ॥

### अन्य प्रयोग ।

शतावर्थाविदार्याश्चतथामापातमगुप्तयोः  
श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्काथानजलेपुपृथक्पृथक्  
साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेषुनः ॥  
शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ।

अर्थ—सितावर, विदारीकन्द, उरद, कै-चके बीज, गोखरू इन सबका पृथक् २ एक २ अंजलिक्वाथ लेवै इनमें एक प्रस्थ घी और आठगुना जल डालकर पकावै, फि- २ खांड और शहत मिलाकर वह मनुष्य इस

को सेवन करे जिस सन्तान की इच्छा हो।  
अन्यप्रयोग ।

घृतपात्रंशतगुणेविदारिस्वरसेपचेत् ॥ सि-  
द्धेषुनः शतगुणेगव्येपयसिसाधयेत् । शर्क-  
रायास्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्येधुरसस्यच ॥ पि-  
प्पल्याः सजडायाश्चभागैः पादार्शिकैर्युत-  
म् ॥ गुड़िकाः कारयेद्दियोयथास्थूलमुदुम्ब-  
रम् ॥ तासांप्रयोगात्पुरुषः कुलिङ्गइव  
हृष्यति ।

अर्थ—एकपात्र घीको सौगुने विदारीकन्द के रसमें पकावै, फिर घृतके शेष रहने पर उसे सौगुने गाँके दूधमें पकावै, फिर जब घी शेषरहजाय तब उसकी चौथाई खांड, वंश-लोचन, शहत, तालमखाने पीपल और कै-चके बीज डालकर गूलर के बराबर गोली बनालेवै । इनके सेवन करनेसे मनुष्य चि-रंटेकी तरह वृष्य हो जाता है ।

### अन्य प्रयोग ।

सितोपलापलशतंतदर्द्धनवसर्पिषः क्षौद्रपा-  
देनसंयुक्तंसाधेयज्जलपादिकम् ॥ सान्द्र-  
क्षौद्रमचूर्णानांपादंस्तीर्णेशिलातले । शु-  
चौश्चक्ष्णेषामुत्कीर्यमर्दनमेवोपपादयेत् ॥ शु-  
द्धाउत्कारिकाः कार्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभ  
तासांप्रयोगाद्भजवान्नारीः सन्तर्पयेः नरः ।

अर्थ—खांड सौपल, ताजीघी पचासपल शहत पच्चासपल, और जल पच्चासपल इनको अग्निपर चढ़ाकर चलातारहै जब गा-ढापडनेलगै तब २५ पल गेहूँका, चूनमि-छाकर धीरे २ पकाकर उतारले, फिर एक स्वच्छ सिलपर डालकर सबको माद ढाले, यह चन्द्रमण्डल के समान उत्कारिका न-

नतीहै इसके सेवनसे मनुष्य हाथी की तरह स्त्रीको प्रसन्न करनेमें समर्थ होता है ।

**अन्यप्रयोग ॥**

यत्किञ्चिन्मधुरस्निग्धजीवनं वृंहणं गुरुहर्षणं मनसश्चैव सर्वन्तद्रूप्यमुच्यते ॥ द्रव्यैरेवं विधैस्तस्माद्भावितः प्रमदां व्रजेत् । आत्मवेगेन चोदीर्णः श्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ गत्वा स्नात्वा पयःपीत्वा रसं चानुशयीत न । तथा साप्यायते भूयः शुक्रञ्च वलेमवच ॥

अर्थ—जो २ पदार्थ मीठे, स्निग्ध, जीवनकर्ता, वृंहण, भारी, और मनको हर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं वे सब द्रव्य होते हैं इस लिये मधुर द्रव्योंका सेवन करके स्त्री गमन में प्रवृत्त होवे । आत्मवेगसे उदीर्ण होकर वा स्त्रीके गुणोंसे प्रहर्षित होकर स्नान करके दुग्ध वा मांसरस पान करके शयन करे तो पूर्ववत् बल वीर्यकी वृद्धि होय ॥

**शुक्रोपलब्धिकासमय ॥**

यथामुकुलपुष्पस्य सुगन्धो नोपलभ्यते ।

लभ्यते तद्विकाशात्तु तथा शुक्रं हि देहिनाम् ॥

अर्थ—जैसे झूलकी कली में यद्यपि सुगन्ध होनी है परवहमाह्नमनही होती वह सुगन्धि झूल के खिलनेपर ही मिलती है इसी तरह वीर्य यद्यपि बालकपन में भी होता है परन्तु बिना युवावस्थाके प्राप्त हुए उसकी उपलब्धि नहीं होसकती है ॥

**सम्भोगकाल ।**

नर्त्तेवोऽपि द्वापदात्सप्तत्याः परतो न च ।

आयुष्कामो नर स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥

अतिबालोऽसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियां व्रजन्

उपतप्येत स हसातडागमिव काजलम् ॥

शुष्करूपसंयथा काष्ठं जन्तुजग्धं विजर्जरम् ।

स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा बृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दीर्घजीवी होना चाहता है उसे उचित है कि सोलह वर्षकी अवस्था से पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थासे पीछे स्त्री सहवासमें प्रवृत्त न हो । बालकपनमें सम्पूर्ण धातु अपूर्ण होती है इससे उस अवस्थामें स्त्रीसहवास करनेसे उसका वीर्य ऐसे शुष्क होजाता है जैसे गरमीके कारण थोड़े जलका सरोवर सूखजाता है ॥ जैसे सूखा रूखा कीड़ों से खाया हुआ और जर्जरीभूतकाष्ठ हाथ लगते ही टूट जाता है इसी तरह बृद्ध पुरुष भी स्त्रीसहवास करनेसे विशीर्ण होजाता है ॥

**शुक्रक्षीण के कारण ।**

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्मणात् क्षयं गच्छत्यनश्नानात् स्त्रीणाञ्चातिनिपेयणात्

अर्थ—बुढ़ापेसे, चिन्ताप्रसूत होनेसे रोगोंसे परिश्रमजनक कार्योंके करने से, भोजन न करनेसे वा स्त्रियोंके अत्यन्त सेवनसे शुक्रक्षीण होजाता है ॥

क्षयाद्भयादविश्रम्भाज्जोकात् स्त्रीदोषदर्शनात् नारीणां भ्रसन्नत्वादाभिचारादसेवनात् ॥ वृत्तस्यापि स्त्रियोगं तु न शक्तिरुपजायते देहसत्त्वबलापेक्षी हर्षः शक्तिश्च हर्षजा ॥

अर्थ—क्षय, भय, अविश्वास, शोक, स्त्रीदोषदर्शन, स्त्रियोंकी असन्नता, अभिचार-असेवन इन कर्मोंसे तथा जिस का मन स्त्रीसंग से तृप्त होगया हो उसको स्त्रीगमन की शक्ति उत्पन्न नहीं होती है । क्योंकि हर्ष तो देह बल और सत्त्वबलके आधान है और शक्ति हर्ष से उत्पन्न होती है ॥

## शुक्र का स्थान ।

रसइक्षौयथादधिसर्पितैलान्तिलेयथा ।

सर्वत्रानुगतदेहेभुक्तं संप्रशनेतथा ॥ तत्

स्त्रीपुरुषसंयोगेष्टासंकल्पपीडनात् ।

शुक्रमच्यवतेस्थानाज्जलमाद्रात्पटादिवा ॥

अर्थ—जैसे ईश्वर रस, दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता है उसीतरह वीर्यभी सर्व देहमें तथा त्वचामें रहता है । वह वीर्य स्त्री पुरुषके संयोग, चेष्टा, संकल्प, पीडनादिसे ऐसे बाहिर निकल आता है जैसे गीले वस्त्रसे जल टपकता है ।

मय वीर्य निकलने के हेतु ।

पातर्पात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवादपि  
अनुपुवत्वात्सौक्ष्म्याच्चद्रुतत्वान्मारुतस्य  
च ॥ अष्टाभ्यणभ्यहेतुभ्यःशुक्रं देहात्मसि  
च्यते । चरतो विश्वरूपस्य रूपद्रव्यं यदुच्यते ॥

अर्थ—हर्ष, अभिलाषा, सरलता, पिच्छिलता, गुरुता, द्रवता सूक्ष्मता और वायुके वेग इन आठ कारणोंसे शुक्र देहसे बाहर निकलता है । यह शुक्र विश्वरूपमें चरणशील द्रव्यों की मूर्ति है ॥

## फलोपयोगीशुक्र ॥

बहुलं मधुरं स्निग्धं अविस्तरुषीच्छलम् ।

शुक्रं बहुचयच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम् ॥

अर्थ—जो वीर्य गाढा, मधुर, स्निग्ध, दुर्गन्धरहित, पिच्छिल, गुरु, शुक्लवर्ण और बहुल होता है वह निश्चयफलवान् होता है ।

बाजीकरण की निरुक्ति ॥

येन नारीपुंसामर्थ्यबाजीवल्लभतेनरः ।

अज्ञेय्याभ्यधिकं येन बाजीकरणमेव तत् ।

अर्थ—जिससे मनुष्य को स्त्रियों के साथ

सम्भोग करनेकी घोड़े की तरह शक्ति होजाती है और सम्भोग करनेमें अधिक प्रवृत्ति होती है उसहीको बाजीकरण कहते हैं ।

## चतुर्थपादकी मूची ।

हेतुर्योगोपदेशस्य योगाद्वादशचोत्तमाः यत्  
पूर्वमेथुनात्सेव्यसेव्यंतन्मैथुनादनु ॥ यदा  
नसेव्याः प्रमदा कृत्स्नः शुक्रविधिश्च यः ।

निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टपुमान्जातवलादिकम् ॥

अर्थ—दूसरे अध्यायके इस पुमान् जात वलादि नामक चतुर्थपाद में बाजीकरणोपयोगी प्रयोगों के हेतु, बाजीकरणके उत्तम २ बारह प्रयोग, जो यस्तु मैथुनसे पहिले तथा पीछे सेवन करने की हैं । स्त्री से सम्भोग न करनेका काल, सम्पूर्ण शुक्रविधि और बाजीकरण शब्द की निरुक्तिवर्णन की गई है ॥

## जातवलादिको नाम चतुर्थपादः

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशधिर

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां चिकित्सि-

तस्थाने बाजीकरणप्रयोगकथनं

नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—=○)I+I(○=—

## अथ तृतीयोऽध्यायः

अथातो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि 'अब हम ज्वर चिकित्सित नाम अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

विज्वरं ज्वरसन्देहपर्यच्छत् पुनर्वसुम् ।

विविक्ते शान्तमासीनमश्विंश कृताञ्जलिः ।

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजो बली ॥

ज्वरः प्रधानं रोगाणामुक्तो भगवतापुरा ॥  
तस्य प्राणिसपत्नस्य ध्रुवस्य मलयोदये ।  
प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावं कारणानि च ॥  
पूर्वरूपमधिष्ठानं बलकालात्मलक्षणम् ।  
व्यासतो विधिभेदश्च पृथग्भिन्नस्य चाकृ-  
तिम् ॥ लिङ्गनामस्य जीर्णस्य सन्निपेक्षं क्रि-  
याक्रमम् । विमुञ्चतः प्रशान्तस्य चिन्हं  
यच्च पृथक् पृथक् ॥ ज्वरावशिष्टोरस्यश्च  
यावत्कालं यतो यतः । प्रशान्तः कारणैर्वै-  
श्वपुनरावर्तते ज्वरः ॥ यावदापि पुनरावृत्ति-  
क्रियाः प्रशमयन्ति तम् । जगद्विधायकस्त-  
र्धं भगवन् ! वक्तुमर्हसि ॥ तदश्वेशस्य  
घचो निश्म्य गुरुरब्रवीत् । ज्वराधिकारे  
यथा ज्ञप्यन्त तसौ म्य । निखिलं शृणु ॥

अर्थ—अग्निवेशने हाथ जोड़कर ए-  
कान्त में शान्त भावसे बैठे हुए निरोग पुन-  
र्बन्धुसे ज्वरके विषयमें यह प्रश्न किया कि हे  
भगवन् ! आपने पहिले यह कहा था कि “ज्वर  
रोगोंमें प्रधान है यह देह इंद्रिय और मनको  
सन्तप्त करनेवाला और बली है यह सम्पूर्ण  
रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ है” इसलिये इस  
प्राणोंके नाश करने वाले और जन्म समय और  
मरण समयमें अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति  
प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल,  
काल, लक्षण, विस्तारपूर्वक विधिभेद, जुदे २ ज्व-  
रकी जुदी २ आकृति, आम और जीर्णज्वर  
के लक्षण और चिकित्सा का क्रम, ज्वरके  
छोड़नेके तथा शान्त होनेके पृथक् २ लक्षण  
ज्वरलक्ष्य पुरुष की जितने दिन और जिस  
कारण से रक्षा करनी चाहिये, शान्त हुआ  
ज्वरभी जिन कारणोंसे फिर उत्पन्न होजाता

है, जिस चिकित्सा से फिर उत्पन्न हुआ  
ज्वर शांत होजाता है, हे भगवन् ! ये सब  
आप जगतके हितके लिये मुझसे कहिये ।  
अग्निवेशके इस वचनको सुनकर  
पुनर्वन्धु बोले कि हे सौम्य ! ज्वराधिकार में  
जो कुछ वर्णनके योग्य विषय हैं उसे सुन ॥

ज्वरके पर्यायवाचीनाम ॥  
ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च ।  
एकार्थनामपर्यायैर्वैविधिरभिधीयते ॥

अर्थ—ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और  
आंतक ये सब एकार्थवाची शब्द ज्वरके पर्याय हैं

ज्वरका कारण ॥

तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषा शरीरमानसाः ।  
देहि न न हि निर्दोषं ज्वरः समुपसंवते ॥ क्ष-  
यस्तमो ज्वरः पाप्मा मृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः  
पञ्चत्वप्रत्ययान्तराणां च द्वानां स्वेन कर्मणा ॥  
इत्यस्य प्रकृतिः प्रोक्ता प्रवृत्तिस्तु परिग्रहः ।  
निदानपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्च दारुणात् ॥

अर्थ—शारीरिक और मानसिक दोष ज्व-  
रकी उत्पत्तिके कारण हैं दोषरहित प्राणी  
को ज्वर कभी नहीं सताता है । अपने २  
कर्मोंसे बद्ध मनुष्योंके मर जानेके निश्चय  
से यह आत्मज ज्वर क्षय तम, पाप्मा और  
मृत्यु कहलाता है । यह ज्वरकी प्रकृति वर्णन  
की गई है, प्रवृत्ति कोहो उत्पत्ति कहते हैं ।  
यह प्रवृत्ति रुद्र के दारुण कोपसे हुई है यह  
बात निदानस्थानमें वर्णन कर चुके हैं ॥

ज्वरोत्पत्तिमें विशेष वर्णन ।

द्वितीये हि युगे सर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।  
दिव्यं स हस्त्रं वर्षाणाममुरा अभिदुदुधुः ॥  
तपोविघ्नं शमीकर्तुन्तपीविघ्नं महात्मनाम् ॥



पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रे रुद्रः प्रजापतिः ॥  
 पुनर्माहेश्वरं भागंध्रुवदक्षः प्रजापतिः । यज्ञे  
 न कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि । ऋ  
 चः पशुपतेर्याश्वश्चैव्य आहुतयश्च याः ॥ यज्ञ  
 सिद्धिप्रदास्ताभिर्हर्निर्ज्वलसदृशवान् । अ  
 धोर्चीर्गन्ततो देवो बुद्ध्वा दक्षव्यतिक्रमम् ॥  
 रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ।  
 सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वेदग्ध्वा तान सुरान् प्रभुः  
 बाणं क्रोधाग्निं सन्तप्तमसृजच्छुनाशनम् ।  
 ततो यज्ञः सविध्वस्तोऽप्यथिताश्च दिवौ कसः  
 दाहव्यथापरीताश्च भ्रान्ता भूतगणादिशः  
 अथेश्वरं देवगणः सहस्रर्षिभिर्विशुम् ॥ त  
 मृग्भिर्स्तु वन्यायच्छिवे भावो शिवः स्थितः  
 शिवं शिवाय भूतानां स्थितं ज्ञात्वा कृताञ्ज-  
 लिः ॥ क्रोधाग्निं रक्तवान्देवमहं किङ्करवा-  
 णिते । तमुवाचेश्वरः क्रोधं श्वरो लोके भावि-  
 प्यसि ॥ जन्मादौ निधने च त्वामपि चा  
 वन्तरेषु च ।

अर्थ—सुनते चले आते हैं कि भ्रैतायुग  
 में महादेवने दिव्य सहस्रर्षिका अक्रोध प्रत  
 अवलम्बन किया था, इस बीचमें असुरोंने  
 बड़ा उपद्रव मचाया और महात्माओंके तप  
 में बड़ा विघ्न हुआ, अपने अक्रोधप्रत में  
 विघ्न पड़नेके कारण समर्थ होकर भी महा-  
 देवने उनके विघ्नोंको दूर करनेकी उपेक्षाकी।  
 इसी समयमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ किया था और  
 यद्यपि देवताओंने उसको सचेतभी किया  
 तथापि यज्ञमें महादेवका भाग न निकाला  
 और यज्ञको सिरू करनेवाली जो पशुपति  
 संबंधी ऋचा और शैव्य आहुति हैं उनके  
 बिनाही यज्ञ किया । जब महादेवका अक्रो-

ध्रं प्रत समाप्त होगया तब आग्नवित् रुद्रने  
 दक्षके व्यतिक्रमको जान कर अपना रौद्र  
 भाव प्रकट करके अपने ललाटेस्थ तृतीय  
 नेत्रको खोलकर प्रथम उन असुरोंको जला-  
 दिया और तदनन्तर शत्रुनाशकर्त्ता क्रोधा-  
 ग्निसे संतप्तवाण छोड़े उनसे यज्ञ विध्वंस  
 होगया सम्पूर्ण देवगण व्यथित हांगये । औ-  
 र भूत गण दाह और व्यथासे पीडित होकर  
 दिशा विदिशाओंमें भागने लगे । इस दशा  
 को देखकर सप्तर्षि समेत सम्पूर्ण देवगण  
 विभुरूप महादेवकी ऋग्वाक्योंसे उस समय  
 तक स्तुति करते रहे जबतक शिव शान्त भा-  
 वमें स्थित न हुए । प्राणियों के कल्याणके  
 निमित्त शिवको शान्तभावमें स्थित देखकर  
 क्रोधाग्निने हाथ जोड़कर महादेवसे कहा कि  
 हे देव ! अब मैं क्या करूँ ! यह सुनकर  
 महादेवने क्रोधसे कहा कि तू ज्वररूप होकर  
 संसार में विचर जन्मकालमें मरणसमय  
 में और बीचमें भी तू उत्पन्न होता रहेंगा ॥

ज्वरके प्रभाव ॥

सन्तापः सारुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदिव्यथा  
 ज्वरप्रभावो जन्मादौ निधने च महत्तमः ॥

अर्थ—सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, अंगमर्द हृदयमें  
 वेदना, ये ज्वरके प्रभाव हैं, तथा जन्म और मरण  
 के समयमें अत्यन्त तीव्ररूप से होते हैं ॥

प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावश्च मदं शितः ॥ नि-  
 दाने कारणान्यष्टौ पूर्वोक्तानि विभागशः ।

अर्थ—ज्वरकी प्रकृति प्रवृत्ति और प्रभाव  
 इस तरह वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ के  
 निदानस्थानमें ज्वरके आठ कारण भी पृथः-  
 क २ कर दिये गये हैं ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्येनयनेसास्त्रेजृम्भणेगौरवक्लमः ॥

ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ ॥

अविपाकास्यवैरस्यंहानिश्चलवर्णयोः ॥

शीलवैकृतमल्पञ्चज्वरलक्षणमग्रजम् ।

अर्थ—आलस्य, नेत्रोंमें आंसू भर आना, जम्हाई, भारापन, क्लान्ति, कभी अग्नि, घूप वायु और जलका अच्छा लगना और कभी बुरा लगाना, अविपाक, मुखमें बिरसता, बल और वर्णकी हानि तथा स्वभावका कुछ विकृत होजाना ये सब ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलंसमनस्कश्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ॥

शरीरम्बलकालस्तुनिदानेसम्प्रदर्शितः ।

अर्थ—ज्वर का अधिष्ठान मन और शरीर दोनों है । ज्वरग्रस्त होने पर शरीरकी दशा तथा ज्वर के बल और काल ये सब निदानस्थान में दिखाये गये हैं ।

ज्वर के लक्षण ।

ज्वरमत्यात्मिकंलिङ्गसन्तापोदेहमानसः ॥

ज्वरेणाविशताभूतंनहिकिश्चिन्नतप्यते ।

अर्थ—शारीरिक और मानासिक सन्ताप ज्वरका साधारण लक्षण है । कोई ऐसा देहधारी नहीं है जिसका देह ज्वरग्रस्त होने पर न तपता हो ॥

ज्वर के भेद ।

द्विविधोविधिभेदेनज्वरःशारीरमानसः ॥

पुनश्चद्विविधोदृष्टःसौम्यथाग्नेयएववा ।

अन्तर्वेगोवाहिर्येगोद्विविधःपुनरुच्यते ॥

प्राकृतोवैकृतश्चैवसाध्यथासाध्यएवच ॥

पुनःपञ्चविधोदृष्टोदोषकालबलावलात् ॥

सन्ततःसततोऽन्येषुस्तृतीयकचतुर्थकौ ।

पुनराश्रयभेदेनधातूनांसप्तधामतः । भि

न्नःकारणभेदेनपुनरष्टविधोज्वरः ॥

अर्थ—विधि भेदसे ज्वर दो प्रकारका होता

है शारीरिक और मानसिक । पुनः इसके दो

भेद हैं यथा सौम्य और आग्नेय ज्वरके दो

वेग हैं, एक अन्तर्वेग दूसरा बहिर्वेग । इसी

तरह प्राकृत, वैकृत, साध्य असाध्य, फिर दोष

और कालके बलावलेसे ज्वर पांच प्रकारका देख

ने में आता है यथाः सन्तत, सतत, अन्येषुष्क,

तृतीयक और चातुर्थिक, इसीतरह सात धातु

ओंके आश्रय भेदसे सात प्रकारका, और घात

कफादि कारण भेदसे आठ प्रकारका होता है।

शारीर और मानस ज्वरोंके उत्पत्तिस्थान

शारीरोंजायते पूर्वन्देहमनासिमानसः ।

अर्थ—शारीरिक ज्वर प्रथम देह में उत्प-

न्न होता है और मानसिक ज्वर प्रथम मन

में उत्पन्न होता है ॥

मानसिक सन्ताप के लक्षण ॥

वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्नमनस्तपलक्षणम् ॥

अर्थ—मनमें चंचलता, अरति और ग्लानि

मानसिकताप के लक्षण हैं ॥

शारीरिकतापलक्षण ॥

इन्द्रियाणाञ्चवेकृत्यंदेहसन्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—इन्द्रियों की विकृतता शारीरिक

सन्तापके लक्षण है ॥

वातापित्तात्मकः शीतमुष्णवातकफात्मकः

इच्छत्युभयमेतत्तुज्वरोऽन्यामिश्रलक्षणः ।

अर्थ—घात पित्तात्मक ज्वरमें शीतल व-

स्तुकी इच्छा होती है, वातकफात्मकमें उष्ण,

पदार्थकी और व्यामिश्रलक्षण अर्थात् कफपित्ता-

तमक ज्वरमें उष्ण शीत दोनोंकी इच्छा होतीहै  
वायुको योगवाहिनं ॥  
योगवाहःपरवायुःसंयोगादुभयार्थकृत ।  
दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृतसोमसंश्रयात् ॥  
अर्थ—वायु अत्यन्त योगवाहीहै अर्थात् जि-  
सके साथमें मिलतीहै उसके गुणोंको उत्कर्ष  
करतीहै । ज्वर तेजसे मिलतीहै तब दाह करतीहै ।  
और सोमसे मिलतीहै तब शीत करतीहै ॥

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकतृष्णाप्रलापःश्वसनमभ्रमः  
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदोदोषोवचोविनिग्रहः  
अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत् ।

अर्थ—अन्तर्दाहकी अधिकता, प्यास, वक-  
बाद, श्वास, चक्कर, सन्धिशूल, अस्थिशूल,  
अस्वेद ( पसीनों का रुकना ), दोष विनि-  
ग्रह, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं ।

परिवेगज्वरकेलक्षण ॥

सन्तापोभ्यधिकोवाहस्तृष्णादीनाञ्च  
मार्दवंम् ॥ बहिर्वेगस्यलिङ्गानिमुखसा-  
ध्यत्वमेवच ॥

अर्थ—वाहसन्तापका अधिक होना, तृष्णा  
आदिका फम होना और मुख साध्यता ये  
बहिर्वेग के लक्षण हैं ।

प्राकृतादि ज्वरों के लक्षण ।

प्राकृतःमुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः ॥  
कालप्रकृतिमुदिश्यप्रोच्यतेप्राकृतोज्वरः ॥

अर्थ—यसन्त और शरद ऋतुओंमें उत्पन्न  
हुआ ज्वर प्राकृत और मुखसाध्य होताहै ।  
कालकी प्रकृति के अनुसार जो ज्वर होता  
है उसेही प्राकृत कहते हैं । भार्वाचार्य लि-  
खते हैं कि” वर्षा शरद वसन्तेषु वाताधैः

प्राकृतःक्रमात् । वैकृतोऽन्यःसुदुःसाध्यः  
प्राकृतश्चार्निलोद्भवः ॥ अर्थात् वर्षा में  
वातज्वर, शरद में पित्तज्वर, और वसन्तमें  
कफज्वर प्राकृत होतेहै क्योंकि इन भिन्न  
भिन्न ऋतुओं में पृथक् २ दोषोंकी प्रचलता  
होतीहै । इससे भिन्न होने पर वैकृतज्वर  
होताहै यह ज्वर दुःसाध्य होताहै और वात  
से उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य होताहै  
दोषों के प्रकुपित होने का समय ।

उष्णामुष्णेनसंवृद्धपित्तंशरदिकुप्यति । चि-  
तःशीतेफलश्चैववसन्तसमुदीर्यते ॥

अर्थ—उष्ण प्रकृति वाला पित्त उष्ण द्रव्यों  
के संयोगसे वृद्धिपाकर शरद ऋतुमें कुपित  
होता है । और शीतकाल में संचित हुआ  
कफ वसन्त ऋतु में कुपित होता है ।

कालकृतज्वरोत्पत्तिक्रमः ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरौषधीभिःसवारिभिः  
सञ्चितं पित्तगुत्किंशरद्यादित्यतेजसा ॥

ज्वरसंजनयत्याभृतस्यचानुबलःकफः ।

प्रकृत्यैवविसर्गाच्चतत्रनानशनाद्भयम् ।

अग्निरोषधिभिश्चैवमधुराभिश्चितःकफः ॥

हेमन्तेसूर्यसन्तप्तः सचसन्तेप्रकुप्यति ॥

वसन्तेश्लेष्मणातस्माज्ज्वरःसमुपजायते ।

आदानमध्येतस्यापिवातापित्तमभवेदनु ॥

आदावन्तेचमध्येचज्ञात्वा दोषवलावलम् ।

शरद्वसन्तयोर्वैद्वान्ज्वरस्यमतिकारयेत् ॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें अम्लविपाकशाली औषधी

और जलोंके कारण संचित हुआ पित्त शर

दऋतु में सूर्यकी तेजसे उदीर्ण होजाताहै

और शीतग्रही ज्वरको उत्पन्न करताहै और

कफ उसका अनुबन्धी रहता है । उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभावकरके और विसर्गकालके कारण लघन करनेमें कुछ भय नहीं होता है क्योंकि शरदऋतु विसर्गकालके अन्तर्गत है । इसीतरह हेमन्तऋतुमें जल और ओष, धियां मधुरपाकी होती हैं उस ऋतुमें संचित हुआ कफ सूर्यकी तेजीसे संतप्त होकर वसन्तऋतुमें प्रक्षुपित होजाता है । इसहेतुसे वसन्तकालमें ज्वर कफसे उत्पन्न होता है । आदानकालमें होने पर भी वात और पित्त इस ज्वरके अनुबन्धी रहते हैं अर्थात् कफ से उत्पन्न होता है और वात पित्त साथमें रहते हैं तो यह त्रिदोषजन्य होजाता है । इन हेतुओंसे विद्वान् चिकित्सक को उचित है कि शरद और वसन्तऋतुके आदि मध्य और अन्तमें दोषोंके बलावलका विचारकरके ज्वरकी चिकित्सा करें ॥

ज्वरोंका साध्यासाध्यत्व ॥

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टः प्राकृतोज्वरः ।  
मायेणानिलजोदुःखः कालेष्वन्येषु वैकृतः ॥  
हेतवो विविधास्तस्य निदानेन सम्प्रदर्शिताः ।  
बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।  
हेतुभिर्वर्जुभिर्जातो बलिभिर्वहुलक्षणः ॥  
ज्वरः प्राणान्तक्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ।  
अर्थ—काल और प्रकृतिका लक्षणके प्राकृत ज्वरका वर्णन किया गया है । वात जन्यज्वर तथा अन्यकालमें उत्पन्न हुआ वैकृतज्वर दुःखसाध्य होता है ॥

ज्वरके भिन्न २ हेतु निदानस्थानमें दिखाये गये हैं । बलवान् पुरुषका अल्पदोषों से युक्त ज्वर जो उपद्रव रहित होता है वह

सुखसाध्य होता है । जो ज्वर बहुत बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न होकर बहुत से लक्षणों से युक्त होता है वह ज्वर प्राणोंका नाश करने वाला है और उसज्वरसे इन्द्रियज्ञान भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण ॥

सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा द्वादशाहाच्चथैव ।  
संभ्रापभ्रमश्वासः तीक्ष्णो हन्याज्ज्वरो न-  
रम् ॥ ज्वरः क्षीणस्थश्चूनस्य गम्भीरो दैर्घ्य-  
रात्रिकः । असाध्यो बलवान् नृपश्च केश-  
सीमन्तकुज्ज्वरः ।

अर्थ—वह तीक्ष्णज्वर जिसमें प्रलाप, भ्रम और श्वास होता है वह सात, दस या द्वादश दिनमें मनुष्यको मार डालता है । जो मनुष्य क्षीण होगया है, जिसकी देह पर सूजन आ गई है, जिसका ज्वर गंभीर है और जो चढकर कई दिवस तक रहता है, जो बलवान् है और जिसमें मनुष्यके शिर पर बालोंकी गुलझट पड़जाती है ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं ॥

सन्ततज्वरकी उत्पत्तिका कारण ॥

स्रोतो भिर्विमृतादोषा गुरयोरसंवाहिभिः ।  
सर्वगान्ानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ।  
अर्थ—संवाही स्रोतोंके द्वारा सम्पूर्ण गुरु दोष फैलकर सम्पूर्ण देहमें व्याप्त होकर स्तब्ध होजाते हैं तब सन्ततज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

सन्ततज्वरका मोक्षकाल ॥

द्वादशाहं दशाहं वा सप्ताहं वा मुहुः सह । स  
शीघ्रं शीघ्रकारित्वा त्पुनर्मयातिहन्ति वा ॥

अर्थ—सन्ततज्वर बारह, दस वा सात

दिनतक अनवच्छिन्न रहताहै, यह बड़ा दुः सह होताहै और शीघ्रकारी होनेसे या तौ शीघ्रही शान्त होजाता है वा शीघ्रही देहको नाश करदेताहै । दस बारह और सात दिनकी अप्रधि दोषोंके अनुसार दीर्घ है तथा वातिक सप्तरात्रेणदशरात्रेणैषिच क. । श्लेष्मिकोद्वाद्दशाहेनज्वरःपाकानि नियच्छति अर्थात् वातज्वर सात दिनमें, पित्तज दस दिनमें, और कफज बारहदिनमें पाकको प्राप्त होताहै । इससमय में या तौ रोगी जरनिर्मुक्त होजाताहै वा मरजाताहै ।

**सन्ततज्वरको असाध्यत्व ॥**

कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषास्तुल्योहिसन्तत म्निष्पत्त्यनीकंकुस्तेस्मात्त्रेयःसुदु सहः

अर्थ—काल, दोष और प्रकृतिके तुल्य होनेसे दोष दुश्चिकित्स्य सन्तत ज्वरको उत्पन्न करते है अतएव यह जर दु साध्य होता है ॥

**सन्ततज्वरके अनुबन्धीपदार्थ ।**

यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषश्चानिलादयः ।

अनुबन्धनित्युगपदवश्यंमन्ततेज्वरे ॥

अर्थ—सन्तत जर में सातों धातु, मूत्र मल और तीनों दोष अवश्य साथ रहतेहै ।

**अनुबन्धीपदार्थोंका फल ॥**

सशुद्धावाप्यशुद्ध्यावारसादीनामशेषतः।

सप्ताहंदिपुकापुमशंयातिहन्तिवा ॥

अर्थ—यह जर स्मरूप रसादि धातु और दोषोंकी शुद्धि होनेपर पूर्वोक्त सप्ताहादि का छेमे शान्त होजाताहै और शुद्धि न होने पर मनुष्यको मारडालताहै ॥

सन्तत ज्वरकां रसादि का आश्रयत्व ॥  
यदातुनातिशुध्यन्तिनवाशुध्यन्तिसर्वशः  
द्वादशैतेसमुद्दिष्टा सन्ततस्याश्रयास्तदा॥

अर्थ—सातों धातु, मल, मूत्र और तीन दोष जबये बारहों पदार्थ सम्यक् शुद्ध नहीं होतेहैं तब सन्ततजर इनके आश्रय रहताहै ।

**अन्यप्रकार संतत ज्वर ।**

विसर्गद्वादशैकृत्वादिवसेऽव्यक्तलक्षण ॥

दुर्लभोपशम कालं दीर्घमप्यनुवर्तते ॥

अर्थ—कोई कोई सन्ततज्वर बारहवें दिन छोडकर बहुत दिन तक ऐसे रहता है कि उसका कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता है, यह कठिन साध्य होताहै ।

**वैद्यको कर्त्तव्य कर्म ।**

इतिषुद्ध्याज्वरंवैद्यउपक्रामेचुसन्ततम् ।

त्रियाक्रमविधौयुक्तःप्रायःप्रागपतर्पणै ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए लक्षणों को विचारकर वैद्यको संततजर की चिकित्सा करना उचितहै, इस जरमें प्रायः लघन द्वारा चिकित्सा करना अभीष्टहै ।

**सतत ज्वर के लक्षणादि ।**

रक्तधात्वाश्रयःप्रायादोषःसततकज्वरम्।

सप्रत्यनीकं कुस्तेकालवृद्धिक्षयात्मकः ॥

अहोरात्रेसततकोद्गोकांलावर्तते । काल

प्रकृतिदूष्याणामाप्यैवान्यतमाहलम् ॥

अर्थ—प्रायः दोष रक्त धातुका आश्रय लेकर सततक जर उत्पन्न करते हैं । इस जरकी चिकित्सा होमकर्तीहै यह काल में बढ़ताभीहै और घटताभीहै । यह सततक जर काल, प्रकृति और दूष्यमें से किसीका बल प्राप्त करके दिनरात में-दोबार आताहै ।

अन्येद्युष्कज्वर के लक्षणानि ।  
दोषोमेदावहारद्वानाडीरन्येद्युष्कज्वरम्  
सम्प्रत्यनीकः कुरुते एककालमहनिशम् ॥

अर्थ—मेदोवहार नाडियोंको रोककर दोष  
अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं यह भी  
सुचिकित्सक और दिनरात में एकबार आता है  
तृतीयक चातुर्थिक ज्वर का लक्षणानि ।  
दोषोऽस्थिमज्जाः कुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ  
गतिर्द्वयकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथापरैः

अर्थ—जब दोष हड्डियोंमें पहुँचते हैं तब  
तृतीयक ज्वर होता है और जब दोष मज्जा  
में पहुँचते हैं तब चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न हो  
ता है । अन्येद्युष्क ज्वरका वेग प्रतिदिन  
होता है तृतीयकका एक दिन बीचमें देकर  
और चातुर्थिकका दोदिन बीचमें देकर वेग होता है

अन्येद्युष्कादि ज्वर का कारण ।  
रक्तमेवाभिसंसृज्य कुर्यादन्येद्युष्कज्वरम् ।  
मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तृतीयकम् ।  
ज्वरंदोषः संसृतो हि मेदो मार्गश्चतुर्थकम् ।  
अर्थ—दोष जब रक्तसे मिलजाते हैं तब  
अन्येद्युष्कज्वर उत्पन्न होता है । जब मांस  
स्रोतोंसे मिलते हैं तब तृतीयक ज्वर होता है  
और जब मेदाके मार्गमें संसृत होते हैं तब  
चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है ॥

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का समय ।  
अन्येद्युष्कः प्रतिदिनं दिनं क्षिप्त्वा तृतीयकः  
दिनद्वयं पोविश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥  
अर्थ—जो ज्वर नित्यप्रति आता है  
उसे अन्येद्युष्क कहते हैं, जो एक दिन  
वाच में देकर आता है उसे तृतीयक कह-

ते हैं, लोकमें इसीको तिजारी एकांतरा भी  
कहते हैं ॥ जो दोदिन बीचमें देकर आता  
है उसे चातुर्थिक वा चौथैया कहते हैं ॥

कालान्तर में दोषों के कुपित होने  
का दृष्टान्त

अधिशेते यथा भूमिवाजङ्गले चरोहति ॥  
आधिशेते तथा धातुंदोषकाले च कुप्यति ॥

अर्थ—पृथ्वीमें घोषाहुआ बीज जैसे कालान्तरमें अंकुरित होता है इसी तरह धातुओं से मिला दोष कालान्तरमें कुपित होता है ।

ज्वरों में विश्राम का कारण ।  
तेष्टद्विम्बलकालञ्च प्राप्य दोषास्तृतीयकं  
चतुर्थकञ्च कुर्वति प्रत्यनीकबलक्षयात् ।  
कृत्वा वेगं गतबलाः स्वेस्वे स्थाने व्यस्यताः  
पुनर्विबुद्धाः स्वेकाले ज्वरयन्ति नरं मलाः ।

अर्थ—येही दोष वृद्धि और बलकालको  
प्राप्त करके तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंको  
उत्पन्न करते हैं और बलके क्षीण होने  
पर सुचिकित्स्य होजाते हैं । वेगके पश्चात्  
जब उनका बल घटजाता है तब अपने स्थान  
पर स्थित होजाते हैं और अपने कालमें फि-  
र बढ़कर येही दोष ज्वरोंको उत्पन्न करते हैं

तृतीयक ज्वर के अन्यलक्षण ।  
कफपित्तात्रिकग्राही पृष्ठाक्षतकफात्मकः ॥

वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः  
अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्न हुआ तृतीयक ज्वर  
त्रिकस्थान ( तीन हड्डियों का समागम एक  
ती कंधों और प्रांवा का जोड़ दूसरा कमर  
और जांघ की हड्डियोंका जोड़ ) में वेदना  
करता है । वात और कफ से उत्पन्न हुआ

पीठ में, इसीतरह वातापितसे उत्पन्न हुआ. मस्तकमें पीडा करताहै इसतरह तृतीयक ज्वर तीनप्रकार का होताहै ।

**चातुर्थिक ज्वर के प्रकार ।**

**चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधंज्वरः ॥**

**जघाभ्यांश्लष्मिकःपूर्वशिरस्तोऽनिल-  
सम्भवः ।**

**अर्थ—**चातुर्थिक ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है यथा जब यह कफ से उत्पन्न होता है तब प्रथमही जघागोमें वेदना करता है फिर आप उत्पन्न होताहै और जब यातसे उत्पन्न होताहै तब शिरमें वेदना करता है ।

**विषम ज्वर का लक्षण ।**

**विषमज्वरएवान्यथतुर्थकविपर्ययः ॥**

**त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातुस्थःकरोत्ययम् ।**

**अर्थ—**चातुर्थिकज्वरका उलटा एक और ज्वर होता है उसे विषमज्वर कहतेहैं । माध्य निदानमें लिखाहै कि „समध्ये ज्वर यत्यन्ही आद्यन्तेच विभुचति । „ विषमज्वर उसे कहते हैं जो बीचके दो दिन आताहै और आदि अन्त के दो दिन नहीं आता । इससे जाना जाता है कि तिजारी और चौथैयाके संयोगका नाम विषम है कि इससे यह ज्वर वातज, पित्तज और कफज होता है तथा अस्थि और मज्जा दो धातुओं में आश्रित होता है क्योंकि पहिले कहचुके हैं कि अस्थिज्वर तृतीयक और मज्जागत चातुर्थिक होता है ।

**मायशःसन्निपातेनदृष्टःपञ्चविधोज्वरः॥**

**सन्निपातेतुयाभूयोऽनसदोषःपरिकीर्त्तितः॥**

**अर्थ—**प्रायः सन्निपात से पांच प्रकार

का ज्वर देखा गयाहै, यथा संतत, सतत, अन्यथुष्क, तृतीयक और चतुर्थक ! इन में जो दोष अधिक होता है उसके नाम से वह ज्वर बोला जाताहै ।

**भिन्न २ ज्वरोत्पत्तिका कारण ॥**

**ऋतुवहोरात्रदोषाणामनसश्चबलाबलात्  
कालमर्थवशाच्चैवज्वरस्तन्तमपद्यते ।**

**अर्थ—**ऋतु, दिन, रात, दोष और मनका बलाबल, कालवश और अर्थवशसे भिन्न २ मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार का ज्वर आता है ॥

**रसस्थज्वर के लक्षण ॥**

**गुरुत्वंदैन्यमुद्वेगःसदनंछर्द्यरोचकौ ॥**

**रसस्थितेवहिस्ताप साङ्गमर्दोविजृम्भणम्**

**अर्थ—**रसधातु में ज्वर के स्थित होनेपर भारापन, दैन्यता, उद्वेग, अंगग्लानि वमन, अरुचि, बाह्यताप, अंगमर्द और जंभाई ये उपद्रव होते हैं ॥

**रक्तस्थज्वरके लक्षण ॥**

**रक्तोत्थाःपिडकास्तृष्णासरक्तंघ्रीयनंमुहुः**

**दाहरागभ्रमपदमलापारक्तसंस्थिते ॥**

**अर्थ....**रक्तस्थज्वरमें देहपर लालरंगपरी गरम फुत्सियां होजातीहैं, कफके साथ चार २ रुधिर आता है, तथा दाह, राग, भ्रम, मद और प्रलाप ये भी होते हैं ॥

**मांसस्थज्वर के लक्षण ॥**

**अन्तर्दाहःसतृष्णाह ग्लानिःसंस्पृष्टवि-**

**दक्ता ॥ दौर्गन्ध्यमात्रविशेषोज्वरेमांस**

**स्थितेष्वेतानि**

**अर्थ—**मांसस्थज्वरमें अन्तर्दाह, तृष्णा मोह, ग्लानि, पुरीषविषय दुर्गन्धि और मांस

त्रिविक्षेप ( हाथ पांवोंका पटकना ] होताहै।  
 मेदस्थज्वर के लक्षण ॥  
 स्वेदस्तीव्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्ष्ण-  
 शः । स्वगन्धस्यासहन्वञ्चमेदस्येग्लान्य-  
 रोचकौ ॥

अर्थ—मेदस्थज्वरमें पसना, तेज  
 प्यास, प्रलाप, निरन्तर अस्थिरता, अपनी  
 गंध अपनेको घुरीलगाना, ग्लानि और अरु-  
 चि ये लक्षण होतेहैं ॥

अस्थिगतज्वर के लक्षण ॥  
 विरेकवमनोचोभेसास्थिभेदप्रकूजनम् ॥  
 विक्षेपणश्चात्राणांश्वासश्चास्थिगेज्वरो  
 अर्थ—अस्थिगतज्वरमें वमन और वि-  
 रेचन दोनों होतेहैं । हडफूटन, अत्रकूजन  
 गात्रविक्षेप और श्वास ये लक्षण होतेहैं ।

मज्जागतज्वर के लक्षण ॥  
 हिकाश्वासःतथाकासःतप्तश्चातिदर्शने ।  
 मर्मच्छेदोवाहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जगे ।  
 अर्थ—मज्जागतज्वरमें हिककी, श्वास,  
 खांसी, अधिक अन्धकारदीखना, मर्मच्छेद, वा-  
 हरठंड और भीतर दाह ये लक्षण होतेहैं ।

शुक्रगतज्वर के लक्षण ॥  
 शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षःकुंवाविनाश्य-  
 चा ॥ प्राणवाय्वग्निसोर्ध्वसार्धगच्छत्य-  
 सौविभुः ॥

अर्थ—ज्वरके शुक्रमेंपहुंचने पर वीर्य  
 अत्यन्त निकलताहै और आत्मा देह को  
 नष्ट करके प्राण, वात, पित्त और कफ को  
 साथ लेजाती है, अन्यग्रन्थोंमें लिखा है,  
 कि पुरुषेन्द्रिय जकड़जातीहै और वीर्य के  
 साथ रक्तभी आता है ॥

धात्वाश्रितज्वरको साध्यासाध्यत्व ।  
 रसरक्ताश्रितःसाध्योभेदोमांसगतश्चयः ॥  
 अस्थिमज्जागतः कृच्छ्रः शुक्रस्थोनैवसि-  
 दध्याति ॥

अर्थ—रसाश्रित और रक्ताश्रित ज्वर  
 साध्य होता है । मेदोगत, मांसगत, अस्थि-  
 गत और मज्जागत कृच्छ्रसाध्य होता है औ-  
 र शुक्रस्थज्वर कभी अच्छा नहीं होता है ॥  
 हेतुभिरलक्षणैःसिद्धःपूर्वमष्टविधोज्वरः ॥  
 समासेनोपदिष्टस्यन्यासतः मृणुलक्षणम्

अर्थ—हेतु और लक्षणोंद्वारा हम प्रथम  
 ज्वरके आठ भेदोंका संक्षेप से वर्णन कर  
 चुकेहैं अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते  
 हैं उसे सुनी ॥

वातपित्तज्वर के लक्षण ॥  
 शिरोरुक्पर्वणांभेदोदाहोरोम्णांमहर्षणम्  
 कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽ-  
 रुचिः । स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भायातपित्त-  
 ज्वराकृतिः ॥

अर्थ—माथेमें दर्द, हाथपांवके जोड़ों में  
 दर्द, दाह, रोमाञ्च खडे होना, कण्ठ  
 शोष, मुखशोष, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा,  
 अरुचि, स्वप्ननाश, वक्काद, जम्हाई ये सब  
 वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वर के लक्षण ॥  
 शीतकोगौरवंतन्द्रास्तिमितपर्वणाञ्चरु-  
 शिरोग्रहःप्रतिश्यायकासःस्वेदाप्रवर्तनम्  
 सन्तापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वरा-  
 कृतिः ॥

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, स्तिमिता,  
 हडफूटन, माथेका दर्द, प्रतिश्याय, खांसी,



पसीनोंका आना, सन्ताप और ज्वरका मध्यम  
वेग ये सब वातश्लेष्मिकज्वर के लक्षण हैं ॥

**श्लेष्मपित्तज्वरकेलक्षण ॥**

मुहुर्दाहोमुहुः शीतंस्वेदस्तम्भौमुहुर्मुहुः ।  
मोहःकासोरुचिस्तृष्णाश्लेष्मपित्तमवर्त्तनं  
लिप्तित्क्तास्यतातन्द्राश्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ—बार बार दाहहोना, बार बार शी-  
तलगना, बार बार पसीने आना, बार बार  
पसीनोंका रुकना, मोह, खांसी, अरुचि, तृ-  
ष्णा, कफ और पित्तका निकलना, मुख में  
कफकी लहिसावट मुखमें कड़वापन और त-  
न्द्रा ये कफपित्तज्वरकी आकृति है ॥

**सन्निपातज्वरकावर्णन ॥**

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वत्रयोदशविधस्यहि ॥  
मावसूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणवैपृथक्पृथक्

अर्थ—सन्निपातज्वरके जो तेरह भेद  
प्रथम संक्षिप्त रीति से वर्णन किये गये हैं  
अब उन्हें विस्तारपूर्वक पृथक् २ कहते हैं ।

**वातपित्तोल्बणज्वर के लक्षण ॥**

भ्रमःपिपासदाहश्चगौरवांशिरसोऽतिरुक् ॥

वातपित्तोल्बणोविद्यालिङ्गमन्दकफेज्वरे ।

अर्थ—भ्रम, तृषा, दाह, भारापन और  
सिरमें अत्यन्त वेदना ये वातपित्तोल्बण  
और मन्दकफज्वर में होते हैं ॥

**वातश्लेष्मोल्बणहीनकफज्वर ॥**

शैल्यंकासोरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्ग्य-  
या ॥ वातश्लेष्मोल्बणोविद्यालिङ्गपित्त

वरोविदुः ।

अर्थ—शीत, खांसी अरुचि, तन्द्रा, तृषा  
दाह, वेदना, व्यथा, ये वातश्लेष्मोल्बणमन्द  
पित्त ज्वर में होते हैं ॥

**पित्तकफोल्बणहीनवायु के लक्षण ॥**

छर्दिःशैल्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना

मन्दवातेव्यवस्यन्तेलिङ्गपित्तकफोल्बणे ।

अर्थ—वमन, शीत, वारम्बारदाह, तृष्णा,  
मोह, अस्थिवेदना, ये पित्तकफोल्बण और  
मन्द वात के लक्षण हैं ॥

**वातोल्बणसन्निपातके लक्षण ॥**

सन्ध्यस्थिशिरसःशूलमलापोगौरवंभ्रमः ॥

वातोल्बणेस्याद्भुगेतृष्णाकण्ठास्यशोषता

अर्थ—हाथ पांव के जोड़, हड्डी और सिरमें  
वेदना, प्रलाप, भारापन, भ्रम, तृषा, कण्ठशोष  
और मुखशोष ये सब वातोल्बण और हीन  
कफपित्त के लक्षण हैं ॥

**पित्तोल्बणसन्निपात के लक्षण ॥**

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्वलसंक्षयः

मूर्च्छाचातित्रिदोपेस्यालिङ्गपित्तैगरीयसि

अर्थ—विद्या और मूत्रका लालहोजाना  
दाह, पसीना, तृषा, और बलकी क्षीणता  
तथा मूर्च्छा ये पित्तोल्बण और वात कफ  
सन्निपात के लक्षण हैं ।

**कफोल्बणसन्निपातके लक्षण ।**

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरातिभ्रमैः ॥

कफोल्बणंसन्निपाततन्द्राकासेनचादिशेत्

अर्थ—आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह,  
वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये  
कफोल्बण हीन वात पित्त के लक्षण हैं ।

**हीनवाते पित्तमध्य के लक्षण ।**

प्रतिष्पाच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ॥

हीनवातेपित्तमध्येचिन्हंश्लेष्माधिकमेतम् ।

अर्थ—नाक बहना, वमन, आलस्य, तन्द्रा

अरुचि, अग्निमांश, ये हीनवात पित्तमध्य और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं ।

हीनवातमध्यकफकेलक्षण ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ॥

हीनवातमध्यकफोलिङ्गपित्ताधिकेमतम् ।

अर्थ—हृदी के रंग के मूत्र और आंख होजाना, दाह, तृष्णा, भ्रम और अरुचि ये हीनवात मध्य कफ और पित्ताधिक के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यकफकेलक्षण ।

शिरोरुक्वेपथुःश्वासःप्रलापोऽर्धरोचकाः

हीनपित्तमध्यकफोलिङ्गवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—शिर में वेदना, कम्पन, स्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि ये हीनपित्त मध्यकफ और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यवातकेलक्षण ।

शीतकंगौरवंतन्द्रामलापोऽस्थिशिरोऽति

रुक् ॥ हीनपित्तवातमध्येलिङ्गश्लेष्माधि-

केविदुः ।

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, प्रलाप हृष्टी और सिरमें अत्यन्त वेदना ये हीन पित्त मध्यवात और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं ।

कफहीनपित्तमध्यकेलक्षण ।

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोषोऽतिपार्श्व

रुक् ॥ कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गवाताधिके

मतम् ।

अर्थ—श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुख शोष पसलियोंमें अत्यन्त वेदना ये हीन कफ, मध्य पित्त और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनकफवातमध्यकेलक्षण ।

पर्वभेदोऽग्निदौर्बल्यंतृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः

कफहीनेवातमध्येलिङ्गपित्ताधिकेविदुः ।

अर्थ—हृदफूटन अग्निमान्द्य, तृष्णा, दाह, अरुचि और भ्रम ये कफहीन, वातमध्य और पित्ताधिक के लक्षण हैं ॥

तेरहवैसन्निपातकेलक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम्

क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसन्धिशिरोरुजः

सास्त्रावेकलुपेरक्तेनिर्भुग्नेचापिदर्शने। स-

स्वनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः ॥

तन्द्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः

परिदग्धाखरस्पर्शजिह्वास्तस्ताज्ञतापरम् ॥

घृविनरंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ।

शिरसोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोद्वादिव्यथा ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिराद्दर्शनमल्पशः

कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् ॥

कोठानांश्यावरक्तानामण्डलानांचदर्शनम्

मूकत्वंस्रोतसांपाकोयुस्त्वमुदरस्यच ॥

चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वराकृतिः।

अर्थ—अब हम सन्निपातिक ज्वरके लक्षण

कहते हैं, यथा क्षणभरमें दाह होना, क्षण

भर में शीत लगना, अस्थिशूल, सन्धिशूल,

शिरःशूल, आंखोंमें आंसू भरकर नेत्रों का

लाल तथा काला होजाना और फटे से हो-

जाना, कानोंमें शब्द और वेदना होना, कण्ठ

में कांटे पडजाना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, खांसी

श्वास, अरुचि, भ्रम, जिह्वा का काला और

खरदरा होजाना, अंगका अत्यन्त शिथिल प-

डजाना, कफमिलेहुए रक्तपित्ताका थूकके साथ

निकलना, सिरका इधर उधर पटकना तृष्णा,

निद्रानाश, हृदयमें वेदना, पसीना, मूत्र

और मलका बहुत देरमें थोडासा होना, देह

से मिलजाने पर व्यामिश्र लक्षण पाये जाते हैं अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण और वातादि दोषजनित लक्षण दोनों मिले हुए होते हैं । आगन्तुक ज्वर हेतु और औषधोंके गुणविशिष्ट भी होते हैं ॥

कामादि से मन के आकान्त होने पर प्रथमही ज्वर बल प्राप्त नहीं करता है परन्तु जब कामादि से मन दूषित होजाता है तब ज्वर बलवान् होता है ॥

ज्वर का उत्पत्ति क्रम ।

संसृष्टाः सन्निपतिताः पृथक्वाकुपितामलाः रसाख्यधातुमन्वेत्यपत्तिस्थानाभिरस्यच स्वेनतेनोष्मणाचैव कृत्वा देहोष्मणो बलम् । स्रोतांसिरुद्ध्वासम्प्राप्ताः केवलदेहमुख्यणाः सन्तापमधिकं देहे जनयन्ति नरास्तदा । भवत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरितस्तेन चोच्यते ।

अर्थ—दो दो दोष अथवा पृथक् पृथक् दोष कुपित होकर रसनामक धातुका अनुसरण करके जठराग्नि को स्थानभ्रष्ट करदेते हैं । उस जठराग्नि की गर्मीसे शरीर की गर्मीका बल बढ़जाता है और वह गर्मी स्रोतोंको रोककर केवल देहपर अत्यन्त अधिकार जमाती है तब देहमें अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न होता है । तब सम्पूर्ण देह गरम होजाती है और उस मनुष्य को ज्वरग्रस्त कहते हैं ।

पसीने न निकलने का कारण ।

स्रोतसांसं निरुद्धत्वात्स्वेदनानाधिगच्छति ॥ स्वस्थानात्प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्त-  
रुणे ज्वरे ॥

अर्थ—तरुणज्वर में ही प्रायः जठराग्नि अपने स्थानसे चालित होजाती है और इस हेतुसे स्रोतोंके रुकजाने के कारण पसीने नहीं निकलने पाते हैं ।

आमज्वर के लक्षण ।

अरुचिश्चाविपाकश्च गुरुत्वमुदरस्य च । हृदयस्याविशुद्धिश्च तन्द्रा चालस्य मेव च ॥ ज्वरोऽविसर्गो बलवान् दोषाणां ममवर्त्तनम् । लालामसेको हृल्लासोऽप्युन्मादोऽविशदं मुखम् ॥ स्तब्धमुसगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुभूतता । न विहजीर्णानि च ग्लानिर्ज्वरस्या-  
मस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अरुचि, अविपाक, पेटका भारापन हृदयकी अविशुद्धि [ भारी डकार आना ] तन्द्रा, आलस्य, अविसर्गी ज्वर [ जो बीच में कम न हो ] बलवान् ज्वर, दोषोंकी रुकावट, लालाप्रसेक [ लारगिरना ] हल्लास, क्षुधानाश, मुखमें गिलगिलापन, अंगावयवों का स्तब्ध, मुस और भारी होजाना, पेशाब बहुत आना, मलका कच्चापन और अग्लानि ये सब आमज्वरके लक्षण हैं ।

निरामज्वरलक्षण ॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरप्याहो निरामज्वरलक्षणम् ।

अर्थ—भूखसे दुर्बलता [ भूख लगना और देहका कृश होजाना ] शरीरका हलकापन, ज्वरका कमहोना, दोषोंकी प्रवृत्ति आठ दिन व्यतीत होना अर्थात् आठ दिन में ज्वरका पचजाना ये लक्षण निरामज्वरके हैं ॥ ' दोषप्रवृत्तिरप्याहो, की जगह ' दोषप्रवृत्तिरुत्साहो, ऐसा पाठ भी है ।

नवज्वरमें वर्जितकर्म ॥

नवज्वरेदिवास्वप्नस्नान्नाभ्यङ्गाभयैथुनम् ।  
क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीनज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, तैलमर्दन, भोजन करना, मैथुनकरना, क्रोधकरना, हवाखाना, काय-पान करना ये सब वर्जितहैं ॥

ज्वरमें लंघन विधान ॥

ज्वरेलंघनमेवादावुपादिष्टमृतज्वरात् ॥  
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ—ज्वरकी आदिमें लंघन करना उचित है परंतु जो ज्वर क्षय, वात, क्रोध, काम, शोक और श्रम से उत्पन्न हुआ है उस में लंघन न करै ॥

लंघनकागुण ॥

लंघनेनभयनीतिदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।  
विज्वरत्वंलघुत्वंचक्षुच्चैवास्योपजायते ॥  
प्राणाविरोधिनाचैनंलघनेनोपपादयेत् ।  
बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयंक्रियाक्रमः ॥

अर्थ—लंघनसे दोष क्षीण होजाते और जठराग्नि बढजाती है इस से ज्वर का नाश होता है, देह हलकी पडजाती है और क्षुब्ध चेतन्य होजातीहै । ऐसा लंघन देना चाहिये जिससे प्राणोंको बाधा न पहुँचे । बल आरोग्यताके आश्रितहै और आरोग्यता चिकित्सा के आश्रित होतीहै ॥

अविपक्वदोषों के पाचकद्रव्य ॥

लंघनंस्वेदनं कालोयवाग्वस्तिक्तफोरसः ।  
पाचनान्यविपक्वानांदोषाणांतरुणेज्वरे ॥

अर्थ—तरुण ज्वर में अविपक्व दोषों के

पचाने वाले ये हैं यथा—लंघन, स्वेदन, काल, यवागू और तिक्तफ ॥

उष्णशीतल जलका विधान ।

तृप्यतेसालिलञ्चोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे ।  
मद्योत्थेपैत्तिकेवायशतिलंतिक्तकैःशृतम् ॥  
दीपनपाचनञ्चैवज्वरप्रमुभयंहितम् ।  
तसांशोधनंवल्यंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥

अर्थ—वातकफ ज्वरमें जो तृपा की प्रवृत्ता होती रोगीको उष्ण जल पीनेको देवे मद्यसे उत्पन्न और पित्तज्वर में तिक्त औषधियों को डालकर औटाया हुआ जलठंडा करके देवे । ये दोनों प्रकारके जल दीपन, पाचन, ज्वरनाशक, स्रोत, समूहेके शोधनकर्ता, वलकारक, रुचिवर्द्धक, स्वेदोत्पादक और कल्याणकारक होते हैं ॥

पिपासानाशकजल ॥

मुस्तर्पपटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।  
शृतशीतजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥

अर्थ—यदि उक्त ज्वरों में तृपा की अधिकता हो तौ मोथा, पित्तपापडा, उशीर, चन्दन, मेत्रवाला और सोंठ डालकर जल औटावे और ठंडा करके पान करावे तौ ज्वर और तृपा दोनों शान्तहों ।

दोषोंमें वमन का विधि निषेध

कफप्रधानानुत्क्रिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।  
बुद्ध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानांविभनैहरेत् ॥ अनुपस्थितदोषाणां वमनंतरुणेज्वरे ॥  
हृद्रोगभासमानाहंमोहश्चजन

येदृशम् ।

अर्थ—यदि आमाशयस्थज्वरकी उत्पन्न करने वाले दोष कफप्रधान और रोगी

वमन कराने के योग्य होतौ उचितकालमें वमन कराके दोषों को निकाल परन्तु यदि दोष उपस्थितहों तौ तरुणज्वर में वमन कराने से हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह की अत्यन्त उत्पत्ति होती है ।

आमदोष में संशोधन निषेध ।

सर्वदेहानुगासामाधातुःस्वनिर्हराः ।

दोषाः फलेभ्य आमेभ्यस्वरसाइव सात्ययाः ।

अर्थ—सम्पूर्ण देह में व्याप्त धातुओं में स्थित आमदोषोंका निकालना ऐसा कष्ट साध्य है जैसे कच्चे फल से रसका निकासना फलका नाश करनेवाला होता है ।

वमनलंघन का पश्चात् कर्म

धमित्तलंघितकालेयवागूभिरुपाचरेत् ॥

यथास्त्रौपधासिद्धाभिषण्डपूर्वाभिरादितः ।

यायत्ज्वरमृदूभावात्पदहृषाविचक्षणः ॥

तस्याग्निदीप्यतेताभिः समिद्धिरिवपायकः ।

अर्थ—वमन और लंघन कराने के पश्चात् क्षुधा लगने पर यवागू पान करावै यवागू तीन प्रकार की होती है इनमें से दोषानुसार औषधों से सिद्धकी हुई मण्ड प्रथमपान करावै, जब तक ज्वर मृदु न हो अथवा छ. दिवस पर्यन्त यवागू पान करता रहै । इस यवागू के पान करनेसे रोगी की जठराग्नि ऐसे बढ़ती चली जायगी जैसे ईंधन डालने से अग्नि बढ़ती है ।

यवागू के गुण ।

ताश्चभेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः ।

धातमूत्रपुरीषाणां दोषाणाञ्चानुलोमनाः ।

स्वेदनायद्रवौष्णत्वाद्द्रवत्वाच्चृदमशान्तये ।

आहारभावात्माणायसरत्वाल्लाघवायच

ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वाच्चस्मात्पेयाभिरादितः । ज्वरानुपाचरेद्दीमानृतेमयसमु

त्थितान् ॥

अर्थ—औषधियोंके संयोग और लघुता के कारण यवागू अग्निवर्द्धक होती है, अघोवायु, मूत्र, पुरीष और दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है । पेया द्रव है और उष्ण होनेसे स्वेदनकर्ता है, द्रव होनेसे तृषानाशक है, आहार गुणविशिष्ट होनेसे प्राणधारक है, सर होनेसे शरीर को हलकी करती है ज्वर के सात्म्य होनेसे ज्वरको नाश करनेवाली है, अतएव बुद्धिमान् वैद्य को उचितहै कि प्रथमही पेयासे ज्वरोंका उपचार करे परन्तु मद्यज ज्वरोंमें पेयाका पान करना उचित नहीं है ॥

यवागू वर्जित ज्वर ॥

मदात्ययेमचनित्येग्रीप्मेपित्तकफाधिके ।

ऊर्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥

अर्थ ... मदात्ययजन्य ज्वर, नित्यमयसेवीका ज्वर, ग्रीष्मऋतुका ज्वर, पित्तकफजन्य ज्वर और ऊर्ध्वगेरक्त पित्त ज्वरमें यवागू पान न करावै ।

तर्पण विधि ।

तत्रतर्पणमेवाग्रेप्रयोज्यंलाजशकुभिः ॥

ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तैःसमधुश्चर्करम् ॥ द्रा

क्षादादिप्रखर्जूरपिपायैःसपरूषकैः । तर्प

णार्हैःपुक्कृतैर्व्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ ततः

सात्म्यवलापेक्षीभोजयेज्जीर्णतर्पणम् ॥

तनुनामुदगयूपेणजाङ्गलानांरसेनवा ॥

अन्नकालेपुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् ।

योऽस्यवक्त्ररसस्तस्माद्विपरीतमित्यश्चयत्

तदस्यमुखवैशद्यं प्रकांक्षाचान्नपानयोः ।  
घृतेरसविशेषाणामभिज्ञत्वं करोति यत् ॥  
विशोध्यद्रुमशरावाधैरास्यं प्रक्षाल्य चास  
कृत् । मास्त्वहुरसमयाद्यैर्याहारमवा  
प्नुयात् ॥

अर्थ—प्रथमही ज्वर नाशक फलों का रस  
तथा शहत और खांड मिलाकर ठाज(खांड)  
के सत्तूका तर्पण देवे । दाख अनार, खिजूर,  
पियाल, फालसा इनका रस मिलाकर तर्पण  
के योग्य पुरुषों के लिये ज्वर को दान्त कर  
नेके निमित्त तर्पण दिया जाता है । जब त-  
र्पण पचजाय तब सात्म्य और बलकी अपे-  
क्षा करके भृंगका पतलायूप और जांगल  
पशुओंका मांसरस भोजनके समय देवे । भो-  
जन करनेसे पहिले दन्तधावन ऐसे द्रव्यों  
से करे जो मुखके रसके विपरीत हों औ-  
र जिन का जायका भी खराब न हो । इसप्र-  
कार दन्तधावन करने से रोगी के मुख में  
विशदता ( सफाई ) होनी है और उसकी  
अन्न पान में रुचिवृद्धि है सब रसोंका स्वा-  
द आने लगता है और उनका ज्ञान होजाता  
है वृक्षकी शाखाके अप्रभाग से मुखको  
शुद्ध करके और अच्छी तरह धोकर भस्त्र,  
इंधुरस, और मद्यादिका रोग के अनुसार  
पान करावे ॥

ज्वर में पाचन द्रव्योंका समय  
पाचनीयं शमनीयं कपायं पाययेत्तत् ॥  
ज्वरितं पटहेऽतीतं लेघवन् प्रतिभोजितम् ॥  
स्तभ्यन्तेन विपच्यन्ते कुर्वन्ति विपमज्वरम्  
दोषावद्धा कपायेन स्तम्भित्वा च रुणे ज्वरे

अर्थ—छः दिन व्यतीत होने पर ज्वर  
रोगी को पाचन कर्त्ता और शमनकर्त्ता औ-  
षधों का साथ पान करावे और लघुअन्नका  
भोजन करावे । तरुणज्वरमें क्वाथका सेव-  
न करनेसे दोषवद्ध और स्तम्भित होजाते  
हैं और पचनेमें नहीं आते हैं तब वे विपम  
ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

नतु कल्पनमुद्दिश्य कपायः प्रतिपिध्यते । यः  
कपायः कपायः स्यात्सर्वार्थस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—ऊपर जो तरुण ज्वरमें कपाय का  
निषेध किया गया है वह कपायमात्र का नहीं  
है परन्तु जो कपाय रसवाला है उसीका निषेध है ॥

दसदिन पर्वन्त पथ्यविधि ॥

यूपैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ॥  
दशाहं तावदश्रीयालुध्वनं ज्वरशान्तये ॥

अर्थ—ज्वरकी शांति के लिये दस दिन  
तक अम्ल वा अनम्लयूप और हितकारी जां-  
गल पशुओं के मांसरस के साथ लघु  
अन्न का पथ्य करे ॥

दसदिन पीछे कर्म ॥

अतर्ज्ज्वकफे मन्दे यातापित्तोत्तरे ज्वरे ।  
परिपके पुदोषे पुसर्पिष्पानं पथामृतम् । नि-  
र्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलं घितम् ।  
न सर्पिः पाययेत्तैश्च कपायं स्तमुपाचरेत् ॥  
यावल्लघुत्वा दशनं दधान् मांसरसेन च ।  
परं हलं दोषहरं परन्तश्च बलमदम् ॥ दाह  
तृष्णापरीतस्य वा तापित्तोत्तरे ज्वरम् ।  
वद्धमस्युतदोषं वानिरामं पयसा जपेत् ॥  
क्रियाभिराभिः प्रशमनं प्रयातियदा ज्वरः ।  
अक्षीणबलमांसस्य शमयेत्तत्तत्रिचैः ॥

ज्वरक्षीणस्यनहितं वमनन विरेचनम् । का  
मन्तुपयसातस्यनिरुहैर्वाहरेन्मलान् ॥

अर्थ—दस दिन पीछे यदि कफ मन्द  
पडजाय और घात पित्त प्रबल रहें और दोष  
सब परिपक्व होजाय तब घृतका पान कराना  
अमृत के समान गुणकारक है ।

दस दिन पीछे भी यदि कफ बलवान्  
रहै तो उसको लघन ठाक न डूए ऐसे समय  
में घृतपान न करावे किन्तु कपायों द्वाराही  
चिकित्सा करे ॥

जबतक देह हल्की न हो तबतक मास  
रस खाने को दे क्योंकि मासरस अत्यन्त  
दोषनाशक, परमोत्तम और बलप्रद है ।

ऐसा ज्वर जिसमें घात पित्तकी अधि  
कताहो और तृप्ता बलवान् हों और उस में  
दोष बढ हो या प्रच्युत हों ऐसे निरामज्वर  
में दुग्धका सेवन करे ॥

यदि ऊपर कही हुई क्रियाओं से ज्वर  
शान्त न हो और रोगी का बल और मांस  
क्षीण न हुआहो तो विरेचन द्वारा ज्वर की  
शान्ति करे और जो रोगी उससे क्षीण हो  
गयाहो तो उसको वमन विरेचन बुठन देवे।  
किन्तु तृप्ति पर्यंत दुग्ध पान कराके अथवा  
निरुहण वस्ति द्वारा दोषों को निकाल देवे ।

ज्वर में निरुहणवस्ति ॥

निरुहोवलमग्निश्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम् ।  
परिपेपुदोषेषुप्रयुक्तं शीप्रमावहेत् ॥

अर्थ—परिपक्व दोषोंमें निरुहण वस्ति-  
का प्रयोग करनेसे बल, अग्नि, ज्वर रहित-  
ता, प्रसन्नता और अन्न में रसि शीघ्रही  
उत्पन्न होती है ॥

ज्वर में निरुहणवस्ति ॥

पित्तवाकफपित्तवापित्ताशयगतहरेत्सं-  
सनं ग्रीन्मलान् वस्तिहरेत्पकाशयस्थितान्

अर्थ—वस्ति पित्ताशयगत पित्तको नि-  
काल देती है। ससनकर्ता है और पकाशयस्थ  
तीनोंमलों को निकाल देती है ॥

अनुवामनवस्तिविधान ॥

ज्वरेपुराणसंक्षीणेकफपित्तदृढाग्रये ।

रूपबद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुवासनम् ।-

अर्थ—ज्वर पुराना पडगया हो, कफ पित्त  
क्षीण होगये हों, अग्नि मन्दहो, और पुरीषरूप  
वा बद्धहोगयाहो तब अनुवासन वस्ति देने ।

शिरोविरेचन

गौरवोशिरसःशूलेविबद्धेध्वान्द्रियेषु च ॥-

जीर्णज्वरेरुचिरुद्धकुर्यान्मूर्ध्वविरेचनम्

अर्थ—देहमें भारापन, शिरोत्रेदना, इन्द्रिय  
विबध इन लक्षणों से युक्त जीर्णज्वर में  
विरेचन देवे इसके देने से राचि बढतीहै ॥

जीर्णज्वरके अन्य उपचार ॥

अभ्यङ्गाश्वामदेहांशसस्तेहान्सावगाहनान्  
विभज्यशीतोष्णतयाकुर्याज्जीर्णज्वरेभिप-  
क्व । तराशुहिशमयातिवहिर्मार्गगतोज्वर  
लभन्तेमुखमंगानिबलवर्णश्चवर्धते ।

अर्थ—भिषक्को उचितहै कि जीर्ण ज्वर  
में विरेचना करके शीतोष्ण अभ्यग स्निग्ध  
प्रदेह और अगगाहन द्वारा चिकित्साकरे ।  
इन उपचारोंके करने से वहिर्मार्ग गामी  
ज्वर शान्त होजाताहै, अंग के अंगपर  
मुखी होजाते हैं तथा बल और वर्णकी  
वृद्धि होती है ॥

घूपनाञ्जनयोगैथयान्तिजीर्णज्वराःशमम्  
त्वद्मात्रशेषायेवाश्वधन्त्यागन्तुरन्वयः  
इति क्रियाक्रमःसिद्धो ज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः

येषान्त्वपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु  
अर्थ—ऐसे जीर्णज्वर जिनमें त्वचामात्र

क्षय रह गई हो और आगन्तुकज्वर घूपन और  
अञ्जनके योग से शमन होते हैं यह ज्वर-  
नाशक चिकित्साका क्रम वर्णन किया गया  
है, अब हम उन द्रव्योंका वर्णन करते हैं जो  
इस चिकित्सा क्रम में उपयोगी होते हैं ॥

ज्वरनाशकप्रयोग ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह

यवाग्वोदनलाजार्थज्वरितानांज्वरापहाः

अम्लामिलापीतामेयदाडिभाम्लासनाग

राम् ॥ सृष्टविट्पैत्तिकोवायशीतामधुयु

तापिवेत् । लाजपेयांसुखजरापिप्पली

नागरैःशृताम् ॥ पिवेज्ज्वरीज्वरहरांसु-

हानल्पाग्निरादितः । पेयांवारक्तशाली-

नांपार्श्ववास्ताशिरोरुजः ॥ श्वद्वष्टाकण्ट

कारिभ्यांसिद्धाज्वरहरापिवेत् । ज्वराति

सारीपेयांवापिवेत्साम्लांशृतांनरः ॥ पृश्नि

पर्णांयलायित्वनागरोत्पलधान्यकैः ।

अर्थ—ज्वर ग्रस्त रोगीके ज्वर को शान्त

करने के निमित्त रक्तशाली चांवलकी यवागू

भात और खील वनवाकर देवै ।

जो रोगी को खटाई पर इच्छा हो तो उस

यवागू में अनारकी खटाई और सोंठ डालकर

पान करावै । जो विष्टा और पित्त निकल गये

होती उसको ठंडी करके शहत डालकर

पान करावै ॥

मन्दाग्निला पुरुष क्षुधालगने पर पीपल  
और सोंठ डालकर लाजपेया का पान करै  
यह सुख पूर्वकपचजाती है और ज्वरको भी  
दूर करदेती है ।

छाछ शाली चांवलों की पेया गोखरू और  
कटेरी डालकर सिद्ध करै और इसको पान  
करै तो पार्श्व वेदना, वस्तिवेदना, शिरोरोग  
और ज्वर ये सब नष्ट होजाते हैं ।

ज्वरातिसार रोगवाला घृदिनपर्णी, खरैटी, वै-  
लगिरी, सोंठ, निलोफर और धनियां डालकर  
सिद्धकी हुई पेयामें खटाई डालकर पान करै ॥

ज्वरनाशक अन्यप्रयोग ॥

शृतांविदारीगन्धाद्वैदीपनीस्वेदनीनरः॥

कासीश्वासीचहिकीचयवागूज्वरितःपिवे

त् । विषद्ववर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैः

कृताम् ॥ सर्पिंस्तीम्पिवेत्पेयांज्वरीदो-

पानुलोमनीम् । कोष्ठेविषद्वेसरुजिपिवेत्

पेयांशृतांज्वरी ॥ मृद्वीकापिप्पलीमूलच

व्यामलकनागरैः । पिवेत्सवित्वापेयां

वाज्वरेसपरिकर्तिके ॥ बलावृक्षाम्लफो

लाम्लकलशधावनीशृताम् । अस्वेदनि-

द्रस्तृष्णार्तःपिवेत्पेयांसर्कराम् ॥ नाग

रामलकैःसिद्धाङ्घृतभृष्टांज्वरापहम् ।

अर्थ—विदारीगन्धडालकर सिद्धकी हुई

यवागूखांसी, श्वास, हिचकी और ज्वररोगोंमें

देवै, यह यवागूदीपनीय और स्वेदनकर्ताहै ॥

जो बिष्टारकमया हो तो ज्वर रोगी

पीपल और आंवला डालकर सिद्ध की हुई

जौकी पेयामें घृत डालकर पान करै, यह

पेया दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है ॥



कोष्ठवद्ध और शूलहोनेपर ज्वररोगी को किसमिस, पीपलामूल, चव्य, आंवला और सोंठ डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावे परिकर्तिका ( पेट में मरोड़ा ) रोग में ज्वररोगी बेलगिरी, खैरटी, वृक्षाम्ल, कोलाम्ल, कलशी ( पृष्णपर्णी ), और धावनी ( शालपर्णी ) डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावे

जिसको पसीने और नींद नआती हो और तृप्ता अधिक लगतीहो वह सोंठ और आंवला डालकर सिद्धकी हुई और घृत में मुनीहुई पेयोंमें चीनी डालकर पानकरे । इससे ज्वर भी जाता रहता है ।

### ज्वरपरयूप ॥

मुहान्मसूरंश्वणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान्

यूपार्थेयूपसात्स्यानांज्वरितानाम्प्रकल्पयेत्

अर्थ—वे ज्वररोगी जिनको यूप सात्म्य है वे मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोठका यूप पीवे

### ज्वरपरशाक ॥

पटोलपत्रंफलकुलकंपापचेलिकाम् ॥

ककंदकंठिकंठिलश्चविघातशार्कज्वरेहितम् ॥

अर्थ—ज्वरमें परवलके पत्ते, फल और डंठलकासाग, पाठ, ककंदक और कोरेले का साग हित है ॥

### ज्वरपरमांस ॥

लावान्कापिञ्जलानेणांश्वकोरानुपचक्र कान् ॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्चहरिणान्पृषतान् शशान् । प्रदद्यान्मांससात्स्यायज्वरिता यज्वरापहान् ॥

अर्थ—लवा, तीतर, हरिण, चक्रो, चक्रवा, कुरंग, कालपुच्छ, पृषत और खगोश

इनकामांस मांससात्म्य रोगियों को देवे, ये ज्वरनाशक होते हैं ॥

### ज्वरमेंमांसरसकावर्णन ॥

ईपदम्लाननम्लान्वारसान्कालेविचक्षणः कुवकुटांश्चमयूरांश्चतिशिरिक्तांश्चवर्तकान् । गुरुष्णत्वान्नशंसन्तिज्वरेकोचिच्चित्सफाः । लघनेनानिलवलज्वरेयद्यधिकंभवेत् ॥ भिपह्मात्राविकल्पज्ञोदद्यात्तानपिकालावेत् ॥

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि यो-डीसी खटाई डालकर या बिना खटाई के मांसरस उचितकालमें ज्वररोगीको देवे । मुर्गा, मोर, तीतर, कुब्ज और घतककामांसरस हित होताहै । कोई २ वैद्य यह कहतेहैं कि मांसरस भारी और उष्ण होताहै इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं है ॥

यदि ज्वरमें लघन करानेसे बात का बल अधिक होजाय तो वैद्यको उचित है कि मात्रा, विकल्प और कालके अनुसार मांसरसोंका सेवन करावे ॥

### ज्वरपर मद्यादि विधि ॥

धर्माभ्युचानुपानार्थतृप्तितायप्रदापयेत् ॥

मथंवामथसात्स्याययथादोषंयथावलम्

गुरुष्णास्निग्धमधुरकपायांश्चनवज्वरे ॥

आहारान्दोषपवत्यर्थमायशःपारिवर्जयेत्

अनुपानक्रमःमिष्टोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः ॥ अतऊर्ध्वप्रवक्ष्यन्तेकपायाज्वरनाशनाः

अर्थ—भोजनके पश्चात् तृप्ता लगनेपर ज्वररोगीको उष्णजलका पान करावे । जिसको मय अनुकूलहै उसे यथादोष और यथावल

मद्यका अनुपान करावै । नवीन ज्वरमें दो पोंके पचानेके लिये गुरु, उष्ण, मधुर, तिग्ध और कषायरस वाले आहारोंका सेवन न करावै । यह अनुभूत ज्वरनाशक अनुपानक्रम वर्णन किया गया है ॥

अब हम ज्वरनाशक काथोंका वर्णन करतेहैं  
ज्वरनाशककाथ ॥

पाययंशीतकपायंवामुस्तर्पटकंपिबेत् ॥  
 सनागरंर्पटकंपिबेद्वासदुरालभम् ॥ किं  
 राततिक्तकंमुस्तंगुह्यंविश्वभेषजम् ॥  
 पाठामुशीरंसोदीच्यपिबेद्वाज्वरशान्तये ।  
 ज्वरघ्नादीपनाश्चैतेकपायादोषपाचनाः ॥  
 तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनः ।

अर्थ—ज्वरके दूर करने के लिये नांचे लिखी हुई औषधियोंके प्रयोगोंका कपाय वा शीतकपाय बनाकर देवै यथा मोधा और पित्तपापडा इनका शीतकपाय वा कपाय पानकरै । अथवा सोंठ, पित्तपापडा, और जवासा इनका काथ पीवै । अथवा चिरायता, नागरमोधा, गिल्लोय सोंठ, पाठा, खस, और नेत्रवाला इनका कपाय ज्वरकी शांति के लिये पानकरै । ये तीनों कपाय जो ऊपर कहेगये हैं ज्वरशान्तकर्त्ता, दीपन दोषपाचन, तृपानाशक, अरुचिनाशक और मुखकी विरसता को नाश करनेवाले हैं ॥

**ज्वरनाशकअन्यथाय ।**

कलिङ्गकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥  
पटोलः शारिवामुस्तं पाठाकटुकरोहिणी ।  
निम्बः पटोलस्त्रिफलामृद्रीकामुस्तवत्सकाः  
किराततित्तममृताचन्दनं विदग्धमेजम् ।

गुह्यामलकमुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः ॥  
 कपायाः शमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधञ्जरम् ।  
 सन्ततंसततान्येद्युरवृतीयकचतुर्थकम् ॥  
 अर्थ— ( १ ) इन्द्रजौ, परवलके पत्ते, कु-  
 टकी । २-परवल, शारिवा, मोथा, पाठा,  
 कुटकी । ३-नीम, परवल, त्रिफला, किस-  
 मिस, मोथा, इन्द्रजौ । ४-चिरायता, गिलोय  
 रक्तचन्दन और सोंठ । ५-गिलोय आंवला  
 और मोथा । ये आधे २ श्लोक में कहेहुए  
 पांच प्रकार के काथ क्रमसे सन्तत, सतत,  
 अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक इन पांचों  
 प्रकारके ज्वरको नाश करते हैं ॥

ग्वरनाशक अन्यववाथ ॥

वत्सकारग्वधपाठांपद्ग्रन्थांकडुरोहिणीम्  
मूर्वासातिविषान्मिष्वपदोलंघनव्यासकम्  
चचामुस्तमुशीराणिमधूकान्निफलांबलाम्॥  
पावयंशीतकपायंवापि वेङ्गवरहरंनरः ।

अर्थ—इन्द्रजौ, अमलतास, पाठा, वच, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, परबल, जयासा वच, मोथा, खस, मुल्हटी, त्रिफला, खरैटो इन सबके काथ वा शीतकपायका पान करै। यह उवरनाशक काथ है।

अन्यप्रयोग ।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकादमर्यागिपरुपकम् ॥  
त्रायमाणमुशीराणित्रिफलांकटुरोहिणीम्  
पीत्वानिश्चिन्तजंतुर्ज्वराच्छीघ्रांविमुच्यते

अर्थ—मुलहठी, मोथा, किसमिस, खंभारी फालसा, त्रायमाण्णा, खस, त्रिफला और कुन्डू-को इनके शीतकपायका पान करनेसे ज्वर शीघ्रही नष्ट होजाताहै ॥

## अन्यप्रयोग ।

वृहत्पौवत्सकमुस्तं देवदारुमहौषधम् । को  
लवल्लीचयोगोऽयं सन्निपातज्वरापहम् ॥

अर्थ—देनों कटेरी, इन्द्रजौ, मोथा, देव  
दारु, सोंठ, और गजपपिल इनका काय  
सन्निपात ज्वरका नाश करने वाला है ।

विबन्धदोषयुक्त ज्वर परक्वाथ ।

जात्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वयवासकम् ।

विबद्धदोषोज्वरितः कपायंसगुहंपिबेत् ॥

अर्थ—जायफल, आमला मोथा, जवासा  
और गुड़ इनका कपायकरके पीनेसे विबद्ध-  
दोष युक्त ज्वर नष्ट होजाता है ।

तिफलांश्रयमाणाश्चमृद्धीकांकदुरोहिणीम्  
पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकपायोद्यानुलोमिकः ॥

तृप्ताशर्करायुक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—त्रिफला, श्रयमाण, किसमिस  
कुटकी और इनका कथं कफापित्तजन्य ज्वर  
को नाश करने वाला और अनुलोमन कर्ता  
है । शर्करा मिश्रित निशोध काय पान करने  
से भी ऊपर कहाहुआ गुण होता है ।

सन्निपात पर प्रयोग ॥

शटीपुष्करमूलञ्चन्याम्रीशृङ्गीदुरालभा ॥

शुद्धचीनागरपाठाकिरातंकदुरोहिणी ॥

एषशठ्यादिकोवर्गः सन्निपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपाश्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते ॥

अर्थ—शटी, पुष्करमूल, कटेरी, फाकडा  
सींगी, जवासा, गिलोय, सोंठ पाठा; चिरा  
यता, कुटकी, यह शठ्यादिकवर्ग ज्वर नाश  
क है तथा खासी, हृद्ग्रह, दर्दपसली, श्वास  
और तन्द्रा इन सबमें बहुत गुण दायक होता है ।

## अन्यप्रयोग ।

वृहत्पौपुष्करभार्गीशटीशृङ्गीदुरालभा ।

वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकदुरोहिणी ॥

वृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।

कासादिपुचसर्वेषु दद्यात्सोपद्रवेपुच ॥

अर्थ—देनों कटेरी, पौष्करमूल, भार्गी  
शटी, काकडासींगी, इन्द्रजौ, परवल, कुटकी  
यह वृहत्यादिगण सन्निपात ज्वर नाशक है;  
यह कास, हृद्ग्रह आदि सम्पूर्ण उपद्रवों में  
विशेष गुणदायक है ।

कपायाश्चयवाग्वध्रपिपासाज्वरनाशनाः ॥

निर्दिष्टाभेपजाध्यायेभिपकृतानपियोजयेत्

अर्थ—तृपा और ज्वरनाशक कपाय  
यवागू जो सूत्रस्थान के भेपजाध्याय में  
वर्णनाकिये गये हैं उनका प्रयोग भी  
करना चाहिये ॥

ज्वरमें घृतविधि ।

ज्वराः कपायैर्वमनैः लघनैर्लघुभोजनैः । रुक्ष

स्य येन शाम्यन्ति सपिंस्तेषां भिपज्जितमूलः

संतेजो ज्वरकरं तेजसारुक्षितस्य च ॥ यः स्या

दनुबलोधातुः स्नेहसाध्यः स चानलः । क

पायाः सर्वेष्वेते सपिंसासहयोजिताः ॥ प्र-

योग्याज्वरशान्त्यर्थमग्निसन्धुचणाः शिवाः

अर्थ—रुक्ष मनुष्यका ज्वर कपाय, व-  
मन, लघन और लघुभोजनसे शान्त न हो  
तो घृत देना श्रेष्ठ है ॥ रुक्ष व्यक्तिका ज्वर  
तेजोमय होनेसे रुक्ष है और वायु उसका  
अनुबल है अतएव वायु स्नेहसाध्य है ।

नीचे लिखे हुए कपायोंमें घृत डालकर  
मिद्ध करना चाहिये । ये कपायज्वर शान्त-  
कर्ता, अग्निवर्द्धक और कल्याणकारक हैं ॥

घृत सिद्ध करने का कपाय ।

पिप्पल्यः चन्दनं मुस्तमुशीरं कदुरोहिणी ॥  
कलिद्रक्तामलकीशारिचाति विपास्थि  
रा । द्राक्षामलकविल्वानि त्रायमाणानि  
दिग्धिका ॥ सिद्धमेतैर्घृतं सद्योजीर्णज्वर  
मपोहति । सयंकासशिरःशूलपार्श्वशूलं  
हलीमफम् ॥ अंसाभितापमग्निञ्च विप  
मंसनियच्छति ।

अर्थ—पौपल, चन्दन, मोथा, उसीर  
कुटकी, इन्द्रजी, भू आंवला, सारिया, अतीस  
शालिपर्णी, दाख, आंवला, बेलगिरी, त्राय-  
माण, कटेरी इनके काथमें सिद्ध किया हुआ  
घृत जीर्ण ज्वरको शीघ्र नष्ट करदेता है ।  
क्षयी, खासी, शिरो वेदना, पार्श्वशूल हली-  
मफ, अंसाभिताप और विपमग्नि ये भी  
दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

वासांगुर्च्चान्निकलात्रायमाणायवासकम्  
पक्त्वा तनकपायेण पयसादिगुणेन च ।  
पिप्पलीमुस्तमृद्रीकाचन्दनोत्पलनागरैः ॥  
कल्कीकृतैश्च विपचेत् घृतं जीर्णज्वरापहम्  
अर्थ—अहुसा, गिलोय, त्रिफला, त्राय  
माण, जवासा, इनके काथमें घृत और  
घृत सेदना दूध, तथा पीपल, मोथा, किस-  
मिस चन्दन, नीलोत्तर, सोंठ, ये सब डा-  
लकर घृत पकावै यह घृत जीर्णज्वरना  
शक होता है ॥

अन्य प्रयोग ।

बलांश्च द्रंष्टुं हृत्कीलसीं धावनीं स्थिराम् ॥  
निम्बं पर्पटं कुस्तं त्रायमाणं दुरालभम् ।  
कृत्वा कपायं पेयार्थं दद्यात्तामलकीशदीम् ॥

द्राक्षां पुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ।  
घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पज्वरहरं परम् ॥ स  
यकासाशिरःशूलपार्श्वशूलं सतापनुत् ।

अर्थ—खैरटी, गोखरू, कटेरी, प्रसनपर्णी  
छोटी कटेरी, शालपर्णी, नीम, पित्तपापडा,  
मोथा, त्रायमाण, जवासा, इनका काथ कर ।  
तथा भूआंवला, शटी, दाख, पौहकरमूल, मेदा  
और आंवला इनको पीस कर लुगदी बनावे  
और इनमें घृत और दूध डालकर सिद्ध करें  
तौ यह घृत उत्तम ज्वर नाशक होता है ।  
क्षयी, खासी, शिरोवेदना, पार्श्वशूल और  
अंस तापको दूर करता है

ज्वर में शोधन विधि ।

ज्वरिभ्यां बहुदोषेभ्य ऊर्द्धाधश्च बुद्धिमा-  
न ॥ दद्यात्संशोधने काले कल्पेयदुपदेश्यतः ॥

अर्थ—ऐसे ज्वर रोगीको जो बहुत दोषों  
से युक्त हो उसे बुद्धिमान् वैद्य कल्पस्थान में  
कहे हुए वमन विरेचन उचित काल में देवै ।

ज्वर में वमन के प्रयोग ।

मर्दनं पिप्पलीभिर्वा कलिर्हर्मधुकेन वा ॥  
युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये ।  
सांद्राम्बुनारसेनेक्षोरथावालवणाम्बुना ॥  
ज्वरे प्रच्छर्दनं शस्तं मयैर्वा तर्पणेन वा । मृद्री  
कामलकानां वारसं प्रच्छर्दनं पित्तम् ॥ रस  
मामलकानां वा घृतं मृद्वज्वरापहम् ।

अर्थ—पीपल, अथवा इन्द्रजी अथवा मु-  
लहटी के साथ मेनफल का चूर्ण मिला कर  
गरम जलके साथ पान करनेसे वमन होती  
है, यह वमन ज्वरनाशक है शहत और जल  
अथवा ईखका रस नमकका जल अथवा म-

अन्य स्नेहनप्रयोग ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यांगुह्यामधुकेनच ।  
मदनैश्चभृतःस्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥  
चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः ।  
सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते ॥  
यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे ।  
शिरोविरेचनंक्षुर्याद्युक्तिस्तज्ज्वरापहम् ।  
यच्चनावनिकर्तैलयाश्चमाधूमंवर्तयः ।  
मात्राशितियेनिर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ताज्वरे-  
ष्वपि ॥ अभ्यङ्गाश्चप्रदेहांधपरिपेक्षांश्चका-  
रयेत् । यथाभिलापंशीतोष्णंविभज्यद्वि-  
विधंज्वरम् ॥ सहस्रधौतसर्पिर्वातैलवाच-  
न्दनादिकम् । दाहज्वरमशमनदद्याद-  
भ्यञ्जनंभिषक् ॥

अर्थ—परवल, नीमकीछाल, गिलोय, मु-  
लहठी, मैनफल इनके साथ घृतको सिद्ध  
करके ज्वरनाशक अनुवासनवस्ति देवै । अ-  
थवा चन्दन, अगर, खंभारी, परवल, मुल-  
हठी, नीलोफर इनमें सिद्ध कियेहुए घृतकी  
स्नेहनवस्ति ज्वरनाशक होती है ।

जो सूत्रस्थानमें और विमानस्थानमें शिरो-  
विरेचन कहे गये हैं वेभी युक्तिपूर्वक देने चा-  
हिये । उनके प्रयोगसे भी ज्वरनाश होता है ।

सूत्रस्थानके मात्राशितय अथार्यमें जो  
नस्थ तैल, घूमवर्त आदि प्रयोग वर्णन  
कियेगये हैं वेभी ज्वरमें करने चाहिये ॥  
शीत और उष्ण दोनों प्रकारके ज्वरों की  
विवेचना करके ठंडा और गरम अभ्यंग,  
प्रदेह और परिपेक करै ॥ हजारवार घोया  
हुआ घी, या चन्दनादि तैलका अभ्यंग क-  
रनेसे दाहज्वर नष्ट होता है ॥

चन्दनाद्य तैल ।

अथ चन्दनाद्यतैलमुपदेक्ष्यामः ।

चन्दनशैलेयभद्रश्रियकालानुसार्यकाली  
यकपत्रापन्नकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्ड-  
रीकनागपुष्पोदीच्यचक्षुपत्रोत्पलनलि-  
नकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसमृ-  
णालशालकशैवालकशेरुकानन्ताकुशका  
शेखुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतस-  
धानीरगुन्द्राककुभाशनाश्चकर्णस्यन्दन-  
वातपोथसालतालधवतिनिशखदिरकद-  
रकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीत-  
नोदुम्बराश्वत्थन्यग्रांधलोधधातकीदूर्वा  
त्कण्टकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाग्योतिष्मतीपुष्क-  
रवीजक्रीञ्चादनवदरीकोविदारकदली-  
संवर्तकारिष्ठशतपर्वाशितिकुम्भिकाशताव-  
रीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणी रोहिणी  
शीतपाकयोदनपाकीकालावलापयस्या-  
विदारी जीवकर्पभकमेदामहामेदामधुर-  
कप्यमोक्तातृणशून्यमोचरसाटरूपकबकु-  
लकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनालिकेरख-  
र्जूस्मृदीकापियालम्रियेगुधन्वनात्मगुप्ता-  
मधुकानामन्येपाञ्चशीतवीर्याणांयथाला-  
भमौषधानां कपायंकारयेत् । तेनकपायण  
द्विगुणितपयसातेपामेवचकलकेनकपाया-  
र्धमात्रंमृद्वग्निनासाधयेत्तैलमृत्तैलमभ्य-  
ङ्गादेवसद्योनाहंज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैः  
सुशुष्कपिष्टैःसुश्रीतैःप्रदेहञ्जारयेदेतैरेवच-  
भृतशीतंसलिलमवगाहपरिपेकार्थमयुञ्जी-  
तइतिचन्दनाद्यतैलं ।

अर्थ—रक्तचन्दन, शिलापुष्प, सफेद च-

न्दन, कालानुसार्य [ शैलेय ] पीतचन्दन, पद्मा, पद्माख, उत्तीर, शारिवा, मुलहटी पुण्डरीक, नागकेसर, नेत्रवाला, चव्य, पय, नीलकमल, नलिन, कमोदनी, सीगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, विस ( कमलनाल ), मृणाल, शालक, शैवाल, केसरू अनन्तमूल कुशा, कांस, ईख, दाभ, सरकंडे की जड़, नरसलकी जड़, शालिमूल, जामन, बेत, बेतस, वाणीरि, गुन्द्रा, अर्जुन, असन, साल स्पन्दन ( तिनिशवृक्ष ), घातपोथ ( पलास ) साल, ताल, धौ, तिनिश, खैर, दुर्गन्धखैर, कदम्य, खंभारीफल, सर्ज, पाकड, बट कपीतन, गूलर, पीपल, बड़, छोध, धाय, दूध, उत्कण्ठक, सिंघांडा, मजीठ, मालकांगनी, पुष्करधीज, क्रीञ्चादन, बेर, लालकनेर कैला, मोथा, नीम, शतपर्वा ( एक प्रकार की दूब ) शीतकुम्भिका, सितावर, खंभारी श्रावणी, महाश्रावणी, कुटकी, शीतपाकी [ खैरटी ] ओदनपाकी, काला ( नीलिनी ) खैरटी, क्षीरकाकोली, बिदारीकन्द, जीवक, कपभक, मेदा, महोमेदा, मूर्वा, अतिवला, मालिका, मोचरस, अडूसा, वकुल, कुडा, की छाल, परवळ, नीम, सेमर, नारियल, खिजूर, किसमिस, पिवाल, चिरोजी, धन्वन केच, महुआ, । इन सब औषधियोंको तथा अन्य शीतवीर्यवाली औषधोंको जो जो मिल सकें इकट्ठी करके क्वाथ करें फिर इस क्वाथका आधा तेल और दूना दूध तथा इन्हीं औषधोंका करक करके मन्दी मन्दी आग पर पकावें ॥ यह तैल दाहज्वर को

शीघ्रही दूर करदेताहै । इन्हीं औषधियोंको महीन पीसकर ठंडी ठंडीका लेप करें और इन्हीं औषधोंको डालकर जल ओटावें और ठंडा करके स्नान और परिषेक में दें ॥ यह चन्दनाद्य तैल है ।

अन्यप्रयोग ॥

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसालिलसेकावगा हांश्चसद्योदाहज्वरमपनयन्तिशीतस्पर्शत्वादिति ॥

अर्थ—शहत, कांजी, दूध, दही, घी और जल इनका स्पर्श शीतल है इनका परिषेक और अवगाह में प्रयोग करने से तत्काल दाह दूर हो जाता है ।

दाहज्वर में अन्य उपचार ।

पौष्करपुसुशीतेषुपत्रोत्पलदलेपुच । कल्लाराणाश्चपत्रेषुसौमेषुविमलेपुच । चन्दनोदकशीतेषुसुप्यादाहादिनःसुखम् ॥ हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा । हेमशंखप्रवालानामणीनामौक्तिकस्यच ॥ चन्दनोदकशीतानांसंस्पर्शानुरसान्स्पृशेत्सग्भिर्निलोत्पलैःपद्मैर्व्यजेनैर्विधैरापि ॥ शीतवातावहैर्व्यजेच्चन्दनोदकवर्षिभिः । नद्यस्तडागाःपथिन्योहदाश्चिमिलोदकाः अवगाहेहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः । प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः सान्त्वयेयुःपरैःकर्ममणिमौक्तिकभूषणाः । शीतानिचाग्रपानानिशीतान्युपयनानिचवायवःचन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः ॥

अर्थ—दाहज्वरसे पीडित मनुष्यको उचितहै कि ऐसे ठंडे घरमें जहाँ शीतल जलों

का छिडकावहोरहाहो अथवा जहां फव्वारे चल रहेहों शीतलकमल के पत्तों पर अथवा रक्तकमलमें नीलकमल वा कल्हारके पत्रोंपर वा नरमनरम रेशमीवस्त्रोंपर शयन करै जिनपर शीतल चन्दनोंदकभी छिडकरहाहो । सुवर्ण, शंख, मृगा, मणि, मोती और शीतलचन्दनोंदक को अपने देह पर लगाता रहै । नीलकमल और लाल कमल की माला धारण करै । ऐसे पंखों से हवा करावै जिनपर चन्दनका जल छिडक रहाहो और जिनसे ठंडी २ वायु आतीहो । निर्मलजल के नदी तालाव वा हृद्में जिनमें कमल खिल रहे हैं स्नान करनेसे दाह तृष्णा, ग्लानि और ज्वर शीघ्र शान्त होते हैं । अत्यन्त प्यारी, चतुर, चन्दन लगी हुई, मणिभूषणादि अलंकारों को धारण करने वाली, नवीन स्त्रियोंसे आलिङ्गन करने से भी दाह ज्वर शान्त होजाताहै । शीतल अन्नपान, शीतलउपवन, शीतलवायु, शीतल चन्द्रमाकी किरण इनका सेवन करने से भी दाहज्वर शांत होता है । अथोष्णाभिप्रायिणां ज्वरितानां अभ्यङ्गा दीनुपक्रमानुपदेश्यामः ।

अर्थ—अब हम उन अभ्यङ्गादि का वर्णन करते हैं जो ऐसे शीतज्वर रोगियों को हितकारी हैं जिनको उष्ण पदार्थ के सेवन की आवश्यकता है ।

अगुचर्यादि तेल ॥

अगुरुकृत्तगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौण्यकक्षेमिकैलावरावराङ्गदलपुरतमालपत्रभूर्ताकरोहिपसरलसल्ल

कीदेवदार्वभिन्नयविल्वस्योनाककाश्मर्यपाटलापुर्ननवानृश्चीरकण्टकारिकावृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमापपर्णमुद्रपर्णीगोक्षुरकरैण्डशोभाञ्जनकवरुणाकाचिरिविल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डारोरुबूकपचुराक्षीवाभ्यान्तकशिथुमातुलङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेपमृद्धाहिःसादन्तशठैरावतकभट्टातकास्फातकण्डीरात्मजकैपीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरकफण्डारकालमालकपर्णासत्तवकफाणिञ्जकभूस्तृणभृङ्गवेरपिप्पलीसर्पपाश्वगन्धारारुहाराहोरोहावचावलातिबलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीवदरकुलत्थामापानामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणायथालाभमौषधानांकपायङ्कारयेत्तेनकपायेणतेपामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुपोदकमेरेयमेदकदधिगण्डारनालकद्वरप्रतिविनीतेनतैलपात्रविपाचयेत् ॥ तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायेणज्वरितमभ्यञ्ज्यात् । तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैश्श्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत् ॥ एतेपामेवचसुखोष्णकाथमवग्राह्यनपरिपेकार्थप्रयुञ्जीतज्वरप्रशमार्थमिति ॥ इति शीतज्वरेअगुचर्यादितैलम् ॥

अर्थ—अगर, कूठ, तगर, तेजपात, खस, शैलेय, ध्यामकतृण, हरेणु, धूनेर, हलदी, इलायची, त्रिफला, प्रियंगुक पत्ते, पुर ( घूपागर ) तमालपत्र, अजवायन,

रोहिण्यतृण, सरलकाष्ठ, शलुकी, देवदारु, अरुणी, बेलगिरीकीछाल, श्यौनाक, खम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, वृश्चार, ( लालसांठ ) छोटीकटेरी, बडीकटेरी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, मायपर्णी, मुद्रपर्णी, गोखरू, अरण्ड, सहजना, बरना, आक, चिरवित्त्व [ एक प्रकार का कज्जा, ] लोध, कचूर, पाहकर मूल, भाण्डीर, अरंड, पतूर, सहजना, अमृतक शिपु, विजौरा, मूलक, मूलपर्णी पीलुपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिल्ला, दन्तशठा, ऐरावत, भिलाया, आस्फोतक, कण्डीर, आत्मजक, इपीका, कंजा, धनियां, अजमोद, कालाजीरा, सुमुख, सुरस, कुटेरक, कण्डीर, कालमाल, पर्णास, क्षवक, फणिज्जक [ ये औंठों प्रकारकी तुलसी होती हैं ], भूस्तृण, सोंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रास्ना, दूबकीजड, वच, बला, अतिबला, गिलेय, सौंफ, शांतबल्ली, नाकुली, गन्धनाकुली, श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, कैच, अम्लचांगरी, बेर कुलधी, उरद । इन सबको तथा और भी ऐसेही उष्णवीर्य द्रव्योंको जो मिलसकें इकट्ठे करके इनका काथ करै ॥ यह कपाय और इन्हींका कल्क तथा मुरा, सौवीरक, तुपोदक, मेरेय, मेदक, दधिमण्ड, कज्जा, और कद्वर, इन सबको इकट्ठे करे, और एकपात्र अर्थात् सोलह सेर तेल इकट्ठा करके सबको पकावै-। इस सुहते २ गरम तेल से शीतज्वर वाले रोगी का अम्यञ्जन करै ॥ इन्हीं औषधोंको महीन पासीकर गरमर का लेप करनेसे शीतज्वर शान्त

होजाताहै । इन्हींका काथ करके परिषेक वा अवगाहन करने से ज्वर शान्त होजाता है । यह शीत ज्वरमें अगुर्वादि तेल है ॥

शीतज्वर में अन्य उपचार ।

भवन्तिचात्र ।

त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाऽध्यायेनिदर्शितः  
मात्राकलाविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः॥  
साकुटीतच्चशयनंतच्चावच्छादनंज्वरम्  
शीतंप्रशमयन्त्याशुधूपधागुरुजाघनाः ।  
पवित्रचारुगात्राश्चतरुण्योयौवनोष्मणा ।  
आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥  
स्वेदनान्यन्नपानानिघातश्लेष्महराणिच । शीतज्वरंजयन्त्याशुसंसर्गबलं  
योजनात् ॥

अर्थ—स्वेदाध्यायमें जो तेरह प्रकार के स्वेदन वर्णन किये गयेहैं उनकी मात्रा और कालका विचार करके प्रयोग करने से शीत ज्वर नष्ट होजाताहै । कुटीप्रावेशिक विधि, शयन तथा आच्छादन भी जो वर्णन किये है तथा अगर और कपूर की धूपका प्रयोग करनेसे शीत ज्वर शान्त होजाता है ॥ सुन्दर मनोहर गात्रवाली तरुणई में भरपूर प्रमदाओं के गाढ़ आलिंगनकरने पर उनके यौवन की गरमई से शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातकफनाशक स्वेदन अन्नपान के संसर्गबल के साथ [ एकसाथ ] प्रयोग करने पर शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातजेश्रमजेचैवपुराणेषुक्षतज्वरे । लघु ननहितंविद्याच्छमनंस्तानुपाचरेत् ॥  
अर्थ—वातज, श्रमज, जर्ण और क्षतज



ज्वरों में लघन हितकारी नहीं होता है, इन की चिकित्सा संशमन औषधियों द्वाराकरे । विक्षिप्यामाशयोष्माणंयस्मद्वत्वारसंनृणाम् । ज्वरं कुर्वन्ति दोषास्तुहीयतेऽग्निबलंततः ॥ यथाप्रज्वलितो बन्धः स्याल्ल्यामिन्धनवानपि । न पचत्योदनं सम्यगग्निं लभेरितो वह्निः ॥ पक्तिस्थानाच्च दादौ पक्ष्माक्षिभ्यो बहिर्वृणाम् । न पचत्यभ्यवहृतं कृच्छात्पचति बालघु । अतोऽग्निबलरक्षार्थं लघनादिक्रमो हितः । सप्ताहेन हि पच्यन्ते सर्वधातुगतामलाः ॥ निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ।

अर्थ—जिस कारणसे दोष रसको प्राप्त होकर आमाशयस्थ उष्मा को स्थानसे हटा कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसी हेतुसे अग्निबल क्षीण होजाता है । जैसे जलती हुई ई धनयुक्त अग्नि हवाके झोकसे बाहर निकलकर हांडीके भातको नहीं पका सकती है । तैसेही दोषों से प्रेरित होकर आमाशय से निकली हुई ऊष्मा भोजन को नहीं पचा सकती है अथवा लघु अन्नकोभी काठिनतासे पचाती है । इसलिये आग्निके बलकी रक्षा के निमित्त लघन करना हित है । सातदिन तक लघन करनेसे सर्वधातुगत दोष पच जाते हैं । आठवें दिन ज्वर प्रायः निरामय होजाता है घातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

चर्दीर्णदोषस्त्वल्पाभिरश्वनगुरुविशेषतः ॥ मुच्यते स हसामाणैश्चिरं हि द्याति चानरः । एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितो ज्वरे ॥ नातिगुर्यति वा भिग्वं भोजयेत् स

हसानरम् ॥ ज्वरे मास्तजेत्वादावनपेक्ष्या पिहिक्रमम् ॥ कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गा दीनुपक्रमान् । पाययित्वा कपायञ्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ जीर्णज्वरहरं कुर्यात् सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ।

अर्थ—उर्दीर्ण दोष और अल्पाग्निवाला पुरुष यदि विशेष करके भारी भोजन करे तो शीघ्रही मर जाता है या बहुत दिन तक भ्रेश पाता है । इसकारण से विद्वान् वैद्यको उचित है कि वातिक ज्वर में भी प्रथमही अत्यन्त भारी या स्निग्ध भोजन न करावे ।

घातज ज्वर में जो कफ पित्तादि दोषोंका अनुबन्ध न हो तो प्रमथही लघनादि क्रमकी उपेक्षा करके अम्यंगादि द्वारा चिकित्सा करे । काय का पान कराके मांसरस का भोजन करावे । और जो जीर्ण ज्वरके नाश करने वाली रीति कही गई है वह सब घातज ज्वरमेंकरे

कफज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानां ज्वरोऽनुष्णेकफाधिकः ॥ परिपाकं न सप्ताहेनापियाति मृदूष्णाम् । तत्क्रमेण यथोक्तेन लघनाल्पाशनादिना ॥ आदशाहमुपक्रम्य कपायाद्यैरुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ प्रकृति और हीन वात वाले पुरुषों का शरीर ठंढा रहता है और उसको कफाधिक ज्वर होता है उसकी जठराग्निमन्द होती है इससे ज्वर सात दिन में नहीं पचता है : इस ज्वर में पूर्वोक्त क्रम से दस दिन तक लघन या अल्प भोजन द्वारा चिकित्सा करके कायादि से चिकित्सा करे !

अन्य ज्वरोंमें चिकित्साक्रम ।

सामायेयेचकफजाःकफपित्तज्वराश्चये ।  
लघनलघनीयोक्तैपुकार्यप्रतिप्रति॥ वम  
नैश्विरेकैश्वरस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ ज्व-  
रानुपचरेद्धीमान्कफपित्तानिलोद्भवान् ।  
संस्पृष्टान्सन्निपातितान्बुद्ध्वातरतमैःसमैः  
ज्वरान्दोषक्रमापेक्षीयथोक्तैरोपधैर्जयेत् ।

अर्थ—आमज्वर, कफज्वर तथा कफ  
पित्त ज्वरोंमें सम्पूर्ण लघनीयोक्त लघनोंका  
दोषके अनुसार प्रयोग करना उचित है ।  
बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि कफज्वरकी  
वमनसे पित्तजकी विरेचन से और वातज  
की वस्ति प्रयोगसे चिकित्सा करे । द्वन्द्वज  
और सन्निपातजज्वर में दोषोंकी न्यूनता,  
अधिकता और समानता का विचार करके  
यथोक्त औषधियोंद्वारा चिकित्सा करे ।

सन्निपातज ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वर्द्धनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छिस्तस्यवा ॥  
कफस्थाननुपूर्व्यायासन्निपातज्वरंजयेत्

अर्थ—सन्निपातज ज्वरमें हीन दोष को  
वढाने से और वृद्धदोषको क्षाण करने  
से चिकित्सा करे, जब दोष समान होजाय  
तब प्रथम कफकी फिर पित्तकी और फिर  
वातकी चिकित्सा करे ।

कर्णमूलकाचिकित्साक्रम ॥

सन्निपातज्वरस्यान्तेकर्णमूलेमुदारुणः॥  
शोथःसञ्जायतेतेनकश्चिदेवममुच्यते । र-  
त्तावसेचनैःशीघ्रं सार्पिण्यानिथतज्येयम् ॥  
प्रदेहःकफपित्तघ्नैर्नार्जनेःकवलग्रहे ॥

अर्थ—सन्निपातको अन्तमें कर्णमूल ना-

मक एक दारुण शोथ उत्पन्न होताहै इससे  
कोई २ ही वचताहै, इस शोथको फस्त  
खोलकर, घृतपान कराके, कफ पित्तनाशक  
प्रदेह, नस्य वा कवलग्रह द्वारा शीघ्रही दूर  
करने का उपाय करे ॥

शीतोष्णस्निग्धरूपाधैर्ज्वरोयस्यनशाम्य  
ति ॥ शाखानुसारिरक्तस्यसोऽवसेकात्  
प्रशाम्यति । विसर्पेणाभिघातेनयश्चावि-  
स्फोटकैर्ज्वरः ॥ तत्रादौसर्पिःपानं कफ-  
पित्तोत्तरोनचेत् ।

अर्थ—शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रू-  
क्षादि उपचारों द्वारा जिसका ज्वर शांत  
नहो तौ यह ज्वर शाखानुसारी होताहै यह  
रक्त मोक्षण से शान्त होताहै । जो ज्वर  
विसर्प, अभिघात, और विस्फोटक द्वारा उ-  
त्पन्न होताहै उसमें प्रथम घृतपान करावे  
परन्तु इन ज्वरोंमें कफ पित्त की अधिकता  
न हो तो ऐसाकरे ।

जीर्णज्वरमें चिकित्साक्रम ।

दौर्बल्यादेहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते ।  
बल्यैःसंवृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत् ।

अर्थ—देहकी सम्पूर्ण धातुओं की दुर्ब-  
लता से जीर्णज्वर उत्पन्न होताहै, अतएव  
बलकारक और वृंहणकर्त्ता आहारों के द्वारा  
इसकी चिकित्सा करे ॥

विषमज्वरमें चिकित्साक्रम ।

कर्मसाधारणंक्षुब्ध्यातृतीयकचतुर्थके ॥  
आगन्तुःक्षुब्ध्याद्विप्रायत्रोविषमज्वरे ।

अर्थ—तित्राय और चौथेया ज्वरमें सा-  
धारण विधि करे, क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः  
आगन्तु का अनुबन्ध होता है ॥

वातप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

वातप्रधानं सर्पिर्भिर्वस्तिभिः सानुवासनैः

स्निग्धोष्णैरनुपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ।

अर्थ—वात प्रधान विषमज्वरको घृत तथा अनुवासनादि वस्तिकर्म द्वारा शमन करै और भोजन करके स्निग्ध और उष्ण अनुपानका सेवन करै ॥

पित्तप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

विरेचनेन पयसा सर्पिपासंस्कृतेन च ॥ वि

षमन्ति क्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ।

अर्थ—पित्तप्रधान विषमज्वरकी चिकित्सा विरेचन और दूधसे संस्कार किये हुए घृत और तिक्त शीतकषायों द्वारा करै ॥

कफप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ॥

वमनं पाचनं रूक्षमनुपानं विलंघनम् ॥

कषायोष्णञ्च विषमज्वरेशस्तं कफोत्तरे ।

अर्थ—कफ प्रधान विषमज्वर में वमन पाचन, रूक्ष अनुपान, लंघन, काथ और उष्णक्रिया द्वारा चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरनाशक अन्ययोग ॥

योगाः पराः प्रवक्ष्यन्ते विषमज्वरनाशनाः ॥

प्रयोक्तव्यामतिमतादोषादीन् प्राविभज्यये

सुरासमण्डपानार्थं भक्ष्यार्थं चरणायुधाः

तिक्षिरिश्च मधुरश्च प्रयोज्यो विषमज्वरं ।

पिवेद्वा पटूपलं सर्पिर्भयां च प्रयोजयेत् ।

त्रिफलायाः कषायं वा शुद्धं च्यारसमेव वा ।

नीलिनीमजगन्धाञ्च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥

पिवेज्ज्वरागमे युक्त्या स्नेहस्वेदोपपादितः ।

सर्पिषो महती मात्रा पीत्वा वा छर्दयेत् पुनः ॥

उपयुज्यान्नपानं वा प्राभूतं पुनरुल्लिखेत् ।

मात्रं मध्यं भूतं वा पीत्वा स्वप्याज्ज्वरागमे ॥

आस्थापनं यापनं वा कारयेद्विषमज्वरं ।

पयसा वृषदंशस्य शकृद्वा तदहः पिवेत् ॥

वृषस्य दधिमण्डेन सुरया वा सासेन्यवम् ॥ पि

प्पल्याः त्रिफलायाश्च दध्नस्तक्रस्य सर्पिषः

पञ्चगव्यस्य पयसः प्रयोगो विषमज्वरे ।

अर्थ—अब हम विषमज्वरनाशक कुछ उत्कृष्ट प्रयोगों का वर्णन करते हैं, बुद्धिमान् को उचित है कि इन योगोंका प्रयोग दोषों की विवेचना करके करै ॥

विषमज्वर में पीने के लिये सुरा और सुरामण्ड, खाने के लिये मुर्गा, तीतर और मोरका मांस देवे । अथवा पटूपल घृत, हरड त्रिफलाका काथ और गिलोयका रस देवे ।

अथवा रोगीका स्नेहन और स्वेदनकर्म करके ज्वरके आगममें नीलिनी, अजगन्धा, निःसोथ और कुटकी इनका पान करावे । अथवा घी की घड़ी मात्रा को पिलाकर वमन करादे । अथवा बहुतसा अन्नपान कराके वमन करादे । अथवा ज्वरके आगममें अन्न और बहुतसा मद्यपान कराके शयन करादे-

यै और जो नींद न आवै तो आस्थापनादि वस्तिका प्रयोग करै अथवा जिस दिन ज्वर आवै उस दिन दूध के साथ बिल्लीका बिछा पान करावे ।

अथवा मैलका गोबर सेंधेनमक में मिलाकर दधिमण्ड वा मद्य के साथ पान करै । अथवा पांवल, त्रिफला दही, मठा, घी पंचगव्य और दूधका प्रयोग करना चाहिये ।

विषमज्वर में अन्य प्रयोग ।

लघुनस्पसतैलस्य प्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥

मेध्यानामुष्णवीर्याणामभिषाणाञ्च भ-  
क्षणम् । हिंशुतुल्यानुवैषाग्रीवसानस्यैससै-  
न्धवाः ॥ पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्वत्ससै-  
न्धवाः ॥ सन्धवापिप्पलीनाश्चतण्डुलाः समनः  
शिला निवाञ्जनतैलपिष्टशस्यतेविषमज्वरे  
पलंकपानिम्बपल्लवचाकुण्ठहरीतकी । सर्प  
पाः सयवाः सर्पिर्धूपनज्वरनाशनम् ॥ ये  
धूमाधूपनं पच्यन्नायनश्चाञ्जनश्च यत्पानो  
धिकारे व्याख्यातं कार्यं तद्विषमज्वरे ॥

अर्थ—विषमज्वर में भोजन करने से  
पाहिले लहसुनका रस और तेल पीवै पीछे  
मेघ्य और उष्णवीर्य मांसका भक्षण करें ।  
अथवा हींग और व्याघ्रवसा इनको समान  
भागलेकर थोडासा सेंधानमक मिलाकर  
नस्य लेंवै । अथवा पुराना घ्रां, सिंह की  
चर्बी और सेंधानमक इनकी नस्य लेंवै ।  
अथवा सेंधानमक, पीपलके बीज, मनसि-  
ल इनको तेल में पीसकर अंजन लगावै  
तो विषम ज्वर जाता रहताहै । अथवा  
गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हड, सरसों,  
जौ आर घी इनकी धूप देनेसे ज्वर नष्ट  
हो जाताहै । मनोविकार अर्थात् उन्माद रोग  
में जौ जौ धूम, धूर, नस्य और अञ्जन  
वर्णन कियेहैवे भी सब विषमज्वरमें करने चाहिये

विषमज्वर में देवव्यपाश्रय प्रयोग ।  
मणीनामौषधिनाञ्चमङ्गल्यानां विषस्य च  
धारणादगदानाश्च सेवनान् भवेन्ज्वरः ।  
सोमसानुचरं देवं समातृणमभीश्वरम् ।  
पूजयन्मपतः शीघ्रमुच्यते विषमज्वरात् ॥  
विष्णुसहस्रमूर्दानं चराचरपतिं विभुम् ॥

स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वानपोहति ॥  
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रद्रुतभस्महिमाचलम् ।  
गङ्गापरुद्धणांश्चेद्वा पूजयन् पूजयति ज्वरान्  
भक्त्या मातापितृणां च गुरुणां पूजनेन च  
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च ॥  
जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च ॥  
ज्वरादिमुच्यते शीघ्रं साधुना दर्शनेन च ॥

अर्थ—माणि, औषध, मंगलद्रव्य, विष  
और अगदके धारण करनेसे ज्वर नहीं  
आताहै । शान्तभावमें स्थित अनुचर और  
मातृगणोंसे युक्त शिवका पूजन करनेसे वि-  
षमज्वर शीघ्र दूर होजाताहै । सहस्र मूर्त्ति,  
चराचरके स्वामी, सर्वव्यापक विष्णु के सह-  
स्रनामका पाठ करनेसे मयप्रकार के ज्वर  
दूर होजाते हैं । ब्रह्मा, आश्विनीकुमार,  
इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, भद्रगण  
तथा अन्य इष्ट देवताओंका पूजन कर  
नेसे सब प्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं ॥  
माता पितामें भाक्ति करने से, गुरुजनोंका  
पूजन करनेसे, ब्रह्मचर्यव्रत धारणसे, तपस्या  
से, सत्यसे, नियमसे, जप होम दानसे, वेदों  
के श्रवणसे और साधु महात्माओं के दर्शनों  
से ज्वर शीघ्रही जाता रहता है ।

भिन्न रघातुस्थज्वरोंकी चिकित्सा ।  
ज्वरे रसस्येव मन उपवासञ्च कारयेत् ॥  
सेकप्रदेहो रक्तस्ये तथा संशमनानि च ॥  
चिरेचनोपवासं मांसमेदः स्थिते हितम् ।  
आस्थिगज्जगते देयानिरुद्धाः सानुवासनाः ।  
अर्थ—जो ज्वर रस में स्थित हो तो  
वमन और उपवास करावे । रक्तस्थ हो तो

परिदेह, प्रदेह और संशमन चिकित्सा करे, ज्वर के मांस और मेदा में स्थित होने पर विरेचन और उपवास हित है । ज्वर के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर निरुहण और अनुवासन वास्ति देवे ।

अभिचारादिजन्यज्वरमें चिकित्सा ।

शापाभिचाराद्भूतानामभिषद्वाच्योज्वरः॥द्वैव्यपाश्रयंतत्रसर्वमौषधमिष्यते॥अभिघातज्वरोनश्येत्पानाभ्यङ्गेनसर्पिणः।

रक्तावसेकैर्मयैश्चात्म्यैर्मांसरसोदनैः ॥

सानाहोमयसात्म्यानांमदिरारसभोजनैः क्षतानांघणितानाञ्क्षतव्रणाचिकित्सया॥

अर्थ—शाप, अभिचार और भूताभिपंग से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह दैवयुक्त व्यपाश्रय औषधियोंसे दूर होजाता है । अभिघातज्वर घृतपान और घृताभ्यंग, रक्तावसेक [ फस्त, ] मद्य और सात्म्य मांसरस और चावलका भोजन इनसे शान्त होता है मद्यसात्म्य वालोंका आनाहयुक्त ज्वर मद्यपान और मांसरस के भोजनसे दूर होता है ॥ क्षतरोगी और व्रणरोगियोंकाज्वर उन औषधोंसे शान्तहोता है जो क्षत और व्रणकी चिकित्सा में वर्णन की गई है ।

कामादि ज्वर चिकित्सा ।

आश्रयासेनेष्टलाभेनवायोःप्रशमनेनच ॥

हर्षणैश्चशर्मयान्तिकामशोकभयज्वराः ॥

अर्थ—कामज, शोकज और भयज्वर आश्रयान ( संतोषदायक वचन ), इष्टलाभ, वायुशमन और हर्षोत्पादक कामोंसे दूर होजाते हैं ।

क्रोधजज्वरकी चिकित्सा ॥

काम्थैर्यैर्मनोऽज्ञैश्चापित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ।

सद्वाक्यैःशाम्यतिह्याशुज्वरःक्रोधसमुत्थितः

अर्थ—क्रोधजन्यज्वर काम्य और मनोज्ञ विषयों तथा पित्तघ्न चिकित्सा और सद्वाक्यों से शान्त होता है ॥

क्रोधादि ज्वरमें अन्योन्यग्राम ॥

कामात्क्रोधज्वरोनाशंक्रोधात्कामसमुद्भवः

यातिताभ्यामुभाभ्याञ्चभयशोकसमुत्थितः

अर्थ—कामसे क्रोधज्वर और क्रोध से कामज्वर दूर होजाता है, एवं काम और क्रोध दोनों की उत्पत्तिसे भय और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है ।

स्मृतिज्वरकी चिकित्सा ॥

ज्वरकालञ्चवेगञ्चचिन्तयन्ज्वर्यतेतुयः

तस्येष्टेस्तुविचित्रैश्चविषयैर्नाशयेत्स्मृतिम्

अर्थ—जिसको ज्वरके आनेके समय ज्वर के वेगका ध्यान बंधा रहताहै उसको ज्वर आजाता है उसका उपाय यही है कि अनेक प्रकारके अद्भुत २ विषयोंमें उसका चित्त खींचकर ज्वरकी ओरसे हटादेवे ॥

कुसमयज्वरमुक्ति के लक्षण ।

ज्वरप्रमोक्षेपुरुषःऋजुनवमतिचेष्टे । भूतः

त्रिविवर्णःस्विच्चाक्षौधेपतेलीयतेमुहुः ॥ प्र-

लप-युष्णसर्वाङ्गीशीतगदचभवत्यपि।वि-

संज्ञोज्वरवेगार्चःसक्रोधश्चर्वाक्ष्यते ॥ स-

दोषशब्दश्चशकृद्द्रवसंघतिवेगवत्।लिङ्गा-

न्येतानिजानीयाज्वरमोक्षेविचक्षणः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होनेके समय पुरुषके कण्ठमें गूँजेने कासां शब्द होताहै वमनली

होती है तथा हाथ पांव चलने लगते हैं ।  
 श्वास वेगसे आता है, देहकारंग बदलजाता  
 है, पसीने आते हैं, देहमें कम्पन तथा मुस्ती  
 होती है, एक २ करने लगता है, सम्पूर्ण देह  
 गरम रहता है कभी कभी ठंडाभी होजाता है,  
 बेचेत रहता है, ज्वरके वेगसे क्रोधी की तरह  
 देखने लगता है । कभी अत्यन्त वेगसे दौप  
 और शब्दसे युक्त पतला दस्त निकलजाता  
 है, ये सब लक्षण ज्वरके हटनेके समय होते हैं  
 बहुदोषस्य बलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः ।  
 सत्क्रियादोषपक्ष्याचेद्दिमुञ्चति सुदारुणम् ॥  
 कृत्वादोषवशाद्देहं क्रमाद्युपरमान्तये  
 तोषामदारुणो मोक्षोज्वरिणां चिरकारिणाम् ।

अर्थ—बहुत दोषयुक्त मनुष्यका प्रायः  
 बलवान् और नवीन ज्वर शीघ्रकारी चिकित्सा  
 से कुसमय दोषोंके पचने के कारण से ऊपर  
 कहे हुए दारुण लक्षणोंके साथ हटता है ।  
 दोषों के कारण वेग को प्राप्त होकर भी जो  
 ज्वर धीरेधीरे हटते हैं उन चिरकारी ज्वरों  
 के हटनेके समय ऐसे दारुण लक्षण नहीं होते हैं  
 ज्वरमुक्तव्यक्ति के लक्षण

विगतकृमसन्तापमव्यथं विमलेन्द्रियम् ।  
 युक्तं प्रकृतिसत्त्वेन विद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥  
 अर्थ—जिसका ज्वर शान्त होजाता है  
 उसकी हान्ति, सन्ताप और व्यथा सब दूर  
 होजाती हैं इन्द्रियां निर्मल होजाती हैं और  
 उसका सत्वभी पूर्ववत् होजाता है ।

ज्वर में अकर्तव्यकर्म ॥  
 सज्वरो ज्वरमुक्तश्च विदाहीनिगुरुणिच ।  
 असात्मधान्यन्नपानानि विरुद्धानि विवर्ज

येत् ॥ व्यवयमति चेष्टाश्च स्थानशय्यास-  
 नानि च । तथा ज्वरः शर्मयाति प्रशान्तो-  
 जायते न च ॥

अर्थ—चाहे ज्वर चला गया हो चाहे न  
 गया हो मनुष्य को उचित है कि विदाही भारी  
 असात्म्य और विरुद्ध अनुपानका, सेवन त्याग  
 देवै, मैथुन, अत्यन्त डोलना फिरना, अत्यन्त  
 बैठे रहना, खड़े रहना इत्यादि को भी त्याग  
 दे । ऐसा करने से ज्वर शान्त होजाता है  
 और शान्त होने पर फिर उत्पन्न नहीं होता है ।

ज्वर के हटने पर अकर्तव्यकर्म ॥

व्यायामश्च व्यवयश्च स्नानं च क्रमणानि च ।  
 ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥  
 असञ्जातबलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेयते ।  
 वर्ज्यमेतन्न वस्तस्य पुनरावर्त्तते ज्वरः ॥  
 दुर्हतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।  
 स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्त्तते पुनः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होजाने पर जबतक  
 देह में बल न आवे जबतक व्यायाम, व्यव-  
 य स्नान चक्रमण न करे ! ज्वरमुक्त पुरुष  
 बिना बल उत्पन्न हुए जो इन वर्जितकर्मों  
 को करता है, उसको ज्वर फिर आजाता है ।  
 जो ज्वर दोषों के बुरी रीतिसे निकाले जाने  
 पर शान्त होजाता है वह थोड़े से व्यातिक्रम  
 सेही फिर आजाता है ।

पुनरागन ज्वर के कर्म ॥

चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं दीनचेतसम् ।  
 अचिरेणैव कालेन सहन्ति पुनरागतः ॥  
 अयवापि परिपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः ।  
 यान्ति ज्वरमकुर्वन्तः तैस्तथाप्यपकुर्वन्ते ॥

अर्थ—गाढा, कुछ २ पाण्डुता लिये चिकना और गिलगिलाकफ मिश्रित रक्त पित्त होता है ।

वातिक रक्त पित्तके लक्षण ।

श्यावारुणसफेनञ्चतनुरुक्षञ्चवातिकम् ।

अर्थ—कुछकाला, कुछलाल, श्यागदार, पतला और रूखा वातिकमिश्रित रक्तपित्तहोताहै

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तकपायाभंकृष्णंगोमूत्रसन्निभम् ।  
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त कायके रंगके सदृश कृष्ण वर्ण, और गौके मूत्रके समान होता है अथवा मोरकी चन्द्रिका के समान नील वर्ण, घरके धूँएके से रंगका अथवा सुरमे के सदृश है उसे पैत्तिक रक्तपित्त समझो

संस्फुरक्त पित्तके लक्षण ।

संस्फुल्लिङ्गसंसर्गात्रिलिङ्गसाग्निपातिकम्

अर्थ—दो दो दोषों से युक्त रक्तपित्त में दो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होतेहैं और जिसमें तीनों दोषोंके चिन्ह पाये जाते हैं उसे साग्निपातिक कहते हैं ।

दोषभेद से साध्यासाध्यलक्षण ॥

एकदोषानुगंसाध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥

त्रिदोषजमसाध्यं तन्मन्दाग्रेरतिवेगवत् ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त एक दोषसे उत्पन्न होताहै वह साध्यहै, दो दोषसे होनेवाला याप्यहै, जो तीनों दोषसे उत्पन्न होता है

वह असाध्यहै । इसी तरह जिनकी अग्नि अत्यन्त मन्दी पड़गई हो जिनकी देह रोगों से क्षीण होगईहो, जो बुढ़ाहो और जिसका आहार थकगयाहो ऐसे मनुष्योंका रक्त पित्त भी असाध्य होता है ॥

ऊर्ध्वाधः मार्गद्वारा साध्यासाध्य विचार ॥

गतिरूर्ध्वमधश्चैवरक्तपित्तस्य दर्शिता ॥  
ऊर्ध्वाः सप्तविधाद्वारा द्विद्वारा त्वधरागतिः ॥  
सप्तच्छिद्राणि शिरसि द्वे चाधः साध्यमूर्ध्वं गम् ।  
याप्यन्त्वधोगममार्गाद्वावसाध्यमप्यते ॥

अर्थ—रक्त पित्तकी ऊर्ध्व और अधोगति ये दो पहिले वर्णन करचुकेहैं ॥ रक्त पित्त के सातद्वाराहैं, यथा दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख । नाँव के दो द्वार हैं । मलद्वार और मूत्रद्वार । ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्यहै, अधोगामी याप्यहै और उभयमार्गगामी असाध्य होताहै ।

यदा तु सर्वेच्छिद्रेभ्यो रोमकूपेभ्य एव च ।  
वर्तते तामसं ख्येयां गतिं तस्याहुरान्तिकीम् ॥  
अर्थ—जब रक्त सम्पूर्णछिद्रों और रोम कूपों द्वारा निकलताहै तब रक्त पित्तकी अंश ख्येयागति को अन्तिकी कहते हैं ॥

असाध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

यच्चेभयाभ्यां मार्गाभ्यामिति मात्रमवर्तते तुल्यं कुणपगन्धेन रक्तं कृष्णमतीव च ॥  
संस्फुरकवाताभ्यां कण्ठे सज्जातिचापियत् ।  
यच्चाप्युपद्रवैः सर्वैर्यथोक्तैः समभिद्युतम् ॥  
क्षीणस्य कासमानस्य यच्च यच्च न सिध्यति

अर्थ—जो रक्त ऊर्ध्व और अधः दोनों मार्गोंसे आतिशय करके निकलता है, जिसमें सड़ीहुई गन्ध आतीहो, अत्यन्त काला रुधिर निकलताहो, जो कफ वात दोनों दोषोंसे युक्तहो, और जो कण्ठमें अत्यन्त रुकताहो, जो सम्पूर्ण ऊपर कहेहुए उपद्रवों से युक्तहो, जो हृलदीके सदृश पीला, नीला, हरित और ताम्रवर्ण से उपद्रुत हो यह असाध्य होताहै । कासयुक्त क्षीणरोगीका रक्त पित्तभी असाध्य होता है ॥

याप्यरक्तपित्तकेलक्षण ।

यद्विदोषानुगम्यद्वाशान्तंशान्तंभक्षुप्यति ॥

मार्गमार्गचरेद्यद्वायाप्यं पित्तं असृक्चतत् ॥

अर्थ—जो द्विदोषाश्रित रक्तपित्त रुकरुकर कुपित होता है अथवा एक मार्गको छोड़कर दूसरे मार्गसे निकलने लगता है उसे याप्य कहते हैं ।

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गवलयतोनातिवेगनवोत्थितम् ।

रक्तपित्तं मुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त वलयवान् पुरुष के एक मार्गगामी होताहै, जो अत्यन्त वेगवान् नहीं होताहै और जो हालमें ही उत्पन्न हुआहै और जो हेमन्तादि मुखदायक समयमें उत्पन्न हुआहै वह साध्य होताहै ।

रक्तपित्त के कारण ॥

स्निग्धोष्णगुणरूपश्चरक्तपित्तस्य कारणम् । अधोगम्योत्तरप्रायः पूर्वस्पादूर्ध्वगम्य तु ॥ ऊर्ध्वगं रुफसंमृष्टमधोगं गारुतानुगमं द्विमार्गं कफाताभ्यां उवाभ्यामनुवध्यते ॥

अर्थ—स्निग्धोष्ण और उष्णरुक्ष ये रक्त पित्तके कारण हैं, प्रायः अधोगामी रक्त पित्तका का कारण उष्णरुक्ष है और ऊर्ध्वगामीका स्निग्धोष्ण है ॥ ऊर्ध्वगरक्त पित्त कफ संसृष्ट होताहै, अधोगामी वायुसंसृष्ट और उभयमार्गगामी कफवात संसृष्ट होताहै । यहाँ यह बात जाननी चाहिये कि जब ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफ संसृष्ट होता है तब पित्त उष्ण है कफ स्निग्ध है अतएव ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफवात कारक अर्थात् स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त बढ़ता है इसीतरह वायुरुक्ष होतीहै और पित्त उष्ण होताहै इसलिये अधोगामी रक्त पित्त वातापित्त गुणाविशिष्ट रुक्षोष्ण द्रव्यों के सेवन से कुपित होताहै ।

स्तम्भन के अयोग्यरक्तपित्त ॥

अक्षीणबलमांसस्य रक्तपित्तं यदश्नतः ।

तदोपद्रुष्टमुत्क्रिष्टं नादौ स्तम्भनमर्हति ॥

अर्थ—जिस पुरुषका बल और मांस क्षीण न हुआहो और आहार भी न थकाहो उसको दोष से दूषित और उदीर्ण रक्त पित्तको प्रथमही रोकना उचित नहींहै ॥

रक्त पित्तको स्तम्भितकरनेके

उपद्रव ॥

गलग्रहं पूतिनस्य मूच्छार्थमरुचिं ग्वरम् ।

गुल्मं प्लीहानमानाहं किलासं कृच्छ्रमृशताम् ॥

कुष्ठान्यर्शासिर्वातसर्ववर्णनाशं भगन्दरम् ।

बुदीन्द्रियोपरोधश्च कुर्यात् स्तम्भितमा-

दितः ॥

अर्थ—रक्त पित्त को यदि प्रथमही से



रोगा जायगा तो इतने उपद्रव उत्पन्न होंगे, यथा— गलग्रह, पूनितस्य, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, आनाह, किलास, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, वर्णनाश भग्नन्दर, बुद्धिनाश और इन्द्रियोपरोध ॥

तस्मादुपेक्ष्य बलिनंबलदोषविचारिणा ।

रक्तपित्तप्रथमतः प्रवृद्धसिद्धिमिच्छता ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए हेतुओं से उस बुद्धिमान् वैद्य को उचित है जोकि रक्तपित्त को अच्छा किया चाहता है कि बल और दोष का विचार करके बलवान् मनुष्य के बड़े हुए रक्तपित्तकी भी प्रथम उपेक्षा करे ॥

रक्तपित्त में प्रथम कर्त्तव्य कर्म ॥

प्रायेण हि स मुत्तलिष्टमामदोपाच्छरीरिणाम् ।  
वृद्धिप्रयातिपित्तासृक्त्समाल्लंघनमादितः ॥  
मार्गदोषानुबद्धश्च निदानं प्रसमीक्ष्य च ।  
लंघनं रक्तपित्तादौ तर्पणं वा प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रायः मनुष्यों को उदीर्ण रक्तपित्त आम दोष से बढ़ता है अतएव प्रथम लंघन कराना आवश्यक है । रक्तपित्तका मार्ग, दोषानुबन्ध ( कौनसा दोष उसके साथ है ) और निदान को देखकर रक्तपित्त में प्रथम लंघन वा तर्पण देवै ॥

रक्तपित्त में तृपानाशक औषध ॥

दीवेरचन्दनोशीरमुस्तर्पणैः शृतम् ।  
केवलशृतशीतवाद्यात्तोष्यं पिपासवे ॥

अर्थ—रक्तपित्त में जो तृपाकी आधिक्यता हो तो नेत्रवाला, चन्दन, ग्लस, मोथा,

पितपापडा, इनको डालकर जल आँटाले और फिर ठण्डा करके थोड़ा २ रोगी को पान कराता रहै ।

तर्पण और पेया की विधि

ऊर्ध्वगतर्पणपूर्वपेयापूर्वमधोगतम् ।  
कालसात्म्यानुबन्धज्ञादद्यात्प्रकृतिकल्पवित् ॥

अर्थ—काल, सात्म्य, अनुबन्ध, प्रकृति और कल्पना का जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवै और अधोगामी रक्तपित्तमें प्रथम पेया पान करावै ।

तर्पण प्रयोग

जलं खर्जूरमृद्धीकामधुकैः सपरूपकैः ।

शृतशीतप्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥

तर्पणं सघृतसौद्रं लाजाचूर्णैः प्रयोजयेत् ।

अर्थ....खिजूर, दानव महुआ और फाल-से इनको जलके साथ आँटाकर छानले और ठण्डा होनेपर मिश्री डालकर पान करावै । अथवा घी और शहत मिलाकर खीलों के चूर्ण का तर्पण देवै ।

उक्ततर्पणोंके गुण ।

ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्शीतं काले व्यपोहति ॥

मन्दाग्ने रम्लसात्म्याय यत्साम्लमपि क-

ल्पयेत् ॥ दाढिभानलकैर्विघ्नाद्मलाश्वा-

नुदापयेत् ॥

अर्थ....ऊपर कहे हुए दोनों प्रयोग उचितकालमें पान करानेसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त को दूर कर देते हैं मन्दाग्निवाले तथा जिसको खटाई की मारकत है उसे नीचे लिखी हुई खटाई मिलाकर देवै । अनारको खटाई वा आमलेकी खटाई इसमें हितकारी होती है

अन्यप्रयोग ॥

शालिपट्टिकनीवारकोरदूपप्रशांतिकाः ॥  
श्यामाफश्चप्रियंगुश्चभोजनरक्तपित्त-  
नाम् ॥

अर्थ—शालीचांबल, माठीचांबल, नीवार  
कोदों, प्रशांतिका, सामखिया, और प्रियंगु  
इन सबका भात रक्तपित्त रोगियों को  
हितकारक है ॥

रक्तपित्त रोगियों को अन्यद्रव्य ॥

मुद्गाममूराश्चणकाः समकुष्ठादकीफलाः ॥  
प्रशस्ताःसूपयूपार्थैकल्पितारक्तपित्तिनाम्  
पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥  
किराततिक्तकंशाकेगण्डीरःसकठिल्लकः  
कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशाल्म  
लेः ॥ अन्नपानविधौशाकंमृच्छान्यद्रवत  
पित्तनुत् । शाकार्थंशाकसात्म्यानांतच्छ  
स्तरंरक्तपित्तिनाम् ॥ स्विन्नंवासर्पिपाथु  
ष्टंयूपवद्वाविपाचितम् ।

अर्थ—मूंग, मसूर, चना, मीठ और  
अडहर इनकी दाळ और यूप रक्तपित्त  
वालों के लिये अच्छे हैं । परवल, नीम  
के पत्ते, वेतकी कोंपल, पाकड, वेतके पत्ते  
चिरायता, गण्डीर और करेला इनका  
साग तथा कचनारके फूल, खंभारीके फूल  
सेमर के फूल, तथा अन्यशाक जो अन्न  
पान विधि में रक्तपित्त के नाश करनेवाले  
वर्णन किये गये हैं । ये सब शाक सिजा  
कर घृत में भून ले अथवा यूप की तरह  
मिद्ध कर ऐसे रक्तपित्तवाले रोगी को देवें  
जिसको शाक अनुकूल हों ।

रक्तपित्तपर मांसरस ॥

पारावतान्कपोतांश्चलावान् रक्षाक्षवर्त-  
कान् ॥ शशान्कपिञ्जलान्गणान्हरि-  
णान्कालपुच्छकान् । रक्तापित्तेहितान्  
विद्याद्रसांस्तेषाम्योजयेत् ॥ ईपदम्ला-  
ननम्लान्वाधृतभृष्टान्सशर्करान् ॥

अर्थ—पारावत, कपोत, लवा, चकोर  
बटेर, शशा, तीतर, एण, हरिण, कालपुच्छ इन  
का मांसरस रक्तपित्त रोगमें हितहै । इसमें  
थोड़ीसी खटाई डालकर वा बिना डालैही घी  
में भूनकर और चीनी मिलाकर सेवन करें ।  
अन्यदोषाश्रितरक्तपित्तमेंचिकित्सा ।  
कफानुगेयूपशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ॥  
रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पःप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—कफयुक्त रक्तपित्तमें यूप और शाक  
तथा वातयुक्त रक्तपित्त में रक्तपित्तनाशक  
मांसरस का प्रयोग करना चाहिये । अब  
यहांसे उन यवागुओंका वर्णन करते हैं जो  
रक्तपित्त में हितकारी हैं ॥

रक्तपित्तनाशक यवागू ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियंगु-  
काः ॥ जलेसाध्यंरसेतस्मिन्पेयास्याद्र-  
क्तपित्तिनाम् । चन्दनोशीररोध्राणांरसे  
तद्वत्सनागरे ॥ किराततिक्तकोशीरमु-  
स्तानांतद्वदेवच । धातकीधन्वयासाम्यु-  
विल्वानांवारसेशृताः ॥ मसूरपृश्निपण्यो-  
र्वास्थिरामुद्गरसेनवा । रसेहरेणुकानांवा  
सधृतेसवलारसे । सिद्धाःपारावतादीनां  
रसेवास्युःपृथक्पृथक् । इत्युक्तारक्तपित्त-  
घ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः ॥ यवाग्वःकल्प-  
नाचैषांकार्यामांसरसेष्वपि ॥

अर्थ—लाल कमलकी केसर, नीलकमल की केसर प्रणिपणी, प्रियंगु इनको ढाळ कर जलको औटाले और उस जलमें पेया तयार करके रक्तपित्त वाले रोगी को देवे । अथवा चन्दन, उत्तरी, छोध और सोंठ के रसमें ध्रुवत् पेया सिद्ध करे । अथवा चिरायता, उत्तरी, मोथा इनके रसमें ध्रुवत् पेया सिद्ध करे । अथवा धायके झूल ज-बासा, नेत्रवाला और बेलगिरीके रसमें पेया सिद्ध करे । अथवा मसूर और पृष्णिपणी के रस में, अथवा शालिपणी और मृग के रस अथवा हरेणुका के जल में अथवा घृतयुक्त खैरटीके रसमें पेया सिद्ध करे । अथवा पूर्वोक्त पारायतादिक के मांस रसमें पृथक् पृथक् पेया सिद्ध करे । सम्पूर्ण प्रकार की पेया शीतल होती है इससे इनमें शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करे ॥ मांसरस वाली पेयामें भी शहत और शर्करा मिलोलेवे ॥ इस तरह इन सब रक्तपित्तनाशिनी पेयाओंका वर्णन किया गया है ॥

सोपद्रव रक्तपित्तमें चिकित्सा ।

शशःसयास्तुकःशस्तोविवन्धोरक्तपित्तिनाम् ॥ वातोत्वणेतित्तिरःस्यादुदुम्बररसेशृतः । मयूरःप्लक्ष्मनिर्युहेन्यग्रोधस्यचक्षुकुटः ॥ रसेविल्वोत्पलादीनां चतुर्ककरोहितौ ।

अर्थ—विवन्धुयुक्त रक्तपित्तमें सस्तेके मांसरसमें सिद्ध किया हुआ वथुका शाग हितकर है वातोत्वणरक्तपित्तमें गूलरके रसमें सिद्ध किया हुआ तीतरका मांस, पाकड़के

रसमें सिद्ध किया हुआ मोरका मांस, बड़के रसमें सिद्ध किया हुआ मुर्गेका मांस, विल्वके रसमें बटेर और उत्पलके रसमें क्रक. रका मांस हितकारी होता है ।

तृपायुक्तरक्तपित्तकी चिकित्सा ।  
तृप्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृणाग्रवाफलोदकम् ॥ सिद्धंविदारिगन्धाद्यैरथवाशृतशीतलम् । ज्ञात्वदोषावनुबलौवलमाहारमेवच । जलं पिपासवेदद्याद्विसर्गादल्पशोऽपिवा ।

अर्थ—तृपायुक्त रक्तपित्त में तिक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ जल अथवा तृपानाशक अनार आदि फल ढाळकर सिद्ध किया हुआ जल अथवा विदारी गंधादि ढाळकर सिद्ध किया हुआ जल ठंडा करके पान करावे । तृपायुक्त रक्तपित्त रोगीके दोषोंका अनुबल और आहारका बल देखकर थोड़ा या अधिक जल देवे ।

रक्तपित्त में वर्जित द्रव्य ।  
निदानंरक्तपित्तस्यथक्त्रिस्तंमकाशितम् जीवितारोग्यकामैस्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः

अर्थ ...जो जीने की और आरोग्य लाभ करने की इच्छा हो तो निदान स्थानमें रक्तपित्त के उत्पन्न होने के जो २ कारण कहे गये हैं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये इत्यन्नपाननिर्दिष्टक्रमशोरक्तपित्तिषु वक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्यबलवताञ्चयत् ।

अर्थ—इस तरह क्रम से रक्त पित्त में उपयोगी अन्नपानका वर्णन किया गया है । अब बहुत दोषों से युक्त और घलवान् रक्त

पित्त रोगियोंके कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन कि-  
याजाता है ॥

अक्षीणबलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम्

बहुदोषम्बलवतोरक्तपित्तशरीरिणः ।

कालेसंशोधनह्रिस्पतद्वरन्निरूपद्रवम् ॥

विरेचनेनोर्ध्वभागमधोगंवमनेनच ॥

अर्थ—जिस रक्तपित्त रोगीका बल और

मांस-क्षीण नहीं हुआ है, जिसके रक्तपित्त

सन्तर्पण से उत्पन्न हुआ है । और जिस

मनुष्य का शरीर बलवान् है अथवा वह सं-

शोधन के योग्य है ऐसे मनुष्य के बहुत

दोषयुक्त-निरूपद्रव पित्त को संशोधन के

द्वारा संशमन करें । ऊर्ध्व भागगामी रक्त

पित्त में विरेचन दें और अधोभाग गामी

रक्तपित्त में वमन दें ॥

रक्तपित्त में विरेचनिकप्रयोग ॥

तिष्ठतामभ्यामाज्ञःफलान्यारग्वधस्यवा ।

लायमाणागवाक्ष्योर्वामूलमामलकानिवा

विरेचनप्रयुज्जीतप्रभूतमधुशर्करम् ॥

रसःप्रशस्यतेतेपारक्तपित्तविशेषतः ।

अर्थ....निसोथ और हरडकाक्वाथ, अ-

थवा अमलतासका गूदा, अथवा त्रायमाण

और इन्द्रायणकी जड़ अथवा आंवलेका काथ

इन प्रयोगों में बहुत सा शहत और शर्करा

छालकर विरेचन दें । इनका रस रक्तपित्त

में विशेष उपयोगी है ।

रक्तपित्त में वामनिक प्रयोग ॥

पमनंमदनोन्मिश्रोमन्यःससौद्रशर्करः ॥

सशर्करंवासलिलमिश्रुणारसएववा । व-

त्सकस्पफलमुस्तंमदनमधुकंमधु ॥ अथो

बहेरक्तपित्तवमनेपरमुच्यते ॥

अर्थ—शहत, शर्करा और मेनफल मि-

लाहुआ मन्थ, अथवा मेनफल, शर्करा और

जल अथवा मेनफल और ईखका रस अथवा

इन्द्रजौ, मोथा मेनफल मुलहटी और शहत

ये सब प्रयोग अधोगामी रक्तपित्तमें वमन

करानेके लिये अत्यन्त उत्तम है ॥

ऊर्ध्वगोष्ठ्युदकोष्ठस्यतर्पणादिःक्रमोहितः॥

अधोवहेयवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोवली

अर्थ—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें यदि रोगी

का कोष्ठ शुद्ध होगया हो तो तर्पणादि

क्रियाका अवलम्बन करें ॥ इसीतरह अधो-

गामी रक्तपित्तमें यवागू दें ॥ ऐसा न करने

से वायु कुपित होजाती है ।

संशमनीयरक्तपित्तलक्षण ॥

बलमांसपरिक्षीणशोकभाराध्वकार्पितम्॥

ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वाक्षीणमामयैः॥

गर्भिणीस्थविरेवालंरुक्षाल्पप्रमिताशनम्॥

अवम्यमविरेच्यंवायंपश्येद्रक्तपित्तिनाम् ।

शोषणसानुबन्धवायस्यसंशमनीक्रिया॥

शस्यतेरक्तपित्तस्यपुरोयातुप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जिसका बल और मांस क्षीण हो

गयाहै, जो शोक, भारबहन और मार्ग चल

ने से कृश होगयाहै, जो अग्नि वा सूर्यसे

सन्तप्त होगयाहै, जो अन्य रोगों से

क्षीण होगयाहै, गर्भिणीस्त्री, घृद्ध,

बालक, रुक्षभोजी, अल्पभोजी, मि-

त भोजीहै, जो वमन विरेचनके योग्य नहीं

है, अथवा वह रोगी जिमको शोष का अ-

नुबन्ध है । इन लक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त

रोगियों की संशमन क्रिया करें । अब उस

क्रियाका वर्णन करते हैं ॥

रक्तपित्तं मे संशमनीयक्रिया ।

आटरूपकमृद्धीकापथ्याकायःसर्शकरः ।

मधुमिश्रःश्वासकासरवतपित्तनिर्वहणः ॥

अर्थ—अइसा, किसमिस, हरड, इनका का-  
य करके शहत और शर्करा मिलाकर पान  
करै तो श्वास और खांसीसे युक्त ऊर्ध्व-  
गामी रक्तपित्त शान्त होजाता है ॥

रक्तपित्तं मे अन्यप्रयोग ॥

आटरूपकानिर्युहेप्रियंगुमुक्तिकाञ्जने ॥

विनीयलोध्रंसौद्रञ्चरक्तपित्तनुदं पिवेत् ।

अर्थ—अइसाका काय, प्रियंगु, गेरू,  
अंजन, लोध और शहत मिलाकर पान क-  
रनेसे रक्तपित्त शांत होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

पद्मकंपद्मकिंजल्कंदर्वावास्तुकमेव च ।

नागपुष्पञ्चलोध्रश्चतनवविधिनापिवेत् ॥

अर्थ—पद्मास, लालकमल की केशर,  
दूब, बथुआ, नागकेशर, लोध इन सबको  
शहतमें मिलाकर सेवन करै तो रक्तपित्त  
शान्त होवे ॥

अन्यप्रयोग ॥

प्रपुण्डरीकमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे ॥ यवा-

सभृक्षरजसोर्मूलवागोशकृद्रसे ॥ विनीय

रक्तपित्तघ्नं पयस्यात्तण्डुलाम्बुना ॥ यु

क्तवामधुसर्पिर्भ्यांलिह्याद्वागोऽश्वशकृद्रस

म् ॥ खादिरस्यप्रियंगूनांकोविदारस्यशा

ल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णानिमधुनालिह्यान्नार-

वतपित्तिकः । शृङ्गाटकानांलाजानांमुस्त

सर्ज्ज्योरपि ॥ लिह्याच्चूर्णानिमधुनापद्मा

नांकिंशरस्यच । धन्वजानाममृगिलह्यान्म-

धुनामृगंपक्षिणाम् ॥ सक्षौद्रग्रथितेरवते

लिह्यात्पारावतंशकृत् ॥

अर्थ—पुण्डरीक, मुलहठी, शहत इनको

घोडे की लीद के रसमें अथवा जवासा

भांगरेकी जड, इनको गौंके गोबरके रसमें

मिलाकर चावल के साथ पान करै अथ-

वा घी और शहत मिलाकर गौं और घो-

डेकी लीदका रस पान करै । अथवा

खिर, प्रियंगु, कचनार और सेमर के फू-

लोंका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे । अ-

थवा सिंघाडे, खील, मोथा खिजूर और क-

मलकेशर इनके चूर्णको शहतके संग चा-

टे । अथवा धन्वज पशुपक्षियोंका रुधिर

शहत मिलाकर पान करै । अथवा जो र-

क्तमें गांठ पडगईहो तो कबूतर की बीट

को शहतमें मिलाकर चाटे ॥

दाहादियुक्तरक्तपित्तपर प्रयोग ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाक-

दफलशंखगोरिकाः । पृथक्पृथक्चन्दन-

तुल्यभागिकांः सशर्करास्तण्डुलपाय

नाप्लुताः । रक्तसपित्तन्तमर्कपिपासां

दाहश्चपीताःशमयन्तिसद्यः ।

अर्थ—खस, कालांपक [ पीतचन्दन ]

लोच, पद्मास, प्रियंगु, कायफल, शंख इन

सबमें पृथक् २ समान भाग रक्त चन्दन

मिलावे और इसको फांककर शर्करायुक्त

तण्डुल जलका पान करै तो रक्तपित्त,

तमकश्चाम पिपासा, दाह ये तत्काल शा-

न्त होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ॥

किराततिक्तंक्रमुकंसमुस्तं प्रपुण्डरीकं

कमलोत्तरलेच ॥ ह्रीवेरमूलानिपटोलपत्र  
न्दुरालभापपट्टकामृणालम् । धनञ्जयो  
दुम्बरवेतसत्वम् न्यग्रोधजम्बूहयमारक  
त्वम् ॥ तुगालतावेतसतण्डुलीयं स-  
शारिवम्भोचरसःसमङ्गा । पृथक्पृथक्  
चन्दनयोजितानितेनैवकल्पेनहितानितत्र ।

अर्थ—चिरायता, सुपारी, मोथा, पुण्ड-  
रिया, कमल, उत्पल, नेत्रवाला, पाँचों पं-  
चमूल, परबलके पत्ते, जवासा, पितपापडा  
कमलनाल, अर्जुन, गूलर, वेत, घड, जा-  
मन, कनेर, [ इन छःओं की छाल ], बं-  
शलोचन, लतावेत [ कोई २ लता से शा-  
रिया और वेतस से वेतका ग्रहण करते हैं ]  
चाँलाई, शारिया, मोचरस, मर्जाठ, इनसब  
में पृथक् २ समानभाग चन्दन मिलाकर  
शकरा और तण्डुल जलके साथ लेवे ॥

उक्तमयोगोंकी विधि ॥

निशिस्थितावासरसीकृतावा कल्की  
कृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्ताग्रं-  
शःपृथग्वा रक्तसपित्तंशमयन्तियोगाः ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों गणोंमें जो  
द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं इन सबको वा पृ-  
थक् २ लेकर रात्रिमें भिगोदेवै, वा इन  
का रस निकालले, वा पसिकर लुगदी बना  
लेवै, वा मीडकररस निकाल लेवै वा काथ  
कर लेवै । ये सत्र योग रक्तपित्त को शमन  
करते हैं ।

रक्तपित्त पर अन्य प्रयोग ॥

मुद्गाःसलाजाःसयवाःसकृष्णाःसोशीरमु-  
स्ताःसहचन्दनेन । बलानलेपर्युषितः ।

कपायो रक्तसपित्तंशमयन्त्युदीर्णम् ॥

अर्थ—गूंग, खीर, जौ, पीपल, खस,  
मोथा, रक्तचन्दन इनको खरौटीके काथ में  
रात्रिमें भिगोदेवै और दूसरेदिन प्रातःकाल  
इसका पान करै तो बढाहुआ रक्तपित्त शां-  
त होजाता है ।

अन्यप्रयोग ॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंरुहै-  
मामलकोदकानाम् । मधूदकस्येधुरस-  
स्यचैव पानाच्छमम् । रक्तपित्तम् ॥

अर्थ—वैदूर्य ( एकप्रकार की मणि ),  
मोती, मणि, गेरू, शंख, सुवर्ण इनको आं-  
बलके काथके साथ वा मधुमिश्रितजल वा  
ईशके साथ पानकरै तो रक्तपित्त शान्त होवै

अन्यप्रयोग ॥

उशीरपद्मोपलचन्दनानांपकस्यलोध्रस्य  
चयःप्रसादः । सशर्करः सौद्रयुतः सुशीतो-  
त्तातियोगंशमायदेयः ॥

अर्थ—खस, पद्म, उत्पल, रक्तचन्दन,  
और पक लोध इनके ठंडे काथको छान  
कर शहत और मिश्री मिलाकर पान करै  
तो रक्तपित्तोगी पित्त शान्त होजाय ।

अन्यप्रयोग ॥

मिथंगुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ता  
भयधातकीजलम् । समुत्तमसादसहपट्टि-  
काम्बुनासशर्करंरक्तानिवहणंपरम् ॥

अर्थ—मिथंगु, रक्तचन्दन, लोध, शारिया  
मुलहरी, मोथा, खस और धाय इनके  
काथको मिश्रीके ऊपर का पानी और सांठी  
चावल के जलके साथ मिश्रीडाळकर पान  
करै तो रक्तोग जाता रहता है ।

वाय्वनुबन्धारक्तपित्तकोचिकित्सा ॥  
 कपाययोगे विविधैर्पथैश्चैर्दीप्तेऽनले श्लेष्म  
 णि निजिते च । यदुक्तपित्तं प्रशमनयाति  
 तत्रानिलः स्यादनुतत्र कार्यम् । छागम्प-  
 यः स्यात्प्रथमं प्रयोगे गन्धं शृतं पञ्चगुणेज-  
 ले वा । सशकरं मासिकं मम्पयुक्तं विदारि  
 गन्धादिगणैः शृतं वा ॥ द्राक्षा शृतं नागरकै-  
 शृतं वा वलाशृतं गोक्षुरकैः शृतं वा । सजी-  
 रकं सर्पपकं ससपिं पयः प्रयोज्यां सितयाशृ-  
 तं वा ॥ शतावरी गोक्षुरकैः शृतं वा शृतम्प-  
 यो वाप्यथ पणिनीभिः । रवतं हि न भूत्याशु  
 विशेषतस्तु यन्मूत्रमार्गोत्सर्ज्य भ्रमयाति

अर्थ—पूर्वोक्त विविध प्रकार के कपाय  
 योगों से अग्नि प्रदीप्त होजाय और कफ  
 दूर होजाय और तब भी रक्तपित्त शांत  
 न हो तो वहां वायुका अनुबन्ध होता है,  
 उसमें निम्न लिखित चिकित्सा करनी चाहि-  
 ये यथा प्रथमही यकरी वा गौ के दूध  
 को पचगुने जल में औटाकर मिश्री और  
 शहत मिलाकर पान करावै । अथवा विदा-  
 री गन्धादिगणोक्त द्रव्य डालकर औटायाहुआ  
 अथवा दाख वा सोंठ, वा खैरौटी, वा गो-  
 खरू डालकर अथवा जीरा, जपमक, घी  
 और मिश्री डालकर औटायाहुआ दूध देवै ।  
 अथवा सितावर और गोखरू डालकर औ-  
 टाहुआ दूध वा चासों प्रकारकी पर्णी, (मुद्र-  
 पर्णी मापपर्णी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी) डालकर  
 औटायाहुआ दूध देवै । इसरीति से सिद्ध  
 कियाहुआ दूध रक्त को नष्ट करता है और  
 विशेष करके उस रक्त पित्त के लिये हित है  
 जो मूत्रमार्गमें होकर वेदनायुक्त निकलता है

रक्तपित्तपर अन्ययोग ॥

विशेषतो विट्प्रथमं प्रवृत्ते पयोमतम्मोचर-  
 सेनासिद्धम् । वटावरो हर्वटशुद्धकैर्वाहीवेर-  
 नीलेत्पलनागैर्वा ॥ कपाययोगात्प-  
 यसापुरावा पीत्वानुदद्यात्पयसानुशा-  
 लीन् । कपाययोगैरथवा विपक्रमेतेः पि-  
 वेत्सर्पिरिति सवेच्च ॥

अर्थ—रक्तके मलमार्गमें होकर बाहर नि-  
 कलने पर दूधके साथ मोचरस औटाकर पा-  
 न करावै । अथवा वटकी डाढ़ी, वा वटकी  
 कोंपल, अथवा नेत्रबाला, नीलोफर और सोंठ  
 डालकर दूध को औटाकर पान करावै ।  
 अथवा उक्त कपायोंके साथ पान कराने से  
 पहिले जलके साथ औटाकर पान करावै  
 और क्षुधा लगने पर शालीचांबलोंका भात  
 खाने को देवे । और जो रक्त अत्यन्त खव-  
 ताहो तो उक्त कपायों के साथ घृत सिद्ध  
 करके पान करावै ॥

अन्यप्रयोग ॥

वासांसशाखांसपलाशमूर्लांकृत्वा कपायं  
 कुसुमानि चास्य । प्रदाय फलकं विपचेद्घृ-  
 तंतत्सर्पद्रव्यान्धेच निहन्ति रक्तम् ।

अर्थ—अड़सा को शाखा, पसे, जड़ और  
 फूल सबको एकत्र करके फायमें उक्त द्रव्यों  
 का कल्क और घृत डालकर सिद्ध करे फिर  
 शहत के साथ चादे तो रक्त बहुत शीघ्र  
 वन्द होजाता है ॥

अन्यप्रयोगाणि ॥

पलाशवृन्तस्य रसेन सिद्धं तस्यैव कल्केन म-  
 धुद्रेण । लिङ्गादृन्तं त्सकफल्कसिद्धं त-

द्वत्समद्वात्पलरोधसिद्धम् । स्यात्त्राय  
माणाविधिरेषएवसोदुम्बरेचैवपटोलपत्रे

अर्थ—ढाक के डंठलों का रस निकालें  
और फिर उन्हीं का कल्क करके उसमें घृत  
पकावे, इस घृत को शहत मिलाकर चाटें  
तो रक्तपित्त नष्ट होय । इसी तरह इन्द्रजी  
का प्रयोग भी होता है । इसी तरह लज्जालू,  
नीलफर और लोध से सिद्ध किया हुआ  
घृत रक्तपित्त पर देवे । त्रायमाण अथवा गू-  
छर और परबल के पत्तों को घृत के साथ  
सिद्ध करके पूर्वोक्त विधि से सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिपित्तज्वरनाशनानि सर्वाणि शस्ता  
नि च रक्तपित्ते ॥ अभ्यङ्गयोगः परिपेच  
नानि सैकावगाहाः शयनानि वैश्वम् । शी  
तोविधिर्धन्तिविधानमष्टयपित्तज्वरे यत्  
प्रशमायदृष्टम् ॥ तद्रक्तपित्ते निखिलेन का  
र्यकालश्च मात्राञ्च पुरा समीक्ष्य ॥

अर्थ—पित्तज्वरके नाश करने वाले जो  
जो घृत वर्णन किये गये हैं वे सब रक्तपित्त  
में हितकर हैं । तथा पित्तज्वरमें जो जो  
अभ्यङ्ग, परिपेचन प्रसेक, अवगाहन शयन,  
घर, शीतोविधि तथा धन्तिविधान वर्णन  
किये गये हैं उन सबका काल और मात्राका  
विचार कर रक्तपित्त में प्रयोग करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिर्गुण्डाये च हिताः क्षतभ्यः तैरक्तपित्तं  
शमयन्ति मद्यः ॥

अर्थ—घृत और गुड़ जो जो क्षतरोग  
में हित हैं वे सब रक्तपित्त को भी तत्काल  
नष्ट कर देते हैं ॥

कफानुबन्धी रक्तपित्तकी चिकित्सा ।  
कफानुबन्धेरुधिरसपित्तकण्ठागमे स्याद्ग्र  
थिते प्रयोगः । युक्तस्य युक्त्या मधुसर्पिपो  
अक्षारस्य चैवोत्पलनालजस्य ॥ मृणाल  
पत्रोत्पलकेशराणां तथा पलाशस्य तथा मि  
यङ्गोः । तथा मधूकस्य तथा सनस्य चारः  
प्रयोज्या विधि नैव तेन ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त कफानुबन्धी होता  
है वह कण्ठमें आकर गांठदार होजाता  
है । इसमें शहत और घृत मिलाकर चाटें  
अथवा नीलकमलकी डंडीका खार शहत  
घृतके साथ चाटें । अथवा कमलनाल, पद्म-  
केशर, उत्पल, केसरकी भस्म अथवा ढाक  
का क्षार, अथवा प्रियुङ्गका क्षार अथवा महु  
आ का क्षार अथवा असनका क्षार पूर्वोक्त  
विधि से शहत और घृत के साथ चाटें ।

शतावरीदि घृत ॥

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकं काकोलिमे-  
दो मधुकं विदारीम् । पिष्ट्वा च मूलम्फलं  
पूरकस्य घृतं पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन ॥  
कासज्वरानाहविबन्धशूलः तद्रक्तपित्त-  
श्च घृतं निहन्त्यात् । यत्पञ्चमूलैरथ पञ्च  
भिर्वा सिद्धं घृतं तत्तच्च तदर्थकारि ॥

अर्थ—सितावर, अनार, १ मली, काकोली,  
मेदा, मुलहठी, विदारीकन्द और विजोरे की  
जड़ इन को पीसकर इनके साथ घृत पकावे  
उसी में घृत से चौमुना दूध डाले । इसके  
सेवन करने से खांसी, ज्वर, आनाह, विबन्ध,  
शूल और रक्तपित्त शान्त होजाते हैं ॥

पाँचों पंचमूल से सिद्ध किया हुआ घृत  
भी ऊपर कहे हुए रोगों में हितकारी होता है ।



नकसीर की चिकित्सा ॥

कपाययोगाश्चहोपादिष्टास्तेचावपीडेभिप-  
जाप्रयोज्याः । घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरंसपि-  
त्तं । यदाभवेन्निःसृतदुष्टदोषम् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करनेवाले जो  
जो कपाय इस जगह वर्णन किये गये हैं उ-  
नका रस निकालकर सूंघनेसे वह रक्तपित्त  
बन्द होजाताहै जो नासिकाके द्वारा निकलताहै।

दुष्टरक्तके बन्द होनेके उपद्रव ।  
रक्तेमदुष्टेक्षवपीड्वन्धे दुष्टप्रतिभ्यायाशि-  
रोविकाराः । रक्तसंपूर्णकुण्ठपश्चगन्धः  
स्याद्घ्राणनाशःकुम्भयश्चदुष्टाः ॥

अर्थ—जो दूषित रक्तबन्द करदिया  
जायग तो दुष्ट प्रतिश्याय, शिरोविकार,  
पीवदार सड़ाहुआ रक्तस्त्राव प्राणशक्ति  
का नाश ये उपद्रव होंगे तथा नासिकामें  
दुष्ट किमिरोग उत्पन्न होजायगा ।

रक्तपित्त मेंअन्यनस्य ॥

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तं । सचन्दनं  
स्यात्तुसितजलेन ॥ नस्यन्तथाम्रा-  
स्थिरसः समझासधातक्रीमोचरसःस-  
लोध्रः ॥ द्राक्षारसस्येशुरसस्यनस्यं ।  
क्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव ॥ यवासमूला  
निपलाण्डुमूलं नस्यन्तथादाडिमपुष्पतोयम्

अर्थ—नीलकमल, गेरू, शंख, रक्तच-  
न्दन और मिश्री इनको भिजोकर रसनिका-  
लकर सूंघनेसे रुधिरबन्द होजायगा । अथ-  
वा आमकी गुठलीका रस अथवा लज्जा-  
द्व, धायके फूल, मोचरस, लोध इनका र-  
स निकाल कर सूंघनेसे भी नकसीर बन्द

होजातीहै। अथवा दाखका रस, वा दूध, दूध  
का रस, वा जवासे की जड़का रस, वा,  
प्याजकी जड़का रस, वा अनारके फूलका  
रस सूंघनेसे भी नकसीर बन्द होजातीहै ।

नस्यपर अन्य प्रयोग ।

पियालतैलंमधुकम्पयश्चसिद्धंघृतमाहि-  
यमाजकवां ॥आम्रास्थिपूर्वःपयसाचन-  
स्यं । सशारिर्वःस्यात्कमलोत्पलंश्च ॥

अर्थ—पियाल का तेल, मुलहठी और  
दूध इन सबको पकाकर सूंघे, अथवा भैंस  
या बकरी का घी, [ आम्रास्थिपूर्व अ-  
र्थात् पहिले श्लोकों में कहीहुई ] लज्जाद्व  
धाय के फूल, मोचरस, लोध, शारिवा,  
कमल और नीलोत्तर इनको सिद्ध करके  
नस्य लेंवे तो रुधिर बन्द होय ।

रक्तपित्तपर परिपेकादि प्रयोग ॥

भद्रश्रियंलोहितचन्दनश्चमपुण्डरीकंकमलो-  
त्पलश्च । उशीरवान्नीरजलंमृणालं ।  
सहस्रवीर्यंवृणशूल्यमृद्धिः ॥ मूलानिपु-  
ष्पाणिचवारिजानांमलेपनंपुष्कारिणामृ-  
दश्च । उदुम्बराश्वत्थमधूकरोध्राकपाय  
वृक्षाःशिशिराश्चसर्वेभेदेहकल्केपरिपेचने-  
चतथावगाहेघृततैलसिद्धौ । रक्तस्यापित्त  
स्यचशान्तिमिच्छन् । भद्रश्रियादीनि  
भिपक्षमयुज्ययात् ॥

अर्थ—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, पुण्ड-  
रीक, लालकमल, नीलकमल, उशीर, वानी-  
र, नेत्रवाला, मृणाल, सहस्रवीर्य [ दूध ]  
मल्लिका रुद्धि, कमलकी जड़ और फूल  
तलावकी मिश्री, गूलर, पीपल, महुआ,

छोष तथा अन्य कषाय वृक्ष जो शीतवीये हैं इन सबको लेप, परिपेचन तथा अवगा-  
हनमें प्रयुक्त करें ॥ और सफेद चन्दनसे  
आदि लेकर द्रव्यों में घृत वा तेलको सिद्ध  
करके रक्तपित्तकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करें  
रक्तपित्तपरअन्यावीधि ॥

धारागृहेभूमिगृहश्चशीतंवनञ्चरम्यञ्जल  
वातशीतम् । वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां  
स्पर्शाश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः ॥ पत्रा  
णिशीतानिचवारिजानां । सौमश्चशी  
तंकदलीदलाश्च । मच्छादनार्थशयना-  
सनानां । पद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रश-  
स्ताःप्रियंगुकाचन्दनरूपितानांस्पर्शाभि-  
याणाञ्चवराङ्गनानाम् ॥ दाहप्रशस्ताः  
सजलाःसुशीताः । पद्मोत्पलानाञ्चक  
लापवाताःमरिद्रदानांहिमवेदरीणा  
ञ्चन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽ-  
नुकूलाःशिशिराश्चसर्वाःकथाःसरक्तंशम  
यन्तिपित्तम् ॥

अर्थ—जलेके किनारेके या फव्वारेदार  
तथा ठंडे तलघरे, रमणीकवन, ठंडे हवा  
और जल, तथा वैदूर्य और मुक्तामणियों  
के पात्रों का देहसे लगाना रक्तपित्त के  
दाहमें हितकरहै । शीतल जल, शीतल क-  
मल के पत्ते, शीतल रेसमी वृक्ष शीतल-  
केलेके पत्ते भी हितकर हैं तथा पलंग  
वा आसन पर विठाने के लिये लाल कमल  
और नीलकण्ठ के पत्ते हितकारी होते हैं ।  
प्रियंगु तथा चन्दन लिप्तांगी प्रियतमावगं-  
नोभाका स्पर्श, जलार्द्र शीतल कमलों और

मोरछल की हवा, नदी सरोवर, हिमालयकी  
कन्दरा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलों का शुद्ध  
तथा मनोनुकूल संतोष दाहिनी बातोंका श्रवण  
रक्तपित्त को शमन करता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंबुद्धिसंख्यांस्थानंलिङ्गपृथक्प्रदुष्टस्य।  
मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्यक्रमञ्चैव॥  
पानान्नपानमेवचचर्ज्यसंशोधनञ्चशमन  
ञ्च । गुरुस्तवान्यथावत्चिकित्सिते  
रक्तपित्तस्य ॥

अर्थ—भगवान् पुनर्वसुने इस अध्याय में  
रक्तपित्त के हेतु, बुद्धि, संख्या, समुत्थान  
लक्षण तथा दूषित रक्तपित्त के मार्ग, रक्त-  
पित्त के साध्य असाध्य और याप्यके लक्षण  
चिकित्साक्रम, पथ्य, अनुपान, वर्जित अन्न  
संशोधन तथा संशमन ये सब बातें यथा-  
वत् वर्णन की हैं ।

इतिथ्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां साहितायां चिकि-  
त्सितस्थाने रक्तपित्तचिकित्सितं नाम  
चतुर्थोऽध्यायः । ४ ॥

पंचमोऽध्यायः

अथातोऽगुल्मचिकित्सितंन्यास्यास्याम  
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यःपुनर्व्यमृधृतभ-  
विष्यदीशः । चिकित्सितंगुल्मनिवर्हणा-  
र्थं प्रोवाचसिद्धंवदतांवरिष्ठः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रजा को पिता की समान शरण देनेवाले, भूत-भविष्यत्के जानने वाले वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजी गुल्मरोग के निवारणार्थ सिद्ध चिकित्साका वर्णन करने लगे ॥

गुल्मोत्पत्ति का हेतु ।

विद्व्लेष्मपित्तादिपरिक्त्वाद्वा तैरेववृद्धेः  
परिपीडितोवा ॥ वैरुदीर्णैर्विहितैर्योवा  
वाह्याभियातैरतिपूरणैर्वा । रुक्षान्नपानै-  
रतिसेवनैर्वाशोकेनामिध्यामातिकर्मणावा  
विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः । कोष्ठेभकोपं  
समुपैतिवायुः ॥ कफः क्षपितश्च स दुपयित्वा ।  
प्रोक्ष्यमाणान्निविबध्यताभ्याम् । ह-  
स्तीहपाश्वोरवस्तिशूलं करोत्यधोया-  
तिनवद्वयार्गः ॥ पक्षाशयेपित्तकफाशयेवा ।  
स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयोवा । स्पर्शोपल-  
भ्यः परिपिण्डितत्वात् गुल्मोयथादो-  
पमुपैतिनाम ॥

अर्थ—विष्ट, कफ और पित्तादि की अ-  
त्यन्त क्षीणता या इनही की वृद्धि से वायुकी  
अत्यन्त पीडा से, उपाश्रित अवयवों के  
रोकनेसे, वाद्य अभिघात से, अत्यन्त सन्त-  
र्पण से, रुक्ष अन्नपान के अत्यन्त सेवन से,  
शोक से, या चिकित्सा के मिथ्यायोग, अयो-  
ग या अतियोगसे, शरीर की विषम या अ-  
तिमात्र चेष्टाओंसे वायु कोष्ठ में अत्यन्त  
कुपित होजाती है और फिर कफ और  
पित्तको दूषित करके उससे भागोंको रुक्ष-  
बोलीतीहै और तब उच्चैर्जात होकर हृदय,  
प्लोहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल

उत्पन्न करती है और मार्गके बन्द होजाने  
के कारण नाँचे होकर भी नहीं निकलने  
पाती है । तब वह पक्षाशय वा पित्तकफाशय  
में अकेली वा कफपित्त के संसर्ग में स्थित  
होजाती है और उस स्थान में हाथ लगाने  
से गोलासा दिखाई देने लगता है तब यथा-  
दोष इस का नाम गुल्म होजाता है, यथा  
वातिक पौष्टिक, और शैथनिक । इस कहने  
से यह न समझ लेना चाहिये कि केवल वै-  
तिक वा शैथनिक होता है । इसमें वायु तो  
प्रधान होती है इसी से वायुगोला कहते हैं ।

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तीहिनाभ्यांहृदिपार्श्वयोर्वा । स्थाना  
निगुल्मस्य भवन्ति पञ्च । पञ्चात्मकस्य  
प्रभवन्तु तस्य । वक्ष्यामि लिङ्गानि चिकि-  
त्सितञ्च ॥

अर्थ—वस्ति, नाभि, हृदय, और दोनों  
पार्श्वभाग ये गुल्म के पाँच स्थान हैं । इस  
की उत्पत्तिभी पाँचही प्रकारसे हैं, अब हम  
इसकी चिकित्सा और लक्षणों का वर्णन  
करते हैं ।

वातिक गुल्मका हेतु ।

रुक्षान्नपानं विषमातिमात्रं । विचेष्टितं वै-  
गविनिग्रहश्च । शोकोऽभिघातोऽतिबल-  
स्यथ निरञ्जताचानिलगुल्महेतुः ॥

अर्थ—रुक्ष अन्नपानके सेवन, शरीर की  
विषम और अतिमात्र चेष्टा, मलमूत्रादि वेगों  
का अवरोध, शोक, अभिघात, बलकी अत्य-  
न्त क्षीणता, भोजन न करना ये सब वाति-  
क गुल्मकी उत्पत्ति के हेतु हैं ।

वातिक गुल्म के लक्षण ।

यःस्थानसंस्थानरुजांविकल्पं । विह्वात  
सङ्गमलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वंशि-  
शिरज्वरञ्च । हृत्कुक्षिपार्श्वसशिरोरुजञ्च  
करोतिजीर्णैऽभ्यर्षिकंमकोपं । भुक्तेमृदु  
त्वंसमुपैतियश्च । वातात्सगुल्मोनचतत्र-  
रूक्षःकपायतिक्तंकडुचोपशोते ॥

अर्थ—जिस गुल्म के स्थान, स्वरूपऔर  
वेदनामें थोड़ी थोड़ी देमें अन्तर पड़जाय,  
जिस में मलत्याग और अधोवायु का अव-  
रोध हो, जिस के होने से गले और मुख  
में खुशकी हो, जिसका रंग कुछ काला  
कुछ लालहो जिसमें शतिज्वर का वेग  
हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि, पार्श्व और  
सिरमें वेदनाहो, अन्नके पचनेपर जो अत्यन्त  
कुपित हो, जो भोजन करने पर नरम प-  
ड़जाय उसे वातजगुल्म कहतेहैं इसमें रू-  
क्ष, कटु, तिक्त और कपाय द्रव्योंके सेवन  
का निषेध है ।

पैत्तिक गुल्मका हेतु ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिम  
थार्कहुताशसेवा ॥ आमामिधियातोरुधिर  
ऽचदुष्टपैतस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥

अर्थ—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदा  
ही और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध, अति,  
मय, धूप और अग्निमें तापनेसे, अविदग्ध  
अन्नसे और रुधिरके दूषित होनेसे पैत्तिक  
गुल्म उत्पन्न होता है ।

पैत्तिक गुल्मके लक्षण ।

ज्वरःपिपासावेदनाङ्गरागःशूलमृहजीर्ष-

तिभोजनेच । स्वेदोविदाहोव्रणवच्चगुल्म  
स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥

अर्थ—ज्वर, तृषा, मुख तथा देहमें ल-  
लाई, अन्नके पचने के समय अत्यन्त शूल  
का होना, पसीना, विदाह, तथा घाव की  
तरह गुल्ममें हाथका लगाना बुरा मादम  
होना, ये सब पैत्तिकगुल्म के लक्षण हैं ।

श्लैष्मिकगुल्म के हेतु ।

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूरणमस्यप-  
नंदिवाच । गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य ।  
सर्वस्तुदृष्टोनिचयात्मकस्य ।

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदा-  
र्थों के सेवनसे किसी प्रकार की चेष्टा कर  
नेसे, संतर्पणसे, दिनमें नींद लेनेसे कफज  
गुल्म होताहै; तथा सान्निपातिक गुल्ममें ती-  
नों दोषोंके मिलेहुए कारण होते हैं ॥

श्लैष्मिक गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसाद हृष्टासका-  
सारुचिगौरवाणि । शैत्यंरगल्पाकठिनो  
न्नतत्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥

अर्थ—स्तिमिता, शीतज्वर, अंगगलानि,  
हृष्टास, खांसी, अरुचि, भारापन, शैत्य,  
वेदनाकी सूक्ष्मता, कड़ापन, ऊँचापन, ये  
सब कफजगुल्म के रूप हैं ॥

द्रव्जगुल्म के लक्षण ॥

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मे द्विदोषजेदो  
म्वलावलञ्च । व्यापिश्रदोपानपरास्तु  
गुल्मांस्त्रीनादिशेदौपधकल्पनार्थम् ॥

अर्थ—उत्पत्तिक हेतु, लक्षण, दोषोंका  
बलावल, तथा दोर दोषोंके मिले हुए लक्षण

गोंसे तीन प्रकारके द्विदोषजगुल्म भी होते हैं ॥ औषधों के प्रयोग के निमित्त इनके तीन भेद दिखाये गये हैं ।

**त्रिदोषजगुल्म के लक्षण ॥**

महारुजंदाहपरीतमश्मवद् घनोन्नत्तंशीघ्र  
विदाह्विदारुणम् । मनःशरीराग्निबलाप  
हारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

अर्थ—त्रिदोषजगुल्ममें अत्यन्त घोर वेदना, दाह, पथरके समान कडापन और ऊँचाई होता है यह शीघ्रही दाह उत्पन्न करनेवाला भयंकर रोग होता है । यह मन शरीर और अग्निके बलको दूर कर देता है यह गुल्म असाध्य होता है ॥

**रक्तगुल्मका कारण**

ऋतावनाहारतयाभयेन विरुद्धाणैर्वेगवि-  
निग्रहैश्च ॥ संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषै  
गुल्मः स्त्रियंरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ यः स्पन्द-  
तेपिण्डितएवनाङ्गैः चिरात्सथूलः समग  
र्भलिङ्गैः । सरौर्ध्वः स्त्रीभवएवगुल्मो  
मासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः

अर्थ ...ऋतुधर्म होनेमें सर्वथा भोजन न करना, भय, रुद्ध पदार्थोंका सेवन, वा-  
तादिरोगविनिग्रह, स्तम्भनक्रिया, वमन  
और योनिदोषसे स्त्रियोंके रक्तगुल्म होता-  
है । जब रक्तगुल्म पेटमें उछलता है तब  
इसमें अत्यन्त वेदना होती है और लक्षण  
इसमें गर्भ के समान होते हैं इसकी उत्प-  
त्ति रक्तसे है और यह केवल स्त्रियोंहीके हो  
ता है । दस महीने व्यतीत होनेपर इसकी  
चिकित्सा करना उचित है ।

क्रियाक्रममतः सिद्धं गुल्मिनां गुल्मनाशनम्  
प्रवक्ष्याम्यत ऊर्ध्वञ्च योगानां गुल्मनिवर्ह-  
णान् ॥

अर्थ—अब हम यहांसे गुल्मरोगियोंके  
गुल्मको दूर करने के लिये चिकित्साक्रम  
और अनुभूत प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥

**वातजगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥**

रुक्ताव्यायामजं गुल्मं वातिकं तीव्रवेदनम् ।  
वदविट्मारुतस्नेहैरादितः समुपाचरेत् ॥  
भोजनाभ्यञ्जनैः पानैर्निरुहैः सानुवासनैः  
स्निग्धस्य भिषजास्वेदकर्त्तव्यो गुल्मशान्त  
ये ॥ स्रोतसामार्दवं कृत्वा जित्यामारुतमु-  
ल्लवणम् । भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्नेहो गु-  
ल्ममपोहति ॥ स्नेहपानमतं गुल्मे विशेषे  
णोर्ध्वनाभिजे । पक्वाशयगतवस्तिरुभयं  
जठराश्रये ॥

अर्थ—जो वातिकगुल्म रुद्ध भोजन तथा  
परिश्रमसे उत्पन्न हुआ है, जिसमें तीव्र वेद-  
ना होती है और जिसमें अधोवायु और विष्टा  
रुक्ताव्यायाम उभयोंमें प्रथम स्नेहन किया करें ॥  
भोजन अभ्यञ्जन, पान, निरुहण और अ-  
नुवासन वस्ति द्वारा रोगीको स्निग्ध करके  
स्वेदनकर्म करें तब गुल्मरोग की शान्ति होती है

रोगीको स्निग्ध करने के पश्चात् स्वेदन  
सं शरीरके स्रोत मृदु होजाते हैं, वायु की  
प्रबलता घटजाती है, विबन्धता दूर होजाती  
है और तब गुल्म भी शान्त होजाता है ।  
विशेष करके नाभिसे ऊपर हेनिथोल गुल्ममें  
स्नेहपान श्रेष्ठ है ॥ पक्वाशयगत गुल्ममें व-  
स्तिकर्म तथा जठराश्रय गुल्ममें स्नेहपान  
और वस्तिकर्म दोनों हित हैं ॥

अन्यविधि ॥

दीप्ताग्नौवातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्च  
सां॥ बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि  
प्रयोजयेत् ॥ पुनः पुनः स्नेहपानं निरूहाः  
सानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मे पुकफ  
पित्तानुरक्षिणा ॥ कफे वाते जितमार्येपि  
चंशोपि तमेव वा । यदि कुप्याति वातस्य  
क्रियमाणे चिकित्सितैः ॥ यथोल्बणस्य  
दोषस्य तत्र कार्यं भिपग्निजितम् । आदाव  
न्ते च मध्ये च मारुतपरिरक्षता ॥ वातगुल्मे  
कफोद्दोहत्वाग्निमरुचि यदि । हल्ला  
संगौरवंतन्द्राजनयेदुल्लिखेत्तुतम् ॥

अर्थ—यदि वातिक गुल्ममें अग्नि तीव्र  
हो, तथा अशोषाद्यु और विष्टाका विबन्ध  
हो तो बृंहणकर्ता, स्निग्ध और उष्ण अन्न  
पानका प्रयोग करे । तथा कफपित्तानुबन्धी  
वातज गुल्मरोगमें बारबार स्नेहपान तथा  
निरूहण, अनुवासनवस्ति देवे । कफ और  
वातके प्रायः दूर होने के समय अथवा  
वातगुल्मकी चिकित्सा करने के समय यदि  
पित्त और रक्त क्षुपित होजाय तब उस  
समय जिस दोषकी अधिकताहो उसी की  
चिकित्साका उपाय करे । परन्तु चिकित्सा  
के आदि मध्य वा अन्तसानमें वायुकी रक्षा  
करता रहे । वात गुल्ममें यदि कफ उत्ते-  
जित होकर जठराग्नि को मन्द करके अ-  
रुचि, हृद्भ्रस, गौरव तन्द्रा उत्पन्न करे तब  
उस रोगी को वमन करावे ॥

अन्यविधि ॥

शूलानाहविबन्धेषु गुल्मे वातकफोल्बणे ।  
वर्तयोगुलिकाः चूर्णकफवातहरम्मतम् ॥

पित्तवायदिसंष्टुद्धसन्तापवातगुल्मिनः ।  
कुर्याद्विरेच्यः स भवेत् स्नेहनेरानुलोमिकैः ।  
गुल्मयद्यनिलादीनां कृते सम्यग्भिपग्निजते  
न प्रशाम्यति रक्तेन सलुते नोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातकफाधिक्य गुल्ममें यदि शूल  
आनाह और विबन्ध हो तो कफवातनाशक  
वर्तिका, गोली, चूर्णका प्रयोग करे । वात  
गुल्मरोगीके यदि पित्त बढ़कर सन्ताप  
उत्पन्न करे तो वायुके अनुलोमन करने  
वाले स्नेहनद्रव्यों से विरेचन देवे । यदि  
वातादिक को शमन करनेवाली औषधोंके  
प्रयोग से जो गुल्म शांत नहीं वे फस्त खो-  
लने से शान्त होजाते हैं ।

पैत्तिकगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके संसर्गं सन्मतम्  
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥  
पित्तं वापित्तगुल्मं वा ज्ञात्वा पकाशयस्थित  
म् ॥ कालावन्निर्हरेत् सद्यः सतिक्तक्षीरच  
स्तिभिः ॥ पयसा वा मुखोष्णेन सतिक्तेन  
विरेचयेत् । भिपग्निबलोपक्षी सर्पिपा  
तैलकेन वा ॥

अर्थ—जो पैत्तिकगुल्म स्निग्ध और उष्ण  
पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ है उस-  
में दस्तावर औषध हित है । और जो रूक्षो-  
ष्णपदार्थों के सेवनसे हुआ है उसमें घृतपान  
बहुत उत्तम है । पित्त वा पित्तज गुल्म जो  
पकाशयमें स्थितहो उसे उचितकाल में  
तित्त औषधियों से संस्कार की हुई क्षीर-  
वास्तिद्वारा तत्काल निकाल देवे, अथवा  
तित्त औषधियोंसे संस्कार किये हुए मुखोष्ण  
दुग्धको पान कराके विरेचन देवे अथवा

रोगीके अग्निबल का विचार करके तेल मिला हुआ घी देकर विरेचन देवै ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि ॥

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे ।  
गुल्मिनामरुचौचापिरक्तमेवावसेचयेत् ॥

छिन्न मूलाविदहन्तेनगुल्मायान्तेचसयम्  
रक्तहिंश्यम्लतांपातितक्षनास्तिनचास्ति  
रक्त । हृतदोषम्परिम्लानंजात्रलैस्तापि-  
तंरसैः ॥ समाश्वस्तंचशेषातिसर्पिपापुन-  
राचरेत् । रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियाम-  
नुपलभ्यथा ॥ यदिगुल्मोविदहेतश्चत-  
त्रभिपग्जितम् ।

अर्थ—यदि पित्तज्वरमें तृष्णा, ज्वरदाह  
शूल, पसीना, मदाग्नि और अरुचि हो तो  
फस्त खुलवाये । इसतरह गुल्मकी जड़ काट  
लेनेसे वे पकने नहीं पातेहैं किन्तु नष्ट हो  
जातेहैं, रक्तकी अम्लता जाती रहती है  
और रक्तके न रहने से वेदनाभी नहीं रहती  
फस्त खोलनेसे दोषों के दूर होजाने  
पर रोगी अत्यन्त थकित होजाताहै तब  
उसे जांगल पशुओंके मांसरस से तर्पित  
करै जब यह साधधान होजाय तब बचे-  
हुए रोगको घृतपान कराके दूर करै ।

रक्तपित्तके अत्यन्त बढ़जाने से या वि-  
किस्ताकी सम्पक् अनुपलब्धि से जो गुल्म  
पकजाय तो उसमें शूल द्वारा रक्त मोक्ष-  
णही चिकित्सा है ॥

अपक्व गुल्म के लक्षण ।

गुरुकटिनसंस्थानोगृदमांसोचराश्रयः ॥

अविवर्णःस्थिरश्चैवक्षपकोगुल्मउच्यते ।

अर्थ—भारी, कठोराकृति, घने मांस में  
स्थित, जिसका रंग न बिगड़ा हो जो अच-  
ल हो वह गुल्मअपक्व होताहै ॥

विदह्यमानगुल्म के लक्षण ॥

दाहशूलान्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः  
विदह्यमानजानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ।

अर्थ—जिस गुल्ममें दाह, शूल, अग्नि-  
संक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर हो  
उस गुल्मको विदह्यमान अर्थात् पकनेवाला  
कहतेहैं । इसपर लेपकरना चाहिये ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलसणालपत्वंवाहिस्तुक्नेसमुन्नेते ॥

श्यावेसरक्तपर्यन्तेसंस्पर्शेवस्ति सन्निभे ।

निपीडितोन्नतेस्तन्धुमुत्ततत्पार्श्वपीडनात्  
तत्रैवपिण्डितेशूलसंपक्वगुल्ममादिशेत् । त-

त्रधान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ  
वैद्यानांकृतयोग्यानाव्यधशोधनरोपणेः ।

अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्ष-  
णम् ॥

अर्थ—विदाह लक्षणोंके अल्प होनेपर  
जब गुल्म बाहरकी ओर अत्यन्त तुंग और  
ऊंचा होताहै, रंग फाला पड़जाता है और  
इसके चारों ओरके किनारे कुछ कुछ लाल  
होजाते हैं, छूने में परवालसा मादूमहो हाथ  
से दवाने पर फिर ऊंचा होजाय, ओरपास  
से दावनेपर स्तब्ध और मुस्त मादूमहो,  
एकही स्थानपर गोलासा रहा आवै और  
वेदना होती हो तब इसे संपक्व समझना  
चाहिये ॥

ऐसे गुल्म रोग की व्यधन, शोधन, और

रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार सम्पूर्ण अन्न श्रोत्रोत्तं सम्पन्न धान्वन्तरीय चिकित्सकों की है अर्थात् उनको है जिन्होंने धन्वन्तरिके मतके अनुसार मूत्रों का चीरना फाड़ना आदि सीखा है ।

भीतर की ओरको पकनेवाले गुल्म के भी यही लक्षण होतेहैं ॥ यह अन्तर्विद्रधि के समानहीहैं क्योंकि अन्तर्विद्रधि पकती है और गुल्म नहीं पकताहै ॥

इत्क्रोडशूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः पक्वःस्रोतांसिसंक्लिंघन्नजत्पूर्यध्वमधोऽपिचा स्वयंप्रवृत्तन्तंदोषमुपेक्षेतहिताशनेः । दशा हंद्वादशाहवारक्षन्भिपगुपद्रवान् ॥ अत ऊर्ध्वमंतपानंसर्पिपःसविशोधनम् । शृङ्ग सतिक्तसक्षौद्रंयोगेसर्पिरिप्यते ॥

अर्थ—अन्तःस्थगुल्म अर्थात् अन्तर्विद्रधिमें हृदय और क्रोडमें सूजन होती है और वहिस्थगुल्ममें अर्थात् बाह्यविद्रधि में पसवाडोंसे निर्गमन होताहै । गुल्म पक्व होकर स्रोतोंको गलों करके ऊपर की ओर या नाँचकी ओर जातहै । जो दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य बताकर वैद्य को उचित है कि उपद्रवों की रक्षाकरता हुआ इसकी दस बारह दिवस तक उपेक्षा करे ॥ तदुपरान्त संशोधनघृत का व्यवहार करे । इसतरह जब रोगी शुद्ध हो जाय तब तित्त औषधियोंके साथ संस्कार किया हुआ घृत शहत मिलाकर देवे ।

कफजगुल्मका चिकित्सादि वर्णन ।

शीतलैगुहाभिःस्निग्धैर्गुल्मेजातेकफात्मके ॥

अवम्यस्याल्पकायाग्नेःकुर्याल्लघनमादितः

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदार्थों के अत्यन्त सेवन से जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उस में रोगी वमन के अयोग्य और मन्दाग्नीयुक्त होजाता है इसलिये इस में प्रथम लघन कराना उचित है ।

वमनोपगमरोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता सोत्केशाश्चारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥

अर्थ—जिस गुल्मरोगी की अग्नि मन्दहो वेदना भी मन्द हो जिसके कोष्ठमें भारापन और गीलापन होवे, जिसको उत्केश और अरुचि होवे वह रोगी वमन के योग्य होताहै उत्प्रेरेवोपचार्यस्यकृतेवमनलंघने । यो ज्याचाहारससर्गोभेपजैः कटुतिक्तकैः ॥

सानाहसविवन्धंचगुल्मंकठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वादास्वेदयद्युक्त्यास्विन्नञ्चयिनयेद्विपक्व ॥ लंघनोल्लेखनेस्वेदेकृतेऽग्नौसंमधुक्षिते । कफगुल्मोपिवेत्कालेसक्षारकटुकं घृतम् ॥ स्थानादपसृतंहात्वाकफगुल्मं विरेचनेः । सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाधशोधये

इशमूलकैः ॥

अर्थ—वमन और लघन करानेके पश्चात् उष्ण, कटु और तिक्त औषधियों को आहारमें मिलकर देवे ॥ आनाह और विवन्ध युक्त गुल्म जो कठोर और उंचाहो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदनदेवे, स्वेदन कर्मकेपीछे यह नीचा होजाताहै । लंघन, वमन और स्वेदनके पश्चात् जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजगुल्म में क्षार और कटु



द्रव्यों से संस्कार किया हुआ घृतपान करावे  
ऊपर कहे हुए लघनादि उपचारों से जो कफ  
गुल्म अपने स्थान से चालित होजाय तो दश-  
मूल के काय में सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन  
अथवा स्नहनवस्ति देकर उसका संशोधन करे

कफजगुल्म में अन्यप्रयोग ॥

मन्दाग्रावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्  
शुलिकाः चूर्णनिर्घृहाः प्रयोज्याः कफगुल्मि-  
नाम् ॥ कृतमूलं महावास्तुकठिनं स्तिमितं  
गुरुम् । जयेत्कफकृतं गुल्मं क्षाररिष्टाग्नि-  
कर्मभिः ॥

अर्थ....कफ गुल्मरोगी की जो अग्नि  
मन्द पड़ गई हो, अधोवायु रुक गई हो  
और आमाशय स्निग्ध हो तो उसे गोली,  
चूर्ण और काथादिक देवे ॥ ऐसा कफगुल्म  
जो बहुत घीचमें फैल गया हो, फड़ा हो, गंला  
हो, भारा हो उसको क्षार, अरिष्ट और अ-  
ग्निकर्म द्वारा शान्त करे ।

गुल्म में क्षारविधि ॥

दोषप्रकृतिगुल्मन्तु योगं युध्वा कफोत्वणे ।  
बलदोषप्रमाणज्ञः क्षारं गुल्मे प्रयोजयेत् ॥  
एकान्तरं द्वयन्तरं वा त्र्यहं विधम्य वा पुनः ।  
शरीरबलदोषाणां राक्षसपणकोविदः ॥  
श्लेष्माणं धुरां स्निग्धं तां सवीरघृताशेनः  
भित्वा भित्वा शयानक्षारः क्षरन्वात्क्षारय-  
त्यघः ॥

अर्थ....कफाधिक्य गुल्म में दोष, प्र-  
कृति, गुल्म और योग को देखकर क्षार  
का प्रयोग करे फिर एकदिन दोदिन अथवा  
तीनदिन ठहरकर देखे कि शरीर के

बल और दोषों में क्या अन्तर हुआ तब  
उसी के अनुसार फिर प्रयोग करे । क्षार  
अपनी क्षरणशक्ति से मांस, दूध, औ-  
र घी खाने वाले मनुष्यके आशय को भे-  
दकर मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्ग द्वा-  
रा निकाल देता है ।

गुल्म में अरिष्ट ॥

मन्दाग्रावरुची सात्सम्यमेवे सस्नेहमशनता-  
म् । प्रयोज्या मार्गं शुद्धयर्थं मरिष्टाः कफगु-  
ल्मिनाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध भोजन करनेवाले कफ  
गुल्मरोगीकी यदि आग्निमन्द पड़ गई हो  
अरुचि हो वा मदिरापान सात्सम्य हो तो मा-  
र्गकी शुद्धिके निमित्त अरिष्टका प्रयोग करे ।  
लङ्घनोच्छेदनः स्वेदः सर्पिष्पानैर्विरेच-  
नैः ॥ वस्तिभिर्गुलिका चूर्णक्षारारिष्टगणै-  
रपि ॥ श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाच्चस्य गुल्मो  
न शाम्यति ॥ तस्य दाहो हृते रक्ते शरलोहा-  
दिभिर्भृतः । औष्ण्यात्तैक्षण्याच्च शमयेदग्नि-  
गुल्मे कफानिलौतयोः शमाच्च संघातो गु-  
ल्मस्य विनिवर्तते ॥

अर्थ—लघन, वमन, स्वेदन, घृतपान,  
विरेचन, वस्ति कर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और  
अरिष्ट इनमें किसीका प्रयोग करने से  
भी वह श्लैष्मिक गुल्म शान्त न हो जो  
जड़ पकड़ गया है तो प्रथम फस्त खोल-  
कर फिर शर वा लोह से दग्ध करना उ-  
चित है । अग्नि अपनी उष्णता और ती-  
क्ष्णता से गुल्मरोग में कफ और वादी को  
शान्त करदेती है और इन दोनों के शमन  
होने से गुल्म का गोला नष्ट होजाता है ।

दाहधान्वन्तरीयाणामत्रापिभिषजांवल  
मू॥ क्षारप्रयोगेभिषजांक्षारतन्त्रविदांवल  
लम् ॥ व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्रण्यएवक्रि-  
याक्रमः । सिद्धान्तःप्रवक्ष्यामियोगान्  
गुल्मानिवर्णान् ॥

अर्थ—धन्वन्तरि के मत के अनुसार जो  
अग्नि कर्मादि जानते हैं, वेही दाह कर सकते  
हैं और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका  
प्रयोग कर सकतेहैं । जो गुल्म दो दो दोषों  
से उत्पन्न हैं उनमें मिलीहुई क्रिया कर-  
ना चाहिये ।

अथ हम गुल्मनाशक अनुभूत प्रयोगों का  
वर्णन करते हैं ।

व्यूषणादि घृत ।

व्यूषणादित्रिफलाधान्यविडङ्गाचव्यचित्रकैः  
कल्कीकृतैःघृतंसिद्धंसक्षीरंवातगुल्मनुत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वाय-  
विडंग, चव्य, चीता इन सब को पीसकर  
छगदी घनावै उसको दूध में मिलाकर घृत  
ढालकर पकावै यह घृत वातगुल्म को दूर  
करता है ।

व्यूषणादि घृत की अन्यविधि ।

एतएवचकल्काःस्युःकषायःपञ्चमूलिकः।  
द्विपञ्चमूलिकोवायतद्घृतगुल्मनुत्परम् ॥

अर्थ—ऊपर कही औषधियोंका कल्क  
और पंचमूल वा दशमूलके काथमें घृत  
को सिद्ध करके देवै यह घृत भी गुल्म-  
नाशक है ।

अन्यप्रयोग ॥

पट्टपलंवापितत्सार्पिर्दुर्कराजयक्ष्माणि ।

प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादादिमेनवा ।  
दध्नःश्लेष्मणवाकार्यैघृतंमास्तुगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—राजयक्ष्मामें जो पट्टपल घृत कहा  
है उसे दूध के बदले में प्रसन्ना, मुरा, दा-  
दिमरस वा दही की मलाई के साथ देवै तो  
वातगुल्म शान्त होता है ॥

हिंवादि घृत ।

हिंसुसौवर्चलाजाजीविहृदादिमदीप्यकौ।  
पुष्करव्योपधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः  
शठीवचाजगन्धैलामुरसेश्चाविपाचितम् ।  
शूलानाहहरेर्सापिधनाचानिलगुल्मिनाम्

अर्थ—हींग, सहचलनमक, जीरा, विडल-  
वण, अनार, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, ध-  
नियां, अमलवेत, जवाहार, चीता, कचूर, व-  
च, अजगन्ध, इलायची, सुरसातुलसी इन  
को पीसकर घी ढालकर दहीके साथ पकावै  
यह घृत वातरोगियों के शूल और आनाह  
को दूर करता है ॥

हवुपादि घृत ।

हवुपाव्योपपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः।  
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृत-  
म् ॥ पातुल्लङ्घदधिशीरकोलमूलफदादिमैः  
रसेस्तद्वातगुल्मघ्नंशूलानाहविमोक्षणम् ॥  
योन्यशोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिञ्चरा  
न् । वातहृत्पाश्वशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ।

अर्थ—हाऊवर, त्रिकुटा, छोटा जीरा, च-  
व्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपला-  
मूल, अजवायन इन सब को पीस लेवै और  
विजौरे का रस, दही, दूध, बेरकारस, मूली  
का रस, अनारका रस इन सब को मिलाकर

घृत पकावे यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह,  
धोन्मर्श, ग्रहणी दौष, श्वास, खांसी, अरुचि,  
ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूल सबको नष्ट  
कर देता है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याऽपिचुरध्यधोदादिमाद्विपलंप-  
लम् । धोन्वात्पञ्चघृताच्छुण्ड्याकर्पञ्जी-  
रचतुर्गुणम् ॥ सिद्धमेतैर्वृतंसद्योवातगु-  
ल्मंचिकित्सति ॥ योनिशूलंशिरःशूलम-  
र्शासिविषमज्वरम् ॥

अर्थ—पीपल तीन तोला, अनार आठ  
तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला  
सौं दो तोला और दूध अस्ती तोला इन  
सब को सिद्ध करने से जो घृत तयार होता  
है यह वातगुल्म को तत्काल नष्ट कर देता  
है । इसी घृत के सेवनसे योनिशूल, शिरः-  
शूल, अर्श, विषमज्वर दूर होजाते हैं ।

घृतानामौषधगुणायत्तेपरिकीर्तिताः ।  
तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकपायास्तेचगुल्मि-  
नाम् ॥

अर्थ—घृत सिद्ध करने के निमित्त जो  
औषधों के गुण ऊपर वर्णन किये गये हैं,  
ये ही औषधें चूर्ण, वर्ति और काथ द्वारा  
गुल्म रोगियों को दीजाती हैं ।

वर्तिप्रयोग ।

कोलदादिमधर्माभ्युसुरामण्डाम्लकाञ्चि-  
कः॥शूलानाहनुदःपेयावीजपूरसेनवा॥  
चूर्णानिपातुलंगस्पभावितस्परसेनवा ।  
कुर्याद्वर्त्तिःसगुडिकागुल्मानाहार्तिशान्तये॥

अर्थ—धेरका रस, अनारका रस, इन

को गरमजल, सुरामण्ड, अम्लकाञ्जी वा वि-  
जौरके रसके साथ पान करने से आनाह  
दूर होता है । अथवा विजौरके चूर्ण में वि-  
जौरे के रसकी भावना देकर वर्ती या गोली  
बनाकर सेवन करे तो गुल्म, आनाह और  
अर्श ये रोग शान्त होजातेहैं ॥

हिड्मवादि चूर्ण विधि ।

हिङ्गुत्रिकटुकां पाठां ह्युपामंभयांशटीम् ।  
अजमोदाजगन्धेचतिन्तिदीकाम्लवेतसौ  
दादिमं पुष्करंधान्यमजार्जाचितकंबचाम्  
द्वीक्षारोलवणेद्वेचचव्यंचकत्रयोजयेत् ॥  
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेप्यनत्ययम् ।  
मागभक्तमथवापेयंमधेनोष्णोदकेनवा ॥  
पार्श्वहृद्वास्तिशूलेपुगुल्मेवातकफात्मके ॥  
आनाहेमूत्रकृच्छ्रेयाशूलेचगुदयोनिजे ॥  
ग्रहण्यशोविकारेपुष्टीन्दिपाण्ड्वामयेऽरु-  
चौ । उरोविबन्धेकासेचहिकाश्वासेगल-  
ग्रहे॥भावितंमातुलुङ्गस्पचूर्णमेतद्रसेनवा ।  
बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्ष्णिकाःस्पुस्ततोऽ-  
धिकम् ॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊबेर,  
हरड, शटी, अजमोद, अजगन्ध, इमली,  
अमलवेत, अनार, कूठ, धनिया, कालाजीरा  
चीता, वच, दोनों क्षार, दोनों नमक, और  
चव्य इन सबका चूर्ण कूट लेवे । इस चूर्ण  
को अनुपानके साथ सेवन करे अथवा भो-  
जन करनेसे पहिले मद्य वा उष्णजलके साथ  
लेवे इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, ह-  
तशूल, धरितशूल, वातकफात्मक गुल्म,  
आनाह, मूत्रकृच्छ्र गुदशूल, योनिशूल, ग्रह-

णी विकार, अर्शविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि उरोविबन्ध, खांसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह दूर होजातेहैं । इसी चूर्णको विजौरे के रसमें घोटकर गोलियां बनालेवै ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा भी अधिक गुणकारीहैं ।

वातगुल्म में अन्य प्रयोग ।

मातुलङ्गरसोहिगुदादिमंविडसैन्धवे ।

सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥

अर्थ—विजौरेका रस, हींग, अनार, विडनमक, सेंधानमक इनको सुरामण्डके साथ पान करनेसे वातगुल्म नष्ट होजाताहै ॥

शब्थादिचूर्ण ॥

शटीपुष्करहिंमल्लवेतसक्षारचित्रकान् ॥

धान्यकञ्चयमानीञ्चविडङ्गसैन्धववंचा

म् ॥ सचव्यपिपलीमूलमजगन्धःसदा-

दिमम् ॥ अजाजींचाजमोदाञ्चचूर्णकृ-

त्वाप्रयोजयेत् ॥ रसेनमातुलङ्गस्यमधुयु-

क्तेनवापुनः ॥ भावितंगुडिकांकृत्वासु-

पिष्टांकोलसम्मिताम् । गुल्मप्लीहानमा

नाहंश्वासकासमरोचकम् । हिकाहृद्रोग

मर्शासिबिविधान्शिरसोरुजान् ॥ पाँड

धामयकफोत्क्लेशसर्वजाश्चप्रवाहिकाम्

पार्श्वहृद्रोस्तशूलश्चगुडिकैपाव्यपोहति ॥

अर्थ—शटी, पुष्कर, हींग, अमलवेत

जवाखार, चीता, धनियां, अजवायन, वाय-

विडग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल,

अजगंध, अनार, कालाजीरा अजमोद,

इनका चूर्ण बनाकर सेवनकरै । अथवा

विजौरे के रसकी भावना देकर शहत मि-

लावै और छोटे ढेर की बराबर गोली बनावै

यह गोली गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास,

खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफोत्क्लेश, सब प्रकार के प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृद्शूल, वस्तिशूल रोगों को दूर करती है ।

अन्यप्रयोग ।

नागरार्द्धपलंपिष्टाद्वेपलेल्लुश्चितस्यच ।

तिलस्यैकगुडपलंक्षीरेणोष्णेनवापिवेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—सोठ दो तोले, बिना छिलके के तिल आठतोले, गुड चार तोले इनको गरम दूधके साथ पानकरै तो वातगुल्म, उदावर्त और योनिशूल दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

पिंवैदरण्डकैतैलवारुणीमण्डमिश्रितम् ॥

तदेवैतैलपयसावातगुल्मी पिबेन्नरः ।

श्लेष्मण्यनुवलेपूर्वमतंपित्तानुगोपरम् ॥

अर्थ—श्लेष्मानुबंधी वातगुल्म में वारुणी मण्डमिश्रित अरंडका तेल पान करै और जो पित्तानुबन्ध होवै तो दूधके साथ अरंड का तेल पान करै ।

रहसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलघुनस्यचतुष्पलम्

क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषञ्चनापिवेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयृद्ध्रसींचिपमञ्जरम् ।

हृद्रोगांचिद्वर्धशोषंसाधयत्याशुतत्पयः ॥

अर्थ—सिद्ध करके सुगाये हुए रहसन चार पललेकर दूध और उससे अठगुनाजल मिलाकर पकावै जब पानी जलजाय और दूध शेष रहजाय तब इसको छानकर पीवै तो वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषम

ज्वर, हृद्रोग, विदग्ध, शोष, ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

तैलमसन्नागोमूत्रमारनालंयवाग्रजः ।  
गुल्मजठरमानाहपीतमेकत्रसाधयेत् ॥

अर्थ—तेल, बारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी जवाखार इनको सिद्ध करके पीवै तो गुल्म रोग, जठररोग और आनाह दूर होजाते हैं,

शिलाजीन का प्रयोग ॥

पञ्चमूलकपायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।  
पिवेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥

अर्थ—पञ्चमूल के काथ और दूध के साथ शिलाजीन का सेवन करै तो इस प्रयोग से वातगुल्म नष्ट होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग

वाय्व्यूपेणपिप्पल्यामूलकानारसेनवा ।  
भुक्त्वास्निग्धमुदावर्ताद्वातगुल्मादिमुच्यते

अर्थ—पीपल के काथ वा मूली के रसके साथ खैरटी का सेवन करै तो उदावर्त और वात गुल्मादि रोग दूर होजाते हैं ॥

गुल्ममें वस्तिविधान ॥

शूलानाहयिष्यन्धर्तस्वेदयेद्वातगुल्मिनम् ॥  
स्वेदैःस्वेदविधावुक्तैर्नाडीमस्तरश्चरैः ॥

वस्तिकर्मपरंविधातुगुल्मघ्नतद्विमारुतम् ।  
स्वेस्थानेप्रथमद्वित्वासत्रोगुल्ममपोहति ।  
तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरूहैःसानुवास-  
नैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तक-  
फात्मकाः ॥ गुल्मघ्नविधिविधादृष्टाःसिद्धाः

सिद्धिपुस्तयः ॥

अर्थ—वातगुल्मरोगी यदि शूल, आनाह और विषय से पीडित होतो उस स्वेदा-

ध्याय में कहीहुई नाडी, प्रस्तर और शंकर, स्वेद द्वारा स्वेदन करै । वस्तिकर्म इस वातजगुल्म में बहुत श्रेष्ठ है, यह वायु को उसके निजस्थानमें जीतकर गुल्म को दूर कर देताहै । इसलिये बारवार निरूहण और अनुवासन वस्तिर्माका प्रयोग करने से वातज, पित्तज और कफजगुल्म शान्त होजातेहैं सिद्धिस्थानमें अनेक प्रकार की गुल्मनाशक अनुभूत वस्तिर्मा वर्णनकी गईहै ।

गुल्मपर तैलाधिधान ॥

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके ॥  
तानिमारुतगुल्मेपुपानाभ्यङ्गानुवासनैः ।

प्रयुक्तान्याशुसिद्धितैलैर्बलिलजिस्व-  
रम् ॥

अर्थ—वातरोगाध्याय में सब प्रकार के गुल्मनाशकतैल वर्णन किये गये हैं । वात-गुल्म में पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा इन तैलों का प्रयोग करने में वात-गुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है । ये तैल विशेष करके वातनाशक होते हैं ॥

गुल्मपर घृतविधान ॥

नीलिनीचूर्णसंयुक्तंपूर्वोक्तंघृतमेववा ।  
समलायमदेयंस्याच्छोधिंनवातगुल्मिने  
नीलिनीत्रिष्टुतादन्तोपश्याकाम्पिल्यकैः  
सहशोधनार्थंघृतदेयंसविडसारनागरम्

अर्थ....उस वातगुल्मरोगी को जो मल-युक्त होताहै नीलिनीका चूर्ण मिलाहुआ घृत अथवा पूर्वोक्तघृत शोधन के निमित्त देना चाहिये ॥

नीलिनी, निसोध, दन्ती, हरद, कर्वाला,

बिडनमक, जवाहार और सोंठ इनकेसाथ  
सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधनके निमित्तदेवै॥

नीलिन्यादि घृत ॥

नीलिनीत्रिवृतांस्नांवालाकटुकरोहिणी  
पंचद्विद्विज्याघ्रीञ्चपलिकानिजला-  
ढके ॥ तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थविषाच-  
येत् । दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेन  
च ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रि-  
तम् । जीर्णसम्यग्विरिक्तञ्चभोजयेद्र-  
संभोजनम् ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपा-  
ण्ड्वामयज्वरान् । श्वित्रंप्लीहान्मुन्मादं  
घृतमेतद्रथपोहति ॥

अर्थ—नीलिनी, निसोध, रास्ना, खरैटी,  
कटकी, वायविडंग, कटेरी, इन सबको ए-  
कएक पललेव और एक आढक जल में  
इन्हे पकावै जब चौथाई जलरहजाय तब इ-  
समें एकप्रस्थ दही और चार तोले सेड्ड  
का दूध मिलाकर एकप्रस्थ घी पकावै ॥  
इस घृतमें से एकपल घृत यवागूमण्डमें मि-  
लाकर रोगीको देवै । जब औषध पचजाय  
और रोगीको अच्छीतरह विरेचन होजाय तब  
मांसरसका भोजन करावै । यह घृत गुल्म,  
कोष्ठ, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर,  
श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा, और उन्माद रोगोंको शा-  
न्त करता है ।

वातगुल्ममें पथ्यादि विधि ॥  
कुक्कुटशमयूराश्चत्तिरिक्कौञ्चवर्त्तकाः ।  
शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिपग्जितम्  
हितमुष्णद्रवस्निग्धभोजनंवातगुल्मनाम् ।  
समण्डवारुणीपानंपर्कवाधान्यर्कजैलम् ॥

मन्देऽनौवर्द्धतेगुल्मोदक्षिचाग्नौप्रशाम्य-  
ति । तस्मादन्नातिसैहिल्यंकुर्यान्नातिवि-  
लंघितम् ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्नेहस्वेदोप-  
पादिते । याक्रियाक्रियतेसिद्धिसंसायाति  
नविरुत्तेते ॥

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, कौच, बटेर,  
शालीचावल, शराव, और घृत ये सब वात-  
गुल्ममें हितहै । इसरोगमें उष्ण, पतला  
और स्निग्ध भोजन हितहै । मण्डयुक्त मं-  
दिरा वा धनियां ढालकर औटाया हुआ  
जलभी हितहै । अग्निके मन्द होनेपर गुल्म  
बढताहै और प्रदीप्त होनेपर शान्त होताहै,  
इसलिये न पेटभरकर खानाही चाहिये न  
लंघनही करना चाहिये । गुल्मरोगोंमें प्रथम  
ही स्नेहन-स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकी  
जाती है उससे रोग जाताहै और जो क्रिया  
रुग्ण व्यक्तिकी कीजाताहै वह निष्फलहोती है

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ॥

भिषगात्ययिकम्बुध्वापित्तगुल्ममुपाचरे-  
त् । विरेचानेकसिद्धेनपयसासर्पिपापिवा

अर्थ—पित्त गुल्मको आत्ययिक समझकर  
चिकित्सा करना चाहिये इस रोगमें विरेचन  
कर्त्ता द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत  
वा दूध बहुत हितकारी है ॥

रोहिण्यादि घृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफल्यात्वचः ।  
कार्पिकात्रायमाणाचपटोलात्रितृतापत्ने ॥  
द्विपलञ्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणैश्मसि  
घृताच्छेषघृतसमंसर्पिषश्चतुष्पलम् ॥  
पिबेत्संमूर्च्छितंतेनगुल्मःशाम्यतिपैत्तिक  
ज्वरस्तृष्णाचशूलचभ्रममूर्च्छाश्चिन्त्या

अर्थ—कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलाका छिलका, और त्रायमाण्णा ये सब एक एक पललेवै, परबल और निशोध दो दो पल ले दो पल मसूर इन सबको अठगुने जल में औटावै, जब घृत के समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चारपल घृतको पकावै इस घृतको सेवन करने से पित्तिक गुल्म, ज्वर तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजाते हैं ।

त्रायमाणायघृत ।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायामागाचतुष्पलम् । पञ्चभागस्थितं पूतकल्कं संयोज्य कार्ष्णिकैः ॥ रोहिणीकटुकामुस्तेत्रायमाणदुरालभा । कलैस्तामलकीवरीराजी वन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ रसस्यायलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टाष्टादस्वासम्पग्विपाचयेत् ॥ पित्तरक्तभङ्गुल्मवीसर्पपित्तिकज्वरम् । हृद्रोगं कालाङ्गुष्ठहृन्पादेतद्घृतोत्तमम् ॥

अर्थ—चारपल त्रायमाणको दसगुने जलमें औटावै, जब पाँचवां भाग जलका रहजाय तब उसे उतारकर छानले फिर इसमें कुटकी, मोथा, त्रायमाण्णा, जवासा, भूय-आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पल, इनको पिसकर उसमें डालदे और आंवले का रस आठ पल, मिलाकर अच्छी तरहसे पकावै । इस घृतके सेवन करने से पित्तिक गुल्म, रक्तजगुल्म विसर्प, पित्तिक ज्वर हृद्दोग कामला, फोड ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

आंवलकादि घृत ।

रसेनामलकेभूषांघृतपादं विपाचयेत् । पथ्यापादम्पिवेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥

अर्थ—ईख और आंवलेके रससे चौथाई घी और घी से चौथाई हरडका चूरण इनको मिलाकर औटावै । इस घृतका सेवन करनेसे पित्तिकगुल्म जाता रहता है ।

द्राक्षादि घृत

द्राक्षांमधुकंखर्जूरविदारीसशतावरीम् । परुषकाणित्रिफलांसाधयेत्पलसंमिताम् ॥ जलाढकेपादशेषेरसमामलकस्यच । घृतमिश्ररसक्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ साधयेत्तद्घृतं सिद्धं शकरीसाक्षोद्रपादिकम् ॥ प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥

अर्थ—दाख, महुआ, खिजूर, विदारीकन्द, सितावर, फालसे और त्रिफला ये सब एक एक पल लेवै और एक आठक जलमें भरकर अग्निपर रखदे जब चौथाई शेष रह जाय तब उतार कर छानले । फिर इसमें आंवले का रस, घी, ईखकारस, दूध और घृत से चौथाई हरडका कल्क डालकर सबका पाक करले । जब घी तयार होजाय तब उस में चौथाई चीनी और शहत डालकर सेवन करै तौ पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं ।

वासाघृत ।

वृषंसमूलमापोध्यपचेदष्टगुणेजले । शेषेऽष्टभागेतस्यैवपुष्पकल्कं प्रदापयेत् ॥ तेन सिद्धं घृतं शीतं सच्चोद्विपित्तगुल्मनुत् । रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्दोगनाशनम् ॥

अर्थ—अइसाको जड समेत कूटकर अ-  
ठंगुने जलमें काथ करै जब आठवां भाग जल  
का रहजाय तब उसमें उसीके फूलों का कल्क  
डाँढ और इसमें घी डालकर पकावै । फिर  
ठंडा होने पर शहत मिलाकर इसका सेवन  
करै तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त, अजर, श्वास,  
खांसी और हृदयरोग सब शान्त होजातेहैं ।

दूसरा त्रायमाण घृत ।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम्  
अष्टभागस्थितं पूतकोष्णक्षीरसमापिवेत् ॥  
पिवेदुपरितस्योष्णक्षीरमेव यथाचलम् ।  
तेन निहृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥

अर्थ—दो पल त्रायमाण को दो प्रस्थ  
जलमें औटावै, जब अष्टमभाग शेष रह  
जाय तब छानकर बराबरका दूध मिला  
कर कुछ गरम गरम का पान करै । फिर  
यथाशक्ति ऊपरसे गरम दूध पीवै, ऐसा  
करने से दोष दूर होकर पित्तज गुल्म शा-  
न्त होजाता है ।

पैत्तिक गुल्ममें अन्य उपचार ।

द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिकं सुडं पिवेत् । लि-  
ङ्गात्कम्पित्यकं वापि विरेकार्थं मधुद्रवम् ॥ शू-  
लप्रशमनोऽभ्यङ्गः सर्पिपापित्तगुल्मनाम् ।  
चन्दनाद्येन तैलेन तैलेन मधुकस्य वा । ये  
च पित्तज्वरार्तानां सत्तिकाः क्षीरवस्तयः ।  
हितास्ते पित्तगुल्मिभ्यो वक्ष्यन्ते ये च सि-  
द्धिषु ॥ शालयोजाङ्गलमांसद्रवार्जापय-  
सीघृतम् । खर्जूरामलकट्राक्षादादिष्वम-  
परुषकम् ॥ आहारार्थं प्रयाक्तं च्यवाना-  
र्थं सलिलं शृतम् ॥ बलाविदारिगन्धाः ।

पित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ आमाम्बये  
पित्तगुल्मे सामेवाकफवातिके । यवा-  
ग्नाभिः खट्वैर्यूपैः सन्धुक्ष्योऽग्निर्विलङ्घिते ।  
शममकोपौ दौ पाणां सर्वेषामग्निं श्रितौ ।  
तस्मादग्निं सदारक्ष्येन्निदानानि च वर्जयेत् ॥

अर्थ—पैत्तिकगुल्ममें विरेचनके लिये  
किसमिस, हरड और गुडका काथ पीवै,  
अथवा कर्वालमें शहत डालकर चाटे । पि-  
त्तगुल्म रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतका  
अभ्यंग, तथा चन्दनाद्य तैल वा सु-  
लहटीके तैलका अभ्यंग करै । पित्तज्वरार्त  
रोगियोंके लिये जो तिक्त द्रव्योंकी क्षीर  
वस्ति, तथा वे वस्तिपांजो सिद्धस्थान में  
वर्णन की जायगी ये सब पित्तगुल्ममें हित-  
कारी होती हैं । शालीचावल, जांगल पशु-  
ओंका मांस, गोंवकरी का दूध, घी, मिर्च,  
आंवला, दाख, अनार, फालसा, इनका  
पष्य देवै और पीनेके लिये औटायाहुआ  
जलदेवै । खरैटी और विदारिगन्धादि म-  
नोक्त औषधियों द्वारा पित्त गुल्मकी धि-  
क्विसा काजगती है । आमाम्बित पित्तगुल्म  
में और आमाम्बित कफज गुल्ममें दधन  
कारक यवागु और मधुयुगों का मदन पक  
के अग्निदो प्रदीप करै । मधुयुग दोषों का  
अग्नि वा प्रकोप अग्नि के आश्रित हैं ।  
अग्नि अग्निदो समानताके लिये सदा प्रयत्न  
करना चाहिये और तिन कारणों से रोग  
उत्पन्न हुआ उनका मदा त्यागदेना चाहिये ।  
कफगुल्मका निश्चितसामग्री ॥  
वपनाशयवमनमदधानकफगुल्मनाशिनः



अथस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते। प-  
रिचेष्ट्यप्रदीप्तास्तुबल्वजानयवाकुशान्।  
भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मंघटमुखंक्षिपेत् ॥  
सङ्गृहीतांत्यदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत्।  
वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्धाद्गुल्मप्रमाण  
वित् ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभमपी  
दयेत्। मृद्रीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्रहृदयं  
स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को  
वमन दें ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से  
जब गुल्म शिथिल पड़जाय तब गुल्म स्था-  
नपर यत्न छपेट दें, फिर एक घडे में य-  
त्नजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म  
स्थान में उस घडेका मुख लगादेवै, जब  
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले  
और बल को हटाकर गुल्मका फैलाव वा  
विस्तार देखकर उसका भेदन करें, तथा  
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-  
सी एक शास्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन  
करें, परन्तु आँतों वा हृदय पर किसी प्र-  
कार का आघात न होने पावे।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैःपरिलिप्य च।  
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भि-  
षक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों  
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम  
लौहे का पात्र फेर कर स्वेदन करें ॥

दशमूली घृत।

सन्ध्याषट्पारलवणदशमूलीभृतंतृप्तम्।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसर्हिगुविट्ठादिभ्यम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-  
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस  
घृतको हिंग, विडनमक और अनारके रस  
के साथ सेवन करें तो कफगुल्म शांघही  
जाता रहताहै।

भस्मातकादि घृत।

भस्मातकानांदिपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम्।  
साध्यविदारीगन्धाद्यमापोध्यसलिलाद-  
कैः ॥ पादशेपेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं  
वचाम्। विटङ्गसन्धवंहिङ्गुयावशूकविटं  
शटीम् ॥ चित्रकंमधुकरास्नाम्पिष्ट्वाकर्प-  
समीभिषक्। प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्र-  
स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भस्मातकघृतंकफ-  
गुल्महरंपरम्। ग्रीहपाण्ड्वामयश्वासग्रह-  
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,  
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,  
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर  
एक आठक जलमें ओटावै, जब चौथाई  
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच, वायविडंग, सेंधानमक, हिंग, जवाखार,  
विडनमक, शटी, चीता, मुलहठी, रास्ना,  
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक  
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै।  
यह भस्मातकघृत कफगुल्मके दूर करने में  
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग  
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै  
पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचन्यचित्रकनागरैः।

पालिकैः सयवक्षारैः घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥  
क्षीरप्रस्थञ्च तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं घृहीकसाज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवासार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, घृहीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतां त्रिफलां दन्तीं दशमूलं पलोन्मितम्  
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागस्थितं रसम् ॥  
सर्पिरेरण्डजं तैलं क्षीरञ्चैकत्र साधयेत् ।  
ससिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत्  
कफवातविवन्धेषुकुष्ठघ्नीहोदरेषु च । प्रयो  
ज्यो मिश्रकः स्नेहो योनिशूलेषु चाधिकम् ॥

अर्थ—निसोय, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होता है, इसको शहत मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, विग्रन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

यदुक्तं वातगुल्मघ्नं संसननीलिनीघृतम् ।  
द्विगुणं तद्विरेकार्यं मयोज्यं कफगुल्मिनाम्  
सुधाक्षीरद्रवे चूर्णं त्रिवृतायाः सुभाविताम् ।  
कार्पिकं मधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-  
च्यते ॥

अर्थ—वातगुल्ममें जो वैरेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गया है उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डुडके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चाटे सौ उससे अच्छीतरह विरेचन होजाता है ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणे विपक्तव्यां विंशतिः पञ्चचाभयाः  
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥  
अष्टभागस्थितं तत्स्वरसंयुतमधि क्षिपेत् ॥  
दन्तीसमं गुडं पूतं क्षिपेत् तत्राभयाश्च ताः ॥  
तैलार्धकुडवञ्चैव त्रिवृतायाश्च तु पलम् ।  
चूर्णितं पलमेकञ्चापि पलीविश्वभेषजम् ।  
तत्साध्यं लेहवच्छीते तस्मिंस्तैलसमं मधु ।  
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्तवगेलापत्रकेशरान् ॥  
ततो लेहपलं लीद्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकी-  
म् । सुखं विरिच्य तोस्निग्धो दोषप्रस्थ-  
मनामयः गुल्मं श्वयधुमशीसिपाण्डुरोगम-  
रोचकम् ॥ हृद्रोगं ग्रहणीदोषं कफमलां वि-  
पमज्वरम् । कुष्ठं प्लीहानमानाहमेतान् घ्न-  
न्त्युपसेवितः । निरत्ययः क्रमश्चास्याद्र-  
वो मांसरसोदनः ॥

अर्थ...., पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पचास पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसव हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोय चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हईसी

गन्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागतो प-  
रिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्बजानथवाकुशान्।  
मिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मंघट्टयुखंक्षिपेत् ॥  
सङ्गृहीतांयदागुल्मस्तदाघट्टयथोदरेत्।  
वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्ध्याद्गुल्ममभाष-  
यित् ॥ विमार्गाजपदादशैर्यथालाभं प्रपी-  
येत्। मृद्रीयाद्गुल्ममेवैकैकं त्वन्त्रहृदयं  
स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को  
वमन दें ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से  
जब गुल्म शिथिल पड़जाय तब गुल्म स्था-  
नपर बल्ल लपेट दें, फिर एक घड़े में व-  
ल्बजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म  
स्थान में उस घड़ेका मुख लगादेवै, जब  
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घड़े को उठाले  
और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव वा  
विस्तार देखकर उसका भेदन करें, तथा  
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-  
सी एक दाख से केवल गुल्मही का प्रपीडन  
करें, परन्तु आँतों वा हृदय पर किसी प्र-  
कार का आघात न होने पावै।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीवीजसर्पपैःपरिलिप्यच ।  
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भि-  
षक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों  
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम  
लोहे का पात्र फेर कर स्वेदन करें ॥

दशमूली घृत।

सन्धोपक्षारलवणंदशमूलीभृतघृतम् ।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसर्हिगुविट्टदाडिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-  
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस  
घृतको हिंग, विडनमक और अनारके रस  
के साथ सेवन करें तब कफगुल्म शीघ्रही  
जाता रहताहै।

भल्लातकादि घृत।

भल्लातकानां द्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम् ।  
साध्यंविदारीगन्धाद्यमापोध्यसलिलाढ-  
कैः ॥ पादशेभेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं  
वचाम् । विडङ्गसन्धवंर्हिगुयावशूकंविडं  
शटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्प-  
समंभिषक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतम-  
स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ-  
गुल्महरं परम् । घ्रीहृषाणह्वामयश्वासग्रह-  
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,  
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,  
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर  
एक आढक जलमें ओटावै, जब चौथाई  
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच,  
यायविडंग, सेंधानमक, हिंग, जवाखार,  
बिडनमक, शटी, चीता, मुलहठी, रास्ना,  
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक  
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै।  
यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में  
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग  
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै  
पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

पालकैःसयवहारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥  
क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मकफात्मकम् ।  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंघृष्टिकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाहार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, घृष्टिका, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतात्रिफलादन्तीदशमूलपलोन्मितम्  
जलेचतुर्गुणपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥  
सर्पिरेरेण्डजंतैलक्षीरश्चैकत्रसाधयेत् ।  
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत्  
कफवातविबन्धेषुकुष्ठघ्नीहोदरेषुच । प्रयो  
ज्येमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेषुचाधिकम् ॥

अर्थ—निसोय, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होताहै, इसको शहत मिश्राकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, बिबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

पटुक्तवातगुल्मघ्नंघृतसंनजीलिनीघृतम् ।  
द्विगुणंतद्विरेकार्यम्प्रयोज्यंकफगुल्मिनाम्  
सुधाक्षीरद्रवचूर्णत्रिवृतायाःसुभाचितम् ।  
कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-  
च्यते ॥

अर्थ—यातगुल्ममें जो रेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डहके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्प चाटे सों उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिपञ्चचाभयाः  
दन्त्याःपलानितायन्तिचित्रकस्यतथैवच ॥  
अष्टभागस्थितंश्चरसंपूतमधिक्षिपेत् ॥  
दन्तीसमंगुडंपूतंभिषेत्त्राभयाश्चताः ॥  
तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।  
चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्लीविश्वभेषजम् ।  
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।  
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥  
ततोलेहपलंलीद्वाजग्ध्वाचैकांहरितकी-  
म् । सुखंविरिच्यतोस्निग्धोदोषप्रस्थ  
मनामयःगुल्मंभव्यधुमशीसिपाण्डुरोगम-  
रोचकम् ॥ हृद्रोगंग्रहणीदोषंफोमलांवि-  
पमज्वरम् । कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्न-  
न्त्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्र-  
चोमांसरसोदनः ॥

अर्थ...., पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पच्चीस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोय चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हईसी

होजाय तब ठंडी होनेपर आधाकुडब शहत,  
 दालचीनी एक पल, इलायची एक पल,  
 तेजपात एक पल और केसर एक पल इनको  
 मिला देवै ॥ प्रतिदिन एक पल इस चटनी  
 को चाटकर ऊपरसे एक हरड़ खावे  
 तो सुखपूर्वक एक ग्रंथ मल निकल जावे-  
 गा तथा गुल्म, शोथ, अर्श, पण्डुरोग, अरुचि,  
 हृद्रोग, ग्रहणी दोष, कामला, विषम ज्वर, कुष्ठ  
 प्रीहा, आनाह ये सब रोग इसके सेवन से  
 दूर होजातेहैं । इसके सेवनमें मांसरस और  
 मातका भोजन करे ।

कफगुल्म में वस्तिप्रयोग ।

सिद्धाः सिद्धिपुवक्ष्यन्ते निरुहाफगुल्मि-  
 नाम् ।

अर्थ—कफगुल्म रोगियोंके लिये सिद्ध  
 स्थानमें अनुभव की हुई निरुहण वस्तियां  
 लिखी गईहैं ।

कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग ।

अरिष्टयोगाः सिद्धाश्च ग्रहण्यर्शचिकित्सि-  
 तेषां चूर्णगुटिकायाश्च विहिता वातगुल्मि-  
 नाम् । द्विगुणक्षारहिंमल्लवेतसांस्ताः  
 कफे मताः ॥ य एव ग्रहणीदोषेक्षारास्ते कफ-  
 गुल्मिनाम् । सिद्धानिरत्ययाः शस्तादाह-  
 स्त्वंन्ते प्रशस्यते ॥

अर्थ—ग्रहणी चिकित्सित अध्यायमें जो  
 अनुभव किये हुए अरिष्ट तथा वात गुल्मना-  
 शक जो चूर्ण और गोळियां वर्णनकी गई  
 हैं वे सब कफगुल्ममें हितहैं परन्तु उन चू-  
 र्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत  
 डाला जाताहै उससे दूना कफगुल्ममें डालना

उचितहै । जो क्षार ग्रहणी दोषमें वर्णन कि-  
 ये गये हैं वे कफगुल्ममें भी हितहैं । अन्तमें  
 कफगुल्म को दंग करना भी हितहै ।

पथ्यादि वर्णन ।

मपुराणानिधान्यानि जातुलामृगपक्षिणः  
 कौलत्योमुद्रयूपश्चापि पल्यानागरस्य च ॥  
 शुष्कमूलकयूपश्च विल्वस्यवरुणस्य च ।  
 चिरिविल्वांकुराणाञ्च यवान्याः चित्रक-  
 स्य च ॥ बीजपूरकहिंमल्लवेतसक्षार-  
 दादिभिः । तत्रेण तैलसर्पिर्भ्यां व्यञ्जना-  
 न्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—बहुत पुराना धान्य, जांगल पशु-  
 पक्षियों का मांस, कुलधीका यूप, मृगका  
 यूप, पीपल, सोंठ और सूखीमूलीका यूप, बेल,  
 शरना, कंजा, अजवायन, चीता, इनको  
 ढाल कर तयार किया हुआ यूप, अथवा  
 विजौरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार  
 मठा, तेल, घी इनके साथ अनेक प्रकार  
 के पदार्थ बना कर सेवन करे ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितं तोयपुराणं वारुणीरं समु-  
 कफगुल्मीपि वेत्काले जीर्णमाध्वीकमेव वा  
 यवानीचूर्णितं तन्त्रां विदेन लवणीकृतम् ।  
 पिबेत्सन्दीपनं वातकफमूत्रानुलोमनम् ॥

अर्थ—पञ्चमूलका काथ, पुराना वारुणी  
 मद वा माध्वीकमदका कफगुल्ममें पान करना  
 चाहिये । अजवायन और नमकको पीस कर  
 मटेमें मिलाकर पीनेसे अग्निसन्दीपन होतीहै,  
 वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण ।

सञ्चितः क्रमशोगुल्मो महावास्तु परिग्रहः ॥

कृतनूलःशिरानद्ध्योदाकूर्मश्चोन्नतः ।  
 दौर्बल्यारुचिहृष्टासकासवम्परतिज्वरैः ।  
 तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिद्धयति  
 गृहीत्वासज्वरश्वासचम्यतीसारपीडितम् ।  
 हृन्नाभिदस्तपादेपुशोकःकर्पातिगुल्मिनम् ॥

अर्थ—जो गुल्म धीरे धीरे बढ़कर बहुत  
 धीचमें फैल जाताहै जो जड़ पकड़कर नसों  
 में स्थित होकर कछुएकी पीठ की तरह  
 ऊंचा होजाताहै तथा जिसमें दुर्बलता,  
 अरुचि, हृष्टास, खांसी, उबकाई अरति,  
 ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय ये साथ  
 होतेहैं वह अच्छा नहीं होताहै ॥

जिस गुल्म रोगमें ज्वर, श्वास, वमन और  
 अतीसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और  
 पांवमें शोक होताहै वह रोगी मरजाताहै ।

रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम ।  
 रौधिरस्पतुगुल्मस्पग्मर्भकालव्यतिक्रमे ।  
 स्निग्धस्विन्नशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्  
 पलाशक्षारपात्रेद्वेद्वेपात्रेतैलसर्पिपो । गुल्म  
 शैथिल्यजननीपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ।  
 प्रभिद्येतनयधेवंदद्याद्योनिविरेचनम् ॥  
 क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः । ता-  
 भ्यांवाभावितान्दद्याद्योनाफटुकमत्स्य-  
 कान् । वराहमत्स्यपित्ताभ्यान्नक्रकान्वा  
 सुभावितान् ॥ अवोहरैश्वोर्ध्वहरैर्भावि-  
 तान्वासमाप्तिकान् । किण्वंवासगुडक्षारं  
 दद्याद्योनिविशोधनम् ॥

अर्थ—रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय  
 अर्थात् दसवां महीना व्यतीत होजाय तब  
 स्नेहन स्वेदनकर्म करने के पश्चात् स्नेह  
 विरेचन देवै ।

ढाकके खारके दोपात्र, और एक एक  
 पात्र घी और तेल इन सबको मिलाकर  
 पाककरै फिर ऐसी मात्रा रोगीको देवै कि  
 जिससे गुल्म शिथिलपड़जाय । यदि  
 ऐसा करनेपरभी गुल्म भेदको प्राप्त न हो  
 तो योनिविरेचनकर्त्ता द्रव्य योनिमें मार्गसे  
 देवै । क्षार और तिलकल्का, अथवा  
 सेडुंडके दूधकी भावना दियाहुआ तिलक-  
 लक, योनिमें रक्खै । अथवा क्षार  
 और सेडुंडके दूधकी भावना दीहुई कटुरस-  
 युक्त मछली योनिमें प्रवेश करै अथवा  
 सूअरके और मछली के पित्तकी भावना  
 नक्रमांसको देकर अथवा विरेचनकारक औ-  
 र वमनकारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ  
 नक्रमांस शहत मिलाकर अथवा किण्व, गुड  
 और क्षार मिलाकर योनिमें भीतर रक्खै,  
 इन के रखनेसे स्राव होता है ॥

रक्तगुल्मके अन्यउपचार ॥

रक्तापित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिषा । लशु-  
 नंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैमदापयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करने वाले  
 क्षारको शहत और घीके साथ चाटे । अ-  
 थवा लहसन, तीक्ष्णमदिरा और मछली खा-  
 ने को देवै ॥

अदृश्यमान रुधिरमें वस्ति ॥

वस्तिंक्षारगोमूत्रंसक्षारंदाशमूलिकम् ।  
 अदृश्यमानेरुधिरं दद्याद्गुल्मभेदनम् ॥

अर्थ—जो रुधिर न निकलता होतो  
 उसके भेदनके लिये क्षार और गोमूत्र की  
 अथवा क्षार और दशमूलके ववाथकी वस्ति देवै ।

प्रवर्त्तमान रुधिरं उपचार ।  
 प्रवर्त्तमानेरुधिरं दद्यान्मांसं सरसोदनम् ।  
 घृततैलेन चाभ्यर्क्ष्यान्नाथैरुणीसुराम् ॥  
 रुधिरं ऽतिप्रवृत्तेतु रक्तपित्तहराः क्रियाः ।  
 कार्या वात रूगात्तयाः सर्वा वातहराः पुनः ।  
 घृततैलावसेकांश्च तित्तिरिश्च रणाशुधान् ।  
 सुरासमण्डापूर्वञ्च पानमम्लस्य सर्पिषः ॥  
 प्रयोजयेदुत्तरं वा जीवनीये स सर्पिषा ।

अर्थ—जो रुधिर जारी होतो मांसरस और भात खानेको देवे, घी तेलकी मालिश करावे और नवीन मद्यपानेको देवे । रक्तके क्षयन्त प्रवृत्त होनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्साकरै और जो वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वायुनाशिनी क्रिया करै । इन रोगों में घृत, तैल, रक्तावसेचन, तीतर और सुरोंकामांस, मण्डयुक्तसुरा, अम्लयुक्त घृतपान हितकारी होतेहैं । इसमें जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धकियेहुये घृत की उत्तर वस्ति भी दीजाती है ।

स्नेहः स्वेदः सर्पिर्वस्तिश्चूर्णानि वृंहणं  
 गुडिकाः । वमनविरेचकौमोक्षः कफजस्य-  
 चवातगुल्मवताम् ॥

अर्थ—कफज और वातज गुल्म रोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, घृत, वस्ति, चूर्ण, वृंहण, गोली, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण आदि प्रयोग करै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

सर्पिःसरित्तसिद्धंसीरंमसंसनन्निरुहंश्च  
 रक्तस्यचावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः

उपनाहनंसंशस्रपकस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य  
 संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्यगुल्मस्य ।  
 स्नेहःस्वेदोभेदोलंघनमुल्लेखनविरेकाश्च  
 सर्पिर्वस्तिगुडिकाःचूर्णमरिष्टाश्चसक्षाराः  
 गुल्मस्यान्तेदाहःकफजस्याग्रेपनीतरक्त-  
 स्य ॥ गुल्मस्यरौधिरस्यक्रियाक्रमः स्त्री  
 भवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतुर्नाव-  
 र्जनयथास्वञ्च ॥ नित्यश्चाग्रेसमाधिः  
 स्निग्धस्यचसर्वकर्माणि । हेतुलिङ्गसिद्धिः  
 क्रियाक्रमःसाध्यतानुयोगाश्च ॥ गुल्म-  
 चिकित्सितसंग्रहपृतावानग्रिवेशस्य ॥

अर्थ—अग्रिवेशके संग्रहित इस गुल्मचिकित्सिताध्यायमें गुल्मनाशकघृत, तित्त औपधियोंसे सिद्ध कियेहुए दूध, विरेचन, निरुहण रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्मके उपनाहन, पकगुल्मका शस्त्रसे भेदन, अन्तःभिन्न की चिकित्सा संशोधन और संशमन कफगुल्मके स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गोली चूर्ण, अरिष्ट, क्षार तथा रक्त निकालकर दाह ये वर्णन किये गयेहैं । तदनन्तर छि- योंके होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, निदानवर्जन(जिनकारणोंसे रोग होताहै उनका त्याग) जठराग्निकी रक्षा, स्नेहनकर्म, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्सा, क्रम साध्यता और अनुयोग ये सब बातें भी वर्णन की गई हैं ॥

इतिश्री.भाषाटीकान्वितायां अग्रिवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-

स्तितस्थाने गुल्मचिकित्सितनाम

पञ्चमोऽध्यायः ॥

—०(०)०—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवानात्रेय बोले कि अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥

निर्मोहमानानुशयोनिराशः पुनर्यसुर्त्तानत पोविशालः । कालेऽग्निवेशाय सहेतुलिङ्गा सुवाच मेहानुशमनञ्च तेषाम् ॥

अर्थ—मोह, मान, रागद्वेष और आशा से रहित, ज्ञाननिष्ठ और महातपस्वी पुनर्यसुने उचितकालमें प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय अग्निवेशसे कहे ॥

प्रमेहका निदान ॥

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदका

नूपरसाः पर्यासि । नवान्नपानं गुडवैकृत

ञ्च प्रमेहहेतुः कफकृचसर्वम् ॥

अर्थ.... आस्यासुख ( जो बहुत बैठा रहता है ), स्वप्नसुख ( जिसको बहुत सोनेमें सुख होता है ), जो दही, तथा ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियोंका मांस बहुत खाता है, जो दूध बहुत पीता है जो नये अन्न पानका सेवन करता है, जो गुडके वनेहुए पदार्थोंको खाता है तथा जो और सब प्रकार के कफकारी पदार्थोंको सेवन करता रहता है उसके प्रमेहरोग होता है ।

कफादि प्रमेहकी सम्प्राप्ति ॥

मेदश्चांसाञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफो वस्ति गतं प्रदप्याकरोति मेहमसमुदीर्णमुष्णं स्तान्येव पित्तं परिदप्यभूयः ॥ क्षीणे पुदोपे च वक्रप्यवस्ताधातुन् प्रमेहाननिलः करोति ॥ दोषो हि वस्तौ समुपेत्य मूर्ध्वसन्दप्यमेहान्

जनयेद्यथास्वम् ॥

अर्थ—वस्ति अर्थात् मूत्रस्थानमें प्राप्त हुए मेद, मांस और शरीरके क्लेदको कफ दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि जब कफ उक्त तीनों को दूषित करता हुआ वस्तिस्थानमें पहुँचता है तब कफज प्रमेह होते हैं, इसी तरह उष्णपदार्थों के सेवनसे कुपित हुआ पित्त मेद मांसादि को दूषित करके जब वस्ति स्थानमें ले जाता है तब पित्तज प्रमेह होते हैं । और लघनादि द्वारा कफ पित्त मलमूत्रादि दोषोंके क्षीण होनेपर वायु प्रकुपित होकर धातुओंको वस्ति स्थानमें खींच लेजाती है इससे वातज प्रमेह उत्पन्न होते हैं ॥ दोषही वस्तिमें पहुँचकर मूत्र को दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है ।

प्रमेहों की संख्या ।

साध्याः कफोत्थादश पित्तजाः पड्याप्या नसाध्याः पवनाश्चतुष्काः । समक्रियत्वा द्विपमक्रियत्वान् महात्ययत्वाद्ययथाक्रमन्ते ।

अर्थ—समक्रियत्व होनेसे दसप्रकार के कफज प्रमेह साध्य होते हैं विपम क्रियत्व होने से छः प्रकार के पित्तज प्रमेह साध्य हैं इसी तरह महात्ययत्व होने से



चार-प्रकारके वातज प्रमेह असाध्य होते हैं । समक्रियत्वका यह प्रयोजन है कि कफ दोष और मेदा प्रभृति दूष्य ये समान हैं इस लिये कफनाशक औषधोंको सेवन करने हीसे प्रमेह शान्त होजाते हैं । विषमक्रियत्वमें यह बात है कि पित्तदोष मेददूष्य ये विषम हैं क्योंकि पित्तनाशक मधुर रसादि द्रव्य मेदवर्द्धक हैं और मेदाके नाशक करने वाले उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तवर्द्धक हैं तौ यहां क्रियाकी विषमता है इससे पित्तज प्रमेह याप्य है । वातज प्रमेह इसाडिये असाध्य है कि यह सम्पूर्ण धातुओंको दूषित करके खींच लेता है और विषम क्रियावाला भी है ।

दोषदूष्यों की संख्या ।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषामेदोऽस्रशुक्लाम्बुवसालसीकाः । मज्जारसोजः पित्तसञ्च दूष्यप्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥

अर्थ—कफ पित्त वात ये तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्बी, लसीका, मज्जा रस ओज और मांस ये दूष्य हैं, इन सब के संयोग से बीसप्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं ।

बीस प्रकारके प्रमेहकी पहिचान ।

जलोपमं वैश्वरसोपमं वाघनं घनं चोपरिव्रम सन्नम् । शुक्रं सशुक्रं शिशिरं शनैर्वा लालं पत्रावालुकया युतं वा ॥ विद्यात्प्रमेहान् कफ-जान्दशैतान् चारोपमं ह्यलमयाग्निनीलम् । द्वाग्निद्रमाग्निद्रमयाग्निद्रमैतान् प्रमेहान् पटुपन्तिपित्तात् । मज्जारसवायवसयान्वितैवा लसीकाया वा सततं विषद्वयम् । चतुर्वि-

धं मूत्रयतीव वाताच्छेपे पुत्रा तु ध्वपकर्णिते पु॥

अर्थ—कफज प्रमेह दस प्रकारका होता है यथा-जलके समान वर्णवाला उदक-मेह है । ईखके रसके समान वर्णवाला इक्षुम-मेह है, गाढे मूत्रको सान्द्रमेह कहते हैं । जो नाँचे गाढा और ऊपर मद्यके समान हो उसे सुरामेह कहते हैं । जो मूत्रबीज मिला होता है उसे शुक्रमेह कहते हैं । जिसमें मूत्रके किंदु धीरे धीरे टपकते हैं उसे शनैःमेह कहते हैं । जिसमें मुखको छारके समान तार निकलता है उसे लालामेह कहते हैं ॥ जिसमें बालके कणसे झोते हैं वह सिकतामेह है, जिसमें सफेदरंग होता है वह शुक्लमेह है । जिसमें ठंडा मूत्र बहुत उतरता है वह शीतमेह है इस तरह कफसे हानेवाले ये दस प्रकार के प्रमेह हैं ।

पित्तज प्रमेह छः प्रकारके हैं । यथा-क्षार के समान को क्षारमेह, फाले रंगके मूत्र को फालमेह, नीले रंगके मूत्रको नीलमेह हलदीके समान रंगवालेको हारिद्रमेह, मजीठके समान वर्ण और दुर्गन्धवाले को माज्जिन्धुमेह और रुधिरके समान लाल वर्ण वाले को रक्तमेह कहते हैं ॥ ये छः पित्तप्रमेह हैं ॥

वातज प्रमेह चार प्रकार के हैं, यथा मज्जा के समान वर्ण वाला मज्जामेह, वसा के से समान रंग वाला मूत्र वसामेह, ओज-मिश्रित मूत्र को ओज प्रमेह और लसीका युक्त को लसीकाप्रमेह कहते हैं । यह रूखा भी रहता है । जघ और सय धातु-

क्षीण होजाती है तब वात दोष के कारण  
इन चार प्रकार का मूत्र निकलता है ।

दोषानुसार प्रमेह के वर्णादि ।  
वर्णरसस्पर्शमथापिगन्धपथास्वदापम्भ  
जतप्रमेहः ।

अर्थ—प्रमेह का वर्ण, रस स्पर्श और  
गंध उसी दोष के अनुसार होजाता है जिस  
से वह उत्पन्न होता है

घातज प्रमेह को असाध्यत्व  
व्याचारणोपातकृतः सशूलोमज्जादिपा-  
दगुण्यमुपेत्यसाध्यः ॥

अर्थ—घातज असाध्य प्रमेह का वर्ण  
कुछ फाड़ा और छाछ होता है इसमेंवेदना  
होती है तथा इसमें छःओं घातुओं के गुण  
होजाते हैं ॥

प्रमेह के पूर्व रूप  
स्वेदोऽहगन्धः शिथिलाद्गताचशय्यासन  
स्वमसुखेरतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणो  
पदेहो घनाद्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शी  
तमियत्वद्गलताल्लशोपो माधुर्यमास्येकर  
पाददाहः भविष्यतोमेहगदस्वरूपं भूत्रेऽ  
भिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥

अर्थ—पसीनों का आना, देहमें से दुर्ग-  
न्ध निकलना, देहका शिथिल पड़जाना,  
पलंग पर पड़े रहने, आसन पर बैठे रहने  
वा निद्रा लेने में इच्छा बनी रहनी, हृदयने-  
त्र, जिह्वा और कर्ण गलकी ल्हिसावट, दे-  
ह का कड़ा होना, केश और नखों का अ-  
त्यन्त बढ़ना, ठंडीवस्तु का प्रिय लगना,  
और मूत्रपर चींटियों का आना ये प्रमेह के  
पूर्वरूप हैं ।

स्थूल कृशप्रमेही की चिकित्सा ॥

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथैकः प-  
रिदुर्वलश्च । संवृंहणतत्र कृशस्य कार्यसं  
शोधनं दापवलाधिकस्य ॥

अर्थ—कोई प्रमेह रोगी स्थूल और बल-  
वान होता है, तथा कोई कृश और दुर्वल  
होता है, इनमें से कृशकी वृंहण चिकित्सा  
करना चाहिये और बलवान् को संशोधन  
देकर उसके दोषों को दूर करे ॥

प्रमेही के अन्य उपचार ॥

स्निग्धस्य योगाविविधाप्रयोज्याः कल्पो  
पदिष्टामलशोधनाय । ऊर्ध्वतथाधश्चम-  
लेऽपुनीतेभेहेपुस्तर्पणमेवकार्यम् ॥ गु-  
ल्मः क्षयोमेहनवस्तिशूलं भूत्रग्रहश्चाप्य  
पतर्पणेन । प्रमेहिणः स्युः परितर्पणानि  
कार्पाणितस्मात्प्रसमीक्ष्यन्निहम् ॥ सं  
शोधननार्हतियः प्रमेही तस्य क्रियारंशम-  
नीप्रयोज्या ।

अर्थ.... रोगीको स्नेहन देकर कल्प-  
स्थान में वर्णन किये हुए प्रयोगों को दोनों  
के शोधन के निमित्त देंगे । जब बमन  
विरचन करानेसे दोष निकलजाय तब स-  
न्तर्पणविधि करना चाहिये ।

जो प्रमेह रोगी संशोधनके योग्य न हो-  
उसकी संशमन चिकित्सा करे ॥

प्रमेही को पथ्य ॥

मन्या कपायाः यवचूर्णलेहाः प्रमेहशान्त्यै  
लघवश्च भक्ष्याः ॥ ये विकिराये मतुदा  
विहंगास्तेषां रसैर्जाङ्गलजर्मेनोजैः । यवौ  
दनंरुक्षमयापिवाधान्मद्यान्सशक्नुपि

चाप्यूपान् ॥ मुद्गादियूपैरथत्तिका  
कैः पुराणशाल्योदनमाददीत । दन्ती  
शुदीतैलयुतंप्रमेहीतथातसीसर्पपतैलयुक्त  
म् ॥ सपट्टिकेस्पाचृणधान्यमन्नंयवप्रधान  
नस्तु भवेत्प्रमेही ॥

अर्थ—प्रमेही शान्तिके निमित्त मन्थ  
कपाय, जौ के चून्का लेह तथा हलका  
भोजन खानेको देवै । त्रिफिर और प्रतुद  
प्रकारके जांगल पक्षियोंके मांसरसके साथ  
रूक्ष यवोदन या सत्तूके साथ मद्य या  
अपूप भक्षण करै । मूग आदिके यूपके  
साथ अथवा चरपरे सागोंके संग पुराने  
शालीचाबलोंका भात खाय ॥

दन्ती और गौदीका तेल मिलाकर अथवा  
अलसी और सरसों का तेल मिलाकर साठी  
चावल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै ॥  
विशेषकरके प्रमेह रोगी जौके पदार्थोंका  
सेवन करता रहै ।

कफप्रमेहमें अन्यविधि ॥

यवस्यभक्ष्यान्विविधास्तथाद्यात्कफप्र-  
मेहीमधुसम्प्रयुक्तान् ॥ निशिस्थितानां  
त्रिफलाकपायैः स्युस्तर्पणासौद्रयुतायवा  
नाम् । तान्शीघ्रयुक्तान्पिबेत्प्रमेही प्रा  
योगिकान्मेहवधार्षमेव ॥

अर्थ—कफ प्रमेही जौ के अनेक प्रकार  
के पदार्थ शहत के संग सेवन करता रहै ।  
रात्रिमें जौओंको त्रिफलाके काथ में भिगो  
देवै, दूसरेदिन इनका शहतके साथ सेवन  
करै तो तर्पण होवै । इन्हीं जौओं को शीघ्र  
के साथ-पान करै तो प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥

येऽप्येवमेहेविहिताः कपायास्तर्भाविताना  
ञ्चपृथग्यवानाम् । श्वतूनूपानसगुडान्  
सधानान् भक्ष्यास्तथान्यान्विविधाश्च  
खादेत् ॥ खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां त-  
थायवानांविविधाश्चभक्ष्याः ॥ देयास्त  
यावेषुयवायवानां कल्पेनगोधूममयाश्च  
भक्ष्याः ॥ संशोधनोल्लेखनलंघनानि  
कालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्तिपि  
क्षत्रभवान्निरेकाः सन्तर्पणःसंशमनो-  
विधिश्च ॥

अर्थ—कफ प्रमेहमें जौ कपाय वर्णन  
कियेगयेहैं उनकी जौओंको पृथक् पृथक्  
भावना देकर उनके सत्तू अपूप, गुडमिश्रित  
धानी तथा और अनेक प्रकार के पदार्थ  
वनशकर सेवन करता रहै ॥

गधा, घोडा, बैल या गौ की गुदामें हों  
कर जो बिना टूटे जौ निकल आतेहैं उ-  
नके तथा वेषुयव और गेहूँके अनेक प्र-  
कारके पदार्थ बनाकर सेवन करै । इसी त-  
रह ठीक समय पर दियेहुये संशोधन, य-  
मन, लंघन करानेसे भी कफ प्रमेह दूर  
होजाते हैं ॥

तथा ठीक समयपर वमन, विरेचन, लं-  
घन, संतर्पण और संशमन देने से पित्तज  
प्रमेह भी शान्त होजाते हैं ।

प्रमेहोंपर सामान्यप्रयोग ॥

दार्षीसुराह्वंत्रिफलांसमुस्तां कपायमुत्  
काध्यपिबेत्प्रमेही । सौद्रेणयुक्तामधवाह-  
रिद्रां पिबेद्रसनामलकीफलानाम् ॥

अर्थ—दारुहल्दी, देवदारु, त्रिफला और

मोथा इनके काथको शहत मिलाकर पीवै  
अथवा आंवलेके रसके साथ हल्दीका पानकरै  
कफप्रमेहपर कपाय ॥

हरीतकीकटफलमुस्तरोध्रपाठाविडङ्गा  
जुनधन्वनथ । उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गं कद  
म्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ दार्वाविडङ्गं  
खदिरोधवश्च सुराहकुप्रागुरुचन्दनानि ।  
चव्याग्रिमन्थीतिफलासपाठा पाठाश्वदं  
ष्टेसहमूर्वयाच ॥ यवान्युशीराण्यभया  
गुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैः  
कपायाःकफमेहिनान्ते दशोपदिष्टामधुस-  
म्भयुक्ताः ।

अर्थ—( १ ) हरड, कायफल, मोथा,  
लोध, ( २ ) पाठ, वायविडंग, अर्जुन,  
धन्वन [ ३ ] दोनों हल्दी, तगर और  
वायविडंग, [ ४ ] कदम्ब, शाल, अर्जुन  
और अजवायन, [ ५ ] दारुहल्दी, वा-  
यविडंग, खैर और धव [ ६ ] देवदारु  
कूठ, अगर और चन्दन [ ७ ] चव्य, अ-  
रनी, त्रिफला और पाठा [ ८ ] पाठा,  
गोखरू और मूर्वा [ ९ ] अजवायन, उ-  
शीर, हरड और गिलोय [ १० ] काक-  
जंघा, हरीतकी, चीता और सप्तपर्ण प्रत्येक  
श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए ये दस  
काथ शहत डालकर पीनेसे कफ प्रमेह  
को दूर करते हैं ॥

पित्तप्रमेहपर कपाय ॥

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्ता  
मलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलका  
मृतानामुस्ताभयापन्नकबृत्तकाणाम् ॥

( ९९ )

रोध्राम्बुकालीयकधातकीनानिम्बार्जुना  
नान्तिनिशोत्पलानाम् ॥ शिरीषसर्जार्जु-  
नकेसराणां म्रियंगुपत्रोत्पलकिंशुकानाम् ॥  
अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटप्युत्प-  
लमुस्तकानाम् । पेंतेपुमेहेपुदशैवदष्टाः  
पादैःकपायामधुसम्भयुक्ताः ॥

अर्थ—[ १ ] उशीर, लोध, रसौत,  
और चन्दन [ २ ] उशीर, आंवला, मो-  
था और हरड [ ३ ] परवल, नीम, आं-  
वला और गिलोय [ ४ ] मोथा, हरड,  
पन्नाख और इन्द्रजौ ( ५ ) लोध, नेत्र-  
वाला, पीतचन्दन और धायके फूल [ ६ ]  
नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और उत्पल  
[ ७ ] सिरस, राल, अर्जुन और नागके-  
शर, [ ८ ] म्रियंगु, लालकमल, नीलक-  
मल और ढाक के फूल [ ९ ] पपिल-  
पाठ, असन और वेत [ १० ] दारुह-  
ल्दी, उत्पल और मोथा । प्रत्येक श्लोक  
के एक २ पादमें कहेहुए ये दस काथ  
शहत डालकर पीनेसे प्रमेहको दूर करतेहैं ॥  
सर्वेपुमेहेपुमतौतृपूर्वां कपाययोगोविहि-  
तास्तुसर्वे ॥ मन्थस्यपानेयवभावनायां  
स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च । सिद्धानि  
तैलानिघृतानिचैव देयानिमेहेष्वनिला  
त्मकेषु ॥ मेदःकफश्चैवकपाययोगैः स्नेहै-

श्वायुःशममेतितेपाम् ।

अर्थ—सबसे पहिले जो दो कपायके  
प्रयोग वर्णन किये गयेहैं वे सब प्रकार  
के प्रमेहोंमें उपयोगीहैं ॥ इन कपायों का  
प्रयोग मन्थपान, जौओं को भावना देने

अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक्  
२ देना चाहिये ॥ वातज प्रमेहोंमें औषधों  
से सिद्ध किया हुआ घृत और तेल देवै ।  
कफाओंसे भेद और कफ तथा स्नेहन योगों  
से वायु शान्तहोतीहै ।

**कफपित्तप्रमेहपरप्रयोग ॥**

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरी  
हीतककौटजानि ॥ कपित्थपुष्पाणिचचू  
र्णितानि क्षौद्रेणालिहात्कफपित्तमेही ।  
पिवेद्रसेनामलकस्यवापि कल्कीकृतान्य  
क्षसमानिकाले ॥ जीर्णेचशुद्धीतपुराण  
मन्त्रं मेहीरसैर्जाङ्गलजैर्मनोभैः । दृष्ट्वानु  
बन्धपयनं कफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्वि  
कल्पः ॥ तैलकफेस्यात्सकपायसिद्धं

**पित्तेघृतं पित्तहरैः कपायैः ।**

अर्थ—कवाला, सप्तपर्ण, सर्जरस, बहेडा  
रोहीतक [ रोहेडा ], इन्द्रजौ, कैयकेश्ल  
इन सबका चूर्ण पीसकर शहतमें मिलाकर  
चाटनेसे कफपित्त प्रमेह दूर होजाता है ।  
अथवा इसी पूर्वार्क्त चूर्ण का दो तोले कल्क  
आंवलेके रसके साथ पान करै और औ-  
षध के पचने पर पुराने चावलों का भा-  
त जांगलजीवोंके मांसरसके साथ सेवनकरै  
इस रोगमें वायुके कफानुबन्धी वा पि-  
त्तानुबन्धी होनेपर स्नेहविधिकी विकल्पना  
करनी चाहिये । यदि कफका अनुबन्ध हो  
तो कफनाशक द्रव्योंके काथमें सिद्ध किये  
हुए तेलका प्रयोग करै और जो पित्त का  
अनुबन्धहो तो पित्तनाशक कपायोंमें सिद्ध  
कियाहुआ घृत देवै ॥

**अन्यप्रयोग ।**

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवलकैर्भल्लातकैः  
सातिविपैःसरोध्रैः ॥ वचापटोलार्जुनानि  
म्बुस्तैर्हृदिद्रयापन्नकदीप्यकैश्च । मञ्जि-  
ष्ठयावागुरुचन्दनेश्च सर्वैःसमस्तैःकफवा  
तजेषु ॥ महेषुतैलंविपचेदृतंतुपैत्तेषुमिश्रं  
त्रिपुलक्षणेपु ।

अर्थ—गोखरू, कचनार, खैर, भिलाया,  
अतिस, लोध, वच, परबल, अर्जुन, नीमकी  
छाल, मोथा, हलदी, पन्नाख, अजवायन,  
मजीठ, अगर, चन्दन, इनसबके काथमें सिद्ध  
किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफघात ज-  
न्य प्रमेह दूर होताहै । उन्हींमें सिद्ध किया  
हुआ घृत वातपित्तजन्य प्रमेहको तथा घृत  
और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेह को दूर  
करते हैं ।

**सबप्रकार के प्रमेह पर काथ ।**

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचानि-  
काध्यनिशासकल्का । पिवेत्कपायंमधु-  
सम्पयुक्तं सर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु ॥

अर्थ—त्रिफला, देवदारु, हलदी, इन्द्रा-  
यण और मोथा इनका काथकरके उसमें  
हल्दी पीसकर डालदेवे और इस कपायमें  
शहत मिलाकर पीनेसे सबप्रकारके उद्धत  
प्रमेह दूर होजातेहैं ।

**मध्वासव ।**

लोध्रंशठीपुष्करमूलमेलं मूर्चाविट्त्रि-  
फलायवानीम् ॥ चयंभियंगुत्रमुकांविशा-  
लां किराततित्तकदुरोहिणीञ्च । भार्गी  
नतंचित्तकपिप्लीनां मूलंसकुष्ठाति-

विपंसपाठम् ॥ कलिङ्गकानकेशरमिन्द्र  
साहं नखंसपत्रं गरिचं पुत्रश्च । द्रोणो-  
ऽमसः कर्पसमानि पक्त्वा पूते चतुर्भागज  
लावशेषे ॥ रसेऽर्धभागमधुनः प्रदाय प-  
क्षान्निधेयो घृतभाजनस्थः । मध्वासवोऽ  
यं कफपित्तमेहान् क्षिप्रं विहन्याद्द्विपलम-  
योगात् ॥ पाण्डुवामयाशंस्य रुचिं ग्रहण्या-  
दोपकिलासं विविधश्च कुष्ठम् ॥

अर्थ—लोध्र, शठी, पौहकर मूल, इला-  
यची, मूरी, वायविडंग, त्रिफला, अजवायन  
चव्य, प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़  
चिरायता, कुटकी, भाङ्गी, तगर, चीता,  
पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, ना-  
गकेशर, इन्द्रायण की जड़, । नली, तेजपात  
कालीमिरच, केवटी, मोथा । इन सबको ए-  
क एक कर्प लेकर एक द्रोण जलमें पकावै  
जब चौथाई शेष रह जाय तब इसे छानले,  
फिर इस रसका आधा शहत मिलाकर घी-  
के चिकने पात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक  
धरा रहने देवे । यह मध्वासव है, इसमें  
से प्रतिदिन दोपलका सेवन करनेसे कफपित्तज-  
नित प्रमेह, पाण्डुरोग, अशरोग, अरुचि,  
ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कु-  
ष्ठ दूर हो जाते हैं ।

अन्य आसव ।

काथः स एवाष्टपले च दन्त्याभ्रलातकाना  
श्च चतुष्पलं स्यात् ॥ सितोपलास्त्वष्टपला  
विशेषः सौद्रश्च तावत्पृथगांसवौतौ ।

अर्थ—उसी पूर्वोक्त लोधादि काथसे दो  
आसव और बनाये जाते हैं यथा ( १ ) पू-

र्वोक्त क्वाथमें दंती आठपल, शहत और मि-  
श्री आठ आठ पल डालें और ( २ ) पू-  
र्वोक्त उसी क्वाथमें मिलाया चार पल, मि-  
श्री आठ पल और शहत आठ पल डालें इ-  
न दोनोंके गुणभी मध्वासवके समान हैं ।

प्रमेह पर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकश्चाथकुशोदकं वा मधूदकं वा त्रि-  
फलारसं वा ॥ शीधुं पिबेद्दानि गदं प्रमेही  
माध्वीकमग्न्यश्चिरसं स्थितं वा । मांसा  
निशल्यानि मृगद्विजानां खादेद्यवानां चि-  
विधांश्च भक्ष्यान् ॥ संशोधनारिष्टकपा-  
यलेहेः सन्तर्पणज्ञः शमयेत् प्रमेहान् । भृ-  
ष्टान्यवान् भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च  
शकून् भवन्ति मेहा ॥ श्वित्रश्च कुष्ठश्च  
कफश्च कृच्छ्रं तथैव मुद्गा मलकप्रयोगात् ॥

अर्थ—सारोदक वा कुशोदक, वा मधूद-  
क वा त्रिफला काथ, वा शीधु वा पुराना  
माध्वीक सेवन करनेसे प्रमेह दूर हो जाता है  
पशुपक्षियोंका शूलपर भुना हुआ मांस, तथा  
जौके अनेक पदार्थोंका भक्षण करे । संशो-  
धन, अरिष्ट, कपाय, लेह और संतर्पण  
द्वारा प्रमेहको शमन करे । भुने हुए जौ,  
इनका सत्तू तथा मूंग और आंवला इन के  
प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, कफ और मूत्र-  
कृच्छ्र दूर हो जाते हैं ।

सन्तर्पणोत्थे पुगदे पुयोगा मेदस्विनां ये च  
मयोपदिष्टाः ॥ विरूक्षणा र्थं कफपित्तजे  
पुसिद्धाः प्रमेहेष्वपि ते प्रयोज्याः । व्याया-  
मयोगैर्विविधैः प्रगाढैरुद्धर्चनैः स्नानजला-  
वसेकैः ॥ सेव्यत्वे गलागुरुचन्दनाद्यै

विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः । क्लेशश्चमेद-  
श्चकफश्चबृद्धः नाशं प्रयाति प्रसमीक्ष्य तस्मा  
त्तु विद्येन पूर्वकफपित्तजेषु मेहेषु कार्याण्य-  
पतर्पणानि ॥

अर्थ—सन्तर्पणजन्य रोगोंमें तथा जिनका  
मेदा बद्ध गया है उनके लिये जो रूक्षणकर्त्ता  
प्रयोग वर्णन किये गये हैं इन का कफपि-  
त्तौघ प्रमेहमें प्रयोग किया जाय तौ  
तत्काल फलप्रद है ।

आयन्त परिश्रम [ दंडकसरत आदि ]  
अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलाबसेक  
तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दन  
का लेप करने से प्रमेह शीघ्र नष्ट होजाता है

अपतर्पणसे क्लेश, मेद और कफ ये नष्ट  
होजाते हैं इसलिये कफपित्त प्रमेहोंमें प्रथम  
अपतर्पण देना चाहिये ॥

यावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्बणानां  
विहिताक्रियासा । वायुहिमेहेष्वतिकर्षि-  
तानां कुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता

अर्थ—जहां तीनों दोषोंमें से वातकी  
अधिकता हो वहां प्रथम वातज मेहकी  
चिकित्साके अनुसार उपाय करें क्योंकि  
वातप्रमेह मनुष्यको बहुत शीघ्र कृशकारके  
रोगको असाध्य करदेता है, तब फिर कोई  
चिकित्सा काम नहीं देती है ॥

प्रमेहमें निदानपरिचयेन ॥

यैहेतुभिर्प्रेषप्रवन्तिमेहास्तेषु प्रमेहेषु नतेनि-  
षेव्याः ॥ हेतोरसेवाविहितायथैवजात-  
स्परोगस्य भवेच्चिकित्सा ।

अर्थ—जिन ३ हेतुओंसे जो ३ प्रमेह

उत्पन्न होते हैं उनमें उन हेतुओंका कदापि  
सेवन न करना चाहिये क्योंकि हेतुका  
परित्याग करदेना भी रोगकी एक प्रकार  
की चिकित्सा है ॥

हारिद्रवर्णरुधिरश्चमूत्रं विना प्रमेहस्याहि-  
पूर्वरूपः ॥ यो मूत्रयेत्तन्न वेदत्प्रमेहरक्तं  
स्यापित्तस्य हि सप्रकोपः ।

अर्थ—जो मूत्रका रंग हलदीसा लाल  
हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो  
तो उस रोगांके प्रमेह नहीं होती है वह  
उसके रक्तपित्तके प्रकोप का कारण है ॥

मधुप्रमेहकालक्षण ॥

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सापिच्छं मधुपमं स्याद्वि-  
धोपचारः ॥

अर्थ—जो प्रमेह मधुर हो वा शहत के  
समान गिलगिडी हो उसमें अनेक प्रकार  
की चिकित्सा करनी चाहिये ।

प्रमेहको साध्यासाध्यत्व ॥

क्षीणे पुदोपेष्वनिलात्मकः स्यात् सन्तर्प-  
णाद्वा कफसम्भवः स्यात् । सपूर्वरूपाः क-  
फपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ॥  
साध्यान्ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु  
मेदोयदिनमदुष्टम् । जातप्रमेहो मधुमेहि-  
नां वा नसाध्यरोगः स हि वीजदोषात् ॥  
ये चापिकेचित्कुलजा विकारा भवन्ति तां-

श्च भवदन्त्यसाध्यान् ॥

अर्थ—दोषोंके क्षीण होनेपर वातात्मक  
प्रमेह होता है और सन्तर्पणसे कफज प्रमेह  
उत्पन्न होता है ये कफज तथा पित्तज प्रमेह  
जो पूर्वरूपसे युक्त होते हैं अथवा जो वात-

कृते वे असाध्य होते हैं पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजप्रमेह जिनमें मेदा दूषित नहीं होता है वे साध्य होते हैं । मधुमेही की सन्तान बीजदोष के कारण असाध्य होती है । तथा जो रोग कुलपरम्परासे चले आते हैं वे भी असाध्य होते हैं ॥

### पिडकाओंकी चिकित्सा ॥

प्रमेहिणांयाः पिडकामयोक्ता रोगाधिका-  
रे पृथगेव सप्त । ताः शल्यहृद्भिः कुशलैश्च  
कित्स्याः शस्त्रेण संशोधनरोपणैश्चेति ॥

अर्थ—रोगाधिकारमें जो प्रमेह रोगकी  
सात पिडका पृथक् वर्णन की गई हैं उनकी  
चिकित्सा शल्यशास्त्र में कुशल वैद्य शस्त्रसे  
संशोधन और रोपण द्वारा करे ।

### अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

#### भवन्ति चात्र ॥

हेतुर्दोषादूष्यमेहानां साध्यतानुरूपञ्च ।  
मेही त्रिविधस्त्रिविधं भिन्नगजतलभ्रणंतस्य  
आघातवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाः कषा  
याश्च । तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याः प्रवरा  
सवासिद्धाः ॥ व्यायामविधिर्विविधः  
स्नानान्युद्धर्तनानिगन्धाश्च । मेहानां  
प्रशमार्यचिकित्सिते दृष्टमेतावदिति ॥

अर्थ—इस प्रमेह चिकित्सितनामक अध्यायमें प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता अनुरूप, तीन प्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षण्य औषधोंके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभूत आसन्न, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्धर्तन,

सुगंधित द्रव्यादि प्रमेह नाशक विधि वर्णन की गई हैं ।

इति श्रीभाषाटीकांन्वितायां अग्निवेशविरचिता-  
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-  
त्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितनाम

षष्ठोऽध्यायः ॥

—+X\*+—

### सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ॥

### कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ॥

हेतुं लिङ्गं विविधं कुष्ठानामाश्रयं प्रशमनञ्च ।  
शृण्वग्निवेश ! सम्यग्विशेषतः स्पर्शनघ्ना  
नाम् ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्ध  
गुरुणिच । भजतामागतां छर्दिर्वेगांश्चान्या  
न प्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिस्तप्ताप  
मतिभुक्त्वानिपेविणाम् । शीतोष्णलं  
घनाहारनक्रममुक्त्वानिपेविणाम् ॥ घ-  
र्षश्रमभारतानां द्रुतं शीताभ्युसेविणाम् ।  
अजीर्णाध्यशिनान् चैव पञ्चकर्मपचारि-  
णाम् ॥ नवान्नदधिपस्त्यातिलवणाम्ल  
निपेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नगुडक्षी-  
रतिलाशिनाम् ॥ व्यवयं चाप्यजीर्ण-  
ञ्जोनिद्रां वा भजतां दिवा । विमान् गुरुन्  
धर्षयतां पापं वा कर्म कुर्वताम् ॥ वातादय  
स्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमभ्युच । दूषय-  
न्ति सकुष्ठानां सप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥ अतः



कुष्ठानि जायन्ते सप्तचैकादशैव च । न चैक  
दोषजं किञ्चित् कुष्ठं सद्यः पलभ्यते ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अवमें तुम्हारे सा-  
म्हने कोढ़के अनेक प्रकारके हेतु, लक्षण आ-  
शयस्थान और उनके शान्तिके उपायोंको  
वर्णन करता हूँ सुन सावधान हो कर सुनो ।  
वे ये हैं यथाः—

विषद अन्नपान; पतले, चिकने और  
भारी पदार्थोंका अत्यन्त सेवन; उपस्थित व-  
मनके वेग तथा अत्यन्त मलमूत्रादि वेगोंका  
रोकना; अत्यन्त भोजन करके अत्यन्त शा-  
रीरिक परिश्रम और अत्यन्त सन्ताप का  
सेवन, क्रमको छान्दकर शीत, उष्ण, लघन  
और आहारका सेवन, पसीनोंमें, पारिश्रम  
करके वा भयजन्य कर्ममें शीतल जञ्का  
सेवन; अजीर्णमें अल्पशन, वमनविरेचनादि  
पाँच कर्मोंका अपचार; नया अन्न, दही, म-  
छली, नमक और खटाईका अत्यन्त सेवन  
उदर, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध और ति-  
लका अत्यन्त सेवन, अन्नके विना पचे मै-  
थुन करना; दिनमें नींद भरना, विप्र और  
गुरुजनोंका तिरस्कार; पापकर्मका करना; इ-  
न सब बातोंसे कुपित हुए वातादिक तीनों  
दोष तथा इनमें दूषित किये हुए त्वचा, रक्त  
मांस और लसीका, ये सातों सब प्रकारकी  
कुष्ठोंके कारण हैं । इस तरह सब मिलाकर  
अठारह प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होते हैं । एक  
दोषके कुपित होनेसे कोई कुष्ठ नहीं होता है  
कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यगत्स्वैदोतिनवावैवर्ण्यगुन्निः

कोठानां लोपहर्षश्च कण्डूस्तोदः श्रमः क्रमः  
व्रणानां अधिकं शूलशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।

दाहः सुप्ताङ्गता चेति कुष्ठलक्षणमग्रजः ।

अर्थ—त्वचाका अन्यथा होना, पसीनों  
का अत्यन्त आना वा सर्वथा न आना, वि-  
वर्णता, पित्तीका उछलना, रोमाञ्च खड़े  
होना, खुजली तोड़, श्रम, क्लान्ति, शरीर  
में घाव होकर उनमें अत्यन्त वेदना होना  
घावोंका शीघ्र होना और बहुत दिवस तक  
रहना, दाह और सुप्ताङ्गता, ये सब कोढ़  
के पूर्वरूप हैं ।

कुष्ठैकेनाम ।

अत ऊर्ध्वमष्टादशानां कुष्ठानां कालो दुस्व-  
रमण्डलर्प्यजिह्वा पुण्डरीकसिध्मका कण-  
कैककुष्ठचर्मकिटिमाविपादिकालसकदद्गुच-  
र्मदलपामाविस्फोटकशतारूचिचर्चिकानां  
लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—अब हम यहाँ से कपाल, उदुम्बर  
मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म,  
काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिम, विपादि-  
का, अलसक, दद्गु, चर्मदल, पामा, विस्फो-  
टक, शतारू और विचारिका, इन अठारह  
प्रकारकी कोढ़ों के लक्षण वर्णन करेंगे ।  
इनमें से पहिली सातको महाकुष्ठ और पिछ-  
ली ग्यारहको क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं ।

कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कुष्णारुणकपालाभयद्रूसंपरुपन्तनु । का-  
पालन्तोदवहुलंतं कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥

अर्थ—जो कुष्ठ कालापन लिए कुछ लाल  
होता है, जो ग्रीष्म के सट्टन रक्त खरखरा

तथा पतला हो और जिसमें सुईके छिदने की सी अत्यन्त वेदना होती हो उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं यह दुर्दिवाकित्य होता है ।

**औदुम्बर कुष्ठके लक्षण ।**

कण्डूविदाहृप्रागपरतिंलोमापिञ्जरम् ।  
उदुम्बरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरविदुः ॥

अर्थ—जिस में खुजली, जलन, वेदना और ललाई होती है, रोमोंमें पीलापन होता है और जिसका आकार गूलरके सदृश होता है उसे औदुम्बरकुष्ठ कहते हैं ।

**मंडलकुष्ठके लक्षण ।**

श्वेतरक्तस्थिरस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।  
कुच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥

अर्थ—जिसका वर्ण सफेद और लाल हो, जो कठोर गीला, चिकना, ऊंचा उठा हुआ, मंडलाकार हो, जिसमें चकते एक दूसरेसे मिले हुए हों, यह मंडलकुष्ठ कुच्छ्रमाध्य होता है ॥

**ऋष्यजिह्वा कुष्ठके लक्षण ॥**

कर्कशरक्तपर्यन्तमन्तःश्यावःसवेदनं ।  
यद्व्यजिह्वासंस्थानेऋष्यजिह्वतदुच्यते ॥

अर्थ—जो कुष्ठ खरस्पर्श होता है जिस के किनारे ललाई लिये होते हैं, जो नाँच में कृष्णवर्ण तथा वेदनायुक्त होता है । जिसका आकार रींछकी जिह्वके सदृश होता है उसे ऋष्यजिह्वा कहते हैं ॥

**पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ॥**

सश्वेतरक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥  
सोत्सेधश्च सदाहञ्च पुण्डरीकं तदुच्यते ॥

अर्थ—जिसका श्वेत वर्ण और लाल किनारे हों, जो कमलके पत्तों के सदृश होता है, जो ऊंचा तथा दाहयुक्त होता है उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ।

**सिध्मकुष्ठके लक्षण ।**

श्वेतताम्रतनुचयद्रजोघृष्टं विमुञ्चति ।  
अलाबु पुष्पवर्णं तत्सिध्मं प्रायेण चोरसि ॥

अर्थ—जिसका वर्ण सफेद और ताँबे के समान होता है, जो पतला होता है, जिसको खुजाने से भुंसीसी [धूल के सदृश] उड़ती है जिसका आकार घाँपाके पुष्पके समान होता है उसे सिध्मकुष्ठ कहते हैं, यह हृदयमें होता है ।

**काकणक कुष्ठके लक्षण ।**

यत्काकणन्तिकवर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।  
त्रिदोषलिङ्गं तं कुष्ठं काकणं नैवासिद्धयति ॥

अर्थ—जिसका आकार चिरामैठीके सदृश होता है अर्थात् बीचमें काला और किनारों पर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारों पर काला, जो किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्र वेदनायुक्त होता है उसे काकणक कुष्ठ कहते हैं, यह त्रिदोषाश्रित होने से आसाध्य होता है । यह सात प्रकारके महाकुष्ठ वर्णन किये गये हैं ॥

अब शुद्धकुष्ठों का वर्णन करते हैं ॥

**एक कुष्ठ और चर्म कुष्ठके लक्षण ।**

अस्वेदनं महावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।  
तदेक कुष्ठं चर्मोत्थं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥

अर्थ—जिसमें पसीने न आवें, जो बहुत जगह में व्याप्त हो जो मछलीके ठुकड़ों के

समानहो उसे एककुष्ठ कहते हैं इसके वि-  
षयमें सुश्रुत लिखता है कि “ कृष्णारुणं  
येन भवेच्छरीरं तदेकं कुष्ठं प्रवदन्यसाध्यम्  
अर्थात् जिससे देह काला वा लाल पड़जाता  
है उसे एककुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य  
होता है ।

जिसमें देहकी त्वचा हाथीके चमड़ेके स-  
मान मोटी होती है उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं ।

**किटिम कुष्ठ के लक्षण ।**

**श्यावंकिणं खरस्पर्पपरुपांकिटिमं स्मृतम्**

अर्थ जो काला, किण के सदृश खरस्पर्श  
और खरदरी होती है उसे किटिम कहते हैं  
सुश्रुत कहता है कि जिसमें कड़े गोल  
चकत्ते से होते हैं और जो अत्यन्त खुजली  
चलने के पीछे क्षरने लगता है उसे किटिम  
कहते हैं ।

**वैपादिका के लक्षण ।**

**वैपादिकं करेपादेस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥**

अर्थ—हाथ पांवके फटनेसे जो तीव्र वे-  
दना युक्त होता है उसे विपादिका कहते  
हैं, यहां सुश्रुत लिखता है कि “ कण्डूमती  
दाहश्चोपपन्ना विपादिका पादगतयेव, ।  
अर्थात् खुजली दाहादियुक्त का नाम वि-  
पादिका है और यह पांवही में होती है, ”  
'इमेव, ये दोनों शब्द 'पादगता' के पास  
ऐसे ढंगसे डाले गये हैं कि इससे जाना  
जाता है कि यह पांवही में होती है इससे  
भागमें इसका विवाई कहा जाना संभव हो  
सकता है और विपादिका, इस शब्द के  
अर्थ से भी 'पांवका फटनाही, प्रतीत होता

है, परन्तु यहां इन दोनों आचार्यों का मत  
भिन्न है, यदि यह ' विवाई, न भी होती  
भी विवाई कोढ़ से कम नहीं होती क्योंकि  
इसकी वेदनाको वेही जानते हैं जिनके  
यह होती है ।

**अलसक के लक्षण ।**

**सकण्डूकैः सरावंश्च गण्डैरलसकं स्मृतम् ।**

अर्थ—जिसमें खुजली चलती हो, जो ला-  
लरंगकी हो तथा जिसमें बड़े २ फोड़े हो  
गये हों उसे अलसक कहते हैं ॥

**दद्रुमण्डल के लक्षण ॥**

**सकण्डूरागपिडकंदद्रुमण्डलमुद्रुतम् ॥**

अर्थ—जो खुजली युक्त और लालवर्ण  
की फुत्तियों से युक्त हो जिसमें ऊंचे २  
चकत्ते होजाय उसे दद्रुमण्डल कहते हैं ॥

**चर्मदल के लक्षण ॥**

**रक्तंसकण्डूसस्फोटंसखदलतिचापियत् ।**

**तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते ॥**

अर्थ—जिसका वर्ण लाल हो जिसमें खु-  
जली चलती हो, जो फोड़े और वेदनाओं  
से युक्त हो, जो फट गयी हो, जिसमें हाथ  
का लगाना सहा न जाय उसे चर्मदल  
कहते हैं ॥

**पामा के लक्षण ।**

**पामाः श्वेता रूणाः श्यावाः पिडकाः कण्डूला  
भृशम् ॥**

अर्थ—जिसमें सफेद, लाल, काली बहुत  
खुजलीयुक्त फुत्तियां हों उसे पामा कहते हैं ।

**विस्फोटक के लक्षण ।**

**श्वेताः श्यावारूणाभासा विस्फोटाः स्युस्तं  
भुत्वचः ।**

अर्थ....जिनमें सफेद, काले और लाल रंगकी शलक मारतीहो और जिनकी त्वचा पतलीहो ऐसे कोडोंको विस्फोटक कहते हैं

शतांशके लक्षण ।

रक्तश्यावंसदाहार्तिमताः स्यादुद्वणम्

अर्थ....जिसमें लाल काले दाहयुक्त बहुत से प्रणहोजाय उसे शतारु कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण ॥

सकण्डूःपिडकाः श्यावायुस्रावाविचर्चिकाः ।

अर्थ....खुजलीयुक्त काले रंगकी ऐसी फुत्तियां जिनमें बहुत स्राव होताहो उन्हें विचर्चिका कहते हैं ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठकापालमण्डलंफे ॥

पित्तैर्बहुदुम्बरां वियात्काकणन्तुत्रिदोष

जम् । वातपित्तश्लेष्मभिन्नेवातश्लेष्म

णिचाधिके ॥ ऋष्यजिह्वपुण्डरीकंसि

ध्मकुष्ठं वजायते । चर्म, रूयमेकं कुष्ठश्चकि

टिमंसत्रिपादिकम् ॥ कुष्ठश्चालसकं ज्ञेयं

प्रायोवातकफाधिकम् । दग्धर्मदलपामा

विस्फोटश्चशतारूपः ॥ पित्तश्लेष्माधि-

काः प्रायकफप्रायाविचर्चिका ।

अर्थ....कापालकुष्ठमें वात अधिक होती

है । मण्डलकुष्ठमें कफकी अधिकताहै । औ-

दुम्बरकुष्ठमें पित्तकी अधिकता है । और

काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी अधिकता

है । ऋष्यजिह्व में वातपित्तकी अधिकता

है । पुण्डरीकमें कफपित्तकी और सिध्म कुष्ठ

में वातकफकी अधिकता होती है ।

चर्मकुष्ठ, एककुष्ठ, किटिम, त्रिपादिका और अलसक इन कुष्ठों में प्रायः वातकफ की अधिकता होती है - दग्ध, चर्मदल, पामा, विस्फोटक और शतारु इनमें प्रायः कफपित्तकी अधिकता होती है, इसीतरह विचर्चिका में कफकी अधिकताहोती है ॥

कुष्ठों में चिकित्साक्रम ।

सर्वत्रिदोषजकुष्ठं दोषाणाञ्च बलावलम् ॥

यथास्वं लक्षणैर्बुद्ध्या दुष्टानां क्रियते क्रिया

दोषस्य यस्य पश्येत्कुष्ठेषु विशेषलिङ्गमुद्दि-

क्तम् । तस्यैव शर्मदुर्यात्ततः परञ्चानुव

न्धस्य ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुष्ठ त्रिदोषसे उत्पन्न होते

हैं, इनमें लक्षणों द्वारा दोषों का बलावल

देखकर तदनुसार चिकित्सा करना उचित

है । जिसकुष्ठमें जिस दोषके बड़ेहुए लक्षण

दिखाई दें प्रथम उसीकी चिकित्सा करे ।

तत्पश्चात् अनुबन्धी दोषोंकी चिकित्सा

करना चाहिये ।

कुष्ठकी पहचान ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैः पुनः कुष्ठानि ।

ज्ञायन्ते तैर्हेतुहेतुस्तांश्चमकाशयति ॥

अर्थ—कुष्ठ के भिन्न २ भेदों से दोष

और भिन्न दोषों के लक्षणों से कुष्ठ पह-

चानी जाती है, इसीतरह कुष्ठसे हेतु और

हेतुओं से कुष्ठ जाननेमें आती है, जैसे

कपालकुष्ठ के लक्षणों से वाताधिक्य और

वातकी अधिकता से कपालकुष्ठ की संभा-

वना होती है ।

वातजादि कुष्ठों के लक्षण ।

रीत्यं शोषस्तोदःशूलसंकोचनंतथायासः

पारुष्यस्तरभावोर्हर्षः श्यावारुणत्वं च ॥  
कुष्ठेषु वातलिङ्गं दाहो रागः परिस्तावः पाकः  
विस्रो गन्धः क्लेदः यथांगपतनञ्चापि चकृत  
म् ॥ श्वैत्यं शैत्यं कण्डूः स्थैर्यं सोत्सेधगौर-  
वं स्नेहाः । कुष्ठेषु तु कफलिङ्गं जन्तुभिरभि-  
भक्षणं क्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तमति प्रा-  
ग्निवर्जयेदबलम् ॥

अर्थ—जित कुष्ठ में रूक्षता, शोष, तोद-  
शूल, संकोच, आयास, कर्कशता, खरखराप-  
न, रोमोद्गम, कालापन, और लड़ाई, हों उसे  
वातजन्य कुष्ठ समझो ।

दाद, रक्तवर्ण, स्नाय, पाक, विलिङ्ग, क्लेद और किसी अवयव का गिर पडना ये पित्तकृत् कुष्ठ के लक्षण हैं । सफेदाई, शीतलता, खुलती, स्थिरता, ऊंचापन, भारापन, चिकनाई ये कफकृत् कुष्ठ के लक्षण हैं । जिस कुष्ठ में काँडे पडगये हों, क्लेद हो, तथा पूर्वोक्त तनों दोषों के लक्षण हों और रोगी दुर्बल हो तो वह कुष्ठ दुश्चिकित्स्य होता है ।

कुष्ठ को असाध्यत्व ।

तृष्णा दाह परीतं शान्ताभिर्जन्तुभिर्जग्धम्  
वातकफप्रबलं यद्देहकोपो लवणं न तत्कु-  
च्छम् ॥ कफपित्तवातपित्तप्रयलानिन तु  
कुच्छं कुष्ठानि ॥

अर्थ—जिस कुष्ठ में तृष्णा, दाह, मन्दाग्नि वा काँडे पडगये हों वह असाध्य है । वात कफाधिक वा एक दोषाधिक कुष्ठ कुच्छ माध्य नहीं होता है और जिन कुष्ठों में कफपित्त प्रयल होते हैं वे अत्यन्त कुच्छसाध्य हैं दोषानुसार चिकित्साक्रम ।

वातांतरे पुंसर्पिर्वेधनं स्नेहोत्तरे पुं कुष्ठेषु ॥

पित्तोत्तरे पुंसोत्तरे रक्तस्य विरेचनं चाग्रे ॥ वमन-  
विरेचनयोगाः कल्पोक्ताः शुद्धिर्नामयो-  
क्तव्याः ॥ मच्छनमल्पे कुष्ठे मतं शिरावेधनं  
महति च शस्तं ॥ बहुदोषः संशोध्य कुष्ठो  
बहुशोनुरक्षता प्राणान् । दोषे ह्यतिमात्रह-  
ते वायुर्हन्यादवलमाशु ॥ स्नेहस्य पानमि-  
ष्टं शुद्धे कोष्ठे प्रवाहिते रुधिरि । वायुर्हि शुद्धको-  
ष्ठं कुष्ठिनमवलं विनशति शीघ्रम् ॥

अर्थ—वातप्रधान कुष्ठ में प्रथम ही घृतपा-  
न, कफप्रधान में वमन और पित्तप्रधान में  
रक्तमोक्षण और विरेचन देना चाहिये ॥

कुष्ठरोगियों के लिये जो वमन विरेचन के प्रयोग हैं वे कल्पस्थान में वर्णन किये गये हैं अल्पकुष्ठ में पछना लगाना और महा कुष्ठ में सिरावेधन हित है ।

बहुत दोषों से युक्त कोष्ठ में बहुतबार संशोधन करना चाहिये परन्तु प्राणों की रक्षा करता रहे ऐसा न हो कि संशोधन देते देते रोगी मरजाय । क्योंकि दोषों के अत्यन्त निकल जाने से दुर्बल हुए रोगी को वायु शीघ्र ही मार डालती है ।

संशोधन द्वारा कोष्ठ के शुद्ध होने पर और फस्त खोलने के पश्चात् रोगी को घृत पान कराना हित है क्योंकि कोष्ठ के शुद्ध होने से जब रोगी निर्बल होता है तब वायु उसमें बहुत ही शीघ्र प्रवेश करती है ।

कुष्ठनाशक प्रयोग ॥

दोषोत्तिलप्टे बृद्धये वम्यः कुष्ठेषु चोर्ध्वभागे पु-  
ष्टं न फलमदनमधुकेः सपटोर्लान्मम्वरस-  
युक्तैः ॥ शीतरसः पक्व रसो मधूनि मधु-

कश्चयमनानि । कुष्ठेपुत्रिवृतादन्तीत्रिफ  
लाचविरेचनेशस्ताः ॥ सौवीरकंतुपोद  
कमालोदनमांसवांस्तुशीध्वादीन् । शंस  
न्त्यथोहराणायथाविरेकःक्रमश्चेष्टः ॥

अर्थ—हृदयके दोषोंसे उल्लिष्ट होने पर  
और कुष्ठरोगके शरीरके ऊपरले भाग में  
होनेपर इन्द्रजौ, मेनकल, मुलहठी, परवल  
और नीमके रसको पान कराके वमन करावे

कुष्ठरोगमें वमन कराने के लिये मेनकल  
के शीतकपाय या कपायमें शहत और  
मुलहठी का चूर्ण डाले । तथा निसोय द-  
न्ती और त्रिफला ये विरेचन में हितकारी हैं

विरेचनकर्त्ता द्रव्यों में सौवीरक, तुपोदक  
आम्रव वा शीधु लेना चाहिये तत्पश्चात्  
विरेचन में जो जो क्रम वर्णन किया गयाहै  
वह भी करना चाहिये ।

कुष्ठमें स्थापन प्रयोग ।  
दार्वावृहतीभैरवैःपटोलपिचुमर्दमदनकृत  
मालैः । सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गय-  
धमुत्तैः ॥

अर्थ—दारुहलदी, बड़ी कीटरी, खस, पर-  
वल, नीम, मेनकल, कंजा, इन्द्रजौ और मो-  
था इनके काथ में सिद्ध किये हुये स्नेहसे  
फोड़ी को आस्थापनवास्ति देवै ॥

कुष्ठ में अनुवासन प्रयोग ।  
घातोल्वणविरिक्तनिरुद्धमनुवासनार्हमा-  
लक्ष्य । फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैः॥  
साधयेत्स्नेहम् ॥

अर्थ—विरेचन और निरुद्धण देने के पश्चा  
त् यदि रोग वाताधिक्य हो तो रोगी को

मेनकल, मुलहठी, नीम, कुडाकी छाल और  
परवल इनके साथ सिद्ध किये हुए स्नेहकी  
अनुवासन वास्ति देवै यदि यह अनुवासन  
के योग्य हो ।

कुष्ठमें नस्य प्रयोग ।  
दन्तीमधूकसेन्धवफणिज्झकाःपिप्पली-  
करज्जफलम् । नस्यस्यात्सविडङ्गक्रिमि  
कुष्ठकफप्रदोपन्नम् ॥

अर्थ—दन्ती, मुलहठी, सेंधानमक, फणि-  
ज्झक, पीपल, कंजा और घायविडंग इनकी  
नस्य देने से क्रिमिरोग कुष्ठ और कफप्रदोप  
नष्ट होजाते हैं ।

अन्य क्रम ।  
वैरेचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशाम्ये-  
न्ति । क्रिमयःकुष्ठकिलासप्रयोजितैरुत्त-  
माङ्गस्थाः ॥ स्थिरकाठिनमण्डलानांखि-  
न्नानांस्तरमणालीभिः । कूर्चविघटितां  
नारक्तोत्केशोपनेतव्यः ॥

अर्थ—सूत्रस्थान में जो विरेचनकर्त्ता  
धूम वर्णन किये गये हैं उन के छेनेसे शि-  
रस्थ क्रिमिरोग, कुष्ठ और किलास शीघ्र  
नष्ट होजाते हैं ।

स्थिर और कठोर चकत्तों को जो प्रस्तर  
स्वेदनकी रीति से स्वेदित किये गये हैं  
अथवा कूर्च से विघटित किये गयेहैं उनके  
उत्कलेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ।

रक्तमोक्षणविधि ।  
आनूपवारिजानांमांसानांपोट्टलैःसुखी-  
णैश्च ॥ स्विन्नोत्स्थिजं विलिखेत्कुष्ठंती-  
क्ष्णेनशस्त्रेण-॥ शोधरागमार्थमथवाशृङ्गा

लावूभिराहरेद्रक्तम् । मच्छित्तमल्पकुष्ठं  
विरेचयेद्वाजलोकाभिः ॥ येलेषाःकुष्ठा  
नांयुज्यन्तेनिर्हतास्त्रदोषाणाम् । संशो-  
पिताशयानांसद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥

अर्थ—आनूप और औदक पशु पक्षियों  
के मांसकी सुखोष्ण पोदलियोंसे अग्नि और  
उत्प्लव्य कुष्ठका तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर नि-  
कालनेके लिये लेखन कौ अथवा साँगीऔ-  
र अलावूसे रक्तको निकाले तथा क्षुद्र कुष्ठ  
में पछनालगाकर जोकोसे रुधिरको निकाले  
कोष्ठके शुद्ध होने पर और रुधिर त-  
था दोषोंके निकालनेपर जो लेप किये जा-  
ते हैं वे तत्काल फलप्रद होतेहैं ।

येषुनशस्त्रकमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानि  
स्युः । तेषुनिपात्यक्षारंरक्तंचदोषचनिः  
स्त्राव्य ॥ पापाणकठिनपरुषेष्टेकुष्ठे  
स्थिरेपुराणेच ॥ पीतागदस्यकार्योविषैः  
मदेहोऽगदैधानु ॥ स्तब्धानिमृत्सुप्ता  
न्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चदन्ती  
त्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥  
जात्यर्कनिम्बकुटजैर्वापत्रैःशस्तैःसगुद्रफे-  
नैर्वा । घृष्टानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदे-  
ह्यानि ॥

अर्थ—जिन कुष्ठोंमें शस्त्र काम नहीं दे-  
ता है और जिनमें केवल त्वचा का नाश  
होताहै उनमें क्षार लगाकर रक्त और दोषों  
को निकाल डाले ।

जो कुष्ठ पथरके समान कठोर, परुष  
सुत; स्थिर और पुराना होता है उसमें रो-  
गीको विपनाशक औषधों का पान करावे ।  
तत्पश्चात् विष औषधियोंका लेपन करे ।

जो स्तब्ध, अत्यन्त शून्यता से फैली  
हुई पसीनासहित और खुजलीयुक्त होती है  
उनको दन्ती; त्रिफला; कनेर; कंजा; नीम  
कीछाल; बुडाकी छाल इनकी कूर्चसे अथ-  
वा चमेली; आक; नीम और कुडाके पत्तों  
से; अथवा सखोंसे; अथवा समुद्रफेनेसे अ-  
थवा गोबरसे रिगड़कर प्रलेप करे ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठघ्नंरक्तमोक्तं पित्तकुष्ठानांकार्यं  
म् । कफपित्तरक्तहरणंतिक्तकपायैःप्रश-  
मनञ्चसर्पीपि ॥ तिक्तकानिचयञ्चान्य  
द्रक्पित्तनुत्कर्ष । बाह्याभ्यन्तरमभ्यन्तत्का-  
र्येपित्तकुष्ठघ्नम् ॥

अर्थ—यातकुष्ठ और कफकुष्ठकी चिकि-  
त्सा कही गई है और पित्तकुष्ठमें कफपित्त  
तथा रक्तनाशककर्म करना चाहिये । ति-  
क्तकपाय; तिक्तघृत तथा अन्य रक्तपित्तना-  
शक कर्म एवं पित्तकुष्ठ के नाशकरने वाले  
उत्तम २ बाह्य और आभ्यन्तरकर्म करने  
चाहिये ।

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनु-  
त्थोक्तम् । वक्ष्यामिशमनंभायस्त्वग्दो-  
षसाधन्यात् ॥

अर्थ—यातपित्तादि दोषोंकी अधिकताके  
अनुसार कुष्ठनाशक कर्मोंका वर्णन किया ग-  
या है अब त्वग्दोषकी समानता से कुष्ठना-  
शक कर्मोंका वर्णन करेंगे । सब प्रकार के  
कोष्ठ त्वचाको बिगाडतेहैं इस लिये सबप्रका-  
र की कोष्ठोंमें त्वग्दोष साधारण धर्म है ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दावीरसाञ्जनवागोमूत्रेणप्रवाधतेकुष्ठम् ।  
अभयाप्रयोजितावामांसव्योपगुडतैलाः ॥

अर्थ ....दारुहल्ली वा रसौत वा हरदका  
गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट  
हो जाता है; इसमें मांस, सोंठ, मिरच, पपिल,  
गुड तेलका त्याग करदे ।

कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवांस्याःपृथक्पलाशं  
त्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणफदुरो  
हिणीच भागाद्विकानागरपादयुक्ता ॥  
पलंत्वयैकसहचूर्णितानांजलेमृतदोपहरं  
पिवेन्ना । जीर्णैरसेधन्वमृगग्रजानांपुरा  
णशाल्योदनमाददीत ॥ कुष्ठानिश्चोफग्रह  
णमिदोपं अर्शासिकृच्छ्राणिहलीमकञ्च  
पद्मात्रयोगेननिहन्तिचैव हृदस्तिशूलंवि  
पमज्वरञ्च ॥

अर्थ—पुरखलकी जड़; इन्द्रायणकीजड़;  
त्रिफला की त्वचा [ गुठली निकालकर ]  
त्रायमाणा; गुडकी ये आधे २ पल  
लेवै और सोंठ तोले भर लेकर सबका चू-  
र्णकर लेवै; इस चूर्ण मेंसे प्रतिदिन एकपल  
लेकर जल के साथ औटाकर पान करें ।  
औषध को पचनेपर धन्वदेशस्थ पशुओंके  
मांसरसके साथ पुराने शालीचांवलोंका भात  
छः दिवस तक सेवन करनेसे शोक, कोढ़  
ग्रहणीदोष, कृच्छ्राप्यअर्श, हर्लीमक, हृदशूल;  
वस्तिशूल, और विपमज्वर ये नष्टहोजाते हैं

कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग ।

मुस्तंव्योत्रिफलामक्षिष्ठादारुपञ्चमू  
लेदे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्च ।

त्रकोमूर्वा ॥ चूर्णतर्पणभागैर्नवभिःसंयो-  
जितंसमध्वाज्यम् । श्रेष्ठकुष्ठानेवर्हणमेत  
त्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ श्वयथुंसपाण्डुरोगं  
श्वितंग्रहणीप्रदोपमर्शासि । ब्रध्मभगन्द

रपिडकाकण्डूकोठांश्चविनिहन्ति ॥

अर्थ— मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला मजीठ  
दारुहल्ली, लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल सप्तपर्ण  
नीमकी छाल, इन्द्रायण की जड़, चीता, मरो-  
डफली, ये सब समान भागलेकर नौगुना जौ  
का सत्तू मिलाकर शहत और घृतके साथ  
सेवन करें । यह प्रयोग कुष्ठ के नाश करने  
में अत्यन्त उत्तम है । यह शोथ, पाण्डुरोग,  
श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, ब्रध्म, भगन्दर,  
पिडका कण्डू, और कोढ़ इन सब रोगोंको  
दूर करता है ।

मुस्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविपाकटुकानिम्बकालिंगकाव  
चापटोलानाम् । मागधिकारजनीद्वयपत्र  
कमूर्वाविशालानाम् ॥ भूनिम्बपलाशा  
नामदद्याद्विपलंततस्त्रिद्वद्वित्रिगुणा ।  
तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णमुस्तिनुत्परमम् ॥

अर्थ—त्रिफला अतीस, कुटकी नीमकी  
छाल, इन्द्रजौ, वच, परवल, हल्ली, दारुह-  
ल्ली, पद्माक्ष, मरोडफली, इन्द्रायणकीजड़,  
चिरायता, टाककीछाल इनमें से प्रत्येक दो  
दो पल लेवै, निम्बोथ चारपल और बारहपल,  
ब्राह्मी इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करने  
से मुस्तकुष्ठ नष्टहोता है ।

मध्वासवका प्रयोग ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपयिन्वातद्वमेनतो ।



यार्थः ॥ क्षौद्रप्रस्थकार्यः कार्येतेचाष्टपल  
केच ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्ट पलंप्राप्ति  
पेतथामूनि । त्रिफलात्वक्मरिचम्पत्रङ्क-  
नकञ्चकपर्शम् ॥ मत्स्याण्डिकामधुममा  
तन्मासमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः  
कुष्ठाकिलासेशमयाताः ॥

अर्थ—खैरकी लकड़ी और देवदारु का  
गूदा इनको इनही के रस में पकावै जब  
पकजाय तब उस में दोप्रस्थ क्षौद्र, आठ २  
पल उक्त दोनों चूर्ण, आठ पल लोहचूर्ण  
और एक २ कर्ष त्रिफला की त्वचा, का-  
लीमिरच, तेजपात और धतूरा, शहतके व-  
रावर मिश्री इन सबको भिठाकर एक म-  
हीने पर्यंत छोड़े के पात्रमें भरकर रखदे,  
इस तरह मध्वासव तयार होता है, इसेके  
सेवन करनेसे कुष्ठ और किलासरोग नष्ट  
होजाते हैं ।

कनकविन्दु अरिष्ठ ।

स्वदिरकपायद्रोणकुम्भेघृतभावितेसमा-  
धान्य । द्रव्याणिचूर्णितानिदेवानित्वष्ट  
पलकानि । त्रिफलाव्योषविडङ्गरजनी  
मुस्ताद्वरूपकेन्द्रयवा । सौवर्णत्वक्छिन्ना  
मासंनिदधीतथान्यराशौच । प्रातःप्रातः  
पिवतःपुतयामासेनकुष्ठहृद्भगति । पक्षे  
णार्शःश्वासभगन्दरंकासकिलासदुष्टम् ।  
पाण्डुसवातरकंहन्यात्सप्रमेहशोषाञ्च ।  
नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनक  
विन्दुम् ॥

अर्थ—खैरकी एक द्रोण क्वाथ घीसे  
चिकने कियेहुए बर्तनमें भरकर उसमें नीचे

लिखेहुए द्रव्य प्रत्येक आठ आठ पल डाल  
देवै, जैसे- त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल,  
बायविडंग, हलदी, नागरमोथा, अहस्ता,  
इन्द्रजौ, गिलोय और धतूरे की जड़की छाल  
इन्है डालकर उस घड़े को धानके ढेरमें एक  
महिने तक गढा रहने दे फिर इसका प्रति  
दिन प्रातःकाल सेवन करनेसे एक महिनेमें  
कुष्ठ जाता रहना है और पन्द्रह दिन सेवन  
करने से वक्त्रासीर, श्वास, भगंदर, खांसी,  
किलास, पांडुरोग, वातरक्त प्रमेह और शोष  
दूर होजाते हैं । इस कनकविन्दुनामक अरिष्ट  
के सेवनसे मनुष्य सुवर्ण के रंग के सदृश  
होजाताहै ।

कुष्ठेष्वनिलरूपकृतेष्वेवंपेयस्तथैवपित्ते-  
षु । कृतमालकायश्चाप्येपविशेषात्कफ  
कृतेषु ॥

अर्थ—घातकफसे उत्पन्न हुए कुष्ठमें तथा  
पित्तज कोष्ठमें अमलतास का काथ पीना  
चाहिये और कफज कोष्ठमें तो यह क्वाथ  
विशेष उपयोगी होता है ।

श्वित्रकुष्टनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवश्चर्मादःसचित्रकः श्वित्ररोग  
कुष्ठघ्नः । क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधु  
योगसंयुक्तः ॥

अर्थ—त्रिफला का आसव और मोड  
( गुडकी शराव ) इनको चाँतेके साथ  
पान करनेसे श्वित्राण्ड नष्ट होगता है  
अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दलचीनी  
इन के काथ में शहत भिठाकर गुडके मय  
के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्या ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषु शा-  
कानिचित्तकानि । भक्ष्यातकैश्च त्रिफलैः  
सनिम्बैर्युक्तानि चान्नानि घृतानि चैव ॥  
पुराणधान्यान्पथजान् इलानि मांसानि युद्धा-

श्च पटोलयुक्ताः । शस्तान्गुर्वम्लपयोद-  
धीनि नान्नूपमत्स्थानगुडास्तिलांश्च ॥

अर्थ—हलकाभन्न, तित्तराफ, भिलाया  
त्रिफला और मांसके साथ सिद्ध किया इ-  
आ अन्न और घृत, पुराने चावल, जांग-  
लपशुओं का मांस, मूंग, परवल ये सब कु-  
ष्ठरोग पर हितकारी हैं । भारी, खटा अन्न,  
दूध, दही, आनूपजों की का मांस, मछली, गुड  
और तिल ये सब अहित हैं ।

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दावींशतपुष्पाचित्रकं विडङ्गञ्च ।  
फण्डलेपनमिष्टरसाञ्जनञ्चाभयाचैव ॥

अर्थ—इलायची, कूठ, दारुहलदी, सोंफ  
चीता, वायवईडग, रसीत और हरड इनका  
लेप कुष्ठ रोग पर करना चाहिये ।

दूसरा लेप

चित्रकपेलाविम्वीट्टपकात्रिदुर्कनागरक-  
म् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाश-  
स्य ॥ क्षारणगवाम्मूत्रक्षुतनेतेनास्यमण्ड-  
लान्याशु । भिद्यन्ते च विशन्ति चिलसा-  
न्यर्काभितप्तानि ॥

अर्थ....चीता, इलायची, कंदूरी, अहसा,  
निसोथ, आक और सोंठ इनका चूर्ण कर  
ले फिर गौके मूत्रमें ढाकका क्षार मिला कर  
उसे छानले इस छने हुए मूत्रकी पूर्वोक्त

चूर्णको आठ दिन तक भावना देवे, फिर  
इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूप से उस-  
स्थानको तपावे, इस लेपसे मण्डल कुष्ठ व-  
हुत शीघ्र भिन्न होकर विलीन हो जाता है ।

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमरिचं लवणं रजनीतगरं सुधागृहोद्भू-  
मः । मूत्रांपित्तक्षारः पालाशः कुष्ठनुरलेपः ॥  
त्रयुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुत्फल्गुचित्रकं  
वृहती । गोधारसः सलवणं दारुचमूत्रञ्च  
मण्डलनुत् ॥ कदलीपलाशपाटलिनिबु-  
लक्षाराम्भसाप्रसवेन । मांसेपुतोयकार्य-  
कार्यम्पिष्टे च किण्वे च ॥ तैमोदकः सुजातः कि-  
ण्वैर्जनितमलेपनं शस्तम् । मण्डलकुष्ठवि-  
नाशनमातपसंस्थे किमिच्छ ॥

अर्थ....जटामासी, कालीमिरच, सेंधा न-  
नम, हलदी, तगर, गृहधूम, मूत्र पित्त और  
ढाकका खार इनका लेप करने से कुष्ठरोग  
जाता रहता है । अथवा रांग, सीसा, लोहचू-  
र्ण, चीता और बड़ी कटेरी इनका लेप कर-  
ने से मण्डल कुष्ठरोग जाता रहता है अथ-  
वा गोधारस ( छताविशेष ) सेंधानमक, दारु-  
हलदी और गोमूत्र इनका लेप करने से  
मण्डलकुष्ठ दूर होजाता है अथवा केली, ढा-  
क, पाटला, हिज्जल इन के क्षारके शुद्ध  
जल में मांसका पाक करे फिर उसी जलमें  
चावलों को पीसकर उसमें मुराकिष्य मिला  
दे । यह सब मिलकर मोदक के समान गो-  
लासा बन जायगा फिर, इसमें से मुराकिष्य  
निकालकर लेप करनेसे मण्डल कुष्ठ जाता-  
रहता है और लेपित भागको धूप में तपा-  
नेसे किमिरोग नष्ट होजाता है ।

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तमदनं त्रिफलाकरञ्ज आरग्वधं कलि-  
ङ्गयथाः । दावीं सप्तपर्णास्नानं सिद्धार्थं  
कनम ॥ एकपायो वमनं विरेचनं वर्ण-  
कस्तथोद्धर्षः । त्वग्दोषकुष्ठशोफनवाहनः  
पाण्डुरोगघ्नः ॥ कुष्ठकरञ्जबीजान्येदं गजः  
कुष्ठमूदनोलेपः । प्रघ्नाडवीजसैन्धवर-  
साञ्जनकपित्थरोध्राश्च ॥ करवीरमूल  
कल्कः कुटजकरञ्जयोः फलन्त्वचन्दार्व्याः  
सुमनः प्रवाल युक्तोलेपः कुष्ठग्रहः सिद्धः ॥  
रोधस्य धातकीनां वत्सकबीजस्य नक्तमा-  
लस्या कल्कश्च मालतीनां कुष्ठे पृथुर्त्तनालेपः  
शैरीपी त्वक्पुष्पकार्पास्या राजवृक्षपत्रा-  
णि । पिष्ट्वा च काफभाची चतुर्विधः कुष्ठ-  
नुलेपः ॥

अर्थ—मोथा, मेनफल, त्रिफला, कंजा  
अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी, सप्तपर्ण  
और सफेद सरसों इनको डालकर गरम  
किये हुए जलसे स्नान करें । तथा इसी  
कपायको पान करानेसे वमन और विरेचन  
होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा इन्ही  
द्रव्योंके कल्कसे उबटना करने पर त्वचा  
के दोष, कुष्ठ, सूजन, प्रवाहन और पाण्डु-  
रोग जाते रहते हैं अथवा कूठ, कंजाके बी-  
ज, चकवड, इन का लेप करनेसे कुष्ठरोग  
शान्त होता है । अथवा चकवडके बीज,  
सैन्धानमक, और, रमौत, कैय, लोध, कनेर  
की जड़, कुडाकी छाल, कंजा, दारुहलदीकी  
छाल और फल, चमेली की कांपल इनका  
लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है ।

लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, कंजा और  
मालती इनको पीसकर देह पर मल और  
लेप करें तो कुष्ठ दूर होता है । सिरसकी  
छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और  
मकोय इन चार प्रकारका लेप करने से  
कुष्ठ रोग दूर होजाता है ॥

सातप्रकार के कपायादि योग ॥

दार्व्या रसाञ्जनस्य चानिम्बपटोलस्थखदि-  
रसारस्य । आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः  
सप्तपर्णस्य । इति पञ्चकाययोगानिर्दिष्टाः  
सप्तमश्च तिनिशस्य । स्नाने पाने च मता-  
स्तथा पटमञ्चास्थसारस्य ॥ आलेपनं प्रघ-  
र्षणमवचूर्णनमेत एव च कपायाः । तैलघृ-  
तपाकयोगे चैष्यन्ते कुष्ठशान्त्यर्थम् ॥

अर्थ—दारुहलदी और रसौतका काय  
नीमकी छाल और परबलका काय, सैर  
सारका काय, अमलतास और इन्द्रजौ का  
काय, त्रिफलाका काय, सप्तपर्णका काय  
और सातवां तिनिशका काय इन काथों  
का स्नान और पानमें प्रयोग करने से कु-  
ष्ठ जाता रहता है तथा तिनिशके सारका  
लेप, प्रघर्षण और अवचूर्णन [ चुकी ] भां  
हित है, इसीतरह उक्त कपायों में सिद्ध कि-  
या हुआ तेल और घीभी फण्टनाशक होता है

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमक्षिष्ठारोहिणीवत्ता-  
रननी । एकपायोऽभ्यस्तो हि निस्तक-  
फापि च जंकुष्ठम् ॥ एतैरेव च सर्पिः सिद्धं वा-  
तोत्थं जयति कुष्ठम् ॥ एष च कल्पो दृष्टः ख-  
दिरासनदाशनम्बानाम् ॥

अर्थ—त्रिस्तला, नीम, परवल, मजीठ, कुटकी, वच, हल्दी इनके कषायके पीने का अभ्यास करनेसे कफपित्त से उत्पन्न हृथः कुण्ठ जागा रहताहै । इसी कषाय में मिद्ध कियाहुआ घृत वाताधिक कुष्ठ को विजय करताहै । और यही विधि खैर, असन, दाहहल्दी और नीम के कषाय की है ।

### अन्यप्रयोग ॥

कुष्ठार्कतुरथकटफलमूलकवीजानिरोहिणी कटुका । कुटजफलोत्पलमुस्तंबृहतीकर वीरकाशीशम् ॥ एडगजनिम्बपाठादुराल भाचित्रकोविडंगञ्च । तिक्तेक्ष्वाकुबीजं कम्पिल्यकसर्पपत्राद्विधिं ॥ एतैस्तैलांसे लङ्कुष्ठधन्यांगएषालेपः । तन्मर्दनप्रघर्षणमवचूर्णनमेपएवेष्टः ॥

अर्थ—कूठ, आक, नीलाधोधा, कायफल, मूलीकेशीज, कुटकी, इन्द्रजै, नीलोत्तर, मोधा, बडीकटरी, कनेर, कसीस, चकवड, नीमकीछाल, पाठा, जवासा, चीता, बायाविडंग, कडवीतूरी के बीज, कवीला, सरसों, वच, दाहहल्दी, इनके कषायमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठनाशक है, तथा इन्हीं द्रव्योंके कल्कका लेप, मालिश, प्रघर्षण और अवचूर्णनभी हितकारक है ॥

### कनेर का तैल ॥

श्वेतकरवीरसोगोमूत्रांचित्तकोविडंगश्च कुष्ठपुतैलयोगाः सिद्धोयसम्मतोभिपजाम्

अर्थ—सफेद कनेरकारस, गोमूत्र, चीता, और बायाविडंग इनमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठनाशकहै इसपर सब वैद्यकी सम्मतिहै

### अन्यप्रयोग ॥

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्बत्सक्विडंगश्च कुष्ठार्कपुलसर्पपशिमुत्वग्रोहिणीकटुका ॥ एतैस्तैलांसाध्यकल्कैः पादांशिकैर्गोमूत्रम् दत्वा तैलचतुर्गुणमभ्यंगः कुष्ठकंदूघ्नः ॥

अर्थ—सफेद कनेरके पत्ते, जड़, छाल, इन्द्रजै, बायाविडंग, कूठ, आककीजड़, सरसों, सहजनेकीछाल, कूठकी छाल, कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर पकावै फिर इसकी मालिश करे तौ कोढ़ और खुजली दूर होती है ॥

### अन्यतैल ॥

तिक्तेक्ष्वाकुबीजं द्वैतुथैराचनाहरिद्रेहै । बृहतीफलमेरुण्डः सविशालः चित्रकोमूर्वा ॥ काशीशर्दिगुशिग्रून्पुष्पणसुरदारुतुम्बरुविडङ्गम् । लांगलकंकुटजत्वकटुकाख्यारोहिणीचैव ॥ सर्पपकल्कैरेतैर्मूत्रैश्चतुर्गुणसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नम् ॥

अर्थ—कडवीतूरीके बीज, दो प्रकार का धोधा, गांछेचन, दोनों हल्दी, कटरीकाफल, अण्डीकीजड़, इन्द्रायणकीजड़, चीता, मरोडफली, कसीस, हींग, सहजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, बायाविडंग, लांगली, कुडाकीछाल, कुटकी, और सरसों इनके कल्कमें तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकावे इस तैलका मर्दन करनेसे खुजली, कोढ़, वात और कफ नष्ट होजाते हैं ॥

कनकक्षीरतैल ॥

कनकक्षीरीशैलाभागीदन्तीफलानिमूल  
श्च । जातीफलानिमवालसर्पपलभुनवि  
दङ्गकरञ्जत्वक् ॥ समच्छदार्कपल्लवमू  
लत्वद्निम्बाचित्रकास्फीताः । गुञ्जैरण्ड  
बृहतीमूलकमुरसार्जकफलानि ॥ कुण्डपा  
ठामुस्तुतुम्बुरुमूर्वाचिसपहग्रन्था ॥ एद  
गजकदुजशिशुम्युपणभल्लातकस्रवकाः ॥  
हरितालमवाकपुष्पीतुत्यकम्पिलकामृता  
संगः ॥ सौराष्ट्रीकासीसंदार्वीत्वक्स  
जिकालवणम् ॥ कल्कैरैतैस्तैलंकरवीर  
कमूलपल्लवकपाये । सार्धपमथवातैलं  
गोमूत्रेचतुर्गुणेसाध्यम् ॥ स्थाप्यंकदुका  
लावुनिसिद्धंतेनास्यमण्डलान्याशु । भि-  
न्वात्रिपगभ्यंगाक्षिर्मीश्चकण्डूघोनिह  
न्यात्कुष्ठम् ॥

अर्थ—स्वर्णक्षीरी, मनासिल, भाङ्गी, द-  
न्तीफल, दन्तमूल, जायफल, चमेली के  
पत्ते, सफेदसरसों, लहसन, वायविडंग, कंजा  
कीछाल, सप्तपर्णी, आकके पत्ते, जड और  
छाल, नीमकीछाल, चीता, कोयल, चिरमठी,  
गरुड, बडीकटेरी, मूलक, मुरसातुलसी,  
अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठा, मोथा,  
धनियाँ, मूँवा पद्मन्या, वच, चकवड,  
कुडा, सहजना, त्रिकुटा, भिलाया, क्षवक,  
( तुलसीमेद ), हरताल, सौंफ, नीलायोथ,  
कवीला, अमृतासंग (मुर्दासिंग), सौराष्ट्र-  
देशकी मिट्टी, सीसा, दाखलदीकीछाल, स-  
जीलार, संधानमक, इनकेकल्क तथा कने-  
रकाँजड और पत्तों के कपायमें सरसोंकातैल

और उससे चौगुना गोमूत्र ढालकर तैल  
सिद्धकरे, इस तैलको तूथामें भरकर रखदेवे  
इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग  
कंदू तथा सब प्रकारके कुष्ठ दूर होताहै ।

सिध्मलेप ॥

कुष्ठंतमालपत्रंमरिचंसमनःशिलंसकाशी-  
शम् । तैलेनयुक्तमुचितं सप्ताहंभाजनेताम्रे ॥  
तेनालिप्तंसिध्मं सप्ताहाद्व्येति तिष्ठतोद्यमौ  
मासान्नरं किलासस्नानंमुक्त्वा विधुद्ध  
तनोः ॥

अर्थ—रूठ, तमाखूकापत्ता, कालीमिरच,  
मनसिल, कसीस इन सबका चूर्णबनाकर ते-  
लमें सानकर सात दिवसतक तांबेके पात्रमें  
रखदेवे, फिर इसको लगाकर घूमेमें बैठजा-  
या करे, ऐसा करनेसे सिध्मकुष्ठ जातारहताहै ।  
तथा शुद्धदेहवाला मनुष्य इसको एक मही-  
नेतक लगावे तो किलास बुण्ड जातारहता-  
है परन्तु इसमें स्नानका निवेधहै ॥

अन्य तैल ।

सर्पपकरञ्जकोशातकीनातैलान्यथेगुदी  
नाश्च ॥ कुष्ठेषुहितान्याहुस्तैलयच्चारिख-  
दिरस्यतैलानि ।

अर्थ—सरसों, कंजा, तारक के बीज, गो-  
दी और खैर इन सबके जुदे जुदे तैल कु-  
ष्ठनाशक होतेहै ।

विपादिकी की चिकित्सा ।

जीवन्तीमाञ्जिष्ठादार्वाकाम्पिलकस्तथातु-  
त्यम् ॥ एषवृततैलपाकःसिद्धःसिद्धेचस  
र्जरसःक्षेप्यः । समधूच्छिष्टोविपादिकाते  
नशाम्यतीत्युक्तम् । चर्मैककुष्ठ किटिम्कु-  
ष्ठशाम्यत्यलसकञ्च ।

अर्थ—जीवन्ती, मजीठ, दाहलदी, क-  
धीला, नीलाधोधा, इनमें घृत और तेलको  
एक साथ पकावै फिर पकतेसमय रात औ-  
र मोम डालदे इसको निवारिमे भरदेनेसे नि-  
वाई जाती रहतीहै, तथा चर्मकुष्ठ एक कु-  
ष्ठ किटिप, कुष्ठ, और अलसक ये नष्ट  
होजातेहैं ।

मण्डल कुष्ठपरलेप ।

किण्वं वराहहरिं पृथ्वीकासैः धवञ्चलेपः  
स्पात् ॥ लेपो योज्यः कुस्तुम्बुरुणिकुष्ठ  
श्च मण्डलमुत् । पूर्तीकादारुजटिलापक्व  
सुराक्षौद्रमुद्रपर्णीच ॥ लेपः सकाफणा  
सोमण्डलकुष्ठापहः सिद्धः ॥

अर्थ—सुराजीज, सूअरका रुधिर, काला  
जीरा, संधानमक इनका लेप तथा इसमें ध-  
निपा और कूठ मिलाकर लेप करनेसे म-  
ण्डल कुष्ठ दूर होजाताहै । अथवा कंजा दे-  
वदारु, जटामांसी पकमय, शहत, मुद्रपर्णी  
और काकनासा इनका लेप करने से भी  
मण्डल कुष्ठ नष्ट होताहै ।

छः प्रकार के लेप

चित्रकशोभाञ्जनकी गुह्यच्यपामार्गदेवदा  
रुणि ॥ खदिरोधवश्चलेपः श्यामादन्तीद्र-  
वन्तीच । लाक्षारसाञ्जनलापुनर्नवाचे-  
तिकुष्ठिनोलेपाः ॥ दधिमण्डयुताः सर्वदे-  
याः पण्माखतकफनाः ।

अर्थ—चीता और सहजना । गिलोय,  
ओगा, देवदार । खैर और धवखैर । श्यामा-  
दन्ती और द्रवन्ती । लाक्ष, रक्षित और  
इशायची । तथा पुनर्नवा । इन छ- आंको

पृथक् पृथक् दधिमण्डमें मित्राकर लेप क-  
रनेसे कुष्ठ तथा वातकफ दूर होतेहैं ।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्पपैः क्रिमिघ्नैश्च  
क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यंदद्रुकुष्ठश्च शममुपैति ।  
एडगजः सर्जरमोमूलकवीजश्च सिध्मकुष्ठा  
नाम् ॥ काञ्जिकयुक्तन्तुपृथग्दम्पतमिदमुद्वर्त्त  
नंक्रमशोलेपाः ॥

अर्थ....चकवड, कूठ, संधानमक, सौवी-  
रक, सरसों और वायविडंग इनका लेप क-  
रनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दाद  
जाते रहतेहैं । अथवा चकवड, रात, मूडी  
के बीज इनको पृथक् पृथक् काजमें पीस  
कर उबटना और लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ  
जाता रहताहै ।

अन्य प्रयोग ।

वासात्रिफलापाने स्नाने चोद्वर्त्तने मलेपे च  
वृहतीसेव्यपटोलाः सशारिवारोहिणीचैव  
खदिरावघातककुभारोहीतककुटजधव  
निम्बाः ॥ सप्तच्छदकरवीराशस्पन्ते  
स्नानेपानेषु ॥

अर्थ....अडूसा और त्रिफला इनको पीने  
स्नान करने, उबटने और लेपमें प्रयुक्त क-  
रना चाहिये अथवा बड़ी फटेरी, खस,  
परवल, सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रो  
हेडा, कुडा, धी, नीम, सप्तार्ण, फनेर इनका  
स्नान वा पीनेमें प्रयोग करना चाहिये ।

अभ्यंग प्रयोग ।

जलवाप्यलोहकेशरपत्रप्लवचन्दनमृणा-  
लानि ॥ भांगोत्तराणिसिद्धमलेपनं पि  
चकफकुष्ठे । यष्ट्याद्वरोधपत्रकपटोल

पिचुमर्दचन्दनरसाश्च ॥ स्नानेपानेच  
हिताःशुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः । आले  
पनप्रियंगुहरेणुकावत्सकस्यचफलानि ॥  
सातिविपाचसेव्यासचन्दनारोहिणीक-  
टुका । तित्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगोदणपान  
कुष्ठेष्ट ॥ तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्प-  
लयुतेश्चाभ्यङ्गः ।

अर्थ—नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, केसर-  
तेजपात, केवटी मोथा, रक्तचन्दन, कमल  
नाल, इनका उत्तरोत्तर एक एक भाग  
आधिक लेकर पित्तकफ कुष्ठमें लेप करना  
चाहिये ( नेत्रवाला एक भाग, कुडा दोभाग,  
लोहचूर्ण तीन भाग, इसी तरह और भी ) ।  
अथवा मुलहटी, लोध, पद्माक्ष, परवल, नीम  
और रक्तचन्दन इनका ठंडा काथ स्नान  
और पीनेमें देनेसे पित्तकुष्ठियोंको हित है ।  
अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस, खस,  
रक्तचन्दन, कुटकी इन द्रव्योंका लेप अथवा  
तित्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घी  
अथवा शतधौत वा सहस्रधौत घृत का लेप  
करनेसे दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होताहै । इसी  
तरह रक्तचन्दन, मुलहटी पुण्डरिया और  
नीलोत्पल इनसे सिद्ध किये हुए तैलका म-  
र्दनभी दाहयुक्त कुष्ठ में हितहै ॥

### घृतप्रयोग ॥

कृदेप्रयततिचांगेदाहे विस्फोटकेसर्च-  
दले ॥ शीताःप्रदेहसेकाव्यधनविरेचको  
घृतंतित्तम् । खदिरघृतंनिम्बघृतंदावी  
घृतमुत्तमपटोलघृतम् ॥ कुष्ठेपुरक्तपित्त  
प्रवलेषुभिपग्निजतांसिद्धम् ।

अर्थ—कुष्ठमें कंलद हानेसे, अथवा किसी  
अंगके गिरपड़नेसे, विस्फोटक वा चर्मदल  
में शीतल लेप, सेक तथा शिराध्यधन, वि-  
रेचन, तित्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दा-  
वीघृत और पटोलघृत उत्तम होते हैं । ये-  
ही प्रयोग उस कुष्ठमें हितकर हैं जिनमें  
रक्तपित्त प्रवळ होते हैं ॥

### अन्यप्रयोग ।

त्रिफलात्वचोर्द्धपलिकाः पटोलपत्रञ्च  
कार्षिकाःशेषाः ॥ कडुरोहिणीसनिम्बा  
यष्ट्याहात्रायमाणाच । एकपायःसा  
ध्योदस्वादिपलमसूराणाम् ॥ सलिलाद-  
केष्टुभागेशेषेपूतोरसोग्राहः । तित्तकपाया  
घृतलंचतुष्पलसर्पिषश्चपक्तव्यम् ॥ याव-  
त्स्यादष्टपलशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वात  
पित्तकुष्ठंवीसर्पवातशोणितंप्रवळम् ॥ ज्व-  
रदाहगुल्मचिद्राधिविभ्रमाविस्फोटकान्  
हन्ति ॥

अर्थ—त्रिफला की त्वचा आधेपल, पटो-  
लपत्र आधेपल और शेष कुटकी, नीम मु-  
लहटी, त्रायमाणा ये एक २ कर्षलेवै तथा  
दो पल मसूर मिलाकर एक आढ़क जल  
में इनका काथ करे जब आठवांभाग शेष  
रहजाय तब छानलेवै । इस काथमेंसे आठ  
पल लेकर चारपल घृत के साथ पकावै  
जब आठपल शेष रहजाय तब गुनगुना गं-  
रम पीछे इसके पान करनेसे वातपित्तजन्य  
कुष्ठ, विसर्प, प्रवळ वातरक्त, ज्वर, दाह,  
गुल्म, विद्रधि, विभ्रम और विस्फोटक स-  
ब दूर होजाते हैं ॥

षट्पलघृत ॥

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभातित्करोहिणी  
त्रिफलम् ॥ कुर्यादर्द्धपलांशपर्पटकत्राय  
माणाश्च । सलिलाढकासिद्धानांरसेऽष्ट-  
भागस्थितेक्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिरा-  
ततित्कमागधिकात्रायमाणाश्च ।  
मुस्तंवत्सकवीजंकल्कीकृत्वार्द्धकार्षिकान्  
भागान् ॥ नयसर्पिषश्चषट्पलमेतत्सि-  
द्धघृतं पेयम् । कुष्ठज्वरगुल्माशोप्रहणीपा  
ण्ड्यामयभयधुहारि ॥ वीसर्पपिण्डक  
पामाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ।

अर्थ—नीम, परवल, दारुहन्दी, जवा-  
सा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्राय-  
माणा इनको आधे २ पल लेकर एक आ-  
ढक जलमें चढादे जब आठवांभाग शेष  
रहजाय तब उतारकर छान लेंगे । फिर इस  
में रक्तचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा,  
मोधा, इन्द्रजौ इनको आधे २ कर्ष लेकर  
घोटडाँले और ताजी घी छःपल मिलाकर  
सिद्धकरके इस घृतको पानकरें तौ कुष्ठ,  
ज्वर, गुल्म, अर्श, प्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन,  
विसर्प, पिडका, पामा, कण्डू, मद तथा ग-  
लगण्ड दूरहोजाते हैं ॥

महातिक्तघृत ॥

सप्तच्छदंप्रतिविपंशम्पाकंतिक्तरोहिणीपा-  
ठाम् ॥ मुस्तमुशीरंत्रिफलांपटोलपिचुर्मदं  
पर्पटकम् । धन्वयवाशंचन्दनमुपकुल्यांप  
अकरंजन्यौच ॥ पद्मग्रन्थासविशालांश-  
तावरींशारिवेचोभे । वत्सकवीजवासां  
मूर्वाममृतंकिराततिक्तञ्च ॥ कल्कान्

कुर्यान्मतिमान् यष्टयाह्वांत्रायमाणा  
श्च । कल्कस्यचतुर्भागेजलमष्टगुणंरसोऽ  
मृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्त  
त्सर्पिपाययोत्तिदम् । कुष्ठानिरक्तापित्त  
प्रबलान्यशोसिरक्तवाहीनि ॥ वीसर्परक्त  
पित्तंवातामृक्पाण्डुरोगञ्च । विस्फोट  
कान्सपामानुन्मादंकामलांज्वरंकण्डूम् ॥  
हृद्रोगं गुल्मपिडका असृग्दरगण्डमालाञ्च  
ह्न्यादेतत्सर्पिःपीतंकालेयथाबलंसद्यः ॥  
योगशतेरप्यजितान्महाविकारान्महाति-  
क्तम् ।

अर्थ—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कु-  
टकी, पाठा, मोधा, खस, मिफला, परवल,  
नीम, पित्तपापडा, जवासा, रक्तचन्दन, पी-  
पल, पन्नाख, दौनौहलदी, वच, इन्द्रायण  
की जड़, सितावर, दोनों प्रकारके सारिवा,  
इन्द्रजौ, अइसा, मरोडफली, मिलोय, चि-  
रायता, मुलहठी और त्रायमाणा इनका  
कल्क करें, इसका चौथाईघृत, घृत से अष्ट-  
गुना जल, घृत से दूना आंवलेका रस इन  
में सिद्ध कियाइआ घृतपान करावें । इस  
घृतके पान करने से रक्तपित्ताधिक्य कुष्ठ,  
खूर्नाववासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पा-  
ण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, का  
मला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका,  
रक्तप्रदर और गण्डमालारोग शांघही दूर  
होजाते हैं, यदि यह ग्रन्थके अनुसार उचि-  
तकालमें पान कियाजाय तौ जो रोग सें-  
कडों योगों से भी अच्छे नहीं हुएहैं वे इस  
महातिक्तघृत से शांघ जाते रहते हैं ॥



दोपेहतेपनीतिरक्तेवाह्यन्तरेकृतेक्षमना स्ने-  
हेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्त्ततेसाध्यम् ॥

अर्थ—दोपोंके दूर होनेपर, फस्त से वि-  
गडेहुएरक्तके निकलने पर, बाह्य और आ-  
न्तरिक शमन होने से, तथा उचितकालमें  
स्नेह प्रयोगसे जो साध्यकुष्ठ शान्त होजाता  
है वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै ।

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाः पञ्चशिक्षापाशणयोस्तुले  
तुलाद्वासर्वपैवैतेकरञ्जारिष्टयेतसाः । प-  
र्पटःकुटजश्चैववृषःकुम्भिहरस्तथा । हारि-  
द्रोक्तमालश्वगुह्यचोत्रिफलात्रिष्टु । सप्त-  
पर्णश्चसल्लुणादशद्रोणेपुवारिणः । धा-  
त्रीरसंचतुल्यांशसापिधंश्चाढकपचेत् ॥  
अष्टभागावशेषस्तुक्पायमवतारयेत् ।  
महातिक्तककैकैस्तुयथाकैःपलसीम्मतैः॥  
निहान्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गानिसेवना-  
त्महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारमुत्तु॥

अर्थ—खदिरकीलकड़ी पांच तुला, शीशम और  
असन एक एक तुला; कंजा, नीम की छाल, वेत,  
पितपापडा, कुडा, अडूसा, वाय विडंग, दोनों हलदी  
अलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोथ, सप्तपर्णी । ये  
सब कुटीहुई आधे तुला दशद्रोण जलमें चढ़ा  
देवै, जब अष्टमांश शेष रहजाय तब उतारकर  
छान लेवै फिर इसमें इसकेबराबर आंवले का  
रस और एक आढक घृत तथा महातिक्त  
घृतमें कहे हुए एक-एक पल सब द्रव्य ले-  
कर उसमें डालकर पाक करै । इस घृतका  
पान और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब  
प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं, यह महा खदिर  
घृत अत्यन्त कुष्ठनाशक होताहै ।

क्रिमिनाशकप्रयोग ।

मपतत्सुलसीकामस्युतेपुगात्रेपुजन्तुदग्धेषु॥  
मूर्धनिम्बविडङ्गेस्नानं पानं प्रदेहथ । वृष-  
कुटजसप्तपर्णाः करवीरकरञ्जानिम्बाथ ॥  
स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदःमगोमूत्रा ॥  
पानाहारविधानेप्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच ॥  
क्रिमिनाशनांविडंगंविशिष्यतेकुष्ठहृत्खदिरः

अर्थ—जो कोई ऊंगादव गलकर गिर  
पड़ा हो, शरीरमें से लसीका निकलती  
हो या फोड़े-पड़ गयेहों तो गोमूत्र, वाय-  
त्रि ग और नीम इनको पृथक् २ वा मिश्र  
कर काथ करके पीने वा स्नान करने में  
प्रयुक्त करै अथवा लेपकरै । अथवा अडूसा  
कुडा, सप्तपर्ण, कनेर, कंजा, नीम, इन को  
गोमूत्र में सिद्ध करके रनान, पान और  
लेपमें प्रयुक्त करनेसे क्रिमिकुष्ठ जाना रहताहै  
खाने, पीने प्रसेक, धूपन और प्रदेह में  
प्रयोग किये जानेसे वायविडंग और खैर  
विशेष करके कुष्ठनाशक होते हैं

अन्य प्रयोग ।

एदगजःसविडंगोमूलान्यारग्वधस्यकुष्ठा-  
नाम् । उदालनंश्वदन्तागोद्वयराहोप्लव-  
न्तादच ॥ एदगजःसविडंगोरजनीद्वयरा-  
जवृक्षमूलञ्च । कुष्ठोदालनमयसपिप्पली  
पाकलंयोज्यम् ॥

अर्थ—चकवड, वायविडंग, कमन्तासकी  
जड़ तथा कुत्ता, गो, घोडा, सूअर और ऊं-  
ट इन के दांतों को घिसकर कुष्ठपर उबटना  
करै । अथवा चकवडके बीज, वायविडंग,  
हलदी, दाहहलदी, अमन्तास की जड़,  
पीपठ और पाटला इनका भी उबटना करै॥

श्वित्रकुष्ठपर प्रयोग ।

श्वित्राणां प्रशमार्थं प्रयोक्तव्यं सर्वतो विभु  
द्धानाम् । श्वित्रे त्सं सनमग्न्यं मलपूरसइष्य  
ते सगुडः ॥ तं पीत्वा सुस्निग्धो यथा वल्लभः  
र्यपादसन्तापम् । सेवितविरिक्तश्च यद्दं  
पिपासुः पिबेत् पेयम् ॥ श्वित्रेऽङ्ग्रेयस्फोट  
जायन्तं कण्टकेन ताभिन्द्यात् । स्फोटेषु वि  
च्छ्रुतेषु प्रातः प्रातः पिबेत् पक्वम् ॥ मलपूषणं  
त्रिंशुशतपुष्पां चाम्भसा समुत्पवाध्य ।  
पालाशं वा क्षारं यथा वल्लभाणि तोषेतम् ॥  
यच्चान्यत्कुष्ठं श्वित्राणां सर्वमेव तच्छ-  
स्तम् । खदिरोदकसंयुक्तं खदिरोदकपान  
मग्न्यं वा ॥ समनः शिलविडंगकासीसंरो  
चनां कनकपुष्पीम् । श्वित्राणां प्रशमार्थं स  
सन्धवलपनं दद्यात् ॥

अर्थ—श्वित्रकुष्ठियों के लिये संशोधनादिसे  
शुद्ध करके औषधदेवै ॥ श्वित्रकुष्ठमें कटूम-  
रका रस और गुड मिलाकर विरेचन देना  
अत्यन्त हितकारी है । इस रसको पीकर  
देहपर कुष्ठनाशक तैलका मर्दन करावे  
और फिर जितना सहसकै उतनी देर धूप  
में बैठे । विरेचन के पीछे प्यास लगने पर  
तीन दिन तक केवल पेयाका पान करे ।

श्वित्रकुष्ठ में जो फुत्सियां होजाती हैं  
उन्हें कांटोंसे बेध डालै, जब उनमें से सब  
पीव निकलजाय तब प्रतिदिन प्रातःकाल  
कटूमर, अशन, प्रियंगु और सोंफका क्वाथ  
पीवे ॥ अथवा ढाकके क्षारको बलके अनु  
क्षार गुडकी राख के साथ पान करावे ॥

अथवा जो और २ कुष्ठनाशक प्रयोग वर्ण-

न किये गये हैं वे भी सब श्वित्रकुष्ठ में  
उपयोगी होते हैं विशेष करके खैर के जल  
के साथ लेप वा खैर के क्वाथादिक का पान  
करना इस रोग में अत्यन्त हितकारक है ।  
इस रोग में मनसिल, वायाविडंग, कसीस,  
गोरोचन, अमलतास और सेंधानमक इनका  
लेप करने से श्वित्रकुष्ठ जाता रहता है ॥

कुष्ठपर अन्यलेप ॥

कदलीक्षारयुतं वा खदिरास्थिदग्धगवां रुधि-  
रयुक्तम् । हस्तिमदाध्यापितं वामालत्याः  
क्षारकक्षारम् ॥ नीलोत्पलसकुष्ठसंसेन्ध  
बृहस्तिमूत्रपिष्टं वा । मूलकबीजो वल्गुज  
लेपः पिष्टो गवां मूत्रे ॥ काके दुग्धविरिका वा  
सवल्गुजचित्रकौ गवां मूत्रे । पिष्टामनः  
शिलावासंयुक्ता वा हि पिप्तेन ॥ किलासह-  
न्तामूलान्या वल्गुजानिलाक्षा च । गोपि-  
त्तमञ्जने द्वे पिप्पल्यः काललोहरजः ॥

अर्थ—केलाका खार वा खैरकी लकड़ी  
का खार गौ के रुधिरमें मिलाकर लगावै अ-  
थवा मालतीके खारको हाथोंके मदके जल  
में मिलाकर लगावै, अथवा नीलोफर, कूठ,  
सेंधानमक इनको हाथोंके मूत्रमें पीसकर अ-  
थवा मूत्रोंके बीज और वल्गुजा के बीजका  
गोमूत्रमें पीसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ  
दूर होता है । अथवा कटूमर, अहसा, व-  
ल्गुजा, चीता इनको गौके मूत्रमें पीसकर  
लेप करे अथवा मनसिलको मोर के पित्ते  
में पीसकर लेप करे ॥

वल्गुजाका जड़, लाख, गौका पित्ता, अ-  
ञ्जन गन्ध, पिप्पल और काललोहरा

र्ण इनका स्नेह किलासको दूर करता है ।

शुद्धयाशोणितमोक्षैः विरुक्षणेर्भक्षणेऽक्षत्  
नाम् ॥ श्वित्रक्रंस्त्यचिदेवप्रशाम्यतिक्षी  
पापापस्य ॥

अर्थ— किसी किसी मनुष्य का जिसके  
पाप क्षीण होगे हैं श्वित्रकुष्ठ, संशोधन, रक्त-  
मोक्षण, विरुक्षण, तथा सत्तूके सेवन से ही  
जाना रहता है ।

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणदारुणश्वित्रक्रंस्त्यचिदेवप्रशाम्यतिक्षी  
विज्ञेयं त्रिविधं तच्च त्रिदोषमायश्वत्तत् ॥  
दोषैरक्ताश्रितैरक्तताम्रमांससमाश्रिते ।  
श्वेतमेदःश्रितेश्वित्रगुरुतच्चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ— श्वित्रकुष्ठ प्रायः दारुण, अरुण, और  
किलास इन तीन प्रकार का होजाता है तथा  
यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित होता है दोष जब रक्ता-  
श्रित होते हैं तब श्वित्रका वर्ण लाल होता है, मां-  
साश्रित होने पर उसका वर्ण सफेद होता है,  
तीनों प्रकारके श्वित्रोंमें लालसे ताम्रवर्ण और  
ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण कठिन साध्य होता है ।

श्वित्रको असाध्यत्व ।

यस्परस्परतोभिर्भ्रंशयुक्तलोमवत् । य-  
च्चवर्षगणोत्पन्नं तच्चिच्छ्वित्रं नैवासिध्यति ॥

अर्थ— जो दूसरीसे मिली हुई नहीं होती,  
है, जिसका रंग अधिक लाल होता है जिस  
में बहुत रोम होते हैं और जो बहुत पुरानी  
होजाती है वह श्वित्रकुष्ठ असाध्य होता है ।

श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्तिका हेतु ।

वचांस्यतथ्यानि कृतज्ञमात्रो निंदासुरा  
णांगुरुर्षणश्च । पापक्रियापूर्वकृतश्च कर्म  
हेतुः किलासस्य विरोधि चानम् ॥

अर्थ— मिथ्याभाषण, कृतघ्नता, देवताओं  
की निन्दा, गुरुजनोंका अपमान, इस जन्म  
के पाप, पूर्व जन्मके कर्म, तथा विरुद्ध भो-  
जनका सेवन, इन सब कारणोंसे किलास  
कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गसमाप्तो दोषनिर्देशात् ।  
साध्यासाध्यंकुच्छृङ्गुष्ठापहाधयेयोगाः ॥  
सिद्धाः किलासहेतुर्लिङ्गगुरुलाघवंशांतिः ।  
इतिसंग्रहः प्रणीतो महर्षिणा कुष्ठनाशनेऽ  
ध्याये ॥ स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थं शिष्याय हु  
ताश्वेशाय ।

अर्थ— इस कुष्ठ चिकित्सित नामक अ-  
ध्यायमें महर्षि पुनर्वसुने कुष्ठ रोगोंके हेतु,  
द्रव्य लक्षण, दोषोंका साक्षित वर्णन, साध्य  
असाध्य और कृच्छ्रसाध्यके लक्षण, कुष्ठना-  
शक अनुभव किये हुए प्रयोग, किलासके  
हेतु, लक्षण, भारापन, हलकापन शमनो-  
पाय, अपने शिष्य अग्निवेशकी स्मरणशक्ति  
और बुद्धि वदानेके निमित्त वर्णन किये हैं ।

इति श्रीभाषाटीकाश्रिततायां अग्निवेश-  
विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहि-  
तायां चिकित्सितस्थाने कुष्ठचिकि-  
त्सितेनाम सप्तमोऽध्यायः । ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोरायजक्ष्मचिकित्सितं व्याख्यास्या

मइतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम 'रायजक्ष्मचिकित्सितनामक, अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

रायजक्ष्मा के विषयमें प्राचीन इतिहास दिवौकसाकथयतामपिभिर्बध्नुताकथा ।

कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति ॥

रोहिण्यामतिसक्तस्पर्शरीरं नानुरक्षतः ।

आजगामात्पतामिन्दोर्देहः स्नेहपरिसया-

त् ॥ दुहितृणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्च-

प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेण मूर्तिग-

न्निःसृतो मृत्वात् ॥ प्रजापतेर्हि दुहितुरष्ट-

विंशतिरंशुमान् । भार्यार्थप्रतिजग्राहन्

चसर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणा तमवध्यातं भायां

स्वसमवर्तिनम् । रजोऽन्धमवलं दीनं यक्ष्मा

शशिनमाविशत् ॥

अर्थ—चन्द्रमा के विषयमें कामव्यसनसे

भरी हुई एक पौराणिक कथा ऋषियों ने देव-

ताओं से सुनी कि चन्द्रमा रोहिणी पर अ-

त्यन्त आसक्त था अतएव उसने अपने श-

रीर के स्वास्थ्य पर कुछ ध्यान नहीं दिया इससे

स्निग्धता के अत्यन्त क्षीण होने पर उसका दे-

ह अत्यन्त कुश होगया था, चन्द्रमा का रोहि-

णी पर अत्यन्त प्यार था इससे दक्षप्रजापति

की शेष कन्या चन्द्रमा के सम्भोगसुख से

धाव्यथी, यह व्यवस्था सुनकर दक्ष के मु-

खसे श्वास द्वारा क्रोध मूर्तिमान प्रकट हुआ

दक्ष की अट्टाईस कन्या चन्द्रमा को व्याही-

गई थी परन्तु उसका वर्त्ताव सबके साथ ए-  
कसा न था और रोहिणी के अतिरिक्त किसी  
अन्य के पास नहीं जाता था ॥

चन्द्रमा रजोगुणसे अन्धा होकर अपनी  
भार्याओं में असम व्यवहार रखता था  
इससे दक्ष के शाप के कारण यक्ष्माने उसमें  
प्रवेश किया और इस रोगसे वह अत्यन्त  
दीन हीन होगया था ।

चन्द्रमा की क्षमाप्रार्थना ।

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणा गुरुक्रोधेन निष्प्रभः

देवदंष्ट्रपिसहितो जगाम शरणं गुरुम् ॥ अथ

चन्द्रमसः शुद्धां मतिं बुध्वा प्रजापतिः । प्रसा-

दं कृतवान्सोमस्य तोऽश्विभ्यां चिकित्सितः

स विमुक्तमहश्चन्द्रो विरराज विशंपतः ॥

तेजसा वर्द्धितोऽश्विभ्यां शुद्धं सत्त्वमवाप च ।

अर्थ.... वह अपने श्वशुर के भारी क्रोध से

आभिहत होकर कान्तिहीन होगया था तब

देवता और देवर्षियों को साथ लेकर अपने

श्वशुर की शरण गया, तदनन्तर जब प्रजा-

पति ने देखा कि चन्द्रमा की बुद्धि शुद्ध होग-

ई है तब वह प्रसन्न हुआ और अपने शि-

ष्य अश्विनीकुमार को आज्ञा दी तब उन्होंने

चन्द्रमा की चिकित्सा की । चन्द्रमा प्रहसुक्त

होकर पहिले से भी अत्यन्त कान्तियुक्त होग-

या और अश्विनीकुमार के द्वारा तेज के वट-

जाने से अत्यन्त शुद्ध सत्त्व को प्राप्त हुआ ।

यक्ष्मा के पर्यायवाचीशब्द ।

क्रोधो यक्ष्माज्वरो रोग एकोऽर्थो दुःख संश्लि-  
तः । यस्मात्सराज्ञः प्रागासीद्राजयक्ष्मा  
ततो मतः ॥

भेद । त्रिदोषजन्य, यक्ष्मामे क्रमसे ये उपद्रव होते हैं ॥

इसतरह व्याधियों के समूहोंसे युक्त रोगों के राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके चार हेतु और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव वर्णन किये गये हैं ॥

**राजयक्ष्मा के पूर्वरूप ।**

पूर्वरूपप्रतिश्यायोर्दोषल्यं दोषदर्शनम् ।  
अदोषेष्वपि भावे पुकाये बीभत्सदर्शनम् ॥  
घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः ।  
स्त्रीमद्यमांसमियतामियताचावगुण्ठने ॥  
प्रक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च ।  
प्रायोन्नपाने केशानां नखानां चाभिवर्जनम् ।  
पतन्निभिः पतंगैश्च श्वापदैश्चाभिर्घर्षणम् ॥  
स्वप्ने केशाश्चिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम् ।  
जलाशयां नां शीलानां वनानां ज्योतिषामपि ॥  
शृण्वतां क्षीयमाणानां पततां यद्वदर्शनम् ।  
प्राग् बहु रूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः ॥ रूपं त्वस्य यथोद्देशं परं शृणु स भेषजम् ।

**अर्थ—**इस रोगमें सबसे पहिले प्रतिश्याय होता है, तत्पश्चात् क्रम से दुर्बलता, अदोष भावों में दोषदर्शन, शरीर में भयानक पन, घृणोत्पत्ति, भोजन करते करते भी बल और मांसकी क्षीणता, स्त्रीप्रियता, ( स्त्रियोंका अच्छा लगना ) मद्यमांसमें स्पृहा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायः अन्नपान में मत्सी, घुन केश और तृणों का गिरना; केश और नखोंका बहुत गटना; स्वप्नमें पक्षी पतंग और गेहूँदिसे

अभिघर्षण, स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्म के ढेरपर चढ़ना; सूखे हुए जलाशय, क्षीण होते हुए पर्वत और वन, तथा गिरे हुए तारागणोंका देखना; ये सब बहुरूपिया राजयक्ष्मामें पूर्वरूप हैं ।

अब राजयक्ष्माके लक्षणानुसार औषधों के वर्णनको सुनो ॥

**राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा ।**

यथास्वेनोष्मणापाकं शरीरायान्तिधातवः ॥  
स्रोतसाच्च यथास्वेन धातुः पुण्यतिथानुना ।  
स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनां च संज्ञयात् ॥  
धातुष्मणां चापचयाद्राजयक्ष्मा प्रवर्तते ।  
तास्मिन्काले पचत्यग्निर्यदङ्गकोष्ठमाश्रितम् ॥  
मलीभवति तत्प्रायः कल्पते किञ्चिदोजसे ।  
तस्मात्पुरीपं संरक्ष्यं दिशे पाद्राजयक्ष्मणः ॥  
सर्वधातुक्षयार्तिस्त्वबलं तस्य हि विद्वलम् ॥

**अर्थ—**जैसे अपनी २ ऊष्मासे शरीरकी सम्पूर्ण धातु पाकको प्राप्त होती है, इसी तरह अपने अपने स्रोतोंके योग से धातु धातुद्वारा पुष्ट होते हैं । इसलिये स्रोतोंके रकने से, रक्तादिक धातुओंके क्षीण होनेसे तथा धातुओंकी ऊष्माके नष्ट होनेसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होती है उससमय अग्नि कोष्ठस्थ जिस अन्नको पचाती है वह प्रायः मल बन जाता है और उसका बहुत थोड़ा भाग ओजमें परिवर्तित होता है इसी हेतुसे राजयक्ष्मा रोगोंके मलकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण

धातुओंके क्षीणहोजानेसे रोगी बहुत निर्वल होजाताहै और केवल विष्टाके बलसेही वह बल प्राप्त करताहै, इससे जहां तक बर्न ऐसा उपाय करता रहै कि विष्टामें परिवर्तित हुआ सब आहार बाहर न निकलजाय ।

रुद्ध स्रोतोंसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति । रसःस्रोतःसुरुद्धेपुस्वस्थानस्थोविदह्यते ॥ सऊर्द्धकासवेगेनबहुरूपःप्रवर्तते । जायन्ते व्याधयश्चातपदेकादशधापुनः ।

येपांसघातयोगेनराजयक्ष्मेतिकल्प्यते ॥

अर्थ....स्रोतोंके रुकजानेसे आहारका रस सम्पूर्ण देहमें तौ फैलने नहीं पाताहै और अपने स्थान आमाशयहीमें स्थितरहकर विदग्ध होता रहताहै, यही रस खांसीके वेग के साथ ऊपरको जाकर अनेक रूप धारण करके निकलने लगताहै, तब छः वा ग्यारह प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होतीहैं इन सब व्याधियोंके ममुदायका नाम राजयक्ष्माहै ।

उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नामा कासोऽसतापोवैस्वर्यज्वरःपार्श्वशिरोरुजी ॥ शोणितश्चेष्मणोर्छर्दिःश्वासःकोष्ठामयोऽरुचिः ॥ रूपाण्येकादशैतानियक्षिणः पट्टिमानिवा ॥ कासोज्वरःपार्श्वशूलस्वरवर्चोगदोऽरुचिः ॥

अर्थ....खांसी, स्कंधताप, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्व शूल, शिरःशूल, रुधिरकी वमन, कफकी वमन, श्वास, कोष्ठामय, अरुचि ये यक्ष्माके ग्यारह रूप हैं । खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, मलभेद, अरुचि, ये यक्ष्मा के छः उपद्रव हैं ।

यक्ष्माका साध्यमाध्य विचार । सर्वैरद्वैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मासवलक्षये ॥ युक्तोवर्ज्याश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए ग्यारह वा छः लक्षणों से युक्त अथवा आगे आनेवाले तीन-लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मामें यदि रोगीका मांस आर बल क्षीण होजाय तौ वह असाध्य होता है ऊपर कहेहुए सर्व लक्षणों से युक्त होनेपर भी यदि मांस और बल क्षीण न हुआ हो तौ वह साध्य होती है ।

प्रतिश्यायके लक्षण ।

घ्राणमूलस्थितःश्लेष्माक्षधरांपित्तमेववा ॥ मारुतध्मातशिरसोमरुतश्यायतेप्राति । प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतदेहकर्षणः ॥ तस्यरूपांशिरःशूलगौरवंग्राणविप्लवः । ज्वरकामःकफोत्क्षेपःस्वरभेदोऽरुचिः ॥ क्रमः ॥ इन्द्रियाणामसामर्थ्ययक्ष्माचतः प्रवर्तते । पिच्छिलबहुलं विसंहस्तिश्वेतपोतकम् ॥ कासमानोरसंयक्ष्मानिष्टी वातिकफानुगम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का शिर वायुसे आघातित होताहै उसकी नासिका के मूल में स्थित कफ वा पित्त वायुके साम्हने अर्थात् भिरकी ओर दौंटेताहै तब देहको कर्षण करने वाला भंङ्करूप प्रतिश्याय होताहै इसको जुकाम वा सर्दी कहतेहैं, इस के होनेपर शिरमें दर्द, भातापन, नासिकासे साव होना, ज्वर, खांसी कफ निकलना, स्वरभंग, अरुचि, कृद्धान्ति, इन्द्रियोंमें अस्त-

मर्धता ये उपद्रव होतेहैं इनसे पीछे राजय-  
क्ष्माकी उत्पत्ति होती है ॥ यक्ष्मरोगीके खां-  
सते २ गिलगिला गाढा, दुर्गन्धयुक्त हरे या  
सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ  
निकलताहै ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्चात्पादकरस्यच ॥

ह्वरःसर्वांगगन्धेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ।

अर्थ—कंधे और पसलियोंमें संताप, हा-  
थ और पांवमें संताप, सर्वांगगाम्ज्वर येरा-  
जयक्ष्माके प्रधानलक्षणहैं ।

राजयक्ष्मा में स्वरभंग ।

घातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्कासवेगात्सपीन-  
सात् ॥ स्वरभेदोभवेद्घाताद्रक्तःक्षामश्चल-  
स्वरः । तालुकण्ठपरिश्लोषःपित्ताद्रक्तमसृ-  
यंते ॥ कफान्मन्दोविबद्धश्चस्वरःखुरुखु-  
रायते । सन्नैरक्तविवन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रा-  
त्प्रवर्तते । कासातिवेगात्करुणपीनसा-  
त्कफघातिफः ॥

अर्थ—घात से, पित्त से, कफ से, रक्त  
से, खांसी के वेगसे, पीनस से इसरोग में  
स्वरभंग होता है । जो स्वर घात से भंग  
होता है उसमें स्वर रुक्ष, क्षीण और  
चलायमान होता है । पित्त से कण्ठ और  
तालुमें दाह और रक्तकी असूयता होती  
है । कफसे स्वरमें मन्दापन और विबद्धता  
होतीहै तथा खुर खुर शब्द होता है ॥ र-  
क्तकी विवन्धता से स्वर अवसन्न होजाताहै  
तथा बाहर कठिनतासे निकलता है । खांसी  
के वेगसे स्वरमें खरखराट होताहै तथा पी-  
नससे कफ घातके लक्षण होते हैं ॥

यक्ष्मा के अन्य उपद्रव ॥

पार्श्वशूलत्वनियतसंकोचायामलक्षणम्।  
शिरःशूलससन्तापयक्ष्मिणः स्यात्सर्गौर-  
वम् ॥ अतिस्विन्नेशरीरेतुयक्ष्मिणोविष-  
माशनात् ॥ कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तश्लेष्मचोक्ते  
पृसाञ्चितः ॥ रक्तंविबद्धमार्गत्वान्मांसा-  
दीन्जानुपद्यते ॥ आमाशयस्थमुत्किष्ट  
बहुत्वात्कण्ठमेतिवा । वातश्लेष्माविवन्ध-  
त्वादुरसःश्वासमृच्छति ॥ दोषैरुपहृतेचा-  
ग्नौसपिच्छमभिसार्यते । पृथग्दोषैःसमं  
स्तेर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ॥ जायतेऽरु-  
चिराहारैर्दुष्टैर्यैश्चमानसैः ।

अर्थ—यक्ष्मामें जो पार्श्वशूल होता है  
वह अनियत होता है और उसमें संकोच  
वा आयामके लक्षण होतेहैं ॥ शिरोवेदना  
में सन्ताप और भारापन होता है ॥ अत्य-  
न्त स्विन्न देहवाले यक्ष्मारोगी के विषम  
भोजन के करनेसे कण्ठकी नलीमें होकर  
रक्त तथा उत्किष्ट और संचित कफ निकल-  
ता है ॥

रक्तमार्गों के रुकजानेसे रुधिर मांसादि  
धातुओं से मिलकर उनका पोषण नहीं क-  
रसकता है यह अधिक बढ़कर आमाशयमें  
स्थित होजाताहै वा कण्ठमें आजाता है इस  
तरह घात और कफके रुकजानेसे हृदयस्थ  
श्वासमें पड़चताहै और दोषोंके द्वारा अग्निके  
नाश होनेपर पिच्छिलता युक्त मल निकलताहै।

पृथक् २ दोष वा सब मिलकर जब जि-  
ह्वा और हृदयका आश्रय करलेते हैं तब  
अरुचि उत्पन्न होतीहै । दुष्ट आहार तथा  
मानसिक अर्थोंसे भी अरुचि होती है ।

अरुचिकी परीक्षा ।

कपायत्तिकमधुरैर्विद्यात्मुखरसैः क्रमात् ॥  
वातादिररुचिजातामानसीदोपदर्शनात् ।  
अरोचकान्कासवेगादोपोत्केशाद्वयादपि  
छर्दिर्यासाविकाराणां अन्येषामप्युपद्रवः ।  
सर्वस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्तुबलाव-  
लम् ॥ परीक्ष्यावस्थितवैद्यः शोषिणंसमु-  
पाचरेत् । प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासे  
स्वरक्षये ॥ पार्श्वशूलचावीवध क्रियाः  
साधारणीः शृणु ॥

अर्थ—यदि मुखका रस कपायहो तो  
वातज अरुचि, तिक्तहों तो पित्तज और मि-  
ष्ट हो तो कफज अरुचि होती है इसी तरह  
मानसी अरुचि दोषोंके देखने से जानी जा-  
ती है । अरुचि, आमवेग, दोषोत्केश और  
भय इनसेही अन्यधिकारोंमें भी वमन होती है  
तानों दोषोंसे उत्पन्न हुई यक्ष्मामें दोषों  
का बशबल देखकर वयको शोष रोगी की  
चिकित्सा करना उचित है । प्रतिश्याय  
शिरःशूल, खांसी, श्वास, स्वरक्षय और पा-  
र्श्वशूल रोगोंकी अनेक प्रकारकी साधारण  
चिकित्साओंको श्रवण करा ।

प्रतिश्यायादिछ रोगोंकीचिकित्सा ।  
पीनमेत्स्वेदमभ्यङ्गधूममालेपनानि च ।  
परिपेकावगाहान्थपावकवात्यमेव च । ल-  
घणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहेपसंहितान्  
लावतित्तिरिदसाणां वर्तकानाञ्चकल्प-  
येत् । सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनाग-  
रम् ॥ दाढिमामलकोपेतस्निग्धमाजंसं  
पिबेत् । तेनपद्विनिवर्तन्तेविकाराः पीन

सादयः ॥ मूलकानाङ्कुलत्थानांयूपैर्वासु-  
पकल्पितैः ॥ यवगोधूमशाल्यन्नेर्यथासा-  
त्म्यमुपाचरेत् ॥

अर्थ—पीनस वा प्रतिश्याय में अम्यंग,  
धूमपान, आलेपन, परिपेक, अवगाहन  
करावे तथा जौ की रोटियां, नमक, अम्ल,  
कटु और उष्णरसों तथा घृत में संस्कृत  
लवा, तीतर, मुर्गा और बतक के मांसरस  
का पानकरे ॥ अथवा पीपल, जौ, कुलधी,  
सोंठ, अनार, और आवला में डालकर घां  
से संस्कार किया हुआ बकरे का मांसरस  
पानकरे । इस के सेवन करने से प्रतिश्याय  
से पार्श्वशूल पर्यन्त छः ओं उपद्रव नष्ट  
होजाते हैं । अथवा मूलक और कुलधी के  
यूप में सिद्ध कर के जौ गेहूँ और शाली  
चावलों को सात्म्यके अनुसार सेवन करे ।

पिबेत्प्रसादं वारुण्याजलं वा पाञ्चमूलिक-  
म् । धान्यनागरसिद्धं वा तागलवयाथ वा  
शृतम् ॥ पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेन चान्ना-  
निकल्पयेत् ॥ कृशरोत्कारिकामापकुल-  
त्थयवपायसैः ॥ सङ्गरस्वेदविधिना कण्ठं  
पार्श्वमुरःशिरः ॥ स्वेदयेत्पत्रभङ्गेन शिर-  
श्चपरिपेचयेत् ॥ बलागुह्वीमधुकशृत्तर्वा-  
वारिभिः सुखैः । वस्तमत्स्यशिरोभिर्वा-  
नाडीस्वेदैः प्रयोजयेत् ॥ कण्ठेशिरसि पा-  
ञ्चपयोभिर्वासवातिकैः ॥

अर्थ—मुगमण्ड, अथवा, पंचमूलसे सिद्धि-  
कियाहुआ जल, अथवा धनियां और सोंठ  
डालकर सिद्ध कियाहुआ जल, भूय आवला  
डालकर सिद्ध कियाहुआ जल अथवा शाली-



पर्णी आदि चारोंपंणी डालकर सिद्धकियाहुआ-  
आ जल पान कराये अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध  
कियाहुआ अन्न देवे ।

वृशारः, उत्कारिका, माषः, कुण्ठी, जौ, पायसं इन  
से संस्कारस्वेदकी राशिस कण्ठ पसली, हृदय और  
सिरमें स्वेददेवे अथवा वातनाशक पत्तोंसे स्वे-  
दन करे, अथवा खरैटी, गिलोय, मुल्हठी इनसे  
सिद्ध किये मुखोष्ण जलसे परिपेचन करे ।

अथवा बकरेका शिर, मछलीका शिर इनमें  
सिद्ध फरफे जल द्वारा या वातघ्न औषधि-  
योंके साथसे नाटोस्वेद द्वारा कण्ठ, सिर और  
पसलियोंमें स्वेदनदेवे ।

औदकानूपमांसानिसलिलं पात्रमलिकम् ॥  
सस्नेहं सारनालं वानाटी स्वेदं प्रयोजयेत् ।

अर्थ—औदक और आनूप पशुओंका मांस  
पंचमूत्रसे सिद्धकिया हुआ जल अथवा स्नेह  
युक्त फांजासे नाटोस्वेद द्वारा स्वेदनकरे ॥

जीवन्त्याः शतपुष्पायावलायामधुकस्यच ।  
वचायवशवारस्यविदार्यामलकस्यच ।

औदकानूपमांसानामुपनाहाथसंस्कृताः ॥  
शस्यन्ते च चतुःस्नेहाः शिरःपार्श्वसशूलि-  
नाम् ।

अर्थ—जीवन्ती, सोंफ, घला, मुल्हठी,  
घच, वेशवार, विदारीकन्द, आवला, औदक  
और आनूप पशुओंका मांस चारों प्रका-  
रके स्नेह डालकर सिद्ध कियाहुआ लेपासिर प-  
सली तथा कंधेके दर्दमें हितकारक होता है ॥

शतपुष्पासमधुकं कुट्टं तगरचन्दनम् ॥ आ-  
लेपने स्यात् सघृतं शिरःपार्श्वसशूलनुत् ।

अर्थ—सोंफ, मुल्हठी, कूठ, तगर और

चन्दन इनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे,  
शिर, पसली और कंधे का शूल नष्ट होता है ।

अन्य प्रयोग ।

वलारास्नातिलाः सर्पिर्मधुकं नीलमुत्पलम्  
पलंकपादेवदारुचन्दनं केशरं घृतम् । बी-  
रावलाविदारीचकृष्णगन्धा पुनर्नवा ॥

शतावरीपयस्याचकृत्तृणमधुकं घृतम् । च-  
त्वारण्यते श्लोकाधैः प्रदेहाः परिकीर्तिताः ॥  
शस्ताः संबृद्धदोषाणां शिरःपार्श्वसशूलि-  
नाम् ॥

अर्थ—( १ ) खरैटी, रास्ना, तिल, घी,  
मुल्हठी, नीलकमल । ( २ ) गूगल, देव-  
दारु, चन्दन, केशर, घी, । ( ३ ) क्षीर-  
काकोली, खरैटी, विदारीकन्द, सहजना  
और पुनर्नवा । ( ४ ) शितावर, क्षीरका-  
कोली, कृत्तृण, मुल्हठी और घी । ये चारों  
लेप जो आधे २ श्लोक में वर्णन किये ग-  
ये हैं बड़ेद्वय दोषवाले शिरःशूल पार्श्वशूल  
और असशूलमें हितकारी हैं ।

अन्यसंशमनक्रिया ।

नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चोत्तः भाक्तिकाः  
तैलान्यभ्यङ्गयोगानि च स्तिक्तमन्त्रापरम् ॥  
जलौकालावुशृङ्गैर्धामदुष्टं व्यधनेन वा ॥

शिरःपार्श्वसशूलेषु रुधिरं तस्य निर्हरेत् ।  
प्रदेहः सघृतश्रेष्ठपत्रकोशिरचन्दनैः ॥

दूर्वामधुकमजिष्टाकेशरैर्घृताप्लुतैः । प्रपु-  
ण्डरीकनिर्गुण्डीपत्रकेशरमुत्पलम् ॥ क-

शेस्कापयस्याचसर्पिष्कं मलेपनम् ।  
चन्दनाघेन तैलेन शतधा तेन सार्पिषा ॥ अ-

भ्यङ्गः पयसासेकः शस्तश्च मधुकांभुना ।

मोहेन्द्रेणमुशीतेनचन्दनादिशृतेक्रिया ।  
परिपेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ॥

अर्थ—नस्य, घूमपान, उत्तरभाक्तिकाघृत, अभ्यंगोपयोगी तैल और वस्तिर्गम ये सब उत्कृष्ट हैं । जोक, अलाबू सींगी और फास्त द्वारा दुष्टरुधिरको निकालनेसे शिरःशूल, पाईयशूल और अंसशूल अच्छे होजाते हैं । पक्काव, चन्दन और खस को पीस कर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूध, मुलहठी, मजीठ और केसर को घाँमें सानकर लेप करने अथवा पुण्डरिया काष्ठ निर्गुण्डी, कमल, केसर, नीलोफर, कसेरू और क्षारिकाकोली को घृतमें सानकर लेप करने से शिरःशूलदि दूर होजातेहैं ।

चन्दनादि तैल, वा शतघोत घृत का अभ्यंग, घृत तथा मुलहठी के जलका परिपेक, अथवा माहेन्द्रशीतल जल, वा चन्दनादिके कायका जल इनसे परिपेककरे । इस तरह यह संशमनी क्रिया वर्णन कीगई है ।

**दोपाधिकर्म संशोधन विधि ॥**

दोपाधिकानां वमनं शस्यते स विरेचनम् ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नानां स्नेहं यन्न कर्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंकी अधिकतामें स्नेहन और स्वेदन देकर स्निग्ध वमन विरेचन दैवै जिससे रोगी कृश न होने पावे ।

शोषीभुक्षतिगात्राणि पुरीषसंसनादापि ॥

अवलापेक्षिर्णामात्रा किं पुनर्यो विरिच्यते ।

योगानसंशुद्धकोष्ठानां कासेश्वासेस्वरस्ये ॥

शिरःपार्श्वशूलेषु सिद्धानेतान् प्रयोजयेत्

पलाविदारिगन्धार्थविदार्यामधुकेन वा ॥

( ९९ )

सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम्  
प्रपुण्डरीकं मधुकं पिप्पल्योदहतीवला ॥

क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ।

शिरःपार्श्वशूलघ्नं कासेश्वासे निर्वहणम्

प्रयुज्यमानं बहुशो घृतं चोत्तरभक्तिकम् ।

दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन च ॥ व-

लागभे घृतं सद्यो रोगानेतान् प्रयाधते । भ-

क्तस्योपरि मध्ये वा यथाग्निप्रविचारितम् ॥

रास्ना घृतं वा सक्षीरं सक्षीरं वा वलाघृतम् ।

अर्थ—मलके निकलजाने से शोषरोगी

मनुष्यका देह पतन होजाता है, इससे रोगी

के वलके अनुसारही विरेचन मात्राका प्रयो-

ग करना चाहिये ॥

जब रोगीका कोष्ठ शुद्ध होजाय तथा

खांसी, श्वास, स्वरभंग, शिरःशूल, पार्श्व-

शूल, अंसशूल ये शेष रहजाय तब नीचे

लिखेहुए प्रयोगोंको दैवै ।

खरैटी, विदारीगंधादिगण, विदारीकन्द

और मुलहठी, सब से सिद्ध कियेहुए नमक

सहित घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर हो

जाताहै । प्रपुण्डरीक, मुलहठी, पीपल, व-

क्षीकटेरी, खरैटी और दूध इनके साथ सि-

द्धकियेहुए घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर

होताहै । अथवा भोजन के पश्चात् अनेक

रातिसे घृतपान करनेसे सिर, पसली और

कन्धोंका दर्द तथा खांसी और श्वास जाते

रहतेहैं । अथवा दशमूल, दूध, मांसरस और

खरैटी का गूदा इनसे सिद्ध किया हुआ घृ-

त तत्काल ऊपर कहे हुए रोगों को दूर क-

र देताहै । भोजन करने के पीछे वा बीच

में जठराग्नि के अनुसार दूध और रास्नाका घी अथवा दूध और चलाकाघी सेवन करने से पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होजातेहैं ॥

### स्नेहवर्णन ॥

लेहान्कासापहान्स्वर्यान्वासंहिकानि-  
वर्हणान् ॥ शिरःपार्श्वसशूलग्रान्स्नेह-  
श्चातःपरंशृणु । घृतंस्वर्जूरमृद्रीकाशर्करा-  
क्षौद्रसंयुतम् ॥ सपिप्पलीकंस्वर्यकास-  
श्वासनिवर्हणम् । दशमूलशृतातृक्षीरा-  
त्सर्पियदुदियान्नवम् ॥ सपिप्पलीकंससौ-  
द्रन्तत्परंस्वरबोधनम् । शिरःपार्श्वसशू-  
लग्रंकासश्वासज्वरापहम् ॥ पञ्चभि-प-  
ञ्चमूलैर्वाशृताघदुदियादृतम् । पञ्चानां  
पञ्चमूलानारसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ सिद्धं स-  
र्पिर्जयत्येतद्यह्मणःसप्तकंवलम् ।

अर्थ—अब हम यहां से कासनाशक, स्वरवर्द्धक, श्वास और हिचकी के दूर करनेवाले, शिरःपार्श्वसशूलनाशक लेह और स्नेहों का वर्णन करेंगे । यथा-

घी, खिजूर, दाख शर्करा और शहत तथा पीपल इनको चाटने से स्वर-भंग, खांसी और श्वास नष्ट हो जाते हैं अथवा दशमूल डालकर औंटाये हुये दूधसे जो ताजी घी निकालाजाताहै उसमें पीपल और शहत डालकर सेवन करें तो स्वरभंग दूर होजाताहै, इसीसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंशशूल तथा खांसी, और श्वास और स्वर ये भी दूर होजातेहैं ॥

पांचों पंचमूलके साथ औंटायेहुये दूध का घी भी पूर्वोक्त व्याधिनाशकहै अथवा

पांचों पंचमूलके काथ तथा चांगुने दूध में सिद्ध कियाहुआ घी यक्ष्मरोगी के पूर्वोक्त सातों विकारोंको दूर करताहै ।

### लेह के चार प्रयोग ।

स्वर्जूरपिप्पलीद्राक्षपध्याश्रुद्रीदुर्गलभा ॥  
त्रिफलापिप्पलीमुस्तंभृगाटीगुडशर्करा ।  
वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करागुडः  
नागरंचित्रकोलाजाः पिप्पल्यामलकंगुडः  
श्लोकार्द्धविहितानेतानलिह्यान्नामधुसर्पि-  
या ॥ कासश्वासपहान्स्वर्यान्पार्श्वशू-  
लापहस्तथा

अर्थ—१-खिजूर, पीपल, दाख, हरड, काकडासींगी और जवासा २-त्रिफला, पी-पल, मोथा, सिंघाडा और गुड शर्करा ३-क्षीरकाकोली, शटी, पुष्कराख्य (कूठ), तुलसी, शर्करा, गुड । ४-सोंठ, चीता, खील, पीपल, आंबला, गुड । आधे २श्लोक में कहेहुये इन चार प्रयोगोंको घी और शहतके साथ चाटें तो खांसी, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होजातेहैं ॥

### अन्य प्रयोग

सितोपलातुगाक्षीरपिप्पलीवहुलांत्वच-  
म् ॥ अन्त्याद्धर्वाद्दिगुणितंलेहयेन्मधुस-  
र्पिपाचूर्णितंप्राशयेद्वातश्वासकासकफा-  
तुरम् ॥ सुसजिहारोचकिनमल्पाग्निपा-  
र्श्वशूलिनम् । हस्तपादांगदोहेपुज्वरेर-  
क्तयोर्ध्वगे ॥ वासासर्पिःशतावर्या सि-  
द्धंवापरमंहितम् ।

अर्थ—मिश्री, वंशलोचन, पीपल, इलाय-ची और दालचीनी । इनको पीछे से ऊपर-

को दूनार ले अर्थात् दालचीनीसे दूनी इलायची, इलायची से दूनी पीपल आदि घी और शहत में सानकर चाटै । अथवा इसी चूर्णको श्वास, खांसी, कफ, जिह्वासुप्त, अरुचि, मन्दाग्नि और पार्श्वशूल में देवै ।

हाथ, पांव और शरीरके दाहमें, ज्वरमें ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें वासाघृत वा शतायरी घृतका सेवन अत्यन्त हितकारीहै ।

**दुरालभाघृत ।**

दुरालभाश्वदंष्ट्राञ्चतप्तःपर्णिनीर्वलाम् ।  
भागान्प्रलोम्भितान्कृत्वापलंपर्पटकस्य-  
च । पचेद्दशगुणेतोयेदशभागवशेषिते ॥  
रसेसुपूतेद्रव्याणामेपांकल्कान्समावपेत् ।  
शठ्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः  
तामलक्याःकिरातानांतित्तस्यकुटजस्य  
च । फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्प-  
सम्भितान् ॥ ततस्तेनघृतमस्यक्षीरद्विगु-  
णितंपचेत् । अवरंदाहंभ्रमंकासमंसपाश्वर्श-  
रौक्मम् ॥ तृष्णाञ्छार्दंस्तितारमेतान्स-  
र्पिरपोहति ॥

अर्थ—जयासा, गोखरू, चारोंपर्णी, खरैटी और पितपापडा ये आठों एक एक पल लेकर दसगुने जलमें पकावै जब दसवां भाग शेष रहजाय तब उसे छानकर नीचे लिखेहुए द्रव्य एक २ कर्ष डाल देवै । शठी, पौहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूम्यामलक, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और शारिवा इनको बारीक पीसकर डाँड देवै । फिर इसमें एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध डालकर पकावै । इस घृतके सेवन करनेसे

ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल शिरःशूल, तृष्णा, वमन और अतिसार दूर होजाते हैं ।

**जीवन्त्यादि घृत ॥**

जीवन्तीमधुकंद्राक्षान्फलानिकुटजस्यच ॥  
शटीपुष्करमूलचव्याघ्रीगोक्षुरकम्बलाम्  
नीलोत्पलतामलकर्त्रायमाणान्दुरालभाम्  
पिप्पलीञ्चसर्पापट्वाघृतवैद्योविपाचयेत् ।  
एतद्द्रव्याधेसमूहस्यसमुत्थराजयक्ष्मणः  
रूपमेकादशविधसर्पिरंकव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, किसमिस, इन्द्रजौ, शटी, पौहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खरैटी, नीलकमल, भू आंयला, त्रायमाण, जवासा, और पीपल इनको समानभाग लेकर पीस डाले और इसमें घृतको पकावै । इसी एक घृतके सेवन करनेसे राजयक्ष्माके ग्यारह प्रकारके उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

**बलाघृत ।**

बलांस्थिरांपृथिनपर्णीवृहतीसनिदिग्ध-  
काम् । साधयित्वारसेतस्मिन्प्रयोगव्य-  
सनगरम् ॥ द्राक्षाखजूरसर्पिर्भिःपिप्प-  
ल्याचशृतंसह । सप्तोद्वज्वरकासघ्नस्व-  
र्यञ्चेतत्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—खरैटी, शालिपर्णी, प्रथिनपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी इनका क्याध करले, इस में गौ का दूध, सोंठ, दाख, खिजूर, घृत और पीपल डालकर घृत पाककरे । इस घृतको शहत के साथ सेवन करे । तो ज्वर खांसी और स्वरभंग दूर होजाताहै ।

यक्ष्ममें अन्य प्रयोग ।

आजस्यपयसश्चैवमयोगोजांगलारसाः

यूपार्थेचणकामृद्वामकुष्ठाश्चोपकल्पिता  
ज्वराणांशमनेयोगः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः  
यक्ष्मिणांज्वरदाहेपुससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥  
कफप्रसेकेवलवान् श्लेष्मिकः छर्दयेन्नरः ।  
पयसाफल्युक्तेनमधुरेणरसेनवा ॥ स-  
र्पिष्मत्यायवाग्वाचमनीयोपसिद्धया ।  
चर्मितोद्याश्चलध्वन्नमन्नकालेसदीपनम् ॥  
यवगोधूममाध्वीकशीध्वरिष्टसुरासवान् ॥  
जांगलानिचशूलानिसेवमानः कफञ्ज-  
येत् ॥

अर्थ—इस रोगमें यकरीका दूध और जांगल  
जीवोंका मांसरस प्रशस्त है । यूपके निमित्त  
चना, मूंग और मोठका प्रयोग करें । ज्वर-  
नाशक प्रयोग तथा चिकित्साविधि जो पहिले  
वर्णनकी गई हैं, वही विधि यक्ष्मारोगियोंके  
ज्वर और दाहमें घृत सहित दें ।

कफ दोषयुक्त और बलवान् रोगीको कफ  
के गिरनेमें मैनफलके साथ दूध वामेनफल  
से युक्त मधुररस वा वमनीय द्रव्यों से सं-  
स्कार की हुई घृतयुक्त यवागू पान कराके  
वमन करावें ।

वमन होनेके पश्चात् क्षुधा लगनेपर लघु  
अन्न खानेको दें । जो गेहूँ माषीक, शीधु,  
अरिष्ट, सुरा, आसय, और शूलपर भुनाहुआ  
जांगल पशुओंका मांस सेवन करनेसे कफ  
दूर होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुः श्लेष्माणमस्यति  
कफप्रसेकान्तंविद्वान्स्निग्धोष्णनैवनि-  
र्जयेत् ॥ क्रियाकफप्रसेकेपावम्यांसैवप्रश-

स्यते । हृद्यानिचान्नपानानिवातध्नानि-  
लघूनिच ॥

अर्थ—जब कफ अत्यन्त पड़ताहो तब  
वायुही कफको उदीर्ण करतीहै, उस समय  
स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफके पड़नेको  
दूर करे । कफप्रसेक में जो चिकित्साकी  
जाती है वही वमनके रोकने में हितकारी  
होतीहै, इसमें हृद्य, वातनाशक और लघु  
अन्नपान हितहै ।

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमपितार्यते।  
प्राप्नोत्यास्यस्यैवैरस्यनचाश्रमभिनन्दाति ॥  
तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनिर्वहणान्  
वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिमतिवाधकानां

अर्थ—प्रायः मन्दाग्निसेही पिच्छल अती-  
सार होताहै, इसीसे मुखका जायका विगड़  
जाताहै और अन्नमें अरुचि होजातीहै उस  
मनुष्यको अग्निसदीपनकर्त्ता अतिसारना-  
शक, मुखशुद्धकारक और अरुचिनाशक  
योगोंका सेवन करावें ।

अतिसार नाशक योग ।

सनागरामिन्द्रियवान्पिबेद्वातण्डुलाम्बुजा-  
सिद्धायवागूञ्जर्णिचचांगेरीतक्रदाडिमैः ॥  
पाठाम्बिल्वंयवानीचपातव्यंतकसंयुतम्  
दुरालभांगृगवेरपाठाञ्चसुरयासह । जा-  
म्वाप्रविल्वमध्यञ्चसकपित्थसनागरम् ॥  
पेयामण्डनेनपातव्यमतीसारनिवृत्तये ।

एतानेवचयोगांस्त्रीमाठादीन्कारयेत्खड्गान्  
ससृपधान्यान्सस्नेहाम्लान्संग्रहणान्परान्  
अर्थ—यक्ष्मारोगी अतिसारमें सोंठ और

इन्द्रजीको चावलोंके जलके साथ पान करै, तथा औषधके पचजानेपर चांगेरी, मठा और अनारके रसके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पान करै । अथवा पाठा, बेलगिरी, अजवाहन इनके क्वाथको मठाके साथ पीवै, अथवा जवासा, सोंठ, पाठा, इनके क्वाथको मयके साथ पीवै । अथवा जामन और आमकी गुठली, बेलगिरी, कैथ, सोंठ इनके क्वाथ को पेयामण्डके साथ पान करै । इन्हीं अतीसारनाशक तीन योगोंका दालके साथ खड्यूप बनाकर घी और खटाई डालकर सेवन करै यह अत्यन्त संग्राहक होता है ।

अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनामृणालीकृष्णगन्धयोः ॥  
थ्रीपर्णामदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्ल-  
वान् । मातुलंगस्यधातक्यादाडिमस्यच  
कारयेत् ॥ स्नेहाम्ललवणोपेतान्सस-  
र्पिकान्सदाडिमान् ॥

अर्थ—वेत, अर्जुन, जामन, कमल, सहजना, खभारी, मल्लिका, विजौरा, आंवला, अनार इनके पत्तोंमें खटाई, नमक, घी और अनार डालकर यूप बनावै [ किसी २ में में ऐसा पाठभी है ( “ चांगेर्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् । खडान्दधिस-  
रोपेतान् सर्सापश्र्कान् सदाडिमान् , )  
मांसानालधुपाकानारसाः सांग्राहिकैर्युताः  
व्यजनार्थे प्रशस्यन्ते भोज्यार्थे रक्तशालयः ।  
स्थिरादिपंचमूलेन पाने शस्तं शृतञ्जलम् ॥  
नक्रं पुरांसं चुक्रिकादाडिमस्याथ वारसः  
दीपनं ग्राहिनिर्दिष्टं भेषजं भिन्नवर्चसे ॥

अर्थ—व्यंजनके लिये सांप्राहिक द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ लघुपाकी मांसों का रस और भोजनके लिये लालशालि-चावलदेवै । शालिपर्ण्यादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देवै । मठा, म-  
दिरा, चूका और अनारका रस अतीसार में अग्निसे दीपन और संग्राही होता है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग ।

परं मुखस्य वैरस्य नाशनं रोचनं शृणु । द्वौ-  
कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनैः ॥  
तद्वत् प्रक्षालयेदास्यं धारयेत् कवलग्रहान् ।  
पिवेद्धूमन्ततो भृष्टमद्यादीपनपाचनम् ॥  
भेषजं पानमन्नञ्चाहितमिष्टोपकल्पितम् ।

अर्थ—अब हम मुखकी विरसता को दूर करनेवाले प्रयोगोंका वर्णन करते हैं प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय दा-  
तुनकरना, मुखमें जल भर २ कर कुल्ले कर-  
ना और कवलग्रह करना चाहिये, तदनन्तर धूमपान, फिर दीपनकर्त्ता और रुचिवर्द्धक द्रव्योंका सेवन करे । इच्छाके अनुसार बनाहुआ अन्नपानभी मुखकी विरसता दूर करने में हित है ।

मुखधावनपांचप्रयोग ।

त्वद्भुस्तमेलाधान्यानि मुस्ते सामलकन्त्य-  
चम् ॥ त्वचोदार्वीयवानीचपिप्लयस्ते-  
जवत्यपि । यवानीति न्तिङीकञ्चपञ्चे  
ते मुखधावनाः ॥ प्लोकपादे पुषिदिताशो  
धनामुखरोचनाः । गुलिकाधारयेदास्यं  
चूर्णं वा शोधयेन्मुखम् । एषामालोडिता-  
नां वा धारयेत् कवलग्रहान् ॥

अर्थ—दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां अथवा, दोनों मोथा, आंवला, दालचीनी, दारुहल्दी और अजवायन, पीपल और तेजवती, अथवा अजवायन और इमली, इनमें चौथाई र श्लोकमें वर्णन किये हुये चूर्णोंकी दांतुन करना मुखको शुद्धकर्त्ता और रुचिवर्द्धक होता है । अथवा इनकी गोली बनाकर मुँहमें रखे अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करे अथवा जलमें मिलाकर कुल्ले करे ।

सुरामाध्वीकशीधूनातैलस्यमधुसर्पिपोः  
कवलान्धारयेदिष्टानक्षीरस्येक्षुरसस्यच  
अर्थ—सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु-  
घृत, दूध और ईखके रसके कवलधारणकरे  
यवानीपादव ।

यवानीतिन्तिडीकश्चनागरंसाम्लवेतसम् ।  
दाडिमम्बदरंचाम्लंकार्षिकानुपकल्पयेत्  
धान्यसौर्वचलाजाजीवराङ्गच्चादकार्षि-  
कम् । पिप्पलीनांशतच्चैकंद्वेशतेमरिच-  
स्युच ॥ शर्करायाश्चत्वारिपलान्मेकत्र  
चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं  
भक्तरौचनम् ॥ हृत्प्रीहपार्श्वशूलघ्नंवि-  
बन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरंग्राहि  
ग्रहण्यशौविकारनुत् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ, अम्ल-  
बेत, अनार, घेर इनको एक २ कर्ष लेवै ॥  
धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी ये  
चारों आधे २ कर्ष लेवे, एकसौ पीपल, दो  
सौ कालीमिरच और शर्करा चार पल इन  
सबका चूर्ण बनालेवै । यह चूर्ण जिह्वा

को शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजन में  
रुचि बढ़ानेवाला, हृद्रोग, प्लीहा और पाश्च-  
शूलको नष्टकरनेवाला तथा विबन्ध और  
आनाह नाशक है । खांसी, श्वास, ग्रहणी,  
और अश्विकारों को दूरकरता है, संग्राही

तालीशपत्रादि वटिका ।

तालीशपत्रमरिचंनगरं पिप्पलीधुभा ।  
यथोत्तरभागवृद्ध्यात्यगेलेचार्धभागिके ॥  
पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयासितशर्करा ।  
कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णं दीपनंपरम् ॥  
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोषप्लीहज्वरापहम् ।  
बन्ध्पतीसारशूलघ्नमूर्द्धवातानुलोमनम् ।  
कल्पयेद्गुडिकाश्चैव चूर्णपक्त्वासितोप-  
लेः । गुडिकाहामिसंयोगाच्चूर्णाल्लघुत-  
राः स्मृताः ॥

अर्थ—तालीशपत्र, कालीमिरच, सोंठ,  
पीपल और बंशलोचन, इन सबको उत्त-  
रोत्तर एक २ भाग अधिक लेवै । दाल-  
चीनी और इलायची आधे २ भाग लेवै ।  
और पीपल से अठगुनी सफेदचीनी डालकर  
चूर्ण बनावै । यह चूर्ण खांसी, श्वास और  
अरुचि को दूर करता है, अत्यन्त अग्निसंदी-  
पन है हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष,  
प्लीहा, और ज्वरको दूर करनेवाला है ।  
बमन, अतिसार और शूलको दूर करता है  
ऊर्ध्ववातानुलोमी है ।

मिश्रीकी चासनी में पूर्वोक्त चूर्ण को डा-  
लकर गोली बनालेवै, आग्निके संस्कार से ये  
गोलियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं ।

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवि-  
त् । दद्यान्मांसादमांसानिवृंहणानिविशेष-  
पतः ॥ शोषिणेवार्हिणंदद्याद्दार्हिशब्देन  
चापरान् । गृधानुलकाश्चांसांश्चविधि-  
वत्सूपकल्पितान् ॥ काकांस्तित्तिरिश-  
ब्देनमत्स्यशब्देनचारेगान् । शृष्टान्म-  
त्स्योन्मत्स्यशब्देनदद्याद्गृहपदानपि ॥ लो-  
मशान्स्थूलनकुलान्विडालांश्चोपकल्पि-  
तान् । शृगालशावाश्चभिषक्शशशब्देन  
दापयेत् ॥ सिंहावृक्षांस्तरक्षश्चव्याघ्रा-  
नेवंविधांस्तथा । मांसादानमृगशब्देन  
दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ गजखड्गितुरङ्गा-  
णांवंशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्महि-  
पशब्देनमांसमांसाभिवृद्धये ।

अर्थ—जिस यक्ष्मारोगीका मांस छीन  
होगयाहै उसे मांसाहारी जीवों का मांस  
देना चाहिये क्योंकि यह अत्यंत वृंहण होता  
है । इसरोगीको मोरकामांस खवावे अथवा  
मोरके शब्द से अन्य गिद्ध घुग्घू और चिल  
कामांस अनेक तरहसे सागभाजी की तरह  
बनाकर सेवन करावे । तितरके नामसे  
कौण्टकामांस, मछली के नामसे सर्पकामांस,  
मछली के अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोश के  
मांसके नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलकामांस,  
विट्ठी या शृगाल के बच्चेका मांस साग  
भाजीकी रीति से प्रस्तुत करके देवे । हि-  
रनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोज बंधे  
तथा ऐसेही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस  
मांसकी शक्ति के लिये देवे । भैंसेके मांसके

नामसे हाथी घोड़े वा गेंडे के मांसका वेश  
वार बनाकर देवे । इन मांसों से मांसकी  
वृद्धि होती है ।

मांसोनोपचिताङ्गानामांसमांसकरंपरम् ।  
तीक्ष्णोष्णलाववाच्छस्तं विशेषान्मृगप-  
क्षिणाम् ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनि-  
ष्टानिप्रयोजयेत् । तेषूपधामुखंभोक्तुत-  
थाशक्यानिनानिहि ॥ जानन्जुगुपसनै-  
वाद्याज्जग्धवापुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छ-  
घोपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥

अर्थ—मांसाहारी जीवोंका मांस अत्यन्त  
मांसवर्द्धक होताहै इनमें से मृग और पाक्षि-  
यों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने  
से अत्यन्त हितकारी होताहै । अनभ्यास  
के कारण जो अनिष्ट मांसोंका प्रयोग किया  
जाता है उनमें भी रुचिको उत्पन्न करके  
मुखपूर्वक भोजन करे । जो रोगी जानकर  
भी घृणा प्रकट करता हुआ खालेता है वह  
वमन करदेताहै, इससे इन मांसों को छल  
से सिक्र करके देवे ।

घोपपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान ।  
वार्हितित्तिरिदक्षाणांहंसानांशूकरोष्ठयोः ।  
खरगोमहिषाणाञ्चमांसमांसकरंपरम् ॥  
योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामन्नपानि-  
के । तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसा-  
निशोषिणे ॥ प्रसहाभूशयानूपचारिजा-  
वारिचारिणः । आहारार्थमदातव्यामा-  
त्रयावातशोषिणे । प्रतुदाविफिरार्थव-  
धन्विजाश्चमृगद्विजाः । कफपित्तपरीता-  
नांप्रयोज्याःशोपरोगिणाम् ॥ विधि-



त्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृदूनिच । रसव  
न्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मोर तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊँट, गधा, गौ, भैंसा इनका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होताहै । अन्नपानाध्यायमें जो आठ प्रकारके मांस वर्णन कियेगये हैं उन्हीं मांसों में से यक्ष्माके अनुसार रोगी को मांसका सेवन कराना चाहिये, यथा वात-शोथी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप देशज जलजे और जलचर पशुपक्षियों का मांस खाने के लिये देवे । कफ पित्त शोष रोगियोंको प्रतुद, बिक्किर और धन्वज पशु-पक्षियोंका मांस देवे ॥

इन सम्पूर्ण मांसों को साग भाजी की तरह सिद्ध कराके मनोज्ञ मृदु रसाले और सुगन्धित द्रव्य डालकर देवे ॥

मांसमेवाश्रितः शोपेमाध्वीकपिब्रतोऽपिच  
नियतस्याल्पचित्तस्याचिरकायेनतिष्ठति  
वारुणीमण्डभक्तस्यबहिर्माजर्जनसेविनः ।  
अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम् ॥  
प्रसन्नावारुणींशीधुमारिष्टानासवान्मधु ।  
यथेष्टमनुपानार्थपियेन्मांसानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—उस नियमसे चलनेवाले और शान्तात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत दिवस तक नहीं रहने पाताहै जो मांस खाता है और माध्वीक पीताहै । जो सुरा मण्डलको पीताहै और स्नानादि बहिर्माजर्जन करताहै तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का नहीं रोकना है उसके यक्ष्मा भीतर प्रवेश नहीं करसकना । यक्ष्मारोग में प्रसन्ना

वारुणी, शीधु अरिष्ट, आसव और मधु इन का यथेष्ट पानकरै और यथेष्ट मांसभक्षणकरै यक्ष्मा में मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णैर्विशद्यसूक्ष्मत्वात्स्रोतसांमुत्सृ  
म् । प्रमथ्यविवृणोत्याश्रुतन्मोक्षात्सप्त  
धातवः । पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोष  
प्रशाम्यन्ति ॥

अर्थ—मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्महोने के कारण स्रोतों के मुखका प्रमथन करके उन्हें खोलदेताहै और उनके खुलनेसे सातों धातु पुष्ट होने लगताहै और धातुओं के पुष्ट होने से शोष शीघ्र शान्त होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरससिद्धं सर्पिः भयोजयेत् ।  
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दिशगुणेन वा ॥  
सिद्धं मधुरकैर्द्रव्यैर्दशमूलकपायिकैः । क्षी  
मांसरसोपेतं घृतं शोषहरं परम् ॥ पिप्प-  
लीपिप्पलीमूलचव्याचिभ्रकनागरैः । स-  
यावशूकैः सक्षीरैः स्रोतसांशोषनं घृतम् ॥  
रास्नावलागोक्षुरकं स्थिरावर्षाभूसाधित-  
म् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसक्षीरं शोष-  
नुद्घृतम् ॥ यवाग्वावापिचेन्मात्रांलिङ्गा-  
द्रामधुनासह । सिद्धानां सर्पिपामेपामद्या  
दन्नेनवासह ॥ शृण्यतामेपनिर्दिष्टोचिधि  
राभ्यवहारिकः । बहिःस्पर्शनमाश्रित्य-  
वश्यतेऽयः परं विधिः ॥

अर्थ.... यक्ष्मामें मांसाहारी जीवोंके मांस रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे । अथवा दशगुने दूध में घृत पकाकर शहत के साथ

सेवन करे । अथवा मधुरगणोक्त द्रव्य, और दशमूलके काथमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमें घृत को पकाकर देवे यह अत्यन्त शोषनाशक प्रयोगहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ जवाखार और दूध इन में सिद्ध किये हुए घृतका सेवन कराने से स्रोतोंका मुख खुलताहै । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखरू शालिपर्णी और सांठ इनके काथमें जीवन्ती, पीपल, भाडंगी और दूध डालकर घृत पकावे यह घृत शोषको दूर करताहै । ऊपर कहेहुये घृतोंको यवागूर में मिलाकर पीवे अथवा शहतमें मिलाकर खाटे । अथवा आहारके साथ सेवन करे ।

शोषरोगीके लिये यह आहाराविधि वर्णन की गई है अब यहांसे बहिःस्पर्शनविधिका वर्णन करेंगे ।

**अवगाहनविधि ।**

स्नेहक्षीराऽभ्युकोष्ठे तस्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।  
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव वा ॥  
उत्तीर्णमिश्रकैः स्नेहैः पुनरुक्तैः सुखाकरैः ।  
मृद्रीयात्सुखमासीनं सुखं चाच्छादयेन्नरम् ॥

**अर्थ**—रोगीके देहपर तैलमर्दन करके घी दूध या जलकी कोठीमें बिठलाकर स्नान करावे, ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा बल और पुष्टाई बढ़तीहै स्नानके पीछे रोगी को आराम से बिठाकर पूर्वोक्त मिश्रकस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मालिश करके उसको अच्छी तरहसे बखर उठादेवे ॥

**उद्वर्त्तनविधि ।**

जीवन्तीशतवीर्याश्च विकसांस पुनर्नवाम् ।

( १०० )

अश्वगन्धामपामार्गतकार्मिधुकं वलाम् ॥  
विदारीसर्पपंकुष्ठं तण्डुलानतसोफलम् ।  
मापांस्तिलांश्च कण्वञ्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥  
त्रिगुण्यवचूर्णेन दध्ना युक्तं समाक्षिकम् ।  
एतदुत्सादनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ।

**अर्थ**....जीवन्ती, शतवीर्या ( दूध भेद ) मजीठ, सोंठ, असगंध, ओंगा, अरनी, मुल्हठी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तण्डुल, अलसी, उरद, तिल और सुराही-ज इन सबको पीसलेवे इसमें तिगुना जी का चून, तथा दही और शहत मिलाकर के उबटना करे । इससे पुष्टाई, बल और वर्ण बढ़ताहै ।

गौरसर्पपक्वकेन गन्धैश्चापि सुगन्धिभिः ।  
स्नायाद्दुसुखं स्तोयैर्ज्विनीयौषधैः शृतैः ॥  
गन्धैः समालयेत्वा सोभिर्भूषणैश्च विभूषितः ॥  
स्पृश्यान्तं स्पृश्यं संपूजयेद्देवताः सभिपग-  
द्विजान् ॥ इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभो-  
जनम् ॥ इष्टमिष्टरूपहितं सुखमद्यात्सुख-  
प्रदम् ॥

**अर्थ**—सफेद सरसोंका कल्क, और सुगन्धित द्रव्योंको जीवनापगणोक्त औषधिओं में काथ करके ऋतुके अनुसार सुखदायक जलोंसे स्नान करे जैसे गरमीमें शीतल जल से सरदीमें गरम जलेसे स्नान करे फिर अतर फुलेल लगाकर फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र धारण करे, आभूषण पहरे । मंगल द्रव्यों का स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ इच्छानुसार रस, वर्ण स्पर्श और गंध से युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करे ।

पथ्यतम भोजन ।

समातीतानिधान्यानिक्लृपनीयानिभुष्य-  
ताम् । लघूनिहीनवीर्याणि तानि पथ्यत  
मानि हि ॥

अर्थ—शोषरोगियोंके लिये एक वरसके  
रमले हुए पुराने चावलोंका सेवन करावै ये  
लघु और हानिदायि होनेके कारण अत्यन्त  
पथ्यतम होते हैं ।

यक्ष्मामे अन्यपथ्य ॥

पथोपदेश्यतेपथ्यं सतत्तृणाचिकित्सते ।  
यक्ष्मिणस्तत्प्रयोज्यं बलमांसाभिवृद्धये ॥  
अर्थ—क्षतक्षीण चिकित्सामें जो जो प्र-  
योग वर्णन किये गये हैं वे सब बल और मांस  
बढ़ानेके लिये यक्ष्मामें देने चाहिये ।

यक्ष्मामे अन्यउपचार ।

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैर्वस्त्राद्यैर्विमार्जनैः ।  
वस्तिभिः क्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसैरसादनैः ॥  
इष्टैर्मर्द्यैर्मनोहानांगन्धानामुपसेवनैः । यथ-  
स्तुविहितैः स्नानैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥ सु-  
हृदारमणीयानां प्रमदानां च दर्शनैः । गी-  
तवादित्रशब्दैश्चाप्रियश्रुतिभिरेव च ॥ हर्ष-  
णाश्वासनैर्नित्यं गुरुणां समुपासनैः । ब्र-  
ह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः ॥ सत्ये  
नाचारयोगेन मङ्गलैर्विहितैः । वैद्यवि-  
प्रार्चनाचैव रोगराजो निवर्त्तते ॥

अर्थ—तेलकी मालिश करने से, उबटना  
करनेसे, स्नान, अब्जगाहन और मार्जन करने  
से, वस्तिर्मांस से, घृत, दुग्ध, मांसके सेवन  
से, मांसरस के साथ भात खाने से, इष्ट  
मद्यपान से, मनोहारी गंधों के सुंघने से,

श्रुत २ के अनुसार जलों से स्नान करनेसे,  
अखण्ड और प्यारे वस्त्रोंको धारण करनेसे  
इष्टमित्रोंके दर्शनसे, और कमनीय स्त्रियोंके  
देखनेसे गीत वाजोंके शब्दोंसे, प्यारी बातों  
के सुनने से, हर्ष और आश्वासनसे, गुरुज-  
नोंकी नित्यप्रति सेवा करनेसे, ब्रह्मचर्य,  
दान तप और देवतार्चन नियमोंके पालन से  
सत्यव्रतपालन, मंगलाचरण और अहिंसा  
से, वैद्य और विप्रोंके पूजनसे यह रोगराज  
राजयक्ष्मा दूर होजाती है ॥

यथाप्रयुक्त्या चेष्टयाराजयक्ष्मा पुराजितः ।

तावेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थं प्रयोजेयत्  
अर्थ—जिस प्रयोग और कामसे प्राचीन  
कालमें यह रोग दूर किया गयाथा उस  
वेदोक्तकार्य को आरोग्य प्राप्त करनेके लिये करें

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानि प्राप्पूरूपसंग्रहः ॥  
समासव्यासतश्चोक्तं भेषजं राजयक्ष्मणः ॥  
नामहेतुरसाध्यत्वं साध्यत्वं कृच्छ्रसाध्यता  
इत्यर्थसंग्रहः प्रोक्तो राजयक्ष्मचिकित्सिते ॥

अर्थ—इस राजयक्ष्माके चिकित्साध्यायमें  
राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप  
रूप और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तथा  
संक्षेप से वर्णन किये गये हैं । इस रोगके  
अन्यनाम, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और  
कृच्छ्रसाध्यताका वर्णन किया गया है ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवशविरचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चि-  
कित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं

नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः

अथातोऽर्शां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।  
इति हस्माद् भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि  
श्रव हम 'अर्शाचिकित्सित' नामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ।

आसीनं मुनिमव्यग्रं कृतजप्यं कृतक्षणम् ।

पृष्ठवानर्शसां युक्तिमग्नवेशः पुनर्वसुम् ॥

प्रकोपहेतुः संस्थानस्थानं लिङ्गाचिकित्सितम् ।  
साध्यासाध्यविभागश्च तस्मै तन्मु

निरवबोधिति ॥

अर्थ—जब महात्मा पुनर्वसु जपादि नि-  
त्यकर्मसे निश्चिन्त होकर स्वस्थचित्तसे बैठे  
हुए थे इस अवकाशको देखकर अग्निवेशने  
उनसे अर्शरोग की युक्ति, प्रकोप हेतु, आ-  
कृति, उत्पत्तिस्थान, लक्षण चिकित्सा, सा-  
ध्यासाध्य लक्षण पूछे और मुनीश्वरने इन  
सब प्रणोंका यथावत् उत्तर दिया ।

अर्श के भेद ।

इह त्वग्नवेश ! द्विविधान्यर्शासि सह  
जानिकानि चित् ॥ कानि चिज्जातस्यो  
त्तरकालजानि । तत्र बीजं गुदवलिबीजो  
पतप्तमायतनमर्शसां सहजानां ॥ तत्राद्वि-  
विधौ बीजौ उपतप्तौ, हेतुः मातापित्रोर-  
पचारः पूर्वकृतञ्च कर्म तथा न्यपामपिस  
हजानां विकाराणाम् ॥ तत्र सहजातानी-  
ति शरीरेणार्शासीत्यधिमांसविकाराः ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अर्श [ ववासीर ।  
दो प्रकारके होते हैं एक सहज [ जन्म  
सेही होनेवाला ] दूसरा उत्तरकालज

( जन्म लेनेसे पीछे होनेवाला ) इनमें  
सहज अर्शोंका आयतन गुदवलि बीजोप-  
तप्त है, इनमें से माता पिताके अपचार से  
बीजके उपतप्त होनेके कारण तथा पूर्वजन्म  
के किये हुए कर्मसे सहज अर्श होता है, त-  
था अन्य सहज विकारों के भी ये ही दो-  
नों हेतु हैं ॥ जो अर्श शरीरके साथही होते  
हैं वे एक प्रकार के अधिमांस विकार हैं ।

अर्श का स्थान ।

सर्वेषाञ्चार्शसंक्षेत्रं गुदस्यार्द्रपञ्चमांगुले  
ऽवकाशे त्रिभागान्तरास्ति सौ गुदवलयः  
क्षेत्रमित्यदेशः । केचित्तु भूयांसमेव देशमु-  
पदिशन्त्यर्शसां शिश्रमपत्यपथंगलमुखना-  
सिकाकर्णाक्षिबर्तमानित्ववचात्तदस्यधि-  
कमांसदेश एषः गुदवलिजानां त्वर्शासीति  
संज्ञातत्र अस्मिन् सर्वेषाञ्चार्शसां अधिष्ठानं  
मेदोमांसत्वक् च ॥

अर्थ—गुदाके द्वारसे भीतरको साढे पांच  
अंगुलके बीचमें प्रवाहिणी, विसर्जनी और  
संवरणी, ये तीन आंटी होती हैं इनमें ही  
सब प्रकारके अर्शरोग उत्पन्न होते हैं और  
अर्शरोगकी उत्पत्तिका यही स्थान अर्थात्  
क्षेत्र है ॥ कोई २ यह कहते हैं कि केवल  
गुदाही अर्श का स्थान नहीं है किन्तु और  
भी हैं, यथा मेढू, योनिमार्ग, गला, मुख,  
नासिका, कान, आंख के कोए और त्वचा  
परन्तु इन स्थानों में जो मांस बढ़ता है  
वह अर्श नहीं कहलाता है वह तो अधिमांस है  
और गुदाकी आंटीयोंमें जो मांसकी वृद्धि  
होती है उसे ही 'अर्श' कहते हैं । यहां सम्पूर्ण



में पसली, कूख, वस्ति, हृदयं, पीठ, गर्दन के जोते इनमें वेदना, और ताप, चिन्ताप्र-  
स्तता अत्यन्त आलस्य के विकार रहा करतेहैं

उक्तउपद्रवोंका कारण ।

जन्मभृतिअस्यगुदजैराष्टोमार्गोपरोधा-  
द्वायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणो  
दानान्पित्तश्लेष्माणौचमकोपयति । ते-  
प्रकुपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्माणौ चा-  
शीसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनय-

न्तित्युक्तानिसहजन्यशोषी ॥

अर्थ—जन्मसेही गुदमें उत्पन्नहुई अर्श से  
रुफकर ऊपरको बढ़तीहुई अपानवायु समान  
व्यान, प्राण, और उदान इन चारों वायुको  
तथा पित्त और कफ को प्रकुपित करदेती  
है । इसतरह प्रकुपित हुए पांचों वायु तथा  
पित्त और कफ अर्श को उपद्रुत करके पूर्वोक्त  
विकारोंको उत्पन्न करतेहैं ।

यह सहज अर्शोंका वर्णन कियागयाहै ।

उत्तरकालजअर्शके लक्षण ।

अतऊर्ध्वजातस्योत्तरकालजानिव्याख्या  
स्यामः । गुरुमधुरशीताभिष्यन्दविदाहि  
विरुद्धार्जीर्णम्र मिताशनासात्म्यभोजना  
द्रव्यमत्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशित  
भक्षणात्कुशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमा-  
श्लीरपोदकदधितिलगुडविकृतिसेवना  
न्मापयूपेक्षुरसापिण्याक पिण्डालकशुष्क-  
शाकशुक्लशुनकिलाटपिण्डकविषमृणाल  
शालूकक्रौञ्चादनकशेरुकाभृङ्गाटकतरुणवि-  
रुढनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलेशा-  
करागहरितवसा शिरस्पदपर्युपितपूतिशी-  
तसङ्कीर्णाभ्राभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्त

मद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादातिस्ने-  
हपानादसंशोधनाद्वस्तिकर्मविभ्रमादव्यं-  
वायाद्विवास्वमात्सुखशयनासनोपसेव-  
नाच्चोपहृताग्नेर्मलोपचयोभवत्यतिमात्रम्  
अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्धा-  
न्तयानोप्प्रयाणादतिव्यवायाद्विस्तने-  
त्रासम्यक्प्रणिधानात्तुदक्षणादभीक्ष्णं  
शीताम्बुसंस्पर्शाच्चेतलोप्प्रतृणादिधर्ष-  
णात्प्रतृणातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगो-  
दीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात् स्त्रीणां  
ञ्चामगर्भभ्रंशाद्भोत्पीडनाद्बहु विषमप्र-  
सूतिभिश्चप्रकुपितोवायुरपानोमलमुपचि-  
तमधोगममासाद्यगुदवलिप्वाधत्तेतस्ता  
स्वशोषिसमादुर्भवन्ति ।

अर्थ—अब जन्मके पीछे होनेवाले अर्श-  
रोगका वर्णन करेंगे—यथा भारी, मिष्ट, शी-  
तल अभिष्यन्दी, विदाही, विरुद्ध, अजीर्ण-  
कर्त्ता भोजन, प्रमितभोजन और असात्म्य  
भोजन से, गौ, मछली, सूअर, भैंसा, बकरी,  
भेड़ इनका मांस खानेसे, कुश शुष्क और  
सडेहुये मांसके सेवन करनेसे, पिष्टक, पर-  
मान्न, दूध, मोदक, दही, तिल, गुड इनके  
बनेहुये पदार्थोंके सेवनसे, उरद का यूष  
ईखका रस, पिण्याक, पिण्डालू, सू-  
खासाग, सिरका, लहसन, कीला, पिण्ड-  
क, कमलनाल, मृणाल, शालूक, क्रौञ्चा-  
दन, कसेरू, सिंघाडोंके सेवनसे, तरुण, उ-  
गेहुये, नवीन धान्योंके खानेसे, कच्ची मूली  
के सेवनसे, भारीफल, शाक, रागखाडव,  
हरितक, चर्बी, पक्षियोंके सिर, पांव तथा,  
वासी, सडाहुआ, ठंडा, संकीर्ण भोजन करने

से, मन्दक दधि और अत्यन्त मद्यपान करनेसे, दूषित और भारीजलके पीनेसे, अत्यन्त स्नेह पानकरनेसे, असंशोधनसे वस्ति-कर्ममें उलट पुलट होनेसे, अव्यवायसे, दिन में सोनेसे, सुखासन, शय्या वा आसन पर अत्यन्त बैठे रहनेसे आग्निमन्द पड़जातीहै और अग्निके मन्द पड़जानेसे मलकी अत्यन्त दृढ़ होतीहै । इसीतरह उकड़ बैठनेसे, विषम वा कंठोर आसनपर बैठे रहनेसे, ऐसी सवारीपर चढ़नेसे जिसमें झटके बहुत लगते हों, ऊँटपर चढ़नेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे वास्तिनेत्रके ठीक २ न लगनेसे, गुदामें घाव होजानेसे, अथवा बार २ बहुत ठंडे वा गरम जलसे धोनेके कारण अथवा कपडा, लोहा, मिट्टीका ढेला वा गिनुकेसे अत्यन्त घर्षण करनेसे, अत्यन्त किंचनेसे अधोवायु मूत्र और पुरीषके अनुपस्थितवेग को निकालनेसे तथा उपस्थित वेगका निग्रह करनेसे, स्त्रियों के आमगर्भके गिरपड़नेसे, गर्भके उत्पीड़न से, बहुत संतान होने से वा विषम रीतिसे होनेपर अपानवायु प्रकुपित होकर पूर्व संचित मलसे उस समय मिलजातीहै जब वह नीचे को जाने लगताहै, वह अपानवायु गुदाकी आंठमें स्थित होजाताहै और वहां विकार उत्पन्न करके अर्श रोगको उत्पन्न करता है ॥

दोषपरत्वसे अर्शका आकार ।

सर्पपममूरमापमुद्रमकुपुकयवकलायाटि  
ण्टिकेरखजूरकन्दकाकणान्तिकाविम्बी  
बदरकरीरोदुम्बरजाम्बवर्गोस्तनांगुष्टक-

शेरुकामृद्वाटकमृद्वादीदक्षशिखिकुतुण्ड  
जिहामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्या  
द्वातपित्तकफप्रवलानितेपामयंविशेषः ।

अर्थ—सरसों, मसूर, उडद, मूंग, मौठ, जौ, कलाय, टिण्टिकेर ( टेंटी ) खिजूर, बेर, चिरमिठी, कंदूरी, बेर, करीञ, गूडर, जामन, फंसमिस, अंगूठा, कसेरु, सिंघाडा, काकडासोंगी, मुर्गा, मोर, तोता, इनकी चोंच और जिह्वा तथा फूलकी कर्णिकाके समान आकार उन अर्शोंका होताहै जो वात, पित्त तथा कफकी प्रबलतासे हुई है । इनके विशेष लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ।

घातप्रबल अर्शके लक्षण ।

शुष्कम्लानकठिनपरुपरुक्षइयावानिती  
क्षणाग्राणिवक्राणिस्फुटितमुखानिविषम  
विस्तृतानिशूलासेपतोदस्फुरणचिमिचि  
मासंहर्षणपरीतानिस्त्रिग्वोष्णोपशयानि  
प्रवाहिकाध्मानशिभ्रष्टपणवस्तिवृक्षणह-  
दग्रहाङ्गपर्दहृदयद्रवप्रवलानिप्रततविवद  
वातमूत्रवर्चोसिफीठनवर्चोस्यूरकटीपृष्ठ  
त्रिकपार्श्वकुक्षिवस्तिशूलशिरोऽभितापिष्ठ  
बधूद्गारप्रतिश्यायकासायासशोषशोथ  
मूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासा  
कर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारु  
णपरुपनखनयनवदनत्वक्मूत्रपुरीषस्य  
वातोत्वणान्पशोसीतिविधात् ।

अर्थ—वे अर्श जो शुष्क, कुम्हलाईहुई कठोर, खरखरी, रुक्ष, श्यामवर्ण, तीक्ष्ण अग्रभागवाली, टेढ़ी, फटेहूए मुखकी विषम रीतिसे फैली हुई होतीहै तथा जिनमें

शूल, आक्षेप, तोद ( सुई चुभने कीसी वेदना ), स्फुरण ( फुरफुरी ) चिमचिम और रोमोद्गम होता है, जिनमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंके व्यवहारसे शान्ति होती है जिनमें प्रधाहिका अध्मान होता है तथा मेद, अण्डकोप, वस्ति, वंक्षण और हृदयमें वेदना होती है जिसमें अंगमर्द और हृदय द्रवकी प्रवृत्ति होती है, जिसमें अधोवायु, मल और मूत्र रुकजाता है, मल कड़ा पड़जाता है, ऊरु, कमर, पीठ, त्रिक, पसली, कूख और वस्तिमें शूल होता है, शिरोवेदना, छींक, डकार, जुकाम, खासी, आयास, शोष, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि और मुखमें विरसता, तिमिर, खुजली, नाककान कनपटीमें वेदना, स्वरभंग, तथा जिसमें नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टा काले, लाल और परप होजाते हैं, उसे वातज अर्थ कहते हैं ।

भवतिचात्र ।

कपायकटुतिक्तानिरुक्षशीतलघूनिच ।  
ममितालपाशनन्तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम् ॥  
लघनदेशकालौचशीतौव्यायामकर्मच ॥  
तीक्ष्णोवातातपस्यशोहेतुर्वाताशसामिति ॥

अर्थ—कपाय, कटु, तिक्त, रुक्ष, शीतल और लघु पदार्थोंका अत्यन्त सेवन, मित-भोजन, अल्पभोजन, तीक्ष्णमद्यपान, अत्यन्त मैथुन, लघन, शीतदेश, शतिकाकाल, व्यायाम प्रचंड पवन, तेज धूप, ये सब वातज अर्थ के प्रधान हेतु हैं ।

पित्तज अर्थ के लक्षण ।

मृदुशिथिलसुकुमारान्यस्पर्शसहानिरक्त-

पीतनीलकृष्णानि स्वेदोपहेद्वहुला-  
निविश्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्रावीणिरुधि  
रवाहीनिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्ति-  
शिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितवर्चा  
सिपीतविस्रगन्धप्रचुरविष्मूत्राणिपिपासा-  
ज्वरतमकसंमोहभोजनेद्वेपकराणिपीतन  
खनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यपिचोल्ब-  
णान्यर्शासीतिविद्यात् ।

अर्थ....पित्तज अर्थ उसे कहते हैं जो मृदु, शिथिल और सुकुमार हो, जिसमें हाथ लगानेसे तकलीफ होता हो, जिस का वर्ण लाल, पीला, नीला वा काला हो जिस में पसीने और श्वेदकी अधिकता हो, जिसमें दुर्गन्ध आती हो, पतला और पीला रक्त झरता हो, रुधिर बहता हो, जो दाह, खुजली शूल, तोद और पाकयुक्त हो, जो शीतल पदार्थों के सेवनसे शान्त होजाय, जिसमें फटाफटा पीला वा हरामल निकलै, जिसमें पीला दुर्गन्धयुक्त और अधिक मल मूत्र निकलै, जिसमें तृपा, ज्वर तमक, मोह, भोजनमें अरुचि ये उपद्रव हों, जिस में नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टा पीले पड़गये हों ।

भवतिचात्र ॥

कटुमल्लवणक्षारव्यायामान्यातपप्रभाः  
देशकालावाशिशिरोक्रोधोपधमसूयनम् ॥  
चिदाहितीक्ष्णमुष्णज्वरसर्धपानान्नभेषजम्  
पित्तोल्बणानांविशेषःप्रकोपहेतुर्शसामिति

अर्थ—पित्तोल्बण अर्थके कोपके प्रधान कारण ये हैं, यथा-कटु, अम्ल, नमकीन और खारे पदार्थों का अत्यन्त सेवन, व्यायाम



म, अग्नि तथा धूपका अत्यन्त सेवन, उष्ण, देश कालका सेवन, मोघ, मदिरापान, निन्दा तथा विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण अनपान और औषधी का सेवन ।

कफजअर्श के लक्षण ॥

तत्त्वयानिममाणवन्पुपाचितानिःश्लक्ष्णानिःस्पर्शसहानिश्चेतपाण्डुपिच्छलानिःस्तब्धानिगुरूणीस्तिमितानिसुप्तसुप्तानि स्थिरश्चयधूनिपततिपञ्जरश्चेतरक्तीपच्छस्वावीणिकण्डूबहुलानिगुरुपिच्छिलश्चेतमूत्रपुरीषाणिरूक्षोष्णोपशयानिमवाहि कातिमात्रोत्थानिवंक्षणानाहपरिकर्तिका हृल्लासनिष्टीविकाकासारोचकमतिशया यगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रोपशोथपाण्डुरो गशतिज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्यो पलेपास्यमाधुर्यमभेदकराणिदीर्घकालानु पशयान्यतिमात्रमग्निमार्दवकैलव्यकराण्या मविकारमवलानिगुरुणिचशुक्लनखनयन घदनत्वद्मूत्रपुरीषस्यश्लेष्मोत्वणान्यर्शा सीतिविद्यात् ॥

अर्थ—कफजअर्श उन्हे कहतेहैं जो घडे, मोटे, चिकने, स्पर्शके अयोग्य, सफेद, पॉले पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, स्तिमित, फैलेहुये, स्थिर सूजनयुक्त हों, जिसमेंसे पॉला, सफेद, छाछ और पिच्छिल स्राव होताहै, जिसमें अत्यन्त खुजली चलतीहै, भारी, पिच्छिल और स्वेत वर्णका मलमूत्र निकलता है, जो रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे शान्त होजाता है, जिसमें अत्यन्त प्रवाहिका, वंक्षणानाह, परिकर्तिका, हृल्लास, निष्टीबका, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, भारापन, मूत्रकृच्छ्र, वमन,

शोष, शोथ, पाण्डु रोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदयोपलेप, इन्द्रियोपलेप, आस्योपलेप, मुखमें मांठापन और प्रमेहरोग ये उपद्रव होतेहैं यह अर्श बहुत दिवस तक रहताहै और अग्निको अत्यन्त मन्द तथा शीवता करता है, इसमें आमविकार उत्पन्न होजाताहै, यह रोग बढाभारीहै इसके होने से नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र पुरीष सफेद पड़जाते हैं ।

भवतिचात्र ।

मधुरास्निग्धशतानिलवणानिगुरुणिच।  
अन्यायातदिवास्वप्नशय्यासनमुखेरातिः।  
माग्वातसेवाशतिचिदेशकालावाचितनम्।  
श्लेष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम्॥

अर्थ—कफजअर्शके प्रधानहेतु ये हैं यथा मोटे, चिकने, शीतल, नमकीन और भारी पदार्थोंका सेवन, कसरत खुदती न करना, दिनमें सोना, पलंग या आसनपर सुखपूर्वक बैठेरहना, पुरुषेशहयाका खाना, शीतल देशकालमें रहना और बेफिकरी ।

द्वन्द्वजादिअर्श के लक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोत्वणानिच।  
सर्वहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसह ।

अर्थ....जिनमें दो दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलेहों उन्हे द्वन्द्वजअर्श कहतेहैं । जिनमें तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षणहों तथा जो सहजअर्श के लक्षणों से युक्त हो उसे त्रिदोषजअर्श कहतेहैं ।

अशंकेपूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदोर्वल्यंकुक्षराटोपएवच ।

कार्श्यमुद्गारबाहुल्यसक्थिसादोऽल्पवि-  
दूकता ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्तिरश्रद्धाचो  
दरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यशंसाम  
तिष्ठद्ध्ये ॥

अर्थ....पेटमें गुडगुड होना, दुर्बलता,  
कूडका फूलना, कृशता, डकारोंका अधिक  
आना, सक्थिसाद, दस्तका कमहोना, ग्रहणी  
दोष, पाण्डुरोग आर्त्ति, उदररोगकी आशंका  
ये सब अशरोगोंके पूर्वरूप हैं ।

अशर्केनाम विशेषका कारण ।  
अर्शासिखलुजायन्तेनासन्निपतितैः त्रि-  
भिः । दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषः कल्प्य-  
तेऽशंसाम् ॥

अर्थ—बिना तीनों दोषोंके मिळनेके अ-  
शरोग नहीं होताहै परन्तु जिस दोषकी प्र-  
यलता होताहै उसी के नामसे वह पुकारा-  
जाताहै ॥

अशर्को कष्टसाध्यत्व ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तकफोगुदबलित्रयम् ।  
सर्वाण्येतानिकुप्यन्तिगुदजानांसमुद्भवो  
तस्मादर्शासिदुःखानिवहुव्याधिकराणि  
च । सर्वदेहोपतापीनिपायः कृच्छ्रतमा-  
निच ॥

अर्थ—प्राणादिक पांच प्रकारकी वायु पित्त,  
कफ और गुदाकी तीनों अंटी अशर्के उत्पन्न  
होनेसे एक साथ कुपित होजातीहैं, इस हेतुसे  
अशर् अत्यन्त दुःखदायक, बहुत व्याधियों की  
करनेवाली सम्पूर्ण देहको उत्तम करनेवाली  
प्रायः कष्टसाध्य होतीहै ।

असाध्य अशर्के लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यामुखेऽपण्योस्तथाशो

योहृत्पाश्वर्शुलीचयोऽशः सनसिद्धयति ।  
हृदस्तिशूलसंमोहच्छर्दिरश्रस्यरुग्ज्वरः ।  
तृष्णागुदास्यपाकश्चनिह्न्युगुदजातुरम् ॥  
सहजानित्रिदोषाणियानिचाम्यन्तराव-  
लिम् । जायन्तेऽर्शासिसंश्रित्यतान्यसा-  
ध्यानिनिर्दिशेत् ॥ शेषत्वादायुपस्तानि  
चतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकाया  
ग्रेः प्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ द्वन्द्वजा-  
निद्वितीयायांबलौयान्याश्रितानिच । कृ-  
च्छ्रसाध्यानितान्याहुः परिसम्बत्सरा-  
णिच ॥

अर्थ—जिस अशरोगीके हाथ, पांव गुदा,  
नाभि, मुख, अण्डकोष, इनमें शोध होताहै  
तथा हृदय और पसलीमें शूल होताहै वह  
अशरोग असाध्य होताहै ॥ जिस रोगीके  
हृदय और वस्तिमें शूलहो तथा वमन, संमोह  
अंगवेदना, ज्वर, तृष्णा गुदाके अप्र-  
भागका पाक इन रोगोंके होनेसे अशर् रोगी  
मरजाताहै । जो सहज अशर् त्रिदोषसे कु-  
पित होकर गुदाकी भीतरली आंटीका आ-  
श्रय करलेतीहैं वे असाध्य होतीहैं; यदि आयु  
शेष हो, चिकित्साके चारों पाद युक्तहों और  
जठराग्नि प्रदीप्तहो तौ यह रोग याप्य होजा-  
ताहै, नहीं तौ असाध्य होताहै । जो सहज  
अशर् गुदाकी दूसरी आंटीमें आश्रित रहतेहैं  
वा जो एक बरसके पुराने होगयेहैं वे कृच्छ्र  
साध्य होते हैं ।

साध्यके लक्षण ।

नासायान्तुबलौजातान्येकदोषोत्वणा-  
निच । अर्शासिमुखसाध्यानिनचिरोत्प-

तितानिच ॥ तेषांप्रशमनेयत्नमाशुक्रय्या  
द्विचक्षणः । तान्याशुहिगुदंबद्धांकुर्याद्  
द्वगुदोदरम् ॥

अर्थ—जो अर्श गुदाकी बाह्यवाली आंटी  
में एक दोपसे उत्पन्न होताहै तथा जो बहुत  
पुराना नहीं होताहै वह सुखसाध्य होताहै ।  
उसके शान्त करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य  
को शीघ्रही यत्न करना चाहिये, क्योंकि चि-  
कित्सामें विलंब होनेसे अर्श गुदाके मार्गको  
रोककर बद्ध गुदोदर रोगको उत्पन्न करती है।

साध्यअर्श में कर्त्तव्य कर्म ।

तत्राहुरेकशस्त्रेण कर्त्तव्यमर्शसाम् ॥  
दाहक्षारेण चाप्येके दाहमेके तथाग्निना ।  
अस्त्येतद्भूरितन्त्रेण धीमता ह्येककर्मणा ।  
क्रियते त्विविधं कर्म भ्रंशस्तस्य सुदारुणः ।

अर्थ—कोई २ यह कहतेहैं कि मस्तोंका  
शस्त्रसे काट डालना हितहै कोई यह कहते  
हैं कि क्षार वा आग्निसे दग्ध करदेना चाहिये  
ये तीन उपाय शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् और क्रिया  
कुशल वैद्यके करनेके हैं इन कर्मोंमें विघ्न  
पडनेसे भयंकर उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

कर्मभ्रंशके उपद्रव ।

पुंस्त्वोपघातः श्वयुग्मुदेवेगपरिग्रहः ॥ आ-  
ध्मानंदारुणशूलं व्यथारक्तातिवर्त्तनम् ।  
पुनर्विरोहोरुन्धानां रुदो भ्रंशो गुदस्य च ।  
मर्गं वा भवेच्छीघ्रं शस्त्रक्षारामिविभ्रमात् ।

अर्थ—शास्त्रकर्म, क्षारकर्म वा अग्निकर्ममें  
किंसी प्रकारसे विभ्रम पडनेसे क्लीयता, गुदा  
में सूजन, मल गुदादि वेगका विनिग्रह, अ-  
पांग, दारुणशूल, व्यथा, रुधिरका बहना,

मस्तोंका फिर उत्पन्न होना, क्लेद, गुदाकी  
भ्रंशता अथवा मृत्यु ये उपद्रव शीघ्रही होतेहैं  
यत्तु कर्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ॥  
तदर्शसांप्रवक्ष्यामि समूलानां निवृत्तये ।

अर्थ—अब हम अर्शसंबंधी उन उपायों  
का वर्णन करतेहैं जो बहुत सुखसाध्यहैं, जिन  
में भ्रंश होनेका बहुत कम डरहै और जो  
बहुत कठिन नहीं हैं । ऐसे ऐसे उपायों को  
जड समेत अर्श को खो देने के निमित्त वर्-  
णन करते हैं ।

वातश्लेष्मोत्वणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसित  
द्विदः ॥ मस्रावीणितथाद्रोणिरक्तपित्तो  
त्वणानिच । तत्र शुष्कार्शसांपूर्वमवक्ष्यामि  
चिकित्सितम् ॥

अर्शके पहचाननेवाले वात कफोद्भव अर्श  
को सूखी बवासीर कहतेहैं । और जो रक्तपित्त  
जग्यहै, उसे स्रावी वा गीली कहतेहैं । अब  
हम प्रथम शुष्क अर्श की चिकित्साका वर्-  
णन करतेहैं ।

शुष्क अर्शकी चिकित्सा ।

स्तब्धानिस्वेदयेत्तानि शोफशूलान्वितानि  
च । चित्रकक्षारविल्वानां तैलेनाभ्यज्य  
बुद्धिमान् ॥ यवमापपुलाकानां कुलत्था  
नांचपोटलैः । गोखराभशकृत्पिष्टैस्तिल  
कलैस्तुपैरापि ॥ वचाशताढापिण्डैर्वा सु-  
खोष्णैः स्नेहसंयुतैः । सक्तूनां पिण्डका  
भिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा ॥ शुष्कमूल  
कापिण्डैर्वा पिण्डैर्वा कपर्जगन्धिकैः रास्ना  
पिण्डैः सुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हृपुपैरपि ॥ इष्टक-  
स्पर्शराभायां शार्कैश्च स्ननकस्य च । अभ्य

ज्यकुष्ठतेलनस्वेदेयत्पोटलीकृतैः ॥

अर्थ—जो अर्श स्तब्ध, शोकयुक्त और शूलयुक्त है उनमें चीता, जवाखार और बेल फलके तेलकी मालिश करके स्वेदन कर्म में नांचे लिखद्वेय प्रयोगों को युक्तकरे, यथा जौ, उरद, पुलाक और कुन्धी इनको उबाळकर पोटली में बांधे और इस पोटली से धीरे २ सेकने पर स्वेदन होता है । अथवा गौ, गधा, और घोडे की लीदकी पोटली बनाकर सेकें । अथवा तिलका फल्क और तुप, प्रयुक्त करें । अथवा वच और सोंठको पीसकर घी डालकर पकावै और गरम २ से सेकें । अथवा घी तेल डालकर सत्तूका गोला बनाकर सेकें । अथवा सूखी मूथ्रीका गोला वा सड़नेका गोला बनाकर सेकें । रास्ना के गरम २ लुगद वा स्नेहयुक्त हा-जबरेके लुगदसे सेकें अथवा कूठका तेल लगाकर ईंट, गंधकी लीद, और गाजर के सागकी पोटली बनाकर सेकें ।

वृषार्कैरण्डविल्वानांपत्रोत्काथैश्चेत्तु  
मूलकत्रिफलार्काणांविष्णूनांवारणस्यच ॥  
अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच  
जलेनेत्काथ्यशूलार्त्तस्वभ्यक्तमवगाहये  
त् ॥ कीलोत्काथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतु  
पोदके । किण्वोत्काथेऽथवातक्रेदधिमण्डा  
म्लकाजिके ॥ गोमूत्रेवासुखोष्णोत्

शूलात्तमुपवेशयेत्

अर्थ—अहूसा, आक, अंडी और बेल इनके पत्तोंका काथ कर के सेज्जन करें । शूलयुक्त अर्शरोगीको अच्छीतरह अभ्यक्त

करके मूली, त्रिफला, आक, वांस, वरना, अरनी, सहजना और अश्मन्तक इनके पत्तों काकाथ करके स्नान करावै । अथवा बेरके काथम सौवीर वा तुषोदक में, अथवाकिण्व-के काथ में अथवा तक्र, दधिमण्ड वा अ-म्लकांजीमें अथवा गरम २ गोमूत्रमें शूलयु-क्त अर्शरोगी को बिठादेवै ।

अर्श में अन्यप्रयोग ।

कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतूकावृषदंशजम् ॥ य-  
सामभ्यजनंकुर्याद्वृषनचाशिसंहितम् । वृ-  
केशाःसर्पनिर्गोकोवृषदंशस्यचर्मच ॥ अ-  
र्कमूलशमीपत्रार्शोभ्योधूपनंहितम् । तु-  
म्बुलानविडंगानिदेवदाक्षताघृतम् । धु-  
हतीचाश्वगन्धाक्षपिप्पल्यःसुरसोघृतम् ।  
वराहवृषविट्चैवधूपनंशक्तवोघृतम् ॥

अर्थ—कालेसाप, सूअर, ऊँट, जतूका [ चमगदड ] वा बिल्ली की चर्मीका अर्श पर मर्दनकरे ॥ मनुष्यके केश, सर्पकी की कांचली, बिल्लीका चर्म, आककी जड, शमी-पत्र इन सबकी धूप मस्तों को देवै । अथवा धनिया, नायाविडंग, देवदारु, अक्षत और घृत । अथवा कटेरी, असंगंध, पीपल, सु-रसा तुलसी और घी ॥ अथवा सूअर और बेलकी विष्टा, सत्तू और घी इन प्रयोगोंको धूप देनेके लिये काममें लावै ॥

अर्शपरलेप ।

कुञ्जरस्यपुरीषान्तुघृतसर्ज्जरसोरसःहरि-  
द्राचूर्णसंयुक्तंमुधासीरंमलेपनम् ॥ गोपि-  
क्षपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम् । शि-  
रीषवीजंकुष्ठपिप्पल्यःसन्धवगुहः । अ-

कक्षीरमुधाक्षीरं त्रिफलाचमलेपनम् ॥ पि-  
प्पल्याचित्रकाः श्यामाः किण्वं मदनतण्डु-  
लाः ॥ मलेपः कुक्कुटशकृत् हरिद्रागुडसंयुतः  
निकम्भः सामृतासंगः पारावतशकृद्गुडः ।  
मलेपः स्याद्गजास्थीनिनिम्बोभलातकानि  
च ॥ मलेपः स्यादलर्केणवसन्तजवसायु-  
तः । शूलश्वयथुहृद्रोगे चुलकीवसयाथवा ॥  
आर्कपयः सुधाकाण्डकडुकालाबुपल्लवाः ।  
करञ्जोवस्तमूत्रचलेपनं श्रेष्ठमशसाम् ॥ अ-  
भ्यंगाद्याः प्रदेहान्ताय एते परिकीर्त्तिताः ॥  
स्तम्भश्वयथुकण्ड्वर्त्तिशमनास्तेऽर्शसाम्पताः

अर्थ—हार्थीकी लीद, घी, शल, पारा,  
हल्दी और सेंहुडदूध इनको सानकर अर्श  
पर लेप करें । अथवा पीपल और हल्दी  
को गौंके पित्तमें पीसकर लेप करें अथवा  
सिरसके बाज, कूठ, पीपल, सेंधानमक  
गुड, आकका दूध, सेंहुडका दूध, त्रिफला  
इनका लेप करें ॥ अथवा पीपल, चीता,  
श्यामा, सुरावीज, मेनफल, चावल, मुर्गेकी  
बाँठ, हल्दी और गुड इन सबका मिलाकर  
लेप करें ॥ अथवा दन्ती, मुर्दासंग,  
कवूतरकी बीट, गुड, हार्थाशत, नीम  
और भिल्लया इनका लेप करें । अ-  
थवा शूल, सूजन और हृद्रोग से युक्त  
अर्श में ऊंटकी चर्बी वा चुलकी की चर्बी  
के साथ सफेद आकका लेप करें । अथवा  
आकका दूध, सेंहुडके डंठल, कडवी तूँवी  
के पत्ते, फंजा, बकरेका मूत्र इनका लेप भी  
अर्शमें हितकारक है ।

अभ्यंगसे लेकर प्रदेहतक जो प्रयोग व-

र्णन किये गये हैं वे स्तम्भता, सूजन, खुजली  
और आर्तियुक्त अर्शमें हितकारक हैं ।  
प्रदेहान्तरूपक्रान्तान्यर्शासि प्रस्रवन्ति हि  
संश्रितदुष्टरुधिरं ततः सम्पद्यते सुखम् ।  
शीतोष्णस्निग्धरुक्षैर्हि नव्याधिरुपशाम्यति  
रक्ते दुष्टे भिषकृतस्माद्रक्तमेवावसे चयेत् ।  
जलौकाभिस्तथा शस्त्रैः सूचीभिर्वा पुनः पुनः  
अवर्त्तमानं रुधिरं रक्ताशोभ्यः प्रवाहयेत् ॥

अर्थ—प्रदेह पर्यन्त उपचारोंके करने  
से विगड़ा हुआ संचित रुधिर निकलजाता  
है इसके निकलजानेसे सुख होता है । दुष्ट  
रुधिरके विद्यमान होनेपर शीतल, उष्ण,  
स्निग्ध और रुक्ष उपचारोंके करने से व्या-  
धि शान्त नहीं होती है इसमें रुधिरका निका-  
ल देना आवश्यकीय बात है खूनवाधासार  
में जो रुधिरका निकलना बन्द हो गया हो  
ताँ जोक, शस्त्र वा सूची द्वारा रुधिर को  
निकालता रहे ॥

अर्श में पेय औषध ॥  
शुदश्वयथुशूलार्शमन्दाग्निपायपेच्चतम् ।  
त्र्युपपणं पिप्पलीमूलपाठां हि गुंसचित्रकम् ॥  
सौवर्चलं पुष्कराख्यमजार्जीविल्वपेपि  
काम् ॥ विडं यवानी हपुषां विडङ्गं सेन्धवं  
वचां ॥ तिन्त्रिण्यक्षमण्डेन मधेनो  
प्लोदकेन च । तथा शोणहणीदोपशूलानां  
हादिमुच्यते ॥

अर्थ—गुदाके सूजन, शूल और मन्दाग्नि  
युक्त अर्शमें निम्नलिखित द्रव्योंका पान  
करावै, यथा त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा, ही-  
ग, चीता, संचलनमक, कुडा, कालाजीरा,

वेलगिरी, विडनमक, अजवायन, हाऊवर, वायविडंग, संधानमक, वच इमली, इनको सुरामण्ड, और उष्णजल क साथ पानकरै तो अर्शरोग, ग्रहणादोष शूल और आनाह दूर होजातेहैं ।

### अन्यप्रयोग ।

कुर्याद्वापाचनंतस्पयदुक्तं ह्यातिसारिके ।  
सगुडामभयां बाधप्राशयेत् पौर्वभक्तिकीम्  
पाययेत् त्रिवृच्चूर्णं त्रिफलायारसेनवा ।

हृते गुदाश्रये दोषे गच्छन्त्यर्शोसिसंक्षयम्

अर्थ—अतिसारकी चिकित्सा में जो पाचन द्रव्य वर्णन किये गये हैं उनका प्रयोग भी इसे जगह हित है । यथा भोजन करने से पहिले हरड और गुड मिलाकर सेवन करै । अथवा त्रिफलाके रसके साथ निःसाधका चूर्ण पान करै । इन प्रयोगोंके द्वारा गुदाश्रित दोषोंके दूर होनेपर अर्श नष्ट होजाताहै ।

### अन्यप्रयोग ।

गोमूत्राभ्युपितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम्  
हरीतकीं तक्रयुतां त्रिफलां वा प्रयोजयेत् ॥  
सनागरं चित्रकं वाशीशुधुक्तं प्रयोजयेत् ॥  
चव्यं वाशीशुसंयुक्तं मज्जाजीदीप्यकं पिवेत्  
सुरां वा हृत्पुपां पाठां युक्तां सौवर्चलायुताम् ॥  
दधित्यविल्वयुक्तां वा तथा वाच्यं चित्रकौ  
भल्लातकयुतां वा यमदद्यात्तत्र तर्पणम् ॥  
विल्वनागरयुक्तं वा यवान्या चित्रकेण वा  
चित्रकं हृत्पुपां हि गुं दद्याद्वा तक्रसंयुतम् ॥  
पञ्चकोलयुतं वा पित्तक्रमस्मै प्रदापयेत् ।

अर्थ—गोमूत्रमें हरडको भिजोकर गुड के साथ देवै । अथवा मठेके साथ हरड वा

त्रिफलाका प्रयोग करै अथवा सोंठ और चींते को शीधुमें मिलाकर देवै अथवा शीधुके साथ चव्य वा कालाजीरा और अजवायन पीवै अथवा हाऊवर, पाठां, संचलनमक इनको सुराके साथ पान करै । अथवा कैथ और वेलगिरी, अथवा चव्य और चींता अथवा मिलायेके साथ तर्पणका प्रयोग करै अथवा वेलगिरी और सोंठ, अथवा अजवायन और चींता अथवा चींता, हाऊवर और हिंग इनको मठेके साथमें देवै । अथवा मठाके साथ पंचकोलका चूर्ण देवै ।

### तक्रारिष्ट ।

हृत्पुपांकुञ्चिकां धान्यमज्जाजीकारवीं शटीम्  
पिप्पलीपिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली  
म्रायवानीं चाजमोदां च चूर्णितं तक्रसंयुतम्  
मन्दां मलकदुकं विद्वान्स्थापयेत् घृतभाजने  
व्यक्तां मलकदुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम्  
प्रापिं वन्मात्रया काले प्वन्नस्य तृपितस्त्रिपु ।  
दीपनरोचनं वृण्यै कफवातानुलोमनम् ॥  
शुदृश्वयधुकण्डूवर्तिनाशनं धलवर्द्धनम् ॥

अर्थ.... हाऊवर, छोटाजीरा, धनियां, काला जीरा, कारवी, कचूर पीपल पांपलामूल, चींता गजपीपल, अजवायन, अजमोद इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै और मठेमें मिलावै इसमें कुछ खट्टा और क्रुदुर रस होगा, तदन्तर इसे घृत के पात्रमें भरकर रखदे जब इसमें अम्ल और कटुरस तेज होजाय तब जानना चाहिये कि तक्रारिष्ट तयारहुआ, यह मुखको अत्यन्त प्रिय लगताहै । भोजन के तीनों कालोंमें तृषा लगने पर इसीका मात्रा

के अनुसार पान करें । यह तक्रादिष्ट अग्नि  
संदीपन, रोचन, वर्णकारक, कफवातानुलो-  
मनकर्त्ता, गुदाकी सृजन, कण्डू और अर्ति  
का नाश करने वाला तथा बलवर्द्धक होता है  
अर्श में तक्र प्रयोग ।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ट्वाकुम्भप्रलेपयेत् ॥  
तक्रंवाद्भिवातत्रजातमर्शोर्हंपिवेत् । वा  
तश्लेष्माशंसितक्रात्परनास्तीहभेषजम् ॥  
तत्प्रयोज्ययथादोषसंस्तेहंरूक्षमेववा । स  
साहंवाद्दशाहंवापक्षमासमधापिवा । चल  
कालविशेषज्ञोभिपक्ततक्रप्रयोजयेत् ।

अर्थ—चीतेकी जड़की छालको पीसकर  
घंघेके भीतर लेप कर दिया जाय तदनन्तर  
उसमें तयार किया हुआ मठा या दही अर्श-  
रोगमें अत्यन्त हितकारक है । वात और क-  
फसे उत्पन्न अर्शमें तक्रसे उत्तम और की-  
ई औषध नहीं है, दोषके अनुसार सिग्ध वा  
रूक्ष तक्रका प्रयोग करें । बल और काल  
को जाननेवाला वैद्य सात दिन दसदिन,  
पन्द्रह दिन वा महीने भरतक तक्रका प्रयोग  
कर सकता है ।

अत्यर्थमृदुपाकाग्नेस्तक्रभेदावचारयेत् ।  
सायंवालाजशवतूनादद्यात्क्रावलेहिका  
म् । जीर्णतक्रप्रदद्याद्वातकेपेयांससैन्धवाम्  
तक्रानुपानंसस्नेहतक्रीदनमयोत्तरम् । यू-  
पैर्मांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसाधितम् ॥

अर्थ—जठराग्निके अत्यन्त मन्द होजाने  
पर तक्रहोंके द्वारा चिकित्सा करें, अथवा  
सायंकालके समय खीलोंके सत्तूका तक्रके  
साथ अवलेह बनाकर दें । तक्रके पचने

पर तक्रके साथ संधानमक की पेया दें ।  
तक्रका अनुपान करावे । तक्रके साथ घृत  
युक्त चावलोंका भात दें । अथवा तक्रके  
साथ सिद्ध किया हुआ यूप वा मांसरस दें ।

तक्रसेवनका क्रम ।

कालक्रमःसहसान्वतक्रनिवारयेत् ।  
तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपशमोमतः ॥  
अपकर्षोयथोत्कर्षोन्तत्त्रादपकृष्यते ।  
प्रत्यागमनरक्षार्थदाढ्योर्धमनलस्यच ॥  
बलोपचयवर्णार्थक्रमोपवर्ण्यते ।

अर्थ....कालके क्रमको जाननेवाला वैद्य  
तक्रके सेवनका सहसा परित्याग न करादे-  
वे । जो तक्र एक महीने तक सेवन किया  
गया है उसका त्याग एक महीनेमें क्रम रसे  
करावे । अन्नके सेवनसे तक्र सेवनमें कमी  
नहीं होती है इस क्रमके अवलंबन करने से  
अर्शरोग फिर उत्पन्न नहीं होसکتा है अग्निदृढ  
होजाती है, बल, पुष्टि और वर्ण बढता है ।  
रूक्षमर्दोद्धृतस्नेहंयतश्चानुद्धृतंघृतम् ।  
तक्रदोषाग्निबलवित्त्रिविधतत्प्रयोजयेत् ।  
हृत्तानिनिविरोहन्तितक्रेणुदजानिह ॥  
भूमावपिनिपिक्ततद्देहत्क्रतृणोलुपम् ।  
किंपुनर्दासकायाग्नेःशुष्काण्यर्शांसिदेहि-  
नः ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेपुरसाःसम्यगुपैति-  
यः । तेनपुष्टिर्वलंवर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥  
वातश्लेष्माविकाराणांशतंचापिनिवर्त्तते ।

अर्थ—दोष, अग्नि और बलका जानने  
वाला वैद्य रूक्षतक्र, अर्द्धोद्धृत स्नेह और  
अनुद्धृतघृत इन तीन प्रकारसे तक्रका प्र-  
योग करें । इनमेंसे पहिली विधि कफाधिक्य

दद्यान्मत्स्यण्डिकां पूर्वभक्षयित्वासनाग  
राम् । गुडसनागरपाठाफलाम्लपायये-  
चतम् । गुडघृतयवक्षारयुक्तं वापि प्रयोज-  
येत् । यमानीनागरपाठांदाडिमस्य रसं-  
गुडम् ॥ सतक्रंलयणं दद्याद्वातवर्चोऽनु-  
लोमनम् ।

अर्थ—पहिले सोंठके चूर्ण और मिश्रीको  
फाँककर घृतयुक्त सच्चा और नमक मिलाइई  
प्रसन्ना अर्थात् मुरामण्डका पान करे । अथ-  
वा गुड, सोंठ और पाठा वा अनारका रस  
पान करावे । अथवा गुड घृत और जवाखार  
का प्रयोग करे । अथवा अजवायन, सोड,  
अनारका रस गुड तक्र और सेंधानमक ये सब  
मिलाकर देवे । इस प्रयोगका सेवन करनेसे  
अग्नेयायु तथा विष्टाका अनुलोमन होता है ।  
दुःस्पर्शकेन विल्वेन यवान्यानागरेण वा ॥  
एकं केनापि संयुक्ता पाठादन्त्यर्शसां रुज्मां-  
प्रागुक्तयमके भृष्टान् शकतुभिश्चावचूर्णिताम्  
करञ्जपल्लवान् दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनात् ।  
मदिरावासलवणां शीघ्रं सौवीरकं तथा ।  
गुडनागरसंयुक्तां पिबेद्वापि वैभक्तिं क्रमम् ॥

अर्थ....जवासा, वेलगिरी, अजवायन,  
और सोंठ इन चारोंमें से एक २ के साथ  
पाठाका काथ करके पानेसे अर्शरोग दूर  
हो जाता है । पूर्वोक्त घृत और तेल में कंजों  
के पत्तोंको भूनकर सत्त के साथ सेवन करे  
सौ अग्नेयायु और मलका अनुलोमन होय  
है । अथवा भोजन करनेसे पहिले सेंधानम  
क मिलाकर मदिरा, अथवा गुड और सोंठ  
मिलाकर सोध और सौवीरकका पान करे ॥

अर्शपरघृतके प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरक्षारका रवीधान्यजीरकैः ।  
फाणितेन च संयोज्य फलाम्लदापयेद्धृतम् ।  
पिप्पलीपिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्प-  
ली । शृंगवेरयवक्षारतैः सिद्धं वापि वेद्धृतम् ।  
चन्यचित्रकसिद्धं वा गुडक्षारसमन्वितम् ।  
पिप्पलीमूलसिद्धं वासगुडक्षारनागरम् ॥  
पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः  
सिद्धं सर्पिर्विधातव्यं वातवर्चो विबन्धनुत्

अर्थ—पीपल, सोंठ, जवाखार, फालाजी  
रा, धनियां, जीरा और गुडकी राव इन सब  
में अनारदानेकी खटाई और घृत डालकर  
सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल,  
चीता, गजपीपल, अदरक और जवाखार  
इनमें सिद्ध किया हुआ घृत पान करे । अथवा  
चन्य और चीतेके साथ सिद्ध किया हुआ,  
वा गुड और जवाखारमें मिलाकर, वा पी-  
पलामूलके साथ पिद्ध किया हुआ जिसमें  
गुड, जवाखार और सोंठ मिलाकर अथवा  
पीपल, पीपलामूल, दही, अनार, धनियां  
इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृतपान क-  
रावे, अग्नेयायु और दस्तकी रुकावट दूर  
हो जायगी ॥

चन्यादिघृत ।

चन्योत्तिकदुर्कपाठाक्षारकुस्तुम्बुरुणिच ।  
यवानीपिप्पलीमूलमुभेचविडसंघवे । चि-  
त्रकं विल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।  
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दधिचतुर्गुणे ॥  
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।  
गुदवंक्षणं शूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥



अर्थ—चव्य, त्रिकुटा, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायन पीपलामूल, विडनमक, सैधानमक, चीता, बेलफल, हरड इनको पीसकर चौगुने दहीके साथ घृतको पकावै। इस घृतके सेवनसे विष्टा और अधोवायुका अनुलोमन होता है। तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परित्वाय, गुदशूल और यक्षणाशूलको भी दूरकरता है।

### नागरादिघृत

नागरपिप्पलीमूलचित्रकोहस्तिपिप्पली श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यं विल्वपाठायमानिकाः। चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरैतौविपाचयेत्। चतुर्गुणेनदध्नाचतुर्दृतकफवातनुत्। अर्शासिप्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम्। गुदभ्रंशात्तिमानाहघृतमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाठा, अजवायन, इन सबको पीसकर चांगेरी के रस तथा चौगुने दहीके साथ घृत को पकाकर सेवन करें तौ कफवात दूर होता है। इस घृतसे अर्शरोग, प्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अर्ति और आनाह ये सब रोग दूरहोजाते हैं।

### पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलीनागरपाठांश्वदंष्ट्राश्चपृथक्पृथक् भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वाकपायमुपकल्पयेत्॥ कण्डीरंपिप्पलीमूलंन्योपंचव्यञ्चचित्रकम्। पिष्ट्वाकपायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक्॥ पलानिसर्पिस्तस्मिन्

त्वारिशतपदापयेत्। चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यं सर्पिपादधिपद्गुणम्॥ मृदग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत्। तदाहारेविधा तन्यपानेप्रायोगिकेविधौ॥ ग्रहण्यर्शो विकारघ्नं गुल्महृद्गोमनाशनम्। शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम्॥ कासहिकारुचिश्वाससूदनपार्श्वशूलनुत्। बलपुष्टिकरं वर्ण्यमग्निसन्दीपनं परम्॥

अर्थ....पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरू इन चारोंको तीन २ पल लेकर सयका काथ करलेवै। इस काथको छानकर इसमें कण्डीर [ एक प्रकारकी तुलसी होती है ], पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चीता दो २ पल पीसकर मिलादेवै, तथा घृत चालीस पल, इतनाही चांगेरीका रस और धांसे छः गुना दही डालकर मंदी २ आग पर पकावै। इस घृतका विधिपूर्वक खानेपीनेमें प्रयोग करनेसे ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृदरोग, शोथ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि, श्वास और पार्श्वशूल दूर होजाते हैं ॥

### हरीतकी प्रयोग।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरातकीम्। त्रिवृदन्दीयुतांवापिभक्षयेदानुलोमिकीम्। विह्वातकफपित्तानामानुलोम्भेननिर्मले। गुदेऽर्शासिप्रशाम्यन्तिपावकश्चाभिवर्द्धते।

अर्थ—हरडको घीमें भूनकर पीपल और गुड मिलाकर सेवन करें अथवा निसोथ और दंती मिलाकर मद्यण करें तौ विष्टाका अनुलोमन होता है। इसके सेवनसे विष्टा,

अधोवायु, कफ और पित्तका अनुलोमन होता है, गुदा निर्मल होजाती है अर्शजाता रहता है और जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है ॥

अर्श पर पथ्य ।

वर्हित्तिचिरिलावांनारसान्म्लान्मुसस्कृतान् ॥ दक्षाणां वर्त्तकानां श्रद्धया द्विदवात्संगे हे विष्टदन्ती पलाशानां चाद्वेय्या वित्रकस्य च ॥ मृष्टं पमके दद्याच्छाकं दधिसरायुतम् ॥ उपोदिका तण्डुलीयवीरां वस्तुकपलवान् सुवर्चलां सलोणां कां यवशाकमवल्लुजम् । काकमाचीं रुहापलं महापत्रं तथा म्लिकाम् जीवन्ती शदिशाकं शशाकं रज्जनकस्य च । दधिद्रादिमसिद्धानि मृष्टानियमकेऽपि च धान्यनागरयुक्तानि शाकान्येता निदापयेत् । गोधाद्व्याधित्सलोपाकमार्जारोष्णवामपि ॥ कूर्मशल्लकयोश्च वसाधयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनं दद्याद्रसैरैवातशान्तये ॥

अर्थ....विष्टा और अधोवायुका अवरोध होने पर मोर तीतर मुर्गी, बतक और लवाके मांसरसमें खटाई डालकर सेवन करें। अथवा निसोप, दन्ती, ढाक, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही की मलाईके साथ सेवन करें अथवा पोई, चोलाई, काकोली, वधुआ, सांचौली, नीनिया, यवशाक, वावची, मकोय गिलोयके पत्र, महापत्र, अम्लिका, जीवन्ती, शटी, गाजर इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही और अनारकी खटाई डालकर तथा धनियां और सोंठ मिखाकर देवै ॥

गोह, सेह, लोपाक, गिल्ली, ऊंट, गौ, कछुआ और शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहे हुए शाकोंकी तरह सिद्ध करें और इन मांसरसोंके साथ वातकी शान्तिके निमित्त लाल शालीचावलोंका भात देवै ॥

अर्श पर मद्यविधि ।

ज्ञात्वा वातो लवणं रुखं दीप्तिं शुद्धजातुरम् ॥ मदिरां शार्करं जातशीधुतं क्रतुपादकम् ॥ अरिष्टं दधिमण्डं वा शृतं वा शिशिरं जलम् । कण्टकार्यं शृतं वा पिशृतं नागरधान्यकैः ॥ अनुपानं भिषग् दद्यात् वातवर्चोऽनुलोमनम् । अर्थ....वाताधिक्य अर्शमें यदि रोगी के रुक्षता तथा अग्नि संदीपन हो तो शर्करा से बनो हुई मदिरा, शीधु, तक्र, तुपोदक अरिष्ट दधिमण्ड, वा औटाकर, ठंडा किया हुआ जल वा कटेरी डालकर औटोया हुआ जल, वा सोंठ और धनियां डालकर औटोया हुआ जल अनुपानमें देवै तो अधोवायु और विष्टा का अनुलोमन होता है ।

अनुवासनके योग्य मनुष्य ।

उदावर्त्तपरीतायेयचात्यर्थं विरुक्षिताः ॥ विलोमवाताः शूलार्त्ताः तेष्विष्टमनुवासनम् । अर्थ....जो उदावर्त्त रोगी हैं, अत्यन्त रुक्ष हैं जिनकी वायु विलोम होगई है तथा जो शूलार्त्त हैं उनको अनुवासन हित है ।

आनुवासनिक तैल ।

पिप्पलीं मदनं विल्वं शताहामधुकं वचाम् ॥ कुपुंशर्वोपुष्कराख्यं चित्रकं देवदारुच । पिष्ट्वा तैरेभिषक्तं न्यपयसादिगुणेन च ॥ अर्शसां मूढवातानां तच्चेष्टमनुवासनम् ॥

दनिःसरणंशूलंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् । क  
द्यूरुपुष्टौविलयमानाहंक्षणाश्रयम् । पि  
च्छास्त्रावंगुदंशोफंवातवर्चोविनिग्रहम् ॥

उत्थानं बहुशोयचजयेत्तच्चानुवासनम् ।

अर्थ....पीपल, मेनफैल, बेलगिरी, सोंफ, मुल्हटी, बच, कूट, शठो, पुष्कर, चीता, देवदारु, इन सबको पीतकर दूना दूध डालकर ते भो पकावै । यह अनुवासन अर्श रोग तथा गुदवातमें हितकारी होता है । इसमें गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, ऊरु और पीठकी दुर्बलता, वंक्षणका आनाह, पिच्छास्त्राव, गुदाकी सूजन तथा अधोवायु और विष्टाका विबंध, बारबार रोगका उठना ये सब दूर होजातेहैं ।  
आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैर्दाबन्तैःस्तब्धशूलानिगुदजानिप्रलेपयेत् दिग्धातैःप्रस्रवन्त्याशुश्चेज्जपिच्छांसशोणिताम् ॥ कण्डूस्तम्भसरकृशोफःस्नुतानां विनिवर्त्तये ।

अर्थ—पीपलसे लेकर देवदारु पर्यन्त सब आनुवासनिक द्रव्योंको पीतकर स्नेह मिलाकर कुछ गरम करले और इसका लेप करे तो अर्शसे उत्पन्न हुआ शूल और स्तब्धता दूर होजाती है । इस लेपके करनेसे रक्तसहित पिच्छिल कफ तत्काल निकलजाताहै और खुजली, स्तम्भता, वेदना और सूजन रक्तके निकलनेसे दूर होजाती है ।

निरुहण प्रयोग

निरुहवाप्रयुज्जीतसत्तीरंदाशमूलिकम् ॥  
समृन्नेहलवणकल्कैर्पुक्तफलादिभिः ॥

अर्थ—दूध, दशमूल, गोमूत्र, स्नेह, सेंधा नमक और मेनफैल इनका काय करके निरुहणवास्तिका प्रयोग करे ॥

हरीतक्यारिष्ट ।

हरीतकीनांप्रस्थार्द्धमस्थामामलकस्यच ॥  
स्यात्कपित्थादशपलंततोऽर्द्धाचेन्द्रवारुणी । विडङ्गपिप्पलीरोध्रमरिचंसेलवाल्लकम् । द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेविपाचयेत् ॥ द्रोणशेपेरसेतस्मिन्पूतशीतिसमावपेत् ॥ गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्सर्वघृतभाजने । पक्षादध्वमेवत्पेयाततोमात्रांयथा बलम् ॥ अस्याभ्यासादरिष्टस्यनश्यन्ति गुदजानपि । ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहागुल्मोदरापशः ॥ कुष्ठशोफाक्षिहरोबलवर्णाग्निवर्द्धनः । सिद्धोऽयमभयारिष्टःकामलाभित्रनाशनः ॥ किमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्ग

राजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ।

अर्थ....हरड़ आधाप्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कैथ दशपल, इन्द्रायण पांचपल, घायाविडंग दो पल, लोध दोपल, फालीमेरच दोपल, एलुआ दोपल इन सबको चार द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई दोष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, जब यह ठंडा होजाय तब इसमें दो सौ पल गुड डालकर घाँके पात्रमें भरदेवै और एकपक्ष पीछे बलके अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे । इस अरिष्टके सेवनका अम्यास करनेसे अर्शरोग ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म रोग, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, क्षुब्ध, इन को नाश करता है, यह वर्ण और अग्निको

बढाता है, यह अरिष्ट अनुभव किया हुआ है, इस से कामला और श्वित्र दूर होजाते हैं । तथा क्रिमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग राजपक्ष्मा और ज्वर नष्ट होजाते हैं ॥

**दन्त्यारिष्ट ।**

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ॥  
भागान्पलांशानामोध्यजलद्रोणेविपाचयेत् ।  
त्रिकलायादलानांचमक्षिप्यत्रिपलं ततः ॥  
रसेचतुर्थशेषेतुपूतशीतिसमावपेत् तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेत्मासाद्वैधृतभाजने ।  
तन्मात्रयापिवेचित्यमर्शोभ्योऽपिप्रमुच्यते ।  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥  
दीपनश्चारुचिघ्नश्च दन्त्यारिष्टमिदं विदुः ।

अर्थ....दन्ती, चीतेकी जड़, दोनों पंचमूल इन सबको एक एक पल लेकर [ सब बारह पल ] तथा त्रिकलाके छिछके तीन पल कूटकर एक द्रोण जलमें पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर एक तुला गुड डालकर घाँके चिकनेपात्रमें भरकर पंद्रह दिवस तक धरा रहनेदेवै । तदनन्तर बलके अनुसार नित्यप्रति सेवन करने से अर्श, ग्रहणीरोग पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । अधोवायु और विघ्नका अनुलोमन होता है, यह दन्त्यारिष्ट अग्निसंदीपन और अरुचिनाशक होताहै।

**फलारिष्ट ।**

हरतीकीफलमस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।  
विशालायादधित्यस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥  
द्वेद्वेपलेसमापोध्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम् ॥

पादावशेषपूतचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥  
गुडस्यैकांतुलंबैधः संस्थाप्य घृतभाजने ॥  
पक्षास्थितं पिवेदेन ग्रहण्यर्शोविकारवान् ॥  
हृत्पाण्डुरोगं ग्रीहानं कामलां विषमज्वरम् ॥  
वर्चोमूत्रानिलकृतान्विवन्धानग्निमार्दवम् ॥  
शूकासंशुल्ममुदावर्त्तफलारिष्टोऽप्यपोहति ॥

अर्थ—हरड एक प्रस्थ, आंवलाएक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड़ दोपल, कैथ दोपल, पाठा दोपल, चीतेकी जड़ दोपल, इनसबको कूटकर दोद्रोण जलमें पकावै । चौथाई शेष रहनेपर उताकर छानले और जब यह ठंडा होजाय तब उसमें एक तुला गुड डालकर घाँके पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक धरा रहनेदे । फिर मात्रा के अनुसार ग्रहणी और अर्श विकाशवाला रोगी इसका सेवन करे । इस फलारिष्टके सेवन करनेसे द्वारोग पाण्डुरोग, ग्रीहा, कामला, विषमज्वर, मलविवन्ध, मूत्रविवन्ध, अधोवायुविवन्ध, मन्दाग्नि, कास, गुल्म और उदावर्त्त येसब रोग नष्ट होजातेहैं ।

**दुरालभारिष्ट ।**

दुरालभायाः प्रस्थः स्याच्चित्रकस्य चतुर्पस्थः च ॥  
पथ्यामलकयोश्चैव पाठायानागरस्य च ।  
दन्त्याश्चाद्रिमलान्भागान्जलद्रोणेविपाचयेत् ॥  
पादावशेषपूतचतुशीतेशर्कराशृतम् ।  
प्रक्षिप्यस्थापयेत्कुम्भेमासाद्वैधृतभाजने ॥  
प्रलिप्तेपिप्लीचव्यमिश्रं गुक्षौद्रसर्पिपा ॥  
तस्य मालां पिवेत्कालेशर्करास्ययथावलम् ।  
अर्शासिग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम् ॥  
शकृन्मूत्रानिलोत्सारविवन्धानाग्निमार्दवम् ॥

हृद्रोगपाण्डुरोगञ्चसर्वमेतेन साधयेत् ।

अर्थ—दुरालभा एक प्रस्थ, चीता, अइसा, हरड, आंवला, पाठा, सोंठ, दन्ती, इन के दोदो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावै । फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर ठंडा हो-नेपर सौ पल शर्करा मिलाकर पन्द्रहदिन तक घीके पात्रमें भरारखै । इस घडेके भीतर पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहत और घी इनका लेप करदेवै । बल के अनुसार इसकी मात्रा का सेवन करै । इसके सेवन करनेसे अर्श-रोग, ग्रहणी दोष, उदावर्त, अरुचि, विष्टा, मूत्र, अधोवायु, उद्गार, विबन्ध, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं ।

कनकारिष्ट ॥

नवस्यामलकस्यैकांकुर्याज्जर्जरितांतुलाम् । कुडवांशविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच पाठामूलंचापिप्पल्याःकमुक्चव्यचित्रकौ ॥ मञ्जिष्टैश्चालुंकरोध्रपालिकान्युपकल्पयेत् कुण्डारुहरिद्रांचसुराह्वंशारिवाह्वयम् ॥ इन्द्राह्वाभद्रमुस्तंचकुप्यादर्दपलोन्मितम् चत्वारिणागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच द्रोणाभ्यामभसोद्वाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् ॥ पादावशेषपूतेचरसेतस्मिन्समावपेत् ॥ मृद्रीकाद्व्याढकरसंशीतानिर्यूहसंमितम् ॥ शर्करायाञ्चशुक्रायांदद्याद्विगुणितान्तुलाम् ॥ कुसुमस्वरस्यैकमर्दप्रस्थं नवस्यच ॥ त्वगेलाप्लवपत्रा—  
म्बुसेव्यक्रमुककेसरम् ॥ चूर्णायित्वातुमातिमान्कार्षिकानत्रदापयेत् । तत्सर्वस्थापयेत्पञ्चशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पि

पाकिञ्चिच्छर्करागुरुधूपेते । पक्षादूर्ध्वमरिषोऽयंकनकोनामविश्रुतः ॥ प्रायःस्वाद रसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः । अर्शांसिग्रहणीदोषमानाहमुदरञ्जरम् । हृद्रोगपाण्डुतांशोपंगुलमवर्चोविनिगृहम् : का संश्लेष्पामयांशोग्रान्सर्वानेवापकर्पति ॥ बलीपलितखालित्यदोषजंचव्यपोहति ।

अर्थ—नवे आंवले एक तुला; वायविडंग, पीपल और कालीमिरच ये तीनों एक एक कुडव । पाठा पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चीता, मजीठ, एलुवा, लोध इनको एक एक पल लेंवै; कूठ, दासहलदी, देवदार, दोनों साग्वि, कुटज, भद्रमोथा ये आधे आधे पल लेंवै तथा नई नागकेसर चारपल इन सबको जौकुट करके दो द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाव तब उतार कर छानले और उसमें उस काथके समान दो आठक दाखकारस, दो तुला सफेद चीनी, नया शहत आधा प्रस्थ; दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, नेत्रवाला, सुपारी, केसर, इन सबको एक एक कर्प लेकर चूर्ण करके उस में मिलादेवै । फिर एक शुद्ध घीके बर्तनमें भरकर पन्द्रह दिन तक धरा रखै । पूर्वोक्त द्रव्योंको घडेमें भरनेसे पहिले घीमें चीनी डालकर उसके भीतर लेप करदेवै और अगरकी घुनी देवै । एक पक्ष पीछे यह कनकारिष्ट तयार होजाताहै । यह स्वादमें मिष्ट, हृदयप्रिय और भोजनमें रुचि बढ़ाने वाला होताहै । इसके सेवन करनेसे अर्श, ग्रहणीदोष, आनाह, उरदरोग, ज्वर, हृद्रोग;

पाण्डुरोग, शोष, गुल्म, पुरीषविवन्ध, खांसी तथा सब प्रकारके उग्र कफरोग दूर होजाते हैं और बल, पलित और खालिय रोगभी नष्ट होजाते हैं ।

पत्रभक्षोदकैः शौचंकुर्यादुष्णेन चाभ्यमा  
इति शुष्कार्शसांपूर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम्  
अर्थ—वायुनाशक पत्रोंका ब्याध करके गरम २ से गुदाप्रक्षालन करता रहै । ये सब शुष्क अर्शकी अनुभवकी हुई चिकित्सा वर्णन की गई है ।

रक्तार्शकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदं सिद्धं साविणां भृशतः प-  
रम् ॥ तत्रानुबन्धो द्विविधः श्लेष्मणोमारु-  
तस्य च ।

अर्थ—अब खूनी ब्याभीरेके अनुभव किंपेहुए प्रयोगोंका वर्णन करते हैं । इस में दो दोषों का अनुबन्ध होता है एक कफका, दूसरा वायुका ॥

वातकफानुबन्धी रक्तार्श के लक्षण ।  
विद्व्याचं कठिनं रुक्षं चाधो वायुर्न वर्त्तते ॥  
तनुचारुण्यर्णचफेनिलं चासृग्गर्शसाम् ।  
कट्युरुगुदशूलचर्दोर्ध्वल्यदिवाधिकम् ॥  
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदिविरुक्षणम् ।  
शिथिलं चेतपीतं च विट्स्निग्धगुरु पिच्छ-  
लं ॥ पयर्शसायनं वासृक्तन्तुमत्पाण्डुपि-  
च्छलम् ॥ गुदः सपिच्छः स्तिमितो गुरुस्नि-  
ग्धश्चकारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयः त-  
त्र रक्तार्शसांपुर्णः ।

अर्थ—जो रोगीका दस्त काला, कड़ा और रुखा हो और अधोवायुकी प्रवृत्ति न होती

हो, और अर्शका रक्त पतला लाल, रंगका और घागदार हो, रोगीकी कमर, ऊरु और गुदमें शूल होना हो, दुर्बलता अधिक हो, तथा जो रुक्ष पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुई हो उसे वातानुबन्धी अर्श कहते हैं ।

जिस रोगीका विष्टा ढीला, सफेद, पीला, स्निग्ध, भारी और पिच्छिल हो, जिस अर्श का रक्त गाढा, तन्तुदार, पाण्डु वर्ण और पिच्छिल हो, गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो, जो गुरु और स्निग्ध पदार्थोंके सेवन से उत्पन्न हुआ हो उसे कफानुबन्धी रक्तार्श कहते हैं ॥

रक्तार्श में चिकित्सा क्रम  
स्निग्धशीतं हितं वाते रुक्षशीतं कफेऽनुगे ॥  
चिकित्सितमिदं तस्मात्सम्प्रधार्यै प्रयो-  
जयेत् । पित्तश्लेष्माधिकमत्वा शोधनेनोप-  
पादेयत् ॥ स्रवणं चाप्युपेक्षेत लघनं वासना-  
चरेत् । मृत्तमादावर्शोभ्यो योनिर्मुह्यन्ता-  
त्यबुद्धिमान् ॥ शोणितदोषमनिलंतद्रोगा-  
ञ्जनयेद्ब्रह्मन् । रक्तपित्तज्वरतृष्णा-  
मग्निनाशमरोचकम् ॥ कामलांश्च यथु-  
लं गुदं वक्षणसंश्रयम् । कण्डूवरुः कोठपि-  
काकुष्ठपाण्डूवागयंगदग् ॥ वातमूत्रपुरा-  
णां विबन्धं शिरसोरुजम् । स्तोमि त्यं गुरु-  
मात्रं च तन्वा न्पानं रक्तजान्गदान् ॥ तस्मा-  
त्तुते दुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं मतम् । हेतुलक्ष-  
णकालज्ञो च न शोणितवर्णवित् ॥

अर्थ—वातानुबन्धी रक्तार्शमें स्निग्ध और शीतल, तथा कफानुबन्धी रक्तार्शमें रुक्ष और शीतल चिकित्सा करना आवश्यकीय है । जो

रक्तार्शमें कफ पित्तकी अधिकताहो तो संशो-  
धनद्वारा चिकित्सा करै अथवा स्त्रावणी उ-  
पेक्षा करके लघनद्वारा चिकित्सा करै ॥

जो मूर्ख वैद्य प्रथमही अर्शके बहते हुए  
रुधिरको रोकदेताहै; तब रक्त वातज दोषों  
से दूषित होजाताहै और वायुकर्तृक अनेक  
प्रकारके उपद्रव खडे होजातेहैं, यथा—रक्त  
पित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि, अरुचि, कामला  
रोग, सूजन, गुदशूल, वंक्षणशूल, खुजली,  
फुन्सी, पित्ती, पिढका, कोढ़, पाण्डुरोग, अधोवायु  
और मलमूत्रका विबन्ध, शिरोवेदना, स्तिमिता,  
देहमें भारापन, तथा और भी बहुतसे रक्त-  
जरोग उत्पन्न होजातेहैं । इस हेतुसे दूषित  
रक्तके स्त्रावके हेतु, लक्षण, काल, बल और  
रुधिरको रोग देखकर रुधिर को बन्द करना  
चाहिये ।

कालं तावदुपेक्षेत यावन्नात्ययमाप्नुयात् ।  
अग्निसन्दीपनार्थं च रक्तसंग्रहणाय च ॥  
दोषाणां पाचनार्थं च परित्तैरुपाचरेत् ।  
यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं चातो लवणस्य च ।  
वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ।  
यत्तु पित्तो लवणं रक्तं धर्मकाले प्रवर्त्तते ॥  
स्तम्भनीयं तदेकान्ताञ्च द्वातकफानुगम् ।

अर्थ—रक्तस्त्रावकी उस समयतक उपेक्षा  
करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रवके होने  
की सम्भावना नहो । तदनन्तर अग्निको ब-  
ढाने, रक्तको रोकने और दोषोंको पचानेके  
लिये तित्त औषधियों का प्रयोग करै ॥

क्षीणदोषवाले वाताधिक्य अर्शरोगीका  
रक्त जो स्नेहमाप्य होता है वह स्नेहपान,

अभ्यंग और अनुवासन द्वारा शान्त होजाता  
है जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त  
होताहै, यदि उसमें वातकफका अनुबन्ध न  
हो, तो उसे सर्वथा रोकदेना चाहिये ।

रक्तसंग्राही औषध ।

कुटजत्वङ्निर्गुहः सनागरः स्निग्धरक्तसं-  
ग्रहणः ॥ त्वग्दाडिमस्य तद्वत्सनागरः च  
न्दनरसश्च । चन्दनकिराततित्तकधन्वयवा  
साः सनागराः कथितः ॥ रक्तार्शसंग्रह-  
मनादार्वात्त्वगुशीरनिम्बाश्च । सातिविपा  
कुटजतत्वकफलंच सरसाञ्जनम् ॥ मधुयुतं  
हिरक्तापहंप्रदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन ।

अर्थ—कुड़ाकी छालके काथमें सोंठ  
डालकर पीनेसे स्निग्ध रक्त बन्द होजाताहै ।  
इसीतरह अनार के छिलके के काथमें सोंठ  
डालकर सेवन करने से, अथवा चन्दन के  
काथ में सोंठ डालकर सेवन करने से रक्त  
बन्द होजाता है । अथवा चन्दन, चिायता,  
जवासा, और सोंठ इनका ब्याध कर के  
सेवन करने से रक्तार्श बन्द होता है । अ-  
थवा दारुहल्दी, दालचीनी, उसीर और नीम  
के ब्याध का सेवन करै । अथवा अर्ताम,  
कुड़ाकी छाल, इन्द्रजौ और रसात इनके दूर्ण  
को शहत और तण्डुल जलके साथ जब प्यास  
लगे तबही पान करावेतो रक्तार्श दूरहोवे ।

कुटजादिकाथ ।

कुटजशकलस्य साध्यं पलशतमाद्रिस्य मेघ  
सलिलेन ॥ यावत्स्याद्वतरसंतद्द्रव्यं  
पूतोरसस्ततो ग्राह्यः । गोचरसः स समद्रः ।  
फलीनीचसमांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वरसक

वीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ पृतः  
 कथितः सरसोदावीलेपोततः समवतार्यः ।  
 मात्राकालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्त-  
 म् ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवाय  
 थाभिबलम् । जीर्णौषधश्शालीन्पयसा  
 छागेनभञ्जीतः ॥

अर्थ....हरीकुडाकी छालके छोटे २ टुकड़े  
 सौ पल लेकर आन्तरीक्ष जलमें पकावें, जब  
 पकते २ उनका रस निकल आवे तब उसे  
 उतारकर छान लेंगे । इस क्वाथ में मोचरस  
 वाराहक्रान्ता और प्रियंगु का चूर्ण समान  
 भाग लेकर मिलादेंगे, फिर इन तीनोंके वरा-  
 धर इन्द्रजौ पीसकर मिलादेंगे इन सबको अ-  
 ग्निपर चढ़ा दें और चलाते २ जब यह ऐसा  
 गाढ़ा पड़जाय कि करछी से लगने लगे  
 तब उतारकर मात्रा और कालके अनुसार  
 इसका सेवन करें तब यह रक्तार्श को दूर  
 करदेताहै । इसको बकरीके दूध साथ अथ-  
 वा पेया वा मण्डके साथ सेवन करना चा-  
 हिये औषधके पवनेपर बकरीके दूधके सा-  
 थ शालीचावलोंके भातका सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गापोचरसस्वन्दनंतिला-  
 लोध्रम् । पीत्वाछागलीपयसाभोज्यं प-  
 यसेवशाल्यम् ॥ छागलीपयःप्रयुक्तं निह-  
 न्तिरक्तं सवास्तुकरसश्च । घन्विहंगमृगा-  
 णां रसो निरम्लः कदम्बलोवा ॥ पाठावत्स-  
 कवीजरसाज्जननागरं यवानीवा । विल्व-  
 मितिचगुदजान्तर्विचूर्ण्य पेयानि शूलेषु ॥  
 दार्यकिराततित्तं मुस्तदुःस्पर्शकञ्चराधि-

रघम् । रक्तेऽतिवर्त्तमाने शूलचघृतविधा-  
 तव्यम् ॥

अर्थ—नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्त-  
 चन्दन, तिल और लोध्र इनको बकरीके दूध  
 के साथ पान करें और बकरीके दूधके साथ  
 ही शालीचावलोंका भात भोजन करें । अथवा  
 बकरीका दूध और वथुयेका रस इनको मि-  
 लाकर पीनेसे रक्तार्श दूर होजाती है । अ-  
 थवा घन्वदेशज पशुपक्षियोंका मांस रस बिना  
 खटाईका अथवा थोड़ी खटाई डालकर सेवन  
 करें । अथवा पाठा, इन्द्रजौ, रसौत सोंठ,  
 अजवायन और बेलगिरी इनके चूर्णका सेवन  
 करनेसे शूलयुक्त अर्श दूर होजाताहै । अथवा  
 दारुहल्दी, चिरायता, मोथा और जवासा  
 इनका चूर्ण सेवन करनेसे भी रक्त बन्द  
 होजाताहै । तथा जो शूल होताहो और रक्त  
 अत्यन्त बहताहो तो इन्हीं दारुणादि चारों  
 द्रव्योंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करें ।  
 अर्शपरघृतप्रयोग ।

कुटजफलवल्ककेसरनीलोत्पलरोध्रधात-  
 कीकल्कैः । सिद्धं घृतविधेयं शूलरक्तार्श-  
 सांभिषजा । सर्पिःसदाहिरसं सयाव-  
 शूकं जयन्त्याशु । रक्तं सशूलमथवानिदि-  
 ग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, केसर, नी-  
 लकमल, लोध्र और धातुके फूल इनके कल्क  
 के साथ मिद्ध कियाहुआ घृत शूलयुक्त अर्श  
 में देवे । अथवा अनारके रस और जवाखार  
 के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा कटेरी  
 और दुद्धा के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शू-



ल युक्त रक्ताशमें सेवन करे ।

रक्ताशपरपेया ।

लाजैः पेयापीता चुक्रिका के सरोत्पलैः सिद्धाहन्त्याशुरक्तरागंतथावलापृथ्निपर्णीभ्याम् । ह्रीवेरविल्वनागरनिर्युहेसाधितासनवनीताम् ॥ वृक्षाम्लादाडिमाम्ला मल्लीकाम्लासकालाम्लाम् । गृञ्जनकसुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिवेत्पेयाम् । रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोधनिग्रहणीम्

अर्थ—चुक्रिका, केसर, नीलकमल, तथा मठा और पृथ्निपर्णी सहित सिद्ध की हुई खिलौकी पेया रक्ताशको दूर करती है; अथवा नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके साथमें सिद्ध की हुई पेयामें मांखन डालकर पान करे अथवा लहसन और मद्यके साथमें सिद्धकी हुई अथवा घी तेलमें भुनी हुई पेयामें वृक्षाम्ल, अनार, इमली या घेरकी खटाई डालकर पान करे । इस पेयाके पान करनेसे रक्तातिसार, शूल प्रवाहिका और शोध दूर होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

काश्मर्यामलकानांसकर्वुदारफलाम्लानाम् ॥ गृञ्जनकशालमलीनांक्षीरिण्याः चुक्रिकायाश्च । न्यग्रोधशुद्धकानांखण्डास्तथाकोविदारपुष्पाणाम् ॥ दध्नःशरेणसिद्धादद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति ।

अर्थ—खमारी, आवला, सफेदकचनार,

सिद्धपलाण्डुशाकंचतक्रेणोपदिकांसवदरांच ॥ रुंधिरसवेप्रदद्यान्मसूरपञ्चतकाम्लम् । पयसाशृतेनयूपैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् ॥ भोजनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैः कपिञ्जलैणेयैः सुसिद्धैश्च ॥ भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीपत्समरिचैर्वा । दक्षशिवितितिरिर्सेद्रिककुल्लोपाकजैश्चमधुराम्लैः अद्याद्रसैरतिवहेप्सुर्वाः स्वनिोलोवणशरीरः । रसस्वडयूपयवागूसंयुक्तः केवलोऽथवाजयति । रक्तमतिवर्त्तमानंवातंचपलाण्डुरूपयुक्तः । छागान्तरोधितरुणंसकधिरमुपसाधितंवहृपलाण्डु । व्यत्यासान्मधुराम्लंविद्शोणितसंक्षेपेदेयम् ॥

अर्थ—जो अशमेंसे रुंधिर बहता हो तो प्याजका शाक, पोईका शाक, या बेरका शाक तक्रके साथ सिद्धकरके देवे, अथवा मसूरकी दालमें मठा डालकर देवे । मसूर, मूंग अडहर और मीठ इनके यूपको दूधके साथ सिद्धकरके देवे । अथवा शाकी चाबड, मोखिया और कोंदों इनको मद्य और खटाईके साथमें देवे । अथवा सप्ता, हिरन, उदा, सफेद तीतर और एणमृगका मांस मदिरा, खटाई, मीठा और घोंडाकी काजीरिच डालकर देवे ।

प्याजका खाना या केवल प्याजही का सेवन करना अत्यन्त बहतेहुए रक्त और वातको दूरकर देता है ।

इस रोगमें विष्टा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होनेपर बकरेकी देहके बीचका ताजी मांस रुधिरसहित बहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करे और विपरीत क्रमसे खटाई मिठाई डालकर सेवन करे ॥

नवनीतघृताभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसरप्रथिताभ्यासादर्शास्पयान्तिरक्तानि ॥ नवनीतघृतछागं मांससपष्टिकःशालिः । तरुणश्चसुरामण्डः तरुणाचसुरानिहन्त्यजसम् ॥ प्रायेण घातबहुलान्यर्शासिभवन्त्यतिष्ठुत्तेरक्ते ॥ तस्माद्रक्तेदुष्टेऽप्यनिलःसविशेषतोऽप्येयः द्वातुरक्तपित्राप्रचलंकफघातलिङ्गमल्पश्च । शीताःत्रियाःप्रयोज्याःयथेरितावक्ष्यतेचान्याः ॥

अर्थ—मक्खन घाँके सेवन करने से, केसर, मक्खन और शर्कराके अभ्यास से, तथा दहीको मलाई समेत रईसे मथकर सेवन करनेसे रक्तार्शे दूर होजाता है । मक्खन, घृत, बकरे का मांस, साठी चाँबल, शाळी-चाँबल, नवीन सुरामण्ड, नवान मदिरा इनके सेवनसे भी अर्श शीघ्र शान्त होजाता है । रक्त के अत्यन्त निकल जानेपर अर्शमें प्रायःघातकी अधिकता होजाती है । इस लिये रक्तके दूषित होनेपर भी विशेष करके घातको शान्त करने का उपाय करे । अर्श में रक्तपिचकी प्रचलता तथा कफघात की

अल्पताको देखकर पहिले कही हुई बातों में आनिवाली शांतल क्रियाओं का प्रयोग करे । परिपेकादि प्रयोग ।

टोलम् ।

वापनिर्म्वाथ ॥

अर्थ—मुलहटी, पंचवल्क [गूलर, पीपल, बड़, पाकड़ और बेतकी छाल] बेतकी छाल उदुम्बर, धौकी छाल, पखल, अइसा, अर्जुन, जवासा, और नीम इनका क्वाथ करके रक्तार्शमें परिपेचन करे ॥

अवगाहन प्रयोग ।

रक्तेऽतिवर्त्तमानेदाह्वलेदेचगाहयेच्चापि मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिक्वाथे ॥ इक्षुरसमधुकवेतसनिर्गुहेशीतलेपयसिवातम् । अवगाहयेत्प्रदिग्धपूर्वशिशिरेणतैलेन ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त बहनेपर तथा दाह और क्लेदके उत्पन्न होनेपर शरीर में शीतल तेलकी मालिश करके मुलहटी, कमलनाल, पदमाख, रक्तचन्दन, कुशा, कांस इनके क्वाथमें स्नान करावे अथवा ईखका रस, मुलहटी और बेतके क्वाथ से या ठंडे दूधसे रोगीको स्नान करावे ।

दत्त्वाघृतंसशर्करमुपस्थदेशगुदेत्रिकदेशे । शिशिरजलस्पर्शमुखाधाराःप्रस्तम्भनीर्मुज्याः ॥ कदलीदलैरभिनयेत् । अशीतजलसिक्तैः । प्रच्छादनमुहुर्मुहुरिष्टंप्रोत्पलदलैश्च ॥ दूर्वाघृतमदेहःशतधौतसहस्रधौतमपिसर्पिः । व्यजनपवनश्चरक्ताोरक्तसावजयत्याथ ॥

अर्थ—उपस्थेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थान में घी और शर्करा सोनकर लेप करे, फिर धीरे २ ठंडे जलकी धार डाले तो रक्तका बहना बन्द होजाता है । नवीन केलेके पत्ते अथवा शीतल जलसे छिडके दूये कमल के पत्ते वा नीलकमलके पत्तों से बार २ अर्श को ढकना भी हितहै ॥ दूध और घीका लेप अथवा सौवार वा हजारवार धुलाडूआधी इनका लेप, वा प्रेलेकी हवा इनसे भी बहताडूआ रक्त शीघ्रबन्द होजाता है ॥

अर्शपर घृत ।

ममहामधुकाभ्यां तिलमधुकाभ्यां रसाञ्जनघृताभ्यां । सर्जरसघृताभ्यां वानिम्बघृताभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥ दार्वीत्वकसर्पिभ्यां सचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् । दाहकृदभ्रंशे गुदजाभिसारणीयाः स्युः ।

अर्थ—समंगा और मुलहटी; तिल और मुलहटी; रसौत और घी; राख और घी; नीम और घी; दाहहल्दी काँछाल और घी; अथवा रक्तचन्दन, नीलकमल और घृत इनका लेप करनेसे दाह, कृद, गुदभ्रंश और अर्श शान्त होजातेहैं ॥

आभिः क्रियाभिरथवा शीताभिर्यस्य तिष्ठति न रक्तम् । तत्काले स्निग्धोष्णैर्मर्मासैस्तपयेन्मतिमान् । अवपीडकसर्पिर्भिः कोष्णैर्घृततैलकैस्तथाभ्यंगैः ॥ सीरघृततोयसेकैः कोष्णैः समुपाचरेदाशु । कोष्णे नवातप्रबलं घृतमण्डेनानुवासयेत्तर्षाघम् । पिच्छावस्ति दद्याद्वास्तिकाले तस्याथवा सिद्धम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कहीहुई क्रियाओंसे अथवा शीतल क्रियाओंसे जिसका रुधिरबन्द न हो उसको ठीक समयमें स्निग्धोष्ण मांस द्वारा तर्पण देवे, अथवा शिरोविरेचनकर्ता घृत देवे, अथवा ईषदुष्ण घृत तेलकी मालिश करावे अथवा ईषदुष्ण दूध घी वा जलसे परिपेक करे ॥ ऐसे वातप्रवळ रोगीको ईषदुष्ण घृतमण्ड में शीघ्र अनुवासन देवे । अथवा यथा समय पिच्छावस्ति वा सिद्धावस्ति देवे ॥

पिच्छावस्ति सिद्धावस्ति ।

यवासकुशकाशानां मूलपुष्पञ्चशाल्मलम् । न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशृङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः । त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत् सीरप्रस्थे च साधयेत् । सीरशेषं कपायं च घृतं कल्कैर्विमिश्रयेत् । कल्काः शाल्मलिनिर्य्याससमंगा चन्दनोत्पलं वत्सकस्य च बीजानि भिंयं गुपयन् केसरम् । पिच्छावस्ति रयं सिद्धः स घृतक्षौद्रशर्करः ॥ प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्तावज्वरापहः ॥

अर्थ—जगासा, कुशा और कांसकीज ड सेमरका झूठ, बड, गूलर और पीपल की कोंपल ये सब दो २ पल छेवे ॥ तथा तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ घृत में मिलाकर पकावे जब दूध शेष रहजाय तब इसको छान छेवे फिर इसमें सेमरका गोंद, काउहकान्ता, चन्दन, नीलकमल, इन्द्रजी, भिंयंगु, नाग केसर इनको पीस कर मिलादेवे इसका नाम पिच्छावस्ति है यदि इसमें घी, शहत, और चर्नामी मिरई जाय तो यह सिद्धावस्ति होजाती है । इन कस्तिकों

प्रयोग करनेसे प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तला-  
व तथा अजर शान्त होजाताहै ।

अनुवासन-वस्ति प्रयोग ।

प्रपौण्डरीकंपधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम् ॥  
पिप्प्लवानुवासनंस्नेहंक्षीरद्विगुणितपचेत् ।

अर्थ—पुण्डरिका, मुलहटी तथा पिच्छा-  
वस्तिमें कहेहुए द्रव्योंको पीसकर स्नेह तथा  
दुग्धना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवास-  
न वस्ति देवै ।

हीवेरादि घृत ।

हीवेरमुत्पलरोध्रसमंगाचव्यचन्दनम् ॥

पाठासातिविपाचिष्वधातकीदेवदारुच ।

दार्वीत्वक्नागरंमासीमुस्तंक्षारोयवागृजः ।

चित्रकश्चेतिपेप्याणिचांगीरीस्वरसोघृतम्

एकध्वंसाधयेसर्वतत्सर्पिःपरमौषधम् ॥

अंशोऽतिसारगृह्णीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ।

मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेवस्त्यानाहमवाहने ॥ पि

च्छासावेऽर्शसांशूलेयोज्यमेतत्त्रिदोषनुत् ।

अर्थ—नेत्रपाला, नीलकमल, लोध, लज्जा-

लक्ष, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस, बेलगिरी

धातके फूल, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, सों-

ठ, जटामांसी, मोथा, जवाखार, चीता, इ-

न सबको पीसकर चांगीरीके रसके साथ

घृत मिलाकर सबको सानकर पकावै, यह

घृत अत्यन्त गुणकारी होताहै । इसका

सेवन अर्श, अतिसार, ग्रहणदोष,

पाण्डुरोग, अजर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रं-

श, वस्तिका आनाह, प्रवाहन, पिच्छास्राव,

अर्शमूल और त्रिदोषजन्य अर्श को दूर क-

रनेवाला है ॥

अवाकपुष्पादि घृत ।

अवाकपुष्पीचलादार्वापृथिपणी ।

कपायपपेप्यास्तुजीवन्तीकडुरोहिणी ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंनागरंमुरदारुच ।

कलिंगाःशाल्मलंपुष्पंवरिचन्दनमुत्पल

म् । कदफलंचित्रकंमुस्तंमिष्यंश्वतिविपा

स्थिराः ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्चलकंस

मंगासनिदिग्धिका ॥ विल्वंमोचरसः

पाठाभागाःकपसमन्विताः । चतुःप्रस्थ

श्रितंमस्थंकापायस्यावतारयेत् ॥ त्रिंशत्प

लानिमस्थोऽत्रविज्ञेयोद्विपलाधिकः ।

मुनिपण्णकचांगिर्याःप्रस्थोद्वांस्वरसस्यच

सर्वैरेतैर्यथादिष्टैर्घृतमस्थंविपाचयेत् । ए

तदर्शस्त्वतीसारैरक्तसावेन्निदोषजे ॥

प्रवाहनेगुदभ्रंशेपिच्छास्रावविधासुच ।

उत्थानेचातिबहुशःशोथशूलेगुदाश्रये ॥

मूत्रग्रहेमूदवातेमन्देमावरुचावपि ॥ प्रयो

ज्यंविधिवत्सर्पिर्विलवर्णाभिवर्द्धनम् ॥

त्रिविधेष्वन्नपानेषुकेवलंवानिरत्ययम् ।

अर्थ—सोंफ, खरेटी, दारुहल्दी, प्रणि-

पणी, गोखरू, बड़को कौपल, गूलरकी कों-

पल; पीपलका कौपल इन्मेंसे प्रत्येक दो-

दोपल लेकर चार प्रस्थ जलमें चढादे जब

चोथाई होप रहै तब उतारकर छानलेवे ।

फिर जेती, कुटंकी, पीपल, पीपलामूल, सों-

ठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमरका फूल काकोली

रक्तचन्दन, नील कमल, कायफल, चीता,

मोथा, प्रिम्रु, अतीस, शालिपणी, लाङ्गक-

की केसर, नीलकमलकी केसर, वजाल,

की केसर, नीलकमलकी केसर, वजाल,

कटेरी, बेलगिरी, मोचरस, पाठा इन सबको एक एक कर्प लेकर पीसकर उसमें मिला दे-  
वै (यहां ३२ पलका प्रस्थ समझना चाहिये)  
फिर इसमें चौपतियाका रस एक प्रस्थ, जं-  
गेरीका रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सबको  
मिलाकर पाक करे। यह घृत अर्शरोग,  
अतिसार, त्रिदोषज रक्तसाव, प्रवाहिका, गु-  
दभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छासाव, अनेक  
प्रकारसे बार बार मलका निकलना, गुदशो-  
थ, गुदशूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि, अ-  
रुचि. इन रोगोंको दूर करताहै। वल, वर्ण  
और अग्निको बढ़ाताहै। यह घृत अकेलाही  
वा अनेक प्रकारके अन्नपान के साथ दि-  
या जाताहै।

भवन्ति चात्र ।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिच  
योजयेत् ॥ नित्यमग्निबलापेक्षीजयत्य  
शःकृतान्गदान् ॥ त्रयोविकाराः प्रायेण  
येपरस्परहेतवः । अर्शासिचातिसारश्च  
ग्रहणीदोषएवच ॥ एषामग्निबलहीने  
वृद्धिदृढेपरिहृतयः । तस्मादग्निबलरक्ष्य  
मेपुत्रिपुविशेषतः ॥

अर्थ—अर्शरोगमें विपरीत क्रमसे मधुर  
और अम्ल, तथा शीत और उष्ण द्रव्यों  
का व्यवहार करना चाहिये। अग्निबलको  
अपेक्षा करनेवाला अर्शसे उत्पन्न हुए रोगों  
को जीत लेताहै। अर्श, अतिसार और ग्र-  
हणीदोष ये तीन रोग ऐसे हैं कि इनमें से  
परस्पर एक दूसरेका हेतु होताहै। अग्निके  
क्षीण होने से इन रोगों की वृद्धि होती है

और अग्निके बढ़ने से इन रोगोंकी क्षीणता  
होतीहै। इस लिये इन तीनों रोगोंमें विशेष  
करके अग्निबलकी रक्षा कर्तव्यहै।

सेव्यासेव्यका संक्षिप्तवर्णन ।

भृष्टैः शार्कर्यवागूभिर्यूपामांसरसैः खंडैः ।  
क्षीरतक्रमयोगैश्च विचित्रैर्गुदजान्जयेत् ॥

यद्वायोरानुलोम्यायदग्निबलवृद्धये ।  
अन्नपानौ पथद्रव्यतत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥  
यदतोविपरीतस्याभिदानेयत्प्रदर्शितम् ॥  
गुदजैस्तत्परीतेनैनवसेव्यकथञ्चन ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के भुने हुए सांग  
यवागू, यूप, मांसरस, खड्डयूप, दूध और  
मठके प्रयोगोंसे अर्शरोगोंको दमन करना  
चाहिये। जो द्रव्य वायुका अनुलोमन कर  
ते है, जो अग्निबलको बढ़ाते है वह अन्नपान  
और औषध नित्यही अर्श रोगियोंको सेवनी-  
यहै। जो इनसे विपरीतहै तथा अर्शके उ-  
त्पन्न होनेके हेतुओं में जो द्रव्य वर्णन कि-  
ये गयेहै वे अर्शरोगियोंको कदापि सेवनीय  
नहीं हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अर्शसां द्विविधं जन्म पृथगायतनानि च ।  
स्थानसंस्थानलिङ्गानि साध्यासाध्यवि-  
निश्चयः ॥ अभ्यंगाः स्वेदनधूमाः सावर्गा  
हाः प्लेपनाः ॥ शोणितस्यान्वसेकश्चैवो  
गादीपनपाचनाः ॥ तक्रपौगाक्षपांनानि  
वातवर्चोऽनुलोमनैः । योगांसंशोधनाश्चैव  
सार्पविविधानि च ॥ अन्नपानमधोभागं  
वस्त्यरिष्टाः सशर्कराः । शुष्काणामर्शसां  
शस्ताः स्राविणालक्ष्णानि च ॥ द्विविधं सा

नुबन्धानांतेषांचेष्टयौपधम् ॥ रक्तसंश  
मनायोगाश्रेष्ठाश्चविधिभात्मिकाः ॥ स्ने  
हपानविधिश्चाप्रचोविधिःपानाश्रयोश्च  
यः॥परिपेकावगाहाश्चप्रदेहाःप्रतिसारणम्  
अतिवृत्तस्यरक्तस्यविधातव्ययदुत्तरम् ।  
तत्सर्वमिहनिर्दिष्टमुदजातांचिकित्सितम्  
अर्थ—इस अर्श चिकित्सित अध्याय में  
निम्नलिखित बातें वर्णन की गई हैं, यथा  
अर्शकी दो प्रकारकी उत्पत्ति; अर्शके भिन्न  
भिन्न कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, सा-  
ध्यासाध्यः विचार, अम्यंग, स्वेदन, घूम,  
अवगाह, प्रलेप, फस्त खेलना, दीपनयोग  
पाचनयोग, तक्रयोग, अघोवायु और पुरीष  
के अनुलोमन करनेवाले अन्नपान, संशोधन  
योग, अनेक प्रकारके घृत, वास्तिप्रयोग,  
शर्करा मिलेबुए अरिष्ट, सूखीबवासीर की  
औषध, स्नावीमर्श के लक्षण, दो प्रकारके  
अनुबन्ध, अर्भाष्ट औषध, रक्तसंशमनकर्ता  
अनेक प्रकारके उत्तम २ प्रयोग स्नेहपान,  
विधि, अन्नपानविधि, तथा रक्तके अत्यन्त  
बहने में परिपेक, अवगाह, प्रदेह और प्र-  
तिमारण । ये सब इस अध्यायमें वर्णन  
किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचिता-  
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकि-  
त्सितवर्णने अर्शचिकित्सितं नामन-  
वमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ॥

अथातोऽतीसारचिकित्सितंन्याख्यास्याम  
इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि  
अब हम अतीसार चिकित्सित नामक अ-  
ध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

भगवन्तत्तत्त्वात्रेयंकृतान्दिकंकृताग्निहोत्र  
मासीनमृपिगणपरिवृतमुत्तरेहिमवतःपार्श्वे  
विनयादुपेत्याभिवाद्याग्निवेशउवाचभ-  
गवन्नतीसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्ष-  
णोपशमनानिप्रजानुग्राहार्थमाख्यातुमर्ह-  
सीति ।

अर्थ—एक समय हिमालयके उत्तर की  
ओर जब भगवान् आत्रेय आग्निहोत्र तथा  
अग्निहोत्रादिकर्म से निश्चित होकर बैठे  
हुए तथा बहुतसे ऋषि मुनि भी उस स-  
मय उपस्थित थे, उससमय अग्निवेश ने  
बहुत नम्रतापूर्वक अभिवादन करके पूछा  
कि हे भगवन् ! प्रजाके अनुग्रहके लिये  
आप अतीसारकी प्रथम उत्पत्तिका वर्णन,  
हेतु, लक्षण तथा उसके शमनोपायोंका व-  
र्णन करने योग्य हैं ॥

अतीसारकी प्रागुत्पत्ति ॥

अथभगवानात्रेयःतदग्निवेशवचनमनुनि-  
श्चम्योवाच । धूयतामग्निवेश ! सर्वमेत-  
दस्मिलेनन्याख्यायमानमादिकाले । ख-  
लुयज्ञेषुपशवःसमालम्बनीयावभूवुर्नार-  
म्भायप्रक्रियन्तेस्य ततोदक्षयज्ञमत्यवर-  
कालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेस्वाकु-  
कुविदचर्यात्यादीनाञ्चकटुपुष्पानामेवा

भ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोत्तनमवापुः । अत-  
श्च प्रत्यक्षरकालं पृथग्धेदधिस्त्रेणयजमानेन  
पशुनामलाभाद्रवामालम्भः प्रवर्तितः ।  
तंहृष्टवामव्यथिताभूतगणाः तेषाञ्चोपयो-  
गादुपकृतानांगवांगौरवादीण्यदादसात्म्य  
स्वादशस्तोपयोगाचोपहताग्नीनामुपहत  
मनसां अतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृथग्प्रयज्ञे ।

अर्थ—अग्निवेशके इस वचनको सुनकर  
मगवान् आत्रेय बोलेकि हे अग्निवेश ! यह  
सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तेरे साम्हने कहता हूँ तू  
सावधान होकर श्रवणकर । प्राचीनकाल में  
यह प्रथा थी कि यज्ञमें पशुओंका वध नहीं  
किया जाता था, परन्तु यज्ञभूमि में लाये  
जाते थे, तदनन्तर दक्षके यज्ञके पाँडे मरि-  
च्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुबिडचर्या आदि  
मनुके पुत्रोंके यज्ञों में पशुओंकी अनुमति से  
पशु छोड़ दियेजाते थे । इससे पीछे राजा  
पृथग्धने जो यज्ञ कियेथे । उनमें पशुओं के  
न मिलनेसे गोवधकी प्रथा प्रचलित करदी  
थी । इस बातको देखकर गौओं के अत्यन्त  
उपयोगी होने के कारण सम्पूर्ण प्राणी बहुत  
दुःखित हुये उसी पृथग्धके यज्ञमें गोमांस के  
भारी, उष्ण असात्म्य होनेसे तथा उसके  
अशस्त उपयोगसे खनिवालेंकी जठराग्नि  
मन्द पड़ गई और मनभी उत्साहहीन होगया  
तब ऐसे मनुष्यों के प्रथम अतीसार उत्प-  
न्न हुआ ॥

वाताग्निसार के हेतु ।

अथापरकालं वातलस्य वातातपण्यायामा  
तिमात्रनिषेविणोरुक्षाल्पप्रमिताशेनः ॥

तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्य उदावर्तयतश्च  
वेगाद्वायुः प्रकोपमापद्यते पक्ताचोपहन्यते-  
सवायुः कुपितोऽग्रावुपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषा  
शयमुपहत्यताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्यातीसा  
रायमकल्पते ।

अर्थ.... वातप्रकृतिवाले मनुष्य के हवा घूप  
और शारीरिक परिश्रमके अत्यन्त सेवन से,  
रूक्ष, थोडा और प्रमित भोजन करने से,  
नित्यप्रति तीक्ष्ण मदिरापान और स्नानभोग  
से वा मल मूत्रादिके उपस्थित वेगों के रो-  
कने से वायु प्रकुपित होजाती है तथा जठ-  
राग्नि क्षीण पड़जाती है । इसतरह अग्नि के  
क्षीण होजानेपर वह प्रकुपित वायु मूत्र और  
स्वेदको पुरीषाशयमें लँकाकर उनके द्वारा  
मलको पतला करदेती है तब अतीसार उत्प-  
न्न होता है ।

वाताग्निसारके रूप ।

तस्य रूपानि विडजलमामविप्लुतमवसा-  
दितं रूक्षं द्रवं सशब्दं गन्धं दवा विवृद्धं मूत्रं वा  
तमति सार्यते पुरीषं वायुश्रान्तः कोष्ठस्य  
सशब्दशूलः तिर्यक् चरति विवृद्ध इत्यामा  
तिसारः ।

अर्थ—जिसका विषां जलके समान पत-  
ला पड़जाता है और वह विषां अपक्वमल से  
मिश्रित होता है, तथा अवसादी, रूक्ष पत-  
ला होयै, दस्त होनेमें शब्दहीन या सर्वथा  
शब्दहीन हो, मूत्र और अवायु की विवन्ध  
ता के साथ दस्त हो, तथा जिसमें वायु कोष्ठ  
के भीतरही विवन्धके साथ और शल्युक  
होकर तिरछेपन से विचरती है । यह आ-  
मातिसार है ॥

वातात्पक्वविबद्धमल्पाल्पसंशब्दंसशूलफे  
नपिच्छापरिकर्त्तिकहृष्टरोमाविनिश्वसन्  
शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली  
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेद्यतेपुरीषं  
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थि  
तवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विद्या विबद्ध  
युक्त शूलयुक्त, श्लासादार, गिलगिला, परिक-  
र्त्तिका ( पैंठा ) युक्त निकलताहै, उस, स-  
मय रोमाख खडे होजातेहैं, श्वास चलने लग-  
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरु,  
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,  
गुशस्थि बाहर निकल आतीहै तथा वार-  
वार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात  
के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई  
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरम्ललवणकटुककक्षारोष्ण  
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निसूर्यस-  
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु-  
लस्यपित्तप्रकोपमापद्यते।तत्प्रकुपितद्रवत्वा-  
दूष्माणमुपहत्यपुरीषाशयविस्तृतमौष्ण्याद्  
द्रवत्वात्सरन्वाचभित्वापुरीषमतेसाराय  
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहृग्निद्रहरितनील  
कृष्णपित्तोपहितमातिदुर्गन्धमतिसार्यते  
पुरीषंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्ता-  
पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खटे  
नमकीन, कडेये, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण  
प्रदायोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-  
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत  
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-  
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।  
वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण अ-  
ग्निको मन्द करके पुरीषाशय में स्थित हो-  
जाताहै और वहां अपने पतले पुन, गरमी  
तथा सरताके कारण मन्को भेदन करके  
अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार  
का रूप हृलदके समान पीला, हरा, नीला,  
काला, पित्त संसृष्ट होता है तथा पित्तमें  
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसार-में  
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसन्ता-  
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतास्निग्धोपसेवि-  
नःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-  
स्पालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सत्वभा-  
वादगुरुमधुरशीतास्निग्धःसस्तोऽग्निमुपह-  
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीषाशयमुपहत्योप-  
क्षेद्यपुरीषमतिसारायकल्पते । तस्यरूपा-  
णिस्निग्धंश्वेतपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदु-  
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पम-  
भीष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-  
दवस्तिवंसणोद्देशःकृतोऽप्यकृनसंज्ञोभव-  
तिसलोमहर्षःसोतृकेशःनिद्रालस्यपरीतः  
सादनोऽब्रह्मेपीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले सूर्य का कफ  
भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों  
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे



वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अम्यास वा आलस्य प्रसूत होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावह्रांसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अग्नि को क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीपाशय में पट्टचकर पुरीपको क्लेदित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलगिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोड़ा चार चार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, यस्ति और वक्षण इनमें भारापन होता है रोम हर्ष, उत्केश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुस्वरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यात्किञ्चिदभ्यवहरणादुष्णमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणां विषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसयनादस्वप्नादतिस्वप्नोद्देगविधारणादनुविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्देगातियोगात्क्रिमिशोषज्वराशोविकारातिकर्षणाद्वाविषन्नाप्रेस्त्रयोदोषाः प्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारं सर्वदोषालिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिकों विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सोना, अत्यन्त सोना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) वलसे अधिक कार्य करना भय, शोक और चित्तोद्देगका अतियोग, क्रिमिरोग शोपरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करते हैं ।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुषु अतिप्रदुष्टेपुहारिद्रहरितनीलमाज्जिष्ठमांसाधवनसन्निकाशंरक्तकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुवद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशंकृद्मथितमामंसंकृतसंकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितत्रलोमन्दाग्निर्विहतगुरुस्वरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यंविधातु ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जाती हैं तब धातुओंके दोषोंके स्वाभाविक

वातात्पक्वविबद्धमल्पाल्पसंशब्दसशूलफे  
नापिच्छापरिकर्तिकाहृष्टरोमाविनिश्वसन  
शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली  
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेद्यतेपुरीपं  
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थ  
तवर्चस्त्रात ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विद्या विबद्ध  
युक्त शूलयुक्त, ज्ञागदार, गिलगिला, परिक-  
र्तिका ( ऐंठा ) युक्त निकलताहै, उस, स-  
मय रोमाञ्च खड़े होजातेहैं, श्वास चलने लग-  
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरु,  
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,  
गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा बार  
बार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात  
के कारण मलमें गांठ पड़ जाने से कोई  
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरमललवणकटुककक्षारोष्ण  
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निस्सूर्यस  
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु  
लस्यपित्तं प्रकोपमापद्यतेतत्प्रकुपितंद्रवत्वा  
द्वृष्माणमुपहत्यपुरीपाशयाविस्तृतमोष्ण्याद  
द्रवत्वात्सरत्वाच्चभित्वापुरीपमातिसाराय  
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहंस्त्रिद्वारितनील  
कृष्णापित्तोपहितमातिदुर्गन्धमतिसार्यते  
पुरीपंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलव्रध्मसन्ता  
पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खड़े  
नमकीन, कडवे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण  
पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-  
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत  
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-  
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।  
वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण धु-  
म्रिको मन्द करके पुरीपाशय में स्थित हो-  
जाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी  
तथा सरताके कारण मलको भेदन करके  
अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार  
का रूप हलदीके समान पीला, हरा, नीला,  
काला, पित्त संसृष्ट होताहै तथा विष्टामें  
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसारमें  
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, व्रध्मसंता-  
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेवि-  
नःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-  
स्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सत्वभा-  
वादगुरुमधुरशीतस्निग्धःसस्तोऽग्निमुपह-  
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योप-  
क्षेयपुरीपमतिसारायकल्पते । तस्यरूपा  
णिस्निग्धंभेतेपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदु-  
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पम  
भीक्ष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-  
दवस्तिवस्रणोद्देशःकृतोऽप्यकृन्संज्ञोभव-  
तिसलोमहर्षःसोत्केशःनिद्रालस्यपरीतः  
सादनोऽन्नेद्वेपीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ  
भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों  
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अम्यास वा आलस्य प्रस्त होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावह्रांसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अग्नि को क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीषाशय में पट्टचकर पुरीषको क्लेशित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलागिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोडा २ बार बार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, वास्ति और वक्षण इनमें भारापन होता है रो म हर्ष, उत्केश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्यादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुस्वरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यातिकृद्भिन्नवहरणादुदुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणां विषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसयनादस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणादतुविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्किमिशोषज्वराशोविकारातिकर्षणाद्वाविषन्नाग्नेस्त्रयोदोषाः प्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोषलिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिका विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) यलसे अधिक कार्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, किमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्नि को अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करते हैं ।

कुच्छसाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णां नुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुषु अतिप्रदुष्टेषुहारिद्रहरितनीलमाजिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंभेतवराहभेदःसदृशमनुचक्षेद्वेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशंकृद्मथितमामंसकृतसकृदपिपक्वमनतिशीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निविहतमुखरसस्तादृशमातुरकुच्छसाध्यंविधात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जाती है तब धातुओंके दोषके स्वाभाविक

अनुसार अतीसारके वर्ण में भेद होजाताहै ।  
यहां अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि घातु  
ओंमें हल्दी का सा पीला हरा, नीला, मज्जठ  
के सदृश, मांसके धुले हुए जल के समान  
छाल, काला, सफेद, सूअर की मेदा के सदृश,  
शूलयुक्त वा शूल रहित विष्टा थोड़ा  
थोड़ा वा विपरीत क्रम से निकलता है, कभी  
२ गांठदार कच्चा मल निकलता है, और  
कभी पक्का मल आने लगता है । इसमें  
रोगी का मांस रुधिर और बल अत्यन्त क्षीण  
नहीं होता, अग्निमन्द पड़जातीहै और  
मुखका स्वाद विगड़ता चलाजाता है । इन  
लक्षणोंसेयुक्त रोगी कुछसाध्य होता है ।

### असाध्य के लक्षण ।

एभिर्वर्णैरतिसार्यमाणसोपद्रवमातुरम  
साध्योऽयमिति मत्याचक्षीवतद्यथाकाप  
शोणिताभयकृतपिण्डोपमं मांसोदकसन्नि  
काशेदधिघृतमज्जतैलवसाक्षीरवेशवारा  
भमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवा  
च्छपुनर्मेचकाभं अतिस्निग्धं हरितनीलक  
पायवर्णकपूरमाविलंतन्तुमदामंचन्द्रकोप  
हितमतिकृष्णपूतिपूयगन्धमामत्स्यगन्धं  
मक्षिकाक्रान्तं कथितबहुधातुद्रवमल्पपुरीष  
मपुरीषं वातिसार्यमाणं तृष्णादाहज्वरभ्र  
मतमकाहिकाश्वासानुबद्धमतिवेदनमवेदनं  
बासस्तपकगुदंपतितगुदवर्लमुक्तनालम  
तिक्षीणबलमांसशोणितवर्लं सर्वपाश्वास्थि  
शूलिनं मरोचकातिमलापसंमोहपरीतं स  
ह्योपरतं विकारमतिसारिणमचिकित्स्यं  
विद्यादितिसान्निपातातिसारः ॥

अर्थ—यदि विष्टाका रंग नांचे लिखे हुए  
वर्णोंके समान हो और उक्तरोगमें उपद्रव भीहो  
तो वह असाध्य और दुर्द्विकित्स्य होताहै; य-  
था—यदि विष्टाका रंग काथ, रुधिर, यकृतपि-  
ण्ड, मांसघात जल के सदृश, दही, घी, मज्जा,  
तेल, चवी, दूध, वेशवाराके समान हो, अत्यन्त  
नीला, अत्यन्त छाल, अत्यन्त काला वा अत्य-  
न्त स्वच्छ जलके सदृश हो; मेचक ( मुरमा  
वा मोर की चन्द्रिका ) के समान हो, अत्य-  
न्त चिकना, हरा, नीला, कपायवर्ण, कर्तुर  
( विचित्र वर्ण ) आधिल ( अस्वच्छ ) तन्तुयुक्त,  
आम चन्द्रिकायुक्त मुँदे की गंधके समान,  
सड़ीहुई तथा पीवकी गंध के समान, आम-  
मत्स्यगन्धयुक्त, जिसपर बहुत सी मक्खियां  
आचिपटें, काथ की हुई द्रवधातुके सदृश,  
अल्पपुरीष ( थोड़ा विष्टा और बहुत सा  
जल ) अपुरीष ( केवल पतला दस्त ) इन  
सब लक्षणोंसे युक्त मल हो तथा तृष्णा, दाह  
ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी, श्वास अति,  
शूल, शूलरहित हो, गुदाढीली वा पकगई  
हो, गुदाबलि नष्ट हो गई हो काचनिकलती  
हो; बल मांस और रुधिर का बल अतिक्षीण  
होगया हो, सब पसली और हड्डियोंमें शूल  
होता हो, अरुचि, अतिप्रलाप और मोह हो,  
और यदि ये सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ विद्युत  
होगये हों, तो ऐसा अतीसार रोगी असाध्य  
होता है । ये सन्निपातातिसार के लक्षण हैं ।  
साध्यातिसारकाचिकित्साक्रम ।  
तमसाध्यतामंसमांसीचिकित्सेयथाग्रधानो  
पक्रमेण हेतुपञ्चदोषावेशेषपरीक्षयाचेति

अर्थ....जो आतिसार असाध्य नहीं हुआ है उसकी चिकित्सा प्रधान दोष के उपचार, हेतु, उपसाय और दोष विशेष की परीक्षा द्वारा कर्तव्य है ।

आगन्तु अतीसारके लक्षण ।  
आगन्तुद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ ।  
तत्तपोलक्षणंयायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥

अर्थ....आगन्तु अतिसार दो प्रकार के होते हैं यथा--भयातिसार और शोकातिसार । इन दोनोंके लक्षण वातज अतिसारके सदृश होते हैं ।

आगन्तु अतिसारमें चिकित्साक्रम ।  
मांस्तौभयशोकाभ्यांशीघ्राहिपारिकुप्यति ।  
तयोःक्रियावातहरार्हणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—भय और शोकसे वायु एक साथ कुपित होजाताहै । इसमें वातनाशक चिकित्सा कर्तव्यहै, तथा हर्षोत्पादककर्म और आश्वासनभी विधेयहै ।

इत्युक्ताःपडतीसाराःअतःपरंसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ....इस तरह छः अतीसारों का वर्णन किया गयाहै, अब यहांसे साध्यअतीसारोंकी चिकित्सा वर्णन करेंगे ।

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमृच्छिताःअतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संभवर्त्तयेत् ॥ ननुसंग्रहणंदेयंपूर्वमामातिसारिणे निबध्यमानाःप्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्वहन् ॥ शोथपाण्ड्वामयप्रीहकुष्ठगुल्मोदरप्वरान्दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यशोर्गदास्तथावस्मादुपेक्षेतोत्तिष्ठान्वर्चमानान्स्वयं

मलानांकृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयांसंभवर्त्तनीम् ॥ तयाप्रवाहितेदोषेमशम्यत्युदरामयः । जायतेदेहलघुताजठारग्निश्च वर्द्धते ॥

अर्थ....जिस मनुष्यकेअपक्व आहार के कारण दोष संमूर्च्छित होकर इकठे होजातेहैं और अतीसार को उत्पन्न करतेहैं उसके दोषों को फिर प्रवृत्त करावै । आमातिसार में प्रथमही संग्राही औषधोंका देना अयोग्यहै । क्योंकि प्रथमही से रोकेहुये दोष अनेकप्रकार के रोगोंको उत्पन्न करदेतेहैं; यथा-शोक, पाण्डुरोग, प्रीहा, कोष्ठ, गुल्मरोग, उदररोग, ज्वर, दण्डक, अलसक, आप्मान, ग्रहणी, और अर्शरोग इसलिये अपने आप प्रवृत्त हुए उल्लिष्ट मलोंकी प्रथम उपेक्षाकर । जो मल कठसे निकलता हो तौ हरड का सेवन करावै । हरडकेद्वारा दोषोंके निकलने पर उदररोग शांत होजातेहैं, देहमें हलकापन उत्पन्न होताहै और जठराग्नि भी बढतीहै ॥

प्रमथ्यामध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम् लघनश्चाल्पदोषाणांमशस्तमत्तिसारिणाम् ।  
अर्थ—मध्यबलवाले अतिसारों में दीपन और पाचन प्रमथ्या ( औषध ) देवै, इसी तरह अल्प दोषवालों में लघन हितहै ।

प्रमथ्या के प्रयोग ।  
पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचाक्षी  
वेरंभद्रमुस्तानिविल्वंनागरंधान्यकम् ॥ पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसर्माशोकण्डकारिकातिसःप्रमथ्याविहिताःश्लोकाज्ज्वलितिसारिणाम् ॥

१=समं गाकण्टकारिकेति गंगाधरः ।

अर्थ....पीपल, सोंठ, धनियाँ, अजवायन  
हरंड और वच । नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेल-  
गिरी, सोंठ और धनियाँ । प्रणिपणी, गो-  
खरू, और समानभाग कटेरी । आधे २  
श्लोकमें कहेहुए ये तीन प्रमथ्याप्रयोग अ-  
तिसारमें हित हैं ।

अतिसार में अन्नपानादिप्रयोग ।

वचामतिविषाभ्यांवायुस्तर्पणकेनवा ।  
द्विवेरश्रद्धेराभ्यांपक्ववापाययेज्जलम् ॥  
युक्तेऽन्नकालेक्षुत्सामलघून्यन्नानिभोज-  
येत् । तथासर्वाप्रमाप्रोतिरुचिभग्निलं-  
बलम् ॥ तत्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्प-  
णेनवा।सुरयामधुनाचादौयथारात्म्यगु-  
पाचरेत् ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखट्वैर्यूपैर-  
सादनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्या-  
दतःपरम् ॥

अर्थ—वच और अतीस, अथवा मोथा  
और पित्तपापडा; अथवा नेत्रवाला और अद-  
रख इनको डालकर औटायानुआ जल पान-  
करावै । अतीसार में क्षुधा के लगने पर  
हलके अन्नका भोजन करावै, ऐसा करने से  
रोगी की रुचि, अग्निबल, शारीरिक बल शी-  
घ्र बढ़जायगे । अतिसारमें यथा सात्म्य तक्र,  
कांजी, यवागू, तर्पण, मदिरा और मधु इन  
में से कभी किसीका और कभी किसीका  
सेवन कराता रहै । तत्पश्चात् दीपन और सं-  
ग्राही औषधोंसे सिद्ध करके क्रमसे यवागू,  
विलेपी, खट्वैर्यूप, मांसरस और आदनदेताहै ।  
साल्पणीपृश्निपर्णीद्विहतीकण्टकारिकाम् ।

बलांश्वदंष्ट्रांविश्वानिपाठानागरधान्यकम् ।  
शुंठीपलाशंहृषुपावचार्जारकपिप्पलीम्  
यवानीपिप्पलीमूलचित्रकंहस्तिपिप्पलीम्  
वृक्षाम्लंदाडिमाम्लञ्चसंहिगुविट्सन्धवम्  
प्रयोजयेदन्नपानेविधिनासूपकल्पितम् ॥  
वातश्लेष्महरोहोपगणोदीपनपाचनः ॥  
ग्राहिवल्योरोचनश्चतस्मात्शस्तोऽति-  
सारिणाम् ॥

अर्थ....शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बड़ाकटेरी  
छोटी कटेरी, खरैटी, गोखरू, बेलगिरी, पा-  
ठा, सोंठ, धनियाँ, कचूर, ढाक, हाऊबेर,  
वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल,  
चांता, गजपीपल, वृक्षाम्ल, अनार, हींग,  
विडनमक, सेंधानमक, इन सबको व्यजन  
की तरह सिद्ध करके अन्नपान में प्रयुक्त क-  
रै । यह गण वात कफनाशक, दीपन, पा-  
चन, संग्राही, बलकर्ता और रुचिवर्द्धक है,  
इसलिये अतिसार में हित है ।

आमेपरिणतेयस्तुविषदंमतिसार्यते ।  
सशूलपिच्छमल्पालंपवहुशःसमवाहिकम्  
तंमूलकानांयूपेणवदराणामयापिवा । उ-  
पोदकायाःक्षीरिण्यातवान्यावास्तुकस्य  
वा । सुवर्चलायाश्चोर्वाशाकेनावलगुज-  
स्यवा । शठ्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्या-  
श्चिर्भटस्यवा ॥ लोणीकायाःसपाठायाः  
शुष्कशाकेनवायुनः । दधिदाडिमसिद्धेन  
बहुस्नेहेनभोजयेत् ॥

अर्थ. आमके पारिपक होजानेपर जा-  
दस्त रुकर कर शूलयुक्त, गिलगिला थोड़ा २,  
वार २ और प्रवाहिका युक्तहोवै तो उस

अर्थ—चागेरी, केर, दही, अनार, सोंठ, जवाहार इनको मिलाकर पकाया हुआ घी गुदभंश और शूलको नष्ट करता है ।

चव्यादि घृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलसव्योपविहदाडिम  
म् । पेयमम्लघृतंयुक्तवासधान्याजाजि  
चित्रकम् ॥

अर्थ—चव्य, पीपलामूल, त्रिकुटा, विड  
नमक, अनार, धनिया, जीरा, चीता इनसे  
सिद्ध किया हुआ घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है ।

दशमूलोपसिद्धंवासविल्वमनुवासनम् ।

शताद्वाशटिविल्वैर्वावचयाचित्रकेणवा ॥

स्तन्यभ्रष्टोगुदेपूर्वस्नेहस्वेदौप्रयोजयेत् ।

सुखिमञ्जुमृदुभृतपिचुनासंमवेशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल और कच्ची बेलगिरीको

भिन्न करके अनुवासनवस्ति देवे । अथवा  
सोंठ, कचूर, बेलगिरी, अथवा वच, और  
चीता इनको सिद्ध करके अनुवासन वस्ति  
देवे । इससे गुदस्तन्य, गुदभंश दूर होजाते  
हैं, परन्तु प्रथम स्नेहन और स्वेदनकर्मकरे ।

पसीने देने पर जब गुदा मृदु होजाय तब  
इसके फोए से प्रवेश करे ॥

विषद्वयातवर्चास्तुयहुशूलमवाहिकः ।

सरक्तपिच्छस्तृष्णाक्षःक्षीरसौहित्यम-

हति ॥ यमकस्योपरिक्षीरंधारोष्णंवा

पिबन्नरः । शृतमैरण्डमूलेनबालविल्वेनवा

पयः ॥ एवंक्षीरप्रयोगेनरक्तपिच्छावशा

भ्यात् । शूलमवाहिकाचेवविबन्धशोप

शाम्यति ॥

अर्थ—अधोनायु और गलके बढ़ होनेपर

शूल और प्रवाहिकाके अत्यन्त बढजाने पर;  
रुधिर सहित पिच्छिल मलके निकलने पर  
और तृषाके अधिक होने पर दूधको पेट भर  
कर पान करावे । यमक जेह ( घी तेल )  
के ऊपर धारोष्ण दुग्ध पान करावे । अथवा  
अंडीको जड़ या कच्ची बेलगिरी डालकर दूध  
को औटाकर पान करावे । दूधके इन प्रयो-  
गोंसे रक्त और पिच्छा शान्त होजाते हैं  
तथा शूल प्रवाहिका और विबन्ध भी नष्ट  
होजाते हैं ।

पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पित्तातिसारं पुनर्निदानोपशयाकृतिभिरा-  
यान्वयमुपलभ्ययथावलं लघनपाचना  
भ्यामुपाचरेत् तृण्यतस्तुमुस्तर्पटकोशी  
रंशारिवाचन्दनकिराततित्तकोदीच्यवा  
रिभिरुपाचरोलंघितस्यचाक्षरकालेबला  
तिबलासूप्यशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीक-  
ण्टकारिकाशतावरीभद्रेष्टानिपूंहसंयुक्तेन  
यथासात्संयवागू मण्डादिनातर्पणादि  
नावाक्रमेणोपचारः सुहृमसूरहरेणुमकुट्टकपू-  
षैःलावकपिञ्जलशहरिणंणायकालपुच्छक  
रसैरीषदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुस्त-  
तेदनुबन्धत्वेत्वस्पर्दीपनीयपाचनीयोपश-  
मनीयसंग्रहणीयान्योगान्प्रयोजयेदिति ।

अर्थ—पित्तातिसारमें निदान, उपशय  
आर आकृति द्वारा यदि यह जाना जाय कि  
रोग आमाचित है तो बलके अनुसार लघन  
पाचन देवे । यदि तृषा प्रबल हो तो मोथा,  
पित्तपापडा, खण, शारिवा रक्त चन्दन, चि-  
रायता और नेत्रवाला इनके साथ सिद्ध किया

हुआ जल देवै । लंघन करानेके पीछे भोजन के समय बला, अतिबला, मुद्रपर्णी, शालिपर्णी, पृथिवपर्णी, दोनों कटेरी, सितावर, गोखरू, इनके काथके साथ यवागूमण्ड और तर्पणादिको भोजनमें देवै । मूंग, मसूर, हरेणु, मोंठ इनका यूथ अथवा लवा, कर्पिजल खर्गोश, हरिण, एण, कालपुच्छ, इनके मांस रस में खटाई डालकर वा बिना खटाई देकर धीरे २ जठराग्निको उत्तेजित करे । इन उपायों के करने परभी यदि कुछ शेष रहजाय तो दीपन, पाचन, संशमनीय और संप्राही औषधोंका प्रयोग करे ।

भवति चात्र ।

ससौद्रातिविषंपिष्ट्वावत्सकस्यफलत्वचम्  
पिबेत्पित्तातिसारघ्नतण्डुलदकसंयुतम् ॥

अर्थ—अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल इनको जलमें पीसकर तण्डुलजल और शहत के साथ सेवन करे तो पित्तातिसार नष्ट होजाताहै ।

पित्तातिसार पर छः प्रयोग ।

किरातीतक्तकमुस्तंबत्सकः सरसाञ्जनः ।  
विल्वं दारुहरिद्राश्चत्वक्कदीवेरंदुरालभम् । च  
न्दनश्चमृणालञ्चनगरंरोध्रमुत्पलम् ॥ तिला  
मोचरसोरोध्रंसमशकमलोत्पलम् । कट्फ  
लनागरपाठाजम्बाप्रालस्यदुरालभाः ॥  
योगाः पडेते सौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः ।  
पेयाः पित्तातिसारघ्नाः श्लोकाद्धेनवि

दर्शिताः ॥

अर्थ—( १ ) चिरायता, मोया, इन्द्र-  
जौ, रसौत । ( २ ) बेलगैरी, दारुहलदा,

दालचीनी, नेत्रवाला, जवासा । ( ३ )  
चन्दन, कमलनाल, सोंठ, लोध, नीलकमल,  
( ४ ) तिल, मोचरस, लोध, लजालु, नील-  
कमल, लालकमल । ( ५ ) नीलकमल, धाय  
के फूल, अनारकी छाल और सोंठ । ( ६ )  
कायफल, सोंठ, पाठा, जामनकी, गुठली,  
आमकी गुठली जवासा । आधे आधे श्लोक  
में कहेहुए इन छः प्रयोगों को शहत और  
तण्डुल जलके साथ सेवन करने से पित्ताति  
सार दूर होजाताहै ।

जीर्णोपधानांशस्यन्तेयथायोगंमकल्पितैः  
रसेःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ।

अर्थ—औषध के जीर्ण होनेपर उसी  
उसी योगकी औषधों से सिद्ध किये हुए  
संप्राही-मांसरसों के साथ लाल शालीचाबलों  
का सेवन करे ।

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्तं समुपशम्यति  
आजसीरप्रयोगेन बलवर्धनश्चर्द्धते ॥ बहु-  
दोषस्य दीप्तानेः समाणस्य नतिष्ठति । प-  
त्तिकोयद्यतीसारः पयसा तं विरेचयेत् ॥  
पलाशफलनिर्यहं पयसा पाययेत्तत् ॥ त-  
तोऽनुपाययेत्कोष्णं सीरमेव यथाबलम् ॥  
प्रवाहिते तेन मले प्रशम्यत्पुदरा मयः ॥ प-  
लाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणा विशोधिनी

अर्थ—दीप्ताग्निवाले पुरुषका पित्तातिसार  
शीघ्रही शान्त होजाताहै । इससमय बकरी  
का दूध सेवन कराने से बल और वर्ण ब-  
ढजाते हैं । बहुत दोषों से युक्त दीप्ताग्नि  
वाले और बलवान् पित्तातिसारीको दूध के  
साथ विरेचन देनेसे फिर पित्तातिसार नहीं



रहता है । इस रोगोंको दूधके साथ ढाक कें फलोंका काथ पान करावै । फिर यथाशक्ति कुछ २ गरम दूधका अनुपान करावै । इस रीतिसे मलके निकलजानेपर उदररोग शान्त होजाते हैं । अथवा मलके शोधनके निमित्त पलाशफलेके सदृश त्रायमाण का प्रयोगकरै । संसर्ग्याक्रियमाणायामांशूलयधनुवर्त्तते । क्षुतदोषस्यतर्शांघ्नयथावदनुवासयेत् ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनवा । तैलपादंघृतंसित्दंसविल्वमनुवासनम् । कृतानुवासनस्यापिकृतसंसर्जनस्यच ॥ घत्तेतपघ्नीतसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ।

अर्थ—विरेचनके पछिवाली सम्पूर्ण क्रियाओं कें करनेपर भी यदि उदरशूल रहजा वै तो दोषोंके निकलनेके पश्चात् अनुवासन कर्म करे ॥ सौंफ, सितावर, दूध, मुलहटी, घी से चौथाई तेल, बेलगिरी इन सबको सिद्ध करके इनके द्वारा अनुवासनवस्ति देवै अनुवासनवस्ति देनेपरभी तथा तत्पश्चात् पेयादि क्रमके अवलंबन करने परभी जो अतीसार दूर नहो तो नीचेलिखी हुई रीति से पिच्छावस्ति देवै ॥

पिच्छावस्ति विधान ।

परिवेप्यकुशैरार्दिरार्दृष्टानि शालमलेः ॥ कृष्णमृत्तिकया लिप्यस्वेदयेद्रोमयाग्निना सुष्ठुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिष्टानि शालमलेः ॥ श्रितेपयसिमृद्गीयादापोष्णोत्सृज्य लेततः । पिष्टंमुष्टिसमंस्थेतत्प्लुतंतैलसर्पिषा ॥ योजितमात्रयायुक्तं कल्केन मधुकस्यच । वस्तिमभ्यक्तगात्राय दद्यात्प्रत्या-

गतेततः ॥ स्नात्वाभुञ्जीतपयसाजात्र लानारसेनवा । पिचातिसारज्वरशोथगुल्मा । जीर्णातिसारग्रहणीप्रदोपान् ॥ जयंत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान् । विरेचनास्थापनगोचयस्तिः

अर्थ—सेमरके हरे डंठलोंको हरी कुशा से लपेटकर ऊपरसे कालीमिट्टी छपेट कर मर्दों २ आगमें पकावै, जब मृत्तिका अच्छी तरह सूखजाय तब सेमर के डंठलोंको उड़ खलमें कूटकर चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूधमें औटावै, फिर मात्राके अनुसार तेल, सरसों और मुलहटीमें सानकर वस्तिसे देवै, परन्तु प्रथम रोगोंके देहपर तैल की मालिश करलेवै । वस्तिके प्रत्यागमन होनेपर स्नान करके दूध अथवा जांगल पशुओंके मांसरस के साथ भोजन करावै। इस वस्ति से पित्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार ग्रहणीदोष, तथा विरेचन जन्य और आस्थापन जन्यरोग शीघ्रही शान्त होजाते हैं ।

रक्तातिसारकावर्णन ।

पिचातिसारीयस्त्वेतांक्रियांमुक्त्वानिर्पेव ते॥पित्तलान्यन्नपानानितस्य पित्तमहाधलम् । कुर्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुमदपयेत् ॥ तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्च दारुणम् । छागंतत्प्रपयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् ॥ पानार्थेव्यञ्जनार्थेचगुदमक्षालनं तथा । भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् ॥

अर्थ—पित्तातिसारी मनुष्य इन ऊपर कहीहुई क्रियाओंको छाड़कर पित्तकी अ-

ल्लस्ति लानां कृष्णानां शर्करा पञ्च भागिकः  
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं निपच्छति ॥  
पल्वत्सकवीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत् ।  
योरसां शीजयेच्छीघ्रं सपैतं जठराभयम् । पी-  
त्वा सशर्करा सौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्भसा ।  
दाहवृष्णा प्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाद्भिमुच्यते ॥

अर्थ.... दाह हल्दी की छाल, इन्द्रजौ, पीपल  
अंदाख, दाख और कुटकी इन छः औष-  
धियों से सिद्ध किया हुआ घी तथा ऊपर से पेया  
और मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित  
दाहण अतीसार भी दूर होजाता है ।

काली मिर्ची, शंख की भस्म, कुकुम और  
तण्डुलजल इन सबको शहत में मिलाकर सेवन  
करे तो रक्त बन्द होजाता है, प्रियंगु का कल्क,  
शहत, और तण्डुल जल इनको सेवन करने  
से रक्त बन्द होजाता है, इसके साथ ही जा-  
गल पशुओं के मांस रसका भी सेवन करता  
रहे ॥ एक भाग चीनी और पांच भाग काले  
तिल इन सबको बकरी के दूध के साथ पान  
करे तो शीघ्र ही रक्तातिसार दूर होजाता है ।  
इन्द्रजौ एकपल के काथ को पीकर मांस रस  
का सेवन करे तो पित्तजनित उदर रोग शीघ्र  
ही नष्ट होजाता है ॥ रक्तचन्दन, तण्डुलजल,  
शहत, शर्करा, इनको मिलाकर पीने से दाह,  
तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार दूर होजाते हैं ।

**गुदपाक की चिकित्सा**

गुदाय बहुभिस्त्यानैर्यस्य पित्तेन पच्यते ।  
सेचयेच्चं मुशी तेन पटोलमधुकाम्पुना ॥ पं-  
चवल्कमधुकानारसैरिक्षुरसं धृतः । छागै-  
र्गन्धैः पयोभिर्वा शर्करासौद्रं संयुतः ॥ मसा

लं नानां कल्कैर्वाससर्पिकैः प्रलेपयेत् ।  
एपां वा सुकृतैश्चूर्णैस्तं गुदं प्रतिसारयेत् ॥  
घातकी रोध्रचूर्णैर्वासमांशैः प्रतिसारयेत् ।  
तथा तत्र सवत्यसं गुदस्तैः प्रतिसारितम् ॥  
यथोक्त सेचनैः शीतैः शोणिते निःस्रवत्यपि ।  
गुदवंक्षण कट्यूरु सेचयेद् घृतभा वितम् ॥  
चन्दनाद्येन तैलेन शतधा तेन सर्पिषा । का-  
र्पास सह योगेन सेचयेद् गुदवंक्षणौ ॥

अर्थ—जिस पित्तातिसारी मनुष्य की गुदा  
बहुत दस्तों के होने से पकजाती है उसकी गुदा को  
परवल और मुलहटी के शीतल काथ से प्रक्षा-  
लन करे । अथवा पंचवल्क और महुआ के  
काथ से, अथवा ईख के रस और घी से अ-  
थवा शहत और चीनी मिला हुआ गौ बकरी के  
दूध से गुदा को प्रक्षालन करे, अथवा इन प्र-  
क्षालनकर्त्ता द्रव्यों के कल्क को घी में सानकर  
गुदा पर लेप करे । अथवा इन द्रव्यों का चूर्ण  
करके गुदा पर प्रतिसारण करे अथवा धाये के  
फूल और लोथ समान भाग लेकर इनसे  
प्रतिसारण करे । इन द्रव्यों से प्रतिसारित  
किये जाने पर गुदा से रक्तस्राव होता है । रक्त  
के निकलने पर गुदा, वंक्षण, कमर और  
ऊरु इन पर घृत लगाकर धूर्त्त शीतल  
काथों से सेचन करे । अथवा चन्दनाद्य तैल  
वा सौवार के धुले हुए घी को कपास के जल  
में डालकर गुदा और वंक्षण को सेचन करे ।  
अल्पाल्प बहुशोरक्तं शूलमुपवेश्यते ।  
यदा वायुर्विवद्धश्च कृच्छ्रश्च रतिवान्वा ॥  
पिच्छावस्ति तदा तस्य यथोक्तमुपकल्पयेत् ।  
प्रपुण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चानुवासयेत् ।

प्रायशोर्दुर्बलगुदाः चिरकालातिसारिणः ।  
तस्माद्भीक्षणशस्तेषां गुदस्नेहप्रयोजयेत् ॥  
पवनोऽतिप्रवृत्तो हि स्वेस्थाने लभतेऽधिकम्  
बलंतस्य सपित्तस्य जयार्थं वस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—जब बारबार थोड़ा थोड़ा रक्त शूल  
समेत निकलें और वायु रुककर कोष्ठमें क-  
ठिनीतासे बिचरें अथवा न बिचरें तौ उस समय  
पूर्वोक्त रीतिसे पिच्छावस्ति का प्रयोग करें तथा  
पुण्डरिया डालकर सिद्धकिये हुए घृतसे अनु-  
वासनवस्ति दें ।

बहुत दिवस तक अतिसार रहनेसे गुदा  
प्रायः दुर्बल पड़जाता है इसलिये उन मनुष्यों  
की गुदा पर जेह लगाना चाहिये ।

अतिसार की अत्यन्त प्रवृत्तिमें वायु अपने  
स्थानमें अत्यन्त कुपित होकर पित्त से मि-  
लजाता है अतएव वातपित्तके मिले हुए बलकी  
शान्तिके निमित्त वस्तिक्रिया उत्तम होती है ।

रक्तमिश्रित मलमें चिकित्सा ।

रक्तविद्रुसहितपूर्वपश्चाद्वा योऽतिसार्यते ।  
शतावरीघृततस्य लेहार्थं मृपक रूपायेत् ॥ श-  
र्करार्द्धांशिकलीद्वानवनीतनबोद्धृतम् ॥  
सौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हितशिनः ।  
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुक्रानापोध्यवास-  
येत् ॥ अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्बसाप-  
चेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तं लिङ्गात्स सौद्रपा-  
दिकम् ॥ अधोवायदिवाप्यूर्ध्वस्य रक्तं  
प्रवर्त्तते । यस्त्वेवं दुर्बलो मोहात् पित्तला-  
न्येव सेवते ॥ शीघ्रं विपद्यते प्राप्य बलीया-  
कं सुदारुणम् ॥

अर्थ—जिसके प्रथमही दस्तके साथ रु-

धिर निकलें और फिर अधोवायुकी प्रवृत्ति के  
साथ पतला दस्त हो उसको सितार का  
सिद्ध किया हुआ घृत चटावे अथवा ताजी  
माखन घी, उससे आधी चीनी और चौ-  
थाई शहत मिलाकर सेवन करनेसे वह रोग  
शान्त होजाता है परन्तु हित आहार का से-  
वन करें ॥

बड़, गूलर और पीपल इनकी काँपलों  
को लेकर कूटकर गरम जलमें एक दिन  
रात भिजो रखें, उस जलसे घृत पाक  
करे इसमें आधी चीनी और चौथाई शहत  
मिलाकर चाटे ।

जिस मनुष्यके दस्त अथवा वमन द्वारा  
रुधिर निकलें और वह दुर्बल यदि मोहसे  
पित्तकर्त्ता द्रव्योंका सेवन करे तौ उस के  
दारुण वर्जोपाक होजाता है और वह शीघ्र  
ही मरजाता है ।

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारेऽथ मंहितं लघनपाचनम् ॥  
योज्यश्चामातिसारघ्नोऽयथोक्तो दीपनो ग-  
णः । लघितस्यानुपूर्व्याश्च कृताया न नि-  
वर्त्तते ॥ कफजोऽप्यतीसारः कफघ्नैस्त-  
मुपाचरेत् ।

अर्थ—कफातिसारमें प्रथमही लघन और  
पाचन हित हैं तथा इसमें पहिले कहा हुआ  
आमातिसारनाशक दीपनीय गणका प्रयोग  
करना चाहिये । लघन कराने और तत्प-  
श्चात् पेयादि आनुपूर्वी क्रम के करनेपर भी  
यदि कफातिसार शान्त न हो तौ कफनाशक  
औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥

कफातिसारपर चारयोग ।

विल्वककटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम् ॥

वचाविडङ्गभूतीकंधान्यकंदेवदारुच । कु

पुंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली

योगान्श्लोकार्देविहितांश्चतुरस्तान्प्रयो

जयेत् ॥ शृतान्श्लेष्मातिसारेषुकायाग्नि

बलवर्द्धनान् ।

अर्थ—वेलगिरी, काकडासींगी, मोथा,

हरड, सोंठ, ( २ ) वच, बायविडंग, अज-

यायन, धनियां और देवदारु, ( ३ ) कूठ-

अतीस, पाठा, चव्य कुटकी, ( ४ ) पीपल,

पीपलामूल, चीता, गजपीपल । इन आधे

आधे श्लोकमें कहे हुए चारों प्रयोगों का

काथ पान करनेसे कफातिसार दूर होजाता

है तथा कायाग्नि और बल बढ़ताहै ।

अजार्जीससितां पाठानागरं मरिचानि चा

धातकी द्विगुणं दद्यान्मातुलुंगरसाप्लुतम्

रसाञ्जनं सातिविपं कुटजस्य फलानि च ॥

धातकी द्विगुणं दद्यात्पातुं सक्षौद्रनागरम्

अर्थ—जीरा, मिश्री, पाठा, सोंठ काली

मिरच इन सबसे दूने धायके फूल का

चूर्ण बनाकर विजौरेके रसमें घोटकर देवे अ-

थवा रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, इनसे दूने

धायके फूल शहत और सोंठ में मिला-

कर सेवन करे ।

धातकी नागरं विल्वं लोत्रं पद्मस्य केसरम् ।

जम्बूत्वक्नागरंधान्यं पाठा योचरसं बला

समं द्वाधातकी विल्वमध्यं जम्बूवाघमोस्तत्र

चा । कपित्थानि विडङ्गानि नागरं मरिचा

निच ॥ चाङ्गेरी फालतकाम्लान्श्चतुरस्तान्

कफातुरे । श्लोकार्दे विहितान् दद्यात्स

स्नेहलवणान्खडान् ।

अर्थ—[ १ ] धायके फूल, सोंठ, वेल-

गिरी, छोध, नागकेसर, [ २ ] जामनकी

छाल, सोंठ, धनियां, पाठा, मोचरस, खैटो

[ ३ ] लज्जालु, धायके फूल, वेलगिरी,

जामनकी छाल, आमकी छाल, [ ४ ] कैथ

वायविडंग, सोंठ काली मिरच, । इनआधे

आधे श्लोकमें कहेहुए चार प्रयोगों को

चांगेरी, वेर और मठाकी खटाई देकर तथा

स्नेह लवण डाढ़कर खडपूय बनाकर कफ-

रोगमें सेवन करे ।

कपित्थमध्यलीद्वातुसंघोपक्षौद्रशर्कर

म् ॥ कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठराम-

यात् ।

अर्थ—कैथकी गिरी, त्रिकुटा, शहत औ

शर्कराको चाटनेसे अथवा कायफलमें शहत

मिलाकर चाटने से उदररोग दूर होजाते हैं

कणामधुयुतां पीत्वा तर्कचीत्यासचित्रकं

जग्ध्वावावाल विल्वानि मुच्यते जठराम-

यात् ॥

अर्थ—शहत और पीपल चाटने से अ-

थवा मठामें चीता ढाढ़कर पीनेसे अथवा

कच्ची वेलगिरी खानेसे उदररोग दूर होजाते हैं

वाल विल्वं मुंडतैलं पिप्पलीं विश्वभेषजम् ।

लिप्ताद्वाते प्रतिहते सखलः समवाहिकः ॥

भोज्यं मूलकपायेण वा तद्धने श्वोपसेवनैः ।

वातातिसारविदितैर्यूपैर्मांसरसैः खटैः ॥

पूर्वोक्तमम्लसंघर्षिणं पदूपलं वापथावलम् ।

पैर्विविधैःस्निग्धैर्नित्यंकुमुपसम्पदैः ॥ वम  
 द्रिर्मधुरान्गन्धान्सर्वतः स्वभ्यलंकृतोविह  
 रन्तंजितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितमांमहर्षि  
 भिःपरिवृतविभुभूतहितैरतम् । अग्निवेशो  
 गुरुकालेविनयादिद्रुक्तवान् । भगवन् !  
 दारुणरोगमाशीविषविषोपममृषिविसर्पन्तं  
 शरीरेपुदेहिनामुपलभ्ये ॥ सहस्रवनरा  
 स्तेनपरीताःशीघ्रकारिणः । विनश्यन्त्य  
 नुपक्रान्तास्तत्रनःसशयामहानासनाम्नाके  
 नविज्ञेयःसंज्ञितःकेनहेतुना । कतिभेदः  
 कियद्भातुःकिनिदानःकिमाश्रयः ॥ सुख  
 साध्यःकुच्छसाध्योक्षेपोयश्चानुपक्रमः ।  
 कथंकैलक्षणैःकिञ्च भगवंस्तस्यभेषजम् ॥

अर्थ—एक समय कैलाश पर्वतपर जहां  
 बहुतसे किन्नर निवास करतेहैं जहां अनेक  
 क्षत्रने, अनेक प्रकार की औषधी और अने-  
 क प्रकारके वृक्ष सदैव फलफूलसे लदे रहते  
 हैं इन पुष्पोंमें से अनेक प्रकारकी सुगन्ध  
 चली आतीथी, ऋषिगणपूज्य जितेंद्रिय आ-  
 त्रेय ऋषि विचार रहेये, बहुतसे ऋषि, मु-  
 नि, उनके साथ थे और प्राणियोंके हितमें  
 दत्ताचित्त थे । इस समय को उचित सम-  
 शकर अग्निवेशने अत्यन्त मृदुभाष से पूछा  
 कि हे भगवन् ! एक भयंकर रोगप्राणियों  
 के शरीरमें फैलताहुआ देखने में आता है  
 यह रोग सर्पके विषसे भी तीक्ष्ण है । इस  
 रोगमें मनुष्य प्रसन्न होकर शीघ्रही नष्ट हो-  
 जातेहैं उनकी चिकित्साका समय भी हाथ  
 नहीं लगता । इसका हमको क्या संशय है ।  
 इस रोग का नाम क्या है ! इस नाम पडने

का कारण क्या है ! इस के कितने भेद हैं !  
 कौनसी धातु है ! हेतु क्या है ! आश्रय क्या  
 है ! यह सुखसाध्य, कुच्छसाध्य या असाध्य  
 है ! इसके लक्षण क्या हैं ! और औषधी क्या हैं !  
 तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वात्रेयःसुदुर्वचम् ।  
 यथावदखिलं सर्वमोवाचमुनिसत्तमः ॥  
 अर्थ—अग्निवेश के इस प्रश्नको सुनक-  
 र मुनिसत्तम आत्रेय इस सम्पूर्ण महाकठिन  
 विषयका पूर्ण रीतिसे वर्णन करने लगे ।

विसर्प की निरुक्ति ।

विविधं सर्पतियतो तिसर्पस्तेन स स्मृतः ॥  
 परिसर्पोऽथ वानाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥

अर्थ....यह रोग शरीरमें अनेक प्रकारसे  
 फैलता है अतएव विसर्प कहलाता है । अ-  
 थवा चारोंओर परिसर्पण करनेसे परिसर्प  
 भी कहलाता है ॥

विसर्प के भेद ।

सचसप्तविधो दोषैर्विज्ञेयः सप्तधा तु कः ।  
 पृथक्त्रयस्त्रिभिधैको विसर्पाद्ब्रह्मास्त्रयः ॥  
 वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सांनिपातिकः ।  
 चत्वार एते वीसर्पा वीक्ष्यन्ते ब्रह्मास्त्रयः ॥  
 आग्नेयो वातपित्ताभ्यां प्रन्थाख्यं कफवा-  
 तजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफस-  
 म्भवः ॥

अर्थ ...दोषोंके अनुसार विसर्प सात प्र-  
 कारका होता है, यह स्पष्ट है । दोषोंके आ-  
 श्रयभूत है । पृथक्हृते सशूलः स्तोम्योसे ती-  
 भाज्यमूलकपायेण वातघ्नो दोषोसे एक  
 प्रकार का, दोषाद्वाहितैर्यैर्दोषैःसे तीन  
 प्रकार का । इसतरह सब मिलकर सात प्र-

विपरीत द्रव्योंके सेवन से दूर होता है । यह सब वातज्विसर्प का वर्णन है ।

पित्तज्विसर्पकेलक्षणादि ।

पित्तमुष्णोपचारादिविद्राहम्लाशनैश्चितम् । दूष्यसंदूष्यमार्गोश्चपूरयन्वैविसर्पति ॥ तस्यरूपाणिज्वरस्तृष्णामूर्च्छामोहच्छर्दिरोचकोऽङ्गभेदः स्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहः प्रलापः शिरोरूक्चक्षुषोराकुलत्वमरतिभ्रमः शीतवातवारितर्षांतिमात्रहरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वन्तेपांहरितहारिद्रूपदर्शनयस्मिश्चावकाशेविसर्पानुसर्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानां वर्णानामन्यतमं पुप्यति । सोत्सेधैश्चातिमात्रं दाहसस्वेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयते तुल्यवर्णास्त्रैरचिरपाकैर्निदानोक्तानि नोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति पित्तज्विसर्पः ॥

अर्थ—उष्णक्रियाके अवलम्बनसे तथा विद्राही और खट्टे पदार्थों के सेवनसे संचित हुआ पित्त दूष्य धातुओं को दूषित करके स्त्रोतोंके मार्गोंको रोकदेताहै । तब पित्तजनित विसर्प फैलने लगता है । इस विसर्प के रूप ये हैं यथा—ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, मोह, घमन अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अत्यन्त अन्तर्दाह, प्रलाप, शिरोभेदना, नेत्रों में धिकलता, अरति, भ्रम, शीतलवायु और शीतलजल की अत्यन्त तृप्ता, नेत्र, मूत्र, विष्टाका हरावर्ण, नेत्रोंसे प्रत्येक वस्तुका हरा वा हल्दीके समान दीखना । जिस स्थानमें विसर्प फैलताहो उसका ताम्रवर्ण, हरा,

( १०६ )

हल्दीके समान, नीलवर्ण, रक्तवर्ण इनमें से किसी एक रंगका होजाताहै । यह विसर्प अत्यन्त ऊंचा तथा दाह और स्वेदयुक्त फोड़ोंसे आच्छादित होताहै, इन फोड़ों में से इनकेही रंगके सद्यः स्राव होताहै और ये फोड़े थोड़ेही कालमें पकभी जातेहैं । निदानोक्त द्रव्योंके सेवन से ये बढ़तेहैं और इन से विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटते हैं । ये सब पित्तज विसर्प का वर्णन है ।

कफ विसर्पकेलक्षणादि ।

स्वादम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः कफःसंदूषयन् दूष्यं कृच्छ्रमङ्गेविसर्पति ॥ तस्यरूपाणि शीतकः शीतकज्वरोगौरवं निद्रातन्द्रारोचकोमधुरास्पत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाछर्दि रालस्यस्तैमित्यमग्निनाशोदौर्बल्यं यस्मिश्चावकाशे विसर्पति सोऽवकाशः श्वयधुमान्पाण्डुमात्रातिरक्तस्नेहः सुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैः चिरकारिभिः बहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैः श्वेतपाण्डुभिरनुबध्यते मभिन्नस्तु श्वेतपिच्छिलतन्तुमज्जनमनुवर्द्धस्निग्धमास्त्रावस्रवत्पूर्य्वचगुरुभिः स्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्वर्णैरनुबध्यते अनुसङ्गीश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानि निदानोक्तानि नोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति श्लेष्मज्विसर्पः ॥

अर्थ—मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और भारी अन्न और अधिक निद्रा इनके सेवन करनेसे संचित हुआ कफ दूष्य धातुओं को दूषित करके कृच्छ्रसाध्य विसर्पको उत्पन्न

करता है। इसके रूप ये हैं यथा—शीत, शीतज्वर, भारापन, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुख्यमें मीठापन, मुखमें ल्हिसाघट, मुंहका भरना, वमन, आलस्य, स्तिमिता, अग्निनाश और दुर्बलता, जिस स्थानमें यह विसर्प फैलता है वह स्थान सूजन, पाण्डुता, अतिस्राव, अतिस्नेह, सुति, स्तम्भता, भारापन, और अल्पवेदना इनसे युक्त होता है इसमें कठिनतासे तथा देरमें पकनेवाले बड़ लवणुपलेपी स्वेत वा पाण्डुवर्ण के फोड़े हो जाते हैं इन फोड़ोंके फूटनेपर सफेद गिल-गिला तन्तुयुक्त, गाढा, छगातार तथा क्षि-ग्धस्त्राव होता रहता है। इसका ऊपरछा भाम भारी, क्षिग्ध, जलयुक्त, स्निग्धगाढ़े, त्वगुपलेपी वर्णोंसे आच्छादित होजाता है। अनुपंगी नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र, विष्टाका वर्ण सफेद होजाता है। यह रोग निदानोक्त द्रव्योंके सेवनसे बढ़ता है और तद्विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटता है। यह कफजविसर्प का वर्णन है।

वातपित्तजविसर्पके लक्षणानि ।

वातपित्तमकुपितमतिमात्रंस्वेदहृभिः । प-  
रस्पर्लब्धबलदहद्ग्रात्रं विसर्पति ॥ त-  
दुपतापादातुरः सर्वशरीरमंगारैरिवाकी-  
र्यमाणमन्यते । छर्द्यतीसारमूर्च्छादाह  
मोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृ-  
ष्णाविपाकागभेदादिभिश्चाभिभूयते ।  
यंत्र्यावकाशं विसर्पोऽनुसर्पति सोऽवका-  
शान्तांगारकाशोऽतिरिक्तो वा भव-  
त्यग्निदग्धप्रकारैश्च स्फोटैरुपचीयते स-

क्षीघ्रंगत्वादाश्वेयमर्मानुसारी भवति मर्मा-  
णिचोपतप्तपवनोऽतिबलोभिनत्यंगान्य-  
तिमात्रं प्रमोहयति संज्ञां हि काश्चासौ जन-  
यति नाशयति निद्रां । स न एतिन्द्रः प्रमूढसं-  
ज्ञो न्ययितचेतानकवचिद्वचनमुखमुपलभं  
अरतिपरीतः स्थानादासनात् शय्याका-  
न्तुमिच्छति क्लिष्टभूयिष्ठश्चाशुनिद्रां भज-  
त्यवलोदुखप्रबोधश्च तमेवंविधमग्निर्वीस-  
र्पपरीतमचिकित्स्यं विधात् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से अत्यन्त कु-  
पित हुए वात पित्त एक दूसरे के संगसे अ-  
त्यन्त बलवान् होकर शरीरको दग्ध करते  
हुये विसर्पको उत्पन्न करते हैं। इन कफ  
वातके उपतापसे रोगीको अपना सब श-  
रीर जलते हुए अंगारोंके सदृश मादृम होने  
लगता है। वमन, अतीसार, मूर्च्छा, दाह  
मोह, ज्वर, तमक, अरुचि, अस्थिभेद, सन्धि  
भेद, तृष्णा, अविपाक, अंगभेद आदि उपद्रव उ-  
त्पन्न होते हैं। शरीरके जिस २ विभाग में  
विसर्प फैलता है। उस २ स्थान में युष्ठा-  
ए हुए अंगारों के सदृश कृष्णवर्ण, तथा  
उस से भी अधिक फालापन होता है।  
इसमें आग से जले हुए फफोले के सदृश  
फोड़े होजाते हैं यह अत्यन्त शीघ्र गामी  
होनेसे मर्मांसे गमन करता है मर्मांसे वायु  
को उत्तप्तता से अत्यन्त वेग से अंगों का  
भेदन और चेतन्यता का नाश होता है।  
हिचकी और श्वास, उत्पन्न होते हैं, निद्रा  
का नाश होता है, रोगी इस तरह निद्राना-  
श, और संज्ञानाश, और व्यथितचित्तता से

किसी तरह सुख प्राप्त नहीं करता है । अत्यन्त दुःख के कारण वह स्थान, आसन वा शय्या पर आड़ा तिरछा होना चाहता है इस तरह अत्यन्त क्लिष्ट होकर शीघ्र सोजाता है, यह रोगी अत्यन्त दुर्बलता के कारण जगनि से भी नहीं जगता है । इस अग्निविसर्प का रोगी दुश्चिकित्स्य होता है ॥

कफपित्तज्विसर्पकलक्षणानि ॥

कफपित्तप्रकुपित्वलवत्स्वेनहेतुना ।  
विसर्पत्येकदेशंतुप्रक्लेदयतिदेहिनः ॥  
तद्विकाराः शीतज्वरः शिरोयुरुत्वंदाहः स्तै-  
मित्यमंगवासादनं निदातन्द्रामोहोऽन्ध्रद्वेषः  
प्रलापोऽग्निनाशो दौर्बल्यमस्थिभेदो मूर्च्छा  
पिपासा स्रोतसाम्लेपो जाड्यमिन्द्रियाणां  
आमोपवेशनमंगविशेषोऽगमदोऽरतिरौ-  
त्सुक्यंचोपजायते प्रायश्चामाशये विसर्प-  
त्पलसकफदेशग्राही यस्मिन् श्वायकाशो वि-  
सर्पतिसोऽवकाशोरक्तपीतपाण्डुपिडका-  
पकीणश्चैव कफभः कालो मलिनः स्निग्धो  
बहुष्मागुरुस्तिमितवेदनः श्वयधुमान्गम्भी-  
रपाकः निरास्रावः शीघ्रक्लेदः स्विन्नविल-  
म्बितमांसत्वक्क्रमेणाल्पस्वरुक्परमृष्टोऽव-  
दीर्यते । कर्दमइवापीडितोऽन्तरप्रय-  
च्छत्युपाकिलन्नपूतमांसत्यागी शिरास्ना-  
युसंदर्शोऽकुणपगन्धी संज्ञास्पृतिहर्षातर्क-  
मयी सर्पपरतिमचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ.... अपने अपने हेतुओं से कफपित्त प्रकुपित होकर तथा एक दूसरे की सहायता से अत्यन्त बलिष्ठ होकर देह को क्लेदित करके शरीर के एक भाग में विचरता है । उस

के विकार ये हैं यथा-शीत ज्वर, सिरका मो-  
रपन, दाह, स्तिमिता, अंगगलानि, निद्रा,  
तन्द्रा, मोह, अन्नमें द्वेष, प्रलाप अग्निनाश,  
दुर्बलता, अस्थिभेद, मूर्च्छा, तृषा, स्रोतःस-  
मूहमें स्निहावट, इन्द्रियोंमें जडता, आमका  
निकलना, हाथ पांवका पटकना, अगमर्द,  
अरति, उत्सुकता ये उपद्रव होते हैं । यह  
प्रायः आमोशयमें उपपन्न होकर शरीर के किसी  
एक भागमें फैलता चला जाता है । जिस  
स्थान में यह फैलता है उस स्थानमें लाल पीले  
तथा पाण्डु वर्ण के फोड़े होजाते हैं । तथा  
सुरमाके सदृश काला, मलीन, क्षिण्य अत्यन्त  
गरम, भारी, स्तिमित, वेदनायुक्त सूजनयुक्त,  
गंभीरपाकी, निरास्रावी और शीघ्रक्लेदी होता  
है । उस स्थानका मांस स्थिन्न, क्लिन्न और  
सड़ा हुआ सा होजाता है । इसमें घोडा २  
दर्द होता है और हाथसे रगड़ने पर फट-  
जाता है । अधिक रगड़ने पर इसमें कीचकी  
तरह उंगली गड़जाती है । धीरे धीरे इसमें  
से सड़ा हुआ दुर्गन्धित मांस निकलने ल-  
गता है और भीतर की नस, स्नायु आदि  
दिखाई देने लगती हैं, इसमें मुर्देकी सी गंध  
आने लगती है, इससे संज्ञा और स्मरण शक्ति  
का नाश होजाता है ॥ यह कर्दमवीसर्प का  
हलाता है, यह रोग असाध्य होता है ॥

ग्रन्थिविसर्पकलक्षणानि ॥

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपाना-  
भिष्यन्दिसेविनामन्यायामासेविनामम-  
तिकर्मशालिनां प्लेप्मावायुश्चमकोपमा-  
पद्यते तावु भौदुष्टप्रवद्धौ अतिबलामदप्यद-



प्यविसर्पायकल्पते । तत्रवायुःश्लेष्माणा  
विवद्वमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्द  
नक्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रापाकसाध्यांक  
फाशयेसंजनयत्युत्सन्नरक्तस्यवाग्दूष्यर  
क्तसिरास्नायुमांसत्वगाश्रितग्रन्थिवीस-  
र्पकुरुतेतीव्ररुजाग्रन्थीनास्थूलानामणू  
नादीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्वराती  
सारकासदिकाश्वासशोषप्रमेहवैचर्ण्यारो  
चकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छांगभंगानिद्रारति  
संसदनाद्याः प्रादुर्भवन्त्युपद्रवास्तैरुपद्रवै  
रुपद्रुतःसर्वकर्मणांविषयमातिपातितोवि  
वर्जनीयोभवतीतिग्रन्थिवीसर्पः ॥

अर्थ—स्थिर, भारी, कठोर, मधुर, शी-  
तल और सिग्ध, अन्नपान के सेवनसे अ-  
भिप्यन्दी द्रव्योंके सेवनसे, शारीरिक परि-  
श्रम न करनेसे, संचित दोषोंको वमन वि-  
रेचनादि द्वारा दूर न करनेसे कफ और  
वायु प्रकुपित होजाते हैं, ये दोनों दूषित  
होकर वृद्धि पाकर अत्यन्त बलवान् होजाते  
हैं तब रक्तादि दूष्य धातुओं को दूषित  
करके विसर्परोग को उत्पन्न करते हैं । उ-  
त्सर्गमय वायु का मार्ग कफके द्वारा रुक जा-  
ने पर यह वायु उसी कफके अनेक भाग  
करदेती है और कफाशय में कृच्छ्रापाक और  
कृच्छ्रापाय ग्रन्थिमाला को उत्पन्न करदेती है  
अथवा कफ और वायु ये दोनों ही उत्तन्न  
रक्तवाले मनुष्य के रक्तको दूषित करके सि,  
रा, स्नायु, मांस और त्वचामें गांठदार वि-  
सर्पको उत्पन्न करते हैं । इन गांठोंमें बड़ी  
तीन वेदना होती है, ये गांठें मोटी, छोटी,

दीर्घ, गोल होती है, इनमें उपताप होनेसे  
ज्वर, अतीसार, खांसी, हिचकी, स्वास, शो-  
ष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, व-  
मन मूर्च्छा, अंगभंग, निद्रा, अरति, ग्लानि  
आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं, उन उपद्रवोंसे  
अभिभूत होकर रोगी सम्पूर्ण कर्मोंके करने  
के अयोग्य होजाता है, इस कारणसे ग्रन्थि-  
वीसर्पकी चिकित्सा करना वर्जनीय है ।

रोग और उपद्रव में अन्तर ।

उपद्रवस्तुखलुरोगान्तरकालजोरागाश्र  
योरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पद्माज्जा  
यतेत्युपद्रवसंज्ञः ॥ तत्रप्रधानोव्याधि-  
व्याधिर्गुणीभूतउपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधान-  
प्रशभप्रशमोभवति । सत्तुपीडाकरतरोभ-  
वाति । पश्चादुत्पद्यमानोव्याधिःपरिविलं  
ष्टशरीरत्वाच्चस्मादुपद्रवत्वरमाणोऽभिवा-  
धते ॥

अर्थ—उपद्रव रोग के उत्पन्न होने से  
पीछे उसी रोगका आश्रय लेकर उत्पन्न होता  
है । यह रोग स्थूल वा सूक्ष्मरूप में रोग  
से पीछे उत्पन्न होता है इसीसे इसे उपद्रव  
कहते हैं । यहां पहली व्याधि प्रधान होती  
है और उपद्रव व्याधि का गुणीभूत होता  
है अर्थात् व्याधिके अनुसार ही उपद्रव में  
गुण होते हैं । इस उपद्रव की शान्ति प्रधा-  
न रोग की शान्ति के साथ होजाती है ।  
शरीर में अत्यन्त क्लेश होने से यह व्याधि  
पीछे उत्पन्न होती है, परन्तु प्रधान व्याधिसे  
भी अधिक क्लेशकारक होती है अतएव अत्यन्त  
शीघ्रता से उपद्रवों के शान्ति का उपाय करे ।

साक्षिपातिकाविसर्प ।

सर्वायतनसंमुत्पत्तिसर्वाल्लङ्घन्यापिनसर्वधा  
त्वनुसारिणमाशुकारिणमहात्थयिकमिति  
सन्निपातवीसर्पमाचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ—सम्पूर्ण कारणों से उत्पन्न हुआ स  
म्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण धातुओं का  
अनुसरणकर्ता, शीघ्रकारी, महाउपद्रवों का  
करनेवाला सन्निपातिक विसर्प दुश्चिकित्स्य  
होता है ॥

विसर्पोंका साध्यासाध्यवर्णन ।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताविसर्पास्त्रयः  
साध्याभवन्त्यग्निकर्दमाख्यौपुनरनुपष्ट  
ष्टमर्मणिअनुपहतबासिरास्त्रायुमांसवले  
देसावधारणाक्रियाभिरुपायैःतावेवाभ्य  
स्यमानौप्रशान्तिमापद्येयातामनादरोप  
क्रान्तपुनस्तयोरन्यतरोहन्यादेहमाभेवा  
शीविषवत् । तथाग्रन्थिवीसर्पमज्जातो  
पद्रवमारभेतचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्वे  
नपरिहरेत् । सन्निपातजसर्वधात्वनुसारि  
त्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चासा  
ध्यविद्यात् । तत्रसाध्यानांसाधनमनु  
व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ -- इन सब विसर्पों में से वातज, पित्त  
ज और कफज ये तीन विसर्प साध्यहोते हैं,  
अग्नि विसर्प और कर्दम विसर्प मर्मस्थान से  
बिना मिले होने पर और सिरा स्त्रायु, मांस  
और क्लेद के अनुपहत होने पर साधारण  
क्रियाओं के द्वारा चिकित्सा किये जाने पर  
शान्त होजातेहैं, तथा प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा  
न किये जाने पर आशीविषकी तरह देह को

शीघ्रही नष्टकर देतेहैं । ग्रन्थिवीसर्प की चि  
कित्सा करने का प्रारम्भ उस समय करें  
जो उस में उपद्रव उत्पन्न न हुए हों । उप  
द्रवोंके उत्पन्न होनेपर चिकित्सा करना छोड़  
देवे सन्निपातज विसर्प भी असाध्य होताहै  
क्योंकि वह सर्वधात्वानुसारी, आशुकारी हो  
ताहै और इसकी चिकित्सा भी विरुद्ध उ  
पायों से करनी पड़ती है ॥ अब हम साध्य  
वीसर्पों की चिकित्साका वर्णन करेंगे ।

विसर्प की साधारण चिकित्सा ।

लंघनोल्लेखनेशस्तोतित्तकानांचसेवनम् ।  
कफस्थानगतेसामेरुक्षशीतैःप्रलेपयेत् ॥

पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्व्याच्चिकित्सि

तम् । शोणितस्यावसेकञ्चाविरेकंच

विशेषतः ॥ मारुताशयसम्भूतेऽप्यादि

तःस्याद्विरूपणम् । रक्तपित्तान्वयेऽप्या

दौस्नेहन्ननहितमतम् ॥ वातोत्पणेतित्तकृ

तपैत्तिकेचप्रशस्यते । लघुदोषेमाहोपैप

त्तिकेस्याद्विरेचनम् ॥ नष्टतंबहुदोषायदे

यंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोद्वयुपस्तब्धः

त्वह्मांसरुधिरं चेत् ॥ तस्माद्विरेकमेवा

दौशस्तंविद्याद्विसर्पिणः । रुधिरस्याव

सेकंचतद्भ्रूयाश्रयसंज्ञितम् ॥ इतिवीस

र्पनुत्पत्तोक्तं समासेनचिकित्सितम् । एतदे

वपुनःसर्वव्यासतःसंभवस्यते ॥

अर्थ—आमयुक्त दोषके कफस्थानमें जाने

पर लंघन, वमन और तित्त द्रव्योंका सेवन

हितहै तथा जिस स्थानपर विसर्प हुआहो

वहां रुक्ष और शीतल द्रव्योंका लेप करें ।

उसी आमसंयुक्त दोषके पित्ताशयमें जान

पर पूर्वोक्त क्रमका अवलम्बन उचितहै, इस रोगमें फस्त खोलना और दस्त कराना ये दो बातें अधिक कर्त्तव्य हैं । वाताशय सम्भूत रोगोंमें तथा रक्तापित्तान्त्रय में उत्पन्न होनेवाले रोगों में प्रथमही से रूक्षण क्रिया करना उचितहै, इसमें स्नेहन क्रिया अहित होती है वाताधिक्य विसर्पमें तथा अल्पदोष वाले पित्तज विसर्प में तित्त घृत हित हैं, एवं महादोषों से युक्त पित्तज विसर्प में विरेचन उत्तम होताहै । जो घृत निरेचनकर्त्ता न हो वह बहुत दोषोंसे युक्त विसर्प रोगी को देना उचित नहीं है क्योंकि इस घृत के देने से दोष दृढकर लज्जा, मास और रुधिर में पकावट पैदा करदेते हैं, अतएव विसर्प रोगीको सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये । पीछे रक्तमोक्षणभी कराताहै क्यों कि रुधिरही विसर्पका प्रधान स्थानहै । यह सक्षरमे विसर्प की चिकित्सा वर्णन कीगई है । अब हम यहां से विसर्परोगों की चिकित्साका विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे ।

**कफपित्तविसर्प की चिकित्सा ।**

मदनमधुकान्तिन्ववस्तकस्पफलानि च । वमनसंप्रदातव्यर्थसर्पकफपित्तजे ॥ पटोलपिचुमदभ्यापिप्लव्यामदनेन च । वीसर्पवमनशस्ततथाचेन्द्रयवै सह ॥ यांश्च योगान्प्रवक्ष्यामिफलैषुकफपित्तिनाम् । विसर्पिणां प्रयोज्यास्ते दोषनिर्हरणाः परम् । सुस्तनिम्बपटोलानाञ्चन्दनोत्पलयोरपि । शारिदाम्पल्योत्तरीरमुत्तानां वा विचक्षण ॥ पापयेत कृपायानुहिंसिद्वान्वीसर्पनाशनान् । किराततित्तकंरोध्रदुर्लभांस च

न्दनाम् ॥ नागरपत्राकिञ्चलकमुत्पलसविभीतकम् ॥ मधुकं नागपुष्पचदद्याद्दीसर्पशान्तये ॥ प्रपुण्डरीकं मधुकपत्राकिञ्चलकमुत्पलम् ॥ नागपुष्पचरोध्रचतेनैव विधिनापिचेत् ॥ द्राक्षां पर्पटकं शुष्ठीं गुडूचीं धन्वायसकम् । निशापर्वुपित्तदद्यात्पृष्णावीसर्पशान्तये ॥ पटोलं पिचुमर्दञ्च दार्वी कर्दुकरोहिणीम् । यष्ट्याहात्रायमाणञ्च दद्याद्दीसर्पशान्तये ॥ पटोलादिकपापं वा पिबेत्त्रिफलयासह । मसूरविदलैर्युक्तं घृतमिथ्यप्रदापयेत् ॥ पटोलपत्रमुद्गानारसमामलकस्य च । पापयेत्तद्युताग्निध्वं न रंघी सर्पपीडितम् ॥

**अर्थ—**कफ पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पमें मेनफल, मुलहठी, नीम, इन्द्रजौ इनका काथ पान कराके वमन करावै । अथवा परवल, नीम, पीपल, मेनफल, और इन्द्रजौ इनका काथ पान कराके वमन करावै कल्पस्थानमें कफपित्त रोगियोंके लिये जो जो प्रयोग वर्णन किये जायेंगे वे सब विसर्प रोगमें प्रयोजनीय होते हैं, ये प्रयोग अत्यन्त दोषनिःसारकहैं । मोथा, नीम और परवल अथवा रक्तचन्दन और नीलकमल अथवा शारिवा, आंबला, उत्तरी और मोथा । इन तीन योगोंके काथ का पान करानेसे विसर्प दूर होजाताहै, ये अनुभूत प्रयोगहैं ।

अथवा चिरायता, लोध, जवासा, रक्तचन्दन, सोंठ, नागकेशर, नीलकमल, बंहडा मुलहठी, नागपुष्प इन का काथ विसर्पनाशक होताहै ।

पुण्डरियाकाष्ठ, मुलहठी, पत्रकेशर, नील कमल, नागपुष्प और लोघ इनके काथ को पूर्वोक्त विधिसे विसर्प रोगी को देवै। अथवा दाख, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा इनको रात्रि में भिजोकर प्रातःकाल पान करै तो तृप्ता और विसर्प दूर होवै। अथवा परचल, नीम, दाखलंदी कुटकी मुलहठी त्रायमाणा, इनका काथ विसर्प की शान्ति के निमित्त देवै।

अथवा पटोलादि काथ का त्रिफला के साथ पान कराने से विसर्प की शान्ति होती है। अथवा घी मिलाकर मसूरकी दाल देवै अथवा परचल, मूंग और आंवले के रसमें घृत मिलाकर उस मनुष्यको पान करावै जो विसर्प रोग से पीडित हो।

विसर्पनाशकअन्यप्रयोग ।

यद्यसर्पिर्महातिक्तपित्तकुष्ठनिर्वहणम् ।  
निर्दिष्टतदपिमाज्ञोदयाद्रीसर्पशान्तये ॥  
त्रायमाणाघृतसिद्धगौलिमकेयदुदाहृतम् ।  
वीसर्पाणां प्रशान्त्यर्थं दद्यात्तदपिबुद्धिमान् ।  
त्रिवृच्चूर्णसमालोच्य मर्पिपापयसा तथा  
धर्म्माम्बुनावासंयोज्यामृद्रीकानारसेन  
वा । विरेकार्थं प्रयोक्तव्यं सिद्धं वीसर्पना  
शनम् ॥ त्रायमाणाघृतं वापिपयोदद्या  
द्विरेचनम् ॥ त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रि  
घृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं वीसर्प  
ज्वरनाशनम् ॥ रसमामलकानां वा घृत  
मिश्रं प्रदापयेत् । स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृच्चू  
र्णयुतोद्भूतः ॥ दोषकोष्ठगते भूय एतत्कु  
र्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टं रुधिरर-

क्तमेवादितो हरेत् ॥ भिषग्वातान्वितं रक्तं  
विपाणेनाभिनिहरेत् । पित्तान्वितं जलौ  
काभिः कफान्वितं मलाबुभिः ॥

अर्थ..... पित्त कुष्ठनाशक जो महातिक्तक घृत वर्णन किया गया है वह घृत विसर्प के नष्ट करनेमें भी अत्यन्त उपयोगी है। गुल्मरोग में जो त्रायमाणादि घृत वर्णन किया गया है वह भी विसर्पकी शान्तिके निमित्त उत्तम है। निसोथके चूर्ण को घीके साथ, दूधके साथ, उष्णजलके साथ अथवा दाखके रसके साथ विसर्पको दूर करनेके लिये पान करावै। अथवा त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध विरेचनके लिये देवै। त्रिफलाके काथके साथ अथवा निसोथके साथ घृत का प्रयोग करने से विरेचनके द्वारा विसर्प जनित ज्वर जाता रहता है। अथवा आंवले के काथमें घृत मिलाकर देवै और जो रोगीका कोठा कडा हो तो उसीमें निसोथका चूर्ण और मिला देवै। दोषोंके कोष्ठगत होनेपर यहाँ चिकित्सा फिर करै जो रुधिर शाखामें दूषित हुआ हो उसे प्रथमही फस्त लगाकर निकाल देवै। वैद्य को उचित है कि घात संसृष्ट रुधिरको सीगी लगाकर निकाले, पित्तसंसृष्ट को जोकों से और कफसंसृष्टको अलावू द्वारा निकाले ॥ यथासंघं विकारस्य अन्यधेयदाशुवासिनाम् त्वह्मांसस्नायुसंक्षेदोरक्तक्षेदादि जायते ॥ अन्तःशरीरसंशुद्धे दोषत्वह्मांसं श्रिते । आदितः स्वल्पदोषाणां क्रियावा-  
ह्याप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—विसर्पके पासवाली नसमें नष्ट

लगाकर फटा खोलें जिससे रुधिरमें क्लेद-  
ता न होनेपावै क्योंकि रक्तमें क्लेदताके होने  
ही से त्वचा, मांस और स्नायुमें क्लेदता उ-  
त्पन्न होती है । इन उपायोंके करने से जब  
शरीर भीतरसे शुद्ध होजाताहै और दोष  
केवल त्वचा और मांस में रहजातेहैं तब दोष  
बहुत सूक्ष्म रहजाते हैं उस समय बाह्यक्रिया  
की जाती है, अब उन बाह्य उपायोंको व-  
र्णन करते हैं ।

वातपित्तजविसर्पपरमलेप

उदुम्बरत्वङ्मधुकपञ्चकिञ्जल्कमुत्पलम् ।

नागपुष्पम्रियंगुश्वप्रदेहः सघृतोहितः ॥

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः ।

विसर्पान्ध्रिः सलेपः स्यात् शतधातघृताप्लुतः ।

कालीयमधुकहेमवलयचन्दनपञ्चकम् ।

लामृणालफलनीमलेपः स्याद्घृताप्लुतः ।

शालश्चमृणालश्च शंखचन्दनमुत्पलम् ।

वेतसस्यचमूलानिप्रदेहः स्यात्सतण्डुलम् ।

शारिवापञ्चकिञ्जल्कमुशीरपञ्चकोत्पलम् ।

मञ्जिष्ठाचन्दनरोध्रमभयाचमलेपनम् ॥

नलद्वज्जहरेणुधरोध्रमधुकपञ्चकौ ।

द्वौ सर्ज्जरसश्चैव सघृतस्यात्पलेपनम् ॥ या-

वकाः शक्तवैश्वसर्पिपासहयोजिताः ।

प्रदेहोमधुकवीरासघृतायवशक्तवः ॥ व-

लामुत्पलशालूकवीरामधुरुचन्दनम् ।

कुर्म्यादालेपनवैद्योमृणालञ्च विसान्वि-

तम् ॥ यवचूर्णसमधुकसघृतञ्चमलेप-

नम् ॥ हरेणवोममूराश्च समुद्राः श्वेतशा-

लयः । पृथक्पृथक्प्रदेहास्युः सर्वे वासर्पि-

पासः ॥ पञ्चनक्तिर्दमः शीतोभौक्तिकं

पिष्टमेव वा । शंखः प्रवालः शुक्तिर्वर्गिरि-  
कोवाघृताप्लुतः ॥ प्रपुण्डरीकमधुकव-

लाशालूकमुत्पलम् । न्यग्रोधपत्रदुग्धी

कासघृतस्यात्पलेपनम् ॥ विसानिचमृ

णालाश्च सघृताचकशेरुकाः । शतावरी

विदार्याश्च कन्दौघातघृताप्लुताः ॥ श-

वालनलमूलानिगंजिहावृषकर्णिका ।

इन्द्राणीशाकसघृताशरीरपत्वग्बलाघृतम्

न्यग्रोधोदुम्बरप्लसवेतसाश्वत्थपल्लवैः ।

त्वक्कल्कैर्वहुसर्पिणैः शीतैरालेपनं हितम् ॥

प्रदेहाः सर्वे एवैते वातापित्तोत्वग्नेशुभाः ।

सर्वफेत्तुमवक्ष्यामि मलेपनपरान् शुभान् ॥

अर्थ—गूलरकी छाल, मुलहटी, पद्मकेशर

नीलकमल, नागपुष्प, म्रियंगु इनको, पीस-

कर घी में सानकर लेप करें । बडकी नब्री

न डाढी, केलेका गुदा, कमलनालकाजड

इनको सौवार धुलेहुए घी में मिलाकर लेप

करे । अथवा कालीय ( पीतचन्दन ) मुल-

हटी, धतूरा, बल्या, चन्दन, पद्याख, इला-

यची कमलनाल और म्रियंगु इनको घृतमें

सानकर लेप करें । अथवा दूध, कमलनाल

शंखकीभस्म, रक्तचन्दन, नीलकमल, वेत

कीनड और वायविडंग इनको पीसकर लेप

करे अथवा शारिवा, पद्मकेशर, खस, पद्माख

नीलकमल, मजीठ, रक्तचन्दन, लोध, हरड

इनको पीसकर लेप करे । अथवा खस, क-

रेणु, लोध, मुलहटी, पद्माख, दूध, राल, और

घी इनका लेप करें, अथवा जी के सत्तूको

घीमें सानकर लेप करें । अथवा मुलहटी,

क्षीरकाकोली, घी और जीका सत्तू इनका

लेप करें अथवा खैरेटी, नीलकमल, शालक (कुमुदादिकी जड), क्षीरकाकोली, अगर, लालचन्दन, अथवा खस और लालचन्दन, इनका लेप करें, अथवा जौका चून, मुलहटी और घी का लेप करें । अथवा हरेणु, मसूर, मूंग, सफेदचाँवल इनको पृथक् २ वा सबको मिलाकर घी में सानकर लेप करें अथवा कमलकीजड की ठंडीकाँच, अथवा मोतियोंको जलमें पीसकर अथवा शंख, मूंग, सीपी वा गेरूको घीमें सानकर लेप करें । अथवा पुण्डरिया काठ, मुलहटी, खैरेटी, शालक, उत्पल, बडके पत्ते और दुखी इन को घीमें सानकर लेप करें । अथवा विस, मृणाल और कसेरूको घीमें सानकर लेप करें अथवा शतावरी और विदारीकंद इनको धुलेहुए घृतमें सानकर लेप करें । सित्रार (सलाब के जलकी ऊपरवाली काई), सरकंडेकी जड, गोजिह्वा, वृषकर्णी और इन्द्राणीके पत्ते इनको घीमें सानकर लेप करें अथवा सिरसकी छाल और खैरेटी को घीमें सानकर लेप करें । अथवा बड, गूलर, पाकड, बेत, और पीपलके पत्ते और छाल इनको पीसकर बहुतसे घीमें सानलेवें और ठंडे २ का लेप करें तौ विसर्प रोग दूर हो जाते हैं । .... ये जो ऊपर सम्पूर्ण लेप वर्णन किये गये हैं वे वातपित्तकी अधिकता वाले विसर्प में हितकारी होते हैं । अब हम वात कफ में उपयोगी लेपोंका वर्णन करेंगे ॥

वातकफविसर्पमें लेप ।

त्रिफलापत्रकोशीरंसमझाकरवीरकम् ।

( १०७ )

नलमूलान्यनन्तंचमदेहमुकल्पयेत् ॥ ख-  
दिरंसप्तपर्णञ्चमुस्तमारग्वधंधवम् । कु-  
रुण्टकंदेवदारुदघादालेपनांभिषक् ॥ आ-  
रग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच-  
इन्द्राणीशार्ककाकाहाशिरीषकुसुमानि  
च । प्रपुण्डरीकंहीवेरंदावीत्वङ्मधुकं-  
लाम् ॥ पृथगालेपनंकुर्याद् द्वदशःस-  
र्वशोऽपिवा । प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्व-  
ल्पघृतायुताः । वातपित्तोल्बणेपेतुम-  
देहास्तेघृतायिकाः ॥ घृतेनशतधौतेनम-  
दिद्यात्केवलेनच ॥

अर्थ—त्रिफला, पत्राक्ष, उशीर, लज्जालु, कनेरकी जड, सरकंडे की जड, अनन्त-  
मूल इनका लेप बनाकर लगावै । अथवा  
खैरसार, सप्तपर्णी, मोथा, अमलतास, धौं  
की छाल, कुरुण्टक और देवदारु इनका लेप  
करें । अथवा अमलतासके पत्ते, बहेडे की  
छाल, इन्द्राणी शक, मकोय, सिरस के फूल  
पुण्डरियाकाठ, हाऊबर, दारुहल्दी की छाल  
मुलहटी, खैरेटी, इनमेंसे एक २ का वा  
दो २ का वा सबका मिलाकर लेप करें इन  
लेपोंमें घी बहुत थोडा मिलाया जाता है,  
वातपित्त के विसर्प में जो लेप कियेजाते हैं  
उनमें घी अधिक होता है । केवल सौ बार  
धुलेहुये घीका लेप करें ।

विसर्पकीअन्याचिकित्सा ।

घृतमण्डेनशीतेनपयसायधुकाम्बुना । पं-  
चवल्ककपायेणसेचयेच्छीतलेनवा ॥ वा-  
तासृक्पित्तबहुलं विसर्पबहुशोभिषक् ।  
सेचनास्तेप्रदेहायेतएवघृतसाधनाः ॥

तेचूर्णयोगांघ्रीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ।

दूर्वास्वरसासिद्धचघृतस्याद्वज्रणरोपणम् ॥

दार्वात्त्वद्भुङ्करोध्रंकेसरञ्चावचूर्णनम् ॥

पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिफलामधुकोऽपले ॥

पुतत्रप्तालनसर्पिर्वणचूर्णप्रलेपनम् ।

अर्थ....जो विसर्प पित्त बहुल और वात

रक्तसे उपद्रुतहै उसपर घृतमण्ड, शीतल

दूध, जल मिलाहुआ शहत अथवा पंचबल्क

के ठंडे काय द्वारा सेचन करें । जिन प्र-

योगोंका घीमें लेप कियाजाता है, उन्हीं

द्रव्योंका पीसकर विसर्पपर चुकीं दीजाती है

दूधके रसमें सिद्ध कियाहुआ घी लगाने से

व्रण पुरजाताहै । अथवा दारुहल्दी की छाल

मुलहटी, लोध, और केसर इनको पीसकर

विसर्पपर गुरकें अथवा परवरु, नीम, त्रि-

फला, मुलहटी नीलकमल, इनका काय

बनाकर विसर्पको धोवै । इन्हीं द्रव्यों के

घृत, चूर्ण प्रलेपादि नियमों को काममें लावै

लेपलगाने की विधि ।

प्रदेहाःसर्वेष्वन्तेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ॥

क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ।

नवीनघृतेपूर्वप्रदेहावहुशोधनाः ॥ दे-

याःप्रदेहाःकफजैर्प्राधानोदघृतेधनाः ।

त्रिभागांगुष्ठमात्रःस्पातप्रलेपःकल्कपेपितः

नातिस्निग्धोनरुक्षश्चनपिण्डोनद्रवःसमः ॥

नचपटुपित्तलेपंकदाचिदवचारयेत् ॥ न

चतेनैवलेपेनपुनर्जातुप्रलेपयेत् । छेदघी

सर्पयूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ॥

लेपोद्गुपरिपटुस्पृक्तःस्वेदयतिव्रणम् ।

स्वेदजाःपिडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते ॥

उपर्युपरिलेपस्यलेपोयद्यवचार्यते ।

तानेवदोषान्जनयेत्पटुस्योपरियानुकृतः ॥

अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयद्यवचार्यते

त्वचिनाश्लिष्यतेसम्यग्हनदोषंशमयत्यपि

तन्वालिप्तनकुर्वतिसंशुष्कोह्यापुटायते ॥

नचौषधिरसोऽन्याधिप्राप्नोत्यपिचशुष्य

तितातन्वालिप्तेनयेदोषास्तानेवजनयेद्दृश

म् । संशुष्कःपीडयेद्व्याधिनिस्नेहोऽव

चारितः ॥

अर्थ—ये सब लेप चित के प्रसन्नकर

नेवाले हैं, पहिले लेपको छुड़ा छुड़ाकर

योडी २ देरमें फिर नये करने चाहियें ॥

पुराने घी में मिलाहुआ लेप बहुत शोधक

होताहै ॥ कफज विसर्प में पहिले लेपका

छुड़ाकर गाढ़ा २. लेपकरै, औषधों को

पीसकर जौभर मोटा लेपकरै ॥ लेप अत्यन्त

चिकना, रूखा, पिण्डित और द्रव नहो सब

जंगह समान हो, बासी लेप को कभी न

लगावै ॥ जिसका एकवार लेप किया है

उसका फिर लेप न करै क्योंकि वह उष्ण

भाव से क्लेद, विसर्प और शूलरोगों को

उत्पन्न करताहै, व्रणके ऊपर पट्टी धरकर ले-

प करनेसे व्रण में स्वेदन होता है । उन

पसीनोंसे फुन्तियां और खुजली उत्पन्न हो-

जाती हैं ॥ लेप के ऊपर लेप करनेसे भी

वही दोष उत्पन्न होते हैं जो वस्त्रके ऊपर

लेप करने से होते हैं ॥ जो लेप बहुत चि-

कनां और बहुत पतला किया जाता है वह

त्वचा में अच्छी तरह नहीं लगता है और

न उससे दोष शान्त होते हैं ॥

पतला लेप कभी न करना चाहिये क्यों-  
कि वह सूखकर पपडा जाता है ॥ इस लेप  
की औषध का रस व्याधि के पास भी नहीं  
पहुँचने पाता और पहिलेही सूखजाता है ।  
पतले लेपके करनेसे पूर्वोक्त दोष बहुत बढ  
जाते हैं । विना चिकनाईका लेप सूखकर  
व्याधिको अत्यन्त पीडित करता है ॥

विसर्पमेषध्यापथ्य ॥

अन्नपानानिवक्ष्यामि वीसर्पणानिवृत्तये  
लंघितेभ्यो हितो मन्योरुक्षः सक्षौद्रशर्करः  
मधुरः फिञ्चिदम्लो वा दाडिमामलकान्वि-  
तः ॥ सपरुपकगृद्धीकः सखर्जूरः शृताम्बुना  
तर्पणैर्यवशालीनांसस्नेहावावलेहिका ॥  
जीर्णोपुराणशालानां यूपैर्भुञ्जीत भोजनम्  
सृष्टान्मसूरांश्चणकान् यूपार्थमुपकल्पयेत् ।  
अनम्लान् दाडिमाम्लान् वापटोलामलकैः  
सह ॥ जाङ्गलानाञ्चमांसानां रसांस्त-  
स्योपकल्पयेत् । रुक्षान् परुपकद्राक्षादा-  
डिमामलकान्वितान् ॥ रक्ताः श्वेता महा-  
हाश्च शालयः पीठकैः सह ॥ भोजनार्थं  
मशस्पन्ते पुराणाः सुपरिस्तुताः । पयोगो-  
धूमसात्म्यानां सात्म्यान्वेव प्रदापयेत् ।  
येषां नात्युचितः शालिर्न राये च कफाधिकाः

अर्थ—अब हम विसर्पकी शान्तिके नि-  
मित्त अन्नपानकी विधि वर्णन करते हैं वि-  
सर्प रोगीको लंघन करानेके पदचात् शहत  
और चीनीके साथ रुक्ष मन्य देवै । अथवा  
उसी मन्य में अनार और आंवले की खटा  
ई देकर वा कुछ मिष्ट करके देवै । फालसा  
कित्सामिस, खजूर इनके साथ में ओटाये हु

ये जलके साथ तर्पण देवै । अथवा जौ  
और शाली चांवलों का अवलेह घृत मिला  
कर देवै । इनके पचनेपर पुराने चांवलोंका  
भात यूपके साथ भोजनमें देवै, मूंग, मसूर  
चना इनका यूप विना खटाईका अथवा  
अनारकी खटाई डालकर परवल और आं-  
वलेके साथ देवै । जांगल पशुओंका मांस  
रस विना चिकनाई डाले फालसे, दाख, अ-  
नार और आंवले डालकर सेवन करावै, भो-  
जनके लिये लाल चांवल, सफेद चांवल, म-  
हाशालि, साठी चांवल, इनको उयांलकर  
अच्छीतरह मांड निकाल कर देवै परन्तु ये  
पुराने होने चाहियें । जिस रोगीको दूध  
और गेहूं सात्म्यहों उनको ये ही देवै, जिन  
को शालीचांवल सात्म्य नहीं है और जिन  
को कफकी अधिकता है उनको दूध और गेहूंदेवै  
विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धानि च रजये-  
त् । क्रोधन्यायामसूर्याग्निप्रचातस्वपनं  
दिवा ॥ कुर्याच्चिकित्सतान्यस्मात्शी-  
तप्रायाणि पैत्तिके ॥ रुक्षप्रायाणि कफजे  
स्नैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशम-  
नमग्निविसर्पणे हितम् ॥ कफपित्तप्रशमनं  
प्रायः कर्दमसंज्ञिते ।

अर्थ—विदाही और विरुद्ध अन्नपान का  
परित्याग करदेना उचित है, क्रोध भी त्याग  
कर देवै । पैत्तिक विसर्पमें शीत प्राय चि-  
कित्सा करै, कफज विसर्पमें रुक्षप्राय और  
वातज विसर्पमें स्निग्धप्राय चिकित्सा करै ।  
अग्निविसर्पमें वातपित्त को शमन करनेवाली  
औषधी देवै । कर्दम विसर्प में प्रायः कफ  
पित्तनाशक औषधियोंका प्रयोग करै ॥



ग्रन्थिविसर्प में चिकित्सा ।  
 रक्तपित्तोत्तरदंष्ट्राग्रन्थिवीसर्पमादितः ॥  
 रूक्षणैर्लघनैःसैकैःप्रदेहैःपाञ्चवालिकैः ।  
 शिरामोसैर्जलौकाभिर्वमनैःसाविरेचनैः ॥  
 धृतैःकपायतिकैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् ।  
 ऊर्ध्वश्चाधश्चशुद्धायरक्तेचाप्यवसेचिते ॥  
 वातश्लेष्महरं कर्मग्रन्थिवीसर्पिणेहितम् ॥  
 उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते ॥  
 स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलिनः  
 दशमूलोपसिद्धेनतैलेनोष्णेनसेचयेत् ॥  
 सुलोष्णयाप्रादिद्वापिष्ट्याकृष्णगन्ध  
 या । शुष्कमूलफलकेननक्तमालत्वचा  
 पित्रा ॥ विभीतकस्यचाम्रग्रन्थिकलेनोष्णे  
 नवापिवेत् । घलानागवलापथ्याभूर्जप्र  
 न्थिविभीतकम् । वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुर्यात्  
 तृगुण्यप्रलेपनम् ॥ दन्तीचित्रकमूलत्व-  
 कसाधारकैपयसीगुडः ॥ भल्लातकास्थि  
 कासीसलेपोभिन्द्याच्छिलामपि । वहि  
 र्मार्गस्थितंग्रन्थिकिंपुनःकफसम्भवम् ॥  
 अर्थ—ग्रन्थिवीसर्पमें जो रक्तपित्तकी अ-  
 धिकता होती है तो प्रथमही से रूक्षक्रिया  
 लघन, पंचवल्लक के काथका परिपेक,  
 प्रदेह, फस्तखोलना, जोंक लगाना, वमन,  
 विरेचन, कपाय और तित्त औषधियों से  
 सिद्ध कियाहुआ घी देवें । तथा इस रोग  
 में वमन विरेचन और फस्त खोलकर शुद्ध  
 करने के पश्चात् वातकफ नाशक क्रियाका  
 अवलम्बन करना हित है । गरम २ लुपडी  
 और उपनाह भी हितकारी होते हैं । जो यह  
 रोग शल्युक्त हो तो स्निग्ध वेशवार का

प्रयोग करें और दशमूलसे सिद्ध कियेहुए  
 तेलद्वारा परिपेचन करें ॥ अथवा सहजने  
 की छालको पीसकर सुहाते हुए गरम गरम  
 का लेप करें, अथवा सूखी मूली या फंजा  
 की छाल को पीसकर लेप करें अथवा ब-  
 हेडेके फल्फको कुछ गुनगुना करके लेप-  
 करें अथवा खैरटी, नागवला, हरड, भोज-  
 पत्रकी गांठ, वहेडा, वांसके पत्ते, अरनी इन  
 का ग्रन्थि विसर्प पर लेप करें । अथवा दन्ती  
 चीते की छाल, सेंडुड और आक का दूध  
 गुड, भिलवे की गुठली, फसीस इनका लेप  
 करनेसे शिला भी टूट जाती है तब बाहर-  
 वाली कफकी गांठ के भिन्न होजानेमें क्या  
 संदेह है ।

चिरकलीन ग्रन्थिकी चिकित्सा  
 दीर्घकालस्थितंग्रन्थिभिन्द्याद्वाभेपजैरिमैः  
 मूलकानांकुलत्यानायूपैः सक्षारदादिभैः ।  
 गोधूमानैर्पवाभैर्वासशीधुमधुशर्करैः ।  
 सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुल्यरसान्वितैः ॥  
 त्रिफलायाःप्रयौगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः ।  
 मुस्तभल्लातशकूनामयोगैर्माक्षिकस्यच ॥  
 देवदारुशुङ्ग्याश्चमयोगैर्गिरिजस्यच

अर्थ—नाचे लिखीहुई औषधियोंसे बहुत  
 दिनकी उत्पन्न हुई गांठके तोड़नेका उपाय  
 करें । यथा जवाखार और अनार डालकर  
 कुल्थी या मूलीका यूप; शीधु, शहत और  
 चीनी मिलाकर गेहूँ वा जौके पदार्थ, विजौरे  
 का रस डालकर शहत मिलाहुआ सुरामण्ड,  
 पीपल और शहत डालकर त्रिफलाका प्र-  
 योग, मोथा, भिलाया और शहत ये डाल-

कर सत्तुओंके प्रयोग, देवदारु और गिलोय के प्रयोग तथा गेरूके प्रयोग। इन प्रयोगों से पुरानी गांठ टूट जाती है।

ग्रन्थिनाशक अन्य विधि ।

धूमैर्विरेकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥  
अयोलवणपापाणहेमताम्रप्रपीडनैः ।  
आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्व  
लीस्थिरः ॥ ग्रन्थिःपापाणकठिनोयदा  
नैवोपशम्यति । अथास्यदाहःसारेण  
शरैर्लोहेनवाहितः ॥ पाकिभिःपाचयि  
त्वावापाटयित्वासमुद्धरेत् । मोसयेत्त्व  
हुशश्चास्यरक्तमुत्क्षेपशमागतम् ॥ पुनश्चा  
पहेतरक्तेवातश्लेष्मजिदौपधम् । धूमोवि-  
रेकःशिरसःस्वेदनंपरिमर्दनम् ॥ अपशा  
म्यतिदाहेनपाटवंवाप्रशस्यते । प्रक्लिप्ते  
दाहपाकाभ्यांभिक्षुशोधनरोपणैः ।  
वाहैश्चाभ्यन्तरैश्चैवग्रणवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ—गुल्मके दूर करनेके लिये जो धू-  
मपान, शिरोविरेचन, लोह, लवण, पापाण  
सोना, तांबा और प्रपीडन पहिले वर्णनकिये  
गयेहैं उनका प्रयोग इस गांठके दूर करने  
के लिये करें। और यदि इन अनेक प्रयो-  
गोंके करने परभी इस बलवान, स्थिर और  
पत्थरके समान कठोर गांठका शमन न हो  
ताँ सार, शर और लोहसे दग्ध करनाहित  
है। अथवा पकाने वाली औषधों से पका-  
कर चीर डालें तथा इसके उत्क्षेपित हुए  
रक्तको बार बार निकाटदेवै रुधिरके निक-  
लनेके पीछे वातकफनाशक औषध, धूमपान,  
शिरोविरेचन, स्वेदन, परिमर्दन आदिका प्र-

योग करे। जो गांठ दाहसे शान्त न होतो  
उसका चीरना हितहै। इस ग्रन्थिके दाह  
और पाकसे क्लिन्न होनेपर व्रण की रीतिसे  
वाह्य और आम्प्यान्तरिक शोधन रोपणद्वारा  
चिकित्सा करे।

ग्रन्थिव्रणकीचिकित्सा ।

कम्पित्यकंविडङ्गानिदार्वाकारश्चकफ-  
लम् ॥ पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचि-  
कित्सितम् । द्विव्रणीयोपदेष्टेनकर्मणा  
चाप्युपाचरेत् ॥ देशकालप्रमाणज्ञाव्रण-

ग्रन्थिविसर्पवित्

अर्थ—कवीला, वायविडंग, दारुहल्दी,  
कंजेके फल, इनको पीसकर तैलमें पकाकर  
ग्रन्थिव्रण पर लगावै। तथा देशकाल और  
प्रमाणको जाननेवाला वैद्यद्विव्रणीय चिकित्सित  
प्रकरणमें कहेहुये प्रयोगों को भी इस जगह  
प्रयुक्त करे।

गलगण्डकीचिकित्साकाक्रम ।

यएवविधिरुहिष्टोग्न्धीनांविनिवृत्तये ॥  
सएवगलगण्डानांकफजानानिवृत्तये ।  
सर्वेचगलगण्डास्तुयेकफानुगतावृणाम् ॥  
घृतसारकपायाणामभ्यासान्नभवन्तिते

अर्थ—ग्रन्थियोंके दूर करनेके लिये जो २  
विधि यहां वर्णन की गईहैं, वेही कफज ग-  
लगण्ड के दूर करने में उपयोगी होती हैं।  
कफसे उत्पन्न हुए सब प्रकार के गलगण्ड  
घी, सार और कपाय का अभ्यास करनेसे  
नहीं होने पाते।

रक्तमोसणकी उत्कृष्टता ।

यानीहोक्तानिकर्माणिसर्पाणांनिवृत्तः

ये ॥ एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमे-  
कतः । विसर्पेन ह्यसंस्पृष्टो रक्तपित्तेन जा-  
यते ॥ तस्मात्साधारणं सर्वमुक्तमेतच्चि-  
कित्सितम् । विषेपोदोपैवपम्यान्नचनो-  
क्तः समासतः ॥ समासत्यासनादिष्टांकि-  
यां विद्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ.... विसर्पों की शान्तिके निमित्त जो  
कर्म वर्णन किये गये हैं वे सब एक ओर हैं  
और रक्तमोक्षण एक ओर हैं, क्योंकि रक्त-  
पित्तकी संस्पृष्टताके बिना विसर्प होना ही  
नहीं है । इसतरह सम्पूर्ण विसर्पोंकी साधारण  
चिकित्सा वर्णन की गई है । तथा दोषों की  
भिन्नताके कारण यह वर्णन मर्यादा साक्षित  
भी नहीं है । इस संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन  
के अनुसारही चिकित्सा करना योग्य है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

निरुक्तनामभेदाच्च दोषादप्याणिहेतवः ।  
आश्रयोमार्गतश्चैव वीसर्पगुरुलाघवम् ॥  
लिङ्गान्युपद्रवायेच यल्लक्षण उपद्रवाः ।

साध्यत्वं न च साध्यानां साधनश्च यथाक्रम-  
म् ॥ इति पिप्रसक्तयोसिद्धिप्रसिद्धेशाश्रयधीमते ॥  
उक्तं भगवता ह्येतद् वीसर्पाणां चिकित्सितम् ।

अर्थ.... इस विसर्प चिकित्सिताध्यायमें  
भगवान् आश्रयने, चतुरश्रोमणि और  
जिह्वासु अग्निवेश की विसर्प की निरुक्ति  
नामभेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, विसर्प  
के मार्ग, गुरुता, लघुता, लिङ्ग, उपद्रव,  
उपद्रवों के लक्षण, साध्यासाध्य वर्णन, सा-  
ध्य विसर्पों की यथा क्रम चिकित्सा का वर्-  
णन सुनाया ।

इति श्री भाषाटीकावित्तायां अग्निवेश विर-  
चितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां  
चिकित्सितस्थाने वीसर्प चिकित्सितं  
नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—\*—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्या-  
म इति हस्माद् भगवान् आश्रयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आश्रय बोले-  
कि अब हम मदात्ययचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

सुरैः सुरैश्च साहितैर्यापुराप्रतिपूजिता । सौ-  
त्रामण्याद्दयते या कर्मभिर्याप्रतिष्ठिता ॥  
यज्ञेहिताया शक्रस्य सोमोऽनिपिवतो भृशम्  
नीरुजस्तमसा विष्टस्तस्माद्दुर्गत्समुद्धृतः  
विधिभिर्वेदावेहितैर्यायजुर्महात्माभिः ।

हृदयास्पृश्या प्रकल्प्या च यज्ञिया यज्ञसिद्ध-  
ये ॥ यो न संस्कारनामाद्यैर्विशैर्बहुधा-

चया । भूत्वा भवत्येका विधा सामान्या नम-

दलक्षणात् ॥ या देवानामृतं भूत्वा स्वधा-

भूत्वा पितृभ्यः । सोमो भूत्वा हि जातान्या

युद्धक्ते श्रेयोभिरुच्यते ॥ आश्विनं यामह-

चेजो यीर्य्यसारस्वतञ्चया । बलमैन्द्र-

ञ्चया सोमः सौत्रामण्याञ्चयामता ॥  
शोकारतिभयो द्वे गनाशनीयामहाबला ।  
याम्रीतिर्यारतिर्यावागयापुष्टिर्याचानिष्ट-

तिः ॥ यामुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः ।  
रतिः सुरेत्यभिहिता तां सुरां विधिनापिवेत् ॥  
अर्थ—जिस मदिराका अमरेश्वर इन्द्रने  
पूर्वकालमें पूजन किया है, जिसकी सूत्रामणि

हवन में आहुति दी जाती है जो वेद विहित कर्मों से प्रतिष्ठित होती है, जो सोमपान करनेवाले इन्द्रके यज्ञमें हित है तमसाविष्ट इन्द्र जिसके पानसे निरोग तथा क्रेशसे उद्धत होगया । यज्ञमें उपयोगी यह सुरा यज्ञ की सिद्धिके लिये वेदविहित कर्मोंके द्वारा यज्ञकरनेवाले महात्माओंसे दर्शन के योग्य, छूने के योग्य, और कल्पना करने के योग्य की जाती है । यह सुरा अनेक द्रव्यों से बनाये जाने के कारण या अनेक नाम भेद से अनेक प्रकारकी होती है परन्तु 'नशा होना, यह एक साधारण धर्म सबमें है इस से अनेक प्रकारके मद्य भी एकही प्रकारके माने जाते हैं । यह सुरा अमृतरूप होकर देवताओंकी, स्थधा होकर पित्रांश्वरों की और सोम होकर द्विजन्माओंकी शोभा और कान्ति को बढ़ाती है । यह सुरा स्वर्ग वैद्य अश्विनीकुमार का महत्तेज है, सरस्वताका वीर्य है, इन्द्रका बल है और सूत्रामणि यज्ञ में सोमके सदृश है । यह सुरा शोक, अरति भय, उद्वेगका नाश करनेवाली है, अत्यन्त बल को बढ़ाने वाली है, यही सुरा, प्राप्ति, रति, वाणी, पुष्टि और निवृत्ति की साक्षात् मूर्ति है । जिस सुराको देवता अमुर, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, मनुष्य रति नामसे पुकारते है उस सुराको विधि पूर्वक पानकरे । ( विधि पूर्वक कहने का यहाँ तात्पर्य है कि इसके पानमें व्यतिक्रम होनेसे यह पूर्योक्त गुणों से विपरीत फल देती है ) ।

### सुरापानकी विधि ॥

शरीरकृतसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान् ।  
 प्रातृतोर्नर्मलैर्वस्त्रैर्यथार्तुद्धामगन्धिभिः ॥  
 विचित्रविधिस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।  
 देवाद्भिजातीनसंपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम्  
 देशेयथर्तुकेष्टेष्टकुसुममकरीकृते ॥ संवा  
 ससंमतेमुख्येधूपसंमोदबोधिते । सौपधा  
 नेमुसंस्तीर्णेविहितशयनासने ॥ उप  
 विष्टोऽथवातिर्यह स्वक्षरीरमुखोऽस्थितः ।  
 सौवर्णेः राजतैश्चापितथामणिमयैरापि ॥  
 भाजनेर्विमलैश्चित्रैः सुकृतैश्चपिवेत्सदा ।  
 स्त्रीभिर्यौवनमवाभिः शिक्षिताभिर्यथर्तुकैः  
 वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभूषितः ।  
 शौचानुरागयुक्ताभिः समदाभिरितस्ततः ॥  
 संवात्समानइष्टाभिः पिवेन्मद्यमनूत्तमम् ॥  
 पिवेन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हार्तिकैः शुभैः ॥  
 लवणैर्गन्धापि शुनेर्वरदंशैर्यथर्तुकैः । भृष्टै  
 र्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् ॥  
 पांगवजविहितैर्भक्ष्यैश्चविधयात्मकैः  
 अर्थ—वसन विरचन के पदचात देहके शुद्ध होने पर पवित्र, उत्तम सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त होकर सुगन्धित निर्मल वस्त्रों को धारणकरे अनेक प्रकार के पुष्पों की माला धारण करे, तरह तरह के सुसज्जित आभूषणोंको पहरे देवता और द्विजोंकी पूजाकरके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करे । तदनंतर ऋतुके अनुकूल अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित, सुगन्धित द्रव्योंसे भूषित, बसन योग्य स्थानमें एक दाय्या विछवाये जिससे मनोऽनुकूल तोसक तकिये लग रहे हों, उस

शय्या वा आसनपर बैठकर अथवा मुख फेर कर सोने, चांदी वा मणिमय निर्मल चित्र विचित्र और अच्छे धने हुए पात्रमें मद्यको भरकर पान किया करे। यौवनके मदमें चूर, सुशिक्षित ऋतुके अनुकूल वस्त्र आभूषण, मालाओंसे अलंकृत, आभूषणोंसे भूषित, शौच और अनुरागसे युक्त, मनो-हारिणी स्त्रियां देह पर इधर विधर हाथ फे-रतीहों। मदपानके पश्चात् मद्यानुकूल उत्तम हरे फल वा ऋतु के अनुकूल नमकीन और सुगंधित अवदंशादि ( माजून, चटनी इत्या-दि ) का सेवन करे ॥ अनेक प्रकारके थ-लचर जलचर आकाशचर जीवोंका मांस भू-न कर उन में नमक सुगंध द्रव्य आदि म-साले डालकर अनेक प्रकार के बनाकर से-वनकरे ॥

**दोषानुसार मद्यपान विधि ।**

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिषः प्राक्प्रमुज्य च  
प्रदाय सजलं मद्यमादितो वसुधातले ।  
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोऽधूपानुलेपनैः  
स्निग्धोष्णैर्भाषितैश्चान्नैर्व्रातिके मद्यमा-  
चरेत् । शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्ध-  
शीतलैः । पित्तिकोभाषितश्चाग्निः पित्ते-  
न्मर्दनसीदति ॥ उपचारैरग्निश्चैर्यव  
गोधूमभृक्षपिवेत् । श्लेष्मिकैर्धन्वजैर्गो-  
सैर्मद्यमारिचकैः सह ॥ विधिर्वसुमतामे-  
व भविष्यद्विभवाश्चये । यथोपपत्तिकै-  
र्मद्यपातव्यं मात्रया हितम् ॥

अर्थ—प्रथम देवताओंका पूजन करके  
मंगल पाठ्यकर फिर मद्यमें थोड़ासा जल मि-

लाकर पृथ्वी पर डाल दें। तदनन्तर वा-  
तप्रकृति वाला मनुष्य अभ्यंग, उबटना स्नान  
करके, कपड़े पहनकर, धूमपानकरके चन्दन  
लगाके स्निग्ध और उष्ण अन्नके साथ मद्य  
का सेवन करे। पित्तप्रकृति वाला पुरुष अ-  
नेक प्रकारके शीतल उपचारोंके पीछे मधुर,  
स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथ मद्यका  
सेवन करे। इसीतरह कफप्रकृतिवाला पुरुष  
उष्ण उपचारोंके करनेके पश्चात् गेहूँके प-  
दार्थ और कालीमिरच डालकर सिद्ध किये-  
हुए धन्वज पशुओंके मांसके साथ मद्यपान करे।

जो मनुष्य धनपात्रहै, वा भविष्यत्में  
धनपात्र होनाचाहेतहैं वे ऊपर कहीहुई विधि  
के अनुसार प्रमाण पूर्वक मद्य का पान करे।

**प्रकृत्यनुसार पेयमद्य ।**

वातिकेभ्यो हितं मद्यं मायोगौडिकपैष्टिकम्  
कफपित्ताधिकेभ्यस्तु फालमाधवशर्करम्  
बहुद्रवंबहुगुणंबहुकर्ममदात्मकम् ॥  
गुणैर्दोषैश्च तन्मद्यमुभयैरुपदेक्ष्यते ।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले पुरुषों को प्रायः  
गुडसे बनाहुआ और पिष्टकसे बनाहुआ मद्य  
हितहै, कफप्रकृति तथा पित्त प्रकृति वालों  
को फल, मधु और शर्करासे बनाहुआ हित  
होताहै। मद्य अत्यन्त पतला होताहै यह अ-  
नेक प्रकारके कर्म और गुणोंका करने वा-  
ला है। अब मद्यके गुण और दोष वर्णन  
कियेजाते हैं ।

**मद्यके गुणदोष ।**

विधिना मात्रया काले हितैरन्यथा बलम् ॥  
महृष्टोयः पित्तेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ।

यथोपेतं पुनर्मयं पसंगाद्येन पीयते ॥ रूक्ष  
व्यायामनित्येन विपद्यति तस्य तत् ।

मयं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसोगुणान् ॥  
दशभिर्दशसंक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।

अर्थ.... उचित समयमें विधिपूर्वक मात्रा-  
वत् और हितकारी अन्नके साथ बलके अ-  
नुसार प्रसन्न चित्त से मद्यपान करे । तौ  
यह मद्य अमृतके समान गुणकारक होता है।  
और जो रूक्ष और परिश्रमी मनुष्य यथा-  
प्राप्त मद्यको अत्यन्त प्रसंगसे पीलेता है उस  
को विपके समान है ।

मद्य हृदयमें प्रवेश करके अपने दशगुणों  
से ओजोधातुके दशगुणोंको क्षुभित करके  
चित्तमें विकार उत्पन्न करता है ।

मद्यके दशगुण ।

लघूष्णतीक्ष्णमूक्षमाम्लव्यवायाशुगमे  
वच ॥ रूक्षं विकासि विपदं मद्यं दशगुणं  
स्मृतम् ।

अर्थ—मद्यमें दश प्रकारके गुण होते हैं,  
यथा—हलकापन, उष्णता, तीक्ष्णता, सू-  
क्ष्मता, खटाई, व्याघात, शीघ्रगामित्व, रू-  
क्षता, विकासित्व और विपदता ।

ओजोधातुके दशगुण ।

गुरुशीतमृदुश्लक्ष्णं बहुलमधुरं स्थिरम् ॥  
प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धं ओजो दशगुणं तथा ॥

अर्थ.... भारीपन, शीतलता, मृदुता, श्ल-  
क्ष्णता, बहुलता, मधुरता, स्थिरता, प्रसन्न-  
ता, पिच्छिलता और स्निग्धता ये दश गुण  
ओजोधातुके हैं ।

मद्यगुणोंसे ओजगुणोंको नाना ।  
गुरुत्वं लाघवाच्छ्लेष्मं चाण्ण्यादम्लस्वभा

वतः । माधुर्यमादिवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चा  
शुभावनात् ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यायित्वा  
स्थिरत्वं श्लक्ष्णतामपि । विकासिभा  
वात्पिच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ।  
सौक्ष्म्यान्मद्यं विद्वन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गु-  
णान् ॥

अर्थ... मद्यके दशगुणोंसे ओजोधातुके द-  
शगुणोंका नाश नीचे लिखी हुई रीतिसे होता  
है । यथा मद्यके हलकापनसे ओजका भारा-  
पन, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुर-  
ता, तीक्ष्णतासे मृदुता, शीघ्रगामित्व से स्व-  
च्छता, रूखापनसे चिकनाई, व्याघातितासे  
स्थिरता, विकासितासे श्लक्ष्णता, पिच्छिलता  
से विशदता और सूक्ष्मतासे गाढ़पनका  
नाश होता है ॥

नशेकाकारण ।

सत्त्वं तदाश्रयं चाशुसंक्षोभ्य जनयेन्मदम् ।

अर्थ—मन ओजोधातुके आश्रित है अत-  
एव ओजो धातुके नष्ट होनेसे शीघ्र ही मद्य  
उत्पन्न होता है ।

रसधात्वादिमार्गाणां सत्त्वं बुद्धिन्द्रियात्म-  
नाम् ॥ प्रधानस्याजसर्गवद् हृदयस्थानमु-  
च्यते । अतिर्पानेन मद्येन विद्वन्नेनोजसा  
वतत् ॥ हृदयेनानिर्वृत्त्येन प्रसन्नयैव  
धानम् ।

अर्थ—हृदय रसादि धातुओं का स्थान है,  
मन, बुद्धि, इन्द्रियगण, आत्मा आदि प्रधान  
ओजोधातुका स्थान है । अन्यत्र मद्यपान  
करनेमें ओजोधातु नष्ट होजाती है इससे  
ओजोधातुके नष्ट होनेमें हृदय विकृत हो जाता है  
और हृदयस्थ धातु भी नष्ट होजाती है ।

मद्यको पूर्वापरत्वः ।

ओजस्यविहितपूर्वहृदिचमतिबोधिते ॥

मध्यमेविहितेऽल्पेचविहितेत्तमोमदः ।

अर्थ—जितने मद्यके पानसे ओज अविहितहो और हृदयमें चैतन्यताहो उसको पूर्व मद कहतेहैं । ओजके अल्पविहित होने पर मध्यममद और सर्वथा विहित होनेपर उत्तममद कहाताहै ॥

पैष्टिकमद्यकेगुणः ।

नैवविधातंजनयेन्मद्यपैष्टिकमोजसः ॥

विकासरूक्षाविपदागुणास्तत्रहिनोत्वणाः

अर्थ—पैष्टिकमद्य भोजोधातुमें ऐसा विकार कभी उत्पन्न नहीं करताहै, क्योंकि इसमें विकासी, रूक्ष और विपद ये गुण अधिक नहीं होतेहैं ॥

मद्यगुणाविष्टकेलक्षणः ।

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्त्वर्पौरतिःसुखम् ।

अर्थ....हृदयके मद्यगुणसे आविष्ट होनेपर हर्ष, तर्प ( इच्छा ), रति और सुख ये उत्पन्न होतेहैं ।

अतिसेवितमद्यकेउपद्रवः ।

विकारादचयथासत्तुचित्राराजसतामसाः  
जायन्तेमोहनिद्रार्त्तामद्यस्यातिनिषेवणा  
त्तासमद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते॥

अर्थ—मद्यके अत्यन्त पानसे जैसा मध्य होताहै उसके अनुसार अनेक प्रकार के रजोगुण उत्पन्न होतेहैं मोह तथा निद्रा की उत्पत्ति भी होती है । इसीदशा को मद्य विभ्रम या मद कहते हैं ॥

मद्यकेभेदः ।

पयिमानस्यमद्यस्याविज्ञातव्यास्ययोमदाः

प्रथमोमध्योऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते

अर्थ—मद्यपानसे तीनप्रकारका नश्वर उत्पन्न होताहै, यथा—प्रथम, मध्यम और अन्त्यम । अब इनमें से प्रत्येकके लक्षण कहतेहैं

प्रथममदकेलक्षणः ।

महर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः ॥

वाद्यगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः

नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेपुनचाक्षमः ॥

सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःसमुखोमदः ।

अर्थ—प्रथममद हर्षवर्द्धक, प्रीतिकारक अन्नपानके गुणोंका दिखानेवाला, बाजा, गीत, प्रहास और अनेक प्रकारकी वार्ताओंका प्रवर्त्तक होताहै, इससे बुद्धि और स्मृति का नाश नहीं होता, इन्द्रिय विषयोंमें असंमर्धता नहीं होती, सोने और जागने में सुख होता है ॥

मध्यममदकेलक्षणः ।

सुहृःस्मृतिर्गुह्यमोहोऽन्यक्तासज्जातिवाहसुहृः

युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रचलायनमेवच ।

स्थानपानान्नसांक्ष्येयोजनासविपर्यया

लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे

अर्थ....कभी वाणी की व्यक्तता, कभी कण्ठ का घिरजाना, युक्त और अयुक्त प्रलाप, कभी चलना, कभी बैठजाना, कभी खाना, कभी पीना आदि विपर्ययकर्म होते हैं ॥

मध्यममदकानिषेधः ।

मध्यमेमदसुतृकम्यमदमप्राप्यचोत्तमम् ।

किञ्चिन्नाशुभंकुर्नुन्नररजसतामसाः

कोमदतादृशविद्राजुन्मादमिबदारुणम् ॥

गच्छेद्ध्वानमस्वन्तवहुदोषमिवाध्वगः ।

अर्थ—रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्यों को जो उत्तममद प्राप्त न हो तोवे मध्यममद को प्राप्त करके अनेक प्रकारके अशुभकर्म कर बैठतेहैं। इस भयानक मध्यम मदका इसतरह त्यागकर देना चाहिये जैसे यात्री बहुत बिघ्नोंसे युक्त मार्गका परित्याग करदेतेहैं।

तृतीय मद के लक्षण ॥

तृतीयंतुमदं प्राप्य भद्रदार्ढ्यं विनिष्क्रियः ॥  
मदमोहावृत्तमना जीवन्नपि मृतैः समः । र-  
मणीयान्सविपया भवेत्तिनसुहृज्जनम् ॥  
यदर्थं पीयते मथं रतितां च न विन्दति ॥ का-  
र्याकार्यसुखदुःखं लोके यच्च हिताहितम् ।  
यदवस्थोन जानाति कोऽवस्थां तां प्रजेद्युधः ।  
सदूष्यः सर्वभूतानि निन्धया ग्राह्य एव च ॥  
व्यसन्नित्वादुदकं च सदुःखं व्याधिमश्नुते ॥

अर्थ—तीसरे मदके होनेसे मनुष्य दृढ़ लकड़ीकी तरह निष्काम होजाता है, उसका मन मद और मोहसे आवृत होनेके कारण वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान होताहै, उस दशामें उसको भोग्य विषय और सुहृज्जनोंका भी ज्ञान नहीं रहताहै। जिस रति बिछास के श्रिये वह मद्यपान करताहै उसका आनन्द भी उसके हाथ नहीं लगताहै। जिस अवस्थाके ज्ञान होनेमें कर्तव्याकर्तव्यकर्म, सुख दुःख और हिताहित का ज्ञान नहीं रहताहै, उस अवस्था को प्राप्त करने को कौनसा बुद्धिमान् देखता करताहै। ऐसा मद्य मनुष्य सब प्राणियों की दृष्टिमें दूष्य, निन्दनीय और अपेक्ष्य होजाताहै और सुदामें पूर्व दुर्गमनों

के कारण कृच्छ्रसाध्य व्याधियोंसे ग्रस्तहोजाताहै

मदके अवगुण ॥

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयः श्रेयो मोक्षश्च यत्परम् ॥  
मनःसमाधौ तत्सर्वभायत्तं सर्वदेहिनाम् ।  
मद्येन मनसश्चास्य सक्षोभः क्रियते महान् ।  
महामारुतवेगेन तदस्थस्य वशास्त्रिनः ।

अर्थ....इस लोक और परलोक में जो श्रेय पदार्थ हैं और जो उत्तम मोक्ष है वह प्राणियों के मनकी एकाग्रता पर निर्भरहै। यह एकाग्रता मद्यपान से नष्ट होजाती है, जैसे वायु के वेग से किनारे के वृक्ष झुगड़ पड़ते हैं ॥

मद के अन्य अवगुण ।

मद्यमसद्मन्त्रानं महादोषं महागदम् ॥ सु-  
खमित्यधिगच्छन्ति रजोमोहपराजिताः ॥  
मद्योपहतविद्वाना विमुक्ताः सार्चिकर्गुरुणः ॥  
श्रेयां भविष्यन्त्यन्तमदान्ध्यामदम्यायताः ॥  
मद्ये मोहो मयं प्राक् क्रोधां मृग्यश्च संश्रिताः ।  
मोहमादं मदमूर्च्छायाः सापस्मारापनान-  
काः ॥ यत्र कस्म्युनिविर्गुस्तप्रत्ययमया  
वृत्तः । इत्येवं मद्योपहामर्थगर्हन्ति य-

नयः ॥

अर्थ....मद्य में आर्मादि का होना अज्ञान, महादोष और मर्यादा रंगोंका उपपन्न करने वाला है। रज और मोह में पगलप हूय मनुष्यों का इस में गुण गुणना है। मदान्ध और मद की मारणा कर्मों के मनुष्य मद्यपान से ज्ञान भ्रंश होजाता है, उनके मतांगुण नष्ट होजाते हैं और श्रेयस्कर पदार्थों में वह विषुय होजाते हैं। म-



पान में मोह, भय, शोक, क्रोध मृत्यु उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक इतने उपद्रव आश्रित रहते हैं, मद्य में सृष्टिविभ्रंश एक सत्र में भारी दोष है इसी से सम्पूर्ण उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

इसतरह मद्यके दोषोंके जानने वालों ने मद्य की निन्दा की है।

युक्ति बाजत मद्यपान के दोष।

सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः ॥

अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यविधिवर्जनम्

किन्तुमद्यस्वभावेनयथैवाश्रितथास्मृतम् ।

अयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तंतथास्मृतम् ॥

प्राणःप्राणभृतामन्नंतद्रयुक्त्यानिहन्त्यसून ।

विषंप्राणहरंतद्युक्तियुक्तंरसायनम् ॥

अर्थ—विधि रहित अहितकारी मद्यका अत्यन्त पान करने से जो महादोष मद्य के कहे गये हैं वे ठीकही हैं, उनमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु मद्यका और अन्नका स्वभाव एकसा है। बिना युक्ति से युक्त किया मद्य रोगों को उत्पन्न करता है और उसीका युक्ति पूर्वक सेवन करना अमृत के समान गुणकारी है, जैसे युक्ति पूर्वक अन्नका सेवन करनेसे प्राणोंका पोषण होता है और अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से प्राणों का हरण कर लेता है। जो विष प्राणोंका नष्ट करने वाला है उसी का युक्ति पूर्वक सेवन करनेसे रसायन का काम देता है ॥

युक्तिपूर्वक मद्यके गुण ॥

हृषीकेशोपदिष्टमरोग्यं पौरुषं परम् । युक्त्यापीतं करोत्याशुमद्यमंदमुखवाहम् ॥

रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णमसादनम् । प्रीणनं वृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ स्वापनं नष्टनिद्राणाम्कानां वाग्विवोधनम् । बोधनञ्चातिनिद्राणां विवद्वानां विवन्धनुत् ॥ बध्वन्धपरिक्षुद्रुःखानाञ्चावमोहनम् । मदोत्थानाश्च रोगाणामद्यमेव प्रसाधकम् ॥ रतिविषयसंयोगप्रीतिसंयोगवर्द्धनम् । अतिप्रवयसामद्यमुत्सवा मोदकारकम् ॥

अर्थ....युक्तिपूर्वक मद्य के सेवनसे हर्ष, उत्साह, मद, पुष्टि, अरोगिता और अत्यन्त पुरुषार्थ बढता है, मद्यका मद सुख प्रबोधक होता है। यह शचिवर्द्धक अग्निसंदीपन, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको बढाने वाला, प्रीणनकर्त्ता, वृंहणकर्त्ता बलकर्त्ता भयनाशक, शोकहर्त्ता, श्रमनाशक है जिसकी निद्रा नष्ट होगई हो उसको नींद आजाती है, गुणोंकी बोलों खुलजाती हैं, अतिनिद्रित अर्थात् गाफिलों को चेत होजाता है, जिन को दस्तकी कवजियत होती है उन का कवज मिट जाता है। बंध बन्ध, परित्यक्श और दुःखोंका इससे नाश होजाता है, मद से उत्पन्न हुए रोगों को मदही दूर करता है, यह रति विषयमें संयोजक, प्रीतिके संयोग का वर्द्धक, वृद्धमनुष्योंको आल्हाद और आमोद का उत्पन्न करने वाला है ॥

प्रथम मद के गुण ।

पञ्चस्वर्गेषु कान्ते पुरारतिः प्रथमे पदे । युनावास्थविराणां चातस्थनास्त्युपमाभुवि बहुदुःखकृतस्यास्य शोकेनोपहतस्य च ।

विश्रामोजीवलोकस्यमदयुक्त्यानिपेधि  
तम् ॥

अर्थ—मदकी प्रथमावस्था में युवा और  
वृद्ध मनुष्यों को जो आनन्द पाँचों इन्द्रियों  
के निषेधोंमें प्राप्त होताहै उसकी उपमा पृ-  
थ्वी में नहीं है। युक्ति पूर्वक सेवन किया  
हुआ मद बहुत दुःखों से व्याप्त और शोक  
से उपहत प्राणियों के लिये विश्राम दायकहै॥

मद्यपान में कर्त्तव्य ।

अन्नपानवयोव्याधिवलकालात्रिकाणि  
षट् । ग्रीनद्रोपांस्त्रिविधसत्त्वज्ञात्वामयं  
पिवेत्सदा ॥

अर्थ....अन्न, पान, वय, व्याधि, वल  
कालकी तीन अवस्था ये सब छः और ती-  
नों दोष, तीनों प्रकारका सत्व इनको वि-  
चार के मद्यपान करे ।

तेषां त्रिकाणामष्टानां योजनायुक्तिरुच्यते ।  
यथायुक्त्यापिवेमद्यमद्यदपैर्नियुज्यते ॥  
मद्यस्य च गुणान्सर्वान्यथोक्तान्समुपाश्रुते ।  
धर्मार्थयो रपीडार्थैर्नरः सत्वगुणोच्छ्रितः ॥

अर्थ—इन आठोंकी तीन तीन युक्तियों  
के अनुसार मद्यका योग करना मद्य की  
युक्ति कहाती है । युक्ति पूर्वक मद्यके सेवनसे  
मद्य के दोष नहीं होने पाते, और मद्य के  
यथोक्त सम्पूर्ण गुण भोगने में आते हैं, त-  
था धर्मार्थ के अवपीडन और सत्वगुणके  
वढनेसे आनन्द प्राप्त होता है ॥

सत्त्वानितुप्रमुध्यन्ते प्रायशः प्रथमे मदे । द्वि-  
तीये व्यक्ततायाति मदे चोत्तममध्ययोः ॥  
सत्त्वसम्बोधकहर्षहेमप्रकृतिदर्शकः । यथा  
गिरेर्वसत्त्वानां मद्यमकृतिदर्शकम् ॥

अर्थ—उत्तम और मध्यम प्रकृतिवाले  
मनुष्योंके प्रथम मदमें सम्पूर्ण सत्व प्रबुद्ध  
होते हैं और मध्यम मदमें सम्पूर्ण सत्व व्य-  
क्त अर्थात् स्पष्ट होजाते हैं, जैसे अग्नि से  
सुवर्णकी प्रकृति दीखने लगती है उसी त-  
रह मद्य भी सत्व सम्बोधक, हर्षवर्द्धक और  
और प्रकृतिदर्शक होताहै ॥

सुगन्धमाल्यगन्धैर्वासुप्रणतिमनाकुलम् ।  
मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥  
सुखप्रमाणं सुमदं हर्षप्रीतिवर्द्धनम् । स्व-  
न्तं सात्त्विकमापन्नं चोत्तममदमदम् ॥

अर्थ....सुगन्धित गंधमालाकी धारण कर  
के, सुन्दर वनायेहुए निर्मल मिष्टान्न पान  
के साथ प्रमाणसे सेवन कियाहुआ मद्य तथा  
मिष्टवार्ताओं से युक्तिपूर्वक सेवन कियाहुआ  
मद्य उत्तम नशा करता है, हर्ष और प्रीति  
को वढाता है यह मद अन्तमें सात्त्विकता  
उत्पन्न करता है तथा इससे उत्तम और  
कोई मद नहीं है ॥

वैगुण्यं सहसायान्तिमद्यदोषैर्न सात्त्विकाः ।  
मर्द्याह्वलवत्सत्त्वमृद्रातिसहसान्तु ॥

अर्थ....मद्यके दोषसे सत्वप्रकृति पुरुष  
शीघ्रही विगुणताको प्राप्त नहीं होजाते हैं ।  
मद्य बलवान् सत्व को सहसा पराजित नहीं  
करसक्ता है ॥

राजसादिप्रकृतिमद्यके कर्म ॥

सौम्यासौम्यकथामायं विपदाविपदक्षणा  
त्चित्रं राजसमापानं प्रायेणास्वन्तमाकुल  
म् ॥ हर्षस्मृतिकयोपेतमदं पानभोजने संभो-  
हक्रोधनिद्रार्त्तमापानं तामसं स्मृतम् ॥

अर्थ—राजसप्रकृतिवाला मनुष्य मद्यके पीने से कभी सौम्य कभी असौम्य बातें करने लगता है, क्षणभर में विशद और क्षणभर में अविशद भाव को ग्रहण करता है, उस के स्वभाव में एक तरह की विचित्रता पैदा होजाती है, अन्त में प्रायः आकुल होजाता है । इसको हर्ष, स्मरण और कथोपकथन बढ़जाता है, खाने पीने में तुष्टि नहीं होती है । जिसमें मोह, क्रोध और निद्रा पीनेवाले को घेरलेते हैं उसे तामस आपान कहते हैं ।

आपानेसात्त्विकानुबुद्ध्यातथाराजसतामसान् । जहात्सहायान्यैःपीत्वासहदां पानुपाश्रुते ॥

अर्थ—मदिरालयमें सात्त्विक, राजस और तामस का विचार करके जिन के साथ मद्यपान करने से दोष बढ़ते हों उन का परित्याग करेदेवे ॥

मद्यपानके योग्य साथी ।

सुखशीलाः सुसंभाषा सुमुखाः समताः सताम् । कलासुधाकयविषदाविषयप्रवणाश्चये ॥ परस्परविधेयायेयेपामैक्यं सुहृतया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्यैरापानवर्द्धयन्ति ये ॥ उत्सवादुत्सवतरयेपामन्योन्यदर्शनम् । तेसहायाः सुखाः पानैः तैः पिवन्सहमोदते ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैः शब्दैश्चापिमनोरमैः । पिवन्ति सुसहाया ये ते नैः सुकृतिभिः समाः । पञ्चभिर्विषयैरप्येकैर्मनसः पियैः । देशकालैर्विवेक्यं प्रहृष्टान्तरात्मना ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों का स्वभाव शील-सम्पन्न हो, जो मधुरभाषी, सुमुख, सत्संगी हों जो कलाकुशल, बात कहने में प्रवीण, विषयों में लीन, परस्परस्नेही, ऐक्यतायुक्त सुहृदता सम्पन्न हों, जो मदिरालय में हर्ष प्रीति, और मधुरता को बढ़ावें । जिन के एक दूसरे से मिलने में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि हो । ऐसे मनुष्यों के साथ मद्यपान करने से सुख बढ़ता है और इन्हींके साथ में मद्यपान करना चाहिये । मनकोहरण करनेवाले रूप, रस गंध, स्पर्श तथा शब्दों के बीच में उत्तम साथियों के साथ जो मद्यपान करते हैं वे बड़े सुकृती पुरुष होते हैं ॥ उत्तमदेश काल में अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे मनोऽनुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध इन पांच विषयों से युक्त होकर मद्यपान करना चाहिये ।

स्थिरसत्त्वशरीराये पुराणामद्यपान्वयाः । बहुमयोचिताये च मात्रान्ति सहसान्ते ॥ प्रादुमयाः शुत्पिपासार्त्ता दुर्वला वातपैत्तिकाः । रूक्षाल्पप्रमिताहारा विस्तब्धः सत्त्वदुर्वलाः ॥ श्रोथिनोऽनुचिताः क्षीणाः परिश्रान्ता मदक्षताः । अल्पेनापि मदशीघ्रयान्ति मद्येन मानवाः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका मन और शरीर स्थिर रहे, जिसके कुटुम्बमें मद्य पीतेआये हैं जो बहुत मदिरा पीनेका अभ्यास रखते हैं उनको नशा बहुत शीघ्र नहीं होता जो क्षुधा और प्यास से आतुर है, दुर्वल है, वायुपित्त की प्रकृतिवाले हैं, जो रूखा थोड़ा

और प्रमित मोजन करते हैं, जो विस्तब्ध हैं जिनका मन दुर्बल है, जो क्रोधी हैं, जिनको मद्यपान का अभ्यास नहीं है, जो क्षीण, धकेहुए और मद से क्षय हैं, ऐसे मनुष्योंको थोड़ा भी मद्य पाने से बहुत शीघ्र-नशा होजाता है ॥

ऊर्ध्वमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् । अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥

अर्थ....हे अग्निवेश! अब यहां से मदात्यय की उत्पत्ति, लक्षण और पृथक् र चिकित्सा का क्रम से वर्णन करेंगे ॥

वातमायमदात्ययकी उत्पत्तिका कारण । स्त्रीशोकभयमारुतध्वक्कर्मभियोऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशवायःपिबत्यतिमात्रया ॥ रूक्षपरिणतमर्द्यनिशिनिद्राविहृत्यच । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातमायमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त स्त्रीसेवन, शोक, भय, भारबहन और मार्गगमन आदि परिश्रमोंसे अत्यन्त कृश होगया है और रूक्ष, अल्प और प्रमित भोजन किया करता है । ऐसा मनुष्य यदि अत्यन्त मद्यपान करे तो वह मद्य परिणाममें अत्यन्त रूक्षता को उत्पन्न करके रात्रिमें निद्रा को दूर करके शीघ्रही वातजन्य मदात्यय रोगों को उत्पन्न करदेता है ॥

वातिकमदात्यय के लक्षण ।  
दिक्राकासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागैः । विद्याद्वहुप्रलापस्यंवातमायमदात्ययम्  
अर्थ....हिचकी, सांती, शिरःकम्प, पार्श्व

शूल, निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप ये वातप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ।

पित्तजमदात्ययका वर्णन ।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लंवायोऽतिमात्रंनिपेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेणमदात्ययः । सतुवातोल्बणस्याशुप्रशर्मयातिहन्तिवा ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्वरितवर्णस्यपित्तमायमदात्ययम् ॥

अर्थ....जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य का अत्यन्त सेवन करताहै, तथा जो खट्टे, उष्ण और तीक्ष्ण भोजन किया करता है, जो अत्यन्त क्रोधी होताहै तथा जिसको अग्नि और धूप अच्छे लगते हैं उसके पित्तजन्य मदात्यय उत्पन्न होताहै । वातोल्लणवाले मनुष्यको पित्तजन्य मदात्यय या तो शीघ्रही मारडालता है या अच्छा होजाता है ।....तृष्णा, दाह, ज्वर, स्वेद, मूर्च्छा, अतीसार, विभ्रम और देहका हरावर्ण ये पित्तज मदात्यय के लक्षण हैं ॥

कफप्रायमदात्ययका वर्णन ।

तरुणमधुरप्रायगोडपेट्टिकेमवा ॥ मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिबत्यतिमात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नश्च्युत्तसुखेरतः ॥ मदात्ययंकफमायंसशीघ्रमधिगच्छति ।  
ऊर्ध्वरोचकहृत्तासतन्द्रास्तेमित्यगौरवः ॥  
विद्यात्शीतपरीतस्यकफमायमदात्ययम्  
अर्थ....मोठे, चिकने और मारी प्रदायो का भोजन करनेवाला मनुष्य यदि, गया,

मधुरप्राय गुडका बनावहुआ वा पैष्टिकमद्य का अत्यन्त सेवन करे और कसरत कस्ती न करे, दिन में सोवै सुखासन वा शय्या पर पड़ा रहै तौ उसके कफप्रायमदात्यय उत्पन्न होता है । वमन, अरुचि, हृत्तास, तंद्रा, स्तिमिता, गौरव और शीत ये सब कफप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ॥

विपश्येयगुणादृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः ॥ तएवमद्येदृश्यन्ते विपेतुघलवत्तराः ॥ इत्याशुर्हि विपकिञ्चित्किञ्चित् रोगाय कल्पते ॥ यथा विपंतयैवान्त्योमेयोमद्यकृतो मदः तस्मात्त्रिदोपजलितः सर्वत्रापि मदात्यये ॥ दृश्यते रूपवैशेष्यात् पृथक्क्वास्यलक्ष्यते ॥ अर्थ.... विपके जो सन्निपातको प्रकोप करानेवाले गुण हैं वेही सम्पूर्ण गुण मद्य में दिखाई देते हैं और तब वेही गुण विपमें अत्यन्त बलवान् दिखाई देते हैं, कोई विप शीघ्रही प्राणों का नाश करते हैं और कोई रोगों को उत्पन्न करते हैं । विपके सदृशही मद्यकृत अन्यमद्य होता है । इसी हेतु से मदात्यय रोगोंमें सब जगहही त्रिदोषके लक्षण दृष्टिगत होते हैं । केवल भिन्न २ लक्षणों के कारण उनमें पृथक्ता दिखाई देती है ॥

मदात्ययके रूप ।

शरीरदुःखं बलवत्संमोहो हृदयव्यथा ॥ अरुचिः प्रततातृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः शिरःपार्श्वस्थिसन्धीनां विद्युत्तुल्या च वेदना ॥ जायतेऽतिबलाजृम्भास्फुरणं वपनश्रमः । उरोविबन्ध कासश्च हिकाश्वासाः प्रजागरः ॥ शरीरकम्पः कर्णाक्षिप्त

रोगक्षिकग्रहः । छर्द्यतीसारमुत्केशो वातपित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणां मसतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपां सुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्पणं विहङ्गश्च भ्रान्तचेताः समन्यते ॥ व्याकुलानामशस्वानां स्वप्नानां दर्शनानि च । मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्ष्येत् ॥

अर्थ.... अत्यन्त शारीरिक क्लेश, सम्मोह, हृदयव्यथा, अरुचि निरन्तर तृषा की अधिकता, ज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, शिर, पसली, हड्डी और जोड़ों में विजलीके समान वेदना, वेगवती जमाई, फडफडाहट, कंपन, परिश्रम, हृदयमें रुकावट, खांसी, हिचकी श्वास, निद्रानाश, शरीर कम्पन, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, त्रिकप्रह, वमन, अतीसार, वातोत्केश, पित्तोत्केश, कफोत्केश, भ्रम, प्रलाप, भयंकर रूपोंका दर्शन, तिनुका, भस्मलता, पत्ते, धूल आदिसे भराहुआसा दिखाई देना, विहंगोंसे भयका बोध, भित्तमें भ्रांति, घबडाहट पैदा करनेवाले दुःस्वप्नोंका दीखना ये सब मदात्ययके लक्षण हैं ।

मदात्यय में चिकित्साक्रम ।

सर्वमदात्ययं विधात् त्रिदोषमधिकन्तु यत्तादोषं मदात्यये पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ॥ कफस्थानानुपूर्व्या च क्रियाकार्यमदात्ययः । पित्तमारुतपर्यन्तः प्रायेण हि मदात्ययः ॥

अर्थ—सब प्रकारके मदात्यय त्रिदोष से होते हैं, परन्तु जो दोष अधिक दीखे उसी की प्रथम चिकित्सा करना उचित है कफ-

स्थानके आनुपूर्वक्रमसे मदात्ययमें चिकित्सा करना योग्य है जैसे प्रथम कफ स्थान है, पीछे पित्तस्थान है, उससे पीछे वायुस्थान है। इसी क्रमसे प्रथम कफकी, फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करे ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोच्याधिरूपजायते।  
समपीतेनतेनैवसमयेनोपशाम्यति ॥ जी  
र्णाममद्यदोपायमद्यमेवप्रदापयेत् । प्रका  
क्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥  
सौचर्चलानुसंविद्धंशीतंसविहसैन्धवम् ॥  
मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंममाणचित् ।

अर्थ.... मद्यके मिथ्यापान, अतिपान या हीन पान से जो व्याधि उत्पन्न होती है उन को समान मद्यपान द्वारा शमन करे। जिसका आमजीर्ण होगया हो ऐसे मदात्यय रोगीको मद्यही का पान करावे। तथा शरीरमें हल-कापन होनेपर इच्छाके अनुसार हितकारी मद्यपान करावे। मद्यमें सौचर्चल नमक, वि-जनमक, सैधानमक, विजोरेका रस, अदरक का रस, जल और शीतवीर्य औषध मिला-कर प्रमाणके अनुसार पान करावे।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदा-  
हिना ॥ मयेनान्नरसोत्प्लेदोविदग्धः क्षा  
रतांगतः । अन्तर्दाहंज्वरं तृष्णां प्रमोहं वि-  
भ्रमं मदम् ॥ जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमे  
वप्रदापयेत् । क्षारोहिपातिमाधुर्य्यं शीघ्र  
मम्लोपसंहितः ॥ श्रेष्ठमम्लेषु मद्यञ्चयै

गुणैस्तान्परं शृणु ।

अर्थ.... उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और विदाही मद्यके अत्यन्त सेवन करनेसे अन्नके रसका

उच्छेद होकर विदग्धता होती है और फिर उसमें खारीपन होता है तदनन्तर अन्तर्दाह, ज्वर, तृष्णा, प्रमोह विभ्रम और मद ये शी-प्रही उत्पन्न होजाते हैं इससे इनकी शान्ति के निमित्त मद्यपानही करावे। अम्लसे मि-लने पर क्षार में फिर शीप्रही मधुरता उत्प-न्न होजाती है ॥

अब हम उन गुणोंका वर्णन करते हैं जिन के कारण मद्य सब अम्ल रसोंमें श्रेष्ठ है।

मनके चार अनुरस ॥

मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसा-  
स्मृताः ॥ मधुरश्च कषायश्चातिक्तः कटुक  
एव च । गुणाश्च दश पूर्वोक्तास्तैः चतुर्दश  
भिर्गुणैः ॥ सर्वेषामध्यमम्लानामुपर्युप-  
रिति प्रुति ।

अर्थ.... मद्यका स्वभाव अम्ल है, इसमें चार अनुरस होते हैं यथा- मधुर, तिक्त, कटु और कषाय। और इस मद्यके दस गुण पहिले वर्णन किये हैं। इन चौदह गुणों के कारण मद्य सब अम्ल रसों में उत्तम होता है।

मदोत्क्रिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतः सुमारुतः ।

करोति वेदनां तीव्रां शिरस्यस्थिपुसन्धिषु

अर्थ.... मदोत्क्रिष्ट दोषसे स्रोतः समूहों के रुकजाने पर वायु सिर, हड्डी और संघियों में अत्यन्त तीव्र वेदनाको उत्पन्न करती है।

दोषविष्वन्दनार्थं हितस्मै मद्याविशेषतः ॥

व्यत्रायितीक्ष्णोष्णतया देयमम्लेषु सत्-  
स्वापि । स्रोतोविष्वन्धमुन्मथ्यमारुतस्वा

नुलोमनम् ॥ रोचनदीपनं चाग्नेरभ्यासा  
तृसात्म्यमेव च । रसस्रोतः स्वरूढेषु मारु  
ते चानुलोमते ॥ निवर्त्तन्ते विकाराश्च शा  
म्यन्त्यास्यमदोदयाः ।

अर्थ.... दोषों को निकालने के निमित्त उ-  
सको विशेष करके मद्यपान करावै । मद्य  
व्यथायी तीक्ष्ण और उष्ण होने के कारण  
स्रोतः समूह के विवन्ध को दूर करके वायु  
का अनुलोमन करता है तथा रुचिकर्त्ता  
अग्निवर्द्धक और साम्य होता है ॥ रस-  
वाही स्रोतों के खुलने पर और वायु के  
अनुलोमन होने पर सम्पूर्ण विकार शान्त  
होजाते हैं और सब प्रकार के मदजन्य विकार  
भी दूर होजाते हैं ॥

वातशमनमें मद्यका प्रयोग ।

बीजपूरकट्टक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम्  
पमानीहपुपाजाजीमृद्वेरावचूर्णितम् ।  
सस्नेहैः श्वेतुभिर्घुक्तमर्धशैश्चिरोत्थितम्  
दद्यात्सलवणमर्धपैष्टिकं वातशान्तये ॥

अर्थ—बिजौरा, कट्टक्षाम्ल, वेर, अनारइन  
का रस अजधायन, हाऊयेर, जीरा, अदरख  
इनका चूर्ण डालकर दे अथवा स्नेह सहित  
संतू के साथ नमक डालकर पुराना मद्य  
पान करावै तो वातजन्यरोग शान्त होनाता है

वातोत्त्वणमदात्ययमें चिकित्सा ।

दृष्ट्वा वातोत्त्वणं लिङ्गरसैश्चैनमुपाचरेत् । ला  
वति चिरिदक्षाणां स्निग्धाम्लैः शिखिनाम  
विपक्षिणामृगमत्स्यानामानूपानाञ्च संस्कृ  
तैः भूशयमसदानाञ्च रसैः शाल्पोदनेन च ।  
स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखामि

यैः ॥ चित्रगोधूमिकद्वान्नैर्वारुणीमण्ड-  
संयुतैः । पिशिताद्रकगर्भाभिः स्निग्धाभिः  
धूमवर्तिभिः ॥ मापपूपलिकाभिश्च वाति  
कंसमुपाचरेत् । नातिस्निग्धेन चाम्लेन  
सिद्धं समरिचार्द्रकम् ॥ रसप्रलोपे संपूयैः  
सुखोष्णैः सह संपिबेत् ।

अर्थ—मदात्ययमें यदि वातकी उत्त्व-  
णता के लक्षण दिखाई दें तो लवा, तातिर,  
मोर और मुर्गेका मांसरस चिकनाई और  
खटाई के साथ देकर इसकी चिकित्सा  
करै । तथा आनूप, भूशय और प्रसहजा-  
तिके पशु और मछलियों के मांसरस के साथ  
शालीचावल देवै । चिकने, गरम, नमकीन  
और खट्टे तथा मुख के जायके को सुधा  
रनेवाले वेशवार, मुरामण्ड से युक्त अनेक  
प्रकार के गेहूँओं के पदार्थ, मांस और अ-  
दरख की पिठ्ठी भरी हुई स्निग्ध धूमवर्ती  
और उरद के बड़े आदिको देकर वातिक  
मदात्ययको दूर करै । इस पूर्वोक्त मांसरस  
को थोड़ी चिकनाई डालकर खटाई, काली  
मिरच और अदरख डालकर देवै । अथवा  
सुहाता २ गरम गोशूमपिष्टक में मांसरस  
मिलाकर पान करावै ।

भक्तेन वारुणीमण्डदद्यात्पातुं पिपासवे ॥  
दाडिमस्य रसं वाथजलं वापाञ्च मूलिकम् ।  
धान्यनागरतोयं च दधि मण्डमथापि वा ॥  
अम्लकाञ्जिकमण्डं वा शुक्तोदकमथापि वा  
कर्मणानेन सिद्धेन विकार उपशम्यति ॥  
मात्राकालप्रयुक्तेन वलवर्णश्च वर्द्धते ।

अर्थ—मदात्ययमें तृपाकी प्रवृत्ता होने

पर भातके साथ धारुणीमण्डका पान करावे । अथवा अनार का रस वा पंचमूल का काथ, वा धनिये और सोंठका काथ, अथवा दधिमण्ड वा अम्ल कांजीका मण्ड वा शुक्रोदक देवे । इन अनुभव कियेहुये प्रयोगों से मदात्यय के विकार शान्त हो जाते हैं, तथा उचित समयपर प्रमाणके अनुसार देनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है रागखाण्डवसंयोगैर्विवैर्भक्तरोचनैः ॥ पिशितैर्वहुपिष्टाभैर्यवगोधूमशालिभिः । अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरुष्णैः प्रावरणैर्धनैः ॥ घनैरगुरुपङ्कैश्च धूपैश्चागुरुजैर्यनैः ॥ नारीणां यौवनोष्णानां निर्दयैरवगूहनैः ॥ श्रोण्यूरुकुचभारैश्च सरोधोष्णमुखावहैः ॥ शयनाच्छादनैरुष्णैः रुक्षैश्चान्तर्ग्रहैः सुतैः मारुतः प्रबलः शीघ्रं प्रशम्यति मदात्ययः ॥

अर्थ—इस बातिक मदात्यय में भोजन में रुचि बढ़ानेवाले अनेक प्रकारके राग पाडव, अनेक प्रकारके मांस, अनेक प्रकार के मिष्ठान, अनेक प्रकारके जौ, गेहूं, शाली चावल, अम्पंग, उत्सादन, स्नान, गरम और गाढ़े ओढ़ने के वस्त्र, कपूर और अंगूरका लेप, कपूर और अंगूरकी धूप, यौवन के जोरसे उष्ण स्त्रियोंसे गाढ़ आलिंगन उन स्त्रियों के श्रोणी, ऊरु, कुर्चोंके घर्षण से उत्पन्न गर्मी, उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन वस्त्र, सुखदायक रुक्ष अन्तर्ग्रह, इन वस्तुओंका सेवन करने से वातजन्य प्रबल मदात्यय शीघ्र ही शान्त होजाता है ।

पित्तमदात्ययमें चिकित्सा ।  
भग्न्यस्वर्जूरमृद्वीकापरूपकरसैर्युतम् ॥  
सदादिभरसंशीतं शक्तुभिः स्ववचूर्णितम् ।  
सशर्करं शार्करं वामाध्वीकमथवापरम् ॥  
दद्यात्त्वहृदकंकाले पातुं पित्तमदात्यये ।  
अशान्कपिञ्जलानेणानुलावानसितपुच्छाकान् ।  
मधुराम्लान्प्रयुञ्जीतभोजनेशालिपष्टिकान् ॥  
पटोलयूपमिश्रवाछागलंकल्पयेद्भस्मम् ॥  
सतीनमुद्रमिश्रवादादिमामलकान्वितम् ॥  
द्राक्षामलकस्वर्जूरपरूपकरसेनवा ॥  
कल्पनान्तर्पणान्पूपान् रसांश्च विविधात्मकान् ॥

अर्थ....भग्न्य, खजूर, किसमिस और फालसे का रस, तथा अनारका रस सत्तू के साथ मिलाकर, थोड़ीसी चीनी डालकर शर्करामय, वा मार्च्वाकमय अथवा और किसी मय में बहुतसा जल मिलाकर पित्तजनित मदात्ययमें पान करावे ।

सस्सा, सफेदतीतर, एण, लवा, काली-पूँठका हरिण इनके मांसको मधुराम्ल करके शाली चावल और साठी चावलों के भात के साथ देवे । अथवा बकरे के मांसरस में परबलका यूप मिलाकर उक्तभात का भोजन करावे । अथवा मटर और मूँग के यूप में अनार और आंवले का रस मिलाकर इनके साथमें उक्त भात देवे । अथवा दाख आंवला, खजूर, फालसे का रस इनके साथ में अनेक प्रकारसे सिद्ध किये हुए तर्पण, यूप और मांसरस देवे ।



कफपित्त मदात्ययमे चिकित्सा ।

आमाशयस्थमुत्क्रिष्टकफपित्तमदात्यये ॥

विज्ञायचहुदोषस्पदहमानस्यतृप्यतः ।

मर्धंद्राक्षारसंतोयंदत्यातर्पणमेववा ॥ नि

शेषवामयेतशीघ्रमेवैरागादिमुच्यते ।

अर्थ—बहुत दोषोंसे युक्त कफपित्त मदात्ययमें आमाशयस्थ आमके अत्यन्त उत्क्रिष्ट होनेपर जब दाह और तृपाकी अधिकताहो तब मद्य, दाखका रस और जलको तृप्ति पर्यन्त पान कराके निशेष धमनकरा देवें तौ शीघ्रही रोग जाता रहता है ।

कालेषुनस्तर्पणाढ्यक्रमंकुर्यात्तृपकांक्षिते

तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ।

कासेसरक्तनिष्टीवेपाश्चैस्तनरुजोस्तथा ॥

तृप्यतेसविदाहेयसोरलेशहृदयोरसि ।

गृह्यचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिपक्

रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिमतिभोजनम् ॥

तृप्यतेचातिबलवद्वातपित्तसमुद्धतो दद्या

द्द्राक्षारसंपातुंशतिदोषानुलोमम् ॥

जीर्णसमधुराम्लेनछागमांसरसेनतम् ।

भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्पण्यार्थयेत् ॥

अनुतर्पस्यमात्रासाययानोहन्यतेमनः ।

तृप्यतेमद्यमलपालंप्रदेयस्याद्वहृदकम् ॥

तृप्णायेनचसंशम्येन्मर्दयेनचनान्नुपात्

परूपकाणांपीलूनारसंशतमयापिवा ॥

पणिनीनांचतष्टणापिवेद्वाशिशिरंजलम्

मुस्तदादिमलाजानांतृप्णाध्नंवापिवेद्रस

म् ॥ कोलदादिमृष्टाम्लचुक्रिकाचुक्रि

कारसः । पञ्चाम्लकोमुखालेषः सद्यःतृ

प्णानियञ्छति ॥

अर्थ—फिर उचित समयपर मुख में इच्छा उत्पन्न होनेपर तर्पण कमका अवलम्बन करे, जिससे जठराग्नि बढजाय और दोष निशेष होकर अन्न पचजाय ।

जो खांसीके साथ रुधिर निकलने लगे, पसली और छातीमें वेदना होवै, दाहके साथ तृपा उत्पन्न होवै, हृदय और वक्षः स्थलमें उत्क्रेश हो तौ गिलेय और मद्र-मोथा वा परबलका काथ सोंठ डालकर देवें और खाने के लिये तीतरका मांस देवें ।

जो वातपित्त के प्रयत्न होनेपर तृपाका वेग अधिक हो तौ उसको किसमिस का काथ ठंडा करके देवें इससे दोषों का अनुलोमन होता है । औषध के पचने पर मधुराम्ल वकरी के मांसरस के साथ भोजन करावें और तृपा लगने पर मद्यका पान करावें । तृपित्तको मद्यकी ऐसी मात्रा देवें कि जिससे बेहोशी नहो, तृपाके लगनेपर मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर थोडा २ पान करावें जिससे तृपाभी शान्त होजाय और नशा भी उत्पन्न नहो । अथवा फालसा, पीकू इनका शीतल काथ अथवा चारोंपणी का ठंडा काथ अथवा ठंडा जल अथवा मोथा, अनार, खील इनका काथ पान करावें । इन प्रयोगों से तृपा शान्त होतीहै । अथवा बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुकीका, चूका इन पाँचों खटाइयों का मुख में लेप करने से तृपा तत्काल शान्त होजाती है ॥

पित्त मदात्ययमें सेवनीय कर्म ।  
शीतलान्पत्रपानानिशीतशय्यासनानिच

शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानिच॥  
 सौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्तिकस्य  
 च । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशु  
 शीतलाः ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणां  
 शीतवारिभिः । पूर्णानां हिमपूर्णानां हता  
 नांपवनाहताः । संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणां  
 रीणाञ्चसमारुताः ॥ चन्दनानाञ्चमुख्या  
 नांशस्ताः पित्तमदात्यये ।

अर्थ—शीतल अन्नपान, शीतल शय्या  
 और आसन, शीतल वायु, जलका स्पर्श  
 शीतल उपवन, रेशमवस्त्र, छालकमल, नी  
 लकमल, मणि, मोती, चन्दन और शीत-  
 लजलका स्पर्श, चन्द्रमाकां शीतल किरणों का  
 सेवन, शीतल जलसे भरे हुए साने, चांदी  
 और कांसी के पात्रों का स्पर्श हिमपूर्ण पव  
 नाहत द्रुति ( मशक ) का स्पर्श तथा ह-  
 वादार स्थानमें चन्दनसे तर बतर स्त्रियोंका  
 स्पर्श और चन्दनका लेपन ये सब पित्त-  
 मदात्ययमें श्रेयस्कर हैं ।

मदात्ययजन्म दाहमें कर्तव्यकर्म ।  
 कुमुदोत्पलपत्राणांसित्तानाञ्चन्दनाम्बु  
 ना ॥ हिताः स्पर्शान्नोत्तानां दाहेमयसमु  
 त्थिते । कथार्थविविधाः शस्ताः शब्दाञ्च  
 शिखिनां शिवाः ॥ तोषदानाश्च शब्दाहि  
 समयन्ति मदात्ययम् । जलयन्त्राभिवर्षा  
 णिवातयन्त्रवहानिच ॥ कल्पनीयानि  
 भिषजादाहेभारागृहाणिच । फल्गुनीसे  
 व्यलोभाम्बुहेमपत्रकुट्टनम् ॥ फाल्गुनी  
 कुरसोपेतदाहेनस्तंभलेपनम् । चद्रपि  
 ल्लवोत्पाधतयैवारिष्टकोद्धवाः । फेनि

लायाश्चयः फेनस्तर्दाहेलेपनं शुभम् ॥ सु-  
 रासमण्डादध्यम्लमातुल्यरसोमधु ॥  
 सेकप्रदेहेशस्यन्ते दाहघ्नाः साम्लकाञ्चि  
 काः । परिपेकावगाहेषु व्यञ्जनानां च से  
 वने । शस्यते शिशिरतोयं दाहवृष्णामशा  
 न्तये ॥ मात्राकालप्रयुक्तेन कर्मणानेन  
 शाम्यति । धीमतो वै च वश्यस्य शीर्षपित्त  
 मदात्ययम् ।

अर्थ—मद्यसे उत्पन्न हुए दाहमें चन्दन  
 के जल से सींचे हुए कुमोदनी और कमल  
 के मनोह पत्रों का स्पर्श हित है, अनेक  
 प्रकारकी कथा, मोरोंका मधुर शब्द, वाद-  
 लों की गर्जन ये सब मदात्यय को शान्त  
 करने वाले हैं । इस दाहमें रोगी को ऐसे  
 धागगृहमें निवास करावे जिसमें फव्वारे च  
 लतेहो और कलके पंखों की हवा आतीहो।  
 इस दाह में प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रघाला  
 हेमपत्र और कुट्टनट इनको पीत चन्दन  
 के जलमें पसिकर लेप करे । अथवा घेर के  
 पत्तोंके शाग, नामके पत्तों के शाग, या रीठा  
 के शागों का भी लेपकरने से दाह शान्त  
 होता है । सुरामण्ड, दही, खटाई, भिजारेका  
 रस, शहत इनको अम्लकांजी में मिलाकर परि  
 पेक और प्रदेहमें उपयुक्त करने से दाह  
 शान्त होजाता है । शीतल जलसे परिपेक  
 स्नान और जलार्द्र पंखोंकी हवाका सेवन  
 दाह और तृष्णाकी शान्ति के निमित्त है ।  
 यथाचिन फालमें मात्रा के अनुत्तर इन क-  
 र्मोंका प्रयोग करने में बुद्धिमान और वैद्यानुया  
 यी रोगीका मदात्यय शीघ्र शान्त होजाता है

कफमद्यकी तृपा के उपाय ॥ :

उल्लेखनोपचासाभ्यांजयेत्कफमदात्यय  
म् ॥ तृप्यतेसलिलंचास्मैदद्याद्दीधेरसा  
भितम् । बलायाःप्राशेपण्यावाकण्टका  
र्याथवाशृतम् ॥ सनागराभिःसर्वाभि  
र्जलंवाभृतशतिलम् । दुःस्पर्शितेनमुस्ते  
नमुस्तर्पणकनवा ॥ जलंमुस्तैःशृतंवा  
पिदद्याद्दोषविपाचनम् । एतदेवचपानी  
यंसर्वत्रापिमदात्यये ॥ निरत्पयपीयमा  
नपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ—कफजन्य मदात्यय को वमन और  
लघन द्वारा दूर करें, इस रोगमें तृपाकी  
प्रयत्नता होने पर नेत्रवाला डालकर औटा  
याहुआ जल ठंडा करके देवे । अथवा खैरे-  
टी, पृष्णिपर्णी वा कटेरीका ठंडा काथ देवे,  
अथवा तीनों ये और चौथी सोंठ डालकर  
औटायाहुआ जल ठंडा करके देवे ॥ अथवा  
जवासा और मोथा अथवा मोथा और पित्त-  
पापडा अथवा केवल मोथा डालकर औटाया  
हुआ जल पान कराने से दोष पचजातेहैं ॥  
सय मदात्ययोंमें इन्हींका प्रयोग श्रेष्ठहै । इस  
के पीनेसे किसी प्रकारका उपद्रव नहीं हो-  
ताहै, किन्तु तृपा और ज्वर नष्ट होजातेहैं ॥

कफमदात्ययमेंअन्यप्रयोग ।

निरामकांसितकालेससौद्रपाययेन्नुतम् ।  
शार्करमधुवाजीर्णमरिष्टंशोधुमेववा ॥  
रुक्षतर्पणसंयुक्तंयवान्निनगरान्वितम् ।  
यवगोधूमिकंचान्नंरुक्षयूपेणभोजयेत् ॥  
कुलत्थानांसुशुष्कानांमूलकानारसेनवा ॥  
सनुनाल्पेनलघुनाकट्वम्लेनाल्पसपिपा ॥

व्योषयूपमथाम्लंवायूपंवासाम्लवेतसम् ।  
छागमांसरसरुक्षमम्लवाजांगलरसम् ॥  
स्थाल्यांवायकपालेवाभृष्टनीरसवात्सनम्  
कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्वृणुयान्मधु ॥

अर्थ—जब कफमदात्यय में रोगी का  
आम दूर होजाय और भूख पर इच्छाहो  
तब उस समय उसे शहद डालकर शर्करा  
मद्य देवे अथवा पुराना शहत, वा अरिष्ट  
वा शीधु पान करावे । इस रोग में अजवा  
यन और सोंठ डालकर रुक्षतर्पण देवे अ-  
थवा रुक्ष यूपके साथ जौ और गेहूं का अ-  
न्न देवे ॥ अथवा कुलधीका यूप वा अत्य-  
न्त सूखीहुई मूलियोंका रस पतला, थोडा,  
हलका, कटु और अम्लयुक्त थोडा घी डा-  
लकर देवे । अथवा त्रिकुटा डालकर अम्ल-  
यूप वा अमलवेत डालाहुआ यूप वा यक्रे  
का रुक्ष मांसरस वा अम्लजांगल पशुओं  
का मांसरस देवे । अथवा घटले वा मिष्टा-  
के पात्रमें भूना हुआ नीरस मांस कटु, अ-  
म्ल और नमक डालकर भोजन करे ऊपर  
से शहत पीवे ॥

अन्यप्रयोग ।

व्यक्तमारिचिकंपांसंपातुलुङ्गरसान्वितम् ।  
भृष्टंदादिमसारांम्लमुष्णयूपोपवोष्टितम् ॥  
ययार्थिभक्षयेत्कालेमभूतार्द्रकपोशितम् ।  
पिवेच्चनिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥  
सौवर्चलमजाजीचट्टसाम्लंसांम्लवेतसम् ।  
त्वगेलांमरिचाद्धींशशर्कराभागयोजितम् ॥  
एतल्लवणमष्टांगमयिसन्दीपनंपरम् ! मदा-  
त्ययंकफप्रायेदद्यात्सोतोविशोधनम् ॥

एतदेवपुनर्धुक्त्याधूमराम्लैर्द्रवीकृतम् । गो  
धूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चातिरोचनम्  
पपयेत्कडुकैयुक्तांभेतांवीजविवाजिताम्  
मृद्धीकामातुलङ्गस्यदाडिमस्परसेनवा ।

अर्थ—तेजमिरच डालकर तथा विजौरे  
का रस मिलाकर मांसको भूने इसमें अना  
रदाने की खटाई डालकर गरम २ यूप का  
जठराग्नि के बल के अनुसार भक्षण करै  
इसमें बहुतसी अदरक भी पीसकर डालदेवे  
इस कफजग्य मदात्यय में निगद मद्य का  
पान करावे । अथवा संचलनमक कालाजी  
रा, वृक्षाम्ल, अमलवेत, दालचीनी, छेटी  
इलायची और नमक से आधी मिश्री डाल  
कर चूर्ण तय्यार करै । यह चूर्ण अत्यन्त  
अग्निसेदीपन है, इस चूर्णको अष्टांगलवण  
कहते हैं, । यही चूर्ण स्रोतः समूह के मार्गों  
का शुद्ध करनेवाला भी है । इसी चूर्णको  
मधुराम्ल द्रव्यों से पतला करके गेहूँ और  
जौ के पदार्थ तथा मांस के साथ सेवन करै  
तौ अत्यन्त रुचि पड़े ॥ अथवा मिरच आ-  
दि तीक्ष्ण द्रव्योंको डालकर सफेद दूध,  
विनावीजकी दाखको विजौरे अथवा अनार  
के रसमें पीसकर सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीमृद्गदीप्यकैः ।  
सरागःसौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥  
मृद्धीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।  
युक्तमत्स्यण्डिकोपेतरागंदीपनपाचनम् ।  
आम्रामलकपेशीनारामान्कुर्यात्पृथक्  
पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीष-

रिचान्वितान् ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ता  
म्ललवणीकृतान् । तैरन्नरोचतेदिग्धः  
सम्यक्पुक्तंविजीर्यति ॥

अर्थ—संचरनमक, छेटीइलायची, काली  
मिरच, जीरा, भांगरा, अजवायन, इनका  
चूर्ण रागपाडव और शहत में मिलाकर से-  
वन करै ॥ यह अत्यन्त उत्तम रुचिवर्द्धक और  
अग्निसंदीपन प्रयोगहै ॥ विधिपूर्वक दाख,  
कारवी और मिश्री का रागपाडव दीपन  
और पाचन होता है । आम और आंवले  
के गूदे का जुदा २ रागपाडव बनावे ।  
और इनमें धनिया, संचरनमक, जीरा, का-  
रवी और मिरच डाले तथा गुड और शहत  
भी मिलावे, खटाई और नमक तेज डाले ।  
इन रागपाडवों से भोजन करै तौ अच्छी  
तरह पचजाय ॥

अन्यउपचार ।

रूक्षोष्णान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच ।  
व्यायामलंघनाभ्यांचयुक्ताभ्यांजागरेणतु  
कालेयुक्तेनतीक्ष्णेनस्नानेनोदत्तनेनच ।  
स्नानवर्णकवासानांप्रहर्षाणाञ्चसेवया ॥  
सेवयायमनानाञ्चगुरुणामगुरोरापि ॥  
सकामोष्णसुखाद्दीनामपन्नानाञ्चसेवया  
सुखशिसितहस्तानांस्त्रीणांसंवाहनेनच ।  
मदात्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ।

अर्थ—रूक्ष और उष्ण अन्नपान का  
सेवन, उष्णजल से स्नान, व्यायाम, उष्ण-  
धाम, जागरण, तीक्ष्ण द्रव्यों का उबटना  
करके स्नान करना, रूक्षवस्त्र

तदुक्तमखिलं मदात्ययचिकित्सिते ॥

अर्थ—इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें भगवती मदिरादेवीका प्रभाव उसके रोगकी विधि, मदिराके द्रव्य, जिसको यह अर्भाष्ट है, मदिराके भिन्न भिन्न मदोंके भेद, मदिराके महागुण, मद के तीन भेद, तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण, मयकृत दोष, मयकृत गुण, तीन प्रकारके मदिरालय, तीनों सत्वोंके पृथक् २ लक्षण, मयपानके योग्य साथी, जिनको देखमें नशाहोवै और जिनको शीघ्रनशाहोवै ऐसे पुरुषोंका वर्णन मदात्यय के हेतु और लक्षण, मयसे उत्पन्न हुए रोगोंको चिकित्सा, ये सब घातें पूरीशक्ति, से वर्णन की गई हैं ।

इति श्रीभामापीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता  
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-  
त्सित स्थाने मदात्यय चिकित्सित-  
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१-२॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितव्याख्या  
स्याम इति हस्माद् भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तरः भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम द्विव्रणीय चिकित्सितनामक  
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।  
परावरजमात्रेयगतमानमदव्यथम् ॥ अग्नि  
वेशोगुरुकाले विनयादिदमुक्तवान् ॥ भगव  
न्पूर्वमुद्दिष्टो द्विव्रणीय रोगसंग्रहो तयोर्लिङ्गं  
चिकित्साञ्च वक्तुमर्हसि शर्मद । ॥  
इत्यग्निवेशस्य वचोनिश्चयगुरुरवर्वात्

यौव्रणीपूर्वमुद्दिष्टौ निज आगन्तुरेव च ॥ भूय  
तां विधिवत्सौम्या तयोर्लिङ्गञ्च भेषजम् ॥

अर्थ—अग्निवेशने अवकाश पाकर अति  
नम्रतासे परावरके जाननेवाले, मान, मद  
और व्यथा से रहित अपने गुरु आत्रेय से  
पूछा कि भगवन् ! जो आपने रोगों के  
संग्रहमें दो प्रकार के व्रणोंका वर्णन किया  
था अब आप हे कल्याणदाता ! उनके  
लक्षण और चिकित्सा कहो । अग्निवेशके  
इस यचन को सुनकर गुरु बोले कि हे  
सौम्य ! जो निज और आगन्तु दो प्रकार  
के व्रणों का वर्णन किया गया है, उनके  
विधिपूर्वक लक्षण और चिकित्सा श्रवण करो ।

निजागन्तुव्रणों के लक्षण ।

निजः शरीरदेपोत्थ आगन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥

अर्थ—जो शरीर के दोष से उत्पन्न होते  
हैं वे निजव्रण कहाते हैं, तथा जो बाहर  
के हेतुओं से उत्पन्न होते हैं वे आगन्तुव्रण  
होते हैं ।

आगन्तुव्रण के हेतु ।

वधवन्धमपतनाद्दृष्टादन्तनखक्षतात् । आ  
गन्तुवोव्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः ॥  
मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्च ते । लि  
ङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टा विपरीतानि जैर्व्रणाः ॥

अर्थ—वध, वन्ध, प्रपतन ( गिरपडना )  
छाद, दांत नख आदिका लगना विषका  
स्पर्श, अग्निसे जलना, शस्त्रका लगना,  
मन्त्र, औषधका लेप आदि हेतुओंसे  
आगन्तुव्रण होते हैं । इसीतरह निज ल-  
क्षणों के एक देशद्वारा जो व्रण निर्दिष्ट

होते हैं वे निज हैं उनकी उत्पत्ति ऊपर कहेहुये हेतुओं से विपरीत होती है ।

व्रणानां निजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम् ।  
कुर्व्यादोषवलापेक्षी निजानामौषधं तथा ॥

अर्थ—दोष और बल की अपेक्षा करके निज और आगन्तुव्रणोंकी चिकित्सा करें एवं निज व्रणोंकी औषधियोंका वर्णन करते हैं ।

निजव्रणों का कारण ।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम् ।  
बहिर्मांसमाश्रित्य जनयन्ति निजान् व्रणान् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से दूषितहुये वातपित्त कफ बहिर्मांस का अवलम्बन कर के निज व्रणों को उत्पन्न करते हैं ।

वातजव्रणके लक्षण

स्तब्धः कठिनस्पर्शो मन्दस्वादोऽतितीव्ररूक् ।  
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥

अर्थ—जो व्रण वातसे उत्पन्न होता है वह स्तब्ध, छूने में कठोर, धीरे २ स्वादित होनेवाला, अत्यन्त तीव्र शूलयुक्त, तोदयुक्त, स्फुरणयुक्त, कृष्णवर्ण होता है ।

वातजव्रणका चिकित्साक्रम ।  
संपूरणैः स्नेहपानैः स्निग्धैः स्वेदोपनाहनैः ।  
प्रदेहैः परिपेकैश्चातव्रणमुपाचरेत् ॥

अर्थ—संपूरण, स्नेहपान, स्निग्धस्वेद, स्निग्ध उपनाहन, प्रदेह, परिपेक से वातजव्रण की चिकित्सा करें ।

पित्तजव्रणके लक्षण और चिकित्सा  
तृष्णामोहज्वरस्वेददाहावदरणौषधैः ।  
व्रणं पित्तकृतं विद्यात् गन्धस्तावैः सपूतिकैः ॥  
शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैः प्रदेहपरिपेचनैः ।  
सर्पिः पानैर्विरेकैश्चैत्तिकं शमयेद्व्रणम् ॥

अर्थ—पित्तजव्रण में तृष्णा, मोह, ज्वर, स्वेद, दाह, औषधियों द्वारा अवदारण, दुर्गन्ध, दुष्टस्वाद होते हैं । शीतल, मधुर, तिक्त, प्रदेह, परिपेक तथा घृतपान और विरेचन द्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है ।

कफजव्रणके लक्षणादि ।

बहुपिच्छोगुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।  
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेशचरकारिकफव्रणः ।  
कपायकदुरुक्षोष्णैः प्रदेहपरिपेचनैः ॥  
कफव्रणप्रशमयेत्थालंघनपाचनैः ॥

अर्थ—कफजव्रणमें बहुत पिच्छलता, भारापन, स्निग्धता, स्तिमिता, मन्दवेदना, पाण्डुवर्ण, अल्पसंक्लेश तथा चिरकारिता होती है । अर्थात् इसमें बहुत दिन लगते हैं । कपाय, कटु, रुक्ष, उष्ण, प्रदेह, परिपेक तथा लंघन और पाचन द्वारा कफव्रणकी चिकित्सा होती है ।

दोनो व्रणोंके भिन्न २ भेद ।

तौ द्वौ नानात्वभेदेन निरुक्ता विंशतिव्रणाः ।  
तेषां परीक्षात्रिविधा प्रदुष्टाद्वादश स्मृताः ॥  
स्थानान्यष्टौ तथा गन्धाः परिस्त्रावाश्चतुर्दश ।  
षोडशोपद्रवादोपाश्चत्वारो विंशतिस्तथा ।  
तथा चोपक्रमाः सिद्धाः पदाविंशत्समुद्राहताः ।  
विभाव्यमानाः शृणुतान्सर्वानेव यथैरितान् ॥

हैं तो ग्रण कष्टसाध्य होता है और जो सबही गुणों का अभाव होता है तो ग्रण दुःसाध्य होता है ।

ग्रणमें प्रथमकर्त्तव्य ।

ग्रणानामादितः कार्य्ययथासंश्विशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैः शस्त्रैर्वस्तिभिरेवच ॥ सद्यः शुद्धशरीराणां प्रशमयान्ति हि ग्रणाः । यथाक्रममतश्चोर्ध्वभृणुसर्वानुपक्रमान् ॥

अर्थ—ग्रणकी चिकित्सा करनेके आरम्भमें प्रथमही ग्रणका संशोधन करना उचित है और यह संशोधन आसन अर्थात् समीपवर्ती होना चाहिये अर्थात् कफज-ग्रणमें ऊर्ध्वभागगामी संशोधनदेवै, पित्तज ग्रणमें अधोभागगामी अर्थात् दस्त करावै । रक्तजग्रणमें फस्त खोलै, और वातजग्रणमें वस्तिप्रयोग करै । इसतरह शरीरके शुद्ध होनेपर ग्रण बहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं ।

अब हम यहांसे यथाक्रम सबकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

छत्तीसप्रकारकीचिकित्सा ।

शोफग्रंपद्विधश्च शस्त्रकर्मविपीडनम् ।

निर्वापणसंस्थानंस्वेदः शमनमेपणा ।

शोधनारोपणीपौचकपायांसमलेपना ॥

द्वौ स्नेहोत्प्लवणौ पत्रच्छेदेनेद्वचवन्धने । भो

ज्यमुत्सादनं दाहो द्विविधः सावसादनः ॥

काठिन्यमार्दवकरे घृणालेपनेभुमे । ग्र

णावचूर्णनं ग्रन्थलेपनं लोमरोपणम् ॥

इति षड्विंशद्विष्टाग्रणानां संहृष्टप्रक्रमाः ॥

अर्थ—शोफ साक्षक छः प्रकार के शस्त्र

कर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, एपणा, दो प्रकार के शोधनकर्त्ता कपाय, दो प्रकार के रोपणकपाय, शोधन प्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधन स्नेह, रोपण स्नेह, दो प्रकार का पत्रच्छेद, दो प्रकार का बन्धन, भोजन विधि, उत्सादन, दो प्रकार का दाह, अवसादन, काठिन्यकर घृणन, काठिन्यकर आलेपन, मार्दवकर घृणन मार्दवकर आलेपन, ग्रणावचूर्णन, ग्रण की हितकारी लेप, लोमरोपण इसतरह ग्रणोंकी ये ३६ प्रकार की चिकित्सा हैं ।

ग्रणके पूर्वरूपमें कर्त्तव्य ।

पूर्वरूपं भिषक् बुद्ध्या ग्रणानां शोफमादितः ।

रक्तावसेचनं कुर्यादजातग्रणशान्तये ।

शोधयेद्बहुदोषान्तुःस्वल्पदोषान्नाविलंघयेत् ॥ पूर्वकपायैः सर्पिर्भिर्जयेद्दामारुतो

चरम् ॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जब उस ग्रणका पूर्वरूप विदित होनेलगे तबही अनुत्पन्न ग्रण की शान्तिके निमित्त रुधिर निकास देवै । जो ग्रण बहुत दोषोंसे युक्त हो तो लघन करावै ।

प्रथमही काथ वा घृत प्रयोग से वाताधिक्य ग्रण की शान्ति करे ।

शोफनाशकलेप ।

न्यग्रोषोदुम्बराभृत्यपुत्तवेतसवलकलाः

ससर्पिष्कः प्रलेपः स्यात् शोफनिर्वापणं प

रम् । विजयामधुकवीराविसग्रन्थिः श

माचरी । नीलोत्पलनागपुष्पप्रदेहः स्यात्

सचन्दनः ॥ शक्तवामधुकसर्पिः प्रदेहः

स्यात्सशर्करः । अत्रिदाहीनिचात्रानि  
शोफेभेपजमुत्तमम् ॥ सर्वदैवमुपक्रान्तः  
शोफोनप्रशमनं जेतुं । तस्योपनाहः पक्वस्य  
पाटनं हितमुच्यते ॥

अर्थ—वड़, गूलर, पीपल, पाकड़, और  
वेत इनकी छालको पीसकर घृतमें सान-  
कर लेप करनेसे शोफ दूर होजाती है ।  
अथवा हरड़, मुलहठी, काकोली, कमलनाल  
की जड़, सतावर, नलिकमल, नागकेसर,  
रक्तचन्दन, इन को पीसकर लेप करनेसे  
शोफ जतारहता है । अथवा सतू, मुल  
हठी, घी और चीनी का लेप करें । शोफमें  
अविदाही अन्नका भोजनभी उत्तम औषध  
है । जो इन लेपों से शोफ की शान्ति न-  
हो तो उसपर छपड़ी वा पुलटिस बांधकर  
उसे पकाले और पकने पर चीरा लगादेवे।  
शोफ पर पुलटिस ॥

तैलेनवासापिपावाताभ्यांवाशक्तुपिण्डि-  
का- । मुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहः प्रश-  
स्यते ॥ सतिलासातसीबीजदध्मप्लाश-  
क्तुपिण्डिका । सकिण्वकुष्ठलवणाशस्ता-  
स्यादुपनाहने ॥

अर्थ—सतूमें तेल वा घी डालकर पुल-  
टिस तयार करें, इसको गरम शोफ के प-  
कानेके निमित्त बांध देवे ॥ अथवा तिल,  
अलसी, दही, कांजी, सतू, सुराबीज, कूठ  
और नमक इनकी पुलटिस भी बहुत अ-  
च्छी होती है ॥

विदग्ध शोथके लक्षण ।  
रुदाहरोगतोदैश्च विदग्धशोथमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस सूजनमें वेदना, जलन,  
सूची भेदन के समान पीड़ा होती है उसे  
विदग्ध कहते हैं ।

पक्व शोथ के लक्षण ।

जलवास्तिसमस्पर्शसंपर्कीपिण्डितोन्नतम्

अर्थ—जो स्पर्श करने में जलकी मशक  
के समान हो, गोल तथा ऊंची हो उसे पक्व  
समझो ।

पक्वशोथ के भेदन कर्त्ता द्रव्य ।

उमायगुग्गुलुः सौषं पयोदक्षकपोतयोः ।

विट्पलाशभवः क्षारो हेमक्षीरीमकूलकः ॥

इत्युक्तोभेपजगणः पक्वशोथप्रभेदनः ।

सुकुमारस्य कृच्छ्रस्य संश्रान्तु परमुच्यते ॥

अर्थ—पकी हुई सूजन को फाड़ने वाले  
ये द्रव्य हैं, यथा—गूगल, सेंहुडका दूध,  
मुर्गा और कबूतरकी बीट, विह्नमक, डाक  
का खार, स्वर्णक्षीरी और दन्ती ।

जो शोफ कोमल और फट साध्य हो  
अर्थात् औषधों से न फटता हो तो शस्त्र  
कर्म करें ।

छः प्रकार के शस्त्र कर्म ।

पाटनं व्यधनं चैव छेदनं लेखनं तथा । प्रच्छ-

न्नं सीवनं चैव पड्विधं शस्त्रकर्म तत् ।

अर्थ—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन,  
प्रच्छन्न और सीवन, ये छः प्रकार के शस्त्र  
कर्म होते हैं ।

पाटन के योग्य शोथ ।

नाडीव्रणाः पक्वशोथास्तथा सततमुदरम् ॥

अन्तः शल्याश्च ये देशाः पात्र्यास्ते तद्विधा-

शये ॥



अर्थ—नाडीव्रण, यकशोथ, क्षतगुदोदर  
अन्तःशल्य ( जिनके भीतर शल्यहो ) तथा  
ऐसेही और भी पाटन अर्थात् चीरा लगने  
के योग्य होते हैं ।

• व्यधन योग्य व्रण ।

दंकोदराणिसंपकागुल्मायेयेचरक्तजाः॥

वध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः

अर्थ—दंकोदर [ जलधर ], पकाहुआ  
गुल्म, रक्तजगुल्म, तथा विसर्प और पिड  
कादिक अन्य. रक्तके रोग व्यधन अर्थात्  
वधने के योग्य होते हैं ।

छेदनीय व्रण ।

उद्धृत्तानस्थूलपर्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान्  
वृणान् । अर्शःप्रभृत्यधीमांसछेदनेनोप

पादेयत् ॥

अर्थ—उद्धृत्त [ जिसका गोलासा बन  
गयाहो ], स्थूलपर्यन्त ( जिसके किनारे  
मोटे हों ), जो उत्सन्न और कड़ा हो,  
अर्श आदि रोग जिनमें मांस बढ़ गयाहो  
वे छेदनके योग्य होते हैं ॥

लेखन के योग्य रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिलेलेल्यानि-

कुडिमान् ।

अर्थ—किलास और कोठ आदि लेख  
नीय रोगोंका लेखन करै ॥

प्रच्छन्नके योग्यरोग ।

वातासृग्ग्रन्थिपिडिकाः सकोठारक्तमण्ड  
लाः ॥ कुष्ठान्यभ्याहतेचाङ्गशोथांश्चम  
च्छयेद्विपरः ।

अर्थ—वातरक्त, ग्रन्थि, पिडका, कोठ

( पित्ती ) रक्तमण्डल ( खूनके चकत्ते ),  
कुष्ठ, अभ्याहत अंग और शोथ ये प्रच्छन्न  
अर्थात् पछना के योग्य होते हैं ।

सीवन के योग्य व्रण ।

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटित-  
म् ॥ इतिपद्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्ममनी  
पिभिः ।

अर्थ—कूख और उदर में जो गहरा  
फटगया हो वह सीवन के योग्य होता है ।  
ये छः प्रकार के शस्त्रकर्मः पण्डितों ने व-  
र्णन किये हैं ।

पीडनयोग्य व्रण ।

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेवृणास्तान्प्रपी-  
डयेत् ॥

अर्थ—सूक्ष्ममुखवाले तथा कोपवानव्रण  
( जो भीतर पोला पड़जाता है ) प्रपीडन  
के योग्य होते हैं ।

पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः ।  
कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने

अर्थ—कलाय, मसूर, गेहूं, रेणुका इन  
का कल्क करके बिना चिकनाई डालेव्रण  
पर बिपकादेवै ।

अन्यप्रयोग ।

शाल्यमलीत्वग्बलामूलतथान्यग्रोधपल्लवा-  
न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टंयलादिकमथापिर्वो ॥  
आलेपनंनिर्वापयंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ॥  
सर्पिपाशतथोतेनपयसामधुकाम्बुना ।  
निर्वापयेत्सुशीतेनरक्तपित्तोत्तरान्वृणान्  
लम्बानिवृणमांसानिप्रलप्यमधुसार्पिषा

नूप मांस, वेशवार, तथा गरम २ लुपदी  
द्वारा स्वेदन देवे । इस स्वेदन से, रोगी को  
शीघ्रही सुख प्राप्त होता है ॥ जिन वातप्रधान  
ग्रणों में दाह और वेदना इन दोनों की अ-  
धिकता होती है उन में तिल और अलसी  
को भूनकर दूध में भिगो देवे । फिर उसी  
दूध के साथ उन्हें पीसकर लेपकर देवे ॥

**ग्रणोपरप्रयोग ।**

बलागुहृचीमधुकंपृश्निपणीशतावरी ॥  
जीवन्तीशर्कराक्षरितैलमत्स्यवंसाघृतम् ।  
ससिद्धासमधुच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहशर्करा ॥  
द्विपञ्चमूलकाथितेनाम्भसापपसाधवा ।  
सर्पिपावासतैलेनकोप्णेनपरिपेचयेत् ॥  
यवचूर्णसमधुकंसतैलसहसर्पिपा । द-  
द्यादालेपनंकोप्णेदाहशूलोपशान्तये ॥  
उपनाहश्चकर्तव्यः सतिलोमुद्रपायसः ।  
रुग्दाहयोः प्रशमनोवृणेष्वेवुविधिर्हितः ।

अर्थ—खरेटी, गिलोय, मुलहटी, पृष्णि-  
पणी, सितावर जीवन्ती, चीनी, दूध, तेल,  
मछली, चर्बी, घी और मोम इन को पक-  
कारके लेप करें तो ग्रणका शूलजाता रहता  
है । इस मरहम का नाम स्नेह शर्करा है ॥

दशमूल डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ  
कुछ गरम जल या दूध अथवा तेल मिले-  
हुए घृत का सेचन करें ॥

जौ का चून, मुलहटी, तेल और घी  
इन को पक्व करके सुहाते हुए गरमका लेप  
करने से दाह और शूल शान्त होजाते हैं ॥

तिल और मूंग का दूध के साथ पीस  
कर लेप करने से वेदना और दाह शान्त  
होजाते हैं ॥

**एपणीय घृण ।**

सूक्ष्मानानावहुसावाकोशवन्तश्चयेब-  
णाः ॥ नचमर्माश्रितास्तेपामेपणाहित-  
मुच्यते ।

अर्थ—जो ग्रण सूक्ष्म, अनेक प्रकार के  
बहुत स्नावयुक्त और कोशयुक्त हों परन्तु  
मर्म स्थान में न हों उन में सलाई डालना  
हितकर है ॥

**एपणा के भेद ।**

द्विविधामेपणांविद्यात्मृद्वीञ्चकठिनामपि  
उद्भिर्दर्मदुभिर्नालैर्लोहानांवाशलाकया ।  
गम्भीरमांसगेदेशेपाश्वैर्लौहशलाकया ॥  
एष्यंविद्याद्घृणनालैर्विपरीतमतोभिपक्व  
अर्थ—एपणा अर्थात् सलाई मृदु और  
कठिन दो प्रकार की होती है । इन में से  
उद्भिदकी सलाई मृदु और लोहे की कठिन  
होती है । जहां गहरा मांस हो वहां लोहे  
की सलाई डाले और जहां गहरा मांस न  
हो वहां मृदु सलाई डाले ॥

**शोधनीय घृण ।**

पूतिगन्धानविवर्णाश्चवहुसावान्महा-  
रुजः ॥ घृणानशुद्धानविशायशोधनैः स-  
मुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिन ग्रणों में दुर्गन्ध आती हो,  
जो विवर्ण, बहूसावी, अत्यन्त, वेदनायुक्त,  
और अशुद्ध हों उन को प्रथम शुद्ध करें ।

**शोधनद्रव्य ।**

त्रिफलाखदिरोदावीन्यग्रोधोऽतिबला-  
कुशः । निम्बकोलकपत्राणिकपायाः  
शोधनामताः ॥ तिलकल्कः सलवणो

द्वेदिरिद्वेचिद्विद्वृत्तम् । मधुकंनिम्बपत्राणि  
मलपोषणशोधनः ॥

अर्थ—त्रिफला, खैरसम, दारुहलदी, न्य-  
ग्रोधादि गण, आतिवला, कुशा, नीमके पत्ते  
घेरके पत्ते इनके साथसे व्रण को घेयै तौ व्रण  
शुद्ध हो जाता है । तिलका कल्क, संधानमक, दो-  
नों हलदी, निसोय, घृत, मुलहटी और नीमके  
पत्तों का लेप करनेसे व्रण शुद्ध हो जाता है ॥

रोपणीय व्रणोंकी चिकित्सा ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावो न चाति  
रक्तः । न चोत्सन्नो न चोत्सङ्गी शुद्धो रोप्यः  
परिव्रणः ॥ न्यग्रोधो दुस्वराभ्युत्थकदम्ब-  
क्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाः कपाया  
रोपणाः स्मृताः ॥ चन्दनं पत्रकिञ्चलकं दार्वी  
त्वङ्नीलमुत्पलम् । मेदां मूर्वा समप्राञ्चय  
पट्या हावर्णरोपणम् ॥ मण्डरीकं जी-  
वन्ती झोजिहा पातकी वलाम् । रोपणं स-  
तिलं कुर्यात्पलपंसघृतव्रणे ॥ कम्पिलकं  
विडंगानिवत्सकं त्रिफला वलाम् ॥ पटो  
लंपिचुमर्दं च रोधं मुस्तां मियंगुकम् ॥ खदि-  
रं पातकीं सन्नेमेलामयुरुचन्दने । पिप्पला  
साभ्यं भवेत्तैलं तत्परिव्रणशोधनम् ॥ मण्ड-  
रीकं मधुकं काकोली द्वे सचन्दने । सि-  
द्धमेतैः समैस्तैलं तर्पणं व्रणरोपणम् ॥ दूर्वा स-  
रससिद्धं वा तैलं कम्पिलकेन वा । दार्वी त्वच-  
श्चकलेन मधानं व्रणरोपणम् ॥ येनैव विधि-  
ना तैलघृतं तेनैव साधयेत् । रक्तपित्तोत्त-  
रं दृष्ट्वा रोपणीयं घृतं तथा ॥ कदम्बार्जु-  
ननिम्बानां पाटल्याः पिप्पलस्य च । व्रण-  
प्रच्छादने विद्वान्पत्राण्यर्कस्य चादिशेत् ॥

वाक्षोऽथ वादंश्चैव पट्टो व्रणहितः स्मृतः ॥

बन्धश्च द्विविधः शस्तो व्रणानां सव्यदक्षिणः

अर्थ.... जो व्रण असन्त छाल, पाण्डुवर्ण  
श्याव, वेदनायुक्त, उत्सन्न और उत्संगी  
नहीं होते हैं वे रोपण करने के योग्य हो-  
ते हैं । वड़, गूलर, पीपल कदम्ब, पाकर,  
वेत, कनेर, आक, कुड़ाकी छाल, इनका  
कपाय रोपणकर्ता होता है ॥ रक्तचन्दन, छा-  
ल कमल की केशर, दारुहलदीकी छाल, नी-  
लकमल, मेदा, मूर्वा, लज्जाद और मुलह-  
टी ये व्रणको रोपण करने वाले हैं ॥ पुण्ड-  
रिया, जीवन्ती, गोभी, धायके फूल, खैरटी,  
तिल इनके कल्कको घीमें सानकर लेप क-  
रनेसे व्रणका रोपण होता है ॥ कवीला, धा-  
यविडंग, इन्द्रजौ, त्रिफला, खैरटी, परपल,  
नीम, लोध, मोथा, प्रियंगु, खैर, धायके  
फूल, राठ, इलायची, अगर, चन्दन इनका  
तैल व्रणको शोधन कर्ता होता है ॥ पुण्ड-  
रिया, मुलहटी, दोनों काकोली, चन्दन,  
इनके साथमें सिद्ध किया हुआ तेल तर्पणकर्ता  
और रोपणकर्ता है । दूधका रस डालकर अथवा क-  
वीला डालकर अथवा दारुहलदी की छाल डालकर  
सिद्ध किया हुआ तेल व्रणरोपण के निमित्त  
अत्यन्त उत्तम प्रयोग है । जिन २ द्रव्यों  
को डालकर तेल पकाया जाता है उनही  
से घृत भी सिद्ध किया जाता है । जो व्रणमें  
रक्त पित्त की अधिकता होती है तौ घृतही  
प्रयुक्त किया जाता है । कदम्ब, अर्जुन, नीम,  
पाटला, पीपल और आक के पत्ते व्रण के  
ढकनेमें काम आते हैं रुग्णदार चर्मे वा

सूती कण्डे की पट्टी ब्रण पर बाई और दाहिनी दोनों ओर से बांधी जाती है ॥

**ब्रणपर पथ्यविधि ।**

लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीनिगुरुणि  
च ॥ वर्जयेदन्नपानानिवृणीमैथुनमेवच ।  
नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम् ।  
अन्नपानवृणाहितं हितं वा स्वापनं दिवा ॥

अर्थ—नमकीन, खटा, कड़वा, ऊष्ण,  
विदाही और भारी अन्नपान तथा मैथुन  
ब्रणरोग में वर्जित है ॥ न अत्यन्त शीतल  
न भारी, न स्निग्ध, अविदाही अन्नपान और  
दिनमें न सोना ये ब्रणमें हितकर होते हैं ॥  
स्तन्यानिजीवनीयानिबृहणीयानियानि  
च । उत्सादनार्थनिम्नानांब्रणानातानि  
कल्पयेत् ॥ भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधो  
भागानिगुगुलुः । ब्रणावसादनंतद्वत्क  
लविड्कपोतविद् ॥

अर्थ—नीचे ब्रणोंको ऊंचा करने केलिये  
स्तन्यवर्द्धक गणोक्त, जीवनीयगणोक्त  
और बृहणीय गणोक्त औषधोंका प्रलेप करे ॥  
भोजनपत्र की गांठ, पाखानभेद, हीराकसीस  
और गुग्गुलुका लेप करनेसे ब्रण एक होजाता  
है और इसीतरह मुर्गे और कबूतर की धीठ  
का प्रयोग भी किया जाता है ॥

**अग्निकर्मके योग्यब्रण**

रुधिरंतिप्रवृद्धेतुच्छिन्नेछेद्येऽधिमांसके ।  
कफग्रन्थिपुगण्डेषुवातस्तम्भानिलातिपु ॥  
गूढपूलसीकेपुगम्भीरेषुस्थिरेषु च । कि  
न्नेषुचाद्देशेषुकर्मग्नेः संप्रशस्यते ॥

अर्थ—छेदने के योग्य, अधिमांसके काट-

नेपर जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे तो,  
कफग्रन्थि, गलगण्ड, वातस्तम्भ, वातजवेदना,  
गूढपूल (जिसमें पीव बहुत भीतरको हो),  
गूढलसीका, गम्भीर, स्थिर, और छिन्न अंगाव-  
यवों में अग्निकर्म श्रेष्ठ होता है ।  
मधुच्छिद्येनतैलेनमज्जसौद्रवसाघृतैः ।  
तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्वाहंविशेषानित् ॥  
रुक्ताणांसुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोच-  
रान् ॥ दहेत्स्नेहैर्मधुच्छिद्यैर्लोहैः सौद्रैस्त  
तोऽन्यथा ॥

अर्थ—मोम, तेल, मज्जा, शहत, चर्वी,  
घी, तथा लोहा आदि अनेक धातुओंको  
गरम कर करके ब्रण को दग्ध करे । रुक्ता  
कोमल, गम्भीर और वाताधिक्य ब्रणोंको  
स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्ताधिक्य  
ब्रणको लोह द्वारा और कफाधिक्य ब्रणको  
शहतद्वारा दग्धकरे ।

**अग्निकर्म के अयोग्यव्याक्ति ।**  
बालदुर्बलवृद्धानां गर्भिण्यारक्तपित्तिना-  
म् । तृष्णाज्वरपरीतानां प्रवलानां विषा-  
दिनाम् ॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यं स्नायुमर्मव्र-  
णेषु च । सविशेषेषु च शल्येषु नेत्रकुष्ठव्रणेषु च ।  
अर्थ—बालक, दुर्बल, वृद्ध, गर्भिणीस्त्री  
रक्तपित्तरोगी, तृषारोगी, ज्वररोगी, प्र-  
वल विषादग्रस्त, स्नायुवृणी, मर्मवृणी, सवि-  
परोगी, शल्ययुक्त रोगी, नेत्रवृणी, कुष्ठ-  
वृणी आदि रोगी आग्निकर्म से वर्जित हैं ।  
रोगदोषवलापेक्षामात्राकालाग्निकोविदः ।  
शस्त्रकर्माग्निकृत्येषु सारमप्यवचारयेत् ॥  
कठिनत्वं ब्रणायान्तिगन्धैः सारैश्च धूपिताः ।

सर्पिर्मज्जवसाधूपैःशैथिल्ययान्तिहिवणाः॥

रुजःस्नावाश्चगन्धाश्चक्रिययश्चवृणाश्रिताः

शैथिल्यमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति॥

अर्थ—रोग, दोष, बल, मात्रा काल और अग्नि की अपेक्षा करके शस्त्रकर्म और अग्निकर्मके योग्य स्थलोंमें क्षारका प्रयोग करें ॥ गन्धद्रव्य और रालआदि की धूनी देनेसे वृण कड़ा पड़जाता है, इसी तरह घी, मज्जा और चर्बीकी धूनी देनेसे वृण शिथिल पड़जाते हैं । वृणकी वेदना, स्नाव, गंध और क्रिमि तथा ढाँडापन और मृदुता धूनी देनेसे मिटजाती है ।

अन्यप्रयोग ॥

रोध्न्यग्रोधशृङ्गानिखदिरस्त्रिफलाघृतम्  
मलेपोवृणशैथिल्यंसौकुमार्याभिवाधेनः॥

सरुजःकठिनाःस्तब्धानिरास्नावाश्चयेव-  
णाः । यवचूर्णैःससर्पिर्कैवहुशस्तान्मले

पयेत् ॥ मुद्गपट्टिकशालीनांपायसर्वाय-  
थाक्रमम् । सघृतैर्जीवनीयैर्वर्तर्पयेत्तान्

भीक्ष्णशः ॥ ककुभोदुम्बराश्वत्थरोध्जा-  
म्बवकद्वलैः । त्वचमाश्वेवमृद्वणन्तिस्त्व

वचूर्णैश्चूर्णितावृणाः ॥ मनःशिलैलाम-  
ब्जिज्जालाक्षाचरजनीद्वयम् । मलेपःस

घृतःसौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः॥अयोरजः  
सकासीसत्रिफलाकुसुमानिच । करोति

लेपःकृष्णत्वंसद्यएववत्त्वचि ॥ काली-  
यकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः ।

लेपःसगोमयसःसवर्णिकरणःपरः॥ क्रमु-  
काश्वत्थनिचुलमूललाक्षासगैरिका । स-

हेमश्चाभृतासङ्गाकासीसञ्जेतिवर्णकृत् ॥

अर्थ—पठानां लोध, बडकी कौपल, खैर सार, त्रिफला, घी इनका लेप वृणकी शिथिलता और सुकुमारताको दूर करता है । जिन वृणोंमें वेदना, कड़ापन, स्तब्धता, निरास्त्रावता होतीहै उनपर बहुत घी मिले हुए जौके चून का लेप करें । मृगा, साठी चावल, शाली चावल इनमें से प्रत्येक को दूधके साथ सिद्ध करके लेप करें अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों को घृतमें सानकर लेप करें तौ तर्पण होता है । अर्जुन गुल्म, पीपल, लोध, जामन, कायफल इनकी छाल का चूर्ण करके लेप करने से वृण पर शीघ्र खाल आजाती है । मनसिल, इलायची, मज्जाठ, लाख, दोनों हलदी, घी और शहत इनका लेप त्वचाको शुद्ध करता है । लोहचूर्ण, फसीस, त्रिफलाके छल इनका लेप करने से नई त्वचा शीघ्र काली पड़जाती है । कालीयक तगर, आमकी गुठली, नागकेसर, कांती सार इनको गोबर के रसमें मिलाकर लेप करनेसे वृणकी त्वचा शरीर की अन्य त्वचा के समान होजाती है । सुपारी, पीपल की जड़, हिंजलकी जड़, लाख, गेरू, केसर, मुर्दासंग, हीराकसीस इनका लेप करने से वृणका वर्ण देहकी त्वचाके समान होजाताहै॥

वृणपर बालजमने की विधि।

चतुष्पदाहित्वलापसुरमृंगास्थिमसना-

तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेत्प्रोमरुहापुनः॥

पोडशोपद्रवायेचवृणानांपरिकीर्तिताःते-

पाचिकित्सानिर्दिष्टायास्वस्वोचिकित्सिते-

चित्तप्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥

अर्थ—बहुत भोजन करने से तथा शरीरके मन्द व्यवहारसे ऊष्मा सहित कफ मर्मस्थान अर्थात् हृदय में शब्दे पाकर बुद्धि और स्मृतिका नाश करके चित्तको मुग्ध करता हुआ उन्मादको उत्पन्न करता है ।

कफज उन्माद के लक्षण ।

वाक्चेष्टितमन्दमरोचकश्चनारीचिविक्तप्रियतातिनिद्रा छर्दिश्चलालाचलञ्चभुक्तेनखादिशौक्यञ्चकफात्मकेस्यात् ॥

अर्थ—वाणी और चेष्टाका मन्द पड़जाना अरुचि होना, खियोंमें अनुराग, एकान्तकी अभिलाषा, असन्त निद्रा, वमन, लाला-साव, भोजन के पछे रोगकी शब्दि, नख नयन, मूत्र पुरीषादिका सफेद पड़जाना ये सब कफज उन्मादके लक्षण हैं ॥

सन्निपातिक उन्माद के हेत्वादि ।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिथोरः सर्वैःसमस्तैः सतुहेतुभिःस्यात् ॥ सर्वाणिरूपाणि विभर्त्तितादृग्विरुद्धभैषज्याविधिर्विबर्ज्यः ॥

अर्थ—जो उन्माद सन्निपातसे होता है वह असन्त घोर होता है और वह पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षणों से उत्पन्न होता है तथा इसके लक्षण भी मिले हुए तीनों दोषोंके समान होते हैं, इसकी चिकित्सा विरुद्ध होती है, इससे यह रोग वर्जित होता है ।

आगन्तु उन्माद के हेत्वादि ।

देवपिगन्धर्वपिशाचयक्षरसःपितृणामभिर्भर्णानि ॥ आगन्तुहेतुभियमहतादि विध्याकृतःकर्मचपूर्वदेहे ॥

अर्थ—देवता, ऋषि, गंधर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणों की अवधर्षण-नियम और व्रतों में विक्षेप, तथा पूर्वजन्मा-र्जित कर्मफलसे आगन्तु उन्माद होता है ।

भूतोन्मादके लक्षण ॥

असत्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्भयः ॥ उन्मादकालोऽनि यतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा ज्ञान, विज्ञान और बलके मिथ्या आचरण से जो उन्माद होता है तथा जिसके घटने बढ़ने का समय नियत नहीं है उसे भूतोन्माद कहते हैं ।

देवादिके शरीरमें प्रविष्ट होनेमें दृष्टान्त अदृश्यन्तःपुरुषस्यदेहदेवादयःस्वैद्यगुण प्रभावाः । विशन्त्यदृश्योस्तरसायथैवछायातपौदर्पणसूर्यकान्तौ ॥

अर्थ—देवतादिक अपने गुणों के प्रभाव से शरीरको बिना दूषित किये अलक्षित रीति से मनुष्योंके देहमें ऐसे प्रविष्ट होजाते हैं जैसे दर्पण और सूर्यकान्तिमणि में छाया और आतप प्रविष्ट होजाते हैं ।

आयातकालोहिसपूर्वरूपःप्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंमुराद्यैः ॥ उन्मादरूपाणिपृथङ्निबोधकालश्चगम्ययुरुपाञ्चतेषामिति

अर्थ—निदानस्थान में इस उन्मादरोग में देवादि गणका शरीर में प्रवेश होने का काल, और पूर्वरूप वर्णन कियागया है । अब हम उन्मादके पृथक् लक्षण और शरीरमें प्रविष्ट होने का काल वर्णन करते हैं ।

देवोन्मत्त के लक्षण ॥

सौम्यदृष्टिगम्भीरिमप्रधृष्यमकोपनमस्व  
भोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरी  
पवाचथुभगन्धकुल्लपद्मबदनइतिदेवो-  
न्मत्तंविधात् ॥

अर्थ--सौम्य दृष्टिवाला, गम्भीर, अप्रधृष्य [ धर्पणके अयोग्य ] अक्रोधी, निद्राहीन, भोजनाभिलाषी, तथा जिसके पसिने, मूत्र मल कम होते हों, जो कम बोलता हो, देह में सुगन्ध आती हो, जिसका मुख प्रकुल्लित कमलके समान हो, ऐसा पुरुष देवोन्मत्त होता है ।

अभिचारोन्मादके लक्षण ।

गुरुदृढसिद्धर्षिणाभिचाराभिध्याना  
जुरुपाहारचेष्टान्याहारतैरुन्मत्तंवि-  
धात् ॥

अर्थ....जिस उन्मादमें गुरु, दृढ, सिद्ध तथा आपियोंके अभिचार और अभिध्यान के अनुरूप आहार, चेष्टा और व्याहार होता है वह उन्माद गुरुदृढादिकृत होता है ।

पितृगणकृतउन्माद ।

अमसन्नदृष्टिमपश्यन्तंनिद्रालुंमतिहृतवाच  
मनश्चाभिलाषारोचकाविपाकपरीतंपितृ-  
भिरुन्मत्तंविधात् ।

अर्थ....जो मनुष्य पित्रोंके किये हुए उन्माद से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि स्वच्छ नहीं होती है वह पदार्थों को अच्छी तरह नहीं देख सकता है, और निद्रालु होता है उसकी वाणी यथावत् नहीं निकल सकती है, अन्नमें अनिच्छा और भोजनमें अरुचि होती है

[ ११२ ]

तथा वह अविपाक रोगसे पीडित होता है ।

गन्धर्वोन्मादके लक्षण

चण्डसाहसिकतीक्ष्णगम्भीरमप्रधृष्यमु-  
खवाचनृत्यगीतानुपानस्नानपानमाल्य  
धूपगन्धरक्तवस्त्रवलिकर्महास्यकथायो-  
गप्रियंशुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविधात्-  
अर्थ—जो चण्डप्रकृति, साहसिक, तीक्ष्ण स्वभाव, गम्भीर, अप्रधृष्य, मुखसे वाजा बजाने का अनुरागी, नृत्य, गीत, अनुपान, स्नान, मालाधारण, धूप, गंध, लालवस्त्र, वलिकर्म, हास्य, आदिकर्मों, में प्रीति रखने-वाला हो जो देहमें सुगन्धित पदार्थों को लगा-ता हो उसे गन्धर्वोन्मत्त समझो ॥

यक्षोन्माद के लक्षण

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यमीतवाप  
कथानपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिरक्त  
विप्लुतासंद्भिजातिवैद्यपरिवादिनरहस्य  
भाषिणमितियक्षोन्मत्तंविधात् ।

अर्थ—जो बार २ सोता है, रोता है, हँसता है, नाचता है, गाता है, बजाता है, ककता है, खाता पीता है, स्नान करता है, झूलमाळा, धूप गंध धारण करता है, जिसकी आँखें अत्यन्त लाल होती हैं जो द्विजाति और वैद्य की निन्दा करता है जो अपनी या और की गुलबत्तीका प्रकाश करदेता है उसे यक्षोन्मादी समझो ।

राक्षसोन्माद के लक्षण ।

नष्टीन्द्रमन्त्रपानद्वेषिणमनाहारममति-  
लिनंशस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिला-  
षिणं तर्जनमपितराक्षसोन्मत्तंविधात् ।

अर्थ—जिसकी निद्रा नाश होगई हो, जिसको अन्नपानसे द्वेष हो, जो भोजन न करता हो, जो अतीव बलवान् हो, जो शस्त्र रुधिर, मांस और लालपुष्पोंकीमाला धारण करनेका अभिलाषी हो उसे राक्षसोन्मत्त समझो ॥

ग्रहसंराक्षसोन्मत्त के लक्षण

ग्रहासन्तत्यप्रधानं देवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभि  
प्लुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैः काष्टादिभि  
रात्मपीडनेन च ग्रहसंराक्षसोन्मत्तं विद्यात् ।

अर्थ—जो अत्यन्तही हँसता वा नाचता हो, जो देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखता हो, जो अगुहा पूर्वक स्तुति करता हो, जो वेदमन्त्र और शास्त्रके उदाहरण देता हो, जो अपनी देहमें लकड़ी लाठी आदि मारता हो, वह ग्रहसंराक्षसोन्मत्त होता है ।

पिशाचोन्मत्त के लक्षण ।

अस्वस्थचित्तस्थानमलभमानं नृत्यगीतहा  
सिनं यद्वा चक्षुप्रभापिणसङ्कटकूटमालिनर  
ध्याचेलतृणेष्वारोहणरतिसंभिन्नवर्णरू  
क्षस्वरं नग्नं विधायन्तं नैकत्रतिष्ठन्तं दुःखा  
न्यापेदयन्तं नष्टस्मृतिपिशाचोन्मत्तं विद्यात् ।

अर्थ—जिसका चित्त एक ठिकाने नहीं रहता है और चंचल होता है, जो नाचता, गाता और हँसता रहता है, जो प्रसंगाप्रसंगगत बातें बकता रहता है, जो कष्टकारक पहाड़ों की चोटियों पर चढ़जाता है, जो ऊँचे भागों पर, चिथड़ोंके ढेरोंपर, तृणों के ढेरोंपर चढ़जाता है, जिसके देह का वर्ण विगड़जाता है, स्वरमें रूखापन होता है, जो गंगा होजाता है, इधर उधर दौ

ड़ने लगता है, एक स्थान पर नहीं ठहरता है, दुःखों को कहता फिरता है, जिसकी स्मृति नष्ट होजाती है उसे पिशाचोन्मत्त कहते हैं ॥

देवादिकृत उन्माद की विधि ॥

तत्र शौचाचारं तपः स्वाध्यायकोविदनं रमा  
यः शुकृमतिपदि त्रयोदश्याञ्च देवाः ॥ स्ना  
न शुचिविविक्तसेविनं धर्मशास्त्रश्रुतिका  
व्यकुशलं प्रायः पृथुनिबन्धोर्द्धपयः । मा  
तृपितृगुरुद्व्यसिद्धाचार्योपसेविनं प्रायोद  
शम्याममावास्यायाञ्च पितरः ॥ गन्धर्वा  
स्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिपरदारगन्धमाल्य  
मियशौचाचारं द्वादश्याञ्च तृदश्याञ्च ॥  
सत्त्वबलरूपगर्वशौर्ययुक्तं माल्यानुलेपनं  
हास्यमियमतिवाक्करणं प्रायः शुबलैकाद  
श्यां सप्तम्यां च यक्षाः । स्वाध्यायतपोनि  
यमोपवासव्रतचर्यादेव यतिगुरुपूजारति  
भ्रष्टशौचब्राह्मणमन्त्राह्मणं वा ग्रहसंराक्षसं  
शूरमानिनं देवतामारसालिलक्रीडनरति  
प्रायः शुकृपञ्चम्यां पूर्णचन्द्रदर्शने च ब्रह्मरा  
क्षताः । रक्षः पिशाचास्तुहीनसत्त्वपिथुन  
स्त्रैणलुब्धं प्रायेति द्वितीया तृतीयाष्टमीपुषु  
पंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्तीत्यपरिसंख्ये  
यानां ग्रहाणामाविष्कृततमाह्वयतेत्या

ख्याताः ।

अर्थ....इन में से जो मनुष्य शौच, आचार, तप और स्वाध्याय में निरत है उसको छिद्र पाकर देवगण शुकृ पक्षोंकी प्रतिपदा वा त्रयोदशी को दबते हैं । जो स्नानादि से पवित्र रहता है एकान्त में रहता



है जो धर्मशास्त्र, श्रुति और कान्यमें कुशल है उसको ऋषिगण प्रायः छट् वा नवर्षाको दवाते हैं। जो माता, पिता, गुरु वृद्ध, सिद्ध और आचार्यों की सेवा करता है उसे पितृगण प्रायः दशमी वा अमावास्या को दवाते हैं। जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाने और व्रजाने में लीन रहता है, पर स्त्री गामी होता है, गंध, माला, शौचाचार से हित रखता है उसे गन्धर्व द्वादशी वा चतुर्दशीको दवाते हैं। जो मनुष्य सत्व, बल, रूप, गर्व शौर्य से युक्त होता है, हंसी दिल्गुनी करता रहता है, अत्यन्त बोलता है, उसे यक्षगण प्रायः शुक्लपक्षकी एकादशी वा सप्तमी को दवाते हैं। जो स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या देवता, यति और गुरु की पूजा में विरक्त मन है, अपवित्र है, जो ब्राह्मण को अग्राक्षण कहता है, जो ब्रह्मवादी है, जो शूरमानी है जो देवस्थानमें जलक्रीडा करता है उसे ब्रह्मराक्षस प्रायः शुक्लपक्षकी प्रचमी वा पूर्णमासी को दवाते हैं। जो मनुष्य हीन पराक्रम छली पर स्त्री लम्पट और लोभी होता है उसे राक्षस और पिशाचगण छिद्रपाकर द्वितीया तृतीया वा अष्टमी को धर दवाते हैं। असंख्य ग्रहोंमें से ये आठ बड़े उग्र हैं इससे इन्ही का यहां वर्णन किया गया है

असाध्य उन्माद के लक्षण ।

सर्वेष्वापितुखल्वेपुयोहस्तानुद्यम्यरोषसरं-  
भानिःसंज्ञमन्येष्वात्मनिवापातयेत् ।  
सोऽस्यसाध्योऽज्ञेयस्तथासाधुनेत्रोमेद्रप्रवृत्त

रक्तःसतजिह्वःप्रसृतनगिसकः । छिद्यमा-  
नमर्माभतिहन्यमानपाणिःसततविकूजन-  
दुर्धर्गस्तृपार्तःपूतिगन्धिश्चहिसार्थीउन्म-  
चोऽज्ञेयस्तपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—इन सब रोगियोंमें जो रोगी अपने दोनों हाथोंको ऊंचे करके रोपके आवेग में अचेत होकर और के देह पर स्वयं ही गिर पड़ता है वह असाध्य होता है, तथा जिस उन्मादरोगी के नेत्रों में आंसू आते हैं, मेढसे रक्त निकलता है, जीभमें घाव होजाता है, नाक टपकती है, मर्म स्थान में छिदने की सी पीड़ा होती है हाथोंको दे मारता है, कंठ में कूजन शब्द होता है, शरीर का रंग बिगड़ जाता है, तृपा से पीड़ित होता है जिसके देहमें दुर्गन्ध आती है जो हिंसा करनेके लिये उद्यत होता है, ऐसा रोगी त्यागनेके योग्य होता है ॥

मंत्रादि द्वारा चिकित्स्य रोगी ।  
रत्यर्चनाकामोन्मादिनैतुभिपगभिप्राया  
चाराभ्यां बुद्ध्वा तदङ्गैः पहारबलिभ्रमेणमं-  
त्रभैषज्यविधिनोपक्रमेत् । तत्र द्वयोरपि निजा-  
गन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोः समासविस्तारा

भ्यां भैषज्यविधिं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—देवतोंके पूजा पाठमें व्यक्तिक्रम होनेसे वा काम पीड़ित होनेसे जो अभिशाप वा अभिचार द्वारा उन्माद होता है उसमें उपहार, बलिदान और मंत्रमिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥

अब हम निज और आगन्तु दोनों प्रकार

र के उन्मादों की चिकित्सा संक्षेप और विस्तारसे कहते हैं ।

वातज उन्माद में चिकित्साक्रम ।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानेविशेषावेत् ।  
कुर्यादावृतमार्गेतुसस्नेहमृदुशोधनम् ।

अर्थ—वातज उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना उचित है और जो स्रोतों के मार्ग रुकरहे हों तौ स्नेह मिश्रित मृदु संशोधन देवै ।

कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम ।

कफपित्तभवेऽप्यादौवमनंस्विरेचनम् ॥

स्निग्धस्विन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः

निरुहणस्नेहवस्तीशिरसश्चिरेचनम् ।

ततःकुर्याद्यथादोषंतेपांभूयस्त्वमाचरेत् ॥

अर्थ—स्नेहन और स्वेदनकर्म कराने के पश्चात् कफज उन्मादमें वमन और पित्तजमें विरेचन देवै अथवा दोनों ही देवै ।

इसके पीछे पूर्वोक्त क्रमसे पेया आदि का सेवन करावै । फिर निरुहणवस्ति और शिरो विरेचन देवै । फिर जैसा दोष हो उसीके अनुसार बार बार वमन विरेचनादि का प्रयोग करतारहै ॥

वमनादिकाफल ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठसंशुद्धेवमनादिभिः ।

मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिसंज्ञाञ्चाविन्दति

अर्थ—वमन विरेचनादि प्रयोगोंसे हृदय इन्द्रियगण, शिर और कोष्ठके शुद्ध हो जाने पर मनमें प्रसन्नता तथा स्मरणशक्ति और चैतन्यता बढ़ती है ।

आचारविभ्रंशमें उपाय ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशतीक्ष्णनावनमञ्जनम् ॥

ताडनञ्चमनोबुद्धिदेहसंतर्जनहितम् ॥

यःशक्तोविनयेत्पट्टैःसंयम्यमुद्वेगैःमुखैः ।

अपेतलोपकाष्ठाद्यैःसरोध्यशतमोगृहे ॥

अर्थ....वमन विरेचनादि से शुद्धव्यक्ति

के आचार विभ्रंश होने पर तक्षिण नस्य, अं

जन और ताड़ना का प्रयोग करे । मन,

बुद्धि और देह का ताड़ना हित होता

है जो रोगी बलवान् हो तौ लोह और

काष्ठको छोड़कर मज्जुत सुखदाई पट्टियोंसे

बांधकर अंधेरे घर में बन्दकरदेवै ॥

स्मृतिवर्द्धक उपाय ।

तर्ज्जनत्रासनंदानंसात्स्वनर्हर्षणंभयम् ।

विस्मयोविस्मृतेर्हेतुर्नयन्तिप्रकृतिमनः ॥

प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमापानञ्चसर्पिःपः ।

प्रयोक्तव्यमनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥

अर्थ....डराना, धमकाना, दैना, समझाना,

प्रसन्नकराना, भय दिखाना और भूखमें डा

लना इन बातों से स्मृति बढ़ती है और

मन सुस्थ होता है । प्रदेह, उत्सादन, अ-

भ्यंग, धूमपान, घृतपान इन प्रयोगों से

बुद्धि स्मृति और संज्ञा बढ़तीहै ।

आगन्तु उन्मादमें उपाय ।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्ध्वःत्रादिश्रेयतेवि-

धिः । अतःसिद्धतपान्योगान्मृण्मृण्माद

चिनाशनान् ॥

अर्थ—आगन्तु उन्माद में घृतपान और

मंत्र प्रयोग बहुत अच्छे होते हैं । अब उ-

न्मादको दूर करनेवाले उत्तम २ अनुभव

वियेहूय प्रयोगों को लिखते हैं ।

उन्मादनाशकप्रयोग ।

दिग्गुसौवर्चलाव्योपैर्दिग्गुलांशैर्घृताढकम् ।  
चतुर्गुणैर्गवांमूत्रैस्त्रिदशुन्मादनाशनम् ॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल लेकर एक आढक घृत और चौगुने जल में पकाकर सेवन करें, यह उन्मादनाशक प्रयोग है ॥

कल्याणकघृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वैलबालुक  
म् । स्थिरानन्तारजःपौष्टेशारिवेदेभिर्गु

कम् ॥ नीलोत्पलैलामज्जिष्ठादन्ती  
दाडिमकेसरम् । तालीसपत्रं हतमाल

त्याकुमुमंनवम् ॥ विडंगपृष्ठीपर्णीचकु  
ष्ठचन्दनपद्मकम् । कल्कैः कर्पसैरेतैर्विशं

त्यष्टाभिरेवच ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वा  
घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् । अपस्मारेज्वरेकासे

श्वासेमन्देऽनलक्षये ॥ वातरोगेप्रतिश्या  
येतृतीयकचतुर्थके । छर्द्यशोमूत्रकृच्छेच

विसर्पोपहतपुच ॥ कण्डूपाण्ड्वामयो  
न्मादविपमेपुगरेपुच । भूतोपहताचित्ता-

नांगद्वदानामरतेसाम् ॥ शस्तस्त्रीणाञ्च  
बन्ध्यानां धन्यमायुर्वलप्रदम् । अलक्ष्मी

पापरक्षोघ्नं सर्वग्रहविनाशनम् ॥ कल्या  
णकमिदं सर्पिःश्रेष्ठं पुंसवनपुच ।

अर्थ.... इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देव-  
दारु, एलुआ, शालिपर्णी, अनन्ता, दोनोंहल्दी,

दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोत्तर, इलायची,  
मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीस

पत्र, बड़ी कटेरी, मालती के नये फूल, वा-  
यविडंग, पृष्णिपर्णी, कूट, चन्दन, पद्माक्ष,

इन अट्ठाईस द्रव्योंका एक एककर्म कल्क  
लेवै । इनको चौगुने जलमें पकाकर एक  
प्रस्थ घी डाल देवै । यह घृत मृगीरोग, ज्वर  
खांसी, स्वास, मन्दाग्नि, वातरोग, प्रतिश्याय  
तृतीयकज्वर, चतुर्थकज्वर, वमन, ववासीर,  
मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद  
विप, प्रमेह, विपरोग भूतोपहत चित्त, गद-  
गदरोग वीर्यनाश तथा स्त्रियों के बन्ध्यापन  
को दूर करताहै । यह आयु और बलका  
वढानेवाला है तथा अलक्ष्मी, पाप, राक्षस  
और सम्पूर्ण ग्रहों को नष्ट करनेवाला है ।  
यह कल्याणनामकघृत पुंसवनकर्ममें श्रेष्ठहै ।

महाकल्याणकघृत ।

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वाविंशति-  
म् ॥ रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिष्टृष्टक्षीरचतुर्गुणे  
वीराद्विमापकाकोलीस्वयुसर्पभक्षिभिः  
मेदयाचसमैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं  
महत् । वृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं-  
परम् ॥

अर्थ.... शालपर्णी से आदि लेकर इक्कास  
द्रव्यों को ऊपर कहेहुये प्रमाण से लेकर  
जलमें औटावै, उस काथमें एक बार व्याई  
ई गौ का चौगुना दूध डालकर घी पकावै  
इसमें क्षीरकाकोली, दोनोंप्रकारकेमाप, काको-  
ली, केंच, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन  
सब को समान भाग लेकर कूटकर डाल  
देवै यह महाकल्याणक घृत है । यह घृत  
अत्यन्त वृंहणकर्ता और सन्निपात को दूर  
करने वाला है

महापैशाचिक घृत ।

जाटिलां पूतनाकेशोच्चारदामर्कद्विचाम् ।

त्रायणां जयां वीराञ्चीस्कंदुरोहिणीम्  
 वयःस्थां शूकरं छिन्नमतिञ्छत्रां पलङ्कपाम् ।  
 महापुरुषदन्ताञ्च वयःस्थांनाकुलीद्वयम् ॥  
 कटम्भरां वृश्चिकालीं स्थिरां चाहृत्य तैर्घृतम् ।  
 सिद्धं चतुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।  
 महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथा मृतम् ॥  
 बुद्धिस्मृतिकरं चैव बालानां चाङ्गवर्द्धनम् ।

अर्थ....जटां मासी, हरड, केसी ( नीली-  
 वृक्ष ), चारटी, केंच, वच, त्रायमाणा, जया,  
 क्षीरफाकोली, चौरपुष्पी, कुटकी, गिलोय,  
 बाराहीकन्द, छत्रा, अतिक्षत्रा गूगल, शतमू-  
 ली, वपस्या, दोनों नाकुली ( दो प्रकार की  
 रास्ता ), कटभी, वृश्चिकाली, शालिपर्णी  
 इन को कूटकर इनके क्वाथ में घृत पकावै  
 यह घृत अनुभव किया हुआ है । इस के  
 सेवन से चौथे पा ज्वर, उन्माद, ग्रह, अप-  
 स्मार नष्ट होजाते है यह महापैशाचनामक  
 घृत अमृत के समान गुणकारी बुद्धि और  
 स्मृति को बढ़ाने वाला है । यह घृत बा-  
 लकों के अंगों को बढ़ाता है ॥

लघुनाद्य घृत ।

लघुनानां शतं त्रिंशदभयाधूपणात्पलम् ।  
 गवांचर्ममसीप्रस्थोद्व्यादकं क्षीरमूत्रयोः ॥  
 पुराणसर्पिषः प्रस्थमोभिः सिद्धं प्रयोजयेत् ।  
 हिंमुचूर्णपलं शतित्वा च मधुमानिकाम् ॥  
 तद्वा पाण्डुसम्भूतान् उन्मादान् विषमज्वरान्  
 अपस्मारान् च हन्त्याधुपानाभ्यञ्जननावनैः

अर्थ—सौ गाँठ लहसन, ताँस हरड, त्रि-  
 कुटा एक पल, गोचर्म की भस्म एक प्रस्थ  
 गों का दूध और गों का मूत्र एक एक

आढक, पुराना घी एक प्रस्थ इन सब को  
 मिद्ध करलेवे । जब यह ठंडा होजाय तब  
 इसमें एक पल हींग पिसी हुई और आठ  
 पल शहत डालकर मिलावे । इस घृतको  
 पान अभ्यंजन और नस्यकर्म में प्रयोग क-  
 रने से आगन्तुक उन्माद, विषमज्वर और  
 अपस्मार नष्ट होजाते हैं ॥

अन्य लघुनादि घृत ।

लघुनस्याविनष्टस्य तुल्यं द्विनिस्तु पीकृतम् ।  
 तदर्द्धदशमूलस्य द्वादशकं स्पां विपाचयेत् ।  
 पादशेषे घृतमस्थं लघुनस्य रसं तथा ॥  
 फालमूलकवृक्षाम्लमातुल्यं क्षारैः ।  
 दाडिमाम्बुसुरामस्तु कांजिकाम्लैस्तदर्द्ध-  
 कैः । साधयेत् त्रिफलादारुलवणव्याप-  
 दीप्यकैः ॥ यवानीचव्याहिलवम्लवेतसै-  
 श्वपलार्द्धिकैः । सिद्धमेतत्पिप्पलुगुल्मा-  
 र्पोजदरापहम् ॥ दध्मपाण्ड्वामयं ग्रीह-  
 योनिदोषज्वरकिमीन् । वातश्लेष्मामया-  
 न्सर्वान् उन्मादञ्चापकर्षति ॥

अर्थ—उत्तम लहसन की छिछका दूरे  
 की हुई गाँठ पचासपल, दशमूल पचीसपल  
 इन को दो आढक जठमें पकावै, जब  
 चौथाई शेष रहजाय तब इस काथमें एक  
 प्रस्थ घी, एक प्रस्थ लहसन का रस, बेर,  
 मूली, वृक्षाम्ल, त्रिजैरा, अदरकका रस  
 अनारका रस, ये सब एक एक प्रस्थ लेवै।  
 तथा सुरा, मस्तु और कांजी आधे आधे  
 प्रस्थ लेवै । तथा त्रिफला, दारुहलदी, सेंधा  
 नमक, त्रिकुटा, दोनों अजवायन, चन्य,  
 हींग, अमलवेत इन सबका आधे आधे

पल चूर्ण मिलाकर पाक करै । इस घृतका पान करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, जठररोग ब्रध्म, पाण्डुरोग, प्रीहा, योनिदोष, ज्वर क्रिमिरोग, वातकफरोग तथा सबप्रकार के उन्मादरोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्य घृत ।

हिङ्गुनाहिङ्गुपर्णचिसकायस्याव्यस्ययांसि  
क्षेसर्पिर्हिततद्ब्रध्मस्याहिङ्गुरोचकैः केवलं  
सिद्धमेभिर्घापुराणपाययेद्घृतम् । पाय  
यित्वात्तमांमात्रांश्चभ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा  
अर्थ—हींग, हिङ्गुपर्णी, हरड और गि-  
लोय इनको डालकर पुराना घी पान करै  
अथवा गिलोय, हींग और रोचक [राजपला-  
ंडु] डालकर पुराना घी सिद्ध करै । इस  
घृत की उत्तम मात्रा पान कराके रोगी को  
किसी श्वश्रु [तहलाने] में वा घर में बि-  
ठलाये रखे ।

पुराने घी के गुण ।

विशेषतःपुराणञ्चघृततत्पाययेद्विपक्व ।  
त्रिदोषघ्नपवित्रत्वाद्विषेपाद्ग्रहमोक्षणम्  
गुणकर्माधिकस्थानादास्वादान्कटुति-  
क्तकम् ॥ उग्रगन्धपुराणस्याद्दशवर्षस्थि-  
तंघृतम् । लासारसनिभशीततद्विसर्व-  
ग्रहापहम् । मेध्यविरेचनेज्वग्न्यग्रपुराणम-  
तःपरम् । नासाध्यनामतस्यास्तियत्स्या-  
द्वर्षशतस्थितम् ॥ दृष्टस्पृष्टमयाघ्रातं  
द्विसर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादव-  
तांशस्तविशेषतः ॥

अर्थ—वैद्यको उचित है कि उन्माद  
रोगमें विशेष करके पुराना घी पान करायै

यह घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होने से  
ग्रहमोक्षण कर्त्ता है । पुराना घी बहुत दि-  
वस का होने से गुण और कर्म में अधिक  
होताहै, स्वादमें कटु और तिक्त होता है,  
इसमें गंध बड़ी उग्र आती है इस तरह  
दसवर्ष का घी पुराना होता है । जो घृत  
छाछ के रस के समान और शीतल होता  
है वह सर्वग्रह नाशक होताहै । दश वर्ष  
से अधिक दिनका घी मेधावर्द्धक और उ-  
त्तम विरेचनकर्त्ता है, इसे प्रपुराण कहते हैं  
सौ बरसके घी के सामने कोई भी ऐसा  
रोग नहीं है जो साध्य न हो । इस घृत  
के देखने, छूने और सूंघनेहीसे सम्पूर्ण ग्रह  
शान्त होजाते हैं । यह घृत अपस्मार  
और ग्रहोन्माद रोगियों को विशेष फायदे  
उपयोगी होता है ।

नस्याञ्जन प्रयोग ।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वंसगच्छति । अ-  
ञ्जनोत्सादनालेपान्नाचनादींश्चयोजयेत्  
शिरिषोमधुकंदिङ्गुलधुनंतगरंयचाम् ॥ कु-  
ष्ठञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टस्यान्नाचनाञ्जनम् ।

अर्थ—इन्हीं नीचे लिखीहुई औषधियों  
द्वारा उन्मादका विधान कियाजाता है,  
तथा अंजन, उत्सादन, आलेपन और न-  
स्यकर्म में भी प्रयुक्त कीजाती है । उन  
औषधियों के नाम ये हैं, सिरस, मुलहटी,  
हींग, लहसन, तगर, वच, और कूठ इन  
को चक्कर के भूज में पीसकर नस्यकर्म और  
अञ्जन में प्रयुक्तकरै ॥

## अन्यप्रयोग ।

सद्रव्योपहारीद्रेक्षेपञ्जिष्टाहिंयुसर्पपाः । शि  
रीषबीजश्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।  
अर्थ—ऊपरकी रीतिके अनुसारही दोनों  
हलदी, मजीठ, हींग, सरसों, सिरस के  
बीज इनको नस्यकर्म और अंजन में प्रयुक्त  
करें । इससे उन्माद, ग्रहरोग और अपस्मार  
दूर होजाते हैं ॥

## अन्यप्रयोग ।

पिष्टातुल्यमपामार्गहिंगुलांहिंयुपात्रिकाम् ॥  
घर्त्तिःस्यान्मरिचार्द्धापापित्ताभ्यांगोभृगा  
लयोः । तयांजयेदपस्मारभूतोन्मादज्व  
रादितान् ॥ भूतार्चानमरार्चाश्चनरार्चा  
श्चैवगोमये । मरिचञ्चातपेमांसंसापित्तं  
स्थितमञ्जनम् ॥ वैकृतंपश्यतःकार्प्यंदोष  
भूतहतस्मृतेः ॥

अर्थ—ओंगा, हींगल और हींगपत्री,  
इनको समानभाग लेवै और तीनोंसे आ-  
धी कालीमिरच डालकर गौ वा शृगाल के  
पित्ते के साथ यत्ती बनावै । इससे अप-  
स्मार, भूतोन्माद, ज्वर, अर्दित, भूतार्त,  
देवार्तादिरोग नष्ट होजाते हैं ।

कालीमिरच, गोमांस और गोपित्त  
इन तीनोंको मिलाकर धूपमें रख देवै फिर  
इनको आखों में आजै तौ दष्टि की विकृति,  
दोषज उन्माद, भूतोन्माद तथा स्मृतिनाश  
ये सब जाते रहते हैं ।

किंती २ पुस्तकमें 'मांस की जगह मांस  
पाठ करके यह अर्थ किया है कि महीनै भरतक  
धूप में रखवै)

## अन्यप्रयोग ॥

सिद्धार्थकोवचाहिंयुकरज्जन्देवदारुच  
ष्टात्रिफलाद्वेताकटभीत्वकटुत्रिकम् ॥ समं  
शानिप्रियंगुश्चशिरिपोरजनीद्वयम् । ब  
स्तमूत्रेणपिष्टोऽयमगदःपानमञ्जनम् । न  
स्यमालेपनश्चैवस्नानमुद्वर्तनंतथा । अप  
स्मारविपोन्मादकृत्यालक्ष्मोज्वरापहः ॥  
भूतेभ्यश्चभयंहन्तिराजद्वारेचशस्यते ।  
सर्पिरेतेनसिद्धंवासगोभूत्रंतदर्थकृत् ॥

अर्थ—सफेदसरसों, वच, हींग, दोनों प्र-  
कारके कच्चा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला,  
सफेदकोयल, कटभीकीछाल, त्रिकुटा, प्रि-  
यंगु, सिरसकी छाल, दोनों हलदी, इन ३  
वको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें  
पीस लेवै इस औषधका पान, अंजन, नस्य,  
आलेपन, स्नान, उद्वर्तन में प्रयोग करने  
से अपस्मार, विपोन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी  
और ज्वर नष्ट होजाते हैं । इसका अंजन  
लगाने से भूतोंका डर जाता रहता है  
और राज द्वार में प्रशंसा का पात्र होता है ॥  
इन्ही औषधियों को गोमूत्र में पीसकर घृत  
पाक करके सेवनकरै तौ पूर्वोक्त गुण होतेहैं ॥

## अन्य प्रयोग ॥

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्त्तिकृतांपिबेत् ।  
वैरेचनिकधूमोक्तैःश्वेताद्यैर्वासाहिंयुभिः ॥  
शुद्धकोल्हकमार्जारजम्बूककृकवस्तजैः ।  
मूत्रपित्तशुद्धोपनखैर्धूमश्चकारयेत् ॥ से  
काञ्जनप्रथमननस्यधूमश्चकारयेत् ॥

अर्थ ... जो उन्माद रोगमें मुखसे खार  
गिरती हो वा पीनसका रोग होगया हो तो

त्रैरेचनिक धूममें कोह हुए सुगंधित द्रव्यों की बत्ती बनाकर धूमपान करै, अथवा ऊपरके प्रयोग में कहीं हुई श्वेत कोयल से आदि लेकर सब द्रव्य और हाँग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करै । अथवा सेह, घुग्घू, विहड़ी, सिरकटा, भेडिया और बकरा इन के मूत्र, पित्त, विष्टा, लोम, नख, और चर्म इन सब के द्वारा सेक अंजन, प्रथमन, नस्य और धूम ये कर्म करै ।

अन्यप्रयोग ॥

वातश्लेष्मात्मकेषामयःपैत्तिकेचप्रशस्यते ॥  
तिक्तकंजीवतीयश्चसर्पिःस्नेहश्चामिश्रकः ।  
शीतानिचान्नपानानिमधुराणिमृद्निच ॥

अर्थ—प्रायः वातश्लेष्मात्मक तथा पित्तज उन्मादमें तिक्तकघृत, जीवनीयघृत और मिश्रस्नेह तथा ठंडा मीठा और कोमल अन्नपान का प्रयोग करै ॥

उन्माद में फस्त ।

शंखकेशान्तसन्धौवामोक्षयेत्शोभिपक्षि  
राम् । उन्मादेविपमेचैवज्वरेऽपस्मार  
एवच ॥

अर्थ—उन्माद, विपमज्वर और अपस्मार में कनपटी और केशान्त की सन्धियों में फस्त खोडै ॥

अन्यप्रयोग ।

घृतमांसवितृप्तवानिवातस्थापयेत्सुखम् ।  
त्यक्त्वामतिस्मृतभ्रंशसंज्ञालब्ध्याप्रबुध्य  
ते । आश्वासयेत्सुहृद्वातवाक्यैर्धर्मार्थसं  
हितैः ॥ मृषादिष्टुविनाशंवादश्लेयेदद्भुता  
निवावश्वाससर्पपतैलाक्तंयसेद्रोचानममा  
[ ११३ ]

तपे ॥ कापिकच्छ्वाथवातसैल्लोहतैलजलैः  
स्पृशेत् ॥ कशाभिस्तादयित्वावासुबद्धं  
विजनेगृहे ॥ रुन्ध्याचेतोहिविभ्रान्तब्र-  
जत्यस्यतथाशमम् ।

अर्थ—उन्मादरोगी को पेट भरकर पु-  
राना घी वा मांस पान कराके सुखपूर्वक  
निर्यातस्थान में बैठवै ऐसा करने से रोगी  
की बुद्धि और स्मरणशक्ति ठीक होजाती  
है और वह होश में आजाता है । अथवा  
रोगी के सुहृदजन धर्म और अर्थ के वा-  
क्यों द्वारा रोगी को आश्वासन देवै किसी  
प्यारी वस्तु के नाश होनेका संवाद सुना-  
वै अथवा कोई आश्चर्योत्पादक वस्तुओं  
का दर्शन करावै । कभी २ सरसों का  
तेल लगाकर चित्त करके तथा बांधकर धू-  
प में डालदेवै । अथवा केंचकी फली,  
गरमलोहा, गरमतेल, गरमजल रोगी के श-  
रीर के लगावै । अथवा निर्जन घरमें र-  
स्सियों से डढ़ बांधकर कोड़ों की मार ल-  
गावै । अथवा उसके विभ्रान्तचित्तको ऐसी  
रीति से रोके जिस से उसको शान्ति होवै ।

अन्यप्रयोग ।

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेणदान्तैःसिंहैर्गजैश्चतम्  
त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वीतस्करःशत्रुभिस्तथा  
अथवारानुपुरुषावीहिर्नीत्वाशुसंयतम् ॥  
त्रासयेयुर्बधेनैतर्जयन्तोऽनृपाह्वया । देह  
दुःखमयेभ्योहिपरप्राणभयंमहत् ॥ तेनया-  
तिशमयतस्यसर्वतोविप्लुतंमनः । इष्टद्रव्य  
विनाशात्तुमनोयस्योपहृत्यते ॥ तस्यत  
त्सहस्रमाप्तिश्चान्त्याश्रासैःशमनयेत् । का-

मशोकमयक्रोधहर्षेर्प्यालोभसम्भवान् ॥  
परस्परप्रतिद्वन्द्वेरेभिरेवशमनयेत् ॥

अर्थ—दांत उखाड़े दूये सर्पों से उसे कटवावै, पालतू सिंह और हाथियों से डर पावै, हाथमें शस्त्र लेकर, तस्करों द्वारा वा शत्रुओं द्वारा भय दिखावै । अथवा राजा के कर्मचारी राजाकी आज्ञा लेकर उसे अच्छी तरह बांधकर बाहर ले जाकर खूब मारपीट करें क्योंकि देह के दुःखों के भय से प्राणों का भय अधिक होता है । उसी प्राणभय के कारण उसका विभ्रान्त चित्त स्थिर होजाताहै । जिस अभीष्ट वस्तुके नष्ट होने से मन चलायमान होजाता है, उसको उसीके सदृश वस्तुका दर्शन करानेसे, तथा समझाने और आश्वासन करने से चित्त शान्त होजाता है । जिसका मन काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ द्वारा चालित होताहै उस को उसीके विपरीत कारणसे शान्त करे, जैसे क्रोधजन्य उन्माद को हर्ष से, इसी तरह और भी ।

बुद्ध्यादेशंबयःसात्त्विकदोषकालंबलावलम् ॥ चिकित्सितमिदं कुर्यादुन्मादे भूतदोषजे । देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तुबुद्धिमान् ॥ वर्जयेदञ्जनादीनितीक्ष्णानिभ्रूकर्मच । सर्पिष्णानादितस्पेहृष्टदुःशैप्यमाचरेत् ॥ पूजाम्बल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनाविधंस्तथा । शान्तिकर्मैष्टिहोमांश्चजप्यस्वस्त्ययनांनिचावेदोक्तान्निग्रमांश्चापिमायीश्चत्यानिचाचरेत् । भूतानाम

धिपेदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम् ॥ पूजयन्प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादं भयम् । रुद्रस्य प्रमथनानामगणालोकेचरन्ति ये ॥ तेषां पूजाञ्च कुर्वाण उन्मादेभ्यो विमुच्यते ।

अर्थ—भूत दोषज उन्माद में देश, वय, सात्त्व्य, दोष, काल, बल और अवलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे । देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इन से किये हुए उन्माद में तीक्ष्ण अञ्जनादि तथा भ्रूकर्म न करे । तथा घृतपान और मृदु औषध इस में हितकारी होती हैं और पूजा, बलिदान, उपहार मंत्र तथा अंजन विधिका प्रयोग करे । शान्तिकर्म, यज्ञ, होम, जप स्वास्तिकाचन तथा वेदोक्त नियम और प्रायश्चित्त का अवलम्बन करे । जगत् के स्वामी भूतनाथ महादेवजी का विधि पूर्वक नित्य नियम से पूजन करता रहै तो उन्मादज भय दूर होजाता है । रुद्र के जो प्रमथ नामक गण संसार में विचरते रहते हैं उनका पूजन करनेसे उन्माद पास नहीं आताहै ।

बलिभिर्मंगलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः । सत्याचारतपोज्ञानप्रदानिनियमवृत्तैः । देवगुह्यकविमाणां गुरुणां पूजनेन च ॥ आगन्तुः प्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ।

अर्थ—बलिदान, मंगलपाठ, होम, अंगद, औषधधारण, सत्याचरण, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रतादि नियमोंका पालन, देव, गुह्यक, विप्र, गुरुका पूजन, तथा सिद्ध मंत्र और औषधियों द्वारा आगन्तु उन्माद शान्त होजाता है । यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारेचिकित्सिते



उन्मादेतच्चकर्तव्यसामान्याद्देतुदूष्ययोः

अर्थ—जो जो चिकित्सा अपस्मार रोग में वर्णन कीजायगी, वही चिकित्सा उन्मादरोग में भी कर्तव्य हैं क्योंकि इनदोनों रोगों के हेतु और दूष्य एकही हैं ।

उन्माद के अयोग्यव्यक्ति ।

निवृत्ताभिपमथोयोहिताशीप्रयतःशुचिः॥

निजागन्तुभिश्नमादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते।

अर्थ—जो मद्य मांसका सेवन नहीं करता है, हित भोजन करता है जितेन्द्रिय और पवित्र रहता है, ऐसे सत्त्ववान् पुरुषके निज और आगन्तु उन्माद नहीं होने पाते हैं ।

उन्मादमुक्तके लक्षण

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम्।

अर्थ—इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा तथा मन इनकी प्रसन्नता, तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना ये विगत उन्मादके लक्षण हैं ।

अध्यायंका संक्षिप्त वर्णन ॥

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसाचिकित्सितम् ॥ निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भि

पशुत्तमः॥

अर्थ—वैद्यवर आत्रेयने इस अध्याय में निज और आगन्तु भेद वाले उन्मादों की उत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सित

स्थाने उन्माद चिकित्सित-

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

—:—

पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथातोऽपस्मारचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम अपस्मार रोग की चिकित्सा का वर्णन करेंगे ।

अपस्मार की निरुक्ति ।

स्मृतेरपगमं प्रहुरपस्मारं भिषग्विदः । तमः प्रवेशवीभत्सचेष्टधीसत्त्वसंप्रवात् ॥

अर्थ—आयुर्वेदज्ञ स्मृति के नाश होजाने को अपस्मार कहते हैं । इस में बुद्धि और मनके संप्रावित अर्थात् नष्ट होने से अंधकार में प्रवेश होनेकी सी दशा और भयंकर चेष्टा होजाती है ।

अपस्मार के कारण ।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजनाम् । रजस्तमोभ्यांविहतेसत्त्वेदोपावृतेहृदि ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा । मनस्यभ्याहतेनृणामपस्मारमवर्तते ॥

अर्थ—चलितचित्त, बहुदोषी अहित और अपवित्र भोजी के तथा जिसका सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण द्वारा नष्ट हो गया है, जिसका हृदय दोषों से आवृत है तथा जिसका चित्त चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक और उद्वेगादिसे व्याप्त है उस के अपस्मार रोग होता है ।

अपस्मारके वेगका रूप ।

धमनीभिः श्रितादोषाहृदयं पीडयन्ति ।

दूध और मूत्र डाल देवे । यह अमृत के समान गुणकारी महापंचगव्यनामक घृत है । यह घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, अर्शरोग, पाण्डुरोग, कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहरोग, चातुर्थिकज्वर इन सबको नष्टकर देता है ॥

अन्यप्रकारके घृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच ॥

पुराणघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्माजित्

घृतंसैधवाहिगुभ्यावापेवान्तेचतुर्गुणे ॥

मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ॥

वचासम्पाककैर्यवयःस्थानिगुरोचकैः ॥

सिद्धं पलकपायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मकघृतम् ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलांमितैः ॥

क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् ।

कसेक्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ॥

कार्पकैर्जीवनीयैश्च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारान्नियच्छति ॥

अर्थ—ब्राह्मीका रस, वच, कूट, शंख-पुष्पी इन के साथ में पुराने घृत को पककर के सेवन करे, तौ उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप्मा दूर होजाती है । सैधानमक; हींग इन से चौगुना घी, घी से चौगुना यैल या वकरे का मूत्र इन को सिद्ध कर के पान करने से अपस्मार, हृद्ग्रह, ग्रहरोग सब शान्त होजातेहैं । वच, अमलता-स; कायकल, वहेडा, हींग, रोचक, [राज-पलांडु] और गूगल इन के साथमें घृतको पक्व करके सेवन करने से वातश्लेष्मात्मक अपस्मार दूर होजाती है । एक प्रस्थ तेर-

एक प्रस्थ घी, जीवनीय गणोक्तद्रव्य एक २ पल, इनको एक द्रोण दूध में पकाकरदे तो अपस्मार नष्ट होवे । दूध और ईख का रस चार २ सेर खैभारी का रस आठगुना; जीवनीय गणोक्त द्रव्य एक २ कर्प, एक पृथ घी इनको पकाकर सेवन करने से वातपित्तोद्भव अपस्मार शान्त होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशववाथमृतपयः ।

मधुकाद्विपलेकलकेंद्रोणे चामलकीरसात् ।

तद्वत्तिन्द्रोघृतप्रस्थः पित्तापस्मारभेषजम् ॥

अभ्यङ्गः सार्षपतैलवस्तमूत्रचतुर्गुणे ।

सिद्धस्याद्रोशकृन्मूत्रेस्नानोत्सादनमेव च

कटभीनिम्बकद्वजमधुक्षिमुत्तवचारसे ।

सिद्धं मूत्रसमतैलमभ्यङ्गार्धमशस्यते ॥

पलङ्कपावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्पपैः ।

जटिलापूतनाकेशीनाकुलोहिगुरोचकैः ॥

लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विद्धिभिक्षपक्षि-

णाम् । मांसाशिनां यथालाभं वस्तमूत्रच-

तुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जनंतैलमपस्मार-

विनाशनम् । एतैश्चैवौषधैः कार्ष्णधूपनं

सम्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—इसीतरह से कांस्त, विदारी कंद, ईखकी जड़, कुशा इनके क्वाथ में ओटाया हुआ दूध देवे । किसी २ पुस्तक में घृत है । यह दूध वा घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है । मुलहठी दो पल, आंवले का रस एकद्रोण इस में एक प्रस्थ पुराना घी पकाकर सेवन करने से पित्तापस्मार दूर होजाता है सरसों के तेल को चौगुने वकरे के मूत्रमें ओटाकर

मालिश करें । फिर गोबरका उबटना करके गोमूत्र से स्नान करें । कटभी, नीम, कटुवंग और सहजना इनकी छाल को रस तथा गोमूत्र और इसके समानही तेल डालकर औंटावें फिर इससे मालिश करें तौ अपस्मार दूर होवै। गूगल, वच, हरड़, विछवन, आक, सरसों, जटामांसी, पूतना ( हरड़ ) केशी, रास्ना, हॉग, राजपलांडु, लहसन, आतिरसा ( मुलहठी ) चीता, कूठ, मांसाहारी पक्षियों की विष्टा जिनकी मिलसकै लाकर तेलसे चौ-गुना वकरो का मूत्र डालकर सिद्ध करें। इस तेल का मर्दन करने से अपस्मार नाता रहता है । इन्हीं औषधियों को पीसकर अपस्मार रोगीको घूप देवै वा उसके लेप करें ।

### अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीलवणशिशुहिगुहिगुशिवाटिकाम्  
काकोलीसर्पपान्काकनासाकैडर्यचन्दने।  
शुनःस्कन्धास्थिनखरान्पशुकांश्चितपेष-  
येत् । वस्तमूत्रेण पुष्पक्षेप्रदेहः स्यात्सधू-  
पनः ॥ अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिरोच-  
कैः ॥ उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैर्वावसेचनम्  
खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथा गोपुच्छलोम-  
भिः । कपिलानांगवांमूत्रं नावनं परमं हि-  
तम् । श्वगृगालविडालानां सिंहादीनां  
चशस्यते ॥ भार्गवचानागदन्तीश्वेता-  
श्वेताविषाणिका । ज्योतिष्पतीनागद-  
न्तीपादोत्थामूत्रपेपिताः ॥ योगास्त्रयोऽ-  
तः पडविन्दूनपञ्चवानावयेद्विषक् । त्रि-  
फलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिञ्चकैः ॥  
श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रैः स्थवस्तजे।

साधितं नावनं तैलमपस्मारविनाशनम् ॥

अर्थ—पीपल, सेंधानमंक, सहजना, हॉग  
गोंदनी के पत्ते काकोली, सरसों, कौआ टोंटी,  
कायफल, रक्तचन्दन, कुत्ते का कंधा, नख,  
पसली इनको पुष्पनक्षत्र में लाकर वकरो के  
मूत्र में पीस लेवै इसका लेप करने से वा घूप  
देने से अपस्मार दूर होजाता है । काली  
तुलसी, कूठ, हरड़, केशी, राजपलाण्डु,  
इनको गोमूत्र में पीसकर उत्सादन करें तथा  
गोमूत्र में घोलकर इनके द्वारा सेचन करें ।  
चमगिहड़ की विष्टाका लेप करै अथवा जले  
हुये वकरोके लोम, गंधकी हड्डी, हाथीके नख  
वा गौ की पूंछ के लोमों का लेप करें ॥ क-  
पिला गौके मूत्र की नस्य परमहितकारी होती  
है ॥ इसी तरह कुता, सिग्कटा, बिल्ली और  
सिंहादिक जीवों के मूत्रकी नस्य भी उत्तम  
होती है । भांडगी, वच, नागदन्ती, तथा दो-  
नों प्रकार की अपराजिता और भेड़ासिंगी  
तथा मालकांगनी और नागदन्ती इन तीनों  
प्रयोगों को गोमूत्र में पीसलेवें फिर इसमें से  
पांच वा छः विन्दुनाक में डालें । त्रिफला,  
त्रिकुटा, दारुहस्ती, जवाखार, फणिञ्चक,  
निसोध, आंगा, कंजा के फल इनको पीस  
कर वकरो का मूत्र और तेल अग्निपर चढ़ादे ।  
पक होने पर इसकी नास लेवै तो अपस्मार  
दूर होजाता है ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठचलवणानि च ।  
भार्गवचूर्णितं नस्तः कार्यमधमनं परम् ॥  
कायस्थानशारदान्मुद्गान्मुस्तोशीर्यवां-  
स्तथा ॥ सव्योपान्स्तमूत्रेण पिष्ट्वाव-

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुर्कुर्वत्यपस्मारंदोषाः प्रकुपितायथा ॥  
सामान्यतः पृथक्त्वाच्च लिङ्गं तेषां च भेषज  
म् ॥ महागदसमुत्थानं लिङ्गं चोवाचसौ प  
धम् ॥ मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्मारचि  
कित्सिते ॥

अर्थ—इस अपस्मार चिकित्सित अध्याय  
में पुनर्वसुने अपस्मार के हेतु, प्रकुपित दोषों  
के द्वारा रोगकी उत्पत्ति, तथा सामान्य री-  
ति से पृथक् पृथक् उसके लक्षण और औ-  
षध, महागदकी उत्पत्ति लक्षण और औ-  
षध ये सब बातें संक्षिप्त और सविस्तर उ-  
भय प्रकार से वर्णन की हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि  
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहिताय  
चिकित्सितस्थानेऽपस्मारचिकित्सितं  
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

— ( ) :—

षोडशोऽध्यायः

अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितव्याख्यास्याम  
इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम क्षतक्षीण रोगोंकी चिकित्सा  
का वर्णन करेंगे ।

उदारकीर्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयः परमार्थवित् ॥  
क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाह चिकित्सि  
तम् ॥

अर्थ—उदारकीर्ति, ब्रह्मर्षि और परार्थ  
वित्, आत्रेयने क्षतक्षीण की चिकित्सा के  
निमित्त यह अध्याय वर्णन किया है ॥

क्षतरोगकाहेतुः

धनुषपायस्य तोऽत्यर्थं भारमुद्धहतो गुरुम् ॥  
पततो विषमो चेभ्यो युध्यमानस्य चाप्रिकेः  
रुपं हयं वा धावन्तं दम्प्यं वान्यं निगृह्णतः ॥  
शिलाकाष्ठान् निर्धातान् क्षिपतो निघ्नतः  
परान् ॥ अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरं वा ब्रज  
तोद्भुतम् ॥ महानदीं वा तरतो गजैर्वासह  
धावतः ॥ सहस्रोत्पातो दूरं तूर्णं चातिम  
नृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशम-  
भ्याहतस्य वा ॥ विसृते वक्षसि व्याधिर्व  
लवान्समुदीर्यते ॥

अर्थ—धनुष लेकर अत्यन्त डोलना  
बहुत भारी बोझको उठाना, उंचे नीचे  
स्थानोंसे गिर पडना, अधिक बलवान् के  
साथ युद्ध करना, दौड़ते हुये बैल वा घोड़े  
के रोकने का प्रयत्न करना, शिला, काठ  
वा पत्थर का मुद्गर फेंकना और उनसे  
शत्रुओंका मारना, बहुत चिल्ला चिल्लाकर  
पडना, जोरसे दूर तक भागते हुए चला  
जाना, गम्भीर बड़ी नदी में तैरना, हाथी  
घोड़ोंके साथ दौड़ना; सहसा उछलकर दूर  
जा पडना, वेगसे नृत्य करना वा और  
और काठिन्यमोंको करना । इन सब बातों  
से आहत होकर वक्षःस्थल में घाय हो जाता  
है तब बलवान् व्याधि का उदय होता है।  
क्षीणरोगकाहेतुः ।

स्त्रीषु चातिमसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः  
अर्थ—रूक्ष, अल्प और थोड़ा खानेवाला  
मनुष्य जो स्त्रियोंसे अत्यन्त संगम करता है  
उसके क्षीणरोग होता है ।

क्षतक्षीणकेलक्षण ।

उरोऽनिरुज्यतेतस्यभियतेऽयविदहते ॥

मपीड्यतेततःपार्श्वेभृष्यत्यङ्गमवेपते ।

क्रमादीर्य्यवलंबर्णोरुचिराग्निश्चहीयते ॥

ज्वरोऽन्यथा मनोऽनैर्य्यविद्भेदोऽग्निवधस्त

थादुष्टःश्यावःसदुर्गन्धःपीतोविग्रांथितो

बहुः । कासमानस्यचक्ष्रेष्वासरक्तःसंम

वर्त्तते । सक्षतःक्षीपतेत्यर्थं तथाशुक्रौ

जसोक्षयात्

अर्थ—जिनके क्षतक्षीण रोग होतेहैं

उनके हृदयमें वेदना, भेदन और दाह होता

रहताहै पसलीमें पीडा, अंग का शुष्क होना

और शरीरका कांपना ये बातें भी होतीहैं ।

क्रम २ से वरु, वर्ण रुचि, और अग्निक्षीण

होती चलीजाती है । ज्वर, व्यथा, मनमें

दीनता, पुरीषभेद और अग्निमान्द्य होता है।

खांसीके साथ विगडा हुआ, कुछ काला,

दुर्गन्ध युक्त, पीतवर्ण, गांठदार, बहुतसा कफ

रुधिर निकलताहै ॥ इस प्रकार क्षतयुक्त

प्राणी अत्यन्त क्षीण होजाता है और शुक्र

आदि के क्षीण होने से भी प्राणी ऐसे ही

क्षीण होजाता है ॥

क्षतक्षीण के वैशेषिकलक्षण ।

अव्यक्तलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ।

उरोरुक्शोणितश्छर्दिःकासोवैशेषिकः

क्षते । क्षीणिसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वेष्टकाटिग्रहः॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त लक्षण जब तक

अस्पष्ट हों तब तक उनको इन दोनों रोगों

के पूर्वरूप कहते हैं । क्षतरोग में वक्षःस्थल

में पीडा रुधिरकी, वमन, और खांसी होती

है । क्षीणरोग में रुधिर सहित मूत्र, पसली

पीठ और कमर में जकडन होतीहै ।

साध्यासाध्यलक्षण ।

अल्पलिंगस्यदीप्ताग्नेःसाध्योवलवतोऽनरः  
गतेसम्बत्सरेयाप्यःसर्वलिंगतुवर्ज्येत् ॥

अर्थ—दोपोंका अल्प लक्षण, अग्निकी

तीव्रता और रोगीका बलवान् होना, जब ये

बातें होतीहैं तब उक्त रोग साध्य होतेहैं ।

एक वर्षके पुरानेरोग याप्य होतेहैं और जि-

न रोगोंमें पूर्ण लक्षण होजाते हैं वे

असाध्य होतेहैं ॥

क्षतमंचिकित्सा ।

उरोमःवाक्षतलाक्षांपछसामधुसंयुताम् ।

सद्यप्यबपिवेर्जीणपयसाद्यात्सशर्करम् ॥

पार्श्ववस्तिरुज्ज्वलपित्ताग्निस्तांसुरायु

ताम् । भिद्यविट्कःसमुस्तातिविपांषाढां

सवत्सकाम् ॥ लाक्षांसर्पिमधूच्छिष्टंजीव

नीयगणंसिताम् । त्वक्क्षीरीसन्मिर्तक्षीरे

पक्त्वादीक्षानलःपिवेत् ॥ इक्ष्वालिफवि

सग्राथिपक्षकेसरचन्दनैः । शृतंपयोमधु

युतंसन्धानार्थंपिवेत्क्षती ॥

अर्थ—हृदयमें घायका अनुमान होनेपर

लाख को दूध और शहतके साथ तत्काल

पान करावे और औषधके जर्जी होनेपर

दूध और चीनीके साथ भोजन कराने ॥

यदि पसली और वस्तिमें वेदना होती हो

और पित्ताग्नि अल्प पडगई हो तो लाख

को मध्यमें मिलाकर पान करावे । मक्के

फटेनेपर मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्र

जी का काथ देवे । अग्नि के तीव्र होनेपर

लाख, घी, मोम, जीवनीय गणोक्त द्रव्य मिथी, यशलोचन इन का समान भाग लेकर दूध में औटाकर पीये । क्षत के संधान करने के लिये इक्ष्वालेक, फमल की जड़, नागकेसर, रक्तचन्दन इनको दूध में औटाकर शहत डालकर पीये ॥

यवानांचूर्णमादायक्षीरसिद्धघृताप्लुतम् ।  
ज्वरदाहसिताक्षौद्रशयतृन्वापयसापिबे-  
त् ॥ कासीपर्वास्थिशूलचलिह्यात्सघृत-  
माक्षिकाः । मधुकमधुकद्राक्षात्पक्षीरी-

पिप्पलीयलाः ॥

अर्थ....ज्वरदाह में जोके चून को दूध में सिद्ध करके बहुतसा घी डालकर पीये अथवा मिथी शहत और सत्तूको मिलाकर दूध के साथ पीये, जो रोगी के खांसी होवे अथवा पोट्ट और हड्डियों में बदन हो तो महुआ, मुलहटी, दाख, यशलोचन, पीपल और खैरटी, इनके चूर्ण को घी और शहत में तानकर सेवन करे ।

पलादि बटिका ।

पलापत्रवचोर्ध्वाक्षाःपिप्पल्यर्षपलंतथा-  
सितामधुकवज्जूरमृद्धीकाधपलोमिताः ॥  
संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंमकल्पयेत् ।  
अशतुल्यास्ततश्चैकामशयेन्नादिनेदिने-  
कासंश्वासंज्वरंहिकांछादिमूर्च्छामिदंभ्रम-  
म् ॥ रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरो-  
चकम् । शोषप्रीहाद्व्याताश्चस्वरभेदंक्षत-  
सपम् ॥ गुलिकातर्पणावृत्त्यारक्तपित्त-  
ञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—छोटी इलायची, तेजपात, दाखचीनी

इनमें से प्रत्येक आधे २ तोला, पीपल दो, तोला, मिथी, मुलहटी, खजूर और दाख प्रत्येक चार तोला, इन सब को पीसकर शहत में तोले तोले भरकी मोली बनाले और प्रति दिन एक गोली का सेवन करे तो खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, यमन मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तनिष्ठीवन, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोष प्रीहा, आद्व्याता स्वरभंग, क्षत, क्षीणता और रक्तपित्त इतने रोग नष्ट होजाते हैं । येगोली तुलिका और वृष्य होती है ।

रक्तेऽतिरुहेदक्षाण्डयूपैस्तोयेनवापिधेत ॥

चटकाण्डरसंवापिरक्तवाद्यागजाङ्गलम् ।

चूर्णपौनर्नवरक्तशालितण्डुलशर्करम् ॥

रक्तप्लीवीपिबेत्सिद्धद्राक्षारसपयोधृतैः ।

मधुकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम् ।

मृदवातस्त्वजामेदःपुरागृष्टसंन्धवमृक्षा

मःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वनिद्रःसबलेऽनले ॥

शृतक्षीररसेनाद्यात्तक्षौद्रघृतशर्करम् ॥

अर्थ—रुधिरके अत्यन्त निकलनेपर मु-

नो के अंडे, आं चिट्टियाके अंडों का रस

वा बकरी या जोगल जीवों का रक्त मूत्र या

जल के साथ पीये । साठ, छाल शाली चा

वल, शर्करा, द्राक्षारस दूध और घी इनको

मिलाकर पानेसे रुधिर बन्द होजाता है ।

महुआ और मुलहटीको दूधमें औटाकर अ

थवा खोलाई की जड़को दूधमें औटाकर

पीये । मृदवातरोगी बकरके मूत्रको मुरागे

गर्भ करके संधानमद्य डालकर पीये ॥

वातकी अधिकता से जब क्षत रोगी रुध

और क्षाण हाजाय और निद्रा जाती रहै  
तो औंटे हुए दूध के साथ मांसरसका सेवन  
करे उसमें शहत, घी और चीनीभी डाललेवै  
शर्कराञ्चपयसौद्रजचिकर्षभकोमधु ॥  
शृतक्षीरानुपानंवालिह्यात्क्षीणःक्षतःकृशः  
क्रव्यादमांसनिर्ग्रहघृतभृष्टपिबेच्चसः ।  
पिप्पलीचौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्दनम्  
न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थप्लक्षशालमियमुभिः ॥

तालमस्तकजम्बूत्वक्पियालैश्रसपत्रकैः॥  
साध्यकर्णैःशृतात्क्षीरादद्याज्जातेनसर्पि  
पा । शालयोदनक्षतोरस्कःक्षीणशुक्रद्वच  
मानवः । यष्ट्याह्वानागवलयोःकाथेक्षी-  
रसमेधृतम् ॥ पयसापिप्पलीचांशीकल्क  
सिद्धंक्षतेभुभम् । कोललाक्षारसेतद्रत्नी  
राष्ट्रगुणसाधितम् । कल्कःकट्वद्गदावी  
त्यम्बत्सकत्वयफलैर्धृतम् ।

अर्थ—जब क्षतक्षाण रोगी कृश होजाय  
तब वह शर्करा, जीका चून और शहत अ  
थवा जांवक, ऋषभक और शहत को चाट  
कर ऊपर से गरम दूध पीवै । मांस और  
कधिरकी चूदिके लिये मांसाहारी पशुओं के  
मांस रसको घी में छोंककर पीपल और श-  
हन मिलाकर सेवन करे । अथवा बड़, गुलर  
पीपल, काँकर, प्रियंगु, ताडकाछाल, पियाल  
जामनमोछाल, पञ्जाव, अद्यकर्ण ( शालका  
भेद ) इनको डालकर दूध ओंटावे, इस दूध  
में से घृत निकाल कर शाली चावलों का  
भात सेवन करे तो वक्षःस्थल का क्षत और  
शुक्रकी क्षाणता दूर होजाताहै । अथवा  
मुटहरी और नागवलयके काय में दूध और

घी समान भाग डाले तथा क्षीर काकोली,  
पीपल और वंशलोचन डालकर पान करे  
तो क्षतरोग दूर होजाता है । अथवा बेर और  
लाक्षारस का समान भाग घी और दूध में  
ओंटाकर पूर्ववत् सेवन करे । अथवा सीना-  
पाठा, दारुहलदी की छाल, कुडाकी छाल  
इनको घृतसे अठगुने दूध में ओंटाकर से-  
वन करे ।

अमृत प्राशघृत ।

जीवकर्मभकौवीरांजीवन्तीनागरशटीम् ।  
चतस्रःपर्णिनीमैदकाकोल्याद्रेनिदिग्धिके  
पुनर्नयेद्रेमधुक्रंसात्मसुप्तंशतावरीम् ॥  
क्रद्धिपरुपकंभार्गीमृद्धीकांघृहर्ततथा॥श्रद्धा  
टर्कीतामलकीपयस्यापिप्पलीचलाम्बद  
राक्षोदत्तज्जूरचातामाभिपुकाप्यपि ।  
फलानिचैत्रमादीनिकलकान्धुर्वीतकापिका  
न् । धात्रीरभविदारीक्षुछागमांसरसंपयः  
कुट्यात्प्रस्थोन्मितेनघृतप्रस्थंविपाचयेन्  
प्रस्थार्द्धमधुनःशीतेशर्करादितुलांतथा ।  
द्विकार्पिकाणिपद्मलाहमेतद्भूमरिचानिच॥  
चूणितानिविनीयास्माल्लिह्यन्मात्रांसदा  
नरः॥अमृतप्राश्यमित्येतन्नराणाममृतघृतम्  
सुधामृतरसंमाश्यक्षीरमांसरसाग्निनानष्ट  
शुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकपितान्स्त्री  
मसक्तानक्रुशानवर्णस्वरहीनांश्चहृदयेत् ।  
कासद्विक्लाञ्ज्वरश्वासदाहतृष्णासपित्तनु  
त् । पुत्रदंयमिगूर्च्छाहयोनिमूत्रामेयागहम्  
अर्थ—जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली,  
जीवन्ती, सोंठ, कचूर चारोपर्णी [ शालिः  
पर्णी, पृथिवीपर्णी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी ]

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छो  
 टी कटेरी, बड़ीकटेरी, सफेदसांठ, लालसां-  
 ठ, मुलहटी, केंच, सितावर, आदि, फालसा,  
 भांडगी, दाख, बड़ी कटेरी, सिंघाड़ा, भूम्यां  
 बला, विदारीकन्द, पीपल, खैरटी, बेर अ-  
 ग्वरोट, खजूर, बदाम, पिस्ता, तथा अन्य ऐसे  
 ही फलोंको एक २ कर्ष लेकर पीसलेवै ॥  
 आंवलेका रस, विदारीकारम, ईखका रस,  
 यकरोका मांमारस, दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ  
 लेकर एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, ठंडी होने  
 पर आधा प्रस्थ शहत, आधा तुला शर्करा  
 तथा तेजपात, इलायची, दाखचीनी, काली  
 मिर्च प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर चूर्ण कर  
 के मिळांदेवै । जो मनुष्य इस अमृतप्राश  
 नामक घृत का प्रति दिन ठीक प्रमाण से  
 सेवन करता है, उसे यह अमृतके समान  
 गुणकारी है ॥ इसपर दुग्ध और मांसरस  
 का अनुपान करै । इसके सेवन से शुक्रश-  
 म, क्षतक्षीणता, दुर्बलता व्याधिसे कर्ष-  
 ता, स्त्री प्रसंग से कृशता, वर्णहीनता  
 और स्वरहीनता ये सब नष्ट होजाते हैं ।  
 तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, दाह,  
 कृष्णा, रक्तापित्त, यमन, मूर्च्छा, योनिरोग,  
 भूत्ररोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ इसके सेवन  
 से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।

स्वदंष्ट्रादिघृत ।

स्वदंष्ट्रोशीरमज्जिगुवलाकाशमर्यकचट  
 णम् ॥ दर्भमूलं पृथक्पर्णीपलाशपर्णभकौ  
 स्थिराम् । पालिकं साधयेत्ते पारसेक्षीर  
 चतुर्गुणे ॥ कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तमिदं कर्ष-

भजीवकैः ॥ शतावर्यमृदिमृदीकाशर्करा  
 श्रावणीविसैः ॥ प्रस्थः सिद्धो घृताद्वा तापि-  
 च दृष्टव्यः शुलजुत् । मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शः कास  
 शोषसयापहः ॥ धनुः स्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रि  
 ज्ञानां वलमांसदः ।

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खैरटी  
 खंभारी, कतृण, दाभकी जड़, पृथक्पर्णी,  
 ढाक, आपमक, शालिपर्णी, इनमें से प्र-  
 त्येकको एक २ पल लेकर इनका काश  
 करै । चौथाई शेष रहनेपर चौगुना दूध,  
 तथा केंच, जीवन्ती, मेदा, आपमक, जीवक  
 शतावरी, आदि, दाख, शर्करा, श्रावणी,  
 कमलनाल, इनका कल्क डालकर एकप्रस्थ  
 घृत सिद्ध करै । यह घृत वातापित्त, कृच्छ्र-  
 ल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्शरोग, खांसां,  
 शोष, क्षयी इनको दूर करता है । जो ध-  
 नुष, स्त्रांसेवन, मद्यपान, भारवहन, मार्ग  
 भ्रमण से व्याधित है उसको बल और मांस  
 का बढ़ानेवाला है ।

मधुकाष्टपलं द्राक्षामस्थक्वाथे घृतं पचेत् ॥  
 पिप्पल्यष्टपले कल्के मस्थं सिद्धे च शीतले ।  
 पृथगष्टपलं क्षौद्रं शर्कराभ्यां विमिश्रयेत् ॥  
 समं शक्नु क्षतक्षीणैरक्तगुल्मे पुतद्विजितम् ॥

अर्थ—मुलहटी आठ पल, दाख एक  
 प्रस्थ, पीपल आठपल, इनके कायमें एक  
 प्रस्थ घृत पक करै ठंडा होने पर आठपल  
 शहत और आठपल शर्करा मिला लेवै फिर  
 इसमें समान भाग सत्तू मिलाकर मात्रावत्  
 सेवन करै तो क्षतक्षीणता और रक्तगुल्म  
 दूर होजाते हैं ।



धायादिघृत ।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात्  
छागगोपयसोश्चैवसप्तस्थानपचोद्विपक्व  
सिद्धशीतोसिताक्षौद्राद्विप्रस्थांविनयेत्ततः ॥  
यक्ष्मापस्मारपित्तासृकासमोहक्षयापहम् ।  
वयःस्थापनमायुष्यमांसशुक्रबलप्रदम् ॥

अर्थ—आंवलेका रस, विदारीका रस ई-  
खंका रस, जीवनीय द्रव्योंका रस, घृत,  
बकरीका दूध, गौका दूध, ये सब एक एक  
प्रस्थ लेकर पकावें । जब ठंडा होजाय तब  
उसमें एक २ प्रस्थ मिश्री और शहत-  
मिलादेवें । इस घृतका सेवन करने से य-  
क्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, मोह और  
क्षयरोग दूर होजाते हैं । यह घृत वयः  
स्थापन कर्त्ता, आयुवर्द्धक, मांसवर्द्धक, शु-  
क्रोत्पादक और बलकारक होता है ॥

घृतंतुपित्तेऽभ्याधिकेलिखेद्वातेऽधिकेपिवेत्  
लीङनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्दन्तिनानिल-  
म् ॥ आक्रामत्यनिलं पतिमूष्माणानिरुण-  
द्धि च । क्षामभीणकृशाङ्गानामेतायेवघृता-  
नि च ॥ त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैः पा-  
नानियोजयेत् । सर्पिर्गुडान्समध्वंशान्  
जग्ध्वादघात्पयोनुच ॥ रेतोवीर्य्यबलं  
पुष्टिर्गैराशुतरमाप्नुयात् ॥

अर्थ—इस क्षतक्षीण रोगमें पित्तकी अ-  
धिकता होने से घृतको चाटें, वातकी अ-  
धिकता में घृतका पानकरें, क्योंकि चाटा-  
हुआ घृत थोड़ा होनेके कारण पित्त को  
शान्त करदेताहै किन्तु वायु नष्ट नहीं करने  
पाता है । पिपाहुआ घृत वायुको नष्ट कर  
देता है और ऊष्मा को रोकदेताहै ॥ दुर्बल,

क्षीण और कृश मनुष्योंको ऊपर कहेहुये  
घृत वंशलेचन, मिश्री और लाजचूर्ण डा-  
लकरदेवें ॥ सर्पिर्गुडमें मधु मिलाकर देवें  
ऊपर से दूधका अनुपान करावें, तौ रोगी  
शीघ्रही शुक्र, वीर्य, बल और पुष्टि से युक्त  
होजाता है ॥

सर्पिर्गुड ।

चलांविदारीह्रस्वश्चमूर्लीपुनर्नवाम् ।  
पञ्चानांक्षीरिबृक्षाणांशुद्धामृत्प्यंशकाम  
पि ॥ एपांकपायेद्विर्क्षीरेविदार्याजरसां  
सिकोजीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैघृताढ-  
कम् ॥ सितापलानिपूतेऽस्मिन्शीतेवा  
त्रिशतंक्षिपेत् ॥ गोधूमपिप्पलीवांशचू-  
र्णमृद्गाटकस्य च । सक्षौद्रगुडवांशेनतत्  
सर्वस्वजमूर्च्छितम् ॥ सत्यानं सार्पिर्गुडान्  
कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् । तान्जग्ध्वापलि-  
कान्क्षीरमयवानुपिवेत्कफे । शोषेकासे  
क्षतेक्षीणेश्वरस्त्रीभारकापितः ॥ रक्तनिष्ठी-  
वनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते ॥ शस्ताः  
पाश्वरिशिरःशूलेविभेदेस्वरवर्णयोः ।

अर्थ—खैरटी, विदारीकन्द, लघुपंचमूल  
साठ और पांचों क्षीर बृक्ष, ये प्रत्येक एक  
एक पल लेकर इनका काथ करे ॥ फिर  
इस काथमें काथसे दूना दूध, विदारी का  
रस, बकरेका मांसरस और घृत एक एक  
आढक लेवें और इसी में जीवनीय, गणोक्त  
द्रव्य दो दो तोले डालदेवें । जब पकाते  
पकाते घृत शेष रहजाय तब छान कर  
ठंडा होने पर वर्तसपल मिश्री डालदे-  
वें और गेहू, पीपल, वंशलेचन, मिवाड़ा,

ज्ञाता, प्रवर, पुनर्वसु ने निज आगन्तुक, एकांगज, सर्वांगज, शोथों के वातादि दोषों से किये हुए तीन भेद वर्णन किये ।

**निजशोथके कारण ॥**

शुद्धामपामाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णाप्यगुरुपसेवा । दध्याममृच्छाकाविरोधिदुष्परोपमृष्टान्ननिपेवणंच ॥ अर्शास्पृशेष्टानचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविपमाप्रसूतिः । मिथ्योपचारःप्रतिकर्मणाञ्च निजस्येहतुःश्रययौमादिष्टः ॥

**अर्थ—**संशोधन क्रिया, रोग और निराहार रहनेसे जो मनुष्य कृश और दुर्बल होगये है उनके क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु, पदार्थों के सेवन से, दही कच्चा-पदार्थ, शाक, विरोधी अन्न, दुष्ट भोजन, विषसंसृष्ट भोजन के अत्यन्त करने से अर्शादि रोगों से, चेष्टा न करनेसे, देहकी शुद्धि न होने से, मर्म में चोट लगने से, विपमरीति से प्रसूति होनेके कारण, शोधन क्रियाओं के मिथ्या उपचार से निज शोथ उत्पन्न होता है ।

**आगन्तु के लक्षण ।**

वाद्यास्त्वचोद्वृषयिताभिघातः ।

फाष्ठाश्मशस्त्राभ्यग्नीविपाद्यैः ॥

**अर्थ—**एकड़ी पत्थर, शस्त्र, आग्नि, यज्ञ विग आदिकी चोट बाहरकी त्वचा पर लगने से आगन्तुशोथ होता है ।

**शोफके भेद ।**

आगन्तुहेतुःत्रिविधोनिजश्च ।

सर्वादिगात्रावयवाभ्रतत्वात् ॥

**अर्थ—**आगन्तुनिमित्तक तथा तीन प्रकारकी निजशोफ सर्वांग अर्द्धांग या अर्द्धांग अगावयव का आश्रय लेकर उत्पन्न होती है ।

**चातिकशोथ का हेतु ।**

वाद्याःसिराः प्राप्ययदाकफासृकरूपिताः  
निसंदूषयतीहवायुः ॥ तैर्वद्मार्गःसतः  
दाविसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयधुङ्करोति ॥

**अर्थ—**वायु जब बाहरकी शिराओंका ग्रहण करके कफ, रक्त और पित्तको दूषित करती है, तब कफादिके द्वारा वायुके बाहर निकलने का मार्ग बन्दहोजाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैलती हुई शोफको उत्पन्न करती है । देह के किसी भागके फूल जाने का नाम शोथ है ।

**नामपरत्वसे शोथों के भेद ।**

उरःस्थितैरूर्ध्वमपस्तुवायोः स्थानस्थि-  
तैर्मध्यगतैस्तुमध्ये ॥ सर्वांगगैःसर्वगतैः  
कचित्तस्थैर्दोषैःकचित्स्यात्स्वयधुस्त-  
दाख्या ॥

**अर्थ—**दोषों के ऊर्ध्वस्थान में स्थित होनेसे देह के ऊपर छे भागों में सूजन होती है, इसी तरह नीचे के अवयवों में स्थित होनेसे नीचे और बीच में स्थित होनेसे मध्य देह में सूजन होती है । दोषों के सम्पूर्ण देह में विचरने से सर्वांगगामी शोफ होती है तथा शरीर के जिस २ विभागमें दोष स्थित होकर सूजनको उत्पन्न करते हैं वह सूजन उसी स्थान विशेष के नामसे कहलाती है । ऊष्मातयास्याद्वयधुः शिराणा मायास इत्येवचपूर्वरूपं ॥ सर्वास्त्रिदोषोऽधिक

दोषलिंगैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिषकृजितंच  
अर्थ—सूजन उत्पन्न होनेसे पहिले देह में गरमी और दाह होता है, नसें फूल जाती है, सब प्रकारकी सूजन त्रिदोष से होती है, इन में जिस दोषकी अधिकता होती है, उसी के नाम से यह सूजन कहलाती है और उसी प्रधान दोष पर दृष्टि रखकर चिकित्सा की जाती है।

**शोफके सामान्यलक्षण ।**

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वं । सोत्सेधमु  
प्याथशिरातनुत्वम् । सलोमहर्षांगविवर्णता  
चसामान्यलिंगाश्चयथोऽप्रदिष्टम् ॥

अर्थ—भारपन, चंचलता, ऊँचापन, गर्मी, नसों का पतलापन, लोमहर्षण, अंग की विवर्णता, ये सब सूजन के सामान्य लक्षण हैं।

**वाताधिक्यशोफ के लक्षण ।**

चलस्तनुत्वकूपरूपोऽरुणोशितः सुपुतिह  
पीत्तिद्युतोनिमित्ततः ॥ प्रशाम्यतिप्रोन्न  
मतिमपीदितो । दिवावलीचश्वयथुः  
-समारणात् ॥

अर्थ—वायुकी अधिकता से सूजन स्थानान्तर में जाती रहती है, खालपतली पड़ जाती है, और उसका वर्ण पुरुष, छाल का काला पड़जाता है सूजनकी जगह सुन्न, रोमाञ्चित और वेदनायुक्त होती है, हेतु विपरीत औषध से ये शान्त होजाती है । दवाने पर फिर ऊँची होजाती है, दिन में इसका वेग बढ़जाता है ॥

**पित्ताधिक्यशोफके लक्षण ।**

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान् । भ्रमज्व

रस्वेदतृषामदान्वितः । यउप्यतेस्पर्शस-  
होऽक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान्

अर्थ—पित्ताधिक्य शोफ कोमल, गन्ध युक्त, काली, पीली वा छाल होती है इसके होने से चकर, ज्वर, पभीना, तृषा, और भद होता है ॥ इस सूजन में हाथ लगाना बुरा मालूम होता है, आँखें बाल पड़जाती हैं, दाह और पाक बहुत होता है ।

**कफाधिक्यशोफके लक्षण ।**

गुरुःस्थिरःपाण्डुरोचकान्वितःमसेकनि  
द्रावमिविहमान्यकृत् ॥ सुकुच्छजन्ममशमो  
निपीडितोनचोन्नमेद्रात्रिवलीकफान्वितः

अर्थ—कफाधिक्य शोफ भारी, अचंचल और पांडुरंगका होता है, इसके होने से अन्नमें अरुचि, लार टपकना, निद्रा, वमन और मंदाग्नि होती है, इसके उत्पन्न होने और शान्त होने में बड़ी कठिनता होती है दाबनेपर फिर उठती नहीं है रात्रिके समय इसका वेग बढ़जाता है ।

**असाध्य शोफके लक्षण ।**

कृशस्यरोगैरवलस्यथोभवेदुपद्रवैर्वावामि  
पूर्वकैर्द्युतः । महार्तिमर्मानुगतोऽधराजि-  
मान्परिस्रवन्भीमबलश्चसर्वेशः ॥

अर्थ—कृश मनुष्यकी, रोगसे दुर्बल मनुष्य की, वमनादि उपद्रवों से युक्त सूजन, मर्म स्थान की सूजन, रेखाओं की सूजन सावयुक्त सूजन और हीनबल पुरुष की सूजन असाध्य होती है ।

**साध्य शोफ के लक्षण ।**

अहीनगांसस्ययएकदोषजोनवोबलस्तः

स्यसुखःसप्ताधने । निदानदोषर्तुविपर्यय  
यक्रमैरुपाचरेत्तत्तलदोषकालवित् ॥

अर्थ....जिसका मांस क्षीण न हुआ हो  
उन्से बलवान् व्यक्ति की एक दोष से उत्प-  
न्न हुई नवीन-सृजन सुख साध्य होती है ।  
बल, दोष और काल को जाननेवाले वैद्य  
को उचितहै कि इस की चिकित्सा निदान,  
दोष और ऋतुकी विपरीततासे करे ।

निमित्तिताक्रम ॥

अधामज्जलंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुत्प-  
णदोषमादितः । शिरोगतशीर्षाचरेचनैर-  
धोविरेचनैरूर्ध्वहरीस्तपोर्ध्वजम् ॥ उपा-  
चरेत्स्नेहगतविरुद्धैः प्रकल्पयेत्स्नेहवि-  
धिञ्चरुक्षजे । विषदाविट्केनिलजेनिरु-  
हणंघृतन्तुपित्तानिलजेसत्तित्कम् ॥ प-  
यश्चमूर्च्छारतिदाहतपितेविशोधनीयेतुस-  
मूत्रमिष्येत । कफोत्थितंभारकटूष्णसंगु-  
तैःसम्पूतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥

अर्थ — आम से उत्पन्न सृजन को लंघन  
और पाचन से, उत्पन्न दोष वाली सृजन  
को विशोधन द्वारा, अधोगामी शोफ को  
दस्त फराके, उर्ध्वगामी शोफको यमन करा-  
के, घृतको अधिक सेवन से उत्पन्न शोथको  
विरुक्षण क्रियासे, रुक्षज शोफको स्नेह  
विधिसं, जीतने का उपाय करे । विषन्धयु-  
क्त यातज शोफ को निरुद्धणवस्ति से, वा  
या पित्तज शोफ को तिक्तक-घृत से, विजय  
करे । मूर्च्छा, अराति, दाह और तृणासे यु-  
क्त सृजन में दूधको और विशोधन के यो-  
ग्य सृजनमें गोमूत्रमिलाकर दूध को देवे ।

इसीतरह कफज शोफमें क्षार, कटु, उष्ण  
द्रव्यों से युक्त गोमूत्र मिले हुए तक्र-वा  
आसव का प्रयोग करे ॥

सृजन में त्याग के योग्य पदार्थः  
ग्राम्यान्पंपिशितलवणंशुष्कशाकंनवान्न-  
म् । गौर्दं पिष्टं दधितिलकृतांविज्वलंमद्यम-  
म्लम् ॥ धानावल्लूरसमशनमथोगुर्वसा-  
स्म्यंविदाहि । स्वप्नश्चराशौष्यधुगद-  
वान्वर्जयेन्मैथुनंच ॥

अर्थ—ग्राम्य और आनूप पशुओं का  
मांस, लवण, सूखाशोफ, नवीन अन्न, गुड़  
के पदार्थ, पिट्ठी के पदार्थ, दही, तिलके  
पदार्थ, कुछ रसीले व्यंजन, मद्य, खटाई,  
जौ की धानी, सूखामांस, समशन, भारी,  
असात्म्य और विदाही अन्न, रात्रिमें सौना  
और मैथुन इन कर्मों का परित्याग शोथ  
रोगी को करदेना उचित है ।

कफज शोफ पर प्रयोग ॥

व्योपंत्रिष्टित्तिकरोहिणीचसायोरजस्का-  
त्रिकलारसेन । पीतंकफोत्थंशमयेत्तुशोफ-  
मूत्रेणगव्येनहरीतकीया ॥ हरतिकीना-  
गरदेवदारुमुखाम्बुयुक्तं संपुनर्नवंवा । सं-  
र्वपिवेध्विष्वपिमूत्रयुक्तंस्नातश्चजर्णिपय-  
सान्नमद्यात् ।

अर्थ—त्रिकुटा, निसोथ, कुटकी, लोह  
चूर्ण इनको त्रिकलके रस के साथ पानक-  
रै अथवा हरड़के चूर्ण को गोमूत्रके साथ  
पानकरें तो कफकी सृजन दूर होजाती है ।  
अथवा हरड़, सोंठ, देवदारु और सोंठ इन  
के चूर्ण को गरम जलके साथ फाँके तो क

फ की सूजन जाती है अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के साथ फांके तो तृतीयां प्रकार की सूजन दूर होजाती है, औषध के पचने पर दूधके साथ अन्न का सेवन करें ॥

वातज शोफ के प्रयोग ।

पुनर्नवानागरमुस्तकलकानमस्थेनधीरः  
पयसोऽक्षमात्रान् । ययूरकं पागधिकांसमू  
लासनागरांवाप्रविचेत्सवाते ॥ दन्तीत्रि  
हृत्पणचित्रकैर्वापचःशृतदोषहरं पिवेत्त्रा  
क्षिप्रस्थमात्रञ्चपलाजिकैस्तैर्द्धाशिष्टं  
पचनेसापित्ते । सधृण्डिपीतदुरसंप्रयोज्यं  
श्यामोरुधूकोपणसाधितंवा ॥ त्वग्दारुव  
र्पान्तमहौषधैर्वागुडचिकानागरदन्तिभिर्वा

अर्थ—सांठ, सोंठ और मोथा प्रत्येकदो तोला इनको एकप्रस्थ दूधमें औटाकर आधा शोष रहने पर पान करें । अथवा ओंगा की जड़, पीपल, पीपलागूल और सोंठ इनको ऊपरकी रीतिसे पीये तो वातकी सूजन जाती रहती है । अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा, चीता इनको दूधमें डालकर औटावे और पान करें तो सूजन के दोष दूर होजाते हैं ॥ अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा चीता इनको आधे आधे पल लेकर दो प्रस्थ दूध में औटावे जब एक प्रस्थ रहजाय तब पान करें तो वातपित्त का शोफ दूर होजाता है ॥ सोंठ और देवदारु का काथ दूध के साथ पीने से अथवा काली निसोथ, अरंड की जड़ और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर अठगुने दूध और उससे चौगुने जल में चढाकर दूध शोष रहने पर छानक

र पीये तो वातपित्त की सूजन जाती रहती है ॥ अथवा दालचीनी, दाहहलदी, पुनर्न वा और सोंठ, अथवा गिलोय, सोंठ और दन्ती इन दोनों में से किसी को दूधमें औटाकर पान करने से वातपित्त की सूजन दूर होजाती है ॥

सप्ताहमौष्ट्यदिवापिमांसपयःपिवेद्भोजन  
वारिवर्जी । गव्यंसमूत्रंमहीपपीपयोवाक्षाः  
राशनंमूत्रमयोगवांवा ॥ तत्रापिधेद्रागुरु  
भिन्नवर्चासव्योपसौवर्चलमाक्षिकंवा ।  
गुढाभयांवागुडनागरांवासदोषभिन्नाम  
विवद्धवर्चाः ॥ विद्धवातसंक्षपपसारसैर्वा  
प्राग्धृक्तमयादुरुचूक्तैलम् । स्रोतोविषं  
न्येऽग्निरुचिप्रणाशमद्यान्परिष्टांश्रपिषे  
त्सुजातान् ॥

अर्थ—वातपित्तकी सूजनमें भोजन और जलको छोड़कर एक सप्ताह या एक महीने तक केवल ऊंटनी का दूध पीकर रहे अथवा इसी तरह से गोमूत्र और भैंस के दूधका सेवन करें, अथवा गौ के दूध को भोजन में और पीने में प्रयुक्त करें । सूजन में मलका अत्यन्त भेद होनेसे त्रिकुटा संचलनमक और राहत डालकर मठा पीये दोनोंके द्वारा भिन्न हुए आम और विवद्ध मूत्रमें गुड और हरड अथवा गुड और सोंठका पान करावे । मल और अधोवायु के रुकनेपर भोजन करने से पहिले अंडा का तेल दूध या मांस रसके साथ पान करावे स्रोतोंके बन्द होने पर जठराग्नि और रुचि के नष्ट होने पर उत्तम वने हुए मद्य और अरिष्टों का पान करे ॥

कण्डीराद्यरिष्ट ।

कण्डीरभलातकचित्रकांश्चन्योपविद्धं  
इतीदृशश्च । द्विप्रस्थिकंगोमयपावकेन  
द्रोणेपचेत्काञ्चिकमस्तुनस्तु ॥ त्रिभा  
गशेषंअसुपूतशीतद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुना  
म् । सितोपलायाश्चशतेनयुक्तलिप्तेघटे  
चित्रकपिप्पलीनाम् ॥ वैहायसेस्थापित  
मादशाहात्प्रयोजयंस्तद्विनिहान्तिशोकान्  
भगन्दरार्शः । क्रिमिकुष्ठमेहान् वैवर्ण्यकाश्या  
निलहिकनञ्च ॥

अर्थ....कण्डार, भिलाथा, चीता, त्रिकुटा  
वायविडंग, दोनों कोटरी, इन सबको दो  
प्रस्थ लेकर जौकुट करले फिर इसे एक  
दाण कांजी और दही के तोड़में गौ के गो-  
बरके उपलों की आगपर पकावै । तिहाई  
जलजाने पर इस को उतारकर छान लेवै  
और ठंडा होने पर एक द्रोंण दहीका तोड़ सौ  
पल मिश्री इसमें मिलाकर एक ऐसे घड़े  
में भरदेवै जिस में चीते और पीपलों की  
भावना दी हो, इस घड़े को ढककर छाँके  
पर दस दिन तक ढंगा रहनेदे । फिर इस  
का सेवन करने से सूजन, भगन्दर, अर्श,  
क्रिमिरोग, कुष्ठ प्रमेह, विवर्णता, कृशता,  
वातरोग और हिचकी नष्ट होजाते हैं ।

अष्टाशतारिष्ट ।

काश्मर्यधारीमारिचामयानांद्राक्षाफला  
नाञ्चसपिप्पलीनाम् । शतंशतंजीर्णगु  
हातुलाञ्चससुद्यकुम्भेमधुनाप्रालेप्ते ॥  
सप्ताहमुष्णाद्विगुणन्तुशीतेस्थितंजलद्रोण  
युतापिबेत्ता । शोफान्विवन्धानकफघात

जांश्चसहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽधिकृष्ट ॥

अर्थ....खंभारी के फल, आंवला, कांछे  
मिरच, हरड़, दाख और पीपल, प्रत्येक सौ  
सौ छेवै, पुषना गुड एक तुला इन सब  
को जौकुट करके गुडमें सानकर एक ऐसे  
घड़ेमें भरै जिसमें भीतर शहत पोता गया  
हो और उम घड़ेमें एक द्रोंण जल भी म  
रदेवै, इस घड़ेको गरमी की शक्तमें एक स-  
प्ताह इसी तरह धरा रहने देवै ॥ इस अरि  
ष्टका सेवन करने से सूजन, कफघातज  
विवन्ध दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढ़तीहै ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचबलेसपाठेदन्तीगुहृचीमथचित्रक  
आनिदिगिधकाञ्चात्रिपलानिपक्त्वाद्रोंणा  
र्द्धशेषसलिलेततस्तम् । पूतवारसंक्षेपगुहा  
त्पुराणात्तुलेमधुप्रस्थयुतंसुशतिम् ॥ मां  
संनिदध्याद्घृतभाजनस्थपल्लेयवानांपीर  
तस्तुमासान् । चूर्णाकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं  
पत्रत्वगेलांमरिचाम्बुलोहैः ॥ गन्धान्वि-  
तंक्षौद्रघृतमदिग्धेजीर्णपिबेद्वाधिवलेसभी-  
क्ष्य । हृत्पाण्डुरोगंभयधुंमवृद्धंक्षीहभ्रमारोच  
कमेहगुल्मान् । भगन्दरपद्मजठराणिकासं  
श्वासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ शास्त्रानिलं  
वद्धपुरीषताञ्चहिकां किलासञ्चहलीम  
कञ्च । क्षिपंजयेद्वर्णयलापुरोजस्तेजोन्वि  
तामांसरसान्भोक्ता ॥

अर्थ....सफेद साठ, लालसाठ, खरेटी,  
नागवला, पाठा, दन्ती, गिलोय, चीता और  
कोटरी, इनमें से प्रत्येक को तीन तीन पल  
लेकर एक द्रोंण जलमें घटावै जब आधा

शेष रहजाय तब छानकर ठंडा होने पर इस में दो तुला पुराना गुड और एक प्रस्थ शहत मिलाकर घीके चिकने घड़ेमें भरकर जौके ढेर में एक महीने तक गढ़ा रहनेदेवै । महीने भर पीछे इस में तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिर्च और नेत्रवाला का चूर्ण आधा २ पल डालकर सुगंध युक्त करै ॥ पुराना होने पर इस अरिष्टमें घृत शहत मिलाकर व्याधि और बलके अनुसार सेवन करै तौ हृदरोग, पाण्डुरोग, बढाहुई सूजन, झाँहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्मरोग, भग-न्दर, छःप्रकारके जठररोग खाँसी, श्वास, महणीरोग, कोठ, खुजली, शाखागत धातु, मलकी बढ़ता, हिचकी, फिलास और हली मक, ये सब रोग शीघ्रही दूर होजाते हैं ॥ इस अरिष्टको सेवन फरके मांसरस और अन्नका भोजन करने से वर्ण, बल, आयु, ओज और तेज बढ़ता है ॥

### त्रिफलारिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौचसपिप्पलीलो हरजोविडङ्गम् । चूर्णीकृतकौढविकंदिरंशं सौद्रं पुराणस्य तुलागुडस्य ॥ मासनिदध्या दधृतमाजनस्थं यत्रेपुतानेव निहन्ति रोगान् ।  
अर्थ....त्रिफला, अजवायन, चीता, पीप-ल, लोहमस, बायविडंग, प्रत्येक एक २ कुडव, शहत दो कुडव, पुराना गुड एक तुला इन सबको घी की हाँडी में भरकर महीने भरतक जौ के ढेरमें गाढ़दे और फि-र सेवन करै तौ पूर्वोक्त फलहोय ॥

ये चार्शसापाण्डुविकारिणाश्च । प्रोक्ताः शुभाः शोफिपुतेऽप्यरिष्टाः ॥

अर्थ....अर्शरोग और पाण्डुविकारों में जो २ अरिष्ट वर्णन कियेगये हैं वे सब शो-फमें हितकारी होते हैं ॥

### पिप्पल्यादिचूर्ण ।

कृष्णासपाठागजपिप्पलीचनिदिग्धिका चित्रकनागरेच । सपिप्पलीमूलरजन्य-जाजीमुस्तञ्चचूर्णसुखतोयपतिम् ॥ इ-न्यात्त्रिदोषंचिरजञ्चशोफंकल्कश्चभूनि म्वमहौषधस्य । अयोरजस्त्यूपणयावशू-कंचूर्णञ्चपीतत्रिफलारसेन ॥

अर्थ—पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेरी, चीता, सौंठ, पीपलामूल, हल्दी, कालाजीरा और मोथा इनके चूर्णको गुनगुने जलके साथ फांकनेसे त्रिदोषज पुराना शोफ दूरहो जाताहै, इसीतरह चिरायता और सौंठका चूर्ण गरमजलके साथ फांकनेसे पूर्वोक्त गुण होता है । अथवा लोहचूर्ण, त्रिकुटा, जवा-खार इनके चूर्णको त्रिफला के रसके साथ पीनेसे भी पूर्वोक्त गुण होता है ॥

### क्षारादिवटिका ।

क्षारद्वयस्यालवणानि च त्वार्ययोरजोव्यो पफलत्रिकंच । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम् । कलिङ्गका त्रिचत्रकमूलपाटंसयष्टिकञ्चातिविपपलां शम् ॥ सहिगुर्कपत्वनुसूक्ष्मचूर्णद्रोणं यथा मूलकशुण्डिकानाम् । स्याद्भस्मनस्तत्स लिलेनसाध्यमालोढ्ययावद्यनमपदग्धम् ॥ स्त्यानंततः कोलसमात्तुमात्रांकृत्वा सुष्ठुकाविधिना भजेत् । झीहोदरश्चित्रह-लीमकांस्तुपाण्डुवामयारोचकशोषशो-

फान् ॥ विसूचिकागुल्मगराश्वमरीश्चस

श्वासकासाः प्रणुदेस्सकुप्याः

अर्थ—दोनों प्रकारके खार, चारोंनमक, लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायविडंगकी मींगी, मोधा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरी, इन्द्रजौ, चीते की जड़, पाटा, मुलहठी, और अतीस एक २ पल लेवै और एक कर्प मुनी हुई हाँग लेवै इन सबका महीन चूर्ण करलेवै । फिर मूली और सोंठ की भस्मको अठगुने जलमें डालकर अग्निपर चढ़ादे जब चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानले । फिर इनमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर अग्निपर धरकर चलातारहै जिससे लगने न पावै। गाढाहोने पर बेर की बराबर गोली बनाकर सुखालेवै । इन गोलियोंका विधिपूर्वक सेवन करने से प्लीहा, उदररोग, दिक्त्रकुष्ठ, हर्षामक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोष, शोफ, विसूचिका गुल्मरोग, पथरी, श्वास, खाँसी और कोढ़ शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥

### अन्यप्रयोगः

मयोजयेदाद्रकनागरं वा तुल्यं गुडेनार्द्धपला भिष्टत्वा । मात्रापलं पञ्चपलानि मांसं जीर्णं पेयोयूपरसाक्षभोक्ता ॥ गुल्मोदरार्शः श्वयधुममेहान् श्वासाप्रतिश्यालसकाविपाकान् । सकामलाशोपमनोविकारान्कासं फफूच्चैव जयेत् प्रयोगः ।

अर्थ—अधिपल अदरख वा सोंठ को समानभाग पुराने गुड़के साथ सेवन करै । फिर प्रतिदिन आधा २ पल बढ़ाता रहै,

जब पांचपल पूरे होजाय तब महीने भरतक प्रतिदिन पांचपल का सेवन करता रहै । औषधके जीर्ण होने पर दूध, यूप और मांसरस का सेवन करता रहै । इस औषध से गुल्म, उदररोग, अर्शविकार, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, शोष, मनोविकार, खाँसी और कफ दूर होजाते हैं ।

रसस्तथैवार्द्रकनागरस्य पेयोऽथ जीर्णं पयसान्नमथात् जत्वश्मज्ज्वात्रिफलारसेन हन्यात्रिदोषं श्वयधुमसह ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार ही प्रतिदिन आधे २ पल बढ़ाकर अदरख का रस पान करै, जब पांचपल पर पहुँच जाय तब एक महीने पर्यन्त प्रति दिन पांच पल सेवन करता रहै । औषध के पचनेपर दूध के साथ अन्नका भोजन करै । त्रिफला के क्वाथ के साथ शिलाजतु पीनेसे भी त्रिदोष की सूजन जाती रहती है ।

### हरीतक्यादिप्रयोगः

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कपायेकं सेवमानाश्च शतं गुडस्य । लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णान्यो पत्रिसौ गन्ध्यमुपास्थिते च ॥ मस्यार्द्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादापिया वशकात् ॥ एकाभ्यां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयधुमं प्रष्टुम् । श्वासज्वरारोचकमेहहिकाप्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ॥ काश्यामवातान् सृगम्लपित्तं चैव र्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥

अर्थ—चारसेर दशमूल और सौ हरडको



सोलह सेर जल में भरकर अग्निपर चढ़ा देवै जब चौथाई रहजाय तब उतारकर छान लेवै और हरडोंके भीतर से गुठली निकालकर फेंकदे । फिर उस क्वाथ को हरडोंके गूदे और पुराने गुडके साथ अभिपर चढ़ादे जब चाटने के योग्य गाढ़ी होजाय तब अग्निपरसे उतारकर त्रि कुटा, दाळचीनी, इलायची, तेजपात, इन को पीसकर उसमें डाल देवै तथा आधा प्रस्थ शहत और थोडासा यवशूक डालकर मिलाकर उतार लेवै । फिर प्रतिदिन इनमें से एक हरड खाकर अधेपल चटनी चाट लेवै तौ अत्यन्त बढीहुई सूजन नष्ट होजाती है तथा श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, घ्राहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमशात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, यातदोष, शुक्रदोष ये सब रोग दूर होजाते हैं ॥

पटोलादिघृत ।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्पल्य भयाविशालाः ॥ यष्ट्याह्विकातित्त करोहिणीच । सचन्दनास्यांभिचुला निंदावी ॥ कर्पोत्थितैस्तैः कथितः कपा यो । घृतस्यपेयः कुडवेनयुक्तः । वीसर्पदाहज्वरसन्निपातां स्तृष्णांविपा

णिश्वयधुंनिहन्ति ॥

अर्थ....परवलकी जड़, देवदारु, दन्ती, त्रायमाणा, पीपल, हरड, इन्द्रायणकीजड़, मुलहठी, कुटकी, रक्तचन्दन निचुल और दारुहलदी, इनमें से प्रत्येक को एक एक क-

र्ष लेकर अठगुने जल में चढ़ा दे चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और इस क्वाथ में एक कुडव घृत डालकर फिर पकावै जब घृत शेष रहजाय तब नित्यप्रति मात्राके अनुसार सेवन करै तौ विसर्प, दाह ज्वर, सन्निपात, तृष्णा विपरीग और सूजन दूर होजावैगी ॥

चित्रकादिघृत ॥

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजी । सौवर्च लंघ्यूपणवेतसाम्लम् । विल्वात्फलंदाडिमयावशूकौ । सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥ पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेन पक्त्वाघृतप्रस्थमथोविदध्यात् ॥ अशीसिगुलमंश्वयधुञ्चदुःखं । तदन्तिवन्हिश्चकरोतिदीप्तम् ॥ पिबेद्घृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धं । सचित्रकक्षारमुदारचर्यम् ॥ कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यं । तर्कमहद्वाप्यथित्तकंवा ॥

अर्थ--चीता, धनियां, अजवायन, कालजीरा, संचलनमक, कालीमिरचं, सोंठ, पीपल, अमलवेत, बेलफल, अनारफाछाल, जवाखार, पीपलामूल, चव्य, इन सबको दो २ तोले लेकर एक आढक जल में पकावै फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर पूर्वोक्तरीतिसे एक प्रस्थ घृत पकावै, घृत शेष रहनेपर उतार लेवै । इस घृतके सेवन करनेसे अशरीरोग, गुल्म, सूजन और मूत्रदोष दूर होजाते हैं और जठराग्नि प्रबल होतीहै । अथवा चीते और जवाखारको अठगुने जलमें चढ़ाकर उसके साथ घृत

पथियोंका वर्णन किया गया है अब उन औ-  
पथियोंका का वर्णन करेंगे जो बाहर लगा-  
नेमें काम आती हैं, यथा वातजशोथमें स्नेह,  
प्रदेह, परिपेचन और स्वेदन ॥

शैलेयतैल ।

शैलेयकुप्रागुरुदारुकौन्ती । त्वक्पद्मकै-  
लाम्बुपलाशमुस्तैः ॥ प्रियंगुथौणेयकहे-  
ममांसी । तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥  
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिःस्पृक्त्वानखै-  
श्चैवथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्यङ्गमु-  
पन्तितैलसिद्धसुपिष्टैरपिचप्रदेहमूलजलेच-  
वासार्षकरज्जिशिमुकाश्मर्यपत्रार्जकजैश्च  
सिद्धैः । स्विन्नोमृदूणोरवितप्ततोयस्ना-  
तश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥

अर्थ....शिलापुष्प, कूठ, अगर, दारुह-  
लदी, पद्माख, इलायची, नेत्रत्राला, पलाश,  
मोथा, प्रियंगु, धूनेर, जटामांसी, तालीसपत्र,  
कैवटामोथा, तेजपात, धनियां, श्रीवेष्टक,  
ध्यामक, स्पृक्षा, नखी, इनद्रव्योंमें से जित-  
नी मिलसके उनको लेकर उनके काथमेंतेल  
पकाकर बादीकी सूजनपर लेपकरे ॥

अडूसा, कंजा, सहजना, खंभारी, और  
तुलसी, इनके पत्तोंको डालकर जलऔटावे  
और इस गरम, गरम, जलसे सूजनके स्थान  
को धोवे अथवा घूपसे कियेहुए गरम जल  
द्वारा पसीनेलेवे । इसजलसे स्नानकरके ग-  
न्धद्रव्यों का लेपकरे ॥

पित्तज शोफपर तैलादि ।

सवेतसाक्षीरवतान्द्रुमाणान्त्वचःसमाजि-  
ष्ठवंलामृणालाः । सचन्दनापशकवाल-

कौचपैत्तेप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ आक्तस्य  
तेनाम्बुरविमतप्तसचन्दनसाभयपद्मकञ्ज-  
स्नानेमतंक्षीरवतांकपायःक्षीरोदकंचन्दन-  
लेपनंच ॥ कफेत्तुकृष्णासिकतापुराण  
पिण्याकशिमुःवगुमाप्रलेपःकुलत्थशुण्ठी  
जलमूत्रसेकःचण्डागुरुभ्यामतुलेपनंच ॥

अर्थ—पित्तजशोफमें त्रेत और गूलर, पीप-  
ल आदि दूधके बूझोंकी छाल, मजीठ, खैर-  
टी, कमलनाल, रक्तचंदन, पद्माख, नैग्रथा-  
ला, इनको पीसकर लेपकरे अथवा इनद्रव्यों  
के काथमें तेल पकाकर लगावे । इसतैलको  
लगाकर रक्तचंदन, हरड और पद्माख डाल  
कर जलको घूपमें गरमकरके स्नानकरे ।  
इसीतरह दूधिया बूझोंकी छालके काथसे  
या दूध मिलेहुए जलसे स्नान करके चन्दनका  
लेपकरे ॥

कफजशोफपर तैलादि ।

विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेपुदाहार्ति-  
हरःप्रलेपः । यष्ट्याहमुस्तैःसकपित्थपत्रैः  
सचन्दनैस्तत्पिडकासुलेपःरास्नाघृषार्क-  
त्रिफलाविडंगा ॥ शिशुत्वचोभूषिकर्णि-  
काचानिम्बार्जकौव्याघ्रनखसदूर्वासुवर्च-  
लास्यात्कटुरोहिणीचसकाकमार्चिहृतांस-  
कुप्रापुनर्नवाचित्रकनागरेच ॥ उन्मर्दनं  
शोफिपुमूत्रपिण्डशस्तस्थामूलकतोयसेकः

अर्थ....कफकी सूजन में पीपल का चूर्ण,  
पुरानीखल, सहजनेकी छाल और राई इन  
को पीसकर लेप करे । कुलथी और सोंठके  
काथ में गोमूत्रको मिलाकर परिपेक करे ॥  
पीछे चण्डा और अगरका लेपकरे । बहेडे

के गूदे का लेप करने से सब प्रकार की सूजनोका दाह शान्त होजाताहै । जो सूजन में कुन्सियां होजाय तौ मुलहट्टी, मोथा, कैथके पत्ते, और रक्तचंदन का लेप करै ।

रास्ना, अड्सा, आक, त्रिफला, वायविडग, सहजने की छाल, मूषिकपर्णी, नीम, तुलसी, बाघनखी, दूध, सुवर्चला, कुटकी, मकीय, कोटरी, कूट, पुनर्नवा, चीता और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करै । अथवा सूखीमूली को जल में औटाकर इस जलसे परिपेक करै ॥

शोफाक्षुगान्नावयवाश्रितायेतेस्थानंदूष्या कृतिनामभेदात् । अनेकसंख्याः कतिचित्तेषां निदर्शनार्थं शृणु चोच्यमानान् । दोषास्त्रयस्वैः कुपितानि दानैः कुर्यान्ति शोफान् शिरसः सुयोरान् ॥ अन्तर्गलैर्घुर्घुरिका भित्तं च शालूकमुत्श्वासनिरोधनानि । गलस्य सन्ध्याचिबुके गले च सदाहरागश्च सनासुबोग्रः शोफो भृशार्तिस्तु विडालिका स्याद्दन्त्याम्ललेचेद्दलीकृता स्यात् ॥

अर्थ—जो सूजन शरीर के जुदे २ स्था नोंमें होती है वह स्थान, दूष्य, आकृति और नामके भेदसे अनेक प्रकार की होती है, अब हम उनमें से उदाहरण के निमित्त थोड़ीसी शोफोंका वर्णन करते हैं उन्हें सुनो।

अपने २ कारणोंसे कुपित होकर तानों दोष सिरमें घोर सूजन उत्पन्न करते हैं ॥ इसमें गले के भीतर घुर्घुर शब्द होने लगता है और स्वास रुकने लगता है इसका नाम शालूकशोफ है ॥ गलेकी संधि

ठोड़ी और गले में दाह, राग और स्वास से युक्त सुबोग्रनामक शोफ उत्पन्न होता है ॥ जब यह सूजन गलेमें मंडलाकार हो कर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करके मनुष्य को मारती है तब उसे विडालिका कहते हैं ॥

अन्यशोफोंके नाम ।

स्यात्तालुविद्रध्यपि दाहरोगे र्मुताभवेत्तालुनिसात्रिदोषात् । जिहोपरिप्लुतादुपजिह्विका स्यात्कफादधस्तादधिजिह्विका च । यो दन्तमांसेषु रक्तवित्तात् पाको भवेत्सोपकुशः प्रदिष्टः । स्यादन्तविद्रध्यपि दन्तमांसे शोफः कफाच्छोणितसंश्च योत्थः ॥

अर्थ—जो शोफ दाह युक्त और रक्त वर्ण की तालुमें होता है उसे तालुविद्रधि कहते हैं ॥ यह त्रिदोषसे होता है ॥ जो जिह्वा के ऊपर होती है उसे उपजिह्विका कहते हैं ॥ और जो कफके कारण जिह्वासे नीचे होती है उसे अधिजिह्विका कहते हैं ॥ रक्तपित्त के कारण दांतों के मांस में जो पाकयुक्त शोफ होती है उसे उपकुश कहते हैं ॥ दांतोंके मांस में जो सूजन रक्त और कफ के संचय से उठती है उसे दन्त विद्रधि कहते हैं ।

गलगण्डशोफ ।

गलस्य पार्श्वे गलगण्ड एकः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गण्डैः । साध्याः स्मृताः पीनसः पार्श्वशूलका मज्ज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ।

अर्थ—गलेकी पगलमें जो एक गांठ उठती है उसे गलगण्ड कहते हैं और जो बहुतसी गांठ होती है उन्हें गण्डमाला क-

होते हैं । ये दोनों साध्य होती हैं परन्तु जब ये पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमनसे युक्त होती हैं तब असाध्य होती हैं ।

शोफों में चिकित्साक्रम ।

तेपांसिराकायशिरोविरेकोधूमःपुराणस्य घृतस्यपानम् । सलङ्घनं वक्षुभवेपुचापि महर्षणस्यात्कवलग्रहश्च ॥

अर्थ—इन ऊपरकी शोफों में सिरामोक्षण, कायविरेचन, और शिरोविरेचन, धूमपान, पुराणा घृतपान, और लघनहितकारी है तथा मुखमें होनेवाली सूजनोंमें सूजन के नाश करने वाले द्रव्योंको रगड़े और उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ कवल धारण करें ।

अन्य ग्रन्थियों कावर्णन ।

अत्रैकदेशेष्वाग्निनादिभिस्त्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःसिराभिः । ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वन्तिर्मोदोभवःस्निग्धतत्त्वलश्च ॥

अर्थ—वातादि दोषोंकी प्रबलतासे शरीर के विशेष २ अंगों में मूर्तिमान् लक्षणों से युक्त सूजन होती है । एक सूजन तो नसों में अधिरक्षा बहना बन्द होजाने से होती है । एक बड़ी गांठ मांसमें होती है इसमें वेदना नहीं होती है । एक गांठ मेदामें होती है यह बहुत चिकनी और चलायमान होती है तंशोधितस्वेदितममकाष्ठःसाङ्गुष्ठदण्डविनयेदपक्वम् । विपाय्यचोद्धृत्यभिषकुसकोशंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवधिकित्सेना । अदग्धर्षित्परिशोपितथमयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम् । तस्मादशेषकुशलसमन्तात्तेयोभवेद्दीप्त्यशरीरदेशान् ॥ शोपेक

तेपाकवशेनशीग्येत्ततःसतोत्थःप्रसेरद्वि सर्पः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके ऐसी गांठ होजाय उसको बिना पकेही शोधन देकर पत्थर वा काठ द्वारा स्वेदन देकर अंगूठा वा टकड़ी लगाकर नरम करदे । उसके पकने पर शस्त्रसे चीरा लगाकर सब मवाद और गजी हुई खालको अलग करके दग्ध करें और फिर व्रणवत् चिकित्सा करें । जो दग्ध न कीजाय तो कम शुष्क होने के कारण यह फिर धीरे २ बढ़जाती है । इसलिये कुशल वैद्यको उचित है कि उस दग्ध के स्थान का विचार करके उमदी जड़ से दूरकर दें । काटने पर नी शोषवर्द्ध हो तो पाकके कारण शीघ्र होकर उमने लुप्त विसर्प उत्पन्न होगा ।

वर्जनीय ग्रन्थि ।

उपद्रवंतं प्रनिवारयेज्जःस्वर्मेणैव पूर्ववर्ग्ये धोक्तः । ततःक्रमेणास्यययाविधानमुन्नं व्रणवत्स्वरयाचिकित्तिमेन् ॥ विवर्जयेन् कुसुमुद्राश्रितश्चतथाग्रेमम्मगिमांश्चिन्तयत्सूतःस्त्रेणापिमंत्रोद्विजःशोपयत्चापि वालस्थविरावधानां ॥

अर्थ—इस श्वेत विमर्ष नामक उपद्रव को दूर करनेके लिये पहिले कहीं हुई विसर्प चिकित्साओंके द्वारा चिकित्सा करें फिर क्रम से यथाविधान व्रणके ममान क्रियाओं का प्रारम्भ करें ] जो गांठ कृष्ण, उदर गले और मर्मस्थान में हुई हो वह स्याय है । जो वालक, बूढ़े और दृबल के दृष्टे वह भी वर्जनीय है ।

नयेदोषहरैर्यथास्व । मालेपनच्छेदन-

भेददौहः ॥

अर्थ—इसमें तीनों दोष होते हैं परन्तु पित्त प्रबल होता है । यह तीव्र पतली और रक्तपाक युक्त होती है । इसमें जो सूजन होती है उस में ज्वर और तृषा का वेग होता है । यह जालगर्दभ नामक विसर्प रोग होता है । इस में लघन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, कामविरचन, आंवलेका प्रयोग और शीतल लेप हितकारी होते हैं । इसीतरह अन्य सूजनों में भी यातादि दोषोंके लक्षणों की विवेचना करके यथा दोष आलेपन, भेदन, और दाहआदि कर्मों से शोथ को अच्छा करै ॥

आगन्तु शोफ का वर्णन ।

मायोऽभिघातादनिलःसरक्तः ।

शोथं सरागमं करोति तत्र ॥

विसर्पनुन्मारुतरक्तनुच ।

कार्यविपघ्नं विपजे च कर्म ॥

अर्थ—प्रायः चोट लगने से वातरक्त दूषित होकर लालरंगकी सूजन उत्पन्न करते हैं । इस सूजन में विसर्प नाशक और वातरक्त नाशक क्रिया करे तथा विपज शोथ में विपनाशक क्रिया करे ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिविधस्य दोषभेदात्सर्वाङ्गवियवगात्रभेदाच्च । अथ योऽत्रिविधस्य तथालिङ्गानि चिकित्सितं चोक्तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में भगवान् पुनर्वसु तीन दोषों के भेद से तीन प्रकार की

शोफ, सर्वांग शोफ, अङ्गीशोफ, अवयव-शोफ, निजशोफ, आगन्तु शोफ इनके लक्षण और चिकित्सा वर्णन की है ।

इति श्री भाषाटीकावित्तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने श्वयधु चिकित्सितनामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

—\*—

अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथात उदरचिकित्सितं ग्राह्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोलेंकि अब हम उदर चिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

सिद्धविद्याधराकीर्णकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमानंतपस्तीव्रसाक्षाद्दर्शमिव स्थितम् ॥ आयुर्वेदविदां श्रेष्ठिभिरपि विद्याप्रवर्तकम् । पुनर्वसुजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ भगवन्पुनर्दुःसहस्यन्ते लदितानराः । शुष्कवक्त्राः कृशैर्गत्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ प्रणष्टाग्रिवलाहारा सर्वे चेष्टास्वनीश्वराः । दीनाः प्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽमूननाथवत् ॥ तेपामायतनं संख्यां प्राभूपाकृतिभेजान् । यथावत् ज्ञातुमिच्छामि गुरुणा सम्यगीरितम् ॥ सर्वभूताहितायपिः शिष्येणैव प्रचोदितः । सर्वभूतहितं वाच्यं ग्याहर्तुमुपचकमे ॥

अर्थ—सिद्ध और विद्याधरों से सेवित, नन्दन काननके सदृश कैलास पर्वतमें तीव्रतप में लीन, साक्षात् भूतिमान्धर्मस्वरूप,

आयुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठतम, आयुर्वेद प्रवर्त्तक और जितेन्द्रिय पुनर्वसु से अग्निवेशने यह प्रश्न किया कि हे भगवन् ! प्रायःसर्व मनुष्य उदर रोगों से पीडित दिखाई देते हैं जिनके मुख सूख गये हैं, गात्र कुश पड़ गये हैं, उदर और कूख फूल गये हैं जठराग्नि बल और आहार धक गये हैं, सम्पूर्ण चेष्टाओं से हीन होगये हैं ॥ ये दीन मनुष्य चिकित्सा के अभावसे अनाथकी तरह प्राणोंका परित्याग कर देते हैं । इस से हे प्रभो ! मैं आप के मुखसे उनका आयतन, संख्या, पूर्वरूप, आकृति और चिकित्सा यथावत् सुनना चाहता हूँ । शिष्य से इस तरह प्रेरणा किये जाने पर सम्पूर्ण प्राणियों के हित के निमित्त सम्पूर्ण प्राणियों के हितकारी वाक्योंके कहने में उद्यत हुए ।

**उदरविषयमैआग्नेयकावाक्य ।**

अग्निदोषान्मनुष्याणारोगसंघाः पृथग्विधाः । मलवृद्ध्यामवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणि तु ॥ मन्देऽग्नौ मलिनैर्भुक्तैरपाकादोपसञ्चयः । प्राणापानान्निहंसदूष्यमार्गान्वद्भोत्तरोत्तरान् ॥ त्वद्भ्रांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशमृजनयत्युदरं तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥

अर्थ—जठराग्नि के दोषसे मनुष्यों के अनेक प्रकारके रोगों के समूह उत्पन्न होते हैं, तथा विशेष करके मलकी वृद्धि से उदर रोग होते हैं । मन्दाग्नि में मलवर्द्धक भोजनों के अपाक से दोष संचित होकर प्राण और अपान वायुओंको दूषित करके ऊपर और

नीचेके मार्गोंको रोक कर त्वचा और मांस के मध्यमें स्थित होकर कुक्षिको अत्यन्त फुला देते हैं और फिर उदर रोगोंको पैदा करते हैं उसके लक्षण सहित हेतुओं को सुनो उदररोग के हेतु ।

अत्युष्णलवणक्षारविदाहम्लरसाशनात् मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्षविरुद्धाभुचिभोजनात् ॥ प्लीहाशो ग्रहणीदोषकर्पणात्कर्मविभ्रमात् । क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥ स्रोतसादूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात् । अशोऽवातशुक्रद्रोधादन्नस्फुटनभेदनात् । अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्मचक्रवृत्ताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ।

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, नमकीन, खारी, विदाही और खट्टे रसोंके भोजन करने से, मिथ्या और असंसर्जनकर्मसे रूक्ष, अशुचि और विरुद्ध भोजनोंके करने से, प्लीहा, अर्श ग्रहणी दोष इनके कारण शरीरके कुशहो जानेसे, स्वेदनादि कर्मोंके यथावत् न होनेसे, क्लिष्ट रोगोंकी चिकित्सा न करने से, रूक्षतासे, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगोंको रोकने से, स्रोतोंके दूषित होनेसे, आम दोष से संक्षोभसे, अत्यन्त पेट भरकर भोजन करने से अर्शकी अवलि के कारण विष्टके रुकने से, आंतों में फटनेकी सी पीड़ा होने से, अति संचित दोषवाले मनुष्यों के पापकर्मों के करने से, और विशेष करके मन्दाग्नि वालों के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।

**उदररोग के पूर्वरूप ।**

सुखाशः स्वाद्वीतिस्त्रिगुण्यं अपच्यंती चिरा-

त् ॥ भुक्तं विदाहते सर्वजीर्णाजीर्णनवे  
त्तिच । सहतेनातिसौहित्यं शोफरोपञ्च  
पादयोः ॥ शब्दद्वलक्षयोऽल्पेऽपि व्या  
यामे श्वासमृच्छति । पुरीषनिचयो वृद्धि  
रुदावर्त्तकृताचरुक् ॥ वस्ति सन्ध्या रूगा  
ध्मानवर्द्धते पाथ्यतेऽपिच । आतन्यते च  
जठरमपिलघ्वल्पभोजनात् ॥ राजीजन्म  
वलीनाश इति लिंगभविष्यताम् ॥

अर्थ—क्षुधाका नष्ट होना, मोठे, चिकने  
और भारी अन्नका देरमें पचना; भुक्त अन्न  
से विदाह होना; जीर्ण वा अजीर्ण का ज्ञान  
न होना; पेट भरकर भोजन करने में अ-  
समर्थता; पाँवों में कुछ सूजन होना, बल  
का निरन्तर नष्ट होना, थोड़े परिश्रम में  
भी श्वास बढ़ना, मलकी वृद्धि, उदावर्त्तकृत  
वेदना, वस्ति सन्धि में वेदना, अफरा का  
बढ़ना, हृत्के और थोड़े भोजन से भी पेट  
का तन जाना, उदरमें रेखाओं की उत्पत्ति  
और अवलीका नाश, ये सब उदररोग के  
पूर्वरूप हैं ।

उदररोग की साधारण उत्पत्ति ।  
रुद्धास्वेदाम्बुवाहानिदोषाः स्रोतांसि सञ्चि-  
ताः । प्राणापानान्दिसद्वृत्त्यजनयन्त्युद-  
रं नृणाम् ॥

अर्थ—स्वेदवाही और जलवाही स्रोतों  
को रोककर संचित दोष, प्राण और अपान  
वायुओं को दूषित करके उदररोगों को  
उत्पन्न करते हैं ॥

उदररोग के साधारण लक्षण ।

नेत्राणि च पादकरस्थच ॥

मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यञ्चोदर-  
लक्षणम् ॥

अर्थ—कूबमें आध्मान, अफरा, हाथ  
पाँवमें सूजन, मन्दाग्नि, गण्डस्थल में श्ल-  
क्ष्णता और देह में कृशता ये सब उदर-  
रोगों के लक्षण हैं ॥

उदररोगों की संख्या ।-

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्रीहवद्धक्षतोदकैः ॥  
संभवन्त्युदराण्यष्टे पांलिङ्गपृथक् मृणु- ।

अर्थ—पृथक् पृथक् दोषों से, सम्पूर्ण  
दोषों से, प्रीहा, वद्ध, क्षत और उदक से  
आठ प्रकार के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।  
अथ उन के पृथक् २ लक्षण सुनो ॥

वात के कारण उदर रोग ।-

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तक र्शनैः ॥  
वायुः प्रकुपितः कुक्षिहृदस्तिगुदमार्गैः ।  
हृत्वाग्निं कफमुद्धृत्य ते रुद्धगतिस्तथा ॥ आ-  
चिनोत्पुदरं जन्तोः त्वद्द्विमांसान्तरमाश्रितः ॥

अर्थ—रूक्ष और अल्पभोजन करने से,  
आयास से, वेग धारण से उत्पन्न उदावर्त्त  
से, और कृशता से कूब, हृदय, वस्ति और  
गुदमार्गोंमें विचरने वाली वायु कुपित  
होकर अग्नि को मन्द करके कफको बढ़ा  
देती है । तब इस कफसे मार्ग रुक जाने के  
कारण त्वचा और मांसके बीच में स्थित  
होकर वायु उदर रोगों को उत्पन्न करती है ।

वायुजन्य उदररोग के लक्षण ।

तस्य रूपाणि कुक्षिपाणि पाददृष्टपणश्च पृथु-  
दरविपाटनमनियतौ च वृद्धिहासौ कुक्षिपा-  
र्श्वशूलोदावर्त्तोगमर्दपर्वभेदशुष्ककासका-

श्वदौघर्ष्यारोचकविपाकाअधोगुरुत्वंवा-  
तवर्चोमूत्रसहःश्यावारुणत्वंनखनयनव-  
दनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरतन्निमित्तरा-  
जीशिरासन्ततमाहतमाध्मातृतिशब्दव-  
द्भवति । वायुशोर्ध्वमधस्तिर्यक्सचशु-  
लशब्दश्चरत्येतद्वातोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—कूख, हाथ, पांव और अंडकोशों  
में सूजन, उदरमें फटनेकी सी पीड़ा क-  
भी उदर का बढना और कभी घटना,  
कुक्षिशूल, पसलमिश्रशूल, उदावर्तः, अंग-  
मर्दः, संधियोंमें हड्ढन; सूखी खांसी,  
कृशता; दुर्बलता, अरुचि, अविपाक, पेटके  
नीचे के भागमें भारापन, अधोवायु, विष्टा  
और मूत्रका रुकजाना, नख, नेत्र, मुख,  
त्वचा, मूत्र और विष्टाका काला या लाल  
होजाना, पतली और काली रेखाओंका उ-  
दरपर पडना, नीली नसोंका चमकना, पेट  
को वजाने से फूलीहुई मशक के समान  
शब्दहोना, तथा वायुका ऊपर, नाँचे, तिरछे  
शूल और शब्दयुक्त धूमना ये सब वातो-  
दर के लक्षण हैं ॥

### पिचोदरका कारण ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसे  
घनैः । विदाह्यध्यशनाजीर्णैः चाशुपित्तं  
समाचिन्तम् ॥ प्राप्यानिलकफोरुद्ध्वा  
मार्गमुन्मार्गमास्थितम् । निहत्यःमाशये  
बर्हिर्नजनयत्युदरततः ॥

अर्थ—कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त  
उष्ण और तीक्ष्ण भोजनों के करने से, अ-  
ग्नि और धूपका सेवन करने से, विदाही

अन्न, अध्यशन और अजीर्णकर्त्ता अग्निके  
सेवन से पित्त इकट्ठा होकर कफ और वात  
से मिलजाता है और तब ये पित्तके मार्ग  
को रोकलेते हैं, इस मार्ग के रुकने से पित्त  
ऊपरको जाताहै और आमाशयस्थ बन्धिका  
नाश होजाता है और तब पित्त के कारण  
उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥

### पित्तोदर के लक्षण ॥

तत्स्वरूपाणि । दाहज्वरतृष्णासूच्यती-  
सारभ्रमाः कडुकास्पत्नंहरितहरिद्रत्वं  
नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरं-  
नीलपीतहारिद्रहरितताभ्रराजीशिरावन-  
ज्दंद्वात् । शूलयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यते  
क्लियतेमृदुस्पर्शक्षिपपाकश्चभवेत्येतत्पि-  
चोदरंविद्यात् ।

अर्थ—दाह, ज्वर, तृष्णा, सूच्य, अ-  
तीसार, भ्रम, मुखमें कड़वापन, नख, नेत्र,  
मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका हरा वा  
हलदी के समान वर्ण होजाना, पेटमें नीली  
पीली, हारिद्रवर्ण, हरी और ताँवेकीसी रे-  
खाओं का पडजाना, नसोंकाचमकना, तथा  
पेट में दाह, ऐंठा, धूमनिर्गम, ऊष्मा, श्वे-  
दन, क्लेद, मृदुस्पर्श और शीघ्रपाक भी हो  
ता है, ये सब पित्तोदर के लक्षण हैं ॥

### कफोदर के हेतु ॥

अग्न्यायामदिवास्वप्नस्वाद्रतिस्निग्धपि-  
च्छिलैः । दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्च  
त्युप रेचितैः ॥ कुक्षेनश्लेष्मणास्रोतःस्वाह  
तेप्रावृत्तोऽनिलः । तमेवपिडियन्कुटुर्यादुद-  
रंवाहिरन्वगः ॥



अर्थ—व्यायाम न करने से दिनमें सोने से, मीठे, अत्यन्तचिकेन, पिच्छिल भोजनों के करने से, दही, दूध, जल और आनूप-मांसके अत्यन्त सेवन से कुपित कफ स्रोतः समूह से वायुको रोक देता है। तब वह वायु रुग्माको बाहर और भीतर पीडित कर के कफोदर को उत्पन्न करती है ॥

कफोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाभिगौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्द सुतिपाणिपादमुष्कोरुशोकोत्क्लेशनिद्राका सश्वासाः शुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ् मूत्रवर्चसामपिचोदरं शुक्लराजीसिरासन्त तगुहास्तमितस्थिरं कठिनञ्च भवत्येतत् श्लेष्मोदरं विद्यात् ॥

अर्थ....भारापन, अरुचि, अविपाक, अङ्गमर्द, सुति, हाथ, पांव और अङ्गुलीयों में सूजन, उत्क्लेश, निद्रा, खांसी, श्वास, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका श्वेत होजाना, पेट में श्वेतधारियों और नसोंका चमकना, पेटमें भारापन, स्तिमिता, स्थिरता और कठिनता ये सब लक्षण कफोदरके हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोग के हेतु ॥

दुर्बलमेरपध्यामविरोधिगुरुभोजनात् । सभुक्तश्चरजोरोमविष्मूत्रास्थिनखादिभिः । विपश्चापन्दैर्वातायाः कुपिताः मन्त्रिचिताः त्रयः । शनैः कोष्ठमकुर्वन्तोजनयन्त्युदरं नृणाम् ॥

अर्थ—मन्दाग्नि वाला मनुष्य अहिता क-वा, विरोधा और मार्ग भोजन करे। अथ रज, रोम, विष्टा, मूत्र हड्डी और नख भोजनके साथ खाजाय अथवा मन्द

विपाका सेवन करे तब उसके तीनों दोष कुपित होकर शनैः २ कोष्ठमें इकट्ठे हो कर उदररोगों को करते हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोगके लक्षण ॥  
सर्वेपामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युप-  
लभ्यन्ते वर्णाश्वनखादिपूदरमपिनात्राय-  
र्णराजीसिरासन्ततं भवत्येतत्सन्निपातो-  
दरं विद्यात् ।

अर्थ—त्रिदोषज उदररोगमें सम्पूर्ण दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं। नख, नयन, वदन, मूत्र और पुरीपमें सब प्रकार का रंग होता है। पेटमें अनेक रंगोंकी धारियाँ और नसोंका जाल होता है इन लक्षणों से युक्त उदरको सन्निपातोदर कहते हैं ।

प्लीहोदर के कारण ।

अशितस्यातिंसक्षोभाद्यानयानाभिचे-  
ष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्वमनव्या-  
धिकर्शनैः ॥ वामपार्श्वाश्रितः प्लीहाच्युतः  
स्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितवारसादिभ्यो  
विवृद्धन्तीववर्द्धयेत् ॥

अर्थ—भोजन करके सवारी पर चढ़कर वा बैसेही कठिन चेष्टाओंके द्वारा संक्षोभ-  
कानेसे, अन्यन्त व्यवाय, भारवहन, मार्ग-  
चलना, वमनादि व्याधियों से कर्षण, इन हेतुओंसे बाये पसवाडे में स्थित प्लीहा (ता-  
पतिल्ली) अपने स्थानको छोड़कर बढ़ने-  
लगती है। अथवा रसादि से बढा हुआ  
रक्त प्लीहा को बढाने लगता है ।

प्लीहोदर की वृद्धि ।  
इतितस्प्लीहाकठिनोष्टिलेवादैवर्द्धमानः

कच्छपसंस्थानउपलभ्यतेसचोपेक्षितः  
क्रमेणकुक्षिजठरमग्न्याधिष्ठानंचपरिक्षम-  
न्मुदरमभिनिवर्त्तयति ॥

अर्थ—इस तरह यह प्लीहा प्रथम पत्थर के समान कठोर होती है, और फिर बढ़ते बढ़ते कछुएकी पीठके समान आकृति धारण करलेती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तौ यह क्रम से कूख, जठर और अग्निस्थानको परिक्षिप्त करके उदर रोगको उत्पन्न करती है।

प्लीहोदर के लक्षण ।

दौर्बल्यागोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमकपि  
पासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छागसादकासश्वास  
मृदुज्वरानाहाग्निनाशकाश्यास्मरस्यप  
र्षभेदकोष्ठवातशूलान्पिचोदरमरुणवर्णवि  
वर्णवानीलहरितहारिद्राजिमज्जवस्त्रेवमे  
वयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थकुम्भ्यास्तुल्यहे-  
तुर्लिगौपधत्वात्तत्प्लीहजएवावरोधइ-  
त्येतत्प्लीहोदरविद्यात् ।

अर्थ—दुर्बलता, अरुचि अविपाक, मूत्रग्रह-  
तमकश्वास, ध्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा  
अंगरुजानि, खांसी, श्वास, मृदुज्वर, आनाह  
मृदाग्नि, कृशता, मुख में बिरसता हड्ड-  
टन, कोष्ठ में वात वेदना, पेटका लाल वर्ण  
वा विवर्णता, पेटपर नीली, हरी, हरिद्रा  
रेखाओं का होना आदि उपद्रव होते हैं। इसी  
तरह दाहिनी कूखमें जो यकृत होती है वह  
भी ऊपर कहे हुए लक्षणों को प्रकट करती  
है। परन्तु यकृत और प्लीहाके हेतु, लक्षण  
और औषध एकसेही हैं। इससे प्लीहा से

इसकी उत्पत्तिका अवरोध है ये प्लीहोदर  
के लक्षण हैं ॥

बद्धोदर के हेतु ।

पक्ष्मबालैःसहान्नेनभुक्तैर्वदायनेगुदे  
उदावर्त्तैस्तथाशौभिरन्त्रसंमूर्च्छेननवा ॥  
अपानोमार्गसंरोधाद्वत्वारिणकुपितोऽन-  
लः।वर्चःपित्तकफान्स्त्वद्वाजनयस्युवरंततः

अर्थ—पक्ष्म और बाल मिलाहुआ भोजन कर लैने से उदावर्त्त से; अर्शसे वां  
आंतों के सुकड़ जानेसे गुदाका मार्ग रुक-  
जाने पर मार्ग संरोध के कारण कुपित हुई  
अपानवायु जठराग्नि को नष्ट करके पुरीष,  
पित्त और कफको रोककर उदर रोग को  
उत्पन्न करती है।

बद्धगुदोदर के लक्षण ।

तस्यरूपाणितृष्णादाहज्वरमुखतालुशोपो  
रुसादकासश्वासगौर्बल्यारोचकाविपाकव-  
र्चोमूत्रसंगाध्मानछर्दिःक्ष्वधुशिरोहृन्नाभि  
गुदशूलान्पिचोदरंमूढवातंस्थिरमरुणनी  
लराजिसिरावनद्धंमराजिकंवाप्रायोनाभ्यु  
परिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्बद्धगु-

दोदरविद्यात् ॥

अर्थ—तृष्णा, दाह, ज्वर, मुखशोष, ता-  
लुशोष, ऊरुसाद, खांसी, श्वास, दुर्बलता,  
अरुचि, अविपाक, पुरीषवद्धता, मूत्रवद्धता,  
आध्मान, वमन, छोंक, शिरः शूल, हृदश-  
ूल, नाभिशूल, गुदशूल, तथा अधोवातकी  
विवन्धता, पेट में स्थिरता, लाल और नी-  
लवर्णकी रेखा, नसेकेजालों का चमकना,  
अथवा रेखाओं का न होना, प्रायः नाभि

के ऊपर गौकीं घृष्ट के आकार के सदृश होजाना, ये सब वदगुदोदरके लक्षण हैं ॥

छिद्रोदर के हेतु ॥

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।

भिक्षेतान्नं यदाभुक्तैर्मृग्भयात्याशितस्य च ॥

इयात्पाकरसस्तेभ्यः छिद्रेभ्यः प्रसवद्व

हिः । पूरयन् गुदमत्रञ्चजनयत्युदरं ततः ॥

अर्थ.... भोजनके साथ में रेत, कंकर, तिनका, काठ, हड्डी वा कांटे खा लेनेसे जब आंतें फटजाती हैं अथवा अत्यन्त भोजन करके जोर से जैभाई लेने के कारण जब आंतें फटजाती हैं । तब उन छिद्रोंमें होकर पाक रस बाहर टपकने लगता है और गुदा और आंतोंको पूर्ण करके उदररोगों को उत्पन्न करता है ॥

छिद्रोदरके लक्षण ॥

इतितदधोनाभ्याः प्रायोऽभिनिर्वर्त्तमान  
मुदकोदरस्य च यथावलंच दोषाणां रूपाणि  
दर्शयत्यपि चातुरः सलोहितनीलपीतोप  
च्छिलकुणपगन्धामवर्च उपवेशतो हिकाभ्या  
सकासतृणाममेहारोचकाधिपाकदौर्बल्यप  
रीतश्च भवत्येताच्छिद्रोदरं विधात् ॥

अर्थ—यह रोग प्रायः नार्भके नीचे उत्पन्न होता है और दोषों के बलके अनुसार इसमें जलोदरके से लक्षण दिखलाई पड़ते हैं और रोगीके लाल, नीला, पीला निच्छिल, कुणुपगंधी और आम विष्टा निकलता है । तथा उसके हिचकी, श्वास, खोसी, तृणा, प्रमेह, अरुचि अविपाक, दुर्बलता ये उपद्रव होते हैं इसे ही छिद्रोदर वा क्षुतोदर कहते हैं ॥

जलोदरके हेतु ॥

स्नेहपीतस्य मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा  
अत्यम्बुपानान्नपेयानामारुतः क्लोमिनस  
स्थितः ॥ स्रोतः मुरुदमार्गेषु कफश्चोदक  
मूर्च्छितः ॥ वर्द्धयेतां तदेवाम्बुतत्स्थानादुद  
रायतौ ॥

अर्थ—जिसने जेह पान किया है, जिसकी अग्नि मन्द है, जो क्षीण और अत्यन्त कृश है उसके अत्यन्त जल पीलेनेसे, आग्नि मंद पड़जाती है और वायु पिपासास्थानका आश्रय लेकर और जल से मूर्च्छित कफ स्रोतों के रुके हुए मार्गोंमें ठहरकर दोनों कफ और वायु बढ़ने लगते हैं और वह जल वहांसे उदरमें आकर जलोदर उत्पन्न करता है ।

जलोदरके लक्षण ।

तस्य रूपान्धनन्नकांक्षापिपासागुदस्ताव  
शूलश्वासकासदौर्बल्यान्यपि चोदराना  
नावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृष्टिक्षो  
भसंस्पर्शभक्ष्येतदुदकोदरं विधात् ॥

अर्थ—अन्नमें अनिच्छा, तृषा, गुदा से जलका स्त्राव, शूल, श्वास, खांसी, दुर्बलता पेट में अनेक रंगकी रेखाओं का होना, न सोंका चमकना तथा जलसे भरी हुई मशकके समान उदरका हाथ लगातेही थलर थलर करना, ये सब जलोदर के लक्षण हैं ।

चिकित्साके योग्य उदररोग ॥

तत्राचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकप्राप्तमुदरं  
त्वरमाणः चिकित्संसेदुपेक्षितानां तेषां दोषाः  
स्वस्थानादपाट्ताः अपरिपाकाद्द्विभूता

पंनरम् ॥ जन्मनैरोदरं सर्वमायः कृच्छत  
मंतम् । वलिनस्तदजाताम्बुयत्नसाध्यं  
वोत्थितम् ॥

अर्थ....जिस उदररोगी की आंखों पर  
सूजन आजाती है, उपस्थेन्द्रिय टेढ़ी पड़-  
जाती है, स्त्रिचा श्लिन्न और पतली पड़जाती है  
बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण पड़-  
जाती है, उसे त्याग देवै । मर्मस्थानों में सू-  
जन, श्वास, हिचकी, अरुचि तृषा, मूर्च्छा,  
वमन, अतिसार आदि उपद्रवों के होने से  
उदररोगी मरजाता है । उत्पन्न होतेही सब  
प्रकारके उदररोग प्रायः असाध्य होते हैं  
परन्तु इन में से वह रोग जो बलवान् पुरुष  
के नहीं ही हुआ हो और जिस में जल  
उत्पन्न न हुआ हो वह बहुत यत्न करने से  
साध्य होजाता है ॥

अजातउदकोदरके लक्षण ।

अशोधमरुणाभासंसंशब्दनातिभारिकम्  
सवागुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम् ।  
नाभिं विष्टभ्यपायौ तु वेगं कृत्वा प्रगड्याति ॥  
हृन्नाभिर्वेक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ।  
कर्कशसृजते वातं नातिमन्दे च पायके ॥  
मूत्रेऽल्पे संहते विपिलालया विरेसे मुखे ।  
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः ॥  
उपक्रामत्भिषग्दोषवलकालविशेषीवत् ।

अर्थ—जिस उदररोगी के पेट पर सू-  
जन नहीं होती है, उदरका रंग लाल हो,  
शब्दयुक्त हो, पेटमें बहुत भारापन न हो,  
सदा गुड गुड शब्द होता रहता हो, गवाक्ष  
के समान नसों के जाल से प्रति, वायु

नाभि के पाससे गुड गुड़ाहट उत्पन्न कर  
के गुदा में वेग उत्पन्न करके नष्ट होजाती  
हो रोगी के हृदय, नाभि, वेक्षण, कमर  
और गुदा प्रत्येक स्थान में शूल होता हो  
कर्कश शब्द करती हुई वायु निकले ।  
अग्नि अति मन्द न हो, पेशाब थोड़ा हो,  
विष्ट कम हो, मुखसे छारटपकती हो, मुख  
का जायका विगड़ गया हो । ये सब लक्ष-  
ण उस उदररोग के हैं जिस में जल उत्प-  
न्न न हुआ हो । इन सब लक्षणों का विचा-  
र करके दोष, बल और काल के अनुसार  
उदररोगों का चिकित्सा करे ।

वातोदर में चिकित्साक्रम ।

वातोदरे वलवतः पूर्वस्नेहैरुपाचरेत् ॥ स्नि-  
ग्धायस्वेदितां गायद्यात्स्नेहविरेचनम् ।  
हृते दोषे परिम्लानवैद्ये द्वांसोदरम् ॥  
तथा स्थानवकाशत्वाद्वायुर्नाभापयेत्तु पुनः ।  
वोपातिमात्रे पचयात्सोतसां सन्निरोध-  
नात् ॥ सम्भवन्त्सुदराण्येवमतो नित्यं  
विशोधयेत् । शृद्धं संसृज्य च क्षीरं वलार्थं  
पाययेत्तु तम् ॥ मागुत्केशाग्निवर्त्य  
श्रवलेले व्यक्रमात्पयः । यूपैरसैर्वाम्बु-  
म्ललवणैरोधितानलम् ॥ सोदावर्त्तपुनः ।  
स्निग्धं स्निग्धमास्थापयेन्नरम् ॥

अर्थ—वातोदर में बलवान् मनुष्यकी  
प्रथम स्नेहनकर्म द्वारा चिकित्सा करे । स्ने-  
हन और स्वेदन के पीछे स्नेह विरेचनका  
प्रयोग हित है इस तरह दोषों के दूर होने  
पर जब म्लानता उत्पन्न होजाय तब  
उदर पर वस्त्र लपेटना चाहिये, ऐसा करने

से वायु प्रवेश होनेका स्थान न पाकर फिर पेटको नहीं फुलासकती है ॥ दोषों के अधिक इकट्ठे होजाने से और स्रोतों के रुक जानेही से उदररोग हुआ करते हैं इससे उदररोग में नित्यप्रति विरेचन देना चाहिये ॥ जब रोगी शुद्ध होजाय तब पेयादि विरेचन के उत्तरक्रमोंका साधन कराके बल बढ़ानेके निमित्त दुग्धपान करावै । बल आजाने पर दोषों के उत्क्षेप होने से पहिलेही क्रम से दुग्धका त्याग करादेवै, अग्नि का रोध होजाने पर और उदावर्तमें फिर स्नेहन करके किंचित् नमक और खटाई डालकर यूप वा मांस रस की आस्थापन वस्ति देवै ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठात्रिकार्तिपु॥  
दांताग्निविद्वद्वातर्क्षमप्यनुवासयेत्॥  
तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्पान्निरूहोदाशमू  
लिकः ॥ वातघ्नान्म्लसूतैरण्डतिलतैला  
नुवासनः ॥

अर्थ—फुरफुरी वा आक्षेप ( हाथ पांव फेंकना ) होने से तथा सन्धि, अस्थि, प-सली पाँठ और त्रिकमें वेदना होने से उस दांताग्नि पुरुषका जिसका विष्टा बन्द होग याहो और जो रूक्षभी हो उसे अनुवासन वस्ति देवे ॥ तीक्ष्ण विरेचनकर्त्ता औषधियों को मिला कर दशमूल के क्वाथ से निरू-हणवस्ति देवै । तथा वातनाशक अम्ल औ-षधियों को संयुक्त करके अरंडी के तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ॥

विरेचन के अयोग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यतुयंविद्याद्दुर्बलस्थविरंशिशुम्॥

सुकुमारं प्रकृत्याल्पदोषं वातोत्त्वणानलम्  
तं भिषक् शुभमनैः सर्पिर्धूपमांसरसौदनैः ।  
वस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः

अर्थ—दुर्बल मनुष्य, बुढ़ा, बालक, सु-कुमार, प्रकृति से अल्पदोष युक्त व्यक्ति त-था वातोत्त्वण मनुष्यको विरेचन देना ठीक नहीं है । ऐसे रोगीको घृत, यूप, मांसरस और ओदनके संयोगों से संशमन औषधियाँ देवै, तथा वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन और दुग्धद्वारा चिकित्सा करे ॥

पित्तोदर में चिकित्साक्रम ॥

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् । दुर्बल-  
लन्त्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना ॥  
संजातबलकायाग्निपुनःस्निग्धं विरेचये-  
त् । पयसा सन्निवृत्तकलेनो रूक्कमृतेन वा  
सातलाप्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा  
सकफेवासमूत्रेण सवातोत्तकसर्पिपा ॥  
पुनःक्षीरप्रयोगंच वस्ति कर्म विरेचनम् ॥  
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन् युक्तः पित्तोदरं जयेत् ।

अर्थ—पित्तोदरमें बलवान् रोगीको प्रथम विरेचन देवै ॥ और जो रोगी दुर्बल हो-  
तौ उसे प्रथम अनुवासन देकर क्षीरवस्ति द्वारा शुद्धकरे ॥ इस तरह बल और जडरा-  
गिके बढनेपर स्नेहनकर्म करने के पछे  
विरेचन देवै ॥ विरेचन देने के अनन्तर  
हैं, यथा दूध और नित्तोदक कल्क के  
के बीज डालकर औदनद्वारा दूध, कल्क,  
सातला और प्रायमाणा दूधकर के  
हुआ दूध, कल्क के कल्क इत्यादि  
दायाद्वारा दूध । कल्क इत्यादि विरेचन के

गोमूत्र मिलाकर दूध पानकरावे और वाता-  
नुबन्धी पित्तोदरमें तिक्तक घृतद्वारा विरेचन  
देवै ॥ इसतरह दूधका प्रयोग करने के पीछे  
वास्तिकर्म करके विरेचन देने से रोगिका वृद्ध  
ठीक रहता है और पित्तोदरभी शीघ्रही शान्त  
हो जाता है ॥

**कफोदर में चिकित्साक्रम ॥**

स्निग्धस्निग्धविशुद्धतुक्फोदरिणमातुरम् ।  
संसर्जयेत्तुक्कुसारगुक्कैरशैःकफापहैः ॥  
गोमूत्रारिष्टपानैश्चचूर्णायस्ततिभिस्तथा  
संक्षारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुक्फोदरम् ॥

अर्थ—कफोदर रोगी को स्नेहन, स्वेदन  
और संशोधन देकर कफनाशक कटु और  
क्षार युक्त अन्नका पथ्य विधान करै । तथा  
गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार, तैलपान  
आदि से कफोदर को दूर करै ॥

**सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम ॥**

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्तुक्कि-  
याः ॥ सांपद्रवन्तुनिर्गृत्तंप्रत्याख्येयंवि-  
जानता ॥

अर्थ....सन्निपातोदरमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण कि-  
याओंका करना उचित है । यदि इस उ-  
दररोग में उपग्रह हों तो चिकित्सा करना  
त्याग देवै ॥

**श्लीहोदर में चिकित्साक्रम ॥**

उदावर्तशगानाहृदाहमोहवृषाज्वरैः ॥  
गौरवारुनिकाठिन्यैःपानिलादीन्यथाक्रमम् ।  
लिङ्गैःश्लीहोदरानुहृष्टारक्तवापि  
स्वलक्षणैः ॥ चिकित्सासंप्रकुर्वीतयथा-  
दोषपयावलं ॥

अर्थ—श्लीहोदर में उदावर्त, शूल और  
आनाह के होने पर वात की चिकित्सा करै  
करै । दाह, मोह, तृषा और ज्वर होनेपर  
पित्तकी और आराम्रन, अरुचि और काठिन-  
ता के होनेपर कफ की चिकित्सा कर्तव्य है,  
और यदि रक्तज श्लीहा के लक्षण दिखाई  
दें तो रक्त की चिकित्सा करै । इसमें दोष  
और बलपर अवश्य ध्यान देना उचित है ॥

**उदररोग में कर्तव्य कर्म ॥**

स्नेहंस्वेदंविरेकञ्चनिरूहमनुवासनम् ।  
समीक्ष्यकारयेद्वाहौवामेवाव्यधयेच्छिरा-  
म् ॥ पट्पलंवापिपेत्सर्पिःपिप्पलीर्वाप्र-  
योजयेत् । सगुडामभयांवापिक्षारारि-  
ष्टगणांस्तथा ॥

अर्थ—जैसा उदररोगहो उस के अनु-  
सारही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण  
और अनुवासनादि कर्म करावै अथवा वाम  
बाहु में रगको बंधकर रुधिर निकाल दे ।  
अथवा पट्पलघृत, वा पिप्पल्यादि रसायन,  
वा गुड और हरड वा क्षारों और अरिष्टोंका  
देना उचित है ॥

**उदररोग में प्रयोग ॥**

पिप्पलीनागरंदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम्  
विडङ्गाशयुतचूर्णमेतदुष्णांस्त्रुणापिबेत् ॥  
विडङ्गचित्रकंशुटींसघृतांसैन्धवंयचाम् ।  
दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मश्लीहापहंभवेत् ।  
रोहीतकलतानान्तुकाण्डिकासाभयाज-  
ले । मूत्रेवाशतमेतच्चसप्तरात्रस्थितोपिबेत्  
कामलागुल्ममेहार्शःप्लहिसर्वोदरकिमीनात्  
द्रव्याज्जांगलरसैर्जीर्णस्याचात्रभोजनम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, दन्ती और चीता ये चारों समानभाग, दोभाग हरड, चतुर्थांश पायत्रिङ्ग इन सबका चूर्ण बनाकर गरम-जल के साथ फांकना चाहिये ॥ वायवि-ङ्ग, चीता, सोंठ घृत, सेंधानमक और वच इन को एक कुलड़े में भरकर फूंकले फिर इनका चूर्ण बनाकर दूधके साथ सेवन करें सौ गुल्मरोग और-प्लीहा दूर होजाते हैं ॥ रोहेडाकी शाखाके अप्रभागों को लेकर और हरड को कूटका जल वा गोमूत्र में औ-टाकर छानले और सातरात तक धरा रहने दें । तदुपरांत इनका सेवनकरने से कामला गुल्म, मेह, अर्श, प्लीहा, सब प्रकार के उ-दररोग और क्रिमि नष्ट होजाते हैं । इस औषध के पचने पर जांगल जीवों के मांस रसके साथ भोजन करें ।

रोहीतक घृत ।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम्  
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तंकपायमुपकल्पयेत् ॥  
पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्यया  
रोहीतकत्वचापिटैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।  
प्लीहातिवृद्धिशमयत्येतदाशुप्रयोजितम् ।  
तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः

अर्थ—रोहेडे की छाल पञ्चासपल, को-ल दो प्रस्थ इन दोनों को अठगुने जल में चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । फिर इस में पंचकोलोक्त द्रव्य एक एक पल और रोहेडे की छाल पांच पल इनका चूर्ण करके ढालदे और एक प्र-स्थ धी ढाला र पकावै घृत शेष रहने पर

उतार लेवै यह घृत अत्यन्त बढी हुई प्लीहा को शीघ्रही शान्त करदेता है, तथा गुल्म-रोग, उदररोग, श्वास, क्रिमिरोग, पाण्डुरो-ग और कामला इन को भी दूर करदेता है ॥

अन्यप्रयोग ।

अग्निर्कर्मचकुर्वीताभिषग्वातकफोत्प्लेणे ।  
पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पीपिक्सीर्यस्तयः ॥  
रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानंचशस्यते ॥  
यूपैर्मांसरसैश्चापिदीपनयिसमांयुतैः ।  
लघून्यन्नानिसंयुज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः

अर्थ....वात और कफकी अधिकता में अग्निर्कर्म करना हित है । पैत्तिक उदर में जीवनीय गणोक्त द्रव्य, तिक्तकादि घृत क्षी-र वास्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्ध-पान हितकर होते हैं प्लीहोदर में दीपनीय औषधियों से सिद्ध यूप और मांसरस के साथ लघु अन्नका भोजन हित है ।

बद्धोदर में चिकित्सा ।

स्विन्नागबद्धोदरिणेभूजतीक्ष्णौषधान्वि-  
तम् । सैतललवणदद्यान्निरुहंसानुवास-  
नम् ॥ परिसंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैव  
विरेचनम्उदावर्त्तहरंकर्मकापेधातघ्नमेवच

अर्थ....बद्धोदररोगी को स्वेदन देकर ती-क्ष्ण विरेचन देंवै, उदावर्त्त नाशक कर्म तथा वातनाशक क्रिया का भी प्रयोग करें ॥

छिद्रोदर में कर्त्तव्यकर्म ।

छिद्रोदरघृतेस्वेदात्तुल्योदरवदाचरेत् ।  
जातंजातजलंस्नान्यमेवंतत्पाययेद्विपका ।  
तृष्णाकासज्वराश्चतुक्षीपमांसाग्निभोज-  
नम् ॥ वर्जयेत्स्वासिनंतद्वत्शूलिनंदु-  
र्बलन्द्रिगम् ॥

अर्थ.... छिद्रोदरमें स्वेदनकर्मके अतिरिक्त कफोदर के सदृश शेष चिकित्सा करनी चाहिये। जितना जितना जल पेटमें उत्पन्न होता जाय उतना उतनाही निकाल देना उचित है। इसतरह इस रोगको पांय करवा रहे। जिस छिद्रोदर में तृष्णा, खांसी, उषर, क्षीणमांस, क्षीणाग्नि, क्षीणभोजन, श्वास, शूल और दुर्बलेन्द्रियता आदि उपद्रव होते हैं वह दुर्दिचिकित्स्य होता है ॥

जलोदर में चिकित्सा ।

अपांदोपेग्रहण्यादौ विदध्यादुदकोदरे ।  
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधे चोत्तारवेन्ति च  
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ।

द्रव्यभ्यश्चोदकादिभ्यो नियच्छेदनुपूर्वशः ।

अर्थ—जलोदरमें ग्रहणी आदि में जल का दोष होनेपर गोमूत्र मिश्रित तीक्ष्णक्षार युक्त औषधियोंका प्रयोग करे। दीपनीय औषधियोंसे संयुक्त कफनाशक आहार का सेवन करावे। इस रोगमें जल आदि द्रव पदार्थों का सेवन कराना बन्द रखे ॥

उदररोगोंमें साधारणविधि ।

सर्वमेवोदरं प्रायोदोपसंघातजं मतम् । त-  
स्मात्त्रिदोषशमनीं क्रियां सर्वेषु कारयेत् ॥

शोषः कुसौहृदिसंपूर्णवर्हिर्मन्दत्वमृच्छति ।

तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघू-  
नि च ॥ रक्तशालीन्यवान्मुद्गान्जांगलां-

श्चमृगद्विजान् । पयोमूत्रासवारिष्ठां मधु-

शीधूंस्तथा मुरान् । यवागू मोदनं वापि य-

मुर्याद्रसरीप ॥ मन्दां मूलस्नेहकटुभिः-

यचमूलोपसाधितैः ॥

अर्थ—प्रायः सम्पूर्ण उदररोग त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं इससे इनमें त्रिदोषनाशिनी क्रिया करना उचित है। दोषों के कुक्षिमें भरजाने से अग्नि मन्द पड़जाती है इस लिये अग्निसंदीपन और लघु भोजन कराना चाहिये, यथा रक्तशालि, जौ, मूंग, जांगल पशुपक्षियोंका मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु, और मुरा देवे। थोड़ी सी खटाई, चिकनाई और कटुद्रव्य डाल कर लघुपंचमूलसे सिद्ध कियेहुये यूप और मांसरस के साथ यवागू और भातका सेवन करावे ।

उदरमें वर्जितकर्म ।

औदकानूपजमांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान् ॥  
व्यायामाध्वद्विवास्वपनयानयानञ्च व-  
र्जयेत् । तथोष्णलवणाम्लानि विदा-  
हीनि गुरुणि च । नाद्यान्नानि जठरीतो-  
यपानं च वर्जयेत् ॥

अर्थ—औदक और आनूपजीवोंका मांस शाक, पिष्टपदार्थ, तिलके पदार्थ, व्यायाम, भ्रमण, दिवानिद्रा, सवारीपर चढ़कर चलना इन कर्मोंका त्याग देना उचित है। तथा उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही, भारी भन्नोंका सेवन और जलपानभी त्याग देना चाहिये ।

उदरमें तत्क्रमयोग ।

नातिसान्द्रं मतं पाने स्वादु तत्क्रमेण लघुम् ।

त्र्युपणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी ॥

वातोदरीपिवेत्तं क्रीपिष्णुलीलवणान्वित-

म् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरीपि-

वेत् ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योपयुक्तं



कफोदरी । पिवेन्मधुयुतंतकन्यक्ताम्लं  
नातिपेलवम् । मधुतैलवचाशुंठीशताद्वा  
कुपुसैन्धवैः ॥ युक्तग्रीहोदरीजातंसन्यो  
पन्तुदकोदरी । यद्धोदरीतुह्युपायमान्य  
जाजीसैन्धवैः ॥ पिवेच्छिद्रोदरीतक्रपि  
प्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ गौरवारोचकार्चा  
नांसमन्दाग्न्यतिसारिणाम् । तक्रवात  
कफार्त्तानाममृतत्यायकल्पते ।

अर्थ—सब प्रकारके उदररोगोंमें त्रिकुटा  
क्षार और नमक डालकर ऐसा मठा पीना  
चाहिये जो स्वादु और स्निग्धहो परन्तु ब-  
हुत गाढा नहो । वातोदरमें पीपल और  
नमक डालकर मठा पीवै । पित्तोदरमें श-  
र्करा, कालीमिरच, डालकर मीठा मठापीवै  
कफोदरमें अजवायन, संधानमक, कालाजीरा  
और त्रिकुटा डालकर तक्रपान हित है ।  
परन्तु इस तक्रमें शंहत और तेज खटाई  
डालेवै । यह अत्यन्त गाढा भी न होना  
चाहिये । ग्रीहोदरमें शहत, तेल, वच, सोंठ  
सोंफ, कूठ और संधानमक डालकर तक्र  
का पानकरै । जलोदरमें त्रिकुटा डालकर  
तक्रपान करै । वज्रोदरमें हाऊवेर, अजवा-  
यन, कालाजीरा और संधानमक डालकर  
तक्रपान करै । छिद्रोदरमें पीपल और श-  
हत डालकर तक्रपान करै । जो मनुष्य  
गौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार और  
वातकफ रोगों से पीडित हैं उनको मठा  
अमृत के समान गुणकारी होता है ॥

उदरमेंदुग्धप्रयोग ।

दाहाशोकार्त्तितृणामूर्च्छापीडितेकारभंपयः

शुद्धानां सामदेहानां गन्धच्छागं समाहिपम् ॥

अर्थ—दाह, शोक, अर्त्ति, तृषा और  
मूर्च्छा इन रोगोंके होनेपर हाथिनीका दूध  
पान करावै । तथा संशोधन से जो क्षीण  
देह होगये हैं उनको गौ, बकरी और भैंस  
का दूध पान करावै ॥

उदरपर लेपनादिप्रयोग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिङ्गैः ॥  
साम्बगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरसमैः ॥  
वृश्चिकालीवचाकुपुपञ्चमूलापुनर्नवाम् ॥  
भूतीकांनागरंधान्यं जलेपकावसेचयेत् ॥  
पलाशंकटुणं रास्नातद्दपक्त्वावसेचयेत्  
मूत्राण्वष्टावुदरिणां सेकेपानेचयोजयेत् ॥

अर्थ—देवदारु, ढाक, आक, गुजपीपल  
संहजना और असगन्ध इनको गोमूत्र में  
पीसकर पेटपर लेप करै । तथा विछवन,  
वच, कूठ, पंचमूल, सांठ, अजवायन, सोंठ  
और धनियां इनको जलमें औटाकर उस  
जलसे पेट पर तरडा देवै । अथवा ढाक,  
कटुण और रास्ना इनको जलमें औटाकर  
इस जलसे तरडा देवै । आठों प्रकारके मूत्र  
उदररोग में परियेक और पानमें प्रयुक्त  
किये जाते हैं ।

रूक्षानां बहुवातानां तथा संशोधनाधिनाम्  
स्नेहनीयानि सर्पापि जठरघ्नानि वक्ष्यते ॥

अर्थ—रूक्ष, बहुवातपीडित और संशो-  
धन के योग्य मनुष्यों के निमित्त उदर-  
नाशक स्नेहनीय घृतोंका वर्णन किया जाता है

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचन्याचित्रकनागरः ॥

सक्षौररुद्धपलिकैस्तैःप्रस्थंसर्पिपःपचेत् ॥  
कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्थरसेनच ।  
दधिमण्डातकोपेततत्सर्पिर्जठरापहम् ॥

श्वयधुंवातविष्टम्भगुल्मार्शसिचनाशयेत्  
अर्थ—...पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता,  
सोंठ और जवाखार इनमें से प्रत्येक आधे २  
पल लेवै, घृत एक प्रस्थ, दशमूल का का-  
थ आधातुला और दहीका तोड़ एक तुला  
इन सबको पकाकर घृत प्रस्तुत करे इस  
घृत के सेवन करनेसे उदररोग, कृजन,  
पात विष्टम्भ, गुल्म और आर्श दूर होजातेहैं  
नागरादिघृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थघृतौलाचथाढकम् ॥  
मस्तुनःसाधयित्वैतत्पित्रेत्सर्वोदरापहम्  
कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥  
अर्थ—सोंठ और त्रिफला एक प्रस्थ  
ची और तेल एक आढक इनको दहीके  
दूने तोड़में पकावै । यह घृत सम्पूर्ण प्रकार  
के उदररोग, तथा कफवात से उत्पन्न गु-  
ल्मरोगों में हित है ।

चित्रकघृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकास्पले ॥  
कल्केसिद्धघृतप्रस्थसंचारंजठरीपिवेत् ।  
अर्थ—चीता एक पल, घृत एक प्रस्थ,  
जवाखार एक पल, गोमूत्र दो प्रस्थ और  
जल चार प्रस्थ इनको पाक करले । यह  
घृत घटरोग में हित है ॥

यवादि घृत ॥

यवकोलकुलत्यानापञ्चमूलरसेनच । सु-  
क्ष्माक्षीरकाश्यांचसिद्धापापिपिन्दुघृतम् ॥

अर्थ—जौ, बेर, कुलथी इनका कल्क  
पञ्चमूल का काथ मुरा और सौवीर इन  
के साथ घृत को पकाकर सेवन करे ।

एभिःस्निग्धायसजातेबलेशान्तेचमारुते ॥  
सस्तेदोपाशयेदद्यात्कल्पदृष्टाविरचनम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कोहे हुए घृतोंसे जब  
रोगी स्निग्ध होजाय, उसमें बल बढजाय  
और वातभी शान्त होजाय तब दोपाशय  
की शुद्धिके निमित्त कल्पस्थानमें कहा हुआ  
विरचन देखे ।

पटोलादि चूर्ण ॥

पटोलमूलरजनीषिडङ्गात्रिफलात्वचम् ।  
काम्पिल्यकोनीलिनीचित्रिताचेतिचूर्णं  
येत् ॥ पडाद्यान्कार्पिकानन्त्यास्त्रिचिद्वि-  
त्रिचतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिगवां  
मूत्रेणवापिवेत् ॥ धिरिक्तोमृदुशुजति  
भोजनजांगलैरसैःमण्डपेयाञ्चपीत्वावासा  
व्योपपदहंपयः ॥ शृतपिवेत्ततःचूर्णपिवे  
देवपुनःपुनःहन्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णंजा-  
तोदिकान्यापि ॥ कामलापाण्डुरोगञ्च  
श्वयधुंचापकर्षति ॥

अर्थ—पटोलकी जड़, हलदी, वायविडंग  
त्रिफलाकी छाल, प्रत्येक एक एक कर्प, क-  
वीला दोकर्प, नीलनी तीन कर्प, और नि-  
सोध चारकर्प ॥ इन सबका चूर्ण बना लेवै  
इसमें से एक पल चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन  
करे ॥ दस्त होने के पीछे जांगल मांसरस  
के साथ मृदु भोजन करे अथवा मण्ड पेया  
को पीकर त्रिकुटा डाला हुआ दूध छः दि-  
वस तक पान करे ॥ इसी तरह फिर चूर्ण

का सेवन करके फिर दुग्धादि का सेवन करे । यह चूर्ण उन उदररोगों को भी दूर कर देता है जिन में जलकी उत्पत्ति हो आई है, तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजम को भी दूर कर देता है ॥

गवास्यादि चूर्ण ।

गवाक्षीशंखिर्नादन्तीतिल्वकस्यत्वचंच-  
चाम् । पिवेद्द्राक्षांशुगोमूत्रकोलक-  
र्क-शुशीधुभिः ॥

अर्थ—इंद्रायण, शंखपुष्पी, दन्ती, लो-  
ध, वच इनके चूर्णको दाखके काथ के सा-  
थ, वा गोमूत्रके साथ वा कौल वा कर्कशुके  
काथ के साथ वा शीधुके साथ पानकरे ॥

नाराच चूर्ण ।

यमानीह्रुपाधान्यांत्रिफलाचोपकुञ्चिका ।  
करवीपिपल्लीमूलमजगंधाशटीवचा ॥

शताहाजरिफण्योपस्वर्णक्षीरीसचित्र-  
फा ॥ द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुण्डलवणपञ्च  
कम् । विदङ्गस्यसर्माक्षानिदन्त्याभागा-  
स्त्रयस्तथा ॥ त्रिवृद्धिशालयोर्द्वौक्षौसात-  
लास्याचतुर्गुणा । एतन्नाराचकंनाम-  
चूर्णरोगगणापहम् ॥ नेतत्प्राप्यातिवर्त्त-  
न्तेरोगाविष्णुमिवासुराः । तक्रेणोदरि-  
भिःपेयंगुलिभिर्त्रिदराम्बुना ॥ आनद्ध-  
वातेसुरयावातरोगेप्रसजया । दधिमण्ड-  
नविट्स्संघेदाडिमाम्बुभिरर्शसैः ॥ परि-  
फर्त्तंसट्क्षाम्लमुष्णाम्बुभिरर्जीर्णके ।

भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे ॥  
हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे । दं-  
ष्ट्राविपेमूलविपेसगरेकृत्रिमेविपे । यथाहं  
स्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम् ॥

अर्थ....अजवायन, हाऊवर, धनियाँ, त्रि-  
फला, कालाजीरा, छोटा कालाजीरा, पाप-  
लामूल, अजगन्ध, कचूर, वच, सोंफ, जी-  
रा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरी, चीता, दोनों प्रकार  
के क्षार, पुहकरमूल, कूठ, पांचों नमक और  
वायाविडंग एक एक भाग, दन्ती तीन भाग  
निसोथ और इंद्रायण दो २ भाग, सात-  
ला चारभाग। इन सबको कूट पीसकर चूर्ण  
यना लेवै । इस चूर्णका नाम नाराचचूर्ण  
है यह सम्पूर्ण रोग समूहों का नाश करने  
वाला है । इस चूर्णका सेवन करनेके पश्चात्  
रोग ऐसे नहीं बढ़नेपाते हैं । जैसे विष्णु  
के साम्हने असुर गण सिर नहीं उठासक्ते  
हैं । इसचूर्ण के भिन्न २ अनुपान ये हैं,  
यथा इस चूर्ण को उदररोग में तक्रके साथ  
गुल्मरोग में बरेके काथ के साथ; आनाहमें  
सुराके साथ; वातरोग में प्रसन्ना के साथ,  
मलकीवद्धता में दधिमण्ड के साथ; अर्शमें  
अनार के क्याथ के साथ; परिकर्त्तिका (पें-  
ठा) में वृक्षाम्लके काथके साथ; अजीर्ण में  
गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये ।  
तथा इन रोगोंके अतिरिक्त यह चूर्ण पाण्डु-  
रोग, द्वास, खांसी, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी  
दोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविप (दांत  
का विप ) मूलविप, विपरोग और कृत्रिम-  
विप को दूर करदेताहै । यह विरेचनकर्त्ता  
औपच रोगोंके कोष्ठ को स्निग्ध करने के  
पीछे दीजाती है ॥

ह्रुपादिचूर्ण ॥

ह्रुपाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी

क्रमका अवलंबन करना चाहिये । बार बार घृतपान करके मिश्रकघृतका पानकरै कुशळ घृतको उचित है कि गुल्म, गरदोष तथा उदररोगों की शान्ति के निमित्त ऊपर कहे हुए घृतों का पान करै ।

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमाणाहभेदनमागुल्मघ्ननीलिनीसर्पिःस्नेहं वा मिश्रकं पिवेत् ॥

अर्थ—पीलू के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घी आनाह को दूर करता है । गुल्म नाशक नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेह का पान करने से भी उदररोग दूर होजाते हैं ।

क्रमाग्निहृतदोषाणां जांगलप्रतिभोजिनाम् दोषशेषानिवृत्त्यर्थयोगान् वक्ष्याम्यतः परम्

अर्थ—क्रम से विरेचनादि द्वारा दोषों के निकलने पर जांगल मांसरसादि का भोजन करना चाहिये । अब हम यहां से उन योगों का वर्णन करते हैं जो शेष दोषोंकी निवृत्ति के लिये उपयोगी होते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिवेत् ॥ मांसयुक्तस्तथा हस्तिपिप्पली विश्वभेषजात् । विडङ्गचित्रकोदन्ती च व्योषो पञ्चतैः पयः ॥ कल्कैः कोलसमैः पीत्वामवृद्धमुदरं जयेत् । पिवेत् कपायं त्रिफलादन्ती रोहीतकैः शृतम् ॥ व्योषसार्पयुतं जीर्णैरसैरथात् सजांगलैः । मांसवाभोजनं भोज्यं सुधाक्षारशृतान्वितम् ॥ क्षीरानुपानं गोमूत्रमभयां धामयोजयेत् । सप्ताहं माहिपमूत्रं क्षीरं चान्नं रुक्पिबेत् । मांसमाहं पयः छागं त्रीन्मासान् व्योषं पशुयुतम् ॥

अर्थ—चीता और देवदारु इन दोनों के कल्कको दूधके साथ सेवन करै । अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दन्ती, चव्य, और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर पीसले । इस कल्कमें से बेरके बराबर दूधके साथ एक महीने तक पीवै तो बड़ा हुआ उदररोग शान्त होजाता है । अथवा त्रिफला, दन्ती और रोहिडा इनका ब्वायकरके त्रिकुटा और क्षार डालकर पान करै । और पक्के पचनेपर जांगल पशुओंका मांसरस, देवै अथवा सेहुंडके दूधके घाँके साथ पकाया हुआ मांस देवै । अथवा गोमूत्र के साथ हरडको फाँककर ऊपरसे दूध पीवै । अथवा सात दिवस तक भैंसका मूत्र पीवै और उसी का दूध पीकर रहै, बन्न छोड़ देवै । अथवा ऊँटका मांस और बकरी का दूध त्रिकुटा डालकर तीन महीने तक पीवै ।

हरितकीसहस्रं वा क्षीराक्षीवांशलाजतु । शिलानुविधानेन गुग्गुलुं वा प्रयोजयेत् ॥ शृङ्गेरार्द्रकरसः पाने क्षीरसमो मतः । तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दशगुणेन वा ॥ दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलं दूष्योदरं मतम् । शूलानां हविर्वन्धेषु सकतयूपरसादिभिः । १० सरलामरशिग्रूणां जीर्णम्योमूलकस्य च ॥ तैलान्यभ्यंगपानार्थं शूलघ्नान्यनिद्रोदरैः । स्तमित्वा रुचिहृल्लासेष्वन्याग्निर्मद्यपस्तथा ॥ अरिष्टान् वा पिवेत् क्षारान् कफस्त्या न स्थिरादरः ।

अर्थ—सहस्र हरडका सेवन एक पद बढ़ाने घटाने का रोग से करै और दुः

पान करके रहे । अथवा शिलाजीत का सेवन करै अथवा शिलाजीत की रीतिही से मूगलका प्रयोग करै । अथवा दूध में समान भाग अदरकका रस मिलाकर पीवै अथवा दसभाग अदरकके रसमें एक भाग तेल पकाकर सेवनकरै । अथवा दन्ती और द्रवन्ती के फलों का तेल दूधोदर में सेवन करै - शूल आनाह और विबन्ध रोगों में शक्नु, यूथ और मांसरसके साथ इसी तेल का सेवन करै । वातोदर में शूलको नष्ट करने के लिये सरलकाष्ठ, सहजना वा मूली के बीजोंका तेल अम्यग और पानमें प्रयोग करै ॥ कफोदर में जब उदर कफ के कारण क्षिब्ध और स्थिर होजाय तब तथा स्तिमिता, अरुचि, हृत्तास, और अल्पाग्नि में मद्यपनिशाला मनुष्य अरिष्ट वा क्षारोंका पानकरै ।

पिप्पलीतिलकंहिगुनागरंहस्तिपिप्पलीम्  
भरलातकंहिगुनागरंहस्तिपिप्पलीम्  
देवदारुहिरिद्रेसरलातिविषेवचाम् ।

कुण्डसुरतं तथापश्चलवणानिप्रकल्प्यते ॥  
दधिसर्पिर्वसातैलमज्जायुक्तानि शोषयेत् ।  
अन्नधूम्रतथाक्षारादिदालकपदं पिबेत् ।  
मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ।

हृद्गोश्वयधुगुल्मं ग्रीवाशो जठराण्येच ॥

विमूचिकाशुदावर्चवाताप्लीलाञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—पीपल, लोष, होंग, सोंठ, गज पापल, मिलाया, सहजना, त्रिफला, कुटकी देपदारु, दोनों हल्दी, सरला, अर्तास, वच, कूट, मोथा- पाचों नमक, इनको कूटकर

दही, घी, वसा, मज्जा, और तेल मिलाकर ऐसी रीतिसे दग्धकरै कि धूआं भीतरका भी- तरही भरजाय बाहर न निकलने पावे । इस क्षारमें से प्रतिदिन दो तोले मदिरा, दधि- मण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव के साथ पान करै तो हृद्गो- सूजन, गुल्म रोग, ग्रीवा, अर्श, जठर, विमूचिका, उदा- र्घ्य और वातप्लीला दूर होजाते हैं ।

आजकार्पिका प्रयोग ॥

सारञ्जाजकरीपाणांशृतमूर्त्रविपाचयेत् ।  
कार्पिकापिप्पलीमूलपञ्चैव लवणानि च ॥  
पिप्पलीचित्रकं धुण्ठीत्रिफलां त्रिष्टुतां वचा  
मूलाक्षारौ शातलां दन्तीं स्वर्णक्षरीं विपा  
णिकाम् ॥ कोलप्रमाणां वटिकां पिबेत्  
सौवीरसंयुताम् श्वयथाव विपाके च मृद्वे  
चोदकोदरे ।

अर्थ—बकरीकी मूत्रनिर्घोको जलाकर अठगुने मूत्रमें पकावै जब औटजाय तब एक छन्नेमें होकर चुआले इसतरह बीस कर्ष क्षार लेवै और पीपल मूल, पांचौनमक पीपल, चीता, सोंठ, त्रिफला, निसोध, वच, दोनों क्षार, शातला, दन्ती, स्वर्णक्षरी, और मेढासंगी इनको एक एक कर्ष लेकर पीसकर बरती बराबर गोली बनावै एकगोली खाकर ऊपरसे सौवीरका पान करे। इससे सू- जन, अविपाक और बढे हुए उदर रोग नष्ट होजाते हैं ।

उदररोग में भोजन ।

भाविता नां गवां मूत्रे पण्डिकानां तु तण्डुलैः  
यवाग्नूपयसासिद्धं प्रकामं भोजयेन्नरम् ।  
पिबेदिधुरसञ्चानुजठराणां निवृत्तयोः स्वं

स्वस्थानं ब्रजत्येपांतधापित्तकफानिलाः ॥

अर्थ—साठीचांबलों को गोमूत्रकी भावना देकर दूधके साथ उनकी यवागू बनाकर यथेष्ट भोजन करावै । ऊपरसे इक्षुरस का पान करै, ऐसा करनेसे जठर रोग शान्त होजातेहैं और वात पित्त कफ अपने अपने स्थानोंको चले जातेहैं ।

श्रीखिनीस्तुक्रिष्टदन्तीचिरिविल्वादिप  
ह्लवैः॥ शाकं गाढपुरीषाय प्राग्भक्तं दापये  
द्विपक्वम् ॥ ततोऽस्मै शिथिलीभूतवर्चो दो  
षाय शास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतं क्षीरं दोष  
शेषहरं शिवम् ॥ पाद्वर्षशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रह  
रुचां पिमास्तुतः । जनयेद्यस्य तैलं सविल्व  
सारेण नापिवेत् ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल गाढा पड  
गया हो उसे शखाहूली, सेंडुड, निरोध,  
दन्ती और कंजेके पत्तोंका साग भोजन क-  
रने से पहिले देवै । जब विष्टा और दोष  
ढीले पडजाय तब वचे हुए दोषोंको दूर  
करने के लिये गोमूत्र और दूधका सेवन  
करावै । जब वायु पाद्वर्षशूल, उपस्तम्भ और  
हृद्ग्रह उत्पन्न करै तब उसे विल्वक्षार के  
साथ तैलपान कराना चाहिये ॥

तथाग्रिमन्यश्यानाकपलाशतिलनालजैः  
बलाकदल्यपामार्गक्षारैः प्रत्येकशः सुतैः ॥  
तैलं पक्त्वा भिषगदद्यादुदराणां प्रशान्तये  
नियते ते चोदरिणां हृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः ॥

अर्थ—अरनी, सौनापाठा, ढाक, तिलकी  
नाळ, खैरीटी, फेला, आंगा, इन सब के  
तारोंको अलग अलग तयार करै । फिर

इन क्षारों के साथ तैल सिद्ध करै । यह  
तेल उदररोग तथा वातज हृद्ग्रह को दूर  
करदेता है ।

कफेवातेसपित्तेन ताभ्यां वाप्यावृतेऽनिले  
वलिनः स्वौषधयुतं तैलमैरण्डजं हितम् ।  
सुविरिक्तो नरो यस्तु पुनराधमती हितम् ॥  
सुश्चिष्टैरम्ललवणैर्निरुहैः समुपाचरेत् ॥

अर्थ—कफ, वात वा वातपित्तसे वायु  
के आवृत होने पर बलवान रोगी को वात  
नाशक वा कफनाशक औषधियों के साथ  
में सिद्ध किया हुआ अंडी का तेल देवै ।  
अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे भी जो  
फिर उदररोग की उत्पत्ति होवै तौ अम्ल  
और लवण द्वारा स्निग्ध निरुहण वस्ति  
देवै । जिसरोगी के वायु उपस्तम्भ के साथ  
उदररोग की उत्पत्ति करै उसे क्षार और  
गोमूत्र द्वारा तीक्ष्ण वस्ति देवै ।

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम्  
तीक्ष्णैः सक्षारगोमूत्रैर्वेस्ती भस्ते मुपाचरेत् ॥

अर्थ—अथवा उपस्तम्भ सहित वायु  
जिस नरको ग्रस्त कर लेती है, उस मनुष्य  
का तीक्ष्ण क्षार सहित गोमूत्र और वस्ति  
से उपचार करै ॥

त्रिदोषज उदर में कर्तव्य ।  
क्रियातीते त्रिदोषे च जाठरे चाप्रशाम्यति ॥  
ज्ञाती न समुहो दोषा रान्नाह्वयान् नृपतीन्  
शुरून् । अनुज्ञां पीभपक्कर्मविदध्यात्  
संशयं भुक्त्वा । अक्रियायां भुवो मृत्युः क्रिया  
यां संशयो भवेत् ॥ एवमाख्यायतस्येदं  
मनुज्ञातः प्रयोजयेत् ॥

नाभि से चार अंगुल नीचे नापकर बाईकु  
खमें चार अंगुल के शस्त्रसे चीरा लगाकर  
बद्ध वा क्षत आंतों की परीक्षा करै और  
उस आंत में घी चुपड़कर केश आदि जो  
शल्य उसमें हों उनको निकाल डाले । इन  
के निकालने से जो आंतों में छिद्र होजाय  
उनको बड़ी बड़ी चींटियों से फटवावै ऐसा  
करने से आंतें इकट्ठी होकर पुरजायगी  
पुरने पर चींटियों को छुड़ा देवै और  
आंतों को उनके स्थान पर रखकर घणको  
बाहर से सीदेवै ।

जातोदकउदरमें शस्त्रकर्म ।

तथाजातोदकसर्वमुदरव्यधयोद्भपक् ॥  
धामपार्श्वत्वधोनाभेनाडीदत्वाचगालये  
त् । निःस्त्राण्यचाविर्गृज्यैतद्दृष्टेष्टासो-  
दरम् ॥ तथावस्तिविरैकाद्यैर्ग्लानसर्व-  
चवेष्टयेत् । निःमृतेलघितःपेयामस्नेहल-  
घणापिवेत् ॥ अतःपरश्चपन्मासान्क्षी-  
रवृत्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसापे-  
यापिवेत्तृतीयापिभोजयेत् ॥ श्यामाक-  
क्षोरदूष्यवाक्षरिणेलघुभोजनः ॥

अर्थ....जिसउदररोग में जलबद्ध गयाहो  
उसमें भी नाभिके नीचेबाई ओर को चीरा  
लगाकर एक नली द्वारा सब जल को नि-  
काल देवै । जल के निकलनेके पीछे खाल  
को जहाँ की तहाँ लगाकर बस्त्र से उपेटदे  
वै । इसी तरह वस्ति और विरेचनादिसे म्वा  
न उदर को यस्त्रसे लपेट देवै । जलके नि-  
कलनेके पीछे लंघन कराके विना चिकनाई  
और नमक की पेयाका सेवन करावै इन में

पीछे छः महीने पर्यन्त मनुष्य केवल दूध  
पीकर रहे । उससे पीछे तीन महीने तक दूध  
के साथ पेया पीवै और फिर तीन महीने  
तक दूधके साथ सोंखिया और कीरदूध आ-  
दि हलके अन्नका सेवन करता रहै ॥

नरःसंबत्सरेणैवंजयेत्प्राप्तजलोदरम् ।  
प्रयोगाणान्तुसर्वेषामनुक्षीरमयोजयेत् ॥  
दांपानुबन्धुरक्षार्थवलयैर्याधिमेषव । प्र-  
योगापचिताङ्गानांहितहृद्यदारिणापच ॥  
सर्वधातुक्षयातार्नादिवानाममृतंयथा ॥

अर्थ....इस तरह एक बरस तक सुपच्य  
और उत्तम आहार विहार करने से मनु-  
ष्य जलोदर को विजय करसकता है । उ-  
दररोगों में सम्पूर्ण प्रयोगोंके पीछे दूध का  
पीना अवश्य है, ऐसा करनेसे वातादि दो-  
षों का अनुबन्ध दूर होजाताहै और बल  
तथा दृढता बनी रहतीहै । ब्रह्मसंसे प्रयोगोंके  
कारण रोगीका देह क्षीण होजाताहै और  
सम्पूर्ण धातुभी क्षय होजाती है इससे उद-  
रोगीको दूध ऐसा गुणदायक है जैसे देवता-  
ओं को अमृत ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंप्राप्पमप्यानांलिङ्गंव्याससमासतःउप-  
द्रवान्गरण्यस्त्वसाध्यासाध्यत्वमेवच ।  
जाताजाताम्मुल्लिङ्गानिचिकित्सांचोक्त्या  
नृपिः ॥ समासव्यासानेदेशैरुदराणांचि-  
कित्सितम् ।

अर्थ—इस उदरचिकित्सित नामक अं-  
ध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने आठ प्रकार के  
उदररोगोंके हेतु, प्रवृत्त्य, और निम्नो

रसाद्रक्तविसदृशात्कथं देहेऽभिजायते ।  
 रसस्य च न रजोऽस्ति सकथं याति रक्तताम् ॥  
 रसाद्रक्तात्स्थिरमांसं कथं तज्जायते नृणाम् ।  
 रसाद्रक्ताच्च यामांसां मेदसः श्वेतता कथम् ॥  
 श्लक्ष्णाभ्यामांसमेदोभ्यां खरत्वं कथमास्थि  
 भु । खरेष्वस्थिषु मज्जा च केन स्निग्धामृदु  
 स्तथा ॥ मज्जाश्च परिणामेन यद्विशुक्लं प्रव  
 र्तते । सर्वे सर्वगतं भुक्लं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥  
 अथापि मध्ये मज्जाश्च भुक्लं भवति देहिनाम् ।

छिद्रं न दृश्यतेऽस्थ्नाच्च तन्निःसरति नुः कथम्

अर्थ....जब आप्रिय इस तरह कह रहे थे  
 तब उनके शिष्यने पूछा कि हे भगवन् ! रस  
 और रक्तमें विसदृशता है फिर रससे, रक्त  
 कैसे उत्पन्न होता है ? रस में छलाई नहीं  
 होती है फिर, रक्तलाल क्यों होजाता है ?  
 रस और रक्त तौ पतले हैं फिर इनसे स्थिर  
 मांस कैसे उत्पन्न होता है ? रस, रक्त त-  
 था मांससे उत्पन्न हुआ मेद सफेद क्यों  
 होता है ? मांस और मेदा तौ चिकने होते  
 हैं फिर इनसे उत्पन्न हुई हड्डियों में खरख-  
 राहट क्यों होता है ? खरदरी हड्डियोंमें कि-  
 र मज्जा किस कारणसे स्निग्ध और मृदु  
 होती है । और यदि मज्जा के परिणामसे  
 ही वीर्य की प्रवृत्ति होती है और उसी शुक्ल  
 संघ पंडित सर्वगत अर्थात् सम्पूर्ण देह  
 व्यापक कहते हैं, इससे वीर्य मनुष्योंकी  
 कें बीच में ही होता है परन्तु हडि-  
 के बीच में उसके निकलने का कोई  
 नही दिखाई देता है फिर बाहर कैसे  
 आता है ॥

रससे रक्त बनने का कारण ॥

एवमुक्तस्तु शिष्येण गुरुः प्राहेदमुत्तरम् ।  
 तेजो रसानां सर्वेषामनुजानां यदुच्यते ॥  
 पित्तोऽप्यणः सरागेण रसो रक्तत्वमृच्छति ॥

अर्थ....इस तरह शिष्य से प्रश्न किये  
 जाने पर गुरुने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण  
 मनुष्यों के आहार रसमें एक तेज नामकरस  
 होता है यह पित्त की ऊष्मा से रक्त हो-  
 जाता है ॥

मांस और मेदकी रीति ॥

वाय्वग्नि तेजसार रक्तमूष्मणा चाभिसंयुतेभ्यो  
 स्थिरतां प्राप्य शौक्ल्यमेदो देहेऽभिजायते

अर्थ—वह रक्त वायु और अप्रिय का तेज  
 तथा ऊष्मा से मिलकर जमजाता है और  
 मांस बन जाता है एवं मांसकी ऊष्मा से द-  
 सीका सफेद मेद बनजाता है ॥

अस्थिकी विधि ॥

पृथिव्यग्न्या निलादीनां संघातः श्लेष्मणा वृतः  
 खरत्वं प्रकरोत्यस्य जायतेऽस्थि ततो नृणाम् ॥

अर्थ—कफसे आवृत पृथ्वी, अप्रिय और  
 वायु के संघात में खरखराहट पैदा होती है  
 इसी से हड्डियां उत्पन्न होती हैं ॥

मज्जाकी उत्पत्ति ॥

करोति तत्र सौमिर्यमस्थानां मध्ये स गीरणः ॥  
 मेदसस्तानि पूर्यन्ते स्नेहो मज्जा ततः स्मृतः ॥

अर्थ....तब वायु हड्डियों के मध्य में छिद्रों  
 को उत्पन्न कर देती है और वे छिद्र मेद से  
 परिपूर्ण होजाते हैं, उससे हड्डियों में स्नि-  
 ग्ध मज्जा उत्पन्न होती है ॥



शुक्रकी उत्पात्ति ॥

तस्मान्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रसञ्जायतेततः  
वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौश्रियंजायतेऽ  
स्थिषु । तेनस्रवतितत्शुक्रंवात्कुम्भादि-  
बोदकम् ॥

अर्थ....उस मज्जा की चिकनाई से शुक्र  
की उत्पात्ति होती है और हड्डियों में वायु  
और आकाशादि के भावोंद्वारा बहुत से छो  
टे २ छिद्र होजाते हैं उन्ही छिद्रों में होकर  
२ वीर्य ऐसे निकलता है जैसे नये घड़े में  
में जल चुचाता है ॥

वीर्य के निकलने की रीति ।

स्रोतोभिःस्यन्दतेदेहात्समन्तात्शुक्रवाहि-  
भिः । हर्षेणोदीरितंरागात्संकल्पाच्चम-  
नोभवात् ॥ विलिनिघृतवद्व्यायामोष्म-  
णास्थानविच्युतम् । वस्तौसंश्रुत्यनिर्वा-  
तित्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥

अर्थ....सम्पूर्ण देह से शुक्रवाही स्रोतों  
द्वारा मन से उत्पन्न हुए हर्ष, राग और स  
कल्प से शुक्र उद्गीर्ण होताहै तथा मैथुनादि  
परिश्रमकी ऊष्मा से घृत के समान पिघल  
कर अपने स्थान से च्युत होकर वस्ति में  
इकट्ठा होकर इस तरह निकलने लगता  
है, जैसे नीची जगह से जल निकलताहै ।

पृथक् २ मलों का वर्णन ।

किट्मन्स्यविष्मूत्रंरसस्यचक्रफोऽमृजः  
पित्तमांसस्यचमलोमलःस्वेदस्तुमेदसः ।  
स्यात्किट्केशलोमास्त्रोमज्जःस्नेहोऽक्षि-  
विद्वचाम् ॥ मसादकिट्कधातूनांपाका-  
द्वैवम्बिधः स्मृतः॥

अर्थ....अन्नका किट्ट अर्थात् मल विष्टा  
और मूत्र है, रस और रक्त का किट्ट कफ  
है, हड्डी का मल केश और लोम, है मर्जा  
का किट्ट स्नेह है, त्वचा का किट्ट आँखों का  
मल है, इसी तरह धातुओंके पाक से प्रसा-  
द और किट्ट उत्पन्न होते हैं ।

परस्पररोपसंरम्भाद्धातुस्नेहपरम्परा ॥  
वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्पातिबलमाशुहि-  
पद्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम्  
सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिहृतिस्तुचक्रवत्

अर्थ—स्नेह परम्परा धातु आपस में  
एक दूसरीको पुष्ट करती हैं, परन्तु वृष्य  
औषधियोंका यह प्रभाव है कि वे बलको  
ही शीघ्र बढ़ाती हैं । किसी २ का यह मत  
है कि एक धातु से दूसरी धातु के घनने  
में छःदिनरात लगते हैं, परन्तु वास्तव में  
एक धातुसे दूसरी धातु का घनना गाढ़े फे  
पहिये की तरह घूमता रहताहै ।

व्यानेनरसधातुर्द्विविधोचितकर्मणा ॥  
युगपत्सर्वतोऽजसंदेहेविसिप्यतेसदा ।  
सिप्यमाणस्तुर्वेगुष्याद्रसःसज्जतियत्रसः  
करोतिविकृतिचात्रत्वेवर्षमिवतोयदः ।  
दोषाणामपिचैवंस्यादेकदेशप्रकोपनम् ॥

अर्थ—विक्षेपकारी व्यान वायु रसधातु  
को निरन्तर सम्पूर्ण देहमें विक्षिप्त करती  
रहतीहै । इसतरह विक्षिप्त रस विगुण हो  
कर देहमें जहाँ कहीं, एकाग्रित होजाताहै व-  
हाँ विकृति उत्पन्न करता है जैसे आकाश  
में बादल एक जगह इकट्ठे होकर बरसमें  
लगतेहैं । इसीतरह दोष एक स्थानमें  
प्रकृपित होजातेहैं ।

जठराग्नि की उत्कृष्टता ।

इतिभौतिकधात्वन्नपक्वणां कर्मभाषितम् ॥  
अन्नस्य पक्तासर्वेषां पक्वत्वा नाम अधिको मतः ॥  
तन्मूलास्ते हितदृष्टि सयदृष्टि सयात्मकाः ॥  
तस्मात्तन्विधिवद्युक्तैरन्नपानेन धनैर्हितैः ॥  
पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ वायुर्वलस्थितिः

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार भौतिक धातु और पाचकाग्निके कर्म वर्णन किये गये हैं । सम्पूर्ण अग्नियोंमें अन्नको पचानेवाली अग्नि अधिक होती है, पाचकाग्निही सम्पूर्ण अग्नियोंका मूल है क्योंकि इसीके घटने बढ़नेसे औरों की भी घटती बढ़ती होती है । इसलिये ईंधनरूपी हितकारी अन्नपानके विधिपत्रसेवन करने से जठराग्नि का पालन करै । पाचकाग्नि के स्थित होनेही से आयु और बल की स्थिति होती है ।

ग्रहणी दोषों का कारण ।

यो हि श्लेष्मे विधिमुक्त्वा ग्रहणी दोषजान् गदान् ।  
सलौह्याल्लभते शीघ्रवक्ष्यन्तेऽतः परन्तु ये ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधि छोड़कर भोजन करता है, उसके जिह्वाकी छोटपटासे ग्रहणी दोषसे उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोग होजाते हैं । अब उन्हीं का वर्णन करते हैं ।

अग्नि के दूषित होने का कारण  
अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विपमाश्ननात् ।  
असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् ॥  
विरेकवमनस्नेहविभ्रमादथ विकर्षणात् ।  
देशकालवैषम्याद्देवानाश्च विषाणानात् ॥  
दुष्पत्यग्निः सदुष्णोऽन्नं न त

तृपचातिलघ्वापि । अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विपताञ्चतत् ॥

अर्थ—भोजन न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अतिभोजनसे, विपम भोजन से, विरेचन, वमन, और स्नेहन कर्मों के अतियोगसे, व्याधिद्वारा अत्यन्तकृश होनेसे, देशकाल और श्रुतकी विपमता से, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अग्नि दूषित होजाता है और दुष्ट होनेसे वह लघु अन्न को भी नहीं पचासकती है । और अपच्यमान अन्न खट्टा और विपत् होजाता है ॥

अजीर्ण अन्न के लक्षण ॥

तस्य लिङ्गमजीर्णस्याविष्टम्भोऽगञ्चसीदति ।  
शिरसोरुक्चमूर्च्छा च भ्रमः पृष्ठकटिग्रहः ॥  
जृम्भांगमर्दस्तृष्णा च ज्वरच्छर्दिः प्रवाहणम् ।  
अरोचको विपाकश्च घोरमन्नविपञ्चतत् ॥

अर्थ—अपच्यमान अन्न इन उपद्रवों को करता है, यथा गुडगुडाहट, अगलानि, सिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम पृष्ठग्रह कटिग्रह, जृम्भा, अंगमर्द, तृष्णा, ज्वर, वमन, ऐंठा, अरुचि और अविपाक, इततरह, अन्न घोर विपके समान होजाता है ॥

भिन्नदोषों से संसृष्ट विपान्न ॥

संसृज्यमानेनापित्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान् ।  
जनयत्यम्लपित्तं च पित्तजांश्चापराणान् ।  
गदान् ॥ यक्ष्मपीनसमेहादीन् कफजान् कफसंगतः ।  
करोति वातसंसृष्टं वातजांश्च गदान् बहून् ॥  
मूत्ररोगांश्च मूत्रसंयुक्तां रोगान् शकृद्गतान् ।  
रसादिभिश्च संसृष्टं

कुर्याद्रोगान्तरसादिजान् ॥

अर्थ—यही अपच्यमान अन्न पित्तसे मिलकर दाह, तृष्णा, मुखरोग, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य अन्य २ रोगोंको उत्पन्न करता है। कफ से मिलकर यक्ष्मा, पीनस प्रमेह तथा अन्यकफज विकारोंको करता है। वात से मिलकर अनेक प्रकारके वातरोगोंको करता है, मूत्रसे मिलकर अनेक प्रकारके मूत्ररोगोंको, विष्टासे मिलकर अनेक प्रकारके कुक्ष रोगोंको और इसीतरह रसादिसे मिलकर रसादिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको करता है॥

भिन्नजठराग्निके कर्म ।

विषमोधातुवैषम्यं करोति विषमं पचन् ।  
तीक्ष्णो मन्देन्धनो धातून् विशोध्यति पावकः ॥ युक्तं भुक्तवतो युक्तो धातुसाम्यं समं पचन् । दुर्बलो यदि हृत्पन्नं तद्यात्पृथ्व्यमधोऽपि वा ॥

अर्थ—विषम अग्नि अन्नको विषमरीति से पकाकर धातुओंको विषम करदेती है, तीक्ष्णाग्नि भोजनरूपी ईंधनको अल्पपाकर सम्पन्न पक्व करके धातुओंको शुद्ध कर देती है। समग्नि युक्तिपूर्वक भोजन करनेके कारण धातुओं में साम्यता करता है तथा मन्दाग्नि अन्नको अच्छीतरह न पचानेसे विदग्धता करती है और वह अन्न वमन द्वारा वा मलद्वारा बाहर निकल जाता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ।

अभ्रश्चपक्वमामं वा प्रवृत्तं ग्रहणी गदः । उच्यते सर्वमेवान्नं प्रायो ह्यस्य विदधते ॥

अतिसृष्टं विवदं वा द्रवंतु पवेद्यते ।

अर्थ—पक्व वा कच्चा अन्न जो अधो-गार्गद्वारा होकर निकलता है, इसे ग्रहणी रोग कहते हैं, इसमें प्रायः सब प्रकार का अन्न विदग्ध होजाता है। विवदता के साथ वा पतला होकर निकलता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

तृष्णारोचकवैरस्य प्रसेकतमकान्वितः ॥  
भूतपादकरः सास्थिपर्वरुक्छर्दनं ज्वरः ।  
लोहामगन्धिस्तित्काम्लउद्गारश्चास्य जायते ॥

अर्थ....इस रोगमें तृष्णा, अरुचि, विरसता, छालासाय, तमकश्वास, हाथपांव में सूजन, हड्डी पर्वोंमें वेदना, वमन, ज्वर, लोहगन्धि, आमगन्धि, तथा तित्क और खट्टी डकार आदि उपद्रव होते हैं ॥

ग्रहणी रोगके पूर्वरूप ॥

पूर्वरूपंतु तस्येदं तृष्णालसं च लक्षणम् ।  
दाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरं वम् ॥

अर्थ—तृष्णा, आलस्य, चलकीक्षीणता, अन्नका विदाह, देरमें अन्नका पाक और देह का भारापन ये सब ग्रहणी के पूर्वरूप हैं।

ग्रहणीका विशेष वर्णन ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणीमता ।  
नाभेरुपरि राशिरग्निबलोपस्तम्भमृष्टीहता ॥  
अपक्वधारयत्यन्नं परं सृजति पाथर्वतः । दुर्बलाग्न्यबलाद्दुष्टादामपेव विमुञ्चति ॥

अर्थ—ग्रहणी अग्निका अधिष्ठान है, यह अन्नको ग्रहण करती है इससे अन्न ग्रहणी

कहते हैं, यह नाभिके ऊपर होती है, अग्निबलही इसके लिये उपस्तम्भ और वृंहण कर्त्ता होता है यह अपक्व अन्न को धारण करती है और पक्व अन्नको पार्श्वद्वारा निकाल देती है। अग्निबलके दूषित होने से यह दूषित होकर अपक्व अन्न को ही निकालने लगती है।

**ग्रहणी रोग के भेद ।**

घातातिपित्तात्कफात्सर्वाग्रहणीदोषउच्यते । हेतुलिङ्गचिकित्साश्चशृणुतस्य पृथक्पृथक् ॥

अर्थ....ग्रहणीरोग चार प्रकार का होता है, यथा—घातिक, पित्तिक, श्लैष्मिक और साक्षिपातिक। अब इनके पृथक् २ हेतु लक्षण और चिकित्सा वर्णन किये जाते हैं, उन्हें सुनो।

**घातिक ग्रहणी के हेतु ।**

कडुतिक्तकपायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ कशैतिकुपितोमन्दमर्गिसंच्छाद्यमारुतः ।

अर्थ—कड़वे, तालि, कसीले, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त शीतल भोजन करने से, थोड़ा भोजन करने से, या सर्वथा न करने से, अत्यन्त मार्ग चलने से, उपस्थित वेगों के रोकने से और मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्निको ढकंकर मन्द करदेती है, इसी से ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

**घातिक ग्रहणी के लक्षण ।**

तस्याग्रपच्यतेदुःखंनुक्तपाकःखरांगता ॥ कण्ठस्पर्शोपधुतदृष्णातिमिरकण्ठपोः

स्वनः । पार्श्वोरुवक्षणाग्नीवारुजोऽभीक्ष्णविसूचिका ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यैर्वरस्यंपरिकर्तिका । शृद्धिःसर्वरसानां चमनसःसदनंतथा ॥ जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्महृद्रोगप्रीहाशङ्कीचमानवः ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कतन्वांमशब्दफेनवत् । पुनःपुनसृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके बादी से ग्रहणी रोग होताहै उसका अन्न कठिनेतासे पंचता है और अम्लपाक होताहै अर्थात् खट्टी डकारें आने लगती हैं। देहमें खुरदरापन, कण्ठ और मुखमें खुरकती, क्षुधा, तृप्तांखों के साम्हने अंधेरा, कानों में शब्द, पार्श्ववेदना, ऊरुशूल, वक्षणाशूल, प्रांवा में वेदना, बार बार विसूचिका, हृत्पीडा कृशता, दुर्बलता, विरसता, ऐंठा, सम्पूर्ण रसोंमें स्पृहा, मनका शिथिल होना, अन्न के पचनेपर वा पचने के समय अफरा, होता है केवल भोजन करने से सुस्थता होती है। इस रोगी को यह शंका होती है कि मेरे वात गुल्म, हृद्रोग और प्रीहा होगई है। इस रोगमें देरमें कष्टसे पतला, सूखा थोड़ा कच्चा, शब्दयुक्त, और शागदार मल बार २ निकलता है, तथा रोगी के खांसी और स्वास भी उत्पन्न हो आते हैं।

**पित्तिक ग्रहणी का हेतु ।**

कद्वजीर्णचिदाहम्लसाराद्यैः पित्तमुत्त्वनम् । अग्निमाप्लावयदतिजलंतप्तमि-

वानलम् ॥

अर्थ—विदग्ध आहारसे मूर्च्छित होकर जब दोष ग्रहणीका आश्रय लेलेतेहैं तब वि-  
ष्टम्भता, लालास्राव, आर्त्ति, विदाह, अंशुचि,  
भारापन और आमके लक्षण दिखाई देने  
लगते हैं । उस समय सुहाता हुआ गरम  
जल, मेनफलका क्वाथ वा पीपल और सरसों  
का कल्क देकर वमन करा देवे ॥ तथा जो  
पक्वाशय में लीन होजाय तौ संदीपन औ-  
पधोंके प्रयोगसे आमको निकाल डालै ।

शरीरानुगतसामेरसेलघनपाचनम् ॥ वि-  
शुद्धामाशयायामैषश्चकोलादिभिर्युतम् ।  
दद्यात्पेयादिलघ्वन्नपुनर्योगांश्चदीपनान् ।

अर्थ—जब आम रस शरीरमें फैलजाय  
तब लघन पाचन औपधियों का प्रयोगकरै  
इसतरह आमाशयके विशुद्ध होनेपर पंच  
कोलादि मिश्रित पेयादि लघु अन्न तथा सं-  
दीपन योगोंका प्रयोग करै ।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम् । दी-  
पनीययुतंसर्पिःपाययेताल्पशोषिकम् ॥ कि-  
ञ्चित्सन्धुक्षितेत्वग्रौसक्त विष्णूत्रमारुत-  
म् । द्वित्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरू-  
हयेत् ॥ ततएरण्डतैलेनसर्पिपातैलकेन  
वा । सक्षारेणानिलेशान्तेस्त्रस्तदोषंविरे-  
चयेत् ॥ शुद्धरूक्षाशयंवद्वयर्चसञ्चानु-  
वासयेत् । दीपनीयाम्बुवातघ्नसिद्धतै-  
लेनमात्राया ॥ निरुद्धविरिक्तश्चसम्य-  
वचवानुवासितः । लघ्वन्नपतिसम्भुक्तः  
सर्पिरेवाचरेत्पुनः ॥

अर्थ—यानज ग्रहणी रोगमें आमकी प-  
रिपक्वता जान पड़े तौ दीपनीय औपधि-

यों से सिद्ध कियाहुआ घृत थोड़ा थोड़ा  
देवै । इससे अग्नि के कुछ बढने पर जब  
विष्टा, मूत्र और अधोवायुकी विवद्वता दि-  
खाई देवै तौ दो तीन दिनतक स्नेहन कर्म  
और अम्यक्त करने के पश्चात् निरूहण  
वस्ति देवै । इस तरह दोषों के शिथिल  
होनेपर तथा वादीके शान्त होनेपर क्षार  
युक्त अंडीका तेल वा विरेचन औपधियों  
द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत वा तेल देकर  
विरेचन करावै । इसतरह संशोधन औपधों  
के प्रयोग से पक्वाशयके रूक्ष होनेपर विष्टा  
की विवन्धतामें दीपनीय औपधों का काथ  
वा वातनाशक औपधियों से सिद्धकियेहुए  
तेल द्वारा अनुवासनवस्ति देवै । इसतरह  
अच्छी प्रकार से निरूहण, विरेचन और  
अनुवासन होने के पश्चात् लघु अन्न का  
भोजन कराके नाचि लिखे हुए घृतों का  
सेवन करावै ।

द्विपंचमूलादि घृत ।

द्वेपञ्चमूलं सरलं देवदारुसनागरम् । पिप्प-  
लीपिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥  
शणवीजं यवान्कोलान्कुलत्थान्मुरभी-  
स्तथा । पाचयेदारुनालेन दध्ना सौवीर-  
केणवा ॥ चतुर्भागावशेषेण पचेत्तेन घृ-  
तादकम् । स्वर्जिकायावशुकारुयौक्षारौ  
दत्वाचयुक्तितः ॥ सैन्धवोद्भिदसामुद्र  
विहानारोमकस्य च । ससौवर्चलपावया  
नां भागान् द्विपलिकान् पृथक् ॥ विनीय  
चूर्णितान् सिद्धात्ततो द्वे द्वे पलोपिवेत् । करो-  
त्यग्निं वलं वर्ण्यवातघ्नं भुक्तपाचनम् ॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, सरला, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता; गजपीपल सन के बीज, जौ, बेर, कुलथी और सुरभी इन सबको समान भाग लेकर चौगुनी, फांजी, दही या सौवीरके साथ पकावै, जब चतुर्थांश शेष रहजाय तब उतारकर छान ले, फिर उसमें सज्जी, जवाहार, सेंधा, उद्भिद, सामुद्र, विड, रोमक, सौवर्चल और पाक्य ये सात प्रकारके नमक सबको दो २ पल डाले और एक आठक घृत डालकर पकावै । यह घृत प्रति दिन दोपल सेवन करनेसे अग्नि, बल, और वर्णकों बढ़ाताहै, वादी को मारता, और भोजनको पचाताहै ।

त्र्युपणादि घृत ।

त्र्युपणात्रिफलाकल्फेबिल्वमात्रेणुडातपले ।  
सर्पिणोऽष्टपलंपयस्त्वामात्रामन्दानिलःपि-  
बेत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा और त्रिफला का कल्क एकएक पल, गुड एकपल, घी आठ पल, और चौगुना जल डालकर पानकरै और मात्राको अनुसार सेवन करै तो मन्दाग्नि दूर होजाती है ॥

पंचमूलादि घृत और चूर्ण ।

पञ्चमूलाभयाव्योपविडङ्गशटिभिर्घृतम् ।  
शुक्तेनमातुलङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच ॥ शु-  
ष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्यच ।  
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुपोदकैः ॥  
फाञ्जिकेनचतत्पकगन्धिदीप्तिकरंपरम् ।  
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥  
सयीजपूरकरसंसिद्धंवापाययेद्घृतम् ।

सिद्धमभ्यक्षनार्थञ्चतैलभेतैःप्रयोजयेत् ॥  
एतेपामौषधानांवापिवेच्चूर्णसुखाम्बुना ।  
वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते ॥

अर्थ—पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, वायवि-  
डंग, कचूर, इन सबसे चौगुना घी, शुक्त, विजैरेका रस, अदरकका रस, पृथक् २ घी के समान लेवै । सूखी मूली, बेर, नेत्र वाला, चूका, अनार इनका काथ घी के समान, तक्र घी के समान तथा मस्तु, सुरामण्ड, सौवीरक और तुपोदक ये सब घृत के समान लेकर पकावै । यह घृत अत्यन्त अग्नि को बढ़ानेवाला है तथा शूल, गुल्म उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफ को दूर करताहै । अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क और केवल विजैरे के रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहे हुए गुण करताहै । उक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल मालिशमें लगावै । अथवा इन्हीं औषधों का चूर्ण गरम जलके साथ पीवै । इससे कफावृत वात, आमयुक्त कफ या वात कफ दूर होजाते हैं ॥

मलपरीक्षा ॥

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विद्रूपकात्तृप्त्वतेजले ।  
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्ममदूपणात् ॥  
परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम् ।  
विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥  
अर्थ—कच्चा मल भारी होने के कारण जल में डूबजाता है, पक विष्टा जलके ऊपर तैरता रहता है, परन्तु पकाहुआ मलभी अत्यन्त पतला, गाढ़ा, अत्यन्त शीतलता

युक्त वा श्लेष्मासे दूषित होने के कारण  
द्वयजाताहै । इसतरह रोगियों की आम  
सहित और आमरहित मलकी परीक्षाकरै,  
तथा विधिपूर्वक पाचन और दीपन औषधियों  
द्वारा चिकित्सा करै ॥

चित्रंकादि चूर्ण ॥

चित्रकापिप्पलीमूलद्वौसारौलवणानिच ।  
व्योपंहिग्वजमोदश्चचण्यचैकत्रचूर्णयेत् ॥  
शुद्धिकामातुल्यस्यदाडिमस्यरसेनचा ।  
कृताविपाचयन्त्यामन्दीपयत्याशुचान-  
लम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, दोनों क्षार,  
पाँचों नमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और  
चण्य इन सबको विजैरे वा अनार के रस  
में खरल करके गोली बनालेवै । ये गोलियाँ  
आमको पचाती हैं और आग्नि को प्रदीप्त  
करती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

नागरातिविषामुस्तकायःस्यादामपाचनः  
मुस्तान्तकल्कः पथ्यावानागरचोष्णवा-  
रिणा ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिवि-  
षामयाः । वारुण्यामामुतास्तोयेकोष्णे  
वालव्रणपिचेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अतांस और मोथेकाफाय  
आमको पचाताहै । अथवा इन्हीं तीनोंद्रव्यों  
का चूर्ण, अथवा हरड अथवा सोंठ को  
गरम जलके साथ फाँकेने से आम पचजा-  
ता है । अथवा देवदारु, वच, मोथा, सोंठ  
अतांस और हरड इनको वारुणी मद में  
बाँठे जब इनका सार उसमें आजाय तब

छानकर पीले अथवा इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण  
को संधानमक मिलाकर गुनगुने जलके  
साथ पीवैतो आम पचजाता है ॥

पिवेत्सपरिकर्चामेलवादाडिमाशुना ।  
विडेनलवणपिष्ट्वाविल्वचित्रकनागरम् ॥  
सामेवासकफेवातेकोष्ठशूलकरेपिवेत् ।  
कलिङ्गहिंवातिविषावचासौवर्चलाभयाः  
छर्द्यशोप्रन्थिशूलेपुपिवेदुष्णेनवारिणा ।  
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम् ।  
अभयापिप्पलीमूलवर्चाकडुकरोहिणीम्  
पाठांयत्सकवीजानिचित्रकंविश्वभेषजम्  
पिवेन्निकाध्यचूर्णानिकृत्वाकोष्णेनवा-  
रिणा । पिचश्लेष्मावृतेवातेग्रहण्यामरु-  
चातथा ।

अर्थ—जो आम और पेटाहो तो बेल-  
गिरी, चीता और सोंठ तथा विडनमक  
डालकर अनार के कोंठ के साथ पीवै ।  
कफयुक्त आम और वातज कोष्ठशूलमें इन्द्र-  
जी, हींग, अतांस, वच, इनके चूर्ण को  
गरम जलके साथ पीवै । अथवा वमन, अर्श  
रोग, प्रन्थिशूलमें हरड, संचरनमक जीरा  
और कालीमिरच का चूर्ण गरम जल के  
साथ पीवै । अथवा हरड, पीपलामूल, वच  
कुटकी, पाठा, इन्द्रजी, चीता और सोंठ  
इनका क्वाथ करके पीवै, अथवा इनका चूर्ण  
गरम जलके साथ फाँके तो कफ, पित्त और  
वातकी ग्रहणी और अरुचि दूर होजाती है  
सामेसातिविषांन्योपलवणक्षारंहिगुवत्  
निकाध्यपाचयेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवा-  
रिणा । पिप्पलीनागरपाठांशारिवावृह

तीद्वयम् ॥ चित्रकंकौटजवीजलवणान्य  
थपञ्चच । तच्चूर्णसयवक्षारदध्युष्णाम्बु  
सुरादिभिः ॥ पिवेदग्निवृद्ध्यर्थकोष्ठवा  
तहरंनरः ।

अर्थ—आमयुक्त पित्तश्लेष्मावृत ग्रहणी  
में अतीस त्रिकुटा, नमक, क्षार, और हींग  
इनका दवाध करके वा चूर्ण बनाकर गरम  
जलके साथ पीवै । अथवा पीपल, पाठा  
शोरिका, दोनोंकटेरी, चीता, कड़ा, के बीज  
पाँचों नमक और जवाखार इनका चूर्ण ब-  
नाकर दही, गरम जल वा सुराके साथ  
सेवन करै तौ आग्निकी वृद्धि होती है और  
कोष्ठगतवायु दूर होजाती है ।

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चिकाम्बप्रावृक्षाम्लकुडवाः  
पृथक् ॥ पलानिदशचाम्लस्यवेतसस्य  
पलादिकम् । सौवर्चलीवढम्पाकययव  
क्षारःससैन्धवः ॥ शटीपुष्करमूलानिहिं  
एहिगुशिवाटिका । तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मं  
चूर्णकृत्याप्रयोजयेत् ॥ हितवाताभिभूता  
यांग्रहण्यामरुचौतथा ॥

अर्थ—कालीमरिच, कालाजीरा, पाठ,  
वृक्षाम्ल इनको एक २ कुडव ले । अमल-  
वेत दसपल, तथा संचलनमक, विडनमक  
पात्रयनमक, जवाखार, सैधानमक, कचूर,  
पुहकरनूल, हींग और हिंगुपत्री ये सब आधे  
आधे पल लेकर चूर्ण बना लेवै । यह चूर्ण  
वाताभिभूत ग्रहणी और अरुचि में हितहै ।  
चतुर्णाग्रस्थमम्लानांज्यूपणाचपलत्रयम् ॥  
लवणानांचवत्वारिशर्करायाःपलायकम् ॥

संचूर्ण्यशाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ॥  
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डूवामयगु-  
ल्मनुत् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ  
त्रिकुटा तीनपल, चार प्रकारके लवण चार  
पल, शर्करा आठपल इनका चूर्ण बनाकर  
साग, दाल, तथा रागादि में डालकर सेवन  
करता रहै तौ खाँसी, अजीर्ण, अरुचि, स्वा-  
स, पाण्डुरोग और गुल्म दूर होजातेहैं ।

यवागू विधि ।

चन्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योपचित्रं  
कम् ॥ कपित्थंविस्वमम्बुष्ठांशालमलंह-  
स्तिपिप्पलीम् ॥ शिलोद्भेदं तथाजाजौपि  
एवावदरभागिकम् । परिभर्ज्यघृतेदध्ना  
यवागूसाधयेद्भिषक् ॥ रसैःकपित्थचुम्बी  
कावृक्षाम्लैर्दाडिमस्यच । सर्वातिसारम  
न्दाग्निगुल्मार्शःप्लीहनाशिनी ॥

अर्थ—चन्य, दालचीनी, पीपलामूल, धात  
के फूल, त्रिकुटा, चीता, कैथ, बेलगिरी,  
पाठा, सेमर, गजपीपल, शिलोद्भेद, काला-  
जीरा ये सब एक २ तोले लेकर पीसडाँले ।  
फिर दही, वा कैथ, वा चूका, वा वृक्षाम्ल,  
वा अनारके रस के साथ यवागू तयार कर  
के घृत में छोंक कर सेवन करै तौ सर्वा-  
तिसार, मन्दाग्नि, गुल्म, अर्श और ग्रीहों दूर  
होजाते हैं ।

भोजनादि विधि ।

पञ्चकोलकयूपश्चमूलकानांचसोपणः ।  
स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजाङ्गलःसंस्कृतो  
रसः ॥ कल्यादस्वरसःशस्तोभोजनार्थ-



सदीपनः । तक्रारनालभयानिपानार्थे-  
ष्टएवच ॥

अर्थ....पंचकोल के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग का यूप, सूखी मूली का यूप, अनार वा तक्रकी खटाई डालकर सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस, अथवा मांसाहारीजीवों का मांसरस, भोजन में हित है और मठा, कांजी वा मय पीने में हित है तक्रके गुण ।

तक्रतुग्रहणीदोपेदीपनग्राहिलाघवात् ।  
श्रेष्ठमधुरपाकित्वान्नचपित्तप्रकोपयेत् ॥  
कपायोष्णावेकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफमेत-  
म् । वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कामाविदा-  
हितम् ॥ तस्मात्तक्रप्रयोगायेजठराणां-  
थार्थसागम् । विहिताग्रहणीदोपेसर्वशस्ता-  
न्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—दीपन; संग्राही और हलका होने के कारण तक्र गृहणी दोषों में हित है । गधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता है । यह कपाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होने से कफ में हितकारक है । य-  
॥ स्थादु, अम्ल और सान्द्र है अतएव वात में हित है । तान्ना मठा अविदाही होता है । इसी कारण से तक्रके जोजो प्रयोग जठर रोग और अर्शरोग में कहे गये हैं ये भी गृहणी दोषमें प्रदास्त है ।

तक्रारिष्टः ।

यवात्प्यामलकेपथ्यामारिचं त्रिपलां शिकम् ।  
लवणानिपलांशानिपञ्चैव चूर्णयेत् ॥  
तक्रकं सानुतं नातं तक्रारिष्टं पिवेन्नरः । द्वा-

पनं शोथगुल्मार्शः क्रिमिमेदोदरापहम् ॥

अर्थ....अजवायन, आंवला, हरड़, का-  
लीमिरच, प्रत्येक तीन-तीन पल; पांचों न-  
मक एक एक पल इन सबका चूर्ण करके  
फिर इनको सोलहसेर मठे में भरकर तीन  
चार दिन तक रखवा रहने देंगे । इस तक्रा-  
रिष्ट का पानकरने से शोथ, गुल्म, अर्श, क्रि-  
मिरोग, मेदरोग, उदररोग, दूर होजाते हैं  
और यह दीपनभी है ।

स्वस्थानगतमुत्थिष्ठयग्निनिर्वापकं भिषक्  
पित्तं ज्ञात्वा विरेकेणी न हरेद्दमनेन वा ॥

अविदाही भिरनैश्चलघुभिस्तित्तसंयुतैः ॥

जाङ्गलानां सैयूपैर्मूत्रादीनां खडैरपि  
दाढिमाम्लैः ससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः ।  
तस्याग्निदीपयच्चूर्णैः सर्पिर्भवांसतिक्तकैः

अर्थ....अग्निका बुझानेवाला पित्त जब अ-  
पने स्थान में हो तब विरेचन देंगे और यह  
उत्थिष्ठ हो तब यमन द्वारा निकाल डालें ।

इस रोग में अविदाही, हलका, तित्त  
औपधियों से संस्कृत भोजन, जांगलमांसरस  
मूंगकायूप, अनारदाने की खटाई, घृत तथा  
दीपन और संग्राही औपधियों से संस्कार  
किया हुआ खडयूप तथा दीपनाय चूर्ण  
और तित्तक घृत के प्रयोगों से जठराग्नि  
को उत्तेजित करना उचित है ।

चन्दनादिघृत ॥

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वाकुट्टनटम् ।  
पद्मगन्ध्याशारिवास्फोतासप्तपण्डिरूपका-  
न् ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थघटश्लक्ष्मणीत-  
नान् । कडुकारोहिणीमुस्तं निम्बश्च दि-

लांशिकम् ॥ द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषे.  
प्रस्थघृतात्पचेत्किराततित्तेन्द्रयवर्वारा  
मागधिकोत्पलैः ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंत-  
त्पित्तग्रहणीगदे । तित्ककंयद्घृतंचोक्तं-  
कौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥

अर्थ—चन्दन, पद्माक्ष, उसीर, पाठा, मरो  
डफली, केवटीमोथा, वच, सारिवा, भास्फोता  
सप्तपर्ण, आमडा, परवल गूलर, पीपल, बड, पा  
कर, अडूसा, कुटकी, मोथा, नमि, इनमें  
से प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेकर एकद्रोण  
जल में सिद्ध करै जब चौथाई शेषरहजाय  
तब उतारकर छानले और उसमें एकप्रस्थ  
घी डालकर पकावै और इसमें साथ ही  
चिरायता, इन्द्रजौ, शालिपर्णी, पीपल,  
और नीलकमल इन सबका एक २ तोले  
कल्क डाल देवै । इस घृतके पान करने  
से पित्तग्रहणी दूर होजानी है तथा कुष्ठरोग  
में जो तित्कक घृत वर्णन किया गया है  
वह भी हित है ॥

नागराद्यचूर्ण ॥

नागरातिविपेक्षुस्तंथातर्कासरसाञ्जनम् ।  
वत्सकत्वक्फलंयिल्वंपाठांकटुकरोहिणी-  
म् । पिवेत्समांशंतच्चूर्णसंज्ञौद्रंतण्डुलाम्बु-  
ना ॥ पैचिकेग्रहणीदोषेरक्तंयच्चोपये-  
श्यते ॥ अर्शासिचक्षुदेयूलंजयेच्चैवप्रवा-  
हिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णकृष्णात्रेयेन  
पूजितम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, मोथा, धायकेफूल,  
रसौत, कुडाकीछाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पा-  
कुटकी इनसबको समानभागलेकरचूर्ण बना

वै इस चूर्णको सहित और तण्डुलजलके सा-  
थ पीवै इससे पित्तज ग्रहणीदोष, रक्तरोग,  
अर्श गुदशूल और प्रवाहिका दूर होजाती है ।  
इस नागराद्य चूर्ण की कृष्णात्रेयने बड़ी प्र-  
शंसाकी है ॥

भूजिवाद्यचूर्ण ॥

भूनिम्बकटुकंयूपंमुस्तमिन्द्रयवान्समा-  
न् । द्रौचित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान्पोडश-  
चूर्णयेत् ॥ गुडशक्तीम्युपीतंतद्ग्रहणीदो-  
पगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुन्वमेहार-  
च्यतिसारनुत् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा,  
इन्द्रजौ, ये सब समान भाग लैवै । चीता  
दोभाग, कुडाकी छाल सोलहभाग, इनसब  
का चूर्ण बनाकर गुड और ठंडे जलके  
साथ पानकरै तो ग्रहणी दोष, गुल्म, का  
मला, ज्वर, पांडुरोग, मेह, अरुचि और  
अतिसार दूर होजाता है ॥

वचाद्यचूर्ण ॥

वचामतिविपांपाठांसप्तपर्णरसाञ्जनम् ।  
श्योनाकोदीच्यकट्वङ्गवत्सकत्वग्दुराल-  
भाः ॥ दार्वापपट्टकंमूर्वायचानंमिधुशिष्ट-  
कम् । पटोलपत्रंसिद्धार्थान्पूथिकञ्जा-  
तिपल्लवान् ॥ जाम्बाम्रविल्वमध्यानि-  
निम्बपत्रफलानिच । तद्रोगशममन्विच्छ  
नभूनिम्वाद्येनयोजयेत् ॥

अर्थ—वच, अतीस, पाठा, सप्तपर्ण, रसौत,  
नेत्रवाला, श्यौनाक, नेत्रवाला, सोनापाठा, कुडा-  
कीछाल, जवासा, दारुहलदी, पित्तपापडा, मरोड-  
फली, अजवायन, सहजना, परवलकेपत्ते, सपेट

विपाचयेत्। द्रोणशेषेतुतच्छीतमध्वर्धाढक  
संयुतम् ॥ एलायनालागुरुभिश्चन्दनेन  
चरुपिते ॥ कुम्भेमासस्थितेजातमासव  
न्तप्रयोजयेत् ॥ ग्रहणीदीपयत्येष्टहणः  
कफपित्तजित् । शोषकुण्डकिलासश्चप्रमे-  
हांश्चप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—महुआके फूल एक द्रोण, वायवि  
डंग आधा द्रोण, चीता चौथाई द्रोण भिलाया  
एकआढक, मजीठ आधापल इन सबको ती  
न द्रोण जलमें पकावे जब एक द्रोण शेष  
रहजाय तब उतारकर छानले उसमें ठंडा  
होने पर आधा आढक मधु मिलादेवै । फि  
र इसको एक घीकी चिकनी हांडीमें भर  
देवै जिसके भीतर इलायची, कमलनाल  
अगर और रक्तचन्दनका कल्क पुत रहा  
हो । इस घंटेको एक महीने तक बन्द  
रहने दे । जब यह उठ आवे अर्थात् आसव  
बनजाय तब इसका प्रयोग करै । यह  
आसव ग्रहणी को दीप्त करने वाला है;  
हृहणकर्ता, कफपित्त नाशक, शोष, कोद  
किलास और प्रमेह को दूर करता है ॥

दूसरा मध्वासव ।

मधुकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम् ।  
सौद्रपादयुतंशीतपुर्वयत्सन्निधापयेत् । तं  
पिवन्ग्रहणीदोषान्जयेत्सर्वान्निहिताशनः  
तद्द्राक्षेक्षुर्ज्वरस्वरसानामुतान्पिबेत् ॥

अर्थ—महुआके फूलों के रसको औटा  
कर आधा रहने पर उतार ले और ठंडा  
होने पर चौथाई शहत डालकर पाहिले की  
एक मास तक धरा रहने देवै । यदि

हिताहार सेवी मनुष्य इसका पान करै तो  
ग्रहणी रोग से मुक्त होजाता है ।

इसीतरह दाख, ईख का रस और ख-  
जूर का आसव पान करै ।

दुरालभासव ।

प्रस्थौदुरालभायाद्वैप्रस्थमामलकस्यच ॥  
मुष्टीचित्रकदन्त्योर्द्वैप्रत्यग्रंचाभयाशतम्  
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वासाकंद्रोणावशोपि-  
तम् । सगुडाद्विशतं पूतमधुनः कुडवायुतम्  
तद्विषयगोः पिप्पल्याः विडंगानांचचूणि-  
तैः । कुडवैर्नृतकुम्भस्थं पक्षाज्जातं तं तः पि-  
बेत् ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कुष्ठबीसर्पेम  
हनुत् । स्वरवर्णकरदचैपगरपित्तकफापहः

अर्थ—दो प्रस्थ जवासा, दो प्रस्थ आंवला  
चीता और दंती दो दो पल, गुठली निफा  
ली हुई सौ हरड, इन सबको चार द्रोण  
जलमें पकावे, जब आधा शेष रहजाय तब  
छानकर ठंडा होनेपर दोसौपल गुड, शहत  
एक कुडव, प्रियंगु, एककुडव, पीपल एक  
कुडव, वायविडंग एक कुडव, इन सबको  
उसमें मिलाकर घी की चिकनी हांडी में  
भरकर रखदे एक पखवारे पीछे इसका पा-  
न करै तो ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श,  
कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, विषदोष, पित्त और  
कफदूर होजातेहैं तथा स्वर और वर्णवदतेहैं ।

मूलासव ।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वयैरुर्कपभजीवकम् ॥ ए-  
पापञ्चपलान्भागान्श्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचे-  
त् ॥ द्रोणशेषपरसेपूतगुडस्यद्विशतंभिषक्  
चूर्णितान्कुडवाद्यांशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षि

कान् ॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविंशमधुक  
प्लवान् । रोध्मशानरकंचैवमासादस्था  
पयेत्ततः॥ एपमूलासवःसिद्धोदीपनोर-  
क्तपित्तजित् ॥ आनाहकफहृद्रोगपाण्डु  
रोगांगसादनत् ॥

अर्थ—हलदी, दोनों पंचमूल, वीरक,  
अपमक, जीवक, प्रत्येक पांच पांच पल  
लेकर चार द्रोण जलमें पकावे, चौथाई शेष  
रहने पर उतार कर छानले और ठंडा होने  
पर दो सौ पल गुड तथा एक कुडव शहत  
डालदे और प्रियंगु, मोथा, मजीठ, घायवि  
डंग, मुल्हट्टी, केवटीमोथा, पठानीलोघ, ये  
सब आधे आधे कुडव पीसकर डालदे एक  
महीने पश्चात् इसका गेवन करै यह मूला-  
सव अनुभूत और रक्तपित्त को जतिने वाला  
है, इससे आनाह, कफ, हृद्रोग, पांडुरोग  
और अंगसाद दूर होजातेहैं ।

पिण्डासव ।

मास्त्रिकंपिप्पलीपिष्ट्वागुडमध्यांविभीतका  
त् । उदकप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत् ॥  
तस्मात्सुजातात्तुपलंसलिलाञ्जलिसंयुतम्  
पिवेत्पिण्डासवोद्यप्येवगानीकविनाशनः  
स्वस्थोप्येनंपिवेन्मांसनरःसिद्धंरसायनम्  
इत्येद्यपामनुत्पत्तिरोगाणांयेप्रकीर्तिताः॥

अर्थ—एक प्रस्थ पीपल, एक प्रस्थगुड,  
एक प्रस्थ बहेडे का गूदा, एक प्रस्थ जल इन  
साको चीकी चिकनी हांडीमें भर कर जौके  
ढेरमें गाड़ देरै । एक महीने पीछे जब यह  
तयार होजाय तब इस में एक पल आध  
सेर जलमें मिलाकर पान करै । यहपिण्डासव

रोग समूहों का नाश करनेवालाहै । यदि  
इस सिद्ध रसायनका प्रयोग स्वस्थ पुरुषभी  
एक महीनेतक करे तौ उसके रोग होने ही  
नहीं पाते हैं ।

मध्वरिष्ट

नवेपिप्पलीमध्वाक्तेकलशेऽगुरुधूपिते ॥  
माध्वादकंजलसमचूर्णनीमानिदापयेत् ॥  
कुडवार्द्धविंशगानापिप्पल्याःकुडवंतया ।  
चतुर्यकांशास्त्ववस्तीर्याःकेशरमरेचानि  
च ॥ त्वगेलापत्रकशटीक्रमकातिविपातथा  
हरणेलुकतेजोहापिप्पलीमूलाचित्रकान् ॥  
कार्पिकास्तान्स्थितंमांसमत्तज्वर्धप्रयोजयेत्  
मन्दंसन्दीपयत्यग्निं करोति विषमंसमम् ॥  
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान  
वातश्लेष्मापमांश्चान्यानमध्वरिष्टोऽप्यपोहा

अर्थ—एक नवीन मिटी के घड़े में अग  
रका धुआं देकर पिसीहुई पीपल शहत मेंमिला  
करउसके भीतर छेप करदे उस घड़े में एक  
आदक जल और एक आदक शहत भर  
कर नीचे लिखे हुए द्रव्यों का चूर्ण भरदेवे  
यथा वायविंदग आधाकुडव, पीपल एक कु-  
डव, वशटोचन एकपल, तथा केसर, कांडी  
मिरच दालचीनी, छोट्टी इलायची, तेजशत  
कचूर, सुपारी, अतसि, हरेणु, एलुआ  
चव्य, पीपलामूल, चीता, इनको एक एक  
कर्प डालकर एक महीने तक धरा रहने दे  
पीछे इसका प्रयोग करै । यह मन्दाग्नि को  
संदीपन करता है विषमग्नि को समान क-  
रता है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, कोद  
अर्श, सूजन, ज्वर, वात श्लेष्मिकरोग तथा

अन्यरोगों को भी दूर करता है ॥

पीपलामूलादिप्रयोग ॥

समूलापिप्पलीक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच ॥

मातुलुंगाभयारास्नाशटोमरिचनागरम् ।

कृत्वासमांशतच्चूर्णोपिवेतप्रातः सुखाम्बु

ना ॥ इलैष्मिकेग्रहणीदोषेवलवर्णाग्निव

र्द्धनम् । एतैरेवौषधैःसिद्धेःसर्पिःपेयंसमा

स्ते ॥ गौलिमिकेपट्पलप्रोक्तंभल्लातक

घृतञ्चयत् ।

अर्थ—पांपलामूल, पांपल, सज्जीखार,

जवाखार, पाचोनमक, विजौरा, हरड, रास्ना

कचूर, कालामिरच, सोंठ, इन सबको समान

भाग लेकर चूर्ण बनावे, प्रतिदिन प्रातःकाल

गरमजलके साथ इसका सेवन करे तौ कफ

की ग्रहणी दूर होजाती है और बल, वर्ण

तथा आग्नि बढ़ती है । अथवा इन्ही

औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी वातयुक्त

जलकी ग्रहणी में उत्तम होता है । गुल्म

रोग के प्रकरणमें कहाहुआ पट्पल घृत

और भल्लातक घृतभी इसरोग में हितहै ॥

क्षारघृत ।

स्वर्जिकाविड्कालोत्पलवर्णपवशूकजम्

ससलाकण्टकारीचचित्रकश्चेतिदाहयेत् ।

सप्तकृत्वः श्रुतस्यास्यक्षारस्यद्वयादकेनतु

आदकंसर्पिःपक्त्वापिवेदप्रिविवर्द्धनम्

अर्थ—सज्जी, विड्मक, कालानमक,

जवाखार, सातला, फटेरी और चीता, इन

सबमें से पिछले तीनों की भस्म कर लैवे ।

इन को दो आदक जलमें घोलकर सात

बार छानले पांठे इनमें एक आदक घृत

ढालकर पकावे, यह घृत अग्निकी बढाने

वाला होता है ॥

पिप्पलीमूलादिक्षार ॥

समूलापिप्पलीपाठाञ्चव्येन्द्र्यवनागरम् ।

चित्रकातिविपेहिगुश्वदंष्ट्राकटुरोहिणीम् ।

वर्चाचकार्पिकपञ्चलवणानांपलानिच ॥

दध्मःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिपोःकुडवद्वये । चू

र्णोक्तानिनिष्काध्यशनैरन्तर्गतैरसे ॥

अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णकृत्वाघृताप्लुत-

म् । पिवेतपाणितलंतस्मिन्जीर्णेस्पान्म

धुराशनः ॥ वातश्लेष्मामपान्सर्वान्ह

न्याद्विपगरांश्चसः ॥

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, पाठ, चव्य,

इन्द्रजौ, सोंठ, चीता, अतीस, हांग, गो-

खरू, कुटकी, और वच इनमें से प्रत्येक

द्रव्य एक एक कर्प लैवे । पांचों नमक,

पांचपल, दही दो प्रस्थ, घी तेल् दो कुडव

इनको जो कुट करके काथ करे और

काथ का जल उसी मेंलीन होजाय । फिर

इसको एक हांडी में बन्द करके ऐसी रीति

जलावे कि धूआं बाहर न निकलने पावे ॥

इसमें से तोले भर चूर्ण घृतमें सानकर

सेवन करे ॥ औषध के पचने पर मधुर भो

जन करे ॥ यह वात हलैष्मिक रोग और

सम्पूर्ण प्रकार के विरोगों को करताहै ॥

भल्लातकादि चार ।

भल्लातकांत्रिकटुकंत्रिकलालवणात्रिकम् ॥

अन्तर्धूमंदिपलिकंगोपुरीपाग्निनादहेतु

सक्षारः सर्पिपापीतोभोज्योवाप्यचूर्णित-

तः ॥ घृतपाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त

शोपन्नु ॥

अर्थ—मिठाया, त्रिकुटा, त्रिफला, लवण त्रिक ( सेंधा, संचर और विड ) प्रत्येक दो दो पल लेकर गौंके गोबर की अग्नि में अन्तर्धूम रीतिसे जलावे ॥ इस क्षार को घृत में मिलाकर वा भोजन के साथ सेवन करे तौ हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, गुल्म, उदावर्त और शोष दूर होजाते हैं ।

दुरालभादि क्षार ॥

दुरालभाकरञ्जौद्वौसप्तपर्णसवत्सकम् ॥  
पद्मग्रन्थामदनंमूर्धापाठामारग्वयंतथा ॥  
गोमूत्रेणसमांशानिहृत्वाचूर्णानिदाहयेत् ॥ दग्ध्वाचतपिवेत्क्षारंग्रहणीबलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—जवासा, दोनोंफंजा, सप्तपर्ण, इन्द्रजौ, वच, मेनफल, मरोडफली, पाठा और अमलतास इनको समान भाग लेकर खरल करे और फिर अन्तर्धूम रीति से जलाकर गोमूत्रके साथ इस क्षार को सेवन करे तौ ग्रहणी के पलकी वृद्धि होती है ॥

भूनिम्बादिक्षार ॥

भूनिम्बरेहिणीतिक्तापटोलनिम्बपर्पटम् ॥ दहेन्माहिपमूत्रेणक्षारण्योऽग्निवर्द्धनः ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, पर्वल, नीम और पित्तपापडा इनको अन्तर्धूम रीतिसे जलाकर भैंसके मूत्रके साथ सेवन करे तौ अग्नि बढती है ॥

हरिद्रादिक्षार ॥

द्वेहारेद्वेवचाकुष्ठांचित्रकः कटुरोहिणी ॥

मुस्तंचवस्तमूत्रेणासिद्धः क्षारोऽग्निवर्द्धनः ॥

अर्थ—दोनों हल्दी, वच, कूट, चीता, कुटकी, मोथा, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके वक्रे के मूत्र के साथ सेवन करे तौ अग्नि बढती है ॥

क्षार वाटिका ॥

चतुष्पलंसुधाकाण्डत्रिपलंलवणत्रयात् ॥  
वार्ताकीकुट्टवचार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले ।  
दग्धानिवावार्ताकुरसेगुलिकामोजनोत्तराः ॥  
शुक्तंशुक्तंपचत्याशुकासन्धासार्षसांदिताः ।  
विसृचिकामतिश्यायहृद्रोगशमनाश्रताः ।

अर्थ....सेंहुड की टहनी चार पल, तीनों नमक तीन पल, वार्ताक एक कुडव, आक की जड़ आठ पल, चीता दो पल, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके वार्ताकुर रस में गोहियां बनावे । भोजन करने से पीछे इनका सेवन करे तौ कियाहुआ भोजन शीघ्र पचजाताहै तथा खांसी, ज्वासा, अर्श विसृचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग शान्त होजातेहैं ।

वत्सकादि क्षार ॥

वत्सकातिविपेपाठादुःस्पर्शहिंयुचिग्रकम् चूर्णकृत्यपलाशानांसारंभूत्रक्षुतेपचेत् ॥  
आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलेमुखाः स्मुना । मयैर्वाग्रहणीदोपेशोथार्शःपाण्डुमान्पिवेत् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, अतीस, पाठा, जवासा, हींग और चीता इनका चूर्ण करके गोमूत्र में छाने हुए ढाक के क्षार में छोड़े की कढ़ाई में पकावे गाढ़ा होनेपर उतार ले । इस में से एक तोले भर गरम जल वा-

हितम् । परीक्ष्यामंशररिस्यदीपनस्नेहसं  
युतम् ॥ दीपनवहुपित्तस्यतिक्तमधुरसंयु  
तम् । बहुवातस्यसस्नेहलवणाम्लयुताहि  
तम् ॥ सन्धुक्षतियथावन्दिरेपांविधि  
वदिन्धनैः ॥

अर्थ—ग्रहणीरोगियोंको जो जो आवश्यक  
की किया कर्तव्य है अब उनको सुनो ।  
कफाधिक्य ग्रहणी में रुक्ष, संदीपन और  
तिक्त औषधियों का काथ पान करके छार  
टपकावै । जो कफाधिक्य में रोगी कृशहो तो  
कभी रुक्षण और कभी स्नेहने कर्म करे । कफ  
के क्षीणहोने पर स्नेहयुक्त दीपन औषधियों  
का प्रयोग करे । पित्ताधिक्य में मधुरयुक्त  
तिक्त औषधियों का प्रयोग करे । वाताधिक्य  
में स्नेह, लवण और अम्लसंयुक्त दीपन औ  
षधी देवै ॥ दीपनकर्त्ता औषधियों के सेवन  
से जठराग्नि इस तरह प्रबल होजातीहै जैसे  
ईंधन जलने से अग्नि ॥

स्नेहमेवपरंविद्यादुर्बलानलदीपनम् ।  
नालंस्नेहसीमदस्यशमायान्नसुगुर्वपि ॥  
मंदाग्निरापिपक्वतुपुरीषयोऽतिसार्यते ॥  
दीपनपौषधैर्युक्तमात्रांपिवेतुसः ।  
तयासमानःपवनः प्रसन्नोमार्गमास्थि  
तः ॥ अग्नेःसर्मापचारित्वादाशुप्रक्रमते  
बलम् । काठिन्याद्यःपुरीषन्तुकृच्छान्मु-  
ष्चातिमानवः ॥ सघृतलवणैर्युक्तंनरोऽन्ना-  
वग्रहपिवेत् ।

अर्थ—दुर्बल अग्निको बढ़ानेके निमित्त  
घृत उत्तम होता है, जो अग्नि घृत से प्रदीप्त

होतीहै उसे भारी अन्न भी नहीं युष्मांसकता  
है ॥ जो मन्दाग्निव्यक्ति पक्व पुरीषको  
अत्यन्त निकालता है उसको उचित है कि  
दीपनीय औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत  
मात्राके अनुसार पानकरे ॥ इसके पानकरने  
से समान वायु प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग  
में स्थित रहती है तथा अग्निके पास रहने  
से वह बल को शीघ्र बढ़ातीहै ॥ जिस रोगी  
का मल कड़ा होकर कठिनता से निकलता  
है उसे नमक मिलाकर अन्नके साथ घृत देवै ॥  
रौक्ष्यान्मन्दपिवेत्सर्पिस्तैलंवादीपनैर्युत  
म् ॥ आतिस्नेहाद्युपदेऽन्नौचूर्णारिष्टास  
वाहिताः । भिक्षेगुदोपलेपात्तुमलेतैलसु-  
रासवाः ॥ उदावाचात्तुमन्देऽन्नौनिरुहाः  
स्नेहवस्तयः ॥ दोषवृद्ध्यात्तुमन्देऽन्नौशुद्धौ  
दोषविधिंचरेत् ॥ व्याधिमुक्तस्यमन्देतु-  
सर्पिरेवाग्निदीपनम् । उपवासाच्चमन्दे-  
ऽन्नौयवागूभिःपिवेत्घृतम् । अन्नावप्रीडि-  
तेवालं दीपनं वृंहणंचतत् । दीर्घकालमसा-  
दात्तुत्तक्षीणकृशान्नरान् ॥ प्रसहानां  
रसैः साम्लैः भोजयेत्पिशिताशिनाम् ।  
लघुव्रीक्ष्णोष्णशोधित्वादीपयन्त्याशुते-  
नलम् ॥ मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतर-  
वृंहणाः ॥

अर्थ—रुक्षतासे अग्निके मन्द होने पर  
दीपनीय औषधियोंसे युक्त घृत वा तैल का  
पान करावै । जो अत्यन्त स्नेहपानसे मन्दाग्नि  
बढ़े हो तो चूर्ण, अग्नि और आसवोंका  
सेवन करावै । गुदोपलेप से जो मल भिन्न  
रोगपाहो तो तैल, सुरा और आसव देवै

येभ्यस् । भुक्तेऽन्नेलभते शान्तिर्जीर्णमात्रे  
प्रताम्यति । तृदश्यासदाहमूर्च्छाद्याव्या  
धयोऽत्यग्निसम्भवाः ।

अर्थ—कफके क्षीण होनेपर पित्तवायुका  
अनुगमन करके अत्यन्त कुपित होजाता है  
और अपनी गरमासे अग्निस्थानमें जाकर  
आग्निको अत्यन्त बलवान् करदेता है ॥  
इसतरह रूक्ष देह में वायुसहित अग्नि बल  
को पाकर अन्नको पराभव कर देतीहै और  
अग्नी तीक्ष्णताके कारण अन्नको शीघ्रही  
बार बार पचातीहै । इसतरह अन्न का  
पाक करके रक्तादिधातुओं काभी पाक कर  
देती है ॥ तदनन्तर रोगीको दुर्बलता, रोग  
तथा मृत्यु पकड लेतीहै ॥ भोजन करतेही  
कुछ शान्ति होजाती है और उसके पचते  
ही फिर ताप होने लगताहै । इस अत्यग्नि  
के कारण तृषा, श्वास, दाह, मूर्च्छा आदि  
अनेक रोग होजातेहैं ॥

अत्यग्निकी शान्ति का उपाय ।

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धस्वादुसाम्द्रहिमस्थि  
रैः ॥ अन्नपानैर्जयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवा  
म्बुभिः ॥ मुहुर्मुहुर्जीर्णोऽपि भोज्यान्धस्यो  
पहारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरं लब्धाय येन  
न विपादयेत् ॥

अर्थ—जैसे जलतीहुई अग्निको पानी  
से बुझाते हैं वैसेही गुरु, स्निग्ध, मधुर, गाढ़  
शीतल और कठोर पदार्थों का भोजन करा  
के उस अत्यग्निको शान्त करै । बार बार  
अजीर्ण होनेपर भी भोजन करताही, रहै,  
क्योंकि इन्धनरूप भोजनके न मिलनेसे ऐसा

न होकि अग्नि मनुष्यको मारदाले ॥

अत्यग्नि में भोजनादिक्रम ।

पायसंकुशरीस्रग्धंपौष्टिकगुडवैकृतम् ॥  
अद्याभयौदकानूपपिशितानि शृतानि च ।  
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान्स्थिरतोयचरां  
स्तथा । आविकंसघृतमांसमद्यादत्यग्नि  
नाशनम् । यवाग्नसमधूच्छिष्टांघृतं वाधु  
धितः पिबेत् । पयोवाशर्करासर्पिजीवनी  
यौर्पधः शृतम् । फलानां तैलयोनानामु  
त्कुञ्चाश्च सर्शकराः ॥ मार्दवं जनयत्यग्नेः  
स्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिबेत् शीताम्बु  
नासर्पिर्मधूच्छिष्टेन वायुतम् ।

अर्थ—खीर, खिचड़ी, स्नेहयुक्त पेट्टिक  
पदार्थ, गुडके पदार्थ, औदकमांस, आनूप-  
मांस, घृतके पदार्थ, विशेष करके बंधे हुए  
जलकी मछली, घृतभष्ट भेडका मांस, अ-  
त्यग्नि के दूर करने के लिये सेवन करै ।  
अत्यन्त भूख लगनेपर मोम डालकर यवाग्न  
अथवा घृतका पान करै अथवा दूधका पान  
करै अथवा मिश्री घोलकर पीवे । अथवा  
जीवनीय गणोक्त औषधियों के साथ सिद्ध  
किया हुआ घृत पान करै । अथवा जिनसे  
तेल बनताहै उन उत्कुंच फलोंको शर्करा  
मिलाकर भक्षण करै । स्निग्ध मांसरसोंका  
सेवन करनेसे अग्नि मृदु पड़जातीहै । पिच-  
ला हुआ मोम घृतमें मिलाकर पीवे ऊपर-  
से ठंडा जल पीवे ॥

आनूपरससिद्धान्वाजीर्णरुहेस्तैलयाजि  
तान् । गोधूमचूर्णमन्यवान्यथायित्वाग्नि  
रापिबेत् ॥ पयसासम्मितञ्चापि पानं हि



स्नेहसंयुतम् । नारीस्तन्येनसंयुक्तांपित्रे  
दौदुम्बरीत्वचम् ॥ आभ्यावापायसंसि  
द्धमद्यादत्यग्निशान्तये । श्यामात्रिवृद्धि  
पक्वापयोदद्याद्विरेचनम् ॥ असकृत्पि  
त्तशान्त्यर्थपायसमातिभोजनम् । यत्कि  
ञ्चित्पधुरमेध्यंश्लेष्मलंगुरुभोजनम् । त  
दत्यग्निहितसर्वभुक्त्वाप्रस्वपनंदिवा ॥  
मेध्याभ्यन्त्रानियोत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नु  
ते । नतंश्चिमित्तमाप्नोतिव्यसनंपुष्टिमेति  
सः ॥ कफेद्वेद्वेजितेपित्तमारुतेचानलः  
समः । समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्वलह  
द्धये ॥

अर्थ—आनूप मांसरस में सिद्ध करके  
तेल को छोड़कर तीन प्रकार के स्नेह  
( घी, चर्बी, मज्जा ) सेवन करे । अथवा  
शिरा मोक्षण करके गेहूँ के चूनका मन्थ  
देवे । दूधके साथ गेहूँके चूनका पाक कर  
के गाढ़ा करले और इसमें घी, चर्बी और  
मज्जा डालकर सेवन करे, अथवा स्त्री के  
दूधके साथ गूलरकी छाल औटारकर पान  
करे । अथवा स्त्रीका दूध या गूलर की छाल  
के साथ खीर पकाकर सेवन करे इससे  
अत्यग्नि शान्त होजाती है । अथवा श्यामा  
निसोथ के साथ दुग्धकाकर विरेचन देवे।  
पित्तकी शान्ति के निमित्त रोगी को खीर  
का भोजन करावे । मिष्ट, मेध्य, और कफ-  
कारी भोजन करके दिनमें सोना भी हित  
है । जो नित्यप्रति मेध्य अन्नोका सेवन  
करता रहता है उसके अत्यग्नि नहीं होने  
पाती किन्तु पुष्टि होती है । कफके बढने

पर और वातपित्त के दूर होनेपर अग्नि  
समान होजाती है और वह घातुओं को  
समानता प्रतिपादन करके पुष्टि, आयु और  
बलको बढ़ाती है ।

समश्नन के लक्षण ॥

पध्यापध्यमिहैकत्रभुक्तंसमश्ननमतम् ।

अर्थ—पथ्य और अपथ्य भोजन को मि  
लाकर करने का नाम समश्नन है ॥

विषम भोजन के लक्षण ॥

विषमं बहुवालं वाप्यप्राप्तातीतकालयोः ॥

अर्थ—न्यून वा अधिक, बिना समय वा  
समयके बीतनेपर जो भोजन कियाजाताहै  
उसे विषम भोजन कहते हैं ॥

अध्यश्नन के लक्षण ॥

भुक्तं पूर्वान्नशेषेतु पुनरध्ययनं मतम् । ग्रीष्म  
प्येतानि मृत्युं वाधोरा न व्याधीन्सृजति न्वा

अर्थ—पहिले भोजनके बिना पंचही जो  
भोजन कियाजाताहै उसे अध्यश्नन कहतेहैं  
ये तीनों प्रकारके भोजन मृत्यु अथवा घोर  
व्याधियों को उत्पन्न करते हैं ।

दिनके भोजनका वर्णन ॥

प्रातराशेत्यजीर्णेऽपि सायमाशौ दुप्यति ॥

दिवाप्रभुध्यतोऽर्केण हृदयं पुण्डरीकवत् ॥

तस्मिन्विबुद्धे स्रोतांसि स्फुटन्व्यान्ति सर्व-

शः । व्यायामाश्च विचाराश्च विक्षिप्तत्वा

च्चचेतसः ॥ उत्कृष्टमपगच्छन्ति दिवा ते

नास्यधातवः । अहिनेष्वन्नमासिकम

न्यचे पुन दुप्यति ॥ अविदग्धश्चोरेक्षी

रमन्प्रदिमिश्रितम् ।

अर्थ—प्रातःकालके भोजनके बिना पचे

भी जो सार्यकालमें भोजन किया जाताहै वह कुछ अवगुण नहीं करताहै क्योंकि दिन में मनुष्यका हृदय इसतरह विकसित रहता है जैसे सूर्यकी किरणों से कमल । उसके विकसित रहने से सम्पूर्ण स्रोतभी विकसित रहते हैं, तथा दिनमें मनुष्य कुछ न कुछ परिश्रम करता रहताहै, विचारताहै और चित्त भी इधर विधर चलता रहताहै इससे धातुओं में क्लेद नहीं होने पाताहै । अक्लिन्न धातुओं में दूसरा भोजन इसतरह अवगुण नहीं करताहै जैसे अविदग्ध दूधमें अन्य मिलाया हुआ दूध विकृत नहीं होता है ।

रात्रिके भोजनका वर्णन ।

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृत्तेष्वयनेषुच ॥

यान्तिकोष्टेचविक्लेदसंवृत्तेद्विधातयः ।

क्लिबेष्वाप्यदपकेपुतेष्वासिक्तमदुप्यति ॥

विदग्धेषुपयःस्वयत्पयस्तप्तेष्विवापितम्

नैशेष्विवाहारजतेषुनापिपकेषुबुद्धिमान् ॥

तस्मादप्यस्तमश्रीयात्पालयिष्यन्मला युपी ।

अर्थ—रात्रिमें हृदय मलीन रहता है, स्रोतः समूह अस्फुट रहते हैं, इसी तरह कोष्ठ भी संवृत रहताहै और देहकी सम्पूर्ण धातु क्षिन्न रहती है, क्षिन्न धातुओंमें प्रथम भोजन के परिपक्व हुए बिना दूसरी बार भोजन करना ऐसा अवगुण कर्त्ता है जैसे जले हुए तप्त दूधमें और दूधका मेल वि-  
शत होजाता है । अतएव रात्रिमें किये हुए आहारके बिना पचे पुनर्बार आहार करना निषिद्ध है । इसनियमसे भोजन करनेसे बल और आयु की वृद्धि होती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

अन्तरग्निगुणादेह्यथाधारयतेचसः ॥

यथान्नपच्यतेयाश्चयथाहारःकरोत्यपि ॥

येऽन्नयोयांश्चपुप्यन्तियावन्तोयेपचन्तिया

न् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यश्च ॥

तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भवक्रमः ।

रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तराग्निर्यथा

धिकः । सन्दुप्यतिपथादुष्टेयानरोगा

नृजनयत्यपि । ग्रहणीयायथावच्चग्रहणीदो

पलक्षणम् । पूर्वरूपपृथक्चैवव्यञ्जनस

चिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टतथा

चावस्थिकीक्रिया ॥ जायतेचयथात्य-

ग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तयानि

हतस्सर्धग्रहणीदोषकेषुनिः॥

अर्थ—इस ग्रहणी दोष चिकित्सित अध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने अन्तर अग्नि के गुण, अन्तराग्नि द्वारा देह धारण की रीति, अन्न के परिपाक की विधि, आहार विधि, अग्निके भेद, अग्निसे पुष्ट होनेवाले द्रव्य, जिनको अग्नि पकाती है, रसादि धातुओंकी क्रमसे उत्पात्ति, धातुओं से मल की उत्पात्ति, तृष्णके शीघ्रकारी हेतु, धातुका कालोद्भव क्रम, अन्तराग्नि द्वारा रोगैक देश कारक हेतु, दुष्ट अन्तराग्नि के दूषित होने की विधि, दूषित अग्निसे उत्पन्न रोगों का वर्णन, ग्रहणी शब्दका अर्थ, ग्रहणीदोष के यथावत् लक्षण, चार प्रकार की ग्रहणी के पूर्वरूप, दोष भेदसे ग्रहणी के पृथक् २ लक्षण, चिकित्सा, आवांस्थिकी क्रिया, अत्यामेन का लक्षण, और उसकी शान्ति

के उपाय ये सब इस अध्याय में वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने गृहणी चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

—\*—

## विंशोऽध्यायः ॥

अथातः पाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः । इति हस्माद् भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ.... तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम यहां से पाण्डुरोग चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

पाण्डुरोग के भेद ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणानामृदः ॥

अर्थ.... पाण्डुरोग पांच प्रकारका होता है, यथा वातिक, पित्तिक, क्लैमिक, सन्निपातिक, और पांचवां मृद्वक्षणाद्भव ।

पाण्डुरोग की उत्पत्ति ।

दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥

ततो वर्णबलस्नेहाये चान्येऽप्योजसो गुणाः

व्रजन्ति क्षयमत्यर्थं दोषदूष्यप्रदूषणात् ।

सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शैथिलेन्द्रियः ।

चैव पर्णमजते तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥

अर्थ.... जब मनुष्यके पित्तप्रधान दोष धातुओं में कुपित होजाते हैं और उन के कोषके कारण धातुओं में शैथिलता और भारा-

पन होता, तब दोषों से दूष्योंके दूषित होने से देह के वर्ण, बल, स्नेह तथा ओजधातु के अन्यगुण अत्यन्त क्षीण होजाते हैं और उस रोगी के रुधिर और मेदा कम रहजाते हैं तथा शरीर निःसार और इन्द्रियों शिथिल पड़जाती है । उसकी देह का वर्ण भी विगड़ जाता है । अब उसरोग के हेतु और लक्षणों का वर्णन करते हैं ।

पाण्डुरोग के हेतु ।

सारांश लवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पावमापि प्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ विदग्धेऽन्ने दिवा स्वप्नाद्वधायामान्मैथुना चथा । प्रतिकर्मात्तु वैषम्याद्वेगानाञ्च विधारणात् ॥ कामाचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदर्णयथापित्तं हृदये समवस्थितम् ॥ वायुना वलिना सितं स्रोतोभिर्दशभिः सृतम् । प्रपन्नं केवलं देहं त्वद्मांसांस्तरमाश्रितम् ॥ प्रदूष्य कफवातासृक्त्वं दमांसानि करोति तत् । वर्णान्हरति हारिद्र्यान्पाण्डून्वहुविधास्त्वचि ॥ स पाण्डुरोग इत्युक्तस्तस्यालिंगं भविष्यतः ।

अर्थ.... खारे, खेहनमकीन, अत्यन्त उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन के करने से; चोलाई, उरदं, खल, तिल और तेल के अत्यन्त सेवन से अन्नके विदग्ध होने से दिन में सोने से, अत्यन्त शारीरिक परिश्रमसे अत्यन्त मैथुन से; स्नेहनादि पंचकर्मों की विषमता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से; काम, चिन्ता, भय, क्रोध शो-

कादि से चितका पराभव होने से, हृदय-स्थ पित्त, उदगीर्ण होजाता है तब वायु उसे अत्यन्त वेग से फेंकती है और यह दसों ध-मनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्व-चा और मांस के बीच में स्थित होजाता-है तब कफ, वात, रुधिर, त्वचा और मांस को दूषित कर देता है तथा त्वचा में हरा, हलदीके समान पाण्डु तथा अनेक प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है । इसी को पाण्डुरोग कहते हैं । अब इस रोग के पूर्-वरूपका वर्णन करते हैं ।

### पाण्डुरोग का पूर्वरूप ।

हृदयस्पन्दनरौक्ष्यस्वेदाभावःश्रमस्तथा ॥

अर्थ....हृदयका फड़कना, रुक्षता, पसीने का अभाव तथा श्रम में पाण्डुरोग के पूर्व रूप हैं॥

### पाण्डुरोग के साधारण लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेदोहतान-  
लः । दुर्बलःसदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः  
गात्रशूलज्वरश्वासगौरवाक्षिमान्नरः ।  
मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव ॥  
शूनासिकूटोहरितःशीर्णलोमाहतप्रभः ।  
कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुप्रीवोऽल्पवा-  
क्॥पिण्डकोट्टेकदयूरुपादरूखसदनानिच-  
भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—इस रोग के उत्पन्न होने पर कर्ण नाद, मन्दासि, दुर्बलता, अंगसाद, गतनि-द्रता, भ्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, भा-रापन और अरुचि, होती है । सम्पूर्ण देह मृदित, पीडित और उन्माथित होजाता है

अक्षिकूट में सूजन, हरावर्ण, लोमों में शी-र्णता, कांति का नष्ट होना, स्वभावमें क्रुद्धता शरीर से द्वेष, निद्रालुता, लालास्राव, वाक्-निग्रह, पिण्डियों में बाँधटे तथा चलने फि-रने से कष्ट, उरु और पाँवों में वेदना औ-र शिथिलता उत्पन्न होती है । अब इस-रोग के विशेष लक्षणों को कहते हैं ॥

### वातज पाण्डुरोग के लक्षण ।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः ।  
जनयेत्कुष्णपाण्डुत्वतंधास्कारुणाकृताम्  
अङ्गमर्देरुजन्तोदङ्गम्यपार्श्वशिरोरुजम् ।  
शकुच्छोपास्यवैरस्पशोफानाह्वलस्यान्  
अर्थ—वातकर्त्ता आहार विहार के सेव-न से वायु कुपित होकर शरीर के वर्ण को काला, पीला, रुक्ष या लाल कर देती है तथा अंगमर्द, वेदना, तोद, कम्प, पार्श्व-वेदना, शिरोवेदना मलशोष, विरसता, शो-ष, आनाह तथा बलक्षयको उत्पन्न करती है ॥

### पित्तजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

पित्तलस्याचितं पित्तं यथोक्तैः स्वैः मकोपनैः  
दूषयित्वाशुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते ।  
सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमान्वितः ।  
दृष्णामूर्च्छांपरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः ॥  
स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमाभिनन्दति ॥  
कटुकास्पोनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा-  
उदगारोऽम्लोविदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽत्यजा-  
यते ॥ दौर्गन्ध्यभिन्नवर्चस्वर्द्धौर्वलयंतम

एवच ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका अपने कुपितकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से पित्त बढ़-

कर रक्तादि धातुओं को दूषित करके पाण्डुरोग को उत्पन्न करता है । पित्त जनित पाण्डुरोग में देहका वर्ण पीला अथवा हरा होजाता है । ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा इन से रोगी मूर्च्छा होजाता है, उस के विष्टा और मूत्रका रंग पीला पड़जाता है, पसीना आता है, ठंडी वस्तु प्यारी लगती है, अन्नसे राशि हटजाती है, मुख में कड़वापन, उष्ण और खड़े पदार्थका अच्छा न लगना, खट्टी डकार, विदाह, अन्न की अपरिपक्वता, दुर्गन्धि, विष्टाका फटना और दुर्बलता ये बातें होती हैं तथा आँखोंके साम्हने अन्धकार छाजाता है ॥

**कफजपाण्डुरोग के लक्षण ॥**

बिबृदैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत् करोतिगौरवतन्द्राच्छर्दिश्वेतावभासताम् प्रसेकंलोमहर्षञ्चसादंमूर्च्छाभ्रमंक्लमम् ॥ श्वासकासौतयालस्यंअरुचिंवाक्स्वरग्रहम् ॥ शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरुक्षोष्णकासता ॥ श्वयधुमधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वा मयः कफात् ।

अर्थ—कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से कफ कुपित होकर कफज पाण्डुरोग उत्पन्न करता है, इससे देह में भारापन, तन्द्रा, वमन, शरीरमें सफेदाईकी शलक, प्रसेक, लोमहर्षण, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खाँसी, आलस्य, अरुचि, वाक्ग्रह, स्वर भंग, मूत्र, नेत्र और विष्टामें सफेदाई तथा कड़वे, रुक्ष और उष्ण पदार्थोंपर मन चलना, ये सब कफज पाण्डु के लक्षण हैं।

**सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण ॥**

सर्वाग्नेसेविनःसर्वेदुष्टादोपस्त्रिदोषजम् ॥

त्रिलिङ्गसम्भकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुः सहम्

अर्थ—त्रिदोषकर्त्ता अत्रोंके सेवन करने से तीनों दोष कुपित होकर सान्निपातिक पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं इस में तीनों दोषों के कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं यह रोग बड़ा भयंकर होता है ॥

**मृद्वक्षजजन्म पाण्डुरोग ॥**

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः ॥

कपायामारुतपित्तंमूत्रमधुराकफम् ।

कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्यात्भक्तंविरुज्जयेत् ॥ पूरयत्यपिपैवस्रोतांसिनिरुणादि-

चाइन्द्रियाणांवलैतजओजोवीर्यनिहत्यच

पाण्डुरोगं करोत्याशुबलवर्णाग्निनाशनम् ॥

शून्यगण्डाक्षिकूटमूनाभिपादाग्रमेहनः ॥

किमिकोष्ठोऽतिसार्येतमलंसासृक्फान्वितम्

अर्थ—मिठी खानेकी आदतसे तीनों दोषोंमें से कोई सा दोष कुपित होजाता है । कसीली, मिठी वायुको, ऊपरा पित्त को और मधुर कफको विगाडदेती है ॥ मृ-

तिका रूखी होनेके कारण रसरक्तादि

धातुओंको कुपित करती है और भोजन को

रूखा कर देती है । और पारिपाक को प्राप्त

न होनेके कारण स्रोतोंको पूरित करके रो-

क देती है तथा इन्द्रियोंके बल, तेज, ओज,

और वीर्यको नष्ट करके बल, वर्ण, और

अग्निने नाश करने वाले पाण्डुरोगको उत्पन्न

करती है । इस रोगमें गडस्थल, आँखके को-

ये, मृकुटी नाभि, पादोंके अग्रभाग और

महेंन्द्रिय में सूजन उत्पन्न होजातीहै । रोगीके कोष्ठमें कीड़े पड़जातेहैं, उसे दस्त बहुत आतेहैं तथा मलके साथ रुधिर और कफ निकलताहै ॥

**असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण॥**

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति कालप्रकर्षाच्छूनानां यश्च पीतानि पश्यति । वदालपविट्कंसकफहरितयोऽतिसार्यते । दीनः श्वेतास्तु दिग्धातुश्चर्मादिसूक्ष्मपादितः सनास्त्रमृक्षपाद्यश्च पाण्डुश्चेतस्वमाप्नुयात् ॥ इति पञ्चविधस्योक्तपाण्डुरोगस्य लक्षणम् ॥

**अर्थ—**यहूत दिनका पुराना पाण्डुरोग जिससे देहमें खरदरापन होजाताहै वह असाध्य होताहै । जिसमें बहुत दिनका होनेके कारण सूजन होजाताहै और हरिद्वर्ण होताहै, जो रोगी दीन होजाता है, सब शरीर सफेद पड़जाताहै, जो वमन, मूर्च्छा और तृषा से पीडित होताहै और जो पाण्डुरोगी रुधिर की क्षीणतासे सफेद होजाताहै । वह भी असाध्य होता है। इसतरह पांचों प्रकारके पाण्डुरोगोंके लक्षण वर्णन कियेगयेहैं ॥

**कामलारोग के लक्षण ॥**

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निपेवते तस्य पित्तममृक्षपांसदग्ध्वारोगायकल्पते । हारिदनेत्रः सभृशं हारिदत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशङ्खनमृत्रोभेकवर्णो हतेन्द्रियः । दाहा विपाकदोषैः सदनारुचिकार्षतः । कामला बहुपित्तपाकोऽश्लासमाश्रयामता ॥

**अर्थ—**जो पाण्डुरोगी पित्तकर्ता पदार्थों

का अत्यन्त सेवन करताहै, उसका पित्त रक्त और मांसको दूषित करके रोगको उत्पन्न करताहै । इसमें रोगीके नेत्र हलदी के समान पीले होजाते हैं तथा त्वचा नख और मुख हलदी के समान होजातेहैं। उसका विष्टा और मूत्र लाल और पीला पड़जाताहै, उसके देह का वर्ण वर्पा के मेडक का सा होजाता है, इन्द्रियां हतशक्ति होजाती हैं, रोगी दाह, अग्निपाक, दुर्बलता अंगसाद और अरुचिसे क्लेश होजाता है, इसी को कामला रोग कहते हैं, इसमें पित्तकी अधिकता होती है, कोष्ठ और शाला इसके आश्रय स्थान होते हैं ।

**कुम्भकामलाके लक्षण ।**

कालान्तरात् खरीभूतात्कुच्छास्यात्कुम्भकामला ॥ कृष्णपीतशङ्खनमृत्रोभेकवर्णः । शून्यमानवः ॥ मरुत्कारक्षिमुखश्चर्मादिसूक्ष्मपादितः । दाहारुचितृपानाहतन्द्रामोहसमन्वितः । प्रणष्टाग्निर्विशङ्गश्चानिर्यात्याशु कामली ॥ साध्यानाग्निमतेरपातुभेपजसं प्रवक्ष्यते ॥

**अर्थ—**यही कामला रोग कालान्तर में खरता को प्राप्त करके कष्टसाध्य कुम्भकामला को उत्पन्न करताहै । इसमें विष्टा और मूत्र काले पीले पड़जातेहैं, सूजन बहुत होजातीहै, इसमें आंख, मुख, वमन विष्टा और मूत्रका रंग लाल होजाता है, दाह, अरुचि, तृषा, आनाह, तन्द्रा और मोह उत्पन्न होते हैं, अग्निमंद पड़जाती है, संज्ञा नष्ट होजाती है, यह कामलारोगी

शीघ्र मरजाता है । अब इनसे अतिरिक्त  
साध्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते हैं

पांडुरोग में चिकित्सा विधान ।

तत्र पाण्डवामयी स्निग्धस्तीक्ष्णरूध्वाजुलो  
मिकैः ॥ संशोध्यो मृदुभिस्तिकैः कामली  
तु विरेचनैः । ताभ्यां संशुद्धकायाभ्यां पथ्या  
न्यन्नानि दापयेत् । शालयो यववगोधूमपुरा  
णाः मूषसंस्कृताः । मुद्रादकमसूरैश्च जात्र  
लैश्च रसैर्हिताः ॥ यथादोषं विनिष्टञ्चतयो  
भैषज्यमाचरेत् ।

अर्थ—इनमें से पाण्डुरोगी को स्निग्ध  
और तीक्ष्ण यमन, विरेचन द्वारा संशोधन  
देवै । कामलारोगी को मृदु और तिक्त विरे  
चन देवै । जब इनसे देह शुद्ध होजाय  
तब पथ्य अन्नोंका सेवन करावै, यथा पुरा  
ने शालीचावल, जौ, गेहूँ, मूँग, अडहर,  
मसूर तथा जांगल मांसरसका सेवन हित है ।  
इम रोगमें जिस दोषकी अधिकता हो उसी  
के अनुसार औषधियोंका प्रयोग हितकर है ।

स्नेहनघृत ।

पञ्चगव्यं महातिक्तं कल्याणकमथापिवा ॥  
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात् कामला पाण्डुरोगिणे ॥  
अर्थ—कामलारोगी तथा पाण्डुरोगियोंको  
पंचगव्य, महातिक्तक और कल्याणकघृत  
स्नेहन करने के लिये देवै ॥

दाडिमाघघृत ।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धपलंपलम्  
चित्रकात्शृङ्गेरेराच्चपिप्पल्याष्टमिकात्  
था । तैः कल्कैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिला  
दके ॥ सिद्धं हृत्पाण्डुरोगार्थं प्लीहवातक

फार्तिनुत् । दीपनश्वासकासघ्नं मूढवा-  
ते च शस्यते ॥ दुःखप्रसाविनीनां च वन्ध्या  
नां चैव गर्भदम् ।

अर्थ—अनारकी छाल एक कुडव, धनिगं  
आधा कुडव, चीता एक पल, अदरक एक  
पल, पीपल, आधा पल, इनका कल्क बीस  
पल घृत और एक आठक जलमें सिद्ध करै  
यह हृद्रोग, पांडुरोग, अर्श, प्लीहा, वात  
कफको दूर करता है, यह दीपन है, श्वास, का-  
सको दूर करनेवाला है । और मूढवात में  
हितकारी है ॥ जिन स्त्रियोंके बालक कष्ट  
से होता है उनको सुखदाई है वन्ध्यास्त्रियों  
को गर्भ देनेवाला है ।

कटुकाद्यघृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तं हरिद्रैर्वत्सकात्फलम् ॥  
पटोलचन्दनं दूर्वात्रायमाणादुरालभा ।  
कुण्ठापर्पटको निम्बो भूनिम्बो देवदारुच ॥  
तैः कार्पिकैर्घृतमस्थः सिद्धः क्षीरचर्तुगुणः ।  
रक्तपित्तज्वरं दाहश्वयं धुंसभगन्दरम् ॥  
अर्शस्य स्रक्कदरं चैव हन्ति विस्फोटकांस्तथा

अर्थ—कुटकी, मोथा, दोनों हलदी, इ-  
द्रजौ, परवल, रक्तचन्दन, दूर्वा, त्रायमाणा  
जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नांभ, चिरायता  
देवदारु, प्रत्येक एक २ कर्प, धी एक प्रस्थ,  
दूध चार प्रस्थ इनको मिलाकर सिद्ध किया  
हुआ घृत रक्तपित्त, ज्वर दाह, सूजन  
भगन्दर, अर्श, रक्तप्रदर तथा विस्फोटक  
रोगोंको दूर करता है ॥

पथ्याघृत ।

पथ्याशतरसे पथ्यावृत्तार्द्धतक क्वथान् ॥

द्रव्यों के साथ दूध को औटाकरपीये । इस से भी दोषोंका अनुलोमन होता है ।

अन्यप्रयोग ।

हरीतकीप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिवेत् ॥

जीर्णक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा ।

सप्तरात्रंमवांमूत्रभावितावाप्ययोरजः ॥

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थपयसापांयततच ।

अर्थ—गोमूत्र में भिगोई हुई हरड का गोमूत्रके साथ पानकरै, औषधके पचने पर दूधके साथ अथवा मधुर मांसरस के साथ भोजन करै, अथवा लोहचूर्णको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ पान करै इससे पाण्डुरोग शान्त होजाताहै ॥

नवायस चूर्ण ।

द्रूपणात्रिफलामुस्तंविडङ्गचित्रकंसमा ॥

नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णौद्रसर्पिषा ।

भक्षयेत्पाण्डुद्वेगकुष्ठार्शःकामलापहम् ॥

नवायसमिदंचूर्णकृष्णात्रयेनभापितम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चीता ये सब समान भाग लेकर कूट ले तथा इन सबके समान भाग लोहचूर्ण मिलाकर शहत और धीके साथ सेवन करै । इससे पाण्डुरोग, द्वेग, कुष्ठ, अर्श और कामला दूर होजाते हैं । यह नवायस नामक चूर्ण कृष्णात्रयेन कहा है ॥

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान् ।

पिप्पलीद्विगुणांकुर्यात्गुटिकांपाण्डुरो-

गिणे ॥

अर्थ—गुड, सोंठ, मंडूर और तिल चारों समान भाग, तथा पीपल ८ भाग इनकी

गोली बनाकर पाण्डुरोगी को देवे ।

मंडूरघटिका ।

त्रिफलाद्रूपणमुस्तंविडंगचव्यचित्रको ।

दावीत्विहमाक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकोदेवदारु

च ॥ एतान्द्रिपलिकान्भागांश्चचूर्णानकु

र्यात्तपृथक्तथा । मण्डूरान्द्विगुणंचूर्णात्

शुद्धमज्जनसंभ्रम् ॥ मूत्रमष्टगुणंपक्त्वा

तस्मिस्तत्प्रक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमान

कृत्वाघटकांस्तान्यथाग्निच ॥ उपयुञ्जी

ततक्रेणसात्स्यजीर्णंचभोजनम् । मण्डूर

घटकाद्येतेप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ कु-

ष्टाण्यनीरकंशोधमूर्स्तम्भकफामयान्

अर्जासिकामलामेहप्लीहानंशमयान्तिच ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, मोथा,

चव्य, चीता, दारुहलदी की छाल, सोना-

माखी, पीपलामूल और देवदारु इन में से

प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर जुदे जुदे

कूट डालै और इन सब से दुगुना शुद्धअं-

जनके समानकाला मंडूर औरमंडूरसे अठगुना

गोमूत्रलेकर प्रथम गोमूत्र और मंडूरको पकावै

जब पकने पर आजाय तब त्रिफलादि पूर्वो-

क्त चूर्ण डालकर गूलर के समान गोल्यां

बनावै। इनमें से अश्विलके अनुसार प्रति दि-

न एक गोली मठे में घोलकर पान करै ।

तथा औषध के पचने पर सात्स्य भोजन

तक्र के साथ करै । इन मंडूर घटिकाओं का

सेवन करना पाण्डुरोगियों को प्राणदायक

है । कुष्ठ, अर्जा, शोध, ऊरुस्तम्भ, कफ

रोग, अर्श, कामला, मेह और प्लीहाभी इस

के सेवन से शान्त होजाते हैं ।



ताप्यादि चूर्ण ।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योषविटङ्गैः पालिकैः सह ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्राः चूर्णिता मधुनप्लुताः । अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहिजीर्णेनियमिताशिना ॥ कुलत्थकाकमाद्यादिकपोतपरिहारिणा ॥

अर्थ—सौनामाखी, शिलाजीत, रूपामखली, लोहमल, प्रत्येक पांच २ पल, चीता त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, प्रत्येक एक २ पल, शर्करा आठपल इन सबका चूर्ण कर के प्रतिदिन इस में से एक तोले लेकर श. हत के साथ चाटै । औषध के पचने पर नियमित भोजन करै तथा कुलथी मकोय और कपोतादिका परित्याग करदेवे ।

योगराज वटिका ॥

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ॥ भागश्चित्रकमूलस्य विटङ्गानां तथैव च । पञ्चाशमजतुनो भागास्तथारूप्यमलस्य च । माक्षिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजतस्य च । अष्टौ भागाः सितयाश्च तत्सर्वस्य क्षमचूर्णितम् ॥ माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्य मायसे भाजने शुभे । उदुम्बरसमां मात्रां ततः स्वादे । च धाग्निना ॥ दिने दिने मयुञ्जीत जीर्णे भोज्यं पदीप्सितम् । बर्जयित्वा कुलत्थानिकाकमाची कपोतकम् ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः । रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ पाण्डुरोगां विपक्षासंयक्ष्माणां विषमज्वरम् । कुष्ठान्यजीरकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम् ॥ विशेषादन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ।

[ १२४ ]

अर्थ—त्रिफला तीनभाग, त्रिकुटा तीनभाग, चीतेकी जड़ एकभाग, वायविडंग एकभाग, शिलाजीत पांचभाग, रौप्यमल पांचभाग, शुद्धकी हुई सौनामाखी पांचभाग, शुद्ध किया हुआ लोहचूर्ण पांचभाग, मिश्री आठभाग, इन सबको महीन पीसकर शहतमें मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्रमें भरदे । तत्पश्चात् अग्निबलके अनुसार तोलेभर प्रतिदिन सेवन करै । औषधके जीर्ण होनेपर प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन करै । केवल कुलथी, मकोय और कपोत को परित्याग करदेवे । यह अमृतके समान योगराजयोग है । यह रसायन बहुतश्रेष्ठ सम्पूर्ण रोगोंका नाश करने वाला है, इससे पाण्डुरोग, विषरोग, खांसी, यक्ष्मा, विषमज्वर, कोढ़, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास अरुचि, दूर होजाते हैं, यह योग विशेष करके अपस्मार, कामला और अर्श रोग को दूर करता है ॥

शिलाजतु वटिका ।

कौटजत्रिफलानि म्वपटोलघननागरैः ॥ भावितानि दशाहानिरसैर्हि त्रिगुणानि च । शिलाजतुपलान्यष्टौ तावतीं सितशर्कराम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीघात्री कर्कटाख्यापलोन्मिता । निदिग्ध्याः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्या त्रिगान्धिकम् ॥ चूर्णितं मधुरं चर्यात्त्रिपलेनाक्षिकान् गुडान् । दाडिमा म्मुपयः पक्षिरसतो यमुरासवान् ॥ भक्षयित्वा पिबेच्चानुतान् रान् नोऽपुष्कलवत् । पाण्डुकुष्ठज्वरघ्नी हननकाष्ठो भस्मन्दरम् ।

पूतिवृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरम् ।  
कासासृग्दरपित्तासृक्शोधगुल्मगरामया-  
न् ॥ तैसर्वैविभ्रमानहन्त्युःसर्वरोगहराः-  
शिवाः ॥

अर्थ.....इन्द्रजौ, त्रिफला, नीम, परबल, मो-  
था, सोंठ, इन के क्याय में आठपल शिला-  
जीत को दश, बीस या तीस दिनतक भा-  
वना देवै । फिर यह शिलाजीत, इतनी ही  
मिश्री, तथा एक एक पल यशलोचन, पीपल  
आंवला और काफडासींगी, कटेरी कौजड  
और उसके फल एक पल, त्रिगंध ( इलायची  
तेजपात और दालचीनी ) एक पल, इन  
सबका चूर्ण करके तीनपल शहत में सान-  
तोले २ भरकी गोली बनाये । भोजन कर  
के वा बिना भोजन कियेही इन गोलियोंका  
सेवन करै और ऊपर से अनारका रस, दूध  
पक्षियों का मांस रस, जल, सुरा और  
आसव का पान करै । इसके सेवन करने  
से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, ग्रीहा, तमक,  
अर्श, भगन्दर, पूतिरोग, हृद्रोग, शुक्ररोग,  
मूत्ररोग, अग्निदोष, शोषरोग, गरदोष,  
उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त,  
शोथ, गुल्म तथा विषरोग दूर होजाते हैं ।  
ये गोलियां सब प्रकारकी भ्रांति और सवप्र-  
कारके रोगोंकी हरनेवाली बड़ी कल्याणकर्त्ता हैं  
पुनर्नवादि प्रयोग ।

पुनर्नवात्रिवृक्षोपविहंगदारुचित्रकम् ।  
कुष्ठहरिद्रेत्रिफलादन्तीचव्यकालिंगकाः ।  
पिप्पलीपिप्पलीमूलमुस्तश्चेतिपलोन्मितम्-  
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णात्तुगोमूत्रेक्षया षडकेपचत्वे ।

कोलवद्गुडिकाः कृत्वा तत्र केणालो ल्यताः  
पिबेत् । ताः पाण्डुरोगान् ग्रीहाहानमर्शासिबि-  
पमज्वरम् । श्वयथुग्रहणीदोषहन्त्युः कुष्ठं  
क्रमोस्तथा ॥

अर्थ—सांठ, निसोथ, त्रिकुटा, वायविडंग,  
देवदारु, चीता, कूठ, दोनों हलदी, त्रिफला,  
दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल,  
मोथा ये सब एक एक पल लें, इन सब  
से दूना मंडूर मिलाकर चूर्ण बनालेवै और  
दो आदक गोमूत्रमें पकाकर घेरके बराबर  
गोली बनाकर तक्रमें घोलकर सेवन करै ।  
इससे पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, विषमज्वर,  
सूजन, प्रक्षेणीदोष, कोढ़ और त्रिमिरोग न  
ष्ट होजातेहैं ।

अबलेह प्रयोग ।  
दार्वात्त्वक्त्रिफलाव्योपविहङ्गमयसोरजः  
मधुसर्पिर्घृतं लिङ्गात्कामलापाण्डुरोगवान-  
तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राः सौद्रसर्पिणा  
चूर्णिताः कामलीलिङ्गात्गुडसौद्रेण वा भयम्  
त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकदुरोहिण्ययोरजः ॥  
चूर्णितं सौद्रसर्पिर्भ्यासलेहः कामलापहः ।

अर्थ—कामला रोगी और पाण्डुरोगी  
दारुहलदीकीछाल, त्रिफला, त्रिकुटा, वायवि-  
डंग, लेहचूर्ण इनको शहत और घांके सा-  
थ चाटै। लेहचूर्ण हरड और, हल्दी इनको  
समान भाग अथवा केवल हरड को गुड  
और शहत के साथ चाटनेसे कामला रोग  
नष्ट होताहै । त्रिफला, दोनों हलदी, कुटकी  
और लेहचूर्ण इनको घी और शहतके सा-  
थ चाटै तो कामलारोग जातारहताहै ॥

धात्र्यावलेह ।

द्विपलाशन्तुगाक्षीरिनागरमधुषण्टिकाम्  
मास्थिकीपिप्पलीद्राक्षांशकरार्द्धतुलांशु  
माम् । धात्रीफलरसद्रोणेसुपिष्टलेहवत्प  
चेत् ॥ शीतामधुमस्थयुतांलिङ्गात्पाणि  
तलंततः । हन्त्येपकामलापित्तपाण्डुका  
संहलीमकम् ॥

अर्थ—वर्शलोचन दो पल, सोंठ, मुलहठी,  
पीपल और दाख एक एक प्रस्थ, सफेद-  
चीनी आधीतुला, इन सबको पीसकर एक  
द्रोण आंवलेके रसमें पकावै, जब हल्हीसी  
होजाय तब उतार ले और ठंडावनीने पर  
एक प्रस्थ शहत मिलाकर संयोगी इसमें  
से प्रतिदिन दोतोले सेवन करे । कामला,  
पित्तोग, पांडुरोग, खांसी और यमभक्षिक  
दूर होजातेहैं ॥

मंडूरगुटिका ॥

व्यूषणंत्रिफलाचव्यचित्रकोदेवदारुच ।  
विडङ्गान्यधमुस्ताश्वत्सकंचेतिचूर्णयेत् ॥  
मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ॥ श-  
नैःसिद्धास्तथाशीताःकार्याःकर्पसमागुडाः  
यथाप्रिभक्षणीयास्तेष्ट्रीहपाण्ड्वामयाप-  
हाः । ग्रहण्यशोनुदःजीर्णतक्रवात्यंशिनः  
स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिकुट्टा, त्रिफला, चव्य, चीता, देव-  
दारु, वायविडंग, मोथा और इन्द्रजौ इनसबका  
चूर्ण बनावै इन सब के बराबर मंडूर लेकर  
उत्तसे अठगुने गोमूत्र में प्रथम मंडूर को  
पकावै और फिर उसमें उक्त चूर्ण डाल  
देवै फिर धीरे २ सेक कर उतारले और

ठंडा होनेपर एक एक कर्पकी गोखियां बनावै  
और अग्निबलके अनुसार सेवन करै तो  
प्लीहा, पांडुरोग ग्रहणी और अर्शरोग दूर  
होजाते हैं । औषधके पचने पर तक्र और  
यममंड का सेवन करै ।

गुडारिष्ट ।

मज्जिप्लारजनीद्राक्षावलामूलान्ययोरजः  
रोधूचैतेषुगोडःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणाम्  
अर्थ—मजीठ, हलदी, दाख, खरैटी की  
जड़, लोहचूर्ण और लोध ये सब समान-  
भाग लेकर चूर्ण करै तथा इस सबसे  
चौगुना गुड़ और, गुड़ेसे चौगुना जल  
मिलाकर सबको एक घीकी हांडीमें भर देवै।  
यह गुडारिष्ट पांडुरोगियोंको हितहै ।

अन्य अरिष्ट ।

बीजकात्पोडशपलंतिफलायाश्चविंशतिः  
द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाःसप्तद्रोणेजलस्यतत्  
साध्यपादावशेषेतुपूतशेषेसमावपेत् । श-  
र्करायास्तुलांप्रस्थमाक्षिकस्यचकार्पिकम् ।  
व्योषंव्याघ्रनखोशीरंक्रमुक्तं सैलवालुकम् ।  
मधुककुष्ठमित्येतच्चूर्णितंघृतभाजने॥य-  
वेपुदशरात्रंतदप्रीप्मेदिःशिशिरेस्थितम् ।  
पिवेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शकामलारु-  
चीः ॥ मूत्रकृच्छ्रान्मरीकुष्ठसन्निपातांश्च  
नाशयेत् ।

अर्थ—विजौरा सोलहपल, त्रिकुटा, बीस  
पल, दाख पांचपल, लाल सातपल, इनसब  
को एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष  
रहनेपर उतारकर छानले । टंडा होने-  
पर इसमें एक तुल्य सफेदचीनी, शहत  
एक प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, व्याघ्रनखी उशीर,

मुपारी, एलुआ, मुटहटा और कूट, प्रत्येक एक एक कर्प लेकर इनका धूर्ण बनाकर ऊपर कहहदुय काथमें मिलाकर एक चिकनी हांडी में भरदेवै। इसको प्राप्तिभक्त में दस दिवस तक जोके ढेरमें गाढ़ देवै और सर्दी में बीस दिनतक दया रहने दे, फिर निकाल कर इसका सेवन करै। इससे ग्रहणीरोग, पांडुरोग, अर्श, कामला, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, अश्वमरी, कोढ़ और सन्निपात दूर होजातै।

धान्यारिष्ट ।

धात्रीफलसहस्रेद्वेषीद्विपत्वारसन्तुतम् ।  
 क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तकृष्णाद्विकृद्वेनच ॥  
 शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रपंकजिभेष्यदोस्थितं ।  
 प्रपिबेत्प्रात्रप्रातर्जीर्णमितहिताशनः ॥  
 कामलापाण्डुद्रोगघातासृग्विषमज्वरा  
 न्नाकासांहिक्कासार्चिश्वासांश्चैषोऽरिष्टःप्रणा  
 शयेत् ॥

अर्थ—दो सहस्र आंगुलीका मर्दनकर के रस निकाल लेंगे । इस रसका आठवो माग शहत, आधा कुडव पीपल, शर्करा आधा तुला, इन को मिलाकर पकावै और एक चिकने घोंटें भरकर रखदे । इसमें से प्रति-दिन प्रातःकाठ गात्र के अनुसार सेवन करै और औषधके पचनेपर थोडा और पथ्य भोजन करै, इसके सेवन से कामला, पाण्डुरोग, ग, इद्वोग, वातरक्त, विषम ज्वर, खासी, श्वास हिचकी और अरीच दूर होजातीहैं ।

स्थिरादिभिः श्रुतं तोयं पानादारे प्रशस्यते ।

पाण्डूनां कामलार्तानां मृद्वी कामलकीरसः॥

अर्थ—पांडुरोगमें स्थिरादि औषधियों

से सिद्ध किया हुआ जल या आहार हित है तथा कामलारोगमें दाख और आंवले का रस भी हित है ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमितिप्रोक्तमहर्षिणा ॥  
 विकल्पमेतद्विपनापृथग्दोषवलंप्रतिवा ॥  
 तिकेस्नेहभूयिष्ठं पचिकेतुस्तथीतलं ॥ श्ले ॥  
 मिकेकदुतिकोष्णविमिश्रं सान्निपातिके ॥

अर्थ—महर्षि आत्रेयने पांडुरोगकी शान्तिके लिये जो जो औषधें यहां तक वर्णन की हैं वेही पृथक् पृथक् दोषबल के अनुसार विकल्पपूर्वक अर्थात् कमीबेशी करके प्रयोग की जा ठीक है। जैसे यासिक रोगमें ये औषधें प्रयोग की जायें। धेक सिग्ध द्रव्योंसे संस्कार करके, रोगमें तिक्त शीतल और कफज कटु, तिक्त और उष्ण तथा सान्निगीतक में तीनों प्रकारकी मिली हुई औषधियां देनी चाहिये।

मृत्तिका भक्षण में उपाय ।

निर्यातयेत्शरीरात्तुमुत्तिकाभाक्षिताभिषक्  
युक्तिः शोषधनैस्तक्षिणैः प्रसमीक्ष्यं बलाव-  
लम् ॥ शुद्धकायस्य सर्वापि बलाधानानि  
योजयेत् ।

अर्थ—मृत्तिका भक्षणपते उत्पन्न हुए पां  
दुरोगमें रोगी का बलाबल देखकर तीक्ष्ण  
संशोधनों द्वारा रोगीके शरीरसे मृत्तिका नि-  
काळ दैये । इसंतर्ह देहके शुद्ध होने पर  
निम्नालिखत बलाकारक धूर्तोंका प्रयोग कै-

मृत्तिकादोष पर घृत ।

अथोपनिषत्परिचयः ॥  
मुस्तान्ययोरजःपाठाधिष्ठानदेवदारुच ।

एदिचकालीचभागींचसक्षीरैस्तैःसमैधृतम् ।  
माधयित्वापिवेद्युक्त्यानरोमृदोपपीडितः ।  
तद्वत्केशरयष्ट्याहपिप्पलीमूलशाद्वलैः ।  
नर्थ—त्रिकुटा, येलगिरी, दोनों हलदी,  
त्रिफला, दोनों प्रकारकी सांठ, मोथा, डोह  
चूर्ण, पाठा, देवदारु, वायविडंग, विछवन  
भांडंगी सब समान भाग लेकर चूर्ण करके  
इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना  
दूध डालकर पकावै । इस घृतका युक्ति  
पूर्वक सेवन करनेसे मृदक्षणजन्य पांडु-  
रोग दूर होजाताहै । इसीतरहसे केशर, मु-  
हहटी, पीपलामूल और शाद्वल (नवीन छो  
टी घास)से सिद्ध किया घृत उपयोगी होताहै

अन्यउपाय ।

मृदोनिवर्तमानायलौल्यान्मर्त्यायभक्षणा  
त् । द्वेप्यार्थभावितां कामंदद्यात्तदोपनाश  
नैः ॥ शुक्लातिविषयानिभ्यैर्विडंगैःकुट  
जेनच । वार्त्ताकैःकटुरोहिण्यापाठयाम्  
वैयापिवा ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मिट्टी खानेकी  
बड़ी टेवहै उसको मिट्टीसे अरुचि बढ़ाने  
के निमित्त दोप नाशक द्रव्यों से भावना  
की हुई मृत्तिका यथेष्ट खवावै, वे द्रव्य यहहै,  
यथा अतीस, नीम, वायविडंग, इन्द्र जौ,  
वार्त्ताक, कुटकी, पाठा और मूर्वा ।

यथादोषञ्चकुर्वीतमैपज्यंपांडुरोगिणाम्  
क्रियाविशेषपपोऽस्थमतोहेतुविशेषतः ॥

तिलीपिष्टनिभयस्तुवर्चःसृजत्तिकामली ।  
श्लेष्मणारुद्धमार्गितपित्तकफहरैजेयत् ॥

अर्थ—पांडुरोगमें दोषके अनुसार चिक

त्सा करनी चाहिये, हेतु विशेषसे क्रिया में  
भी अन्तर होताहै । जिसकामला रोगीका  
विष्टा तिलकी दूगदी सा होताहै उसरोग में  
पित्तका स्रोत कफसे बन्द होजाताहै, इसमें  
कफनाशकचिकित्सा करना चाहिये ॥

शाखाश्रित कामलाके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामवैगनिग्रहैः ।  
कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तंक्षिपेद्वाहिः  
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्मेतवर्चास्तदानरः ।  
भवेत्साटोपाविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच ॥  
दौर्बल्याल्पाग्निपाश्वातिहिकाश्वासाश्चि  
ज्वरैः । क्रमेणाल्पेऽनुपज्येतापित्तेशाखा  
समाश्रिते ॥

अर्थ—रूक्ष, शीत, भारी, मिष्ट, व्यायाम  
और वैगनिग्रहसे वायु कफसे मिलकर पित्त  
को उसके स्थानसे बाहर निवालती है तब  
नेत्र, मूत्र और त्वचा हलदीके समान होजाते  
हैं और विष्टा सफेद होजाताहै । अफरा,  
गुडगुडाहट हृदयमें भारापन; दुर्बलता, मन्दा-  
ग्नि, पार्श्वशूल, हिचकी, स्वास, अरुचि और  
ज्वर ये उपद्रव होते हैं । यह पित्त क्रमक्रमसे  
शाखाओं पर आक्रमण करताहै ।

पांडुरोगमेंअन्यउपचार ।

वर्हित्तिरदक्षाणारूक्षाम्लैःकटुकैःरसैः ।  
शुष्कमूलककौलत्थैर्यूपैश्चान्नाग्निभोजयेत्  
मातुलुगरसंसौद्रं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।  
सनागरं पिबेत्पित्ततथास्येतिस्वमाशयम् ॥  
तृषाम्लैःकटुरूक्षोष्णैर्लघुनैश्चाप्युपक्रमः ।

आपित्तरोगाच्चकृतोवायोश्चाप्रशमाद्भ  
वेत्स्वस्थानमागतोपित्तपुरीषेपित्तरिज्जते

निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वकामलिकीविधिः॥

अर्थ—मोर, तीतर और मुर्गाके मांसरस को रुक्ष, अम्ल, और कटु द्रव्योंसे संस्कार करके दैव्य अथवा सूखीमूली और कुलथी के यूपके साथ भोजन करावे । त्रिजौरे के रसमें शहत, पीपल, कालीगिरच और सोंठ डालकर पानसे पित्त अपने स्थान में चला जाताहै । मलके पित्त रंजित न होने और वायु की अशान्ति से जो तृपादि रोग होतेहैं उन में कटु, उष्ण, रुक्ष और लवणान्वित औषधियों द्वारा चिकित्सा कीजातीहै, जब पित्त अपने स्थानमें आजाताहै और मल पित्तसे रंगजाताहै तब उसके सब उपद्रव निवृत्त हो जातेहैं उस समय कामलारोग की विधि कर्त्तव्यहै।

हलीमकके लक्षण ॥

यदातुपाण्डोर्वर्णः स्याद्वरितश्चावपतिकः  
बलोत्साहशयस्तन्दाभ्रित्वमृदुर्ज्वरः  
स्त्रीपृष्ठहर्षोऽङ्गमर्दश्चादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः  
हलीमकंतदातस्यपिश्चादनलिपित्ततः ॥

अर्थ—जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला व पीला पड़जाय, घट और उत्साह क्षीण होजाय, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मृदुज्वर स्त्रियोंमें अनिच्छा, अंगमर्द, अंगसाद, तृष्णा, अहन्ति, और भ्रम ये उपद्रव उत्पन्नहों तब वात पित्तकेकोपसे हलीमक नाम पाण्डुरोग रोगहोताहै।

हलीमकमें चिकित्सा ।

गृध्रचीस्वरसर्शरसांघितंगादिपंचृतम् ॥  
सपिप्पेलीमृत्तास्निग्धोरसेनामलकस्यतु॥  
गिरिकान्मधुरमायसेवितोऽनिलपित्तनुत्।  
द्राक्षालेहंसपूर्वोक्तसर्पाविमधुराणिच ॥

यापनान्क्षीरचर्स्तीक्ष्णालयेत्सानुवासनान् ।  
मार्दवाकारिष्टयोगांश्चपिप्लवकान्प्रवृद्धये॥  
कासिकञ्चभयालेहं पिप्पलीमधुकाम्वलाम् ।  
पयसावामयुजीतयथादोषं पयः

यावलम्॥

अर्थ—गिलोयका रस और दूध इनमें भैंसका घी सिद्ध करके स्नेहन कर्मके लिये पानकरै, स्निग्ध होने के पीछे आंवले के रसके साथ निसोथ पीये जब इससे दस्त होजाय तब वात पित्तको दूरकरनेवाली मधुर औषधियों का सेवन करै । पूर्वोक्त द्राक्षावलेह, मधुर औषधियों से संस्कृत घृत, यापन क्षीरवस्ति और अनुवासन वस्तियों का प्रयोग करै । जठराग्नि को बढ़ाने के लिये मृद्वीकारिष्ट आदियोगों का पानकरै । कासोक्त अध्यायमें कहाहुआ अमयावलेह अथवा पीपल, मुलहठी और खैरटीको दोष और बलके अनुसार दूध के साथ सेवनकरै।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पाण्डोः पञ्चविधस्योक्तहेतुलक्षणभेदजम् ।  
कामलाद्विषाचैवसाध्यासाध्यत्वमेवच  
तेषां विकल्पोपशान्त्यामहाव्याधिर्हलीमकः ॥  
तस्यचोक्तसमासेनव्यञ्जनंसचिकित्सितम् ।

अर्थ—इस अध्यायमें पाण्डुरोगके पांच भेद, उनके हेतु, लक्षण, चिकित्सा, दो प्रकार का कामलारोग, इन रोगों के साध्यासाध्य लक्षण, औषधियों का वैकल्पिक प्रयोग, हलीमक नाम महाव्याधि, तथा संक्षिप्त से हलीमक के लक्षण और चिकित्सा

वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

चिकित्सितस्थाने पांडुरोगचिकित्सितं

नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

### एकविंशोऽध्यायः॥

अथातोहिकाश्वासचिकित्सितंव्याख्या  
स्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अबहम यहांसे हिकाश्वास चिकित्सित  
नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृषिभिःस्तुतम् ॥

अपृच्छत्संशयंधीमानग्निवेशःकृताञ्जलिः

यश्चेद्विधाःभोक्ताःत्रिदोषास्त्रिमकोप

नाः ॥ रोगानानात्मकास्तेपांकःकोभव-

तिदुर्जयः

अर्थ—बुद्धिमान् अग्निवेश ने हाथ जो-

ड़कर वैदिक और लौकिक विषयों के तत्वों

को जाननेवाले और ऋषिगणोंसे स्तुति किये

हुये भगवान् आत्रेयसे पूछा कि हे भगवन् !

आपने द्विविधात्मक दोषोंका वर्णन किया

तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकुपित

करनेवाले हेतु भी वर्णन किये । अब मेरी

यह जानने की इच्छा है कि इन अनेक प्र-

कार के रोगों में कौन २ रोग दुर्जय हैं

आत्रेय का उत्तर ।

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमताम्बरः

उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयः॥का-

मप्राणहरारोगावह्वानतुतंतथा ॥ यथा  
श्वासश्चहिकाचप्राणानाशुनिरस्यतः।अ-  
न्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्विधैः।अ-  
न्तेसजायतेहिकाश्वासोवातीप्रवेदनः।

अर्थ—अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर  
मति मताम्बर, परोपकार परायण आत्रेय  
अत्यन्त प्रसन्न होकर बोलेकि यद्यपि प्राण  
नाशक रोग बहुत हैं परन्तु वे ऐसे नहीं हैं  
जैसे हिका और श्वास शीघ्र प्राणनाशक  
होते हैं । प्राणी के अनेक प्रकारके अन्य २  
बहुत से रोगों से पीड़ित होनेपर भी अन्त  
में तीव्र वेदनावाले हिका और श्वासरोग  
उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरते समय हिचकी  
आती है या श्वास बढ़ता है ॥

हिकाश्वासका स्थानादि विवरण ।

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ॥

हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ ।

तस्मात्साधारणावेतौमममुदुर्जयौ ॥

अर्थ—ये दोनों रोग कफवातसे होतेहैं,

इनकी उत्पत्तिका स्थान पित्ताशय है ये दो-

नोंही रोग हृदयस्थ रसादिक धातुओं का

शोषण करतेहैं अतएव ये दोनों सब तरह

से सप्पन्न हैं और दोनों ही दुर्जय हैं ॥

हिकाश्वासके भेद ।

मिथ्योपचरितौकुदौहतावाशीविपावित्रं

पृथक्पञ्चाविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे ॥

तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गान्येकैकशस्तथा

अर्थ—उक्त दोनों रोग मिथ्या आहार

विहारसे उत्पन्न होकर कुद आशी विपाकी

तरह मनुष्य को मार डालतेहैं । सूत्रस्थानमें

अर्थ—कफसंसृष्टवात प्राणवाही उदकवाही और अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिचकी उत्पन्न करती है । इन हिचकियोंके पृथक् लक्षणोंका वर्णन किया जाता है ।

महाहिका के लक्षण ॥

क्षीणमांसवलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः॥  
गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्धोपवर्तीभृशम् ।  
करोतिसततांहिकामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥  
प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुद्धोऽप्राणमेव  
चासंज्ञासृष्णातिगात्राणिस्तम्भसञ्जनय-  
त्यपि।मार्गचैवान्नपानानांरुणक्ष्यपहतस्मृतेः  
साधुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतध्रुवः  
सक्तजल्पप्रलापस्पतिर्दृतिनाधिगच्छतः॥  
महामूलमहावेगामहाशब्दामहाबला॥ म  
हाहिकेतिसान्दृष्टांसद्यःप्राणहरामता ॥

अर्थ—जिस मनुष्य के मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण हो गये हैं उसके कंठको कफयुक्त वायु पकड़कर अत्यन्त शब्दवाली ऊपरकी हिचकी को उत्पन्न करती है, यह हिचकी निरन्तर एक दो तीन बार आती है । उससमय रोगी के प्राण बाही स्रोत, मर्मस्थान, ऊष्मा और संज्ञा नष्ट होजाती है । देह में उष्णता और स्तम्भता उत्पन्न होती है । उसके अन्न पानके मार्ग रुकजाते हैं, स्मृति नष्ट होजाती है, नेत्रोंमें जल डबडबाता है, कनपटी स्तब्ध और भ्रुकुटी गिरीसां पडती हैं मुंहसे बोल नहीं निकलता है, किसी तरह चैन नहीं पडता है, यह हिका महामूल, महावेगा, महाशब्दा और महाबला होती है, इसीसे इसका नाम महाहिका

है, यह मनुष्यों का तत्काल प्राणनाश करनेवाली होती है ॥

गंभीरा हिकाके लक्षण ।

हिकतेयःप्रवृद्धस्तुक्शोदीनमनानरः ।  
जर्जरणोरसासर्वगम्भीरमनुनादयन् ॥  
संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन्॥  
पार्श्वेचोभेसमायस्यकूजनस्तम्भरुगर्दितः  
नाभेःपक्काशयाद्वापिहिककाचास्योपजा-  
यते ॥ क्षोभयन्तीभृशंदेहनामयन्तीचता-  
म्यतः । रुणद्ध्युच्छासमार्गन्तुप्रणष्टव-  
लचेतसः।गम्भीरनामासातस्पहिकाप्राण-  
न्तिकीमता ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुश और दीन मन होकर अत्यन्त हिचकी लेता है, हृदयमें जर्जरता दिखाई देवे, हिचकी का शब्द गंभीर हो, यदि रोगी हाथ पांवोंको फैलाकर जम्हाई लेने लगे और इधर विधर पटकने लगे, दोनों पसवाड़ोंको लम्बा करदेवे कंठ में कूजन और शरीर में स्तम्भ और शूल होवे । नाभि वा पक्काशयसे हिचकी निकलती माछमहो जिससे सम्पूर्ण देह में क्षोभ हो, देह झुकजाय, बेदना होने लगे श्वास आनेजाने का मार्ग रुकजाय और बल तथा संज्ञा नष्ट होजाय, यह प्राणोंका नाश करनेवाली गंभीरा हिका होती है ।

व्यपेताहिका ।

व्यपेतेजायतेहिककायान्नपानेचतुर्विधे ।  
आहारपरिणामान्तेभूयश्चलभतेवलम् ॥  
प्रलापवम्यतीसारवृष्णार्तस्यविचेतसः॥  
संजृम्भस्यप्लुताक्षस्यभृष्कास्यस्पविना-



मिनः । पर्याध्मातस्य हिक्काया जत्रुमूलाद-  
सन्तता ॥ सान्ध्यपेतेति विज्ञेया हिक्काया  
पोपरोधिनी ।

अर्थ—जो हिचकी मध्य भोज्यादि चार  
प्रकारके अन्नपान से उठती है और भोजन  
के पचनेके समय जिसका बल अधिक बढ़  
जाता है जिसके होनेसे प्रलाप, वमन, अतीसार  
तृषा और संज्ञा नाश होजाय, जिससे, जम्हाई  
नेत्रोंमें आंसू, मुखमें शुष्कता, शरीरका शु-  
कना, पेटमें अफरा होवै, और जो जत्रु के  
मूलसे उत्पन्न हो उसे व्यपेता हिक्का कहते  
हैं यह हिचकी प्राणवाही ज्ञातोंको रोक देती है ।

धुद्रा हिक्का ।

धुद्रवातो यदा कोष्ठाद्व्यायामपरिघटितः ॥  
कण्ठे प्रपद्यते हिक्का तदा धुद्रां करोति सः ॥  
अतिदुःखान् सा चोरः शिरोर्ममवाधिनी ॥  
न चोच्छासान्नपानानां मार्गमावृत्य तिष्ठ-  
ति । वृद्धिमाया सतो याति भुक्तमात्रे च मार्द-  
वम् ॥ यतः प्रवर्तते पूर्वत एव निवर्तते ॥  
हृदयं क्लोमकण्ठश्च तालुकश्च समाश्रिताः ॥  
मृदो सा धुद्र हिक्कोति नृणां साध्यामर्कीति ता-

अर्थ—धुद्रवात अत्यन्त परिश्रमके कारण  
उदघटित होकर जब कंठमें स्थित होजाती  
है तब यह धुद्रा हिक्का को उत्पन्न करती  
है, यह हिचकी अत्यन्त कष्टदायक नहीं  
होती और न यह वक्षस्थल, शिर वा मग्नो  
में पड़ि पहुँचती है, न यह स्वांस वाही  
तथा अन्नपान वाही मार्गों को रोकती है,  
परिश्रम से बढ़ती है और भोजन करते ही मृदु  
पड़ जाती है यह जिस कारण से उत्पन्न

होती है उसही से निवृत्त होजाती है ।  
इसका आश्रयस्थान हृदय, क्लोम, कंठ और  
तालुक है यह मृदु होती है, इसका नाम  
धुद्रा हिक्का है । यह हिचकी साध्य होती है ।

अन्नजा हिक्का का लक्षण ।

सहसा तस्य भ्यवहृतः पानान्नैः पीडितोऽनि-  
लः । उर्ध्वप्रपद्यते कोष्ठान् मधैर्वातिमदप्र-  
दैः । तथा तिरोपभाष्याध्वभारातिपरि-  
वर्तनैः । वायुः कोष्ठगतो धावनपानमो-  
ज्यप्रपीडितः । चरः स्रोतः समाविश्य कु-  
र्याद्विक्कां ततोऽन्ननाम् ॥ तथा शनैरसम्ब-  
द्धं धुयन्चापि स हिक्कते । नर्ममवाधाजन-  
नी चेन्द्रियाणां मवाधिनी ॥ हिक्कापीते त-  
था भुक्ते शमयाति च सा क्षजा ।

अर्थ—सहसा अन्नपान के अत्यन्त सेवन  
से वा अत्यन्त नशीले मद्यके सेवनसे वायु  
बढ़कर ऊपरको कोष्ठोंमें जाती है, तथा  
अत्यन्त रोप, भाषण, मार्ग-भ्रमण, भारवहन  
वा अत्यन्त परिवर्तनसे अन्नपान के द्वारा  
उत्पीडित होकर कोष्ठगत वायु हृदयस्थ स्रोतोंका  
अवलंबन करके अन्नजा हिचकी उत्पन्न  
करती है । कभी २ यह हिचकी भोजनसे  
नहीं होती है तथा वैसेही हिचक्रिया आने  
लगती है इनसे मर्मस्थान वा इन्द्रियों में कुछ  
धावा नहीं पड़ूँचती है और अन्नपान के  
सेवनसे ये शान्त होजाती हैं ।

हिक्का का साध्यासाध्यवर्णन ।

आतिसञ्चितदोषस्य भक्तच्छेदस्तस्य च ॥  
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य रज्जुस्यातिव्यवा-  
यिनः । आमाशयात्समुत्पन्ना हिक्का हन्त्या-

शुजीवितम् ॥ यमिकाचमलापार्तितृष्णा  
मोहसमन्विता । अक्षीणश्चाप्यदीनश्च  
स्थिरघातिन्द्रियश्चयः ॥ तस्यसाधयि  
तुंशक्यायमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके दोष अत्यन्त इकट्ठे  
होगये हैं जिसको भोजनमें अरुचिहै, जो  
क्षतपीडितहै, व्याधियोंसे जिसका देह क्षीणहै,  
जो वृद्ध और अति व्याधी है, उसके हिच-  
की आमाशय से उत्पन्न होतीहै जिस यमिका  
हिचकी में प्रलाप, वेदना, तृष्णा और मोह  
होताहै वह भी असाध्य होतीहै, यदि वह  
ऐसे पुरुषके होतीहै, जो अक्षीण, अदीन,  
स्थिर घातु और स्थिरन्द्रिय होताहै वह साध्य  
होतीहै जो इस से भिन्नहै वह असाध्य होतीहै

श्वास की उत्पत्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुद्धमारुतःकफपूर्वकः॥वि  
ष्वग्भ्रजतिसंरुद्धःतदाश्वासान्करोतिसः

अर्थ—जब कफसे मिली हुई वायु प्राण  
वाही स्रोतों को रोक देती है, इसतरह रुकी  
हुई वायु सम्पूर्ण देहमें गमन करतीहै तब  
श्वास उत्पन्न होता है ।

महाश्वासका लक्षण ।

उद्ध्व्यूयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः  
उच्चैःश्वसितिसंरन्धोमत्तपभइवानिशम्॥  
प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलोचनः  
विकृताज्ञाननोवद्धमूत्रवर्चविशिर्णवाक्॥  
दीनःप्रश्वसितंचास्पदूराद्दिशायतेभृशम्  
महाश्वासोऽपृमृष्टःसक्षिप्रमेवमपश्यते ॥

अर्थ—वायुके ऊपरको जानेसे संरन्ध  
होकर जो मनुष्य मत्त बैठ की तरह अत्यन्त

कष्टसे शब्दयुक्त ऊंचा श्वास लेताहै, तब  
उसके ज्ञान विज्ञान नष्ट होजातेहैं, नेत्र  
भ्रान्तियुक्त होतेहैं, आंख और मुख विकृत  
होजातेहैं, मूत्र विष्टा बन्द होजातेहैं, वा-  
णी रुक जातीहै, दीनता होजातीहै, उसका  
श्वास लैना दूरहीसे दिखाई देने लगता है ।  
इसका नाम महाश्वास है, इस के होनेसे  
रोगी शीघ्र मरजाताहै ।

उर्ध्वश्वास का लक्षण ।

दीर्घःश्वसितियस्तूर्ध्वनचमत्याहरत्यधः॥  
श्लेष्मावृतमुखस्रोताःकुदगन्धवहादितः॥  
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यञ्चविभ्रान्ताक्षस्ततस्ततः  
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्चभुष्कास्योऽतिनिपीडि  
तः॥ ऊर्ध्वश्वासेमयृत्तेचयश्वाधःश्वासरोधभा  
क् ॥ ताम्यतोभ्राम्यतधोर्ध्वश्वासस्तस्य  
पहन्त्यसूनु ।

अर्थ—जो ऊपरको मुख करके दीर्घ  
श्वास लेताहै और नीचा मुखकरके भीत-  
रको नहीं खींच सकताहै, जिसके मुख  
स्रोत कफसे आच्छन्न हैं, जिसके मुखसे  
कुद दुर्गन्धितवायु निकलताहै जो ऊपर  
को दृष्टि करके भ्रान्तियुक्त नेत्रोंसे  
देखता है, वेदनासे व्याकुल होकर मुग्ध  
होजाता है, मुख सूख जाता है वेदना  
अत्यन्त होती है, ऊर्ध्व श्वासके प्रवृत्त होने  
पर जिसका अधःश्वास रुकजाता है, इसमें  
हेश बहुत होता है, यह उर्ध्वश्वास शीघ्र  
ही प्राणों का नाश कर देताहै ।

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तुद वीसीतीवीच्छन्नंसर्वभाणेनपीडि

तः । नवाश्वसितिदुःखार्तोर्मर्भच्छेदरुग्  
दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदक्षमानेन  
वस्तिना । विच्छ्रुताक्षः परिशीणः श्वसनूर  
क्तकलोचनः ॥ विचेताः परिशुष्कास्योवि  
वर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसाच्छिन्नः  
सशीघ्रमजहात्यसूनु ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके टूटा हुआ श्वास  
निकलता है और सम्पूर्ण देह में इससे  
कष्ट होता है अथवा कष्टके कारण श्वास  
कम निकलता है तथा मर्मस्थान में वेदना  
होने लगती है वेदनाके कारण आनाह,  
स्वेद और मूर्च्छा होजाती है, वस्ति में दाह  
होने लगता है, नेत्रोंमें पानी भर आता है,  
क्षीणता होती है, नेत्र लाल पड़जाते हैं,  
संज्ञानाश होजाती है, मुख सूख जाता है,  
देह का वर्ण बिगड़ जाता है, प्रलाप होता  
है, ये छिन्न श्वास के लक्षण हैं । इस रोग  
से पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणों को त्याग  
देता है ।

तमकश्वासकेलक्षण ।

प्रातिलोमं यदा वायुः श्रोतांसि प्रतिपद्यते ।  
ग्रीवांश्चिरश्च संग्रहं श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥  
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव  
तीव्रवेगज्जश्वासं प्राणप्रपीडकम् । प्रताम्य  
त्यतिवेगाच्च कासते सन्निरुध्यते । प्रमोहं  
कासमानश्च सगच्छति मुहुर्मुहुः ॥ श्लेष्माण्य  
मुच्यमाने च भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव  
च यिमोक्षान्ते मुहुर्त्तं विन्दते सुखम् । अयास्यो  
द्धंसते कण्ठः कृच्छ्रात् श्वसन्नोति वाधितुं ।  
न चापि निद्रालभते शयानः श्वासपीडितः ॥

पाश्चेतस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः  
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं च वाभिनन्दति  
उच्छ्रुताक्षो ललाटेन स्विद्यतां भृशमर्तिमान्  
विशुष्कास्यो मुहुश्वासो मुहुर्दुश्वाधमत्य-  
पि । मेघाम्बुशतिमाग्यातः श्लेष्मलश्वा  
भिवर्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा  
स्यान्नयोद्धितः ॥

अर्थ—जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उलटी  
होकर प्राणवाही श्रोतोंमें स्थित होजाती है,  
तब, यह ग्रीवा और शिरको जकड़कर तथा  
कफको उद्गर्षि करके पीनस उत्पन्न क  
देती है और स्वयं रुद्ध होकर कंठ में घुरघुरा  
हट पैदा करती है तब उस समय प्राणों  
को कष्ट देनेवाला और बड़े तीव्र वेगवाला  
श्वास उत्पन्न होता है इसके उत्पन्न होने  
पर रोगी अत्यन्त वेगसे खांसने लगता है  
तथा खांसते २ कंठ रुकासा हो जाता  
है, खांसते २ रोगी बार-बार मूर्च्छित हो  
जाता है । और कफके न निकलने के  
कारण रोगी अत्यन्तही क्लेशित होता है,  
कफके निकलने पर थोड़ी देर को चैनसा  
पड़जाता है । गलेमें धूआं सा घुमडता रहता  
है इससे वातभी कठिनता से कर सकता है ।  
सौनेमें श्वासका वेग अधिक पड़ता है, इससे  
वह सोनेभी नहीं पाता है, करवट भी लेने  
में कष्ट होता है क्योंकि करवट लेनेमें श्वास  
का वेग अधिक बढ़ता है, बैठे होने पर  
कुछ सुख मिलता है, उष्ण द्रव्योंमें इच्छा  
बढ़ती है, आंख फटीसी होजाती है, माथे पर  
पसीना आजाता है, वेदना अधिक होने  
लगती है, मुख सूख जाता है, बार-बार श्वास

बढ़ता है, बार बार देह में झटके लगे हैं वादलों के होने पर, शीतल जलके स्पर्श पर पूर्व की वायु के चलने पर और कफकारी द्रव्यों के सेवन से श्वासकी वृद्धि होती है। यह तमकश्वास वाय्व होता है, यदि नया होता है तो साम्य भी होता है ॥

**प्रतमकश्वासका लक्षण ।**

ज्वरमूर्च्छा परीतस्य विद्यात् प्रतमकन्तुतम् ।

अर्थ—यदि तमकश्वास में रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होती है उसे प्रतमकश्वास कहते हैं ।

**सन्तमकश्वासका लक्षण ।**

उदावर्त्तजो जीर्णविलम्बका यनिरोधजः ।  
तमसावर्द्धतेऽस्य र्थशीतैश्चाभ्युपशाम्यति-  
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्संतमकन्तुतम् ।

अर्थ—उदावर्त्त, रज, तथा अजीर्ण से देहके विलम्ब होनेसे वा जठराग्निके निरोध से जो श्वास होता है, तथा जो अंधकार से अत्यन्त बढ़ता है, शीतोपचारसे शान्त होता है तथा रोगीको श्वास में अंधरासा छाया हुआ दीखे तो इस श्वास को सन्तमक-श्वास कहते हैं ।

**क्षुद्रश्वासका लक्षण ।**

रूक्षायामसोऽश्वः कोष्ठे क्षुद्रवात उदीरयेत् ॥  
क्षुद्रश्वासो न सोऽप्यर्थदुःखेनाह्वयवाधकः ॥  
हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखीययेतरः ॥  
न च भोजनपानानां निरुण्णदध्युचितांगति-  
म् ॥ नेन्द्रियाणां व्यथानां पिकाञ्चिदुत्पा-  
दयेदुजम् । स साध्य उक्तो वालिनः सर्वेषां  
व्यक्तलक्षणाः ॥

अर्थ—रूक्ष पदार्थोंके सेवन और परिश्रम से अल्पनिदान और अल्पलक्षणों से युक्त वायु उदीर्ण होकर क्षुद्रश्वास को उत्पन्न करता है यह देहको अत्यन्त कष्ट नहीं देता है, वह अंगवयवोंको और श्वासांक्षी तरह पीड़ित नहीं करता है, न अन्न पानों की उचित गतिको रोकता है इन्द्रियों को व्यथित नहीं करता है न किसी प्रकार की वेदना वा अन्य उपद्रवोंको उत्पन्न करता है यह श्वास साम्य होता है, तथा, बलवान् पुरुष के सवही श्वास जिनके पूर्ण लक्षण नहीं होते है साम्य होते हैं ।

इति श्वासाः समुद्दिष्टा हि काश्चैव स्वलक्षणैः  
एषां प्राणहरावर्ज्या योरास्ते ह्याशु कारिणः ॥  
भेषजैः साध्ययाप्यास्तु क्षिप्रं भिषगुपाचरे-  
त् ॥ उपेक्षिता देहयुर्हि शुष्कं कक्षमिवान-  
लाः ॥ कारणस्थानमूलक्यादेकमेव चि-  
कित्सितम् । द्वयोरपि यादृष्टमपि भिस्त-  
न्न बोधत ॥

अर्थ—इस तरह श्वास और हिचकियों के पृथक् पृथक् लक्षण वर्णन किये गये हैं इनमें से जो जो प्राणनाशक, भयंकर और क्षिप्रकारी हैं वे त्याग के योग्य होते हैं साम्य और वाय्वरोगोंकी चिकित्सा औषधियों द्वारा शीघ्र ही करनी चाहिये । जैसे अग्नि सूखे तृणोंके ढेरको शीघ्र ही जला देती है उसी तरह उपेक्षा किये हुए उत्तरोग देहको शीघ्र ही दग्ध कर देते हैं । हिचकी रोग के कारण, स्थान और मूल एक ही हैं इससे कृपियों ने दोनोंको चिकित्सा भी एक ही कही

हे, अत्र उसीका वर्णन किया जाता है ॥

ह्रिकका और श्वास में चिकित्सा  
ह्रिककाश्वासादितस्निग्धरादौस्वेदरूपाच  
रेत् । युक्तलवणतैलेननाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥  
तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःश्वभिर्विलीय  
ते । खानिमादवमायान्तिततोवातानुलो  
मता ॥ यथाद्रिकुञ्जेप्यकांशुतप्तंविष्य  
न्दतेहिमम् ॥ स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थाः  
स्वेदैर्विष्यन्दतेतथा ॥

अर्थ— ह्रिककी या श्वास से पाण्डित  
मनुष्यको प्रथम स्निग्ध करके स्वेदन देवे,  
अर्थात् प्रथम लवणयुक्त तैल से स्निग्ध कर  
के नाडी, प्रस्तर या संकर स्वेद द्वारा पसीने  
देवे, ऐसा करने से रोगी के स्रोतः समूह  
में जमाहुआ कफ गलजाता है, तब सम्पूर्ण  
स्रोत नरम पड़जायगे और वायु अनुलोम  
गामी होगी । जैसे पहाडकी गुहाओं में ज-  
माहुआ बर्फ सूर्य की तप्तकिरणोंसे पिघल  
जाता है उसीतरह शरीर के स्रोतोंमें जमा-  
हुआ कफ भी स्वेदन कर्मसे पिघलजाता है ॥

स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम ।

स्विन्नंज्ञात्वाततस्तूर्णभोजयेत्स्निग्धमोद  
नम् । मत्स्यानांशुकराणांवारसैर्दध्युत्तरेण  
वा ॥ ततःश्लेष्माणिसंष्टेवमनंपाययेत्तु  
तम् ॥ विप्पलीसैन्धवसौद्रैर्युक्तंवातावि  
रोधियत् ॥ निर्दृतेमुखमामोतिसकफेदु  
ष्टिग्रहे । स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यानिह  
तोऽनिलः ॥ लीनघ्नोपशेषःस्याचंधूपै  
र्निहरेद्बुधः । हरिद्रापत्रमैरण्डमूलंलासां  
मनःशिला ॥ सदेवदार्वेलंमांसीपिष्ट्वा

वर्त्तिप्रकल्प्यचा तांघृताकांपिवेद्भूमैर्यवै-  
र्वाघृतसंयुतैः ॥ मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतम-  
ल्लकसंयुते । कृत्वाधूमंपिवेत्छागंवालंवा  
स्नायुवागवाम् ॥

अर्थ.... स्वेदनकर्म के पश्चात् शीघ्रहीरोगी  
को स्निग्ध भोजन करावे अथवा दही डाल  
कर मछली और सूअर का मांसरस देवे ।  
ऐसा करनेसे कफकी वृद्धि होगी, कफके व-  
ढनेपर यमनकारक औषधियोंका पान करा-  
वे । इस वमन कारक औषध में पीपल, स-  
घानमक, शहत और वातविरोधी अन्यद्रव्य  
डालदेवे । वमन होनेसे विगडेहुये कफ  
निकलने पर रोगीको सुख प्रतीत होगा और  
वायु भी शुद्ध स्रोतों में बिना रुकावट के धू-  
मने लगेगा । यदि वमन करने पर भी दोष  
रहें तो निम्नलिखित धूमपान करावे । हल-  
दी, तेजपात, अरंडकी जड़, छात्र, मनसि-  
ल, देवदारु, इलायची, इन सबको पीस ब-  
ची बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करे अ-  
थवा जौ पीसकर बत्ती बनाकर घीमें भिजो  
कर धूमपान करे । अथवा मोम, राल औ-  
घी इनको पीसकर चिलम में धरकर धी-  
अथवा बकरे वा गौके बाल और स्नायुका  
धूमपान करे ।

अन्यधूमपान ।

श्वोनाकवर्द्धमानानानाडीशुष्कांकुशस-  
वा । पञ्चकंशुगुलुलोहंशलकीवाघृताप्-  
ताम् ।

अर्थ— श्वोनाक, अरंड अथवा कसाक  
सूखी नली को घी में भिजोकर धूमपान क-

रै अथवा पद्माक्ष, गुग्गुलु, लोह, और शङ्ख-  
की को पीस बत्ती बना घी में भिगोकर घूम-  
पान करे ।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्ध-  
जान् । मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिकाश्वासा  
नुपाचरेत् ॥

अर्थ....जिस श्वास और हिचकी में स्वर  
क्षीणता, अतिसार, रक्त पित्त और दाहका  
अनुबन्ध हो उस में मधुर, शीत और स्निग्ध  
क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करे ।

अस्वेद्यरोगी ।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्तारकस्वेदातिवर्ति-  
नः । क्षीणधातुबलारुक्ष्णागर्भिण्यश्चाप्य  
पित्तलाः ॥

अर्थ—पित्तरोगी, दाहरोगी, रक्तरोगी,  
स्वेदरोगी, क्षीणधातुरोगी, क्षीणबल, रुक्ष,  
गर्भिणी स्त्रियाँ और पित्तलधातुवाले ये सब  
स्वेदन कर्म के योग्य नहीं हैं ॥

कोष्णैः काममुरः कण्ठस्नेहसकैः सशर्करैः  
उत्कारिकोपनाहैश्चस्वेदयेत् मृदुभिक्षण-  
म् ॥ तिलोमामापगोधूमचूर्णैर्वीतहरैः सह ।  
स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैः सक्षीरैर्वाकृतादि  
ता ॥ नवज्वरामदोपेपुरुक्षस्वेदं विलब्ध  
नम् । समीक्ष्योत्लेखनं वापिकारयेत्लघ  
णाम्बुना ॥

अर्थ—यदि ऊपर कहे हुए रोगियों को  
स्वेदन देने की आवश्यकता हो तो उस के  
हृदय और कंठ पर चीनी मिले हुए कुष्ठगु-  
नगुन स्नेह संचन द्वारा वां मृदु उत्कारिका  
वा उपनाह द्वारा क्षणमात्र स्वेदन देवें । अ-

थवा तिल, अलसी, उरद, और गेहूँका चून  
पिसवाकर इस में वातनाशक द्रव्य मिलावे  
और कांजी एवं स्नेह डालकर अथवा दूध  
डालकर उत्कारिका बनाकर स्वेदन देवें ।  
नवीन ज्वर और आमदोष में रुक्ष स्वेदन  
वा लंघन करावै । अथवा इस के साथही  
नमक और जल पान कराके वमन करादेवें ।  
अतियोगोद्धतवापि दृष्ट्वा वातहरैर्भिषक् ।  
रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्च शमनयेत् ॥  
उदावर्तं तथा ध्यानेमातुलुक्ष्णम्लवेतसैः ।  
हिंयुपीलुविद्वैश्चात्र युक्तं स्यादनुलोमनम् ॥

अर्थ—वमन का अतियोग होनेसे जो वां  
युकी प्रवृत्तता हो तो वातनाशक मांसादि र-  
स और न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त  
ठंडे अभ्यंगों द्वारा उसे शांत करे । उदा-  
वर्त और आघ्मान के होने पर विजौरा, अ-  
म्लवेत, हींग, पीछू, विडनमक के साथ भो  
जन कराने से अनुलोमन होता है ॥

भिन्न २ अवस्थाओं में चिकित्सा-  
हिकाश्वासामर्षिको बलवान् दुर्बलोऽपरः  
कफाधिकस्तथैवैको रुक्षवह्नि लोऽपरः ।  
कफाधिके बलस्थे च वमनं स विरेचनम् ॥  
कुर्यात्पथ्याग्निने धूमले हादि शमनं ततः ।  
वातिकान् दुर्बलान् वृद्धान् वृद्धांश्चानिलसू-  
दनैः ॥ तर्पयेदेव शमनैः स्नेहयूपरसादिभिः

अर्थ—हिकका और श्वास से पीड़ित को  
ई मनुष्य तो बलवान् और कोई दुर्बल हो-  
ता है, कोई कफाधिक कोई रुक्ष और को-  
ई अत्यन्त वात से पीड़ित होता है । कफ  
की अधिकता में बलवान् रोगी को वमन

जल पीये तौहिचकी और श्वास दूर होजाते हैं । अथवा भाङ्गी और सोंठ का कल्क अथवा कालीमिरच और जवाखारका कल्क अथवा सरलकाष्ठ, चीता, आस्फोता, मूर्वा, इनका कल्क गरमजल के साथ पीने से उक्त रोग दूर होजाते हैं ॥

उत्तरोर्गोमैअन्यप्रयोग ।

मधूलिकातुगाक्षीरीशर्करापिप्पलीतया ।  
उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे  
श्वाधिपःशशमांसश्चशशकस्यचशोणितम्  
पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्ध  
जे॥मुवर्चलारसोदुग्धघृतंत्रिकडुकायुतम् ।  
शाल्योदनस्यानुपानवातपित्तानुगेपरम्  
शिरीषपुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्यवापुनः॥पिप्प  
लीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः॥मधुकं  
पिप्पलीमूलगुडोऽश्वशकृद्रसः॥घृतंक्षौद्रञ्चत  
च्छासेरौक्ष्याभिष्यन्दजेषुभम् ॥

अर्थ—श्वास में पित्त का अनुबन्ध होने पर गेहूँकी मैदा, बंशलोचन, चीनी और पीपल इनकी उत्कारिका बनाकर घी में सिद्ध करके देवे । वातानुबन्धी श्वासमें सेह का मांस, सस्से का मांस अथवा छोटी सेह का रुधिर पीपल डालकर घी में सिद्ध करके देवे । वातपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सांचौली का रस अथवा घी, दूध और त्रिकुटा डालकर शालीचावलका भातदेवे । कफपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सि-  
रस के फूलों का स्वरस पीपल और शहत मिलाकर देवे । रुक्षता और अभिष्यन्दज श्वास में मुलहठी पीपलामूल, गुड, गोबरकारस

घोडेफोलीद का रस इनको घी और शहत के साथ सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

खराश्वोप्स्वराहणामिपस्यचगजस्यच ।  
शकृद्रसंवहुकफैर्चकैकमधुनापिवेत॥क्षार-  
श्वाप्यश्वगन्धापालेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ।

अर्थ—गधा, घोडा, ऊँट, सूअर, मेंढा हाथीइनमें से किसी एक के बिछाका रस शहत डालकर कफकी अधिकतामें पानकरे अथवा असगंधके चारको शहत और घीके साथचाटे कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग मयूरपादनालंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ श्वाविज्जाण्डकचापाणारोमाणिकुररस्य वा । शृङ्गयेकद्विशफानांवाचर्मास्थीनि सुरांस्तथा ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वाक्षौद्रघृतान्चितान् । चूर्णलीह्वाज येत्कासंहिकांश्वासञ्चदारुणम् ॥ एतोहिकफसरुद्धगतिप्राणमकोपजाः । तस्मात्तन्मार्गधुद्वयैलेहायोज्यानिनिष्कपे

अर्थ—मोरके पंजे वा नली वा सेहके काटे अथवा सेह, जाण्डक, नीलकंठ वा कुरर के रोम अथवा सींग वाले एक या दो खुर के पशुओंके चर्म, हथी इनको एक एक या सब को एक साथ जलाकर इन की भस्मको शहत और घीके साथ चाटे तौ खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूरहो जाते हैं । कफसे प्राण वायुका मार्ग रुक-  
जाने पर जब वह कुपित होतीहै तब ये प्रयोग हितकारी होतेहैं, प्राणवायु के मार्ग की शुद्धिके लिये इनका सेवन हित है, यदि

कफनहो तो इनका सेवन कदापिन करे ।  
सुतरांमार्गसंरोधाद्वाहिर्जलमुदीर्यते ।  
यथातथानिलस्तस्यमार्गशुद्धीयतेतना ॥

अर्थ—जैसे नदियों का बाहर का मार्ग रुकजाने से बीच में रुकाहुआ जल बढ़ता चला जाता है, उसी तरह वायुका मार्ग रुकने पर वह भी बढ़ती चली जाती है इस लिये उसके मार्गकी शुद्धि यत्नपूर्वक करना चाहिये तमक श्वास में प्रयोग ।

शटीचौरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तपुष्कराहयम्  
सरसंतामलवलेलापिप्लवगुरुनागरम् ।  
वालकञ्चसमचूर्णकृत्वाष्टगुणशर्करम् ।  
सर्वधातमकेश्वासेहिकायाञ्चमयोजयेत् ॥

अर्थ—कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी, मांथा, पुहकरमूल, या कूठ, तुलसी भूयंवाला, छोटी इलायची, अगर, पापल, नेत्रवाला इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और अठगुनी चीनी मिलाकर तमकश्वास और हिक्का में प्रयोग करे ॥

छर्दनंकासमानस्यस्वरभेदेप्रताम्यतः ।  
घातश्लेष्महर्ष्योऽज्यतमकेतुविरेचनम् ॥

अर्थ—खांसी, स्वरभेद की अधिकता में घातकफ नाशक द्रव्यों के द्वारा क्षमन करावै और तमकश्वास में उन्ही औषधियों से सिद्ध विरेचन देवै ।

मुक्तादि चूर्ण ।

मुक्तामवालवैदूर्यशंखस्फटिकमञ्जनम् ।  
ससारगन्धकाचार्कमूक्षैलालवणद्वयम् ॥  
तामायोरजसीरूप्यसौगन्धिकमेववा ।  
जातीफलशणाद्वीजमशामार्गश्चतण्डुलाः

एपांपाणितलाच्चूर्णात्तुल्यानांक्षौद्रसर्पि  
पा । हिक्कांश्वासञ्चकासञ्चलीढमाशुनि  
यच्छति । अञ्जनात्तिमिरंकाचनीलिकं  
पुष्पकंतमः ॥ पैल्लंकण्डूमभिष्यन्दमन्द  
ञ्चतत्प्रणाशयेत् ॥

अर्थ—मोती, मूंगा, वैदूर्यमणि, शंख स्फटिक [ विल्वौर ], रसौत, काचमणि, गन्धक आकफीजड, छोटी इलायची, दोनों नमकं ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, जायफल, सन के बीज, आंगा के बीज, ॥ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनवै ॥ फिर दो तोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै इसके सेवन करने से हिचकी, श्वास, खांसी शीघ्र ही दूर होजाते हैं तथा इसी चूर्ण को आंखोंमें आंजने से तिमिर, काच, नीउक, पुळीतम, पैल्ल, कंडू, अभिष्यन्द, और मन्दता दूर होजाती है

अन्यप्रयोग ।

शटीपुष्करमूलानांचूर्णामालकस्यच ।  
मधुनासंयुतलेह्यंचूर्णवायोरजोमयम् ॥  
सशर्करांतामलकांश्चाङ्गोऽथसकृद्रसम् ।  
तुल्यंशुडंनगरश्चाशयेत्नाययेत्तथा ॥  
लघुनस्यपलाण्डोर्वारसंगृह्णनकस्यवा ।  
नाययेच्चन्दनंवापिनारीक्षीरेणसंयुतम् ॥  
सुखोष्णंघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् ।  
नाययेन्मसिकाविष्टमलक्तकरसेनवा ॥  
स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासार्पणमधुरकैरपि ।  
पतिंनस्तोनिषिक्तंवासद्योहिक्कानियच्छति

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, आवला, इनका चूर्ण अथवा लोहभस्म को शहत के साथ चाटै । अथवा चीनी, भूयंवाला,



दाख, गौ और घोंडे के बिछा का रस तथा गुड और सोंठ समान भाग लेकर खानेको देवें वा सुंघावें । अथवा लहसन, प्याज वा गृज्जनका रस नस्य में देवें । अथवा चन्दन और स्त्रीके दूधकी नस्य देवें । अथवा इर्षदुग्ण घृत मंड में सेंधा नमक मिलाकर नस्यदेवें । अथवा मक्खी का मूत्र और महावरके रसकी नस्यदेवें, अथवा मक्खी के बिछाको स्त्रीके दूधमें मिलाकर नस्य देवें । अथवा मधुरगण से सिद्ध घृत को पान कराने, वा नस्य देने से शीघ्रही हिच की दूर होजाती है ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीमधुयुक्तौ चारुसौधात्रीकपित्थयोः लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्च शकृद्रसान् ॥ लिप्तात्कोलमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा । शीताम्बुसेकः सहसात्रासो रमापनं भयम् ॥ क्रोधहर्षाप्रियोद्देगा हिक्का प्रच्यवनामताः । हिक्काश्वासविकाराणां निदानं यत्प्रकीर्तितम् ॥ वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्विकाश्यासाविकारीभिः ।

अर्थ—आमलेके रस वा कैथके रस में पीपल और शहत मिलाकर पान करें ॥ अथवा खील, लाख, शहत और घोंडे की छींदके रसका सेवन करें । अथवा बेर, शहत, दाख, पीपल और सोंठका सेवन करें । शीतल जलका तरडा, सहसा त्रास दिखाना, भूलेंग डालना, भय दिखाना, क्रोध करना, हर्षकराना, प्यारों का उद्देग कराना इन सब से हिक्का दूर होदी है ॥ हिक्का और श्वास ये

दोनों रोग जिन प्रकारोंसे होते हैं उनका त्याग देना उन हिक्का और श्वासविकारियोंके छिपे हित है जो आरोग्यकी इच्छा करते हैं ।

उत्तरोर्गोंमें घृतविधान ।

हिक्काश्वासानुबन्धाये भृत्कोरः कण्ठतालुकाः ॥ मकृत्यारुक्षदेहाश्च सर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ।

अर्थ—जिन मनुष्यों के हिचकी और श्वास के अनुबन्धमें वक्षःस्थल, कंठ और तालु सूखगये हैं और जिनकी देह स्वाभाविक रूक्ष है उनको घृतदेवें ।

दशमूलादिघृत ।

दशमूलरसे सर्पिर्दधि मण्डे च साधयेत् ॥ कृष्णासौवर्चलक्षारवयः स्याद्दिगुचोरकैः । कायस्थयाचसं सिद्धं कासश्वासौ प्रणाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूलके काथ और दधिमंड में पीपल, संचलनमक, जवाखार, हरड़, हींग और चोरक डालकर घृत पाक करें । अथवा दशमूलके काथमें छोटी इलायची डालकर घृत सिद्ध करें । इसके पानसे हिक्का और श्वास नष्ट होजाते हैं ।

तेजोवत्यादिघृत ।

तेजोवत्यभयाकुण्डपिप्पलीकदुरोहिणी । भूतकीपौष्करमूलपलाशाश्चित्रकः शठी ॥ सौवर्चलतामलकी सैन्धवं विल्वपेशिका । तालीसपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मिताः ॥ हिं गुपादेर्घृतप्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ एतद्यथावल्पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥ शान्तिनालाशौ ग्रहणी घृतपार्श्वरुज एव वा ।

अर्थ—तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपल, कु-

टकी, अजवायन, पुष्करमूल, टाक, चीतेकी जड़, कचूर, संचलनमक, भूयआंवला, सेंधानमक, नेलगिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती, वच ये सब दो १ तोले लेवै फिर इनका काथ करके चौगुने काथमें एक प्रस्थघी पकावै इसमें भुनीहुई हींग आधा तोला डालदेवै । इस घृतको बलानुसार पीनेसे हिका और श्वास दूर होजातेहैं । शाखावात, अर्श, ग्रहणीरोग, इद्रोग और पार्श्ववेदना ये भी सब दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपक्षकैः॥  
मस्त्रिपुलैश्चकर्पाशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्धितः  
जीवनीयोपसिद्धवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम्॥  
द्रुपणं चाधिकंवापि विबेदूषघृतंतथा ॥  
यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णवातानुलेप-  
नम् । भेषजं पानमभ्रंवाताद्धितं श्वासदिक्किने  
वातकृद्धाकफहरं कफकृद्धानिलापहम्॥  
कार्यनैकान्तिकं ताभ्यामायःश्रेयोऽनिला  
पहम्॥

अर्थ—मनसिल, राख, लाख, हलदी, पन्नाख, मजीठ और छोटी इलायची ये सब एक १ कर्प लेकर इनके चतुर्गुण काथ में घृत पाक करके सेवन करे । यह घृत अनुभव, कियाहुआहोअथवा जीवनीय गणमें सिद्ध किया हुआ घृत सहित मिलाकर सेवन करे अथवा वासाघृतमें त्रिकुटा डालकर सेवन करे जो जो द्रव्य कफ वातनाशक, उष्ण और वातानुलोमाहैं वे सब खाने वा पीनेमें श्वास वा हिचकी रोगबाले को देवे ।

जो द्रव्य वातकर्ता और कफनाशकहैं अथवा जो कफकर्ता और वातनाशकहैं । ऐसे द्रव्यों का सेवन ठीक नहींहै इनसे तो केवल वात नाशक द्रव्यहो उक्तरोमों में हितहैं ॥

उक्तरोमोंमें संशमनद्रव्योंको विधान ।  
सर्वोपायवृहणोत्तमः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ॥  
नास्त्यर्थं शमनोपायो भृशः शक्यश्च कर्पणे ।  
तस्मात् शुद्धान् शुद्धाश्च शमनैर्न घृहेणरपि हि  
क्काश्वासादितान् जन्तून् प्रायशः समुपाच  
रेदति ॥

अर्थ— इन संपूर्ण रोगोंमें वृहणकर्ता द्रव्य प्रायः अल्पशक्य होतेहैं, संशमनकर्ता द्रव्य अत्यन्त शक्य नहीं होते और कर्पण अत्यन्त शक्य होते हैं, अतएव हिक्काश्वास रोगी संशोधन द्रव्योंसे शुद्ध हुये हों वा न हुयेहों उनको शमनकर्ता और वृहणकर्ता औषधियोंका सेवन प्रायः करावै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन  
दुर्जयत्वे समुत्पत्तौ क्रियै कत्वे च कारणम् ॥  
लिंगपथ्यञ्चाहिकानां श्वासा नां च हृद्-

क्षितम् ॥

अर्थ— इस अध्याय में हिका और श्वासकी दुर्जयता, समानोत्पत्ति, समान चिकित्सा, समान कारण, लक्षण और पथ्य वर्णन किये गये हैं ।

इति त्रीं भाषाटीकञ्चितायां अभिनवेदाधिराचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां-  
चिकित्सितस्थाने हिक्काश्वासाचिकि-  
त्सितानामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## द्वाविंशोऽध्यायः॥

अथातःकासचिकित्सितं व्याख्यास्याम  
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तरं भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम कासचिकित्सितनामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ।

तपसायज्ञाश्रित्याश्रियाचपरयान्वितः॥  
आत्रेयःकासशान्त्यर्थसिद्धमाहचिकित्सि  
तम् ।

अर्थ—तप, यज्ञ, वृत्ति, और आश्रि के  
कारण सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुए आत्रेय  
ऋषि खांसी की निवृत्ति के लिये अनुभूत  
चिकित्सा का वर्णन करने लगे ।

कास के भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोवैचक्षतजःक्षयजस्तथा॥  
पञ्चैतेऽस्युत्पत्तिर्वाकासां वर्द्धमानाःक्षयप्रदाः ।

अर्थ—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज  
और क्षयज इन पांच प्रकारकी खांसी होती  
है, क्रम २ से बढ़कर ये खांसी शरीर को  
क्षीण करदेती है ।

खांसी के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ॥ क-  
ण्ठे कण्ठश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ।

अर्थ—गले और मुखमें शूक भरा हुआ  
मादम होना, कंठमें खुजली, तथा भुक्त प-  
दार्थका अवरोध ये सब कास के पूर्वरूप हैं  
कासका लक्षण ।

अथःप्रतिहतोवायुरूर्ध्वसांतःसमाश्रितः॥  
उदानभादभापन्नःकण्ठेऽसक्तस्तथीरासि ।

आचिपन्यनिरसःस्वानिसर्वाणिप्रतिपूर-

यन् ॥ आभञ्जन्नाक्षिपन्द्दहं हनुमः ये तथा  
क्षिणी । नेत्रेऽपृष्ठमुरः पाश्वानिर्भज्यस्तन्व-  
यंस्ततः ॥ शुष्को वासकफोवापिकसना  
तृकास उच्यते ॥

अर्थ—नाचिसे रूकी हुई वायु ऊपर की  
उठकर ऊपरवाले स्रोतों का आश्रय लेकर  
उदानवायु से मिलकर जत्र कंठ और वक्षः  
स्थल में प्रवृत्त होजाती है, तब सिर के  
सम्पूर्ण स्रोतों को भरकर सम्पूर्ण देह को  
विकल करदेती है, तथा हनु, मन्या और  
आंखोंको विचलित करदेती है । तदनन्तर  
वही वायु दोनों नेत्र, पीठ, वक्षस्थल और  
पसलियों को तोड़कर स्तम्भित करदेती है।  
सूखी वा कफके साथ खुल २ शब्द करने  
से खांसी कहलाती है ।

कासमें विषमशब्दका हेतु ।

प्रतिघातविशेषणतस्य वायोः सरंहसः ॥  
वेदनाशब्दवैषम्यंकासानामुपजायते ॥

अर्थ—नाचिसे रुकने के कारण वायु के  
ऊपर जानेमें अनेक प्रकारकी वेदना होती है  
उसी के अनुसार खांसीमें विषम शब्द होते हैं।

वातज कास का निदान ॥

रूक्षशीतकृपायाल्पप्रमितानशनस्त्रियः ॥  
वेगधारणमायासोवातकासप्रवर्तकाः ॥

अर्थ—रूखे, कसांले और शीतल  
पदार्थों के सेवनसे, अल्पाहार करनेसे, प्रमित  
भोजनसे वा थिलकुल न खाने से, खांसि सर्ग  
से, वेग धारणसे, परिश्रम से वातज खांसी  
की प्रवृत्ति होती है ।

वातज खांसी के लक्षण ।

हृत्पाश्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम् ॥

शुष्कोरः कण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नः प्रताम्य  
तः । निर्घोषीस्तनतोदन्यदौर्वल्यक्षयमो  
हकृत् ॥ शुष्ककासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मु-  
क्त्वा लपतां ज्ञेयम् । स्निग्धाम्ललवणो  
ष्णैश्च भुक्तमात्रेण शाम्यति ॥ ऊर्ध्ववातस्य  
जीर्णोऽन्नेवैगवान्मास्तो भवेत् ।

अर्थ—हृदय, पसली, वक्षःस्थल और  
शिरमें शुष्क होता है, स्वरभंग होजाता है,  
वक्षःस्थल, कंठ और मुखमें शुष्कता होती  
है, लोम खड़े होजाते हैं, आंखों के साम्हने  
अंधेरा छाजाता है शब्द बन्द होजाता है,  
दीनता होती है, दुर्बलता, क्षीणता और  
मोह होते हैं । सूखी, खांसी सूखा कफ बड़ी  
कठिनतासे थोड़ासा निकलता है । चिकना  
खट्टा, नमकीन और उष्ण भोजन करनेही  
से शान्ति होजाती है । अन्नके पचनेपर  
शायु फिर बलवान् होजाती है ॥

पित्तजकास का निदान ।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवन-  
म् ॥ पित्तकासकरं क्रोधः सन्तापश्चाग्नि  
सूर्यजः ॥

अर्थ—कटु, ईषदुष्ण, विदाहो, खड़े  
और क्षारादिके अत्यन्त सेवन से, क्रोधसे,  
अग्नि वा सूर्य के सन्तापसे पित्तजकास उ-  
त्पन्न होता है ।

पित्तजकासके लक्षण ॥

पीतनिष्ठीवनाक्षतं तिकास्यत्वं स्वराम-  
यः । उरोधूमायनं दुष्णादाहोमोहोरुचि-  
भ्रमः ॥ प्रततं कासमानं श्वयोर्तीषीव च  
श्ववि । श्लेष्माणं पित्तसंसृष्टं निष्ठीवातिच-  
पैतिके ॥

अर्थ—कफका पीलापन, नेत्रों में पीला-  
पन, मुखमें कड़वापन, स्वरभंग, हृदय में  
धूआसा घुमडना, तृष्णा, दाह, मोह, अरुचि  
भ्रम, अत्यन्त खांसने के समय आंखों के  
सामने तारोंकीसी चमक दिखाई देना तथा  
पित्त मिलाहुआ कफ निकलना ये सब पित्त-  
जकास के लक्षण हैं ।

कफजकासके हेतु ।

शुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः  
वृद्धः श्लेष्मानिलं रुद्धाकफकासं करोति हि

अर्थ—भारी, अभिष्यन्दी, मधुर और  
स्निग्ध द्रव्यों के सेवन से, निद्रा और वि-  
चेष्टासे, बड़ाहुआ कफ वायुको रोककर क-  
फकी खांसी उत्पन्न करता है ।

कफजकास के लक्षण ।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसो बलेशो रवैः  
लोमहर्षास्यमाधुर्य्यबलेदसंसर्दनैर्युतम् ।  
बहलं मधुरां स्निग्धं निष्ठीवातिघनं कफम् ।  
कासमानोऽतिरुक्क्षः सम्पूर्णो भिषगन्यते ॥

अर्थ—मन्दाग्नि, अरुचि, घमन, पीनस,  
क्लेश, भारापन, लोमहर्ष, मुखमें मीठापन,  
क्लेश, अंगग्लानि, अत्यन्त मधुर, स्निग्ध  
और गाढ़ा कफ निकलना तथा खांसते  
समय अत्यन्त वेदना होना और वक्षःस्थल  
कफ से भराहुआ मादुम होना ये कफजका-  
स के लक्षण हैं ।

क्षतजकास का हेतु ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाध्वगजविग्रहैः ।  
रुसस्पर्शसतं वायुः गृहीत्वा कासमायहेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करने से; वीर्य

होने से, मार्ग चलने से, युद्ध करने से घोड़े हाथियों को रोकने से रक्ष व्यक्ति के वक्षःस्थल में घाव होजाता है इस से वायु का संसर्ग होने से क्षतजकास उत्पन्न होता है

**क्षयजकासके लक्षण ।**

सपूर्वकामतेथुष्कततःप्रीवेत्सशोणित्रम् ।  
रुज्यमानेनकण्ठेनविरुग्नेनैवचोरसा ॥ मू  
चीभिरिवतीक्षणाभिस्तुद्यमानेनशूलिना  
दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥  
पर्वभेदंज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥

पारावतश्चाकूजनकासवेगात्क्षतोद्भवात्  
अर्थ—इस रोग में प्रथम सूखी खांसी  
उठती है फिर थूक के साथ में रुधिरआने  
लगता है, कंठ और वक्षःस्थल में अत्यन्त  
वेदना होने लगती है, पैनी सुई के चुभने  
कासा शूल होने लगता है, वक्ष स्थल के  
हाथ लगाने में दर्द होता है, फटने कीसी  
पीडा तथा ताप होता है । जोड़ों में दर्द  
ज्वर, श्वास, तृष्णा, और स्वरभंगता ये  
उपद्रव भी होते हैं । इस क्षतजकास में  
कंठ के भीतर कबूतरके कूजने के समान  
शब्द होता है ।

**क्षयजकासका हेतु ।**

विषमासात्म्यभोज्यातिज्यवायाद्देगनि  
प्रहात् । घृणिनांशोचतानृणांन्यापन्नेशौ  
त्रयोमलाः । कुपिताःक्षयजकासंक्षुर्युर्देहक्ष-  
यमदम्

अर्थ....विषम भोजन, असात्म्य भोजन  
अति स्त्री संसर्ग मद्यग्रादि वेगनिप्रहादि  
कारणों से, तृष्णा से, शोचसे, अग्नि के मन्द

होने से तीनों दोष कुपित होकर देह को  
क्षीण करने वाली क्षयज खांसी को उत्पन्न  
करते हैं ।

**क्षयजकासके लक्षण ॥**

दुर्गन्धहरितरक्तंष्टीवित्पूयोमपंकफमस्थानादुत्कासमानश्चहृदयंमन्यतेच्युतम् । अ  
कस्मादुष्णशीतात्तोविहाशीदुर्वलःकृशः ॥  
स्निग्धाच्छुस्ववर्णत्वक्श्रमिदशनलोचनं  
पाणिपादतलैःश्लक्ष्णैःसततासूयकोघृणी  
ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्यपार्श्वरूक्षपीनसोऽ  
रुचिः । स्वरभेदोनिमित्तञ्चभिन्नंवृत्तपुरी  
पता ॥ इत्येपक्षयजःकासःक्षीणानादिहेतु  
शनः ॥

अर्थ—इस खांसीमें दुर्गन्धयुक्त हरा वा  
लाल राधके समान कफ निकलता है, खांस-  
नेमें ऐसा माछम होने लगता है कि हृदय  
अपने स्थानसे जुदा हुआ जाता है । रोगीको  
अकस्मात् कभी जाड़ा और कभी गर्मी ल-  
गने लगती है, भोजन बहुत करता है इस  
पर भी दुर्वल और कृश रहता है । मुखके  
वर्ण और त्वचामें स्निग्धता और स्वच्छता  
होती है, दांत और नेत्रोंमें चमक होती है ।  
हथेली और पगंतली में चिकनापन होता है।  
असूयकता और घृणा उत्पन्न होती है, ज्वर,  
मिश्राकृति, पार्श्व वेदना, पीनस और अरुचि  
होती है । मल फटजाता है बिनाही निमित्त  
स्वरभंग होजाता है, यह क्षीण पुरुषोंकी देह  
को नाश करनेवाली क्षयजकास होती है।  
**कासकासाध्यासाध्यवर्णनं ।**  
याप्पोवलवतांवास्याद्याप्यस्त्वेवक्षतो

स्थितः॥कदाचिदपिसिद्ध्येतामेतौपादगु  
णान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वो  
याप्यःप्रकीर्तितः । त्रीन्साध्यान्साधयेत्  
पूर्वान्पथ्यैर्याप्याश्रयापयेत् । चिकित्  
सापतऊर्ध्वन्तुगृण्कासनिवार्हिणीम् ॥

अर्थ—बलवान् रोगीके क्षतज और  
क्षयज कास याप्य होजातीहै और यदि  
चिकित्साके चारों पाद ठीक हों तो ये दोनों  
साध्य भी हो जाताहै, वृद्ध मनुष्योंकी  
जरा कालीन खांसी याप्यही होती है । प-  
हिळी तीन प्रकार की साध्य खांसियों को  
दूर करने का उपाय करै दूसरी दो याप्य  
हैं इन को पथ्यद्वारा याप्य करै । अब कास  
नाशक चिकित्साका वर्णन करते हैं उसे  
श्रवण करो ।

वातकास में चिकित्साक्रम ।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत् ।  
सर्पिर्भविस्ताभिःपेयायूपक्षीररसादिभिः ।  
वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यधूमैर्लहैश्चयुक्तैः ।  
अभ्यङ्गैःपरिपेकैश्चास्निग्धैःस्वेदैश्चयुद्धि  
मान् । वस्तिभिर्वृद्धविद्ध्वातंशुष्कोर्ध्वञ्चो  
र्ध्वभक्तिकैः।धृतैःसपित्तसकफजयेत्स्नेह-  
विरेचनः ॥

अर्थ—रूक्ष व्यक्ति की वातज खांसीमें  
प्रथम स्नेहन करै, पीछे घृत, वस्ति, पेया  
यूप, क्षीर, मांसरसादि द्वारा चिकित्सा करै ।  
वातनाशक द्रव्यों से संस्कार किये हुए स्ने-  
हयुक्त धूमपान और अवलेहों का प्रयोग क-  
रै, तथा अभ्यंग, परिपेक और स्निग्ध स्वे-  
दन भी करै । विष्टा और अधोवायु के व-

न्द होने पर वस्ति देवै और ऊर्ध्वभाग के  
शुष्क होने पर भोजनोत्तर घृतपान करावै  
तथा इस खांसी में कफ वा पित्तका संसर्ग  
भी हो तो स्नेह विरेचन देवै ।

कण्टकारी घृत ।

कण्टकारीगुद्दीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे  
प्रस्थःसिद्धोऽगृताद्वातकासनुद्धिहृदीपनः

अर्थ....कटेरी और गिलोय तीस तीस  
पल लेकर इनका अठगुने जल में काथ करै  
चौथाई शेष रहने पर इस को छानकर इस  
में एक प्रस्थ घृत पकावै, इस के सेवन से  
वातज कास नष्ट होजातीहै और अग्नि  
बढ़जाती है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलेचव्यचित्रकनांगरैः॥

धान्यपाठावचारास्नायष्ट्याहक्षारहिंशु-  
भिः । कोलमात्रैर्धृतमस्यादशमूलैरसादके  
सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयामण्डापिवेदनु ॥

तच्छासकामहृत्पाश्वग्रहणीदोपगुल्मनुत् ।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता  
सोंठ धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलहठी,  
जवाखार और हींग इनका चूर्ण करले फिर  
दशमूलके एक आठक काथमें एक प्रस्थ  
घी और उक्त चूर्ण डालकर सिद्ध करे इस-  
घृत में से प्रतिदिन एक पल सेवन करके  
ऊपरसे पेया वा मंड पीवै, यह घृत स्वास,  
खांसी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, ग्रहणीदोप और  
गुल्मरोगोंको दूर कर देताहै ॥

त्र्युषणाद्यघृत ।

त्र्युषणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्रमर्याणिपरूपकम्

को पांच आदक जलमें पकावै, जव जो सीज जाय और काथ भी चौथाई रहजाय तब उतार कर छानले, फिर इस काथमें एक तुला गुड, एक कुडव घी, एक कुडव तेल, एक कुडव पीपलीका चूर्ण डाले और पूर्वोक्त हरडों की गुठली निकालकर उसमें डाले जव ये पक जाय तब उतारले ठंडा होने पर इस में एक कुडव शहत डालकर रख छोडै । इसमें से थोडा सा अयलेह और दो हरड प्रति दिन सेवन करै । इसके सेवन करने से हुरी और वालों का गिरना बन्द होजाता है वर्ण, आयु और बल बढ़ताहै, पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयी, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, अर्श, प्रहणी रोग, हृद्रोग, अरुचि और पीनस दूर होजातेहैं । यह उत्तम रसायन अगस्तजीने वर्णनकी है । ( इसी में से कुछ परिवर्तन करके यूनानी हकीम मुरब्बे की हरड बनातेहैं ) ।

अन्यप्रयोग ।

सैन्धवपिप्पलीभार्गीशृङ्गवेरंदुरालभाम्  
दाडिमाम्लेनकोष्णेनभार्गीनांगरमम्बुना  
पिबेत्खीदिरसारंघामदिरादधिमस्तुभिः ।  
अथवापिप्पलीकल्कपृतभृष्टससैन्धवम् ॥  
अर्थ—सैधानमक, पीपल, भांडगी, अदरक जवासा, इनके चूर्णको अनारके रसके साथ पीवै अथवा भांडगी और सोंटके चूर्ण को गरमजलके साथ फांकै अथवा खैर-सार को मदिरा या दहीके तोडके साथ पीवै अथवा पीसी हुई पीपल को घीमें भून कर सैधानमक डालकर सेवन करै ।

धूमपान विधि ।

शिरसःसदनेसावेनासायाहृदिताम्यनि  
कांसप्रतिश्यायरसेधूमवैद्यःप्रयोजयेत् ॥  
दशांगुलोंन्मितानाडीअथवाष्टांगुलोंन्मि  
ताम् । शरावसंपुटछिद्रकृत्वाजिह्वावि  
चक्षणः ॥ वैरेचनमुखेनैवकासवान्धूम  
मापिवेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तमुखेनैवोद्वमेत्  
पुनः ॥ सद्यस्यतैक्षण्याद्विक्षिप्यश्रेष्ठा  
णमुरसिस्थितम् ॥ निष्कृप्यशमयेत्कांसं  
वातश्लेष्मोभयोद्भवम् ॥

अर्थ—खांसी और जुकाममें जो शिरमें वेदना, नासास्त्राव और हृदय में वेदना होतीहो तो धूमपान करावै । आठ वा दस अंगुलकी एक नली लेकर एक शराव सम्पुट के छिद्र में लगा देवै यह नली टेढ़ी होनी चाहिये ( ऐसा बहुधा हुकों में देखने में आता है ) इस शराव सम्पुट अर्थात् चिलम में वातनाशक द्रव्योंको धरकर ऊपर से आगि रखदे और पूर्वोक्त नली को मुंह में लगाकर धूँआं खींचै । जव यह धूँआं वक्षःस्थल के भीतर पहुंच जाय तब इसे मुख के रस्ते सेही बाहर निकाल देवै । इस धूँए की तेजी से छाती में जमाहुआ कफ खिचकर बाहर निकलजाता है । इस रीति से वातकफजन्य खांसी दूर होजाती है ॥

धूमपान का प्रयोग और गुण ।

मनःशिलालयपृथ्वाहमांसीमुस्तेगुदःपिबेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंमुखोष्णंसगुहंपिबेत् ॥ एषकासानुपृथग्दोषसन्निपातोद्भवान्जयेत् । मसद्यपर्यंतसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥

अर्थ—मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामोसी, मोथा और गौदी इन को पूर्वोक्त रीति से पीचें ऊपर से गुनगुने दूध में गुड़ डालकर पीचें । यह घूमपान पृथक् २ दोष तथा सन्निपात से उत्पन्न हुई खांसी को दूर कर देता है तथा जो अन्य सैंकड़ों प्रयोगों से भी खांसी दूर नहीं हुई है वह इससे दूर होजाती है ।

धूमपानके अन्यप्रयोग ।

प्रपुण्डरीकमधुकंशाङ्गणालमनःशिलाम् ।  
मरिचपिप्पलीद्राक्षामेलांशुरसमञ्जरीम् ॥  
कृत्वावर्त्तिपिबेद्धूमक्षौमश्चैलानुवर्त्तिताम् ।  
घृताक्तामनुचक्षीरगुण्डादेकमथापिवा ॥  
मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः ।  
वंशलोचनशैवालक्षौमलक्तकरोहिषैः ॥  
पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते ।  
आलमनःशिलातद्वत्पिप्पलीनागरैःसह  
त्वर्गुण्डीवृहत्स्यौद्रेतालमूलमनःशिला ।  
कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी, शार्ङ्ग (घंटाखा), हरिताल, मनसिल, कालीमिरच, पीपल, दाख, इलायची, तुलसीकी मंजरी, इन सबको पीसकर बत्तीसीबना एक रेशमी कपड़ेमें लपेटे फिर इसे घीमें भिगोकर घूम पानकरे । पीछे दूध वा गुड़ का शरवत पीचें ॥ अथवा मनसिल, इलायची, कालीमिरच, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, शैवाल, अलसी, लाख, रोहिणितुण इनसबकी पूर्वोक्त रीतिसेबत्ती बनाकर घूमपान करे । तथा पूर्वोक्त अनुपानका सेवनभी करे ।

अथवा हरिताल, मनसिल, पीपल और सोंठकी बत्ती बनाकर पूर्वोक्त रीतिसे घूमपान करे । अथवा गौदाकी छाल, दोनोंकटेरी, तालमूली, मनसिल, विनौल और असंगंध का भी पूर्वोक्त रीति से घूमपान करने पर खांसी दूर होजातीहै ॥

यूपादिप्रयोग ।

ग्राम्यानूपौदकैःशालियवगोधूमपट्टिकान्  
रसैर्मांसात्मगुप्तानांयूपैर्वादापयोद्धतान् ॥  
यवानीपिप्पलीविल्वमध्यनागरचित्रकैः ।  
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशटिपौष्करैः  
स्निग्धाम्ललवणांसिद्रापेयामनिलजपि-  
वेत् । कटीवृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिका  
प्रणाशनीम् ॥ दशमूलरसेतद्वत्पञ्चको  
लगुडान्विताम् । पिबेत्समतिलापेयांक्षी  
रेवापिससैन्धवाम् ॥ मत्स्यकौक्कुटवा  
राहैरामिपैर्वाघृतान्वितैः । सिद्धांससैन्ध  
वापेयांवातकासीपिबेन्नरः ॥ वास्तुकवा  
यसीशाकमूलकंमुनिपण्णकम् । स्नेहंस्तै  
लादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥  
दध्धारनालाम्लफलमसन्नापानमेवच ।  
शस्यतेवातकासेतुस्वादम्ललवणानिच ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप, और औदक मांस रसोंके साथ अथवा केंच के बीजके यूप के साथ शालीचांवल, जौ, गेहूं, और साठी चांवल देवे । अजवायन, पीपल, बेलगिरी सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, पृष्णपर्णी, पलास, कचूर, पौष्कर । इन सबको समान भाग लेकर इनका क्वाथ करे इस क्वाथमें चिकनाई, खटाई और नमक डालकर पेया



सेवन करावै । दोनों काकोली दोनों कटे-  
री, मेदा, महा मेदा, अहसा और सोंठ इ-  
नके साथ पित्त कास में मांसरस, यूप वा  
दूध बनाकर देवै । शरादि पंचमूल, पीपल  
और दाख इनके कषाय के साथ औटाया  
हुआ दूध शहत और चीनी डालकर  
पान करावै ॥

स्थिरादि दूध वा घृत

स्थिरामितापृश्निपर्णीश्रावणावृहत्तयुगेः।  
जीवकर्मभकाकोलीतामलक्यदिंजीरकैः॥  
घृतपयःपिवेत्कासीज्वरीदाहीक्षतक्षयी।  
तज्ज्वामाधयेत्सर्पिःसक्षीरेक्षुरसंभिपक्व॥

अर्थ—शालिपर्णी, चीनी, पृष्णिपर्णी,  
श्रावणी, महाश्रावणी, कटेरी, बड़ी कटेरी,  
जीवक, ऋपभक, काकोली, भूय्याबला, अद्वि  
जीरा इन के साथ औटाया हुआ दूध पीने  
से खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय दूर  
हो जाते हैं अथवा इन्हीं द्रव्यों के साथ दूध  
और ईश्वकारस डालकर सिद्ध किया हुआ घी  
हितकारी होता है ।

जीवकागैर्मधुरकैःफलैश्चाभिषुकादिभिः।  
फलकैस्त्रिकार्षिकैःसिद्धेपूतशोषेचसर्पिषि॥  
शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वर्क्षीर्यामरिच  
स्यच । शृङ्गाटकस्यचावाप्यसौद्रगर्भान्  
पलोन्मितान् ॥ गुडान्गोधूमचूर्णेनकृत्वा  
खादेद्विनाशनः । शृङ्गादोपशोषेपुका  
सक्षीणक्षतेपुच ॥ शर्करानांगरोदीच्यं  
कण्टकरीशर्वांसमाम् । पिष्ट्वारसंपिवे  
त्पूतवस्त्रेणघृतमुच्छिन्नम् ॥ माहिष्यजा  
विगोक्षीरपात्रीफलरसैःसप्तैः ॥ सर्पिः

सिद्धपिवेद्युक्त्यापित्तकासनिवर्हणम्॥

अर्थ—जीवकादि मधुरगणोक्त दस द्रव्य,  
मधुरफल तथा पिस्तादि फल ये तीन तीन  
कर्प लेकर इनका काथ करै और चौथाई  
शेष रहनेपर घृत सिद्ध करै और इसमें  
शर्करा, पीपल, वंशलोचन, कालीमिरच,  
सिंचाडा, इन सब को समानभाग लेकर उक्त  
घीमें डालदे और इस घीमें गेहूँका चून  
सेककर एक एक पलके ऐसे मोदक बनावै  
जिनके वाँच में शहत भराहो । इसके सेव-  
नसे शुक्रदोष रक्तदोष, शोष, खांसी, और  
क्षीण क्षतरोग शान्त होजाते हैं ।

सोंठ, नेत्रवाला कटेरी और कचूर समान  
भाग लेके पीसकर रस निकालले इसमें  
चीनी और घृत डालकर सेवन करै । भैंस  
का दूध, बकरीका दूध, भेडका दूध, गौका  
दूध, आंवलेका रस, इन सबको समानभाग  
लेकर इनमें सिद्ध किया हुआ घी युक्तिपूर्वक  
सेवन करनेसे पित्तकी खांसी दूर होजातीहै।

कफजकासमेंचिकित्साक्रम ।

वलिनंबमनैरदादौशोधयेत्कफकासिनम्।  
यवाक्षैःकटुह्रस्वोष्णैःकफघ्नैश्चाप्युपाच  
रेत् ॥ पिप्पलीचारिकैर्यूपैःकौलत्थंमूलक  
स्यचालघून्मज्जानिभुञ्जीतरसैर्वाकटुका  
न्वितैःधान्वैवलयरसैःस्नेहैःतिलसर्पप  
विल्वजैःमध्वस्त्रोष्णांभुतक्रवामधंवा  
निगदंपिवेत्॥

अर्थ—कफकी खांसी वाला रोगी जो बल-  
वान् हो तो प्रथम वमन देकर संशोधन करै  
फिर कफनाशक कटु, रुक्ष और उष्ण प-

द्राघोसे संस्कार कियाहुआ यवान देवे । पी-  
पल और जवाखार डालकर कुठरीं वा मूली  
के यूपके साथ हलके अन्नका भोजन करावे  
अथवा कटुरसोंसे तयार कियाहुआ धान्वदे-  
शज अथवा विलेश्यों का मांसरस देवे,  
अथवा तिल, सरसों और विल्वके तेलके सा-  
थ भोजन करावे ऊपर से मधु, कांजी, गर-  
मजल, छाछ मद्य या निगद सेवन करावे ॥

कफजकास में पेयद्रव्य ।

पौष्कराग्वधंगूलपटोलान्तंनिशांस्थित-  
म् । जलमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिणु ॥  
कटुकलंकृत्तृणभार्गामुस्तंधान्यं वचाभया  
म् । शुण्ठीपर्वटकःशृङ्गीसुराह्वञ्चशृत्तंज  
ले ॥ मधुहिंशुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके  
कण्ठरोगेमुखेशूलश्वासहिकाज्वरेषुच ॥

अर्थ—पौहकरमूल, अमलतासकी जड़  
परबल इनको रात्रि में भिगोदेवे, दूसरेदिन  
भोजन के समय इस जल में शहत डालकर  
पीवे । अथवा कायरुल गंधतृण, भाङगी,  
मोथा, धनिपां, वच, हरड़, सोंठ, पित्तपा-  
पडा, काकडासीगी इनका क्वाथ करके शहत  
और सुतीहुई होंग डालकर पीवे, इस से  
वातकफ की खांसी, कंठरोग, मुखरोग, शूल  
श्वास, हिचकी और उबर दूर होजाते हैं ।  
पाठांशुण्ठीशटीमूर्वागवाक्षीमुस्तपिप्पलीम्  
पिष्ट्वाघर्माभ्युन्ताहिंसुसैन्धवाभ्यांयुतां पि-  
वेत् ॥ नागरातिविपांमुस्तंशृङ्गीकटुक  
स्यच । हरीतकीशटीचैवतैनेवविधिना  
पिवेत् ॥ तैलभृष्टंचपिप्पल्याःकल्काक्षंस  
सितोत्पलम् । पिवेद्वाश्लेष्मकासघ्नकु

लत्थरससंयुतम् ॥ कासमर्दाश्वविट्भृङ्गर-  
जोवार्ताकजारसाः । संक्षौद्राःकफकास  
घ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ देवदारुश  
टीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा । पिप्पली  
नागरंमुस्तंपथ्यावातीसितोपलाः ॥ म  
धुतैलयुतावेतौलैहैवातानुगेकफे ॥

अर्थ—पाठा, सोंठ, कचूर, मरोडफली  
इन्द्रायण, मोथा, पीपल इनको पीसकर  
हींग और सेंधानमक मिलाकर गरमजलके  
साथ पान करे । अथवा सोंठ, अतीस, मो  
था, काकडासीगी, हरड़ और कचूरको पी  
स होंग और सेंधानमक डालकर गरमजल  
के साथ पीवे । अथवा पीपलके तेलभर  
कल्कको तेलमें भूनकर मिश्री डालकर कुल-  
धी के रसमें मिलाकर पीवे इससे कफकी  
खांसी दूर होजातीहै । अथवा कसौदी के  
पत्तोंका रस, घोड़ेकी लीद का रस,  
भांगरेका रस, बैंगनका रस, शहतके साथ  
मिलाकर पीवे, अथवा काली तुलसीके प-  
त्तों का रस शहत डालकर पीवे । अथवा  
( १ ) देवदारु, कचूर, रास्ना, काकडासी-  
गी, जवासा, अथवा ( २ ) पीपल, सोंठ,  
मोथा, हरड़, आंवला और मिश्री इनदोनों  
प्रयोगों को शहत और तेलमें मिलाकर चा  
ठनेसे वातानुबंधी कफकीखांसी दूर होजातीहै  
कफजकासनाशक चार प्रयोग ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली  
पथ्यातामलकीघात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली  
देवदार्वभ्यामुस्तंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।  
विशालापिप्पलीमुस्तंचित्रताचेतिलेहयेत्

उनको पित्तकास में कहा हुआ पथ्य देना चाहिये । तथा इस पथ्य में दूध, घी और मधु का अधिक भाग होना चाहिये । परन्तु उन खांसियों में जो दो-दोषों के मेल से उत्पन्न हुई हैं उन में कुछ विशेषता होती है, यथा—वातपित्त की खांसी में शरीर में भेदनवत् पांडा होनेपर घृत से अभ्यंग करावै । वायुकी अधिकता होनेपर वातनाशक तैलों को काम में लावै, जो हृदय और पसली में वेदना की अधिकता होती जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत हितकर होता है । ऐसे खांसीवालोंको जिनके दाह हो, कफके साथ रुधिर आता हो, जठराग्नि प्रबल हो और उनको मांस भक्षण अनुकूल हो तो लावादिक पक्षियोंका मांसरस पान करावै । जो तृपाकी प्रबलता हो तो शरमूलादि द्रव्यों को डालकर औटा या हुआ बकरी का दूधदेवै । जिसके नाक का मुख के रस्ते से रुधिर जारी हो । उसे दूध से निकला हुआ घी पानकरावै वा उसकी नस्य देना हितकर होता है, जो रोगी थक गया हो, क्षीण होगया हो वा उसकी अग्नि मन्द पड़ गई हो तो उसे यवागू पान करावै । देह की स्तम्भता वा आयाम के होने पर घीकी उत्तम अर्थात् बड़ी मात्राका पान करावै । इस में पित्तरक्त से अविरोधी वात नाशक क्रिया भी हितकर होती है ।

धूमपान के द्रव्य ।

निवृत्तेक्षतदोषेतुकफेवृद्धरःशिरः ।  
दाहपित्तकासिनोपस्पसधूमाज्जापिवेदिमानः ।

दूधेदेमधुकंदंचवलेतःक्षामलक्तकैः । वार्तितधूममापीयजीवनीयवृत्तंपिबेत् ॥ मनःशिलापलाशाजगन्धात्ववक्षीरिनार्गरः । भावयित्वापिबेत्धूमशर्करक्षुगुडोदकम् ॥ पिष्ट्वापानःशिलातुल्यामाद्रियावदशृंगयाससर्पिष्कपिवेदधूमंतिचिरमितिभोजनम् । भावितंजीवनीयैर्वाकुलिद्राण्डरसायुतैः । सौमधूमंपिबेत्क्षीरंशृतंचाग्रोगुहःपिबेत् ॥ अर्थ—जो छाती का क्षत मिटजाम और उसके उत्तेजक वातपित्त दोषभी शान्त हो जाय । परन्तु कफ बढ़जाय और उस कफ के बढ़ने से शिर में दहने कीसी पीडा हो, तो निम्न लिखित धूमपान हितकर होते हैं । मेदा, महामेदा, मुलहटी, बला, नागबला, इनको पीसकर रेशमी वस्त्र में और चिधड़े में लपेटकर घी में भिगोकर धूमपान करै । धूमपान करने के पीछे जीवनीय घृत का सेवन करै । मनसिल, पलाश, अजगन्ध, वंशलोचन और सोंठ इनको पीसकर धूर्वोक्त रीति से बत्ती तयार कर के धूमपान करै । तदनन्तर गुडका शरवत वा शर्करेक्षु ( चीनी का शरवत—ईखकारस ) पानकरै । बडकी हरी कोपल और मनसिल ये दोनों समानभाग लेकर पीसले और घीमें सानकर पूर्ववत् धूमपान करै, पीछे, तीतर के मांस रसके साथ पथ्य लेवै । अथवा जीवनीय गणोक्त द्रव्य और चिरोंटे के अण्डे इन के रसकी रेशमीवस्त्रमें भावना देकर सुखाले और इसकी बत्ती बनाकर धूमपान करै और ऊपरसे गरम गरम झोहे के गोले डालकर गरम किया हुआ दूध पान करावै ।

क्षयज कास में चिकित्साक्रम ।  
सम्पूर्णरूपेक्षयजदुर्बलस्यविवर्जयेत् ।  
नवोत्थितंवलघतःप्रत्याख्यायाचरेत्ताकि  
याम् ॥ तस्मैवृंहणमेवादौकुर्यादग्नेश्चव  
र्द्धनम् । बहुदोषायसस्नेहमृदुदद्याच्चशो  
धनम् ॥

अर्थ—यदि क्षयकी खांसी अपने पूर्ण  
रूप पर पहुँच गई हो और रोगी दुर्बल  
हो तो उसकी चिकित्सा न करै । और जो  
रोग नया हो और रोगी भी वलघान् हो  
तो यह कहकर चिकित्सा करै कि “आराम  
होगा तो होजायगा और न होगा तो खैर,,  
ऐसे रोगी को प्रथमही वृंहणकर्त्ता और  
अग्निवर्द्धक औषध देनी चाहिये और जो  
बहुत दोषों से रोगी युक्त हो तो मृदु स्नि-  
ग्ध विरेचन देवै ।

क्षयजकास में विरेचन ।

शम्पाकेनत्रिवृत्तयामृद्धीकारसमुक्तया ।  
विल्वकस्यकपायेणविदारीस्वरसेनच ॥  
सर्पिःसिद्धंपिवेद्युक्तयाक्षीणदेहोविशोधन  
म् । हितंतेदेहवलयोरस्यसंवरणंमतम् ॥

अर्थ—अमलतासका गूदा और निसोध  
इसमें दाखका रस डालकर घी सिद्ध कर  
के पान करावै अथवा निसोध और विदारी  
कन्द के कपाय में घृत सिद्ध करके देवै ।  
यह क्षीण देहवालोंके लिये उत्तम विरेचन  
है । इस रोग में देह के वलकी रक्षाकरना  
आवश्यक है ॥

पित्तकफचसंक्षीणेपरिक्षीणेपुत्रातुषु ॥  
घृतककटकीक्षीरंद्विजलासाधितंपिवेत् ॥

विदारीभिःकदम्बैर्वातालशस्यैस्तथाशृत  
म् ॥ घृतपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्येकृच्छ्रएवच  
शूलसवेदनेमेदूपायौसश्रोणिबंधने ॥  
अनुवास्याघृतमण्डनमधुनामिश्रकेणवा ।  
अर्थ—पित्त और कफके क्षीण होने-  
पर तथा धातुओंके क्षीण होने पर काकडा  
सींगी, खरौटी, नागवला इनको पीसकर  
इनमें इनसे चौगुना दूध और चौथाई घी  
डालकर सिद्ध करै । अथवा मूत्रकी विवर्ण  
ता और मूत्रकृच्छ्र में विदारीकन्द अथवा  
कदंब अथवा ताड़ के अंकुरोंके साथ पाक  
कियाहुआ घी दूध देवै । मेढ, गुदा, श्रोणी  
और बंधन में शूल तथा वेदना होनेपर  
शहत मिलेहुए घृतमंड की अनुवासन वस्ति  
देवै अथवा घी और तेल मिटाकर अनु-  
वासन देवै ।

जाङ्गलैःप्रतिशुक्तस्यवर्तकाद्याविलेशयाः॥  
क्रमशःप्रसहाधैवप्रयोज्याःपिशिताशिनः  
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्रोतोभ्यः च्या  
वयान्तिताकफैःशुद्धैश्चतैःपुष्टिकुर्यात्सम्य  
ग्वहनरसः ॥

अर्थ—जांगल, वर्तकादिक विलेशय तथा  
मांसाहारी प्रसहोंका मांस क्रमसे देवै, इन  
का मांस उष्ण और प्रमाथी होने से स्रोतों  
से कफको निकाल देताहै । जब सब स्रोत  
शुद्ध होजाते हैं तब उनमें अच्छीतरह बहता  
हुआ रुधिर शरीरको पुष्ट करदेता है ॥

दशमूलादि घृत ।

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैःसचित्रकैः  
कुलत्थपिप्पलीमूलपाटाकोलयवैर्जले ॥



साधनान् । कृत्वा चिन्तयित्वाऽपि न्याः मले  
रः श्वासकासनुन् ॥

अर्थ—हृदय नग कीम लेकर जो के दो  
आयुक्त वशापमे पकौ सीजनकर गुट्टियां  
निकाजकर सीमशरीर उनमें सा. पत्र पुराना  
गुट्ट डालकर साथ एक कर्ष मनसिद्ध, आधा  
कार्य रसीत, आधा गुट्ट पॉरठ ये साथ  
पीसकर डाटेंगे । इस ठेका रोपन करने  
से श्वास और ग्यामी दूर होजाते हैं ॥

अथ भ्रंशमेह ।

श्वाविषःशून्यपोदग्धाः सप्ततृतीयाद्वनकराः ॥  
श्वासकासहरावरिंशदोषाभाद्रसर्पिषा ।  
परण्टपप्रसारंगान्योपतन्मृदास्त्रिभुम् ।  
सुरसरण्टपप्राणाविधिनानेनलेहयेत् ॥  
द्राक्षापप्रकयानां विषण्णली धाद्रमापिषा ।  
निगान्धूपणचूर्णवापुराणगुट्टमापिषा ॥  
विप्रकंषिफलानानाकिकंटाग्न्यकदुभिक  
म् । द्राक्षान्यसोद्विषाविष्यादिमादयाद्  
गुटेनवा ।

अर्थ—मेहके काटों की भस्मको घी,  
शहत और चीनी मिठाकर चाटे अथवा मौर  
के पंगोंकी भस्म को घी और शहत के  
साथ चाटने से श्वास और काम दूर होजाते  
हैं, अथवा शरबी के पत्तों का क्षार त्रिकुटा  
मिठाकर गुट्ट और सेठ के साथ चाटे  
अथवा इसी रीतिसे गुट्टरी और अरदी के  
पत्तोंका क्षार चाटे । दाग, पप्पान्न, पैगन,  
पीपल इनके चूर्ण को घी और शहत के  
साथ चाटे अथवा उम में त्रिकुटा का चूर्ण,  
पुगना गुट्ट और घी मिठा कर चाटे । ची-

ता, निक्ता, जीरा, काकडासींगी, त्रिकुटा  
और दाग इनको घी, शहत और गुट्ट के  
साथ चाटे ।

पप्रकाशयलेह ।

पप्रकंषिफलान्योपविट्ठसुरदागच ॥  
बलारास्नाचतुन्यानिमूर्ध्मचूर्णानिकार-  
येत् ॥ सर्वरोषिःसमचूर्णःपृथक्सांद्रपृथ-  
सिताम् । विमध्यमेहपेटेहर्मसामगर्ह  
शियम् ॥

अर्थ—पप्पान्न, निक्ता, त्रिकुटा वाय-  
विट्ठ, देवदाग, सरसी, शाना, इनमेंको  
समन भाग लेकर गहीन पीसते और इनमें  
चीनी, शहत और घी प्रत्येक चूर्ण के वा-  
मिश्रकर चाटे । इससे सम्पूर्णप्रकारकी ग्या-  
मी दूर होजाती है ।

जीवन्त्यायलेह ।

जीवन्तीपधुकंघाटांत्यक्षरिंविषाक्ष-  
ठीम् । सुरनेलेपप्रकाक्षाद्वेष्टर्यापितुन्न  
कम् ॥ क्षारिवापौष्करंमूलकंटाग्न्यां  
साधनम् । पुनर्नसारजोलोद्वानायमाणां  
यथानिकाम् ॥ भार्गवातामलकीन्दुद्विचि  
ट्ठधन्वयासकम् । क्षारचिप्रकचन्याम्ब  
वेतमन्यापदार्थ ॥ चूर्णोक्त्यसमांशा  
निलेहयेत्सांद्रसर्पिषा । चूर्णात्पाणितलं  
पञ्चकासानेपन्यपोहति ॥

अर्थ....जीवन्ती, गुट्टहटी, पाठा, वंश-  
लोचन, त्रिकुटा, कचूर, मोथा, छोटी इत्या-  
यची, पप्पान्न, द्राक्षा, दोनों कीटरी धनियां  
क्षारिवा, पुष्करमूल, काकडासींगी, रसीत,  
साठ, लोहचूर्ण, प्रायमाणा, अजवायन,

भोजनमें अरुचि ये तीन वमनके पूर्वरूपहैं

वातजवमनका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासा  
द्यतिकर्षितस्याक्रुद्धोमहास्रोतसिमातरिश्वा  
दोपानसमुत्प्लियतदूर्द्धमस्यन्।आमा  
शयोद्रेककृतश्चर्मप्रपीडयेच्छर्दिरुदीरयेच्च।

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक  
रोग, भय और उपवास से अत्यन्त कुश  
ड्ण मनुष्य के महास्रोतों में वायु कुपित हो  
कर दोषोंको उत्क्रिष्ट करके ऊपर को फेंकती  
है तथा हृदयादि मर्मस्थानोंको पीडित करके  
वमनको करताहै । यह वमन आमाशयके  
उद्रेकसे भी होती है ॥

वातजवमन के लक्षण ॥

हृत्पार्श्वपीडामुखशोपमूर्द्धनाभ्यर्तिकास  
स्वरभेदतौदैः।उद्गारशब्दप्रवलसफेनविच्छि  
न्नकृष्टतनुकफपायम्॥कृच्छ्रेणचाल्पमह  
त्ताचवेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतहिदुःखम्॥

अर्थ—हृदय और पसली में घेदना, मुख-  
शोष, नाभिके ऊपर पीडा, खांसी, स्वरभेद  
तोद, और डकारमें अत्यन्त शब्द होताहै ।  
तथा क्षागदार, फटी हुई कष्टकर पतली कसी-  
ली, अत्यन्त फट से, थोड़ी, और अत्यन्त  
वेगवती वमन होतीहै । वातज वमन बड़ी  
दुखदाई होतीहै ।

पित्तजवमनका निदान ॥

अजीर्णकट्वम्लविदास्रशीतैरामाशयेपि  
क्षुधदीर्णवेगम्॥रसायनीभिर्विसृतंमपीड्य  
मर्मोर्द्धमागम्यवमिकरोति ॥

अर्थ—अजीर्णमें कटवे, खट्टे, विदाही

और उष्ण पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे आम-  
शयमें पित्त अत्यन्त उर्दार्ण होकर रसवाही  
स्रोतोंके द्वारा फैलकर मर्मस्थान को पीडित  
करके ऊपरको उठकर वमन करताहै ॥

पित्तजवमनके लक्षण ॥

मूर्च्छापिपासामुखमूर्द्धकण्ठताल्वक्षिरुन्ता  
पतमोभ्रमार्त्तः।पित्तभृशोर्णहरितसतिक्तं  
धूम्रञ्चपित्तनवमेत्सदाहम् ॥

अर्थ—पित्तज वमन में मूर्च्छा पिपासा,  
मुख, मूर्द्धा, कठ, तालु, अक्षि, इनमें संताप  
अंधकार, छाना; चकर आना, ये लक्षण होते  
हैं । तथा इसमें अत्यन्त उष्ण, तांखे, धूआं  
और दाहयुक्त पित्त निकलते हैं ॥

कफज वमनका निदान ।

स्निग्धातिगुर्वाभिविदाहिभोज्यैः।स्वप्ना  
दिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः॥उरःशिरोमर्मर  
सायनीश्चःसर्वाःसमावृत्त्यवमिकरोति ॥

अर्थ—स्निग्ध, भारी, आम और विदाही  
भोजनों के करने से अथवा बहुत सोने से  
कफ अत्यन्त वृद्धि पाकर, हृदय, शिर, मर्म  
स्थान, और रसवाही स्रोतों को घेरकर व-  
मन उत्पन्न करता है ॥

कफजवमनका लक्षण ॥

तन्द्रास्यमाधुर्यकफमसेकसन्तोपानिद्रारु  
चिगौरवार्त्तः।स्निग्धघनंस्वादुकफविशुद्धं  
सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥

अर्थ....कफज वमनमें तन्द्रा मुख में मी-  
ठापन कफ प्रसेक, सन्तोष तथा नि-  
द्रा, अरुचि, भारापन, और वेदना होती है  
तथा वमन में चिकनाई, गाढ़ापन, मिष्टता

मेवतस्मात् । प्राकारयेन्मारुतजं विमृच्य  
संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥

अर्थ—सर्व प्रकारकी वमन आमाशय के  
उल्लेख से उत्पन्न होती है इससे वमन में  
प्रथम लघन कराना हित है । तत्पश्चात् क-  
फपित्तनाशक संशोधन देवै । परन्तु वातज  
वमन में ऐसा नहीं किया जाता है ॥

कफपित्तनाशक वमन विरेचन ।  
चूर्णानिलहानमधुना भयानाहृद्यानि-  
वायानि विरेचनानि । मयैः पयोभिश्च युता  
नियुक्तानयत्यधो दोषमुदीर्णमूर्ध्वम् ॥  
बल्लीफलार्थैर्वमनं पिबेद्वा यो दुर्बलस्तंशम  
नैधिक्षिप्तेत् । रसैर्मनोऽज्ञैः लघुभिर्विशुष्कै  
र्भक्ष्यैः सभोज्यैर्विधैः सपानैः ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण शहतके संग चाटे  
अथवा अन्य द्रव्य भी जो हृदयप्रिय और  
विरेचन कर्त्ता हों उन्हें मद्य वा दूध के संग  
सेवन करै, ऐसा करने से ऊपरको उठे  
हुए दौप फिर नीचेको चले जाते हैं । अ-  
थवा बल्लीफलादि द्वारा वमन करावै । दुर्ब-  
ल मनुष्यको संशोधन न देवै उसकी संशमन  
क्रिया करना उचित है । दुर्बल मनुष्य को  
मनके अनुकूल लघु मांसरस शुष्क भोजन  
तथा अनेक प्रकार के पेय द्रव्य देवै ।

सुसंस्कृतास्तिचिरिर्वहिलावारसान्यपो  
हन्त्यनिलमष्टत्म् । छंदिस्तथा कोलकुल  
त्यमापविल्वादिमूलाभ्युयवैश्च यूपः ॥

अर्थ—अच्छी तरह संस्कार किये हुए  
तीतर, मोर, लामा इनके मांसरस बढी हुई  
वातज वमनको शान्त करदेते हैं इसी तरह

वेर, कुलथी, उरद, विल्वादि पंचमूल का  
क्वाथ और जौ का यूप भी वातज वमन को  
दूर करता है ।

वातज वमनकी चिकित्सा ।  
घातात्मके हृद्द्वयका सयुक्तो नरः पिवेत्सैन्ध-  
ववद्धृतन्तु । सिद्धं तथा धान्यकनागरा-  
भ्यां दध्ना च तोयेन च दाडिमस्य ॥ व्योषे  
ण युक्तां लघुणैस्त्रिभिश्च घृतस्य मात्रामथवा  
विदध्यात् । स्निग्धानि हृद्यानि च भोजना  
निरसैः सयूपैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥

अर्थ—वातज वमनमें जो हृदय में फट  
फडाहट हो तथा खांसी हो तो उसे सेंधा-  
नमक मिलाकर घृतपान करावै अथवा सोंठ  
और धनिये को पीसकर दहीके साथ सिद्ध  
किये घृत में डालकर पान करै, अथवा अ-  
नार के रस में घृतको सिद्ध करलें अथवा  
उक्त घृत में त्रिकुट्टा और तीनों नमक  
डालकर मात्राके अनुसार पान करै और  
दही तथा अनारकी खटाई डालकर मांस  
रस और यूपके साथ स्निग्ध और हृद्य  
भोजन देवै ॥

पित्तज वमनमें चिकित्सा ।  
पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थं द्राक्षाविदारी  
क्षुरसैस्त्रिघृतस्यात् । कफाशयस्थन्त्वाति  
मात्रवृद्धं । पित्तं हरेत्स्वादुभिर्बुधैर्वमेव ॥  
शुद्धायकाले मधुशर्कराभ्यां ॥ लाजैश्च म-  
न्ययादिनापि पेयाम् ॥ मदापयेन्मुद्गरसे-  
नवापि । शाल्योदनं जांगलजैरसैश्चो ॥  
सितोपलामांसिकपिप्पलीभिः कुलमापला-  
जायवसावतुश्च जान् ॥ खर्जूरमांरान्यथ-





युक्तैर्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥ गो-  
धूमशालीन्सयवानपुराणान्गूपैःपटोला  
मृताचित्रकाणाम् । व्योपस्पनिम्बस्पचत  
क्रांसिद्वैर्गूपैःफलांम्लैःकटुभिस्तुवाघात् ।  
रसांश्चशूलयानिचजाङ्गलानांमांसानिजी-  
र्णान्मधुशिश्वारिष्ठान् । रागांस्तथाखाद-  
वपानकानिद्राक्षकपित्तैःफलपूरकैश्च ॥

अर्थ—कफात्मक वमनमें कफाशय और  
आमाशयका शोधन करनेके निमित्त पीपल  
सरसों, नीमका कषाथ, मेनफल और  
सैधानमक मिलाकर वमन देवै । पुराने गेहूं  
शालीधान्य और जौको परवल, गिलोय और  
चीतेके यूपके साथ देवै अथवा त्रिकुटा डाल  
कर मठाके साथ वा नीमके काथ के साथ  
सिद्ध किये हुए मठे के साथ अथवा फलाम्ल  
और कटुद्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए  
यूप के साथ देवै । जांगल मांसरस वा  
जांगल मांस शूलपर भुना हुआ पुराना श-  
हत शीधु, अरिष्ट, रागपादव और दाख,  
कैथ वा विजौरे के रस के साथ सिद्ध किये  
हुए पानक सेवन करावै ।

इहान्सगोधूमयवान्कलायान्भृष्टान्यु-  
तान्नागरमाक्षिकाभ्याम् ॥ अद्यात्तयैवात्रि-  
फलाविडङ्ग । चूर्णविडङ्गप्लवयोरयोवा ॥  
सजाम्बवतंवावदरस्यचूर्णमुस्तायुतांककटुक-  
स्यङ्गुमीम् ॥ दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तालि-  
प्तात्कफछर्दिनिग्रहार्थम् ॥ मनःशिला-  
याःफलपूरकस्यरसैःकपित्तस्यचपिप्लवी-  
नाम् ॥ शोद्रेणचूर्णमरिचचयुक्तलिहन्  
जपेत्छर्दिरुदीर्णवेगम् ॥

अर्थ—गूंग, गेहूं जौ और मटर इनको  
घीमें तलकर सोंठ और शहत मिलाकर  
सेवन करै अथवा त्रिफला और वायाविडंग  
का चूर्ण शहत के साथ चाटे अथवा वाय-  
विडंग और केवटी मोथा को शहतके साथ  
चाटे अथवा जामनकी मर्गी और बेरकी  
मर्गी का चूर्ण बना कर शहत के साथ  
सेवन करै अथवा मोथा और काकंडासींगी  
वा जवासा इनके चूर्णको शहतके साथ से-  
वन करै । इनसे कफकी वमन शान्त होजा-  
ती है ॥ विजौरे वा कैथके रसके साथ मनसि-  
ल का चूर्ण सेवन करनेसे वा पीपल और  
कालीमिरच का चूर्ण शहतमें मिलाकर सेवन  
करनेसे उर्दीर्ण वेगवाली वमन दूर होजाती है ।

साभिपातिक वमन में चिकित्सा ।  
वैपापृथक्तेनतयाक्रियोक्तातांसाभिपातेऽ-  
पिसमीक्ष्यबुद्ध्यादोपेतुदेहाग्निबलान्यवे-  
क्ष्यप्रयोजयेत्शास्त्रविदममत्तः ॥

अर्थ—जुदे २ दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन  
की जो जो जुदी जुदी क्रिया वर्णन कीगई  
है वे सम्पूर्ण क्रिया दोष ऋतु, देह अग्नि और  
बलकी परीक्षा करके अत्यन्त सावधानीसे स-  
न्निपातज वमन के दूर करनेके लिये प्रयुक्त करै

दुष्टसंयोगजवमन में उपाय  
मनोभिघातेतुमनोनुकूलावाचःसमाश्वा-  
सनहर्षणानिलोकमसादःश्रुतयोवयस्याः  
भृद्धारिकाथैवहिताविहाराः ॥ गन्धाविचि-  
त्रामनसोऽनुकूलामृतपुष्पशुक्लाम्लफ-  
लादिकानाम् ॥ शाकानि भोज्यान्यथपा-  
नकानिसुसंस्कृताः खादचरागलेहाः ॥ यु-

पारसाकाम्बालिकाःखट्वाश्चर्मांसानिषा  
नाविविधाश्चभक्ष्याः ॥ फलानिमूलानि  
चगन्धवर्णै रसैरुपेतानिचमिञ्जयन्ति॥  
गन्धरसस्पर्शमथापिशब्दरूपञ्चयद्यत्पि  
यमप्यसात्स्यम् ॥ तदेचकुर्यात्प्रशमायत  
स्यास्तज्जोहिदोषःसुखएवजेतुम् ॥

अर्थ—जो यमन मनमें किसी प्रकार की  
घृणा उत्पन्न होनेसे होती है उसमें मन के  
अनुकूल वाणी, संतोषदायक वचन, प्रसन्न  
करनेवाली कहानियाँ समानवयवाली स्त्री से  
संगमन, तथा दृंगारादि हितकर विहार  
उत्तम होते हैं । मनके अनुकूल अनेकप्रकार  
के सुगन्धित द्रव्य, खिले हुए फूलोंकी सुगन्धि,  
शाक, भोजनके पदार्थ, पानक अच्छी तरह  
से संस्कार किये हुए पाडव, मुरब्बे, अखरोट  
अनेक प्रकार के यूप, रस, काबालिक यूप  
खड्यूप, मांस, धान, अनेक प्रकारके मत्स्य  
पदार्थ, अनेक प्रकार के गंध, वर्ण और  
रसों से युक्त फल मूल का सेवन यमनको  
दूर करता है । जो जो गंध, रस, स्पर्श,  
शब्द और रूप रोगीको प्रियहों वद्यपि ये  
गंधादि असात्स्य भी होंतौ भी रोगकी नि  
वृत्तिके लिये इनका प्रयोग करे क्योंकि मन  
की घृणासे उत्पन्न हुए रोग-मनोऽनुकूल  
पदार्थोंके सेवनसेही सुखपूर्वक दूर करनेमें आनेहै  
वम्युत्थितानांचचिकित्सितंस्याच्चिक्रि  
तंकार्यमुपद्रवाणाम् । अतिप्रवृत्तासुर्विच  
नस्यकर्मातियोगेविहितंविधेयम् ॥ यमि  
प्रसङ्गात्पवनोऽप्यवदयंभानुक्षयादृद्धिमुपै  
तितस्मात् ॥ चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि

कार्याण्युपस्तम्भनवृहणानि ॥ सर्पिर्गुहा  
क्षीरविधिर्घृतानिकल्याणकःपूषणजीव  
नानि ॥ वृष्यास्तथाप्रांसरसःसंलहाःचि  
रमसक्ताश्चवर्मिजयन्ति ॥

अर्थ—जो चिकित्सा यमन के दूर करने  
की होती है वही चिकित्सा यमन से उत्पन्न  
हुए उपद्रवों में भी कीजाती है तथा विरेचन  
के अतियोग होने में जो जो चिकित्सा नि  
रूपण कीगई है वही वही चिकित्सा यमन  
के अतियोग में भी होती है । यमनके प्रमग  
से धातुओं के क्षीण होजानेपर बापु भयङ्ग  
हीयद्वजाती है अतएव पुराने यमन रोग में  
वातनाशक, स्तम्भन और वृद्धन क्रियाकर  
सर्पिर्गुह, क्षीरविधि, कल्याण घृत, श्मृगघृत  
जांबर्नाय घृत, वृष्यप्रयोग मानस और  
अखरोट इनमें बहुत दिन की पुरानी यमि  
दूर होजाती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

संख्याहेतुलक्षणमुपद्रवान् । माध्यमार्त्त  
योगाश्चउर्दीनानाम्प्रथमार्थमाहचिक्रि  
तमुमुनिवर्त्य ॥

अर्थ—इस यमन चिक्रिगिताप्यायमें  
पुनर्वर्तन यमन रोगोंकी संख्या, हेतु, लक्षण  
उपद्रव, साध्यामाध्य विचार और औषध  
वर्णन की है ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितानायांभाष्येऽर्थादिनि  
तायांचरकप्रतिसंस्कृतानामेतिहाया  
चिकित्सितस्थानेऽष्टाचिक्रिगितांताया  
प्रयोगेऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथातस्तृष्णाचिकित्सितन्याख्यास्याम  
इतिहसमाहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर, भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम तृष्णाचिकित्सित नामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ।

ज्ञानप्रशमनपोभिःख्यातोऽत्रिसुतो जग  
द्वितेऽभिरतः। तृष्णानां प्रशमार्थचिकि  
त्सितं प्राह पञ्चानाम् ॥

अर्थ—जो भगवान् आत्रेय अपने ज्ञान  
शान्ति और तपोगुणसे जगत् में विख्यात  
हैं और संसारके हितमें दत्तचित्त हैं वे पांच-  
प्रकार के तृष्णारोगोंकी शान्तिका उपाय  
वर्णन करने लगे ।

तृष्णा रोग का हेतु ।

शोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलं  
घनान्मद्यात्॥ क्षाराम्ललघणकटुकोष्ण  
रूक्षशुष्काग्नेसेवाभिः ॥ धातुक्षयगदक  
र्पणवमनाद्यतियोगसूर्यसन्तापैः। पित्ता  
निलौघद्विद्वौसौम्यान्धातुंशोपयत ॥  
रसबाहिनीश्चनालीर्जिह्वामूलगलतालु  
होमनः । संशोप्यतृष्णां देहे कृत्तः तृष्णाम्  
दाबलावेतौ । पतिपतिर्हि जलं शोपयतस्त  
मतेनयातिशमम् । घोरव्याधिरुशानां प्र  
भवत्युपसर्गभूतासा ॥

अर्थ—क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध,  
लघन, और मद्यपान के करने से, खारे, ख  
ट्टे, नमकीन, कड़वे, गरम, रुखे और सूखे  
क्षय के सेवन से, धातुकी क्षीणता, रोग  
के कारण कृशता, वमनातियोग और सूर्य

सन्ताप से पित्त और वात बढ़कर ये दोनों  
महाबली सौम्यधातुओं को मुखात् इष्ट रस  
बाहिनी नाडी, जिह्वामूल, गला, तालु  
और पिपासास्थान इन को मुखाकर मनुष्य  
की देह में तृष्णा की उत्पन्न करते हैं, जल  
पति पति सूखता चला जाता है और किसी  
तरह से तृष्णाकी शान्ति नहीं होती । जो  
मनुष्य घोर व्याधि के कारण कृश होगये  
हैं उन के उपद्रव सहित तृष्णा उत्पन्न  
होती है ।

तृष्णाका प्रामूप । ।

प्रामूपं मुखशोपं स्वलक्षणं सर्वदाम्बुक्कामि  
त्वम् ॥

अर्थ....मुखशोप, तृष्णाका लक्षण और  
सदैव जलपान की इच्छा ये तृष्णा के प्रारूप हैं ।

तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार की लक्षणवाली  
तृष्णाओं का लाघवही अपाय है ।

तृष्णा के लक्षण ।

मुखशोपस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्त-  
म्भान् । ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतां  
चित्तनाशञ्च ॥ जिह्वा निर्गममरुचिं वा  
धिर्यमपाणान्दवंसादम् । तृष्णोद्धृतान्  
जयेत्पञ्चाविधां लिङ्गतः शृणुताम् ॥

अर्थ—मुखशोप, स्वरभंग, भ्रम, संताप,  
प्रलाप, संस्तम्भ, तालु शोप, कंठ और जि-  
ह्वा में कर्कशता, चित्तनाश, जिह्वा का वा-  
हर निकलना, अरुचि, च्छिरता, मर्मों में  
ताप और शिथिलता ये लक्षण तृष्णा रोग में  
होते हैं । तृष्णापांच प्रकार की होती है अ-

य इनके पृथक् पृथक् लक्षणों का वर्णन किया जाता है ॥

**वातजतृपाकाहेतु ॥**

अवधातुदेहस्थकुपितःपवनोपदाविशोप  
यंति। तस्मिन्शुष्केशुष्यत्यवलस्तृप्यथ-  
विशुष्यन् ॥

अर्थ—पवन कुपित होकर जब देहस्थ जठधातु को सुखा देती है तब उस के सूखने पर दुर्बल मनुष्य शुष्क होजाता है और शुष्क होने से उसे तृपा उत्पन्न होती है ।

**वातज तृपाका लक्षण ।**

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरस  
मुखता । श्रोत्रोपरोधइतिचस्यालिङ्गवा-  
ततृष्णायाः ॥

अर्थ—निद्रानाश, शिरका घूटना, मुखमें सूखापन और विरसता, कानों में सुननाये लक्षण वात की तृष्णा में होते हैं ।

**पित्तज तृपाका हेतु ।**

पिचमत्तंकुपितमाग्नेयकुपितचेत्तापयस्य  
पांथातुम् । सन्तप्तःसाहिजनयेतृष्णांदा  
होत्वर्णानृणाम् ॥

अर्थ—प्रथमकहचुके हैं कि पित्त आग्नेय होता है और जब यह कुपित होजाता है तब जठ धातु को तप्त करता है और जठ धातु तप्त होकर मनुष्यों के दाहाधिक्य तृपा को उत्पन्न करती है ।

**पित्तजतृपा के लक्षण ।**

तिक्तास्पृत्वांशिरसोदाहाःशीताभिनन्दि  
तामूर्च्छा । पीताक्षिभ्रवर्चस्त्वमाकृतिः  
पित्ततृष्णायाः ॥

( १३० )

अर्थ—मुख में कड़वापन, सिर में दाह, शीतलवस्तु में स्पृहा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और विष्टामें पीलापन ये पित्तजतृपाके लक्षण हैं ।

**कफज तृपा ।**

तृष्णायाममभवासाध्याग्नेय्यामापिचाज-  
नितत्वम् । लिङ्गतस्याधारुचिराध्मानक  
फमसेकाच ॥

अर्थ—जो तृपा आमसे उत्पन्न होती है वह आम्रिय होती है, क्योंकि यह आमाश्रित पित्तसे उत्पन्न होती है । अरुचि, आप्मान और कफप्रसेक इसके लक्षण हैं । देहोरसजोऽम्बुभवारसावचतस्यशयाश्च-  
तृप्येतु । दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनःसंशु-  
ष्कहृदयगलतालः ॥ भवतिखलुसोप-  
सर्गान्तृष्णासाभवतिशोषणीफष्टाज्वरमेह  
क्षयशोषश्वासापुसृष्टदेहानाम् ॥ सर्वा  
स्त्वतिप्रसक्तरोगकृशानांविमसक्ताना-  
म् । घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणाय-  
विज्ञेया ॥

अर्थ—रससे देह उत्पन्न होता है और रस जलसे होता है, इससे रसधातुके क्षीण होनेसे तृपा उत्पन्न होती है । इस तृपामें स्वर क्षीण होजाता है, दीनता होजाती है हृदय, गला और तालु शुष्क होजाता है ।

ज्वर, प्रमेह, क्षयी, शोष और श्वासादि उपद्रवों से युक्त मनुष्य के जो तृपा उत्पन्न होती है वह सोपद्रव होती है, इसे शोषणी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होती है । सब प्रकार की अन्यन्त प्रसक्त तृपा, तथा रोग से कृश पुरुषोंकी तृपा, कमन रोगियों की

तृपा तथा घोर उपद्रवों से युक्त पुरुषों की तृपा मनुष्य की मृत्युकारक होती है ।  
अग्नि और पवनको तृपाकाकारणत्व ।  
नाग्निविनाहितर्पःपवनोद्गाताहिभोपणेहेतु  
अन्धातोरेतिवृद्धावपांक्षयेतृप्यतिनरोहि  
अर्थ—अग्नि और पवन के बिना तृपा उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि येही जलधा-  
तु को सुखानेवाली है इसतरहजल धातु के अत्यन्त क्षीण होने ही से तृपारोगउत्पन्न होता है ॥

तृपा के अन्यकारण ।

शुर्वनपयःस्नेहैःसंमूर्च्छद्भिर्विदाहकालेच ।  
यस्तृप्येद्धृतमार्गोत्तत्राप्यानिष्ठानलौहेतुः ॥  
तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मध्यपित्तानिलौप्र-  
कोपयति । शोपयतोऽपांधातुंतावाशुमद्य  
शीलानाम् ॥ तस्मात्स्विवसिकतामुहितदा  
शुमद्यतोयंविशुष्यति । क्षिप्ततेपांसन्तप्ता  
नाहिमजलपानाद्भवतिमर्म । शिशिरस्ना  
तस्योष्मारूढःकोष्ठमपघतर्पयति । तस्मा  
कोष्णः क्लान्तोभजेतसहसाजलंक्षीतम्  
लिङ्गसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभव  
त्ययतु । पृथगागमाधिकित्सितमतःप्रव  
क्ष्यामि तृप्णानां ॥

अर्थ—पारिपेक होते हुए भारीअन्न, दूध औरघृतादि पदार्थोंके विदाहकालमें तृपा उत्पन्न होतीहै । इसमें भी रुकेहुए मार्ग वाले जल और अग्निही हेतुहैं । तीक्ष्ण और रूक्ष भावोंके कारण मद्य पित्त और वायुको कु-  
पित करता है । येही पित्त और वायु मद्यप मनुष्यकी जलधातु को शुष्क कर देतेहैं ।

गरमवायुमें जल डालनेसे जल शुष्कहोजाता है उसी तरह मद्यसे संतप्त मनुष्योंके टंडा जलपान शुष्कहोकर मर्म को सुखादेताहै । सहसा ठंडे जल के स्नानसे ऊष्मा रुककर कोष्ठमें पड़चकर तृपा उत्पन्न करतीहै इस लिये गरमीका माराडुआ मनुष्य शीघ्रही शी तल जलसे स्नान न करे । इन ऊपरवर्णन कियेहुए सम्पूर्ण कारणों में वायु के क्षीण होनेसे पित्तज तृपाके लक्षण होतेहैं । अब हम सब प्रकारकी तृपाओंकी पृथक्चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥

तृपारोगमें चिकित्सा ।

अपांशयादितृप्णासंशोष्यनर्मणाशये  
दायु । तस्मादैन्द्रतोयंसमधुपिवेत्तद्गुणं  
वान्यत् ॥ किञ्चित्तुरानुरसंतत्रालघुंशी  
तंसुगन्धिसुरसम् । अनभिष्यन्दिचयत्तं  
तृक्षितिगतमप्येन्द्रवज्जोयम् ॥ शृतंशीतं  
ससितोपलमधवाशरपूर्वपञ्चमूलेन । ला  
जासक्तुसिताक्तान्मधुयुतमेन्द्रेणवामन्थं ॥  
वात्स्यावासुयवानांशीतमधुशर्करायुतंदद्या  
त् । पेयांवाशालीनांदद्याद्वाकोरदूपाणाम्  
पयसाशृतेनभोजनमधवामधुशर्करायुतंभो  
ज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यं  
लवणाम्लैः ॥ तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैःपि  
यालैश्चजांगलाःसुकृताः । शस्ताःरसांपयो  
वार्तैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥

अर्थ—जलधातु के क्षीण होनेसेही तृप्णा मनुष्यको सुखाकर शीघ्र मारडालतीहै । इसलिये तृपाोगमें आन्तरीक्षजल शहत मिलाकर या तद्गुण, विशिष्ट अन्य जल

पीना चाहिये । पृथ्वीमें गिराहुआ जल भी जिसमें कुछ कसीलापन और हलकापन, ठंडापन, सुगन्धि, सुरसता और अनभिष्यन्दता होती है वह आन्तरीक्ष जलके समा-नही होता है । जलको औटाकर वा शरा-दि पंचमूल का काथ करके मिश्री डालकर पीये । खीर का सत्तू मिश्री मिलाकर वा शहत और मन्थको आन्तरीक्ष जलमें घोलकर देवै ॥ अथवा जौकी बाज्य में ठंडा होनेपर शहत और चीनी मिलाकर देवै अथवा शालिचांवळ वा कोदों की पेया देवै अथवा औटेहुए दूध में शहत और चीनी डालकर उसके साथ भोजन करे अथवा पारावतादि पक्षियोंके मांसरसको घी में भूनकर बिना नमक और खटाईके सेवन करे अथवा तृण पंचमूल, मूज और पि-यालके काथके साथ जांगल मांसरस अ-च्छांतरह पक्व करके सेवन करे । अथवा सन्दी तृणपंचमूलादि में दूध औटाकर श-हत और चीनी डालकर पीये ॥

शतधीतघृतनाक्तः पयःपिवेत् शतितोयमव-गाह्यः । मुद्गममूरचणकजारसास्तृष्ठाघृते-देयाः ॥ मधुरैः सजीवनीयैः शीतैश्च सत्तिकैः शृतं क्षीरं । पानाभ्यञ्जनसेकेष्विष्टं मधुश-र्करायुक्तं तज्जं ॥ वाघृतमिष्टं पानाभ्यङ्गे पुन-स्यमपि च स्यात् । नारीपयः सशर्करमुष्ट्या-अपिनस्यमिष्टुरसः ॥

अर्थ—सौंवार धुले हुए घीकी देह पर मालिश करके ठंडे जलसे स्नान करके दूध पीये । मूग, मसूर और चनेके यूप को घी

में भूनकर देवै । अथवा मधुरगण, जीवनीय गण और शीतल तिक्तद्रव्योंके साथमें औ-टयाहुआ दूध शहत और चीनी मिला हुआ पान, अभ्यंग और सेक में हित है अथवा इसी दूधसे निकाला हुआ घी पान, अभ्यंग और नस्यमें हित होता है । चीनी मिलाकर स्त्रीका दूध, ऊटनी का दूध; अ-थवा ईखका रस नस्य में हित है ॥

शरीरेश्वरसगुडोदकसितोपलाघैः सौद्रसी-धुमाध्वीकैः । वृक्षाम्लमातुल्यैर्गण्डूपा-स्तालशोपघ्नाः ॥ जम्वाघ्रातकचदरी-नडवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्बलाः । हन्धुखशि-रःप्रलेपाः सघृतामूर्च्छाभ्रमतृपणाः ॥ दा-डिमदधित्थलोघ्नैः सविदारीवीजपूरकैः । शिरसःप्रलेपो गौरामलकैर्घृतारनालायुतै-श्च हितः ॥

अर्थ—दूध, ईखका रस, गुडोदक, ( गुड़ का शरवत ) , मिश्री का शर्बत, शहत, शीघु, माध्वीक, वृक्षाम्ल, विजौरा, इनके रसके कुले तालुशोपको दूर करते हैं । जा-मन, अंबाडा, वेर, वेळ फल और पंचपल्लव इनके कल्कका घृत मिलाकर हृदय, मुख और सिर पर लेप करने से मूर्च्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होजाती है । अनार, खैर लोध, विदारी और विजौरा इनके कल्क का सिर पर लेप करनेसे अथवा कपूर और आंवलेको घी और कांजी में मिलाकर लेप करने से तृषा शान्त होजाती है ।

शैवालपङ्कजलजैः साम्लैः सघृतैश्च सक्तु-भिल्लैः । मस्त्वारनालकमलार्द्रवसनम-

णिहारसंस्पर्शाः ॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्रा  
स्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः । क्षौमाद्रिवसना  
नां वराङ्गनानां प्रियाणाञ्च ॥ हिमवदरी  
पनसारित्सरोम्बुजपवनन्दुपादशिशिरा  
णाम् । रम्यशिरोदकानां स्मरणञ्चक  
थाश्चतृष्णाघ्न्यः ॥

अर्थ—शैवाल, काँचड़ और कमलका  
लेप अथवा घी और खटाई मिलाकर सत्तू  
फालेप तृप्ताको शान्त करता है । अथवा  
दही का तोउं, काँजी, गीलावस्त्र, मणियों  
के हारका स्पर्श करने से भी तृप्ताशान्त होती  
है । शीतल जलसे आर्द्र या चन्दन लगी  
हुई नखवालाओंके स्तनों का और हाथोंका  
स्पर्श करने से तृप्ता शान्त होजाती है । रेशमी  
गले वस्त्रोंको धारण करनेवाली मनोहारिणी  
स्त्रियों का स्पर्श करने से भी तृप्ता शान्त  
होती है । हिमालयकी शीतल गुहा, वन,  
नदी, सरोवर, कमल, पवन, चन्द्रमाकी शी-  
तल किरण, शिशिर ऋतु और रमणीय शी-  
तल जलों के स्मरण करने से भी तृप्ता  
शान्त होती है ।

घातघ्नमन्नपानमृदुलघुशतिञ्चवाततृष्णा  
याः । क्षतकासनुतृप्तक्षीरमूर्ध्वातक्षय  
तृप्तास्यात् । स्याज्जीवनीयसिद्धक्षीरघृत  
वातपित्तोजतपै । पैचद्राक्षाचन्दनखजूरौ  
शीरमधुपुतंतोयम् ॥ लोहितकशालित  
ण्डुलखजूरपरुषकात्पलद्राक्षाः । मधुपयक  
लोण्डमेवचजलेतृप्तशीतलपयम् । लोहितश  
लितन्दुलमस्यः सलोधमधुकाञ्जनोतपलः  
पक्षामलोन्मधुजलसमायुतोमृगमयेपयः

अर्थ—वातनाशक, मृदु, लघु और शी  
तल अन्नपान वातजतृष्णाका नाश करने  
वाला होता है । क्षत कासको नाश करने  
वाले घी को पीकर ऊपरसे दूध पी लेने से  
वातजतृप्ता क्षय होजाती है । वातापित्तकी तृप्ता  
में जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत और  
दूध हितकारक है । पित्तकी तृप्ता में दाख,  
चन्दन, खजूर, खस इनके शीतल क्वाथ  
में शहत मिलाकर पीना चाहिये । डालशाली  
चाँवल, खजूर, फालसा, नील कमल  
दाख इनको पिस कर जल में छान  
ले और एक मिट्टी के डेले जो अग्नि में  
अच्छी तरह गरम कर के उस में बुझादे  
फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै ।  
डालशाली चाँवल एक प्रस्थ, लोध, मुलहटी  
रसीत और नीलकमल इनको पीसकर एक  
मिट्टी के पात्र में छान ले और गरम मिट्टी  
का डेला उस में बुझा कर ठंडा होने पर  
शहत मिलाकर पीवै ।

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलपट्ट  
याइवैः ॥ सिद्धेऽम्भस्याग्निनिर्भाः कृष्ण  
मृदः कृष्णासिफतावा । तप्तानि नवकपां  
लान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छुम् । सपा  
कश्चक्रेरवामृतवल्लेयुदकतृपहन्ति । क्षीर  
वतामधुराणां शीतानां शकरामधुविमिश्राः  
शीतकपायामृदभृष्टसंयुताः पित्ततृष्णाघ्नाः

अर्थ—वट, विजौरा, वेतके पत्ते, कुश,  
कांसकी जड़, मुलहटी, इनको डालकर सिद्ध  
किये हुए जल में काली मिट्टी या काली  
बादल वा नवान खाँपड़ोंको अग्नि के समान



यन्वास्तुतालशोपेपिवेद्युतवृष्यमनुमद्यम्  
सर्पिर्भृष्टक्षरिमांसरसाश्चावलःस्निग्धा  
न् । अतिरूक्षदुर्बलानांतर्पणमयेन्नृणाभि  
हाधुपयः ॥ छागोवाघृतभृष्टःशीतोमधु  
रोरसोदृढः । स्निग्धेऽन्नेभुक्त्यातृष्णा  
स्यात्तागुडाम्बुनाशमयेत् ॥ तर्पमूर्च्छाभि  
हतस्यरक्तपिपापैर्हृन्यात् ।

अर्थ—तालशोप में तृपायुक्त रोगी जो बलवान् हो तो वृष्य घृतपान करै ऊपरसे मद्य का अनुपान करै । तथा जो रोगी निर्वल हो तो दूध और घी में तले हुए स्निग्ध मांसरस देवै । अत्यन्त रूक्ष और दुर्बल मनुष्यों की तृपा दूध से शीघ्रही शान्त होजाती है अथवा बकरे का मांसरस सेवन करने से भी तृपा शान्त होजाती है । स्निग्ध अन्नके भोजन करनेसे जो तृपा उत्पन्न होतीहै वह गुडका शर्बत पीने से मिटतीहै । मूर्छारोगीकी तृपा रक्त पित्तनाशक औषधियोंसे दूर होतीहै ।

शीतोष्णजलकीविधि ।

छर्द्याम्लदाहमूर्च्छातमःकृममदात्यया  
स्रविपपिचे ॥ शस्तस्वभावशीतशृतशी  
तंसन्निपातेऽम्भः । हिक्काश्वासनबज्वर-  
पीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे ॥ कफवो  
तक्रुतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेचहितमुष्णम् । पा  
एहृदरपीनसमेहगुल्ममन्दानिलातिसारे  
षु ॥ छीहनिचयेतोयमधुभुक्त्याममशक्ये  
पिवेदल्पम् ॥

अर्थ—वमन, अम्लपित्त, दाह, मूर्छा, तम, हान्ति, मरान्यय, रक्तपित्त और विपरो-

गों में स्वभावशीतल जल दितकर होताहै और सन्निपातमें आटाकर ठंडाकिया हुआ जल हितावह है ॥ हिचकी, स्वास, नदीनज्वर, पीनस, घृतपानजरोग, पार्श्ववेदना, कफवातरोग, कफका गाढापन और संशोधन के पीछे तत्कालही उष्णजल हित होता है ॥ पांडुरोग, उदर रोग, पीनस, प्रमेह गुल्मरोग, मन्दानि, अतिसार और शीहा इन में जल पीना अच्छा नहीं है । जो जल पिये बिना काम न चलसके तो बहुत थोडा पीना चाहिये ।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णादितोजलकां  
क्षन् ॥ नलभेतसचेन्मरणमाश्ववाप्तुया  
दीर्घरोगंवा । तस्माद्दान्याम्बुपिवेतृष्य  
नूरोगीसशर्कराक्षौद्रम् ॥ यद्वातस्यान्य  
त्स्यात्सात्सम्यंरोगस्यतच्चेष्टम् । तस्यांवि  
निष्टत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखज्जेतुम् ॥  
तस्मात्तृष्णापूर्वजयेद्वहुभ्योऽपिरोगेभ्यः

अर्थ—रोग से पीडित तृपाक्षमनुष्य यदि पानी चाहे और उसे न मिलै तो वह शीघ्रही मरजाता है वा उस के कोई बडारोग होजाता है, इसलिये उसे धनियाे का जल शहत और चीनी डालकर पान करावै अथवा रोग के अनुसार और कोई साम्य द्रव्य हो तो उसे देवै । तृपा के शान्त होने पर उस से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव भी सुखपूर्वक दूर होजाते हैं । इसलिये सब रोगों से पहिले तृपा का उपाय करना उचित है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतूयथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवांचपञ्चा  
ना । तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासा  
ध्यतासाधनचोक्तम् ॥

अर्थ—इस तृपा चिकित्सित अध्याय में  
पांचों प्रकार की तृपा के हेतु अग्नि और  
वायु हैं और येही तृपाके साथ उपद्रवों को  
भी उत्पन्न करते हैं । इस अध्याय में तृ-  
पाकी पृथक् २ आकृति, साध्यता, असाध्य  
ता तथा साधन के उपाय वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकावित्तयाअग्निवेशविराचि  
तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचि  
कित्सितस्थानेतृपाचिकित्सितं नाम  
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—:~\*~:—

पंचविंशोऽध्यायः

अथातोविपचिकित्सितं व्याख्यास्याम  
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम विप चिकित्सित नामक अध्याय  
की व्याख्या करेंगे ॥

विप की उत्पत्ति ।

प्रागुत्पत्तिगुणान्पोनिवेगानुलिङ्गान्युप  
क्रमान् ॥ विपस्यमुवतःसम्पगाग्निवेशनि  
बोधमे ॥ अमृतार्थसमुद्रेतुमध्यमानेसुरा  
सुरैः । जग्नेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोपोरदर्श  
नः ॥ दीप्तनेजाधतुर्दष्टोदरित्केनोऽनले  
क्षणः । जगद्दृष्ट्वाविषण्णन्तांविपंसनुवि  
पादनान् ॥

अर्थ—आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश !

मैं तेरे साम्हने विपकी उत्पत्ति, गुण, योनि  
वेग, लक्षण और चिकित्सा को वर्णन करता  
हूँ तू सावधानी से सुन । जब देवता और  
राक्षसों ने मिलकर अमृत के डियें समुद्र  
को मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से  
पहिले एक ऐसा पुरुष निकला जिसका बड़ा  
भयंकर रूप था, उसमें बड़ा तेजधा, चार  
हाड थीं, हरे केश थे और उसकी आँखें  
अग्निके समान थीं, उस पुरुष को देखकर  
सम्पूर्ण जगत् विषण्ण अर्थात् विपाद युक्त  
होगया, इस विपाद के कारणही से उसको  
विप कहने लग गये ॥

विपकी योन्यादि संख्या ।

जग्नमस्थावरायांतयोनां ब्रह्मान्ययोनयत्  
तदभ्युसम्भवंतस्माद्ब्रह्मविधंपावकोपमम्  
अष्टवेगंदशगुणचतुर्विंशत्युपक्रमम् ।

अर्थ—ब्रह्माने इस विप को स्थावर और  
जगम दो योनियों में स्थापित कर दिया  
इसी हेतु से अग्निके समान तीक्ष्ण यह ज-  
लसे उत्पन्न हुआ विपदो प्रकारका होता है ।  
विप में आठ वेग, दस गुण और चौबीस  
प्रकारकी चिकित्सा होती है ॥

तदूर्पास्यभ्युयोनित्वात्संलुदं गुडचद्गतम्  
सर्पत्यग्नुधरापायेतदगस्त्योऽहनास्ति च ।  
प्रयातिगन्दर्वापित्वाविपंतस्माद्जनात्यये ।

अर्थ—विपकी योनि जल है इससे यह  
वर्षावर्षा में जेदताको प्राप्त होकर गुडकी  
तरह पतला पड़जाता है और पृथ्वी में वह  
ने लगता है तथा वर्षा के अन्त में जब अ-  
गस्त्य का उदय होता है तब विप नष्ट हो-

जाता है और इसी हेतु में वर्षा के पीछे वि-  
प मन्दवर्षि पड़जाता है ।

जंगम विपकी योनि ।

सर्पः कीटोन्दुरालतावृधिकाशृङ्गोभिकाः  
जलौकामत्स्यमण्डूकाः शलभाः सकृकण्ट  
काः । श्वसिंहप्राग्रगोमायुतरक्षुनकुला  
दयः ॥ दंष्ट्रिणो भविष्यते पादं द्योत्यं जङ्ग  
ममनम् ।

अर्थ—सर्प, कीट, चूहा, मकड़ी, चीछर,  
छपकली, जोक, मछली, भेंदक, चींटी, किर  
केंटा, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, सिरकटा, तरक्षु,  
और नकुल आदि ये दंष्ट्री अर्थात् दांत  
वाले होते हैं इनकी डाढ़ लगने से जो विप  
उत्पन्न होता है उसे जंगम विप कहते हैं ।

स्थायर विपका वर्णन ।

मुस्तकं पौष्करं कौश्वत्सनाभं वलाहकम् ।  
कर्कटं कालकूटेन्द्रं करवीरकं सङ्गमम् ॥ गा  
लवेन्द्रायुधं तैलं मेघं कुशपुष्पकम् ॥ रो-  
हिषपुण्डरीकाक्षं लाङ्गलव्यञ्जनाभकम् ।  
संज्ञौचं मर्कटं गृगि विपहालाहलं तथा । एव  
मादीनि चान्यानि मूलजानि स्थिराणि च ।

अर्थ—मुस्तक, पौष्कर, कौश्व, वत्सनाभ  
वलाहक, कर्कट, कालकूटेन्द्र, करवीरक,  
गालव, इन्द्रायुध, तैल, मेघक, कुशपुष्पक,  
रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगलवी, अंजनाभक  
संकोच, मर्कट, गृगीविप, हालाहल तथा ऐसे  
ही और भी मूलज और घातुज विप होते हैं

गरविप का वर्णन ।

गरगं योगजं चान्यद्गरसंज्ञं गृगदप्रदम् ॥  
फालान्तरविपाकित्वाक्षतदाधुहरत्सम् ।

अर्थ—विपके संयोगसे उत्पन्न हुआ  
संयोगी विप होता है इसे गरविप कहते हैं  
यह रोगोंको उत्पन्न करता है इसका विपाक  
बहुत दिनके पीछे होता है इससे वह प्राणों  
को शीघ्र नष्ट नहीं करता है ।

जंगम विप के कार्य ।

निद्रांतन्द्रां वलमंदाहंसपाकं लोमहर्षणम् ॥  
शोकं चैवातिसारं च जनये जंगमं विपम् ॥

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्लान्ति, दाह, पाक  
रोमहर्षण, सूजन और अतिसार ये सब  
जंगम विपके कर्म हैं ॥

स्थायर विपके कर्म ।

स्थावरं तु ज्वरं हि विकादन्तर्हर्षणं गलग्रहम् ॥  
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्च जनये द्विपम् ।

अर्थ—ज्वर, हिका, दन्तहर्ष, गलग्रह,  
शाग, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा,  
इनको स्थावरविप उत्पन्न करता है ॥

दोनों विपोंका परस्पर विरोध ।

जंगमस्यादधोभागमूर्द्धभागतु मूलजम् ॥  
तस्मादांष्ट्रिपिपमौलं हन्ति मौलं च दंष्ट्रिजम् ।

अर्थ—जंगमविप अधोगामी होता है और  
स्थायर, विप ऊर्ध्वगामी होता है, इससे जंग  
म विप स्थावरविपको और स्थावर विप जं-  
गमविपको मारता है ।

सातों रोगोंके कर्म ।

तृणमोहदन्तर्हर्षप्रसेकवमथुलमाभवनत्या-  
दौ विगेरसप्रदोपादसृक्प्रदोपात्क्रितीये च  
वैवर्ण्यं भ्रमवैपथ्यमूर्च्छाजृम्भांगचिमिचिमा  
तमकाः ॥ दुष्टपिप्शितातृतीयगण्डलकण्डू-  
श्वथुकोठाः । बातादिजाश्चतुर्थे छर्दि

विष को त्रिदोषानुगामित्व ।

दोषस्थानप्रकृतीः प्राप्यान्यतमं ह्युदीरय  
ति ॥ स्याद्वातिकस्य वातस्थाने कफपित्त  
लिंगमीपत्तु । तृष्णार्शुचिमोहगलग्र  
हछर्दिफेनादिपित्ताशयि स्थितं वै चिकस्य  
कफवातयोर्विपतद्वत् । तृट्कासज्वरवम  
धुक्लमदाह तमोऽतिसारादि ॥ कफदेश  
गतञ्चकफस्य दर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ॥  
लिंगं श्वासगलग्रहकण्डूलालवमथ्वादि ॥  
दूर्पाविपंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्त  
लिंगञ्च ॥ विषमेकैकदोषसन्दूष्यहरस्य सू  
नेवम् ।

अर्थ—विष दोष के स्थान और प्रकृति  
को प्राप्त करके एक दोषको उदीर्ण कर  
देता है अर्थात् जौनसा दोष अधिक होता  
है उस को स्थान और प्रकृति को प्राप्तकर  
के उसी दोषको घटाता है जैसे वात प्रकृति  
वाले मनुष्यके वातस्थानमें जाकर वातज  
तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलग्रह, छर्दि  
और फेनादि उत्पन्न करता है और उस सम-  
य कफपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ।  
पित्त प्रकृति वालेके पित्ताशय में जाकर  
पित्तज तृप्ता, खांसी, ज्वर, वमन क्लान्ति,  
दाह, अन्धकार और अतिसारादि उत्पन्न  
करता है तथा कफ वात के लक्षण कम  
पाये जाते हैं । इसी तरह विषके कफ स्थान  
में जाने से कफजन्य श्वास, गलग्रह, कण्डू  
लालात्त्राव और वमधु आदि होते हैं तथा  
वातपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ॥  
तथा दूर्पाविष रक्तको दूषित करके किटिभ,

पित्ती आदि रक्तज उपद्रवोंको करता है ।  
इसतरह विष एक-एक दोष को दूषित  
करके प्राणों को नष्ट करदेता है ॥

विष से मरने के हेतु ॥

क्षरति विपते जसासृक् तत्त्वानि निरुद्ध च मारयति जन्तून् । पीतं मृतस्पृहदिति प्रतियुज्यते विद्योर्दशदेशे स्यात् ॥

अर्थ—विषके तेजसे रक्त क्षरित होकर  
अर्थात् झडकर रोमके छिद्रोंको रोककर  
मनुष्योंको मार डालता है । पान किया हु-  
आ विष मृतकके हृदय में स्थित होजाता है  
और काटे हुए वा विषसे बुझे तीर आदि  
से घायल हुए मनुष्य के विष दश स्थान  
में स्थित होता है ॥

विषद्वारा मृत्युलक्षण ।

नीलोष्णदन्तशैथिल्यकं शपतनांगभंगविक्षे-  
पाः । शिशिरैर्नलोमहर्षो नाभिहेतुदण्ड  
राजीच ॥ क्षतजं क्षताच्च नायास्त्युक्तान्ये  
तानि मरणलिंगानि ॥

अर्थ—ओष्ठोंपर नीलापन दातोंमें शिथि-  
लता, बालोंका गिरना, अंग भंग, अंगाविक्षे-  
प, शीतल वस्तु से रोमाञ्च न होना, लक-  
डी से चोट मारनेपर शरीर पर दाग न प-  
डना, तथा घाव से रुधिर न निकलना ये  
सब विष द्वारा मरने के लक्षण हैं ॥

विष में चिकित्सा भेद ।

एभ्योऽन्यथा चिकित्स्यास्तेषां श्लोपक्रमा  
नृशृणुमे ॥ मन्त्राग्निष्टोत्रकर्त्तनानि नृष्पीडन  
चूपणाग्निपरिरपेकाः । अवगाहनरक्तमो-  
क्षणवमनधरेकोपधानानि । हृदयावरणा-

अजननस्यधूमलेहौपथमशमनानिप्रतिसा-  
रणंप्रतिविपसज्ञासंस्थापनलेपः ॥ मृतस-  
ज्जीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः  
स्युरूपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतयातान्  
अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत  
लक्षण वाला चिकित्साके योग्य होता है  
अथ हम उनकी चिकित्सा का वर्णन करते  
हैं ॥ मन्त्र, अरिष्ट [ दृष्ट स्थानका बाधना ]  
उत्कर्तन ( दृष्टका किसी पैनी छुरी आदि  
से कतरना वा खुरचना ), निष्पीडन  
( भींचकर मवाद निकालना ), चूषण  
[ दंश स्थान का चूमकर धूक देना ] अग्नि  
कर्म [ जलादेना ], पपिक, अवगाहन,  
रक्तमोक्षण, घमन, विरेचन, उपधान, हृदया-  
घरण, अंजन, नस्य, धूम, अवलेह, औषध  
प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविप, संज्ञा स्था-  
पन, लेप और मृत संजीवन । ये चौबीस  
प्रकारकी चिकित्सा हैं । जहां जहां ऊपर  
कही हुई चिकित्साओं का प्रयोग किया  
जाता है उसका वर्णन करते हैं ॥

विप में बन्धनादि विधि ।

दंशास्तुविपदष्टस्यानिमृतवेणिकाभिभपक्व-  
वद्धा । निष्पीडयेद्विशदंशमुदरेन्मर्मवर्जम् ॥  
वातदंशवाचूपेन्मुखेनयत्रचूर्णपांशूपूर्णेन  
मच्छन्नवेधजलौकःशृंगैःस्नान्वन्ततोरक्तम्

अर्थ—काठे हुये मनुष्य के दंश स्थान  
से जो विप न निकला हो और यदि वह  
दंश हाथ वा पांव ऐसी जगह में हो जो  
बंधने के योग्य होतो जहां तक विप  
फैल गया हो वहांतक ऊपर और नीचे वेणि

का नामक बंधन से बांधकर चारों ओर से  
खूब भींचे और फिर दंशस्थानको किसी पै-  
नी छुरीसे खुरच डाले परन्तु मर्मस्थान पर ऐसा  
न करे । जो वह दंशस्थान बांधने वा काटने  
योग्य न हो तौ मुख में जी का चून वा धूल  
भरकर दंशस्थान को चूसै, फिर उसे चौरकर  
पछना लगाकर वा वेधकर वा सींगियाजोका  
वा सींगी लगाकर रुधिर को निकाल डाले ।

विपदूषितरक्तका परिणाम ।

रक्तेविपप्रदुष्टेदुष्येत्प्रकृतिःततस्त्यजेत्प्रा-  
णान् ॥ तस्मात्तुमघर्षणैरसृग्वर्तमानं  
भवत्यस्यात् ।

अर्थ—विपसे रक्तके दूषित होनेपर प्रकृ-  
ति दूषित होजाती है और प्रकृतिके दूषित  
होनेपर प्राण जाते रहते हैं, अतएव जो ऊपर  
कही हुई रीतोंसे भी रक्त न निकला होतौ  
निम्नलिखित घर्षणों का प्रयोग करने से रक्त  
प्रवृत्त होजाता है अर्थात् निकलने लगता है ॥

घर्षणप्रयोग ॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्ता-  
काः ॥ घर्षणमातिप्रवृत्तेवटादिभिःशीत-  
लैलेपः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, घरकाधूमसा, हलदी,  
पांचों नमक और बेंगन इनसबको पीसकर  
काटने की जगहपर धीरे २ रिगडनेसे बन्द  
हुआ रुधिर बहने लगता है, जो रुधिर अत्यं-  
न्त बहने लगे तौ वटादि शीतल वृक्षोंकी  
छालको पीसकर लेप करदेवै ॥

विपके फैलने में रक्तको प्रधानता ॥  
रक्तादिविपाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदं हमकैः

स्तत् ॥ शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्कन्नेव्ययं  
यातिविषवेगः॥

अर्थ—रक्तही विपका आघान हे जैसे पवनके लगनेसे अग्नि बढतीहै इसीतरह रुधिरके संसर्ग से विष बढताहै । शीतल लेप से रक्तके जमजानेपर विष फैल नहीं सकताहै। कारण यहहै कि रुधिर दिन रात सब देहमें घूमताहै तौ विष भी उसके साथमें फैलता चलाजाता है और जब रुधिरही बहनेसे बन्द होगया तौ विष कैसे फैलसक्ताहै ॥

विपवेगफैलक्षण ॥

विपवेगाःमदमूर्च्छाविपादहृदयद्रवाःमव-  
र्तन्ते ॥ शीतैर्निर्वर्तयेचान्यूज्यैश्चलोम  
हर्षःस्यात्॥

अर्थ—विपके वेगसे मद, मूर्च्छा, विपाद और हृदयमें कम्पन होती हैं, शीतल उपचार से ये उपद्रव शान्त होजाते हैं तथा पंखकी हवा फरनेसे रोमाञ्चभी खदे होजातेहैं ॥ तद्विरवमूलच्छेदादंघ्रच्छेदादृष्टादिप्रपया-  
तिविषम् ॥ अचूणमानयननञ्जलस्यसे  
तुर्यधारिष्ठा । त्वद्मांसगतोदाहोदहति  
विपरावर्णहरतिरक्तात् ॥

अर्थ—जडके काटनेसे जैसे वृक्ष नहीं बढता है, उसीतरह दंशस्थान के छेदन करनेसे विष नहीं बढने पाताहै । दंश-  
स्थानके चूसनेसे विष निकलजाताहै और जैसे जलपर पुल बांधनेसे जल का वेग रुकजाता है उसीतरह दंशस्थान पर रुपर नीचे जोर से बांधे देनेपर विपका वेग रुकजाता है ॥ जब विष त्वचा और मांस

में पहुँच जाताहै उस समय अग्नि से दंश स्थानको दग्ध करनाहितहै जब विष रुधिर में पहुँच जाताहै उस समयरुधिरको निकास देनेसे विष क्षीण होता है

प्रथमद्वितीयवेगमेंचिकित्सा  
पीतंवमनैःसद्योहराद्विरेकैर्द्वितीयेतु ॥ आ-  
दौहृदयंरक्ष्यतस्यावरणंपिवेद्यथालाभम्  
मज्जानंमधुघृतगैरिकमथगोमयरसंवा ॥  
तद्वंसपक्षमथवाकाकनिष्पीड्यतद्रसंवमनं  
छागादीनांवातृक्भरममृदंवापिवेदाशु ॥

अर्थ—पिया हुआ विष वमन कराने से तत्काल निकलजाताहै ॥ द्वितीय वेग में पण्डुचनेपर विरेचन कराना उत्तमहै ॥ पीत विषमें सबसे पहिले हृदयकी रक्षा करना उचित है ॥ विष द्वारा हृदयका आवरण होनेपर मज्जा, शहत, घी, गेरू, गोवरका रस, हंस या कौए का मांसरस पान कराके वमन करावै ॥ अथवा वक्त्रेका रुधिर अथवा मिट्टी या भस्म इनमें से जो जो मिले सके शीघ्रपान करावै किसी २ पुस्तक में तद्वंसपक्षादि, की जगह 'इक्षुसुपक्कनथ वाकाकनिष्पीड्यतद्रसंवलदम्, पाठ भी है )

तृतीयादि वेगों में चिकित्सा  
सारोगदस्तृवीयेशोफहरेलखनंसमध्वम्बु ॥  
गोमयरसदचतुर्थवेगेसकापित्यमधुसर्पिः ।  
काकाण्डाशिरीषाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतन  
मज्जनेनस्यम् ॥ स्यात्पञ्चमेऽथषष्ठेसं-  
ज्ञायाःस्थापनंकार्यम् ॥ गोपित्तयुतारज  
नीमज्जिष्ठागीरचपिप्पलापानम् ॥

अर्थ—विपके तीसरे वेग में क्षार गद,

तकटमीकरञ्जौरसोघ्नीसिन्धुकारिकार-  
जनी ॥ मुरसरसाञ्जनैरिक्कमञ्जिष्ठानि  
म्बुनिर्यासाः । वंशत्यगम्बगन्धाहिंशुदधि  
त्याम्लचेतसंलाक्षा ॥ मधुमधुकुसुमराजी  
वचारुहारीचनाचमवाम् । अगदोऽयं वै  
श्रवणायाख्यातः ज्यम्बकेण पृथक् ॥  
अप्रतिहतप्रभावः ख्यातो महागन्धहस्तीति ।  
पित्तेन गवां पोष्ये गुलिकाः काश्चर्यास्तु पुष्पयो-  
गेन । पानाञ्जनमलेपैः प्रसाधयेत् सर्वकर्मा-  
णि पैल्यं कण्टंतिमिरं रात्र्यन्धं काचमर्बुदं  
पटलम् ॥ हन्ति सततं प्रयोगादितमिषपथ्या-  
शिर्नापुंसाम् । विषमज्जरानजीर्णदंष्ट्रा-  
विम्विषकां पामाम् ॥ कुण्टिकिदिभंश्चित्रं वि-  
चर्चिकां चोपहन्ति नृणाम् । विषं मूषिकल-  
तानां सर्वेषां पक्षगानाञ्च ॥ आशुविषं ना-  
शयति समूलमथ कन्दजं सर्वम् । एतेन लि-  
प्ताग्निः सर्पाद्यह्णीतभक्षये च विषम् ॥  
कालातीतोऽपि नरो जीवति किञ्चिन्निरा-  
तः ॥ आरुदेगुदलेपो यो निलेषश्च मूढग-  
र्भाणाम् । मूर्द्धातिपुचललाटे मलेपमाहुः  
प्रधानतमम् ॥ भेरीमूढपटहाशुद्राण्य-  
शुनातधाध्वजपताकाः ॥ लिप्तानि विष-  
निस्त्वैष ध्वनयेदर्थं येन प्रतिमान् । यत्र च  
सन्निहितोऽयं न तत्र बालग्रहान् खासोटाः  
न च कार्पण्येतालावहन्ति नापर्वणामन्त्राः  
सर्वग्रहान् तत्र प्रभवन्ति न चाग्निशस्त्रपचौ-  
राः ॥ लक्ष्मीश्च तत्र भजते तत्र महागन्धह-  
स्त्यस्ति । पिण्यमाण्डमञ्जिष्ठसिद्धमन्त्र-  
हृदीरधेत् ॥ मम माता जनयानामाविजयो ना-  
मपे पिता । शोऽहं जयोनया पुत्रो विजयो

ऽयजयामि च ॥ नमः पुरुषसिंहाय विष्णवे  
विश्वकर्मेण । सनातनाय कृष्णाय भवाय  
विभवाय च ॥ तेजो हृष्टाकपेः साक्षात्तेजो-  
प्रक्षेन्द्रयोर्यमे । ययाद्नाभिजानामि वामु-  
देच पराजयम् ॥ मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्र-  
स्य च शोषणम् । अनेन सत्यवाक्येन सिद्ध्य-  
तामगदो ह्ययम् ॥ हिलिमिलिसंस्पृष्टैरस-  
सर्वभेषजैरुमे स्वाहा ॥

अर्थ—तेजपात, अगर, मोथा, इलायची  
पांच प्रकारके निर्यास [ रात, गूगल, अ-  
फीम सिलहक और लोबान ] चन्दन, अस-  
वरग, दालचीनी, जटामांसी, नालकमल,  
नेत्रवाला, हरेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु  
नागकेसर, कुकुम, गंधतृण, कूठ, प्रियंगु,  
तगर, सिरस के फल, झूल, पत्ते जड और  
छाल, त्रिकुटा, हरिताल, मनसिल, कालाजीरा,  
सफेद कोयल, कटमी, दोप्रकार के कंज,  
सरसों, सम्हाल, हलदी, गुजरी, रसौति,  
गेरू, मजीठ, नीमका निर्यास, यांसफाछाल,  
असगंध, हांग, कैथ अमलवेत, छाल, म-  
हुशा, मुलहटी, सोंगराजी, पच, दूब, गोरो-  
चन । यह पष्ट्यंग औषध इत्यन्वक्त ने  
वैश्रवण से कही थी । इसका प्रभाव अ-  
निवार्य है । इसे महागंधहस्ती कहते हैं ।  
इन साठ औषधियोंको इकाट्टी करके गौ  
के पित्तके साथ पुष्प नक्षत्र में गोदियां  
बनावें । इन गोदियोंका पान, अंजन और  
लेप द्वारा प्रयोग करने से सम्पूर्ण कार्योंकी  
सिद्धि होती है हितकारी अल्प और पध्य  
भोजन करनेवाले मनुष्य को निरन्तर सेवन

करने से इस औषधसे पैल, खुजली, तिमिर, रतौंध, काच, अर्बुद और पटलरोग दूर हो जाते हैं । तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, विसृचिका, पामा, कोढ़, किटिभ, शिक्त्रकुष्ठ और विचर्चिका जाते रहते हैं । मूषकविष, मफडी का विष, सब प्रकारके सर्पों का विष, मूलजविष और कन्दजविष सब शी-  
प्रही दूर होजातेहैं । इस औषध का शरीर पर लेप करके मनुष्य सर्व को पकडसक्ता है, विष खा सक्ताहै । कालातीत मनुष्य भी इस औषधके धारण करने से निरातंक रहसक्ता है । इस औषध का आनाहरोग, गुदरोग, मूढगर्भा स्त्रीकी योनि, मूर्धा, तथा अर्तिरोगमें ललाट इन स्थानोंपर लेप करना अत्यन्त उत्तमहै । जो रोगी विष से मूर्च्छित होगया हो उस के कानपर भेरी, मूढगर्भा और ढोलक पर इस औषध का लेप करके बंजावे । तथा इसी औषध का लेप कर्क के छत्र, ध्वजा, और पताका विपयोगी को दिखावे । जहां यह औषध होती है वहां पालग्रह, राक्षस, कर्मण, वेताल, और अ-  
श्वर्षणोक्त मंत्र नहीं चल सकते हैं । सम्पूर्ण ग्रह, अग्नि शस्त्र, राजा और घोर अपनी दुश्चेष्टा नहीं करसकते हैं । जहां यह औ-  
षध होती है वहां लक्ष्मी निवास करती है । इस औषध को पीसते समय इस मंत्रका पाठ करना चाहिये, यथा—“मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता । सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामिच । नमः मुख्य सिंहाय विष्णवे विश्वकर्मणे । सनात-

नाय कृष्णाय भवाय विभवायच । तेजो वृ-  
पाकपेः साक्षात् तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे । यथाहं  
नाभि जानामि वामुदेव पराजयम् । मातुश्च  
पाणिग्रहणं समुद्रस्यच शोषणम् । अनेन  
सत्यवाक्येन सिद्धतामगदोऽध्ययम् । हिल  
गिलि संस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजैतुमे स्वाहा, ॥  
यह सिद्ध मंत्र है ॥

विपरोगनाशक अन्यप्रयोग ।

ऋषभकजीवकभार्गोमधुकोत्पलधान्यके  
सगजाज्यः ॥ ससितगिरिकोलमध्याः  
पेयाःश्वासज्वरादिहराः । हिंशुचकृष्णा  
युक्तंकपित्थरसमग्नूलवणंच । तमधुसि-  
तेपातव्योज्यरहिकाश्वासकांसघ्नैः ॥  
लेहःकोलास्थ्यज्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्व-  
म्याम् । घृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्चिस्तु  
हिकाघ्नी ॥ शिखिर्बर्हयलाकास्थीनिः  
पपाश्वन्दनेचघृतयुक्तः । धूमोऽगृहशयना  
सनयस्त्रादिपुशस्यतेविपनुत् ॥ घृतयुक्ते  
नतकुष्ठेभुजगपतिशिरःशिरीषपुष्पंच ।  
धूमागदःस्पृतोऽयंसर्वविपन्नःश्वयधुहृच्च  
जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातकफकुभपुष्पस-  
र्जरसाः । श्वेताएवधूमउरगाखुकीटवस्त्र  
कृगिनुदग्न्यः ।

अर्थ—ऋषभक, जीवक, भाडंगी, मुलहटी,  
नीलकमल, धनिया, केसर, काळाजीरा, चीनी  
गेरू, और वेरकी गुठली की मांगी इनको  
पान करने से श्वास और ज्वरादिक दूर हो-  
जाते हैं । हींग, पीपल, कैथका रस, संचल  
नमक इनका शहत और चीनी मिलाकर  
टान करनेसे ज्वर, हिचकी, श्वास और खां-



भेद होता है । इसको मुख में धारण करने से मुख तालु और ओष्ठों में चिमचिमाहट, जिह्वा में शूल, जडता और विवर्णता, दन्त-दर्प, हनुस्तम्भ, मुखदाह लालास्राव और कंठ विकार होजाते हैं । विषयुक्त अन्नपान के आमाशयमें पहुँचने पर विवर्णता, पसीने भंगसाद और उत्फेद होता है, दृष्टिनाश तथा हृदयविरोध भी होता है और देह पर सैकड़ों विन्दुके समान फुत्सियां होजाती हैं । विषयुक्त अन्न के पकाशयमें पहुँचने पर मूर्च्छा, मद, मोह, दाह और बलनाश होता है । विषके उदरमें स्थित होजाने से तन्द्रा, कृशता और पांडुरोग होते हैं ।

दन्तपवनस्य कूर्चः विशीर्यते हि दन्तोष्ण्यां सशोथश्च ॥ केशच्युतिः शिरोग्रन्थयश्च सविपेशिरोऽभ्यङ्गे । दुष्टेऽङ्गनेऽक्षिदाहः सान्नायुपदेहशोथोरागाश्च ॥

अर्थ—विषयुक्त दन्तधावन की कूची को दांतोंपर फेरनेसे मसूड़े और होठों पर सूजन होजाती है, दांतनकी कूची विशीर्ण होजाती है । विषयुक्त द्रव्यका शिर पर अभ्यंग करनेसे घाल गिर पड़ते हैं और शिर पर फुत्सियां होजाती हैं । अंजन में विष हाँनेसे आँखों में दाह, स्राव, उपदेह, सोथ और ललाई होती है ।

आधिरादौ कोष्ठः स्पृश्यैस्त्वग्दुष्यते दुष्टैः ॥ स्नानाभ्यङ्गे त्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः ॥ कङ्घातिलोमहर्षाः कोष्ठपिडकाचिमिचिमाशोधाः । एते करघरणदाह तोदकलम विकाराश्च ॥ भूपादुकाश्वगजकेतुर्षश

यनासनैर्दुष्टैः । माल्यमगन्धम्लायति शिरसोऽङ्गोऽथ लोमहर्षकरम् ॥ स्तम्भयति खानि दर्शनमुपहान्ति च नासिकां धूमः ॥ कृपतडागादिजलदुर्गन्धसकलपंविवर्णञ्च ॥ पीतं श्वयं धुंकोटान् पिडकांश्च करोति मरणं च आदावा माशयगे वमनं त्वक्स्थे मदेहसेकादि ॥ कुर्याद्विपकृचि कित्सां दोषबलञ्चैव हि स मीक्ष्या इति मूलविषविशेषाः प्रोक्ताः शृणु न ह्यमस्यातः ॥

अर्थ—विषयुक्त भोजनके करनेसे प्रथम ही कोष्ठ में दाह होता है । विषयुक्त छूने के द्रव्यसे प्रथमही त्वचा में दाह होता है । इसीतरह विषयुक्त स्नान, अभ्यंग, उतासादन, वस्त्र, और अलंकार धारण करने से खुजली, अर्ति, रोमोद्गम, पित्ती, पिडका, चिमचिमाहट और सूजन होती है । पृथ्वी खडाम, हाथी घोंडों के जीन, शय्या और आसनोके विषसे दूषित होने पर हाथ और पाँव में दाह, तोद, हान्ति और अभ्यंग विकार उत्पन्न होजाते हैं । विषयुक्त पुष्प गंधहीन, मलीन, शिर पीडाकारक और रोमोद्गमकारक होते हैं विषयुक्त धूआँ के नासिका में प्रवेश होने से नासिका के छिद्र रुकजाते हैं और नेत्रोंमें पीडा होती है ॥ कूर् वा तालाव आदि का जल विषके संसर्ग से दुर्गन्धित, कलपित और विवर्ण होजाता है इस जलके पीनेसे सूजन पित्ती, फुत्सी तथा मृत्यु भी होजाती है ॥ विषके आमाशय में प्रवेश करतेही प्रथम वमन करावै तथा त्वचामें स्थित होने पर प्रदेह और परिपेक

कराये ॥ इसमें वैद्यको उचितहै कि रोगीके दोष और बलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे इसनह मूलजघिषोंके भेद वर्णन किये गयेहै अब हम जगमघिषोंका वर्णन करते है ॥

सर्पों के भेदादि वर्णन ॥

इहर्द्वीकरःसर्पोंमण्डलीराजिमानिति ॥

त्रयोपथाक्रमंघातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः

अर्थ—यहां र्वीकर, मण्डली और राजिमान् तीन तरह के सर्प होतेहैं इन में से र्वीकर घातको, मण्डली पित्तको और राजमान् कफ को कुपित करनेवाले होते हैं ।

सर्पों की परीक्षा ।

र्द्वीकरःफणीक्षेयोमण्डलीमण्डलाफणः॥

विन्दुलेखोविचित्रांगःपन्नगःस्यासुराजिमान्॥

अर्थ—जिस सर्प का फण करछी के सदृश होता है उसे र्वीकर कहते हैं । जिसका फण गोल होताहै वह मण्डली होताहै और जिसके देह पर अनेक प्रकार के विन्दु और रेखा होतीहै वह राजिमान् कहाता है ।

उक्तसर्पों के विष के गुण ।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णस्वादुशीतलम्  
विषंयथाक्रमंतेपातस्माद्घातादिकोपनम् ।

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका विष विशेष करके रूक्ष और कटु है, मण्डलीका विष अम्ल और उष्ण है तथा राजिमान् का विष स्वादु और शीतल है और इसी हेतु से ये क्रम से वात, पित्त और कफके प्रकोपकर्त्ता हैं ॥

र्द्वीकरके दंशका लक्षण ।

र्द्वीकरकृतोदंशःमूक्षमदंष्ट्रपदोपितः॥

निरुद्धरक्तःकूर्मभावातव्याधिकरोमनः

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका दंशस्थान अर्थात् काटने की जगह मूक्षम और काली होती है, उसमें से रुधिर नहीं बहता है, देखने में कछुएकी दिखाई होतीहै तथा उग्न मनुष्यमें घातव्याधिके लक्षण दृष्टिगत होने लगतेहैं ॥

मण्डली के दंश का लक्षण ।

पृथ्वर्पितःसशोफश्चदंशोमण्डलिनाकृतः॥

पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥

अर्थ—मण्डली सर्पका दंशस्थान बड़ा मूजनयुक्त, पीतवर्ण और पीतरक्त से युक्त होता है इसमें सब तरहके पित्तविकार दिखाई देतेहैं ॥

राजिमान के दंशका लक्षण ।

कृतेराजिपतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफ

कृत् । सिग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्म

व्याधिसमरिणः ॥

अर्थ—राजिमान् का दंश पिच्छिल, स्थिर, शोफकृत्, सिग्ध, पाण्डुवर्ण होता है इस के घातका रुधिर जमजाता है और विशेष करके कफ लक्षण दिखाई देते हैं तथा कुछ र वात के भी होते हैं ॥

सर्पोंकेलिंगभेद ।

वृत्तभोगोमहाकायःफणऊर्द्धलक्षणःपुगान् ।

स्थूलमूर्धासमांगश्चस्त्रीततःस्याद्विषय

यात्॥नलीविःसूतस्त्वधोदंष्ट्रिःरवरहीनः

प्रकम्पते । स्त्रियादष्टोविषयस्तेरतःपुंसा

वृद्धावालास्त्वचोमुक्ताः सर्पामन्दविपाः  
स्मृताः ॥

अर्थ—पानी का मारा हुआ, क्षीण, भीत  
न्यौले से पराजय किया हुआ, वृद्ध, बालक  
जिसने अभी काचडी छोड़ी हो ऐसे सर्प  
मन्द विप होते हैं ॥

विपको सर्व देहाश्रितत्व ।

सर्वदेहाश्रितकोधाद्विपसर्पाविमुञ्चति ।

सदेवाहारहेतोर्वाभयाद्दानममुञ्चति ॥

अर्थ—सर्प क्रोधावेश में अपने सम्पूर्ण  
देह से विप को निकालता है परन्तु आहार  
हेतु या भय से नहीं निकाल सकता है ।

अन्य विपाक्त कौडोंकी प्रकृति ।

वातोत्त्वणविपाः प्रायः उच्चिदिग्राः सवृद्धि-  
काः । वातपित्तोत्त्वणाः कीटाः श्लैष्मिकाः  
कणभादयः ॥ यस्य यस्य हि दोषस्य लिंगा-  
धिक्यानि लक्षयेत् तस्य तस्यौषधः कुर्या-  
द्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥

अर्थ—उच्चिदिग और घोंछू इन दोनों  
के विप प्रायः वातपित्ताधिक्य और कणम  
का विप कफाधिक्य होता है । जिस जिस  
दोष के विशेष लक्षण दिखाई पड़ें उसी  
दोष के विपरीत गुणवाले औषधों द्वारा  
चिकित्सा करना उचित है ॥

वातिकविपके लक्षण ॥

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः शिरायासोऽस्थि-  
पर्वकः ॥ घूर्णनोद्दृष्टनंगात्रयावतावाति-  
के विपे ॥

अर्थ—वातिक विपमें हृत्पीडा, ऊर्ध्वा-  
स्तम्भ, शिरायास, अस्थि और पर्व में

वेदना, घूर्णन, उद्दृष्टन [ अंगड़ाई ] और  
शरीर में कालपन ये लक्षण होते हैं ।

पैतिकविप के लक्षण ॥

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोद्वाहः कटुकास्य-  
ता ॥ मांसावदारणशोफोरुक्पीतश्च पैतिके

अर्थ—पैतिक विप में बेहोशी, उष्णश्वास,  
हृदयमें दाह, मुखमें फडवापन, मांसका  
विदीर्ण होना और लाल पाली सृजन ये  
लक्षण होते हैं ॥

श्लैष्मिक विप के लक्षण ॥

वम्परोचकदृक्लासमसेकोत्तेशगौरवैः ॥  
सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्यात्श्लेष्माधिकं  
विपम् ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, दृक्लास, प्रसेक,  
उत्तेश, भारापन, शीतलता, मुखमें गीठा-  
पन ये श्लैष्मिक विपके लक्षण हैं ।

वातिकविपमें चिकित्सा ।

खण्डेन चन्नणालेपस्तैलाभ्यंगश्च वातिके  
स्वेदो नाडीपुलाकाघैर्बृंहणश्च विधिर्हितः ॥

अर्थ—वातिकविप में खांडकालेप, तैल  
मर्दन, नाडीस्वेद, पुलाकादिस्वेद और  
बृंहणविधि हित हैं ॥

पैतिकविपमें चिकित्सा ।

मुशीनैः स्तम्भयेत्सेकैः प्रदेहैश्चापि पैतिकम्

अर्थ—पैतिक विप में शीतल परिपेक  
और प्रदेहादि द्वारा स्तम्भन करें ॥

श्लैष्मिकविप में चिकित्सा ॥

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥

अर्थ—श्लैष्मिक विपको लेखन, छेदन,  
स्वेदन और वमनद्वारा दूर करना चाहिये ॥

शीतक्रियोपयोगीविष ।

विपेज्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच । अहृ  
थिकोद्यद्विपुमायःशीतोविधिर्हितः ॥

अर्थ—बीछू और उच्चिटींगको छेदकर  
सब प्रकारके सर्वस्थानगत विषोंमें शीत-  
क्रिया हितहै ॥

बीछूके विष में चिकित्सा॥

घृदिचकेस्वेदमभ्यंगघृतेनलवणेनच॥से-  
कांश्चोष्णान्मयुज्जीतभोज्यपानञ्चसर्पिषः

अर्थ—बीछू के विषमें घृत और नमक  
से पसीनादेवै, मालिश करावै, उष्णपारिपेक  
घृतमिश्रित भोजन और घृतपान हितहैं॥

उच्चिटींगके विषमें चिकित्सा॥

एतदेवोच्चिटींगेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः ।  
उद्धर्तनसुखाम्बूष्णैस्तथावच्छादनंघनैः॥

अर्थ—उच्चिटींगके काटनेपर बीछूके  
समानही चिकित्सा करनी चाहिये । जहां  
डंक लगाहो वहां घूळि लगाकर प्रतिलोमन  
करै, उद्धर्तन करै और सुहाते हुए गरमज-  
लमें भीगेहुए कपडे की कई तह करके  
दशस्थान पर रखदेवै ॥

त्रिदोषजविषकेलक्षण ॥

स्यात्त्रिदोषप्रकोपात्तथाधातुविपर्य-  
यात् । शिरोऽभितापीलालास्राव्यधोवक्त्र-  
स्तथाभवेत् ॥

अर्थ—त्रिदोष के प्रकोप और धातुओं  
के विपर्ययसे काटेहुए मनुष्यके सिर में  
ताप, लारका गिरना और मुख का नीचा  
होजाना ये लक्षण होते हैं ।

अन्यसर्पों के लक्षण ।

अन्येऽप्येवंविधान्यालाःकफवातप्रकोप  
नाः । दृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छा  
करामताः॥

अर्थ—इनसे अतिरिक्त और भी अनेक  
प्रकार के व्याल हैं जो कफवातको प्रकुपित  
करतेहैं इनके काटनेसे हृदय में वेदना, शि-  
रःशूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा, और मूर्च्छा होतीहै।

सविपशरीरकेलक्षण ॥

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्षेदोऽणशोपणम्  
विदाहरागरूपाकाःशोफोऽग्रन्धिर्निकुञ्च  
नम् ॥ दंशावदरणस्फोटाःकाणिका  
मण्डलानिच ॥ ज्वरश्चसविपेलिगंविप  
रीतन्तुनिर्विपे ॥

अर्थ—खुजली, निस्तोद, विवर्णता, सू-  
न्यता, छेद, उपशोपण, विदाह, राग, वेद-  
ना, पाक, शोफ, ग्रन्थि, निकुञ्चन, दाहस्था-  
नका फटना, फोडे, काणिका, चकत्ते, और  
ज्वर ये सविप शरीरके लक्षण हैं। इनसे विप  
रीत निर्विप शरीरके लक्षण होतेहैं ।

तत्रसर्वेयथायस्थप्रयोज्याःस्युरूपक्रमाः  
पूर्वोक्तविधिमन्यञ्चयथावद्भुवतःशृणु॥

अर्थ—सविप शरीरमें अवस्थाके अनुसार-  
र चिकित्सा करनी चाहिये इन चिकित्सा-  
ओंमें से थोड़ीसी पहिले कहचुके हैं और  
कुछ अब कहतेहैं ।

विपरोग में चिकित्सा ।

हृदिदाहेप्रसेकेवाविरैकवमनंभृशम् । य  
थावस्थप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः॥शि  
रोगतेविपेनस्तःकुर्यान्मूलानिमुद्धिमान् ।

बन्धुजीवश्चभार्याश्चसुरसस्यासितस्यच  
दक्षकाकमयूराणांमांसासृक्मस्तकेक्षते ।  
मूर्ध्निदेयमधोदष्टस्योर्ध्वदष्टस्यपादयोः  
पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिशुकाः ॥  
पिप्पारोहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमज्जनात् ॥

अर्थ—विषके कारण जो हृदयमें विदाह  
और लालास्राव होताहो तो अवस्था के  
अनुसार तीक्ष्ण वमन विरेचनदेवै और शुद्ध  
होनेके पछि संसर्जनक्रम का प्रयोग करे ।  
जो विष शिरोगतहो तो कन्धूक, भाङ्गी  
और कालीतुलसी इन तीनोंकी जड़ों को  
पीसकर नस्य देवै । जो मस्तकमें काटा हो  
तो उस जगह मुर्गी, मोर और कौए का  
मांस और रुधिर लगावै और जो पांवों के  
ऊपर काटाहो तो भी यही चिकित्सा करे ।  
जो विष नेत्रोंमें पहुंचगया हो तो पीपल,  
कालीमिरच, जवाखार, वच, सैधानमक और  
संहजने के धीज इन सबको पीसकर रोहू-  
मछली के पित्ते में मिलाकर आज्ञे ॥

विषेकण्ठगतेमांसकपित्थससितामधु ।  
आमाशयगतेलिहात्ताभ्यांचूर्णपलंनतात्  
विषपकाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ॥  
मज्जिष्ठाचसमपिप्पारोपित्तेननरःपिवेत् ॥  
मांसंरक्तञ्चगोधायाःशुष्कंचूर्णाकृतंहित-  
म् ॥ विषेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम् ॥  
शैलमूलत्वगग्राणिवादरादुम्बराणिच ॥  
फट्भ्याश्चपिबेद्रक्तगतेमांसगतेपिवेत् ॥  
सप्तद्रव्यदिरारिष्टकीटजमूलमम्भसा ।  
मूर्ध्वपुचवलेद्रेतुमधुकमधूकनतम् ॥ पिप्प

भिगण्ठदीर्घेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ—जो विष कंठमें पहुंचा हो तो  
कैथ का गूदा, मिर्ची और शहत मिलाकर  
देवै । आमाशयगत विषमें तगर का एक  
पल चूर्ण चीनी और शहत मिलाकर सेवन  
करे विषके पकाशयमें पहुंचनेपर पीपल  
दोनों हल्दी और मंजीठ ये सब समान  
भाग लेकर गौके पिते के साथ पान करे ।  
विषके रसमें पहुंचनेपर गोहूके मांस और  
रक्तको सुखाकर पीसकर कैथ के रस के  
साथ पान करे । विषके रक्तमें पहुंचनेपर  
शैल की जड़ छाल तथा येर, गुग्गुलु और  
फटुभी की डालियों का अग्रभाग पीसकर  
जल के साथ पीवै । विष के मांसगत  
होनेपर खैर के अरिष्टमें शहत डालकर पीवै  
अथवा कुटकीकी जड़को पानीके साथ  
पीसकर पीवै । विषके सर्व धातुगत होने-  
पर बला, अतिबला, मुलहटी, महुआ  
और तगर इनको जलमें पीसकर देवै  
विषमें कफका प्रकोप होनेपर पीपल, सोंठ,  
जवाखार, इन सबको मक्खनमें सानकर  
प्रतिसारण करावै ॥

सर्वशोधनशक्योग ॥

मांसीकुंकुमपत्रत्वंक्रजनीनतचन्दनैः ।  
मनःशिलाज्याघ्नस्वसुरसैरम्बुपेपितैः ॥  
पाननस्याञ्जनोलपाःसर्वशोथविषापहा-

अर्थ—जटामांसी, कुंकुम, तेजपात, दाल-  
चीनी, हल्दी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्र-  
नख और तुलसी इनको जलके साथमें  
पीसकर पान, नस्य, अंजन और लेपन में

प्रयोग करें । इससे सब प्रकार की सूजन और विष नष्ट होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ,

चन्दनंतगरकुण्डहरिद्रेद्वेत्वगेवच । मनः-  
शिलातमालश्वरसःकेसरपवच ॥ शार्द-  
लस्यनखश्वैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना । हन्ति  
सर्वविषापण्येवज्जिवज्जमिवासुरान् ॥

अर्थ—चन्दन, तगर, कूठ, दोनों हलदी,  
दालचीनी, मनसिल, तमाल, रस, केसर,  
व्याघ्रनख इन सबको चावलके जलके  
साथ अच्छी तरह पीस लें । इसका पान  
करनेसे सम्पूर्ण विष ऐसे नष्ट होजातेहैं  
जैसे इन्द्रका वज्र असुरों को नष्ट करताहै ।

रसेसिरीपपुष्पस्यसप्ताहमरिचंसितम् ।

भायितसर्पदष्टानानस्यपानाञ्जनेहितम् ॥

गृहधूमहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम् । अपि

वासुकिनादष्टःपिबेदधिघृतायुतम् ॥ द्वि

पलंनतकुष्टाभ्यांघृतक्षौद्रचतुष्पलम् । अ-

पितक्षकदष्टानांपानमेतत्सुखप्रदम् ॥

सिन्धुवारस्यमूलश्चश्वेताचगिरिकर्णिका

पानंदर्वीकरैर्दष्टेनस्यमधुसपाफलम् ॥ म

ञ्जिष्ठामधुयष्ट्याहाजीयकर्पभकौसिता

काश्मर्यवटशृङ्गानिपानंमण्डलानांविषे ॥

व्योपंप्रतिविषांकुण्डं गृहधुमेहरणुकां । त

गरकटुकाक्षौद्रहन्तिराजिमताविषम् ॥

क्षीरिवृक्षत्वगालेपःशुद्धेकीटविषापहः ।

मुक्तालेपोवरःशोफदाहतोदज्वरापहः ॥

अर्थ—सहजने के वर्जोंको सात दिवस

तक सिरसके छत्रोंके रसकी भावना देवै ।  
इसका नस्य, पान और अंजनमें प्रयोग

करने से सर्पके काटने में गुणकारक है ।

गृहधूम दोनों हलदी, चौलाई जड़ समेत

इन सबको पीसकर दही और घीमें सान

कर पीये तो वासुकी का काटा हुआ भी

अच्छा होजाता है । तगर और कूट दो

पल घृत दो पल, शहत दो पल, इन

सबको मिलाकर पीनेसे तक्षकका काटा

हुआ भी अच्छा होजाताहै । सभाद्रकी जड़,

सफेद कोयलकी जड़ और गिरिकर्णिका की

जड़का काथ करके पीये तथा शहत और

पाकलाकी नस्य लेवे । ये दर्वीकर सर्प के

काटने में हित है । मंडली सर्प के विष में

मर्जीठ, शहत मुलहटी, जीयक, श्रृगभक,

चीनी, खंभारी और बड़की कौपल को घोट

कर पीना हित है । राजिमान् सर्प के विष

में त्रिकुटा, अतीस, कूट, गृहधूम, हरेणु,

तगर, कुटकी इनको जल में पीसकर शहत

के साथ पान करें । वमन विरचन कराके

बड़ आदि दूध थाले वृक्षकी छाल का लेप

करने से कीट विष दूर होजाता है । तथा

इन्हांके देश पर जलमें पीसकर रास्ना का

लेप करने से शोफ, दाह तोद और

ज्वर दूर होजाते हैं ।

लूताविष की चिकित्सा ।

चन्दनपट्टकोशीरपाटलिःसिन्धुवारिकां ।

क्षीरशुक्लानतंकुण्डशिरिपीदीच्यशारिवाः

शेखस्वरसापेष्टोऽथलूतानांसारिकार्मिकः ॥

अर्थ—चन्दन, पद्मास, उसीर, पाटला

संभाद्र, विदारीकन्द का दूध, तगर कूट,

सिरस, नेत्रवाला और शारिवा इन सबको

शेखके रसमें पीसकर पीने और छेन करने

प्रयुक्त कौ तो मकड़ीका विष दूर हो जाता है ।

मकटीकी अन्य चिकित्सा ॥  
मधुकंमधुकुंष्टशरीरेवादि। च्यपाटलैः ।

सनिम्बशारिवाक्षौद्रपानंलूताविपापहम् ।  
अर्थ—मुलहठी, महुआ, कूट, शाखी  
नेत्रवाला, पाटला, नीम, और शाखी, इनको  
जलमें पीसकर शहत मिला कर पीने से  
लूताविष दूर हो जाता है ।

कुसुम्भपुष्पगोदंतःस्वर्णक्षीरीकपोतविद  
दन्तीतृवृत्सैन्धवैलाफणिकापातनंतयोः ॥  
कटभ्यार्जुनकुण्डानिशेलुक्षीरीद्रुमत्वचम् ।

कपायकल्कचूर्णास्युःकीटलूताप्रलापहाः। त्व-  
चञ्चनागरञ्चैवसमांशंलक्षणपेपितं। पेय-  
मुष्णांम्बुनासर्वमूपिकाणांविपापहम् ॥

अर्थ—कुसुम के फूल, गोदन्ती हरिताल,  
स्वर्णक्षीरी, कबूतरकी बीट, दन्ती, नितोथ,  
संधानमक और बड़ी इलायची पीसकर  
लेप करने से लूताविष और कीटविष नष्ट  
हो जाते हैं । कटमी, अर्जुन, कूट, शेलु,  
बटादिदुग्ध वृक्षोंकी छाल इनका कपाय,  
कल्क और चूर्ण द्वारा प्रयोग करनेसे कीट  
विष का और लूताविष का प्रलाप नष्ट  
हो जाता है । अथवा ढालचीनी और सोंठ  
समानभाग लेकर महीन पीस डाले और  
फिर इसको गरम जल के साथ पानकरै तो  
मूपकविष दूर हो जाता है ।

कुटजस्यफलं पिष्टं तगरं जालमालिनी ॥  
तिक्तेश्वाकुकयोगो यपानं प्रथमनादिभिः ॥  
वृश्चिको न्दुरलूतानां सर्पाणाञ्च विपापहम् ।

समानममृतेनेदगराजीर्णञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, तगर, घीयातोरई, कटु  
तुम्बी इनको पीसकर पान और प्रथमनादि  
द्वारा प्रयोग करै तो बीछू, चूहा मकड़ी और  
सर्पोंका विष दूर हो जाता है यह योग अमृत  
के समान है इसके सेवन से विषदोष और  
अजीर्ण दूर हो जाते हैं ।

किरकटविषचिकित्सा ।  
सर्वागदाययादोपप्रयोज्याः स्युः कृकण्डके  
अर्थ—रोगीकी अवस्थाके अनुसार सब  
प्रकारकी औषधियों के करने से किरकटेका  
विष दूर हो जाता है ।

वृश्चिकाविषचिकित्सा ॥  
कपोतविदमातुलुंगं शिरीषकुसुमाद्रसः ॥  
शंखिन्याकम्पयः शुण्ठीकरञ्जमधुवार्श्चिके  
अर्थ—कबूतरकी बीट, विजौरा, सिरस  
के फूलका रस, शंखिनी, आककादूध, सोंठ  
कंजा, शहत इन सबको समान भाग ले  
पीसकर लेपकरै तो बिछूका विष दूर हो जाता है

मैंडकविषचिकित्सा ।  
शिरीषस्य फलं पिष्टं स्नुहीक्षीरेण दारुणैः ॥  
अर्थ—सिरसके वज्रोंका सेंडु के दूध  
में पीस कर लेप करने से मैंडक का  
विष दूर हो जाता है ।

मत्स्यविषचिकित्सा ॥  
मूलानि श्वेतभिण्डायाव्योपसर्पिश्च मत्स्येने  
अर्थ—सफेद अपराजिताकी जड़ और  
त्रिफुटाको पीसकर लेप करने से मछलीका  
विष दूर हो जाता है ।

जोकविपचिकित्सा ।

कीटदष्टक्रियासर्वासमानास्याञ्जलौक  
साम् ।

अर्थ—कीटदष्टकी जोर चिकित्साकही  
गई है उनहीके समान जोककी चिकित्साहै ॥

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते ।

वाँचिकस्तूचिचिटिंगश्चकणभस्योन्दुरोगदः

अर्थ—बीछू, उच्चिटिंग, कणभ और  
लन्दुर के विषमें प्रायःवातनाशनी क्रियाहितहै  
विश्वम्भरादि विष चिकित्सा ।

वचोवंशत्वचपाठानंतमुरसमञ्जरीम् ॥

द्वेचलेनाकुलकुण्डशिरापरजनीद्वयम्गुहाय

तिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु । कतृणं

कटभीक्षारगृहधूममनःशिलाम् ॥ रोही

तकस्यपित्तनपिण्डवातुपरमोगदः॥नस्या

ज्जनाद्यलेपेपुहितोविश्वम्भरादिषु ॥

अर्थ—वच, वांसकी छाल, पाठा, तगर,

तुलसीकी मंजरी, दोनों बला, रासना, कूठ,

सिरस, दोनों हलदी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी,

श्वेत अपराजिता, अजगंध, शिलाजीत,

कतृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम, मनसिल

इन सबको पीसकर रोहू मछली के पित्तेमें

सानकर नक्ष, अंजन और प्रलेपादि द्वारा

प्रयोग करने से विश्वम्भरादि कीड़े का

विष दूर होजाता है ।

कांतर की चिकित्सा ।

स्वर्जिकाजशकुनुक्षारःमुरसाथासर्पाङ्कः

मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे ॥

अर्थ—सर्जाखार, बकरीकी मँगनी का

खार इनको तुलसी के पत्ते के रसमें मिलाकर

आंखों पर लगावै और इन्हीं द्रव्यों को  
सुरामण्डमें मिलाकर शतपदीके दंश पर लेप  
करै तौ आराम होता है ।

छपकली विपकी चिकित्सा ।

कर्पित्यमक्षिपीडोऽर्कवीजंत्रिकदुकंतथा ।

करञ्जोद्देहस्त्रिद्वेचगलगोड्याविपंजयेत् ॥

अर्थ—कैथ का रस, आक के लीज और

त्रिकुटा इनको पीसकर रस निकालकर

आंखों पर लगावै अथवा कंजा और दोनों

हलदी इनका रस भी आंखपर लगाने से

छपकली का विष दूर होजाता है ।

काकाण्डरससंयुक्तोविपाणांतण्डुलीयकः

सर्वपांवाहोपत्तेनतद्व्यायसपीलकः ॥ शि

रीपफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः । श्रेष्ठः

पञ्चशिरीपोऽयंविपाणांमवरोबधे ॥

अर्थ—कृष्णशिव्नी और चौलाई इन

दोनों का रस सब विषों में हितकर है ।

मकोय और पीछ भी मोरके पित्ते के साथ

में तद्वत् गुणकारक है ॥

सिरस के फल, मूठ, छाल, फूल और

पत्ते इनको समान भाग लेकर घी में पीस

कर लगावै यह वीपध विपनाशक प्रयोगों

में हितकारी है । इसे पंचशिरीप कहते हैं ।

दंत और नखमें चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तक्षतंनुयत् ।

शूयतेपच्यतेवापिस्रवात्तिज्वरयत्यपि ॥

सोमचल्कोऽश्वकर्णाचगोजिह्वाहंसपथपि

रजन्यागैरिकलेपोनखदन्तविपापटः ॥

अर्थ—चौपाये वा द्विपाये जीवोंके दांत

वा नख लगने से जो घाव होजाते हैं उन



में सूजन, पाक, स्त्राव और ज्वर होआता है । इसमें सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी, हंसपादी, दोनों हलदी और गेरू इनका लेप करने से नख और दांतों का विप दूर होजाता है ।

शंकाविप में उपाय ।

दुर्गन्धकारे विद्धस्य केनचिदृष्टशङ्कया ॥  
विषाद्वेगाज्ज्वरर्छादिमूर्च्छादाहोऽपि बाधयेत् ।  
ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छङ्काविषममम् ॥  
चिकित्सितमिदं तस्य कुर्वादाश्वासयन्बुधः ।  
सितावैगन्धिकां द्राक्षां पयस्यामधुकं पधु ॥  
पानं समन्त्रपूताम्बुप्रोक्षणं सान्त्वहर्पणम् ।

अर्थ—दुर्गन्ध अन्धकार में चींटी आदि क्षुद्र जन्तुके काटने से सर्पकी शंका होकर विषके वेगसे ज्वर, घमन, मूर्च्छा और दाह भी होता है तथा ग्लानि, मोह और अतिसार ये भी विषकी शंकासे होआते हैं । इनमें शान्तिप्रदायक वचनों द्वारा रोगीको आश्वासन दें और चीनी, गोंदी, दाख, क्षीरकाकोली, मुलहठी, शहत, इनका पान करावे । मंत्र पढ़े हुए जल से प्रोक्षण करे और शान्ति प्रदायक वचनों से प्रसन्न करता रहे ।

विपरोग में पथ्यविधान ।

शालयः पाष्ठिकाश्चैकोरुपाः प्रियङ्गवः ॥  
भोजनार्थं प्रशस्यन्ते लवणार्थं च सैन्धवम् ।  
तण्डुलीयकजीवन्तीवार्ताकुसुमनिपण्णका  
चुर्चुर्पणहकपर्णाश्च शक्चकुलकंहितम् ।  
धार्वादाडिममम्लार्थं गुप्तामृद्वहरेणुभिः ॥

रसाश्चैणशिशिश्चाविलायतात्तिरिपार्षताः  
विपद्नापथसंयुक्ता रसायूपादन्नसंस्कृताः ॥  
अविदाहीनि चानानि विपार्षतानां भिषग्भिः

तमम् ॥

अर्थ—शालीचायल, साठिचायल, कौदों, प्रियंगु, ये भोजन के लिये देवें, जन्मक में संधानमक देवें । शाक में चौलाई, जीवन्ती वैगन, चौपतिया, चुच्चू, तंदूकपर्णी, और परबल का साग हित है । खटाई में आंवला और अनार, यूगमें मूग और हरेणु, मांसरस में मोर, मेंढा लवा, तीतर और पृषत हिरण, इन मांस और यूगों को विपनाशक औषधियों में सिद्ध करके देवें तथा अविदाही अन्नका सेवन भी विपरोगियों के लिये हित है ।

विषमें वर्जितकर्म ।

विरुद्धाद्यशनक्रोधक्षुब्धभयायासमैथुनम् ।  
वर्जयेद्विषमुक्तोऽपि दिवा स्वर्मावेशपतः ॥

अर्थ—विरुद्धादि भोजन, क्रोध, क्षुधाके वेगको सहन करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिन में सोना इन बातों को विष दूर होनेपर भी त्यागदेवें ॥

चतुष्पददण्डके लक्षण ।

मुहुर्मुहुः शिरोन्यासः शोफः सस्तौष्ठकर्णता  
ज्वरस्तब्धासिगात्रत्वं हनुकम्पोऽङ्गमर्दनम् ।  
रोमापर्णमनंग्लानिररतिर्वैपथुर्ग्रहः ॥  
चतुष्पदां भवत्येतदष्टानामिह लक्षणम् ।

अर्थ—चौपाये जीवके काटने से ये लक्षण होते हैं कि दण्ड व्यक्ति बार बार सिर को फेंकता है, सूजन, ओष्ठों में शुष्कता,

कानों में स्तब्धता, ज्वर, आंखोंका पथराना गात्रमें स्तब्धता, हनुकम्प, अंगमर्द, रोमोद्गम, ग्लानि, अरति, कम्पन और जफडन ये लक्षण भी होते हैं ।

चतुष्पददष्टमें उपाय ।

देवदारुहरिद्रेक्षरलंचन्दनाशुक्र ॥ रास्ना  
गोरोचनाजाजीगुग्गुल्विकुरकोनताम् ।  
चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम् ॥

चतुष्पदाहिदष्टानामगदःसार्वकार्मिकः

अर्थ—देवदारु, दोनोहल्दी, सरलकाष्ठ, चन्दन, अगर, रास्ना, गोरोचन, कालाजीरा, गुग्गुलु, तालमखाना, तगरु, सेंधानमक और अनन्तमूल इन सबका चूर्ण बनाकर शहत और गौ के पित्त के साथ खाने, पीने, लगाने आदि सब कार्यों में देवे इससे चोपायों का विष दूर होजाता है ।

गरविषके लक्षण ।

सौभाग्यार्थस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्म-

लान्शत्रुप्रमुक्ताश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्न

मिश्रितान् ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पा

मिज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रमथना

ध्मानहस्तपाच्छोफलक्षणाः ॥ जठरं

प्रहर्णादोपपद्यमानंश्चयुंसयम् ॥ एवं

विषस्यचान्यस्यव्यापेर्लिङ्गानिदर्शयेत् ॥

अर्थ—वशीकरणादि प्रयोगों के लिये स्त्री अपने भिन्न २ धर्मोंके स्वेद, रजआदि मलों को खाने पीने की वस्तु में देदेती है इसीतरह शत्रु भी गरविष मिलाकर अन्न वा पानी दे देते हैं । इन से पांडुरोग, कृशता, मन्दाग्नि, ज्वर, मर्मप्रपीडन, आ-

ध्मान्, हाथ पांव में सूजन, उदररोग प्रहर्णादोष, यक्ष्मा, क्ष्वयधु और क्षयरोग तथा ऐसेही और उपद्रव भी होते हैं ॥

गरविष के अन्यलक्षण ॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुष्यालान्सनकुलान्  
कपीन् ॥ प्रायःपश्यातिनद्यादीन्शुष्कांश्च  
सवनस्पतीन् ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्व-  
प्नेगौरश्चकालकृष्णविकर्णनासिकंवापि  
पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ॥

अर्थ—गरविष से पीडित स्वप्न में बिहरी, सिरकटा, सर्प, नकुल, बन्दर, नदी और सूखी वनस्पतियों को देखता है । उसे अपना कालाशरीर गौरा और गौरा शरीर काला दिखाई देता है । उस के कान और नाक विरूप दिखाई देते हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों में विकलता होती है ।

गरविष में वैद्यकाकर्त्तव्य ।

तमवेक्ष्यभिषक्प्राज्ञःपृच्छेत्किङ्कैःकदासह

जग्धमित्यवगम्याभ्रमदद्याद्वमनंमिषक् ।

सूक्ष्मताभ्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृदिशोधनम् ॥

शुद्धेहृदि ततःशाणंहेमचूर्णस्यदापयेत् ।

हेमसर्वाविषाण्याशुगरांश्चविनियच्छति ।

हेमपस्यसजत्यङ्गेनाहिपत्रेऽम्बुवादिषम् ।

अर्थ—ऊपर कहे लक्षणों से युक्त देख कर बुद्धिमान् वैद्य को पूछना चाहिये कि तुमने किस के साथ कब क्या खाया है । यह पूछकर शीघ्रही तांबेकी भस्म में शहत मिलाकर वमन करावे । ऐसा करने से हृदय शुद्ध होजायगा । हृदय के शुद्धहोने पर एक शाणशुद्ध हेमचूर्ण देवे । सुवर्ण सम्पूर्ण

मैथुन करने से बड़ी हुई अपानवायु अधोगा-  
मी स्रोतों को यद्द करके ऊपरको छँटती-  
है और वस्ति में पहुंचकर घोर विडमरह, मू-  
त्रमह और अधोवातमह रोगोंको उत्पन्न क-  
रती है ( 'वायुर्विद्वद्' से 'करोत्यपानः' त-  
क पाठान्तर भी है यथा "पकाशयेकुप्य-  
तिचेदपानः स्रोतस्यधोगानिवलीसरुद्धा ।  
करोतिविषमरुतमूत्रसंगं क्रमादुदावर्चमतःसु-  
घोरम्, ॥ )

### उदावर्तजन्यरोग ।

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्यदरेष्वभीक्ष्णं सपृष्ठा-  
भ्यंज्वतिदारुणास्यात् ॥ आध्मानहृत्तास  
विकर्तिकाश्च । तोदोविपाकश्चसवस्ति-  
शोथः ॥ दोषाःप्रबुद्धाजठरेचगण्डान् ।  
ऊर्ध्वञ्चवायुर्विहितोगुदेस्यात् ॥ कृच्छ्रे  
णगुप्फस्यचिरात्प्रवृत्तिः । स्यादातनुः  
स्यात्स्वरुल्लशीताः ॥ ततश्चरोगाज्व-  
रमूत्रकृच्छ्रं मयाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः॥  
बन्धान्ध्यवाधिर्यशिरोऽभिताप वातो  
दराष्टीलमनोविकाराः ॥ तृष्णास्रापित्तारु  
चिगुल्मकासश्वासप्रतिश्यादितपार्श्व  
रोगाः ॥ अन्येचरोगावहवोऽनिलोत्था ।  
भवन्त्युदावर्तकृताःसुघोराः ॥

अर्थ—...ऊपर कहेहुए व्यक्तिक्रमसे उदावर्त  
रोग के होनेपर वस्ति, हृदय, कुक्ष, और  
उदर में निरन्तर बेदना होती है । पीठ और  
पसलियों में दारुणशूल होने लगता है ।  
तथा आध्मान, हृत्तास, विकर्तिका ( ऐंठ )  
तोद, विपाक, और वस्तिशोथ उपस्थित हो  
ते हैं और बड़ेहुए दोष, जठर में गण्ड और

र ऊर्ध्ववात को प्रवृत्त करते हैं जो दस्त  
होता भी है तो पतला, सूखा, शीतल, क-  
टिन्तासे, देरमें सूखाहुआ थोडा थोडा हो-  
ता है । तदनन्तर ज्वर, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका  
हृददोष, ग्रहणीदोष, यमन, अन्धता, बहरा-  
पन शिर में जलन, वातोदर, वातष्टीला, म-  
नोविकार, तृष्णा, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म,  
खांसी, श्यास, प्रतिश्याय, अर्दित, पार्श्वरा-  
ग तथा और और भी बहुत से वातजरोग  
उत्पन्न होते हैं ॥

### वातजरोगोंमें चिकित्सा ।

ततैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वेदैर्यथोक्तैः  
प्रविलीनदोषम् ॥ उपाचरेद्वास्तिनिरुहव-  
स्ति स्नेहैर्विरेकैरनुलोमनाम्नैः ॥

अर्थ—ऐसे रोगी को प्रथमही शीतज्वर  
नाशक तैल का अभ्यंग और यथोक्त पसी-  
ने देकर दोषों को दूरकर देवै और फिर  
वर्ति, निरुहणवस्ति, स्निग्धविरेचन और  
अनुलोमनकर्त्ता औषधियों द्वारा उपचारकरे ।

### उदावर्त में वर्ति विधि ॥

श्यामाग्निहृन्मागधिकाभिचूर्णगोमूत्रपीतं  
दशभागमापमासनीलकंदिल्लवणगुडेन  
घातिकांशुगुणनिभांविदध्यात् ॥

अर्थ—कालीनिसोध, पीपल, चीता और  
नीलका ये सब दस दस माशे छेवै और इ-  
न से दूना नमक मिलाकर गौकेमूत्र में घोट  
टाँले फिर गुट मिलाकर अंगूठे के बराबर  
वत्ती बनाकर गुदा में प्रवेश करके बांधदेवै  
और थोड़ीदेर पीछे वत्ती निकालकर फेंक  
देवै ऐसा करने से उदावर्त दूर होजाताहै ।

और अधोवायु के निकालने वाले अन्य  
द्रव्यों के साथ भी यवान्न भक्षण करे ।  
उपर से प्रसन्ना, और गौरीय शीघ्रका  
अनुपान करे ॥ यदि इन उपायों के करने  
पर मल मूत्रादि की विवन्धता एकवार दूर  
होकर फिर उत्पन्न होती गौमूत्र, प्रसन्ना  
और दधिमेढ के संयोग से फिर विरेचनदेवै ॥  
गुल्मोदरग्रन्नाशः प्लीहोदायर्तयोनिशुक्र  
गदे । मेदः कफसंसृष्टे मास्ररक्तेऽवगाढे  
च । गुध्रसिपक्षवधादिषु विरेचनाहोपु  
वातरोगेषु ॥ वाते निबद्ध मार्गमेदः कफपि  
चरक्तेन । पयसामांसरसैर्वात्रे फलारस  
यूपमूत्रमदिराभिः । दोषानुबन्धयोगात् प्रश  
स्तमेरुण्डजतैलम् । तद्वातनुत्स्वभावात्  
संयोगवशाद्विरेचनाच्च जयेत् ॥ मेदोऽष्ट  
कपित्तफान्निमश्रानिलवरांगजित्स्यात्  
अर्थ—गुल्मरोग, उदररोग, ग्रन्थ, अर्श  
रोग, प्लीहा, उदायर्त, योनिरोग, शुक्ररोग  
मेदा से संसृष्ट वा कफसे संसृष्ट अवगाढ  
वातरक्त, गुध्रसी, पक्षाघात, तथा अन्य  
विरेचन के योग्य वातरोग, मेद वा कफ वा  
पित्तरक्त द्वारा निबद्ध मार्गवाला वातरोग इन  
सब रोगों में दोष के अनुबन्ध के अनुसार  
दूध, मांसरस, त्रिफला का काथ, यूप,  
गौमूत्र वा मदिरा के साथ अंडी के तेल का  
विरेचन देवै । यह अंडी का तेल खभाव से  
घातनाशक है और औषधियों के संयोग  
वश से विरेचन कर्ता भी है इससे यह मेदरोग  
रक्तीपित्त और कफवातरोगों को नष्ट कर देता है  
अपनी के तेलकी मात्राका प्रमाण ।  
मृदुकोष्ठान्धाधिबशादापञ्चपलाभवंमा

श्रा । मृदुकोष्ठावलानां सह भोज्यतं प्रयो  
ज्यस्यात् ।

अर्थ—शरीर के बल, कोष्ठ और व्याधि  
के प्रसंगसे अंडी के तेलकी मात्रा पांचपल  
पर्यन्त है मृदुकोष्ठवाले और दुर्बलों के लि  
ये यह भोजन में मिलाकर देना चाहिये ॥

विरेचनकापश्चात् कर्म ॥

स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तमूरीक्ष्यादिस  
हो निलवर्चसोऽश्वेत् ॥

अर्थ—स्वस्थ होने पर विरेचन के पीछे  
रूक्षताके कारण यदि वातप्रकोपसे विद्याको  
विवन्ध होता अनुयासन वस्ति देवै ।

उदावर्त्तमेचिक्विस्ताके प्रयाग

द्विरुत्तरंहिगुणवासिकुष्ठामुवर्चिकाचैव वि  
डङ्गचूर्णम् । सुखाम्पुनानानाहविप्राचि  
कार्तिहृद्रोगगुल्मोर्दसमीरणघ्नम् ॥ वचा  
भयाचित्रकयावशूकानुसपिप्पलीकातिवि  
पानसकुष्ठान् । उष्णाम्पुनानानाहविमूढवा  
तानुपीत्वाजयेदाधुरसौदनाक्षी ॥

अर्थ—हींग, वच, कूट, संचलनमंक,  
और वायविडंग इनको उत्तरोत्तर द्विगुणले  
कर चूर्ण करले और गरम जल के साथ  
पाँके तौ इससे आनाह, विशचिका, आर्से  
हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्ववात दूर होजाते है  
वच, हरड़, चीता, जवाखार, पीपल, अ-  
तिस और कूठ इन के चूर्ण को गरम  
जल के साथ पाँके तौ आनाह और मृ-  
दात दूर होजाते हैं । इसपर मांसरस और  
चावल का पथ्य होता है ।

स्तिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः ताम्पाकपूती-

ककरञ्जयोश्च ॥ सिद्धः कषाये द्विपला-  
शिकानां प्रस्थो घृतात् स्यात्प्रतिरुद्धवाते ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, सांठ, स्या-  
माक, पूतिकंजा इनको दो दो पल लेकर  
काथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर  
छानलेवै और इसमें एक प्रस्थ घृत डाल-  
कर एकवै यह घृत रुद्धवात में हित है ॥

फलञ्चमूलञ्चविरेचनोक्ताङ्गिर्वर्कमूलदंश  
मूलमग्न्यम् । स्तुविचित्रकौचैव पुनर्नवाच  
तुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥ स्नेहैः स-  
मूत्रैः सह जर्जराणि शरावसन्धौ विपचेत्सु-  
लिप्ते ॥ पक्कं सुपिष्टं लवणं तद्वैः पानैस्त-  
थानाहरुजग्रमग्न्यम् ॥

अर्थ—विरेचनोक्त फलमूल, हींग, आक  
की जड़, दशमूल, सेंहुड, चीता, सांठ ये  
सब समानभाग लेवै और इन सब के  
बराबर पांचों नमक मिलाकर कूटडाउे इस  
में स्नेह और गोमूत्रादिक मिलाकर शराव  
संपुट में रखकर कपडमिट्टी करके फूंकलेवै  
पक होनेपर पीसकर इस नमक को अन्न-  
पान के साथ सेवन करै । यह आनाह के  
दूर करने में सर्वोत्कृष्ट है ॥

हृत्स्तम्भमूर्धाशयगौरवार्त्याचोद्गारसङ्के-  
न सपीनसेन । आनाहमामममवज्जयेत्  
प्रच्छदनेर्लघनपाचनञ्च ॥

अर्थ—हृत्स्तम्भ, शिरोरोग, भारापन, उ-  
कार का बन्द, होना, पीनस इन रोगों से  
युक्त आमेसे उत्पन्न हुए आनाह रोगमें, व-  
मन, लघन और पाचन प्रयोग करै ॥

हिङ्गुप्रगन्धाविदुष्टपुञ्जीहरातीक्ष्णु-

पकरमूलकुट्टम् । ययोत्तरभागविदुद्धमेत-  
मृष्टीहोदराजीर्णविमूचिकासु ॥

अर्थ—हींग, वच, पिदनमरु, सांठ, का-  
लाजीरा, हरड, पौहकरमूल, कूठ, इनसब  
औषधोंको उत्तरोत्तर एक एक भाग बढ़ा-  
कर चूर्ण बनाकर सेवन करै तौ मृहा,  
उंदररोग, अजीर्ण, और विसूचिका नष्ट  
होजाते हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णोपश्रुतमयमसङ्गनित्यः  
दुतपृष्ठयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्ययना  
दर्जीर्णात्सुमूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाह ॥

अर्थ—शारीरिक परिश्रम, तीक्ष्ण भोजन  
रुद्धसेवन, मद्यप्रसंग, स्त्री ससर्ग, शीघ्रगमन  
उछल उछलकर चलने याटे उष्ट्रादि की  
पीठ पर सवारी, आनूप और मत्स्यमांस  
का अतिशय सेवन, अध्ययन, अजीर्ण में  
भोजन इत्यादि हेतुओं से मनुष्यों के आठ  
प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं ॥

कृच्छ्रतासे प्रस्ताव का कारण ।

पृथग्मलाः स्वैः कुपितानिदानाः सर्वेऽथवा  
कोपमुपेत्यवस्ताः । मूत्रस्य मार्गपरिपीड  
यन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥

अर्थ—अपने अपने कारणोंसे एक एक  
दोष अथवा सब एक साथ कुपित होकर  
वस्तिमें पड़चकर मूत्रमार्गको पीडित करते  
हैं तब बहुत थोड़ा थोड़ा पड़ी फाटिततासे  
प्रस्ताव होता है ॥

यातजमूत्र कृच्छ्र के लक्षण ।

तीव्राहिर्गन्धसंशयवस्तिमेदे ।

स्वल्पं मुहुर्भूयतीह वातात् ॥

अर्थ—वातज मूत्रकृच्छ्र में प्रस्राव करने के समय वंक्षण, वस्ति और मेद में बड़ी तीव्र वेदना होती है और प्रस्राव थोड़ा २ बड़ी कठिनता से उतरता है ॥

पित्तजमूत्र कृच्छ्रके लक्षण ।

पीताम्रकृष्णहिसरुवसदाहं ।

कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में पीला, लाल या काला प्रस्राव बड़ी वेदना और दाहके साथ बार बार होता है ॥

कफजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोफौ ।

मूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥

अर्थ—कफजमूत्रकृच्छ्र में वस्ति और लिंग में भारापन और सूजन होती है और मूत्र गिलगिला उतरता है ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणिहृत्सन्निपातात् ।

भ्रान्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—सन्निपातजमूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं यह बहुतही कृच्छ्राप्य होता है ॥

अश्मरीनिदान ।

विशोषयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपिच्छंपवनः कफवा । यदातदाश्मर्युपजायतेतुक्रमेण पिपेप्थिवरोचनागौः ॥

अर्थ—जब वायु किसी कारणसे वस्ति में पहुँचे हुए शुक्रको सुखोदती है वा पित्त सहित कफको सुखा देती है तब क्रम २ से वर्द्धमान अश्मरी [ पथरी ] उत्पन्न

होती है जैसे गोंके पिते में गोरोचन उत्पन्न होता है ॥

अश्मरी की आकृति ॥

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या ॥

श्लक्ष्णात्रिपुष्ट्याप्यथवापिमृद्री ॥

अर्थ—अश्मरी कदम्ब के फूल के सदृश वा पत्थर के तुल्य चिकनी, तिगुटी वा कोमल भी होती है ॥

अश्मरी के कर्म ।

मूत्रस्यचैन्मार्गमुपैतिरुधामूत्रंरजांतस्यकरोतिवस्तौ । ससीयनीमेहनवस्तिशूलंविशीर्णधारश्चकरोतिमूत्रम् ॥ मृद्रातिमेदंसुवेदनार्तोमुहुःशकुनमुञ्चतिमेहतेच । सोभात्सतेमूत्रयतीहसामूकृतस्याःसुखमेहतिचक्ष्वापात् ॥

अर्थ—जब अश्मरी मूत्रमार्ग में पहुँच जाती है तब मूत्रमार्ग को रोकदेती है ॥ और वस्ति में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है । सीयनी से लेकर मेद पर्यंत वस्ति में बड़ा शूल होता है उस समय मूत्र की धार फटजाती है और वेदना के कारण रोगी मेद को पकड़कर मसल डालता है और बार २ रोगी पुरीषोत्सर्ग और मूत्र करता है ॥ गसलते २ मेदके भीतर धाव होजाता है तब उसमें से रुधिर आनेलगता है, तथा उसके व्यवाय से मुख पूर्वक प्रस्राव होने लगता है ।

शर्करा के लक्षण ।

एषाश्मरीमास्ताभिन्नमूर्तिः ।

स्याच्छर्करामूत्रपयात्सरन्ती ॥



अर्थ—घातजमूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंजन, स्नेह, निरूहणवस्ति, स्नेहोपनाह, उत्तरवस्ति, परिपेक तथा शालिपर्णीसे आदि लेकर वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए मांसरसों का प्रयोग करें ॥ पुनर्नवा, ऐरण्ड, शतावरी, पत्तूर, वृश्चोद, खरैटी, पाखानभेद, ददामूल, कुलथी, घेर, जौ इन सब के क्वाथ में इन्हीं का कल्क और पाचों नमक डालकर तेल, यराह की चर्बी, रीछकी चर्बी और घीको सिद्ध करें। इसका मात्रावत् सेवन करने से शूलान्वित वातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्रही दूर होजाता है ॥ यहां गंगाधर शास्त्री यह लिखतेहैं कि पुनर्नवादि पहिले तीन द्रव्यों में उनही का कल्क और पाचोंनमक डालकर घी, यसाभादि सिद्ध करें ॥ दूसरा घृत पत्तूरादि चार द्रव्यों से करें ॥ तीसरा दशमूल में सिद्ध करें और चौथा कुलथादि शेष द्रव्योंमें करें ॥

एतानिचान्यानिवरीपधानि । सर्वाणि शस्तान्यापिचोपनाहे ॥ स्थुर्लाभतस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥

अर्थ—उपर कही हुई औषधें तथा अन्य उत्तम उत्तम औषधों को तैलफल ( तिल का अलसी ) स्नेह और अम्लद्रव्योंके साथ पीसकर गरम २ उपनाहमें प्रयोग करें ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मोविधिवस्तिपयोविरेकाः ॥ द्राक्षाविदारीधरसेधृतैश्च कृच्छ्रेषुपित्तमभवेपुकार्याः ॥

शतावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्रा विदारिशा-

लीधुकशेरुकाणाम् ॥ काथंमुशीतंमधुशर्कराभ्यां युक्तंपिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ भिवेत्कपायंकमलोत्पलानां शृंगाटका नामयवाचिदार्याः ॥ दण्डोत्पलानामथवापिमूलं पूर्वेणकल्केनतथासुशीतम् ॥ एर्वास्वीजंत्रुपातकुसुम्भानसकुंकुमस्याहूपकश्चपेयः ॥ द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तएषः ॥ एर्वास्वीजमधुकंसदार्व पैत्तिपिवेत्तण्डुलधावनेन ॥ दार्वीतथैवामलकीरसेन समाक्षि

कांपित्तकृतेषुकृच्छ्रे ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में सेक, अवगाह, शीतल प्रदेह, ग्रैष्मिक क्रिया, तथा दाख, विदारीकन्द का रस, ईखकारस और घृत द्वारा वस्ति प्रयोग, दूध और विरेचन देयें ॥

सितावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईख और कसरू इन के क्वाथ को ठंडा करके शहत और शर्करा मिलाकर पीने से पैत्तिकमूत्रकृच्छ्र अच्छा होजाता है ।

कमल और नीलकमल का काथ अथवा सिंघाडे का क्वाथ अथवा विदारीकन्द का काथ अथवा दंडोत्पलकी जड़का कपाय ठंडा होने पर शहत और चीनी डालकर पान करें । ककड़ी के बीज, खीराके बीज कसूम के बीज, कुंकुम और अहूसा इनको पीसकर दाख के रस के साथ सेवन करें तौ अश्मरी शर्करा तथा सय प्रकार के मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं । ककड़ी के बीज, मुलहदी और दारुहलदी इनको पीसकर तण्डुल जड़ के साथ पान करें । दारुहलदीको



पीसकर आंवले के रस के साथ शहत मिलाकर पीये तौ पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है ।

कफजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

सारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानंस्वेदोयवान्नं वमनं निरूहः । तक्रसतिक्तौषधसिद्ध तैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ व्योपंश्व दंष्ट्राश्रुतिसारसास्थिकोलप्रमाणो मधुमूत्रयुक्तम् । पिवेत्तुतिशौद्रयुतां कदल्यारसेन कण्ठर्यरसेन वापि ॥ तकेण युक्तं सितमारकं स्पृची जं पिवेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः । पिबेत्तथा तण्डुलधावनं नम्रबालचूर्णकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ सप्तच्छदारग्वधकेभ्युक्कैलाधवं करझंकुटजंगुडचीम् । पक्त्वा जले तेन पिबेद्यवागूसिद्धं कफार्थं मधुसंयुतं वा ॥

अर्थ—कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार उष्ण और तीक्ष्ण औषध, उष्ण और तीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, जौ का अन्न, वमन, निरूहण, तक्र तथा तिक्त औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल का अभ्यंग और पान हित है । त्रिकुटा गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टाकी मिंगी इनको एक एक ताँले लेकर शहत और गोमूत्र के साथ पान करे । अथवा छोटी इलायची और शहत को केला के रस के साथ अथवा केवटी मोथा के रस के साथ पान करे । कथवा शालिचक्रेवीजों को तक्र के साथ पान करे अथवा तंडुल जल के साथ मूंगा की भस्म को पान करे । सप्तपर्ण, वमलतास का गूदा, केवुक, छोटी इलायची, धव, कंजा, कुड़ाकी छाल और गिलोय इन सबके काथमें यवागू सि-

द्ध कर के सेवन करे अथवा इन के कफाय में शहत डालकर पीये ।

सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रमें चिकित्सा । सर्वत्रिदोषप्रभवे तु वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसगीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग् वमनं कफे तु पित्ते विरेकः पवने तु वस्ति ॥

अर्थ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें जो तीनों दोष समान हों तौ वायु को प्रधान समझकर चिकित्सा करे । यदि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तौ प्रथम वमन करावे । पित्त की अधिकतामें विरेचन और वातकी अधिकता में वस्ति देवे ॥

क्रियाहितात्वश्मरि शर्कराभ्यां कृच्छ्रे यथैवेह कफानिलाभ्याम् । कफादं प्रनाभेदानि पातनाय विशेषयुक्तं गृणुकर्मसिद्धम् ॥

अर्थ—कफवात के मूत्रकृच्छ्र में जो जो चिकित्सा कही गई है वेही अश्मरी और शर्करा में हित होती है अथ कफजन्य अश्मरी के टुकड़े करके निकालने के लिये जो विशेष युक्तियाँ हैं उनको वर्णन करते हैं ।

अश्मरी में चिकित्सा ।

पापाणभेदं वृषकं श्वदंष्ट्रापाठाभ्यां व्योपशटीनिकुम्भाः । हिंसी खराश्वासितिमारकाभ्यामेर्वीरुक्ताणां त्रिपुपस्यर्वाजम् ॥ उत्कुञ्चिकाङ्गिगुसवंतसाम्लं स्याद्वेददृढत्याहं पुषावचाच । चूर्णपिवेदश्मभिदा विपकं सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणनैः ॥

अर्थ—पाखान भेद, अइसा, गोखरू, पाठा, हरड, त्रिकुटा, कचूर, दन्ती, हिंसी, खुरासानी अजवायन, शालिचकांज, ककड़ी

के तैलकी वस्ति देवे । जो जो चिकित्सा  
पित्तजमूत्रकृच्छ्र में वर्णन की गई है वेही सब  
रक्तज मूत्रकृच्छ्र में भी हित हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रमें वर्जितकर्म ।

व्यायामसन्धारणशुष्करूक्ष पिष्टान्नवां  
तार्ककरव्यवायान् ॥ खर्जूरशाल्कक  
पित्तजम्बु विपं कपायं च रसं भजेन्ना ॥

अर्थ—व्यायाम, मलमूत्रादि वेगधारण,  
शुष्क, रूक्ष, पिष्टान्न, वातसेवन, घूप, व्य-  
वाय, खिजूर, शाल्कक, वैथ, जामन, विप  
और कपाय रस ये सब उक्त रोगों में निषेध  
किये गये हैं ॥

हृद्रोगकी उत्पत्तिकारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्तिछर्द्यामसं-  
धारणकर्षणानि । हृद्रोगकारीणितथा  
भिघातः चिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः ॥

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्णविरेचन, तीक्ष्ण-  
वस्ति, वमन, मलवेग का रोकना, उपवा-  
सादि कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, त्रास,  
मत्तता और अभिचार ये सब हृद्रोगों की  
उत्पत्ति के कारण हैं ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैर-  
स्यतृपाः प्रमोहाः ॥ छर्दिः कफोत्क्लेशरुजो  
श्चिश्च हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तयान्ये ॥

अर्थ—हृद्रोग से विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर,  
खासी, हिचंकी, श्वास, मुखका जायका  
भिगडना, तृपा, प्रमोह, वमन, कफोत्क्लेश  
वेदना, अर्शच तथा और भी ऐसेही बहुत  
से अन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

वातज हृद्रोगके विशेष लक्षण ॥

दृच्छ्रन्यभावद्रवशोषभेद ।

स्तम्भः समोहः पवनाद्विशेषः ॥

अर्थ—वातज हृद्रोगमें हृदयमें शून्यता  
धक धक, शोष, भेद, स्तम्भता और मोह  
ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

पित्तज हृद्रोग के लक्षण ॥

पित्तात्तमोद्यनदाहमोह ।

सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोगमें अन्धकार दिखाई  
देना, ग्लानि, दाह, मोह, त्रास, सन्त्रास,  
ज्वर और वस्तुओंका पीछा दिखाई देना  
ये लक्षण होते हैं ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण ।

स्तब्धगुरुस्यात्स्तिमितश्चर्मम् ।

कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ॥

अर्थ—कफज हृद्रोगमें स्तब्धता, भारा-  
पन, मर्ममें स्तिमिता, छालास्राव, ज्वर, खासी  
और तन्द्रा ये लक्षण होते हैं ॥

सान्निपातिक हृद्रोग के लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषत्वपिसर्वेलिङ्गं ।

तीव्रार्तिभेदकृमिजंसकण्डूम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोगमें तीनों दोषों  
के लक्षण होते हैं तथा कृमिज हृद्रोग में  
तीज वेदना, भेद और खुजली होती है ।

वातज हृद्रोग में चिकित्सा ।

तैलससौवीरकमस्तुतक्रंवातेमपेयं लवणं-  
सुखोष्णम् । मूत्राम्बुसिद्धं लवणैश्च तैल-  
मानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ पुनर्नर्वा-  
दारुसपञ्चमूलारस्नायवान्बिल्वकुलत्थ

कोलम् ॥ पक्त्वा जले तेनाविपाच्य तैलमभ्य-  
ङ्गपानेऽनिलहृद्दघ्नम् ॥

अर्थ—सौवीर, दही का-तोड़ और मठा  
इनके साथ तेल पीवै अथवा गोमूत्र और  
जल के साथ नमकको सिद्ध करके सुहाता  
हुआ गरम पीवै अथवा पांचों नमकके साथ  
सिद्ध किया हुआ तेल पीवै । इसके पीने से  
वातज हृद्दोग, आनाह और गुल्म दूर हो-  
जाते हैं । सांठ, देवदारु, पंचमूल, रास्ना,  
जौ, बेल की छाल, कुलधी और बेर इनका  
कांथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर अ-  
भ्यंग और पानमें प्रयुक्त करै तौ वातज हृ-  
द्दोग जाता रहता है ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्यः कयस्थालव-  
णैश्च कल्कः । सर्दिगुभिः साधितमग्न्यस-  
र्पिर्गुल्मे सदृत्पार्थगदेऽनिलोत्थे ॥ सपु-  
ष्कराह्वैर्यः कयस्थालवणैश्च कल्कः ।  
स्युर्वातहृद्दोगविकर्तिकाग्नाः ॥

अर्थ—हरड, सौंठ, पौहकरमूल, काकोली,  
छोटी इलायची, सेंधानमक और हींग इन  
के कल्कके साथ चौगुना जल चढ़ाकर घृत  
पकावै, इस घृतके सेवन करनेसे वातज गुल्म  
हृद्दोग और पसलीका दर्द दूर होजाता है ।  
पौहकरमूल, विजौरे की जड़, सौंठ, कचूर,  
हरड, इन सब का कल्क, जवाखार का  
जल, घी और सेंधानमक इन सबको पका-  
कर सेवन करने से वातज हृद्दोग और वि-  
कर्तिका का नाश होजाता है ॥

काथः कृतः पौष्करमातुलङ्गपलाशभूतीक-  
शटीमुराह्वैः । सशुण्ठ्याजानीद्विचयाय-  
मानिः सक्षारलण्णोलवणश्च पेयः ॥ पथ्या-  
शटीपुष्करपञ्चकोलान्समातुलङ्गायमके-  
नकल्कः ॥ गुडप्रसन्नालवणैश्च भृष्टोदृत्-  
पार्थगुल्मोदरयोनिशूले ॥

अर्थ—पुष्करमूल, विजौरा, पलास, अ-  
जवायन, कचूर, देवदारु इनका क्याथ कर  
के इसमें सौंठ, कालाजीरा, दोप्रकार की  
बच, अजवायन, जवाखार और नमक डाल  
कर गरम गरम पीने से वातज हृद्दोग दूर  
होजाते हैं ॥ हरड, कचूर, पौहकरमूल,  
पंचकोल और विजौरा इनका कल्क इसमें  
गुड, प्रसन्ना और नमक डालकर घी और  
तेलमें भूनकर सेवन करने से हृत्शूल, पां-  
श्वशूल, गुल्म, उदररोग और योनिशूल दूर  
होजाते हैं ॥

त्र्यूपणादि घृत ।

स्थात्त्र्यूपणं द्वे त्रिफले सपाठे निदिधिक्का-  
गोक्षुरकावलेदे । ऋद्धिश्चुटिस्तामलकी-  
स्वसुतायेदेगधूकं मधुकं स्थिराच ॥ शता-  
वरीजीवकपृश्निपुष्पौ द्रव्यैरिमैरक्षसमैः  
सुपिष्टैः ॥ प्रस्थं घृतस्येह पचेद्विधिः प्रस्थे-  
न दध्नस्त्वथमाहिपस्य ॥ मात्रां पलं चार्द्धं  
पलं पिचुम्बाप्रयोजयेन्मांसिकसंयुक्तम्-  
श्वासे सक्तासे त्वयपाण्डुरोगे हलीमके हृद्घ्न-  
हणीमदापे ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दोनों प्रकारकी त्रिफला  
( एकहरड बड़ेडा, आंवला ) दूसरी ( दाख  
गंमापी और फाटसा ) पाठा, कटेरी, गोखरू  
बला, पतिगला, ऋद्धि, छोटी इलायची,

भूय आंवला, कैंच, मेदा, महामेदा, मुलहटी  
शालिपर्णी, सितावर, जीवक और पृष्णिपर्णी  
इन सब द्रव्योंको दो दो तोले लेकर महीन  
पासले इस में भेंस का घी एक प्रस्थ और  
दही एक प्रस्थ डालकर पाक करें । इस  
घृतकी मात्रा बलके अनुसार एकपल आधा  
पल वा एक तोला प्रतिदिन सेवन करनेसे  
श्वास, खांसी, पांडुरोग, हृलमिक, हृद्रोग  
और ग्रहणीदोष दूर होजाते हैं ।

पित्तजहृद्रोगमेंचिकित्सा ।

शीताःप्रदेहाःपरिपेचनञ्च । तथाविरे  
कोहृदिपित्तदुष्टे ॥ द्राक्षासिताक्षौद्रपरूप  
कैः स्यात्शुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम् ॥  
यन्ध्याद्विकृतिस्तकरोहिणीभ्यां । क-  
ल्कपिवेच्यापिसिताजलेन ॥ क्षतपुसपी  
पिचतद्गुडाश्च ॥ येतेचशस्ताहृदिपित्त  
दुष्टे ॥ दद्यात्भिषग्यन्त्रसाश्चगव्य  
क्षीराशिनाञ्चप्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोग में शीतल प्रदेह  
परिपेचन और विरेचन देना हित है । इस  
तरह शुद्ध होनेपर दाख, मिश्री, शहत औ-  
र फालसे के साथ अन्नपान दैये । मु-  
लहटी और कुटकी को घोटकर मिश्री  
के जल में छानकर पीने से भी पित्तज हृ-  
द्रोग दूर होजाते हैं । क्षतरोग में जो  
जो घृत और गुड़ वर्णन किये हैं वे  
सब रोगकी परीक्षा करके पित्तज हृद्रोगमें  
भी हित हैं परन्तु इनके साथमें रोगी को  
भयम मांसरस और गौके दूध का से-  
वन कराता रहे ॥

द्राक्षाबलाश्रेयसिशर्कराभिःखर्जूरवीरर्षभ  
कोत्पलैश्च । काकोलिमेदोयुगजीवकै  
श्चक्षीरेचसिद्धमहिपीघृतस्यात् ॥ कश्च  
रुकाशैवलभृद्वेप्रपुण्डरीकमधुकविस-  
स्य । ग्रान्यिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रा  
न्वितपित्तहृदामयघ्नम् ॥ स्थिरादिक  
लैःपयसाचसिद्धद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि  
सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्वरसाःसुशीताः  
हृदिपित्तदुष्टे ॥

अर्थ—दाख, खरटी, गजपीपल और  
शर्करा । अथवा खिजूर, क्षीरकाकोली, ऋप-  
भक और नीलकमल अथवा काकोली,  
मेदा, महामेदा और जीवक इन तीन प्र-  
योगों में से किसी एकके कल्कके साथ  
गौके दूध में भेंस का घी सिद्ध करकेदेयें ।  
कसेरू, शैवल, अदरस, पुंडरिया, मुलहटी,  
कमलनाल की गांठ इन के कल्कको चोमु-  
ने दूध में चढ़ाकर इसके साथ घृतपाककर  
के शहत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज  
हृदयरोग शान्त होजातेहैं शालिपर्ण्यादि  
के कल्क के साथ दूध में घृतको पकाकर  
अथवा दाख के रस वा ईखके रसके साथ  
पकाकर सेवन करना पित्तज हृदयरोग में  
हित है अथवा द्राक्षादि मिष्टफलों का क्वा-  
थ भी शीतल करने पर हित होता है ।

कफजहृद्रोग में चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्नस्यविलेपितस्यक्रियाकफ  
घ्नोक्तफमर्मरोगे । कौलत्थधान्यैश्चरसै  
र्यवाशैःपानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि ॥  
मूत्रश्रिताःकट्फलभृद्वेप्रपीतदुग्धयाति-

विपाःभेदाः॥ कृष्णाशटीपुष्करमूलरा-  
स्नावचाभयानागरचूर्णकञ्चुदुम्बराश्व-  
त्थवटार्जुनाख्ये ॥ पलाशरोहीतकसा-  
दिरचाकाथेत्रिभृत्त्र्युपणचूर्णसिद्धोलेहः  
कफघ्नोऽसिशिराम्बुयुक्तः॥

अर्थ—कफजहृदय के रोगमें स्वेदन, वम-  
न, और लघन क्रिया हित होती हैं । कु-  
लधी और धनियेके क्वाथ के साथ जो की-  
रोटियां वा शर्कराके साथ तीक्ष्ण अन्नपान  
सेवन कराना हित है । कायफल, अदरक, स-  
रलफाष्ट, हरड़, और अतीस इनको गौमूत्रमें  
काथ करके छानकर पीये अथवा पीपल, कचूर  
पुहकरमूल, रास्ना, वच, हरड़ और सोंठ इन सब  
का चूर्ण बनाकर सेवन करें । गूलर, पीपल,  
पड़, अर्जुन, पलास, रोहेडा और खैरकी  
लकड़ी इनका काथ कर के उसमें निसोथ  
और त्रिकुट्टा का चूर्ण डालकर पकावे ।  
इस लेहको गरमजल के साथ सेवन करने  
से कफज हृद्रोग जाता रहता है ॥

सान्निपातिकहृद्रोगमें चिकित्सा ।  
त्रिदोषजलघनमादितः स्यादन्नञ्चस-  
र्वत्रहितविधेयम् । हीनातिमध्यत्वमेवक्ष्य-  
च्च कार्यत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ भु-  
क्तोऽधिकज्जीर्यतिगूलमल्पं जीर्णोऽस्थि-  
तंचेतसरदारुदृष्टम् ॥ सतिल्वक्त्रं देलवणेवि-  
टं गं उष्णाम्बुनासातिविपंपित्तसः ॥  
जत्वश्मजं वाभिपगममत्तः ॥ प्रयोजयेत्  
कल्पविधानदृष्टम् ॥ माद्वयंतथागस्त्यम-  
यापिलेहं रसायनं ब्राह्ममश्रामलक्याः ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में प्रथमही

लेधन कराके तीनों दोषों में कहे द्रव्ये हित  
पदार्थों का सेवन करावे । दोषोंकी हीनता  
अधिकता और मध्यता देखकर ऐसी चि-  
कित्सा करै जो तीनों दोषों में हित हों ।  
जो हृद्रोग भोजन करतेही अधिक और  
पचने के समय कम होतौ देवदारु कूठ,  
लोघ, सैधानमक, संचरनमक, वाय-  
विहंग और अतीस इनके चूर्ण को गरम  
जल के साथ पीये । अथवा बहुत सावधानी  
से कल्पविधानोक्त शिवाजतु रसायन, अ-  
गस्त्यावलेह, ब्राह्मरसायन वा आमलकी रसा-  
यन का प्रयोग करना चाहिये ॥

जीर्णोऽधिके स्नेहविरेचनं स्यात् फलैर्वि-  
रेच्यो यदि जीर्यमाणे । त्रिदोषकालेऽप्यधि-  
कतुगुले तीक्ष्णं हितं मूलविरेचनं स्यात् ॥

अर्थ....जो भोजन के पचने पर हृदय में  
गूल अधिक होतौ स्नेह विरेचन देवे ।  
भोजन के पचने के काल में जो शूलहोतौ  
फल विरेचन देवे और जो तीनों समय में  
ही अर्थात् भोजनके करते ही, वा भोजन  
पचने पर वा पाचनकाल में शूल अधिक  
होतौ तीक्ष्ण मूलविरेचन हित है ॥

क्रिमिजन्य हृद्रोग में चिकित्सा ।

मायोऽनिलोरुद्धगतिः प्रकृप्यत्यागा-  
शये शोधनमेव तस्मात् ॥ कार्यतथालंघन-  
पाचनञ्च सर्वक्रिमिघ्नं कृमिहृद्गद्रेच ॥

अर्थ—प्रायः वायुका मार्ग रुकने पर वह  
आमाशय में जाकर रुकित होजाती है इस-  
लिये प्रथम शोधन कर्म करे पीछे क्रिमिना-  
शक लेधन पाचन किया करे । यह क्रिमि-  
जन्य हृदयरोग की चिकित्सा है ।

पीनसरोग का निदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाप्यक्रोध  
तुवैषम्यशिरोऽभितापैः ॥ प्रजागराति  
स्वपनाम्बुशीतैरवश्यमैधुनवाप्यधूमैः ॥  
संस्त्यानदोपेशिरसिप्रवृद्धोवायुःप्रतिश्या  
यमुदीरयेत् ॥

अर्थ—मलमूत्रादि वेग संधारण, अजी-  
र्ण, रज, अतिभापण, क्रोध, ऋतुवैषम्य,  
शिरोऽभिताप, जागरण, अतिनिद्रा, शीतल  
जलविहार, ओस, मैथुन, वाप्य और धूआं  
इन सब कारणोंसे शिरमें अत्यन्त आर्द्रता  
होतीहै और इसी कारणसे वायु वृद्धि पा-  
कर प्रतिश्याय उत्पन्न करतीहै ।

धातज पीनस के लक्षण ।

घ्राणार्तितोदौर्भ्यथुर्जलाभः ।

स्तायोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥

अर्थ—धातज प्रतिश्यायमें नासिकामें अ-  
र्ति और सुई भेदन के समान पीड़ा, सूजन,  
जलेक समान नाक टपकना, स्वरभंग और  
शिरमें दर्द ये लक्षण होते हैं ।

पित्तजपीनसके लक्षण ॥

नासाग्रपाकज्वरघ्वन्नशोप ।

तृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तज प्रतिश्याय में नासिका के  
अग्रभाग का पाक, ज्वर, मुखमें सूखापन,  
तृषा, गरम और पीलेरंग का क्षाव होताहै ।

कफज पीनस के लक्षण ।

कामारुचिस्तावघनप्रसेकात् ।

कफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्टः ॥

अर्थ—कफज प्रतिश्यायमें खांसी अरु-

चि, क्षात्र, गादामवाद निकलना, स्रोतोंमें  
भारापन और खुजली होतीहै ।

सांनिपातिकपीनस के लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातात्

स्युःपीनसेतीव्ररुजोऽतिदुःखे ॥

अर्थ—सांनिपातिक प्रतिश्याय में तीनों  
दोषों के लक्षण पाये जातेहैं, इसमें तीव्रवेद-  
ना और कष्ट होता है ॥

प्रतिश्याय के दूषितहोने का कारण ।

सर्वोऽतिवृद्धाऽहितभोजनात् ॥

दुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥

अर्थ—तीनों दोषों के अत्यन्त वृद्धिजने  
से, अहित भोजन करने से या उपेक्षा कर  
ने से प्रतिश्याय बिगड़जाता है ।

दूषितप्रतिश्याय के लक्षण ।

ततश्चरोगाःक्ष्वथुःमनासाशोपःप्रतीना-

हपरिस्त्वौच । घ्राणास्यपूतित्वमपीनस

श्चसपाकशोथार्थुदपूपरक्ताः ॥ अरुं पि

मूत्रश्वणाक्षिरोगखालित्यहर्षकुंनलोम-

भावाः ॥ तृद्भासकासज्वररक्तपित्तवैश्व

र्यशोपाश्चततोभवन्ति । रोधाभिघात

स्रवशोपपाकैर्ग्राण्युतंत्यदचनवेत्तिगन्धम्

दुर्गन्धिचास्यं बहुशः प्रकोपिदुष्टप्रतिश्याय

मुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—प्रतिश्याय ( जुकाम ) के बिगड़

ने पर छींक, नाक का सूखना, प्रतीनाह

[ नाकका रुकजाना ] परित्याग, नाक

और मुख में दुर्गन्धि, अपीनस, नासापाक,

सूजन, अर्बुद, पीव, रक्त, फुस्सियां, मूत्रस्ता-

व, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य, रोमोंका पीडा

वा सफेदहोना, तृषा, स्वास, खांसी, ज्वर, रक्तापित्त, स्वरभंग और शोष ये उपद्रव हो ते हैं । जिस रोग में नाक रुकजाती है, जिस में अभिघात, स्राव, शोष और पाक होता है जिस में गंध का ज्ञान नहीं होता है और मुख में दुर्गंध होजाती है, यह बार बार कुपित होनेवाला दुष्ट प्रतिश्याय होता है ।

**छींकका कारण ।**

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्नि ।

विश्वक्पथस्थः क्षवधुं करोति ॥

अर्थ—संपूर्णमर्मा का स्पर्श करके मस्तक के समस्त मार्गों में स्थित वायु क्षवधुनामक रोग को उत्पन्न करती है ।

**शोषका कारण ।**

बलीतुसंशोष्यकफन्तुनासा ।

गृह्णादकेघ्राणविशोषणं च ।

अर्थ—प्रबल हुई वायु कफ को सुखाकर नासिका के पुट और घ्राणमार्ग में शोष उत्पन्न करती है ॥

**प्रतीनाहलक्षण ।**

उच्छासामार्गन्तुकफः सवातो ।

रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—कफवायु से मिलकर जब स्वास के मार्ग को रोकलेंता है तब उसे प्रतीनाह कहते हैं ॥

**स्त्रावकालक्षण ।**

घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा ।

दोषः स्रवत्स्त्रावमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—नासिकासे जो गाढा, पीला, सफेद, अधवा पतला बिगड़ा हुआ मल निकलता है उसे स्त्राव कहते हैं ।

**अपीनसकालक्षण ।**

योमस्तुलुङ्गाद्धनपीतपक्वः कफः स्रवेद्गा  
दमपीनसः सः ॥

अर्थ—मस्तक से जो घना, पीला पक्व और गाढा कफ निकलता है उसे अपीनस कहते हैं ।

**पूतिनासाके लक्षण ।**

वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयात्तु ।

स्यात्पूतिनासंश्चयधुर्मथ ॥

अर्थ—इस रोगकी उपेक्षा करने से जो विवर्णता, दुर्गन्धि, सूजन और भ्रम होता है उसे पूतिनासा कहते हैं ।

**घ्राणपाकका लक्षण ।**

सदाहरागः श्वयधुः सपाकः ।

स्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपिसात् ।

अर्थ—जिस में दाह, राग, सूजन और पाक होता है उसे घ्राणपाक कहते हैं यह रक्तपित्त से भी होता है ।

**नासाशोथ का हेतु ।**

घ्राणाश्रितासृक्प्रभृतीन्प्रदूष्य ।

कुर्वन्तिनस्तः श्वयधुंमलाश्च ॥

अर्थ—जबवातादि दोष नासिकामें स्थित रक्तादि को दूषित करते हैं तब नासिका में सूजन होती है ।

**अर्बुदका कारण ।**

घ्राणेतयोच्छ्वासमार्तिनिरुद्ध्य ।

मांसास्रदोषादपिचार्बुदानि ॥

अर्थ—स्वास के रुक जाने से मांस और रक्त के दूषित होने से नासिका में अर्बुदरोग होता है ॥

पूयरक्त का कारण ।

घ्राणात्स्रवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वा ।

पित्ताक्तमस्रन्त्यपि पूयरक्तम् ॥

अर्थ—जो नाक, कान वा मुखसे पित्तयुक्त रक्तका स्राव होता है उसे पूयरक्त कहते हैं ।

अरुःका कारण ।

कुर्यात्सपित्तः पवनस्त्वमादीन् ।

मन्दूष्यचारुपिसपाकवन्ति ॥

अर्थ—पित्त से मिलाई हुई वायु त्वचा आदि को दूषित करके जो कुन्तियों को उत्पन्न करती है उसे अरुः कहते हैं ।

शिरोरोग का निदान ।

भृशार्तिशूलस्फुरतीहवातात् । पित्तात्सदाहार्तिकफाद्गुरुः स्यात् ॥ सर्वास्त्रिदोषक्रिमिभिस्तुकण्ड दौर्गन्ध्यतोदात्तिभुतं शिरः स्यात् ॥

अर्थ—थातज सिरके रोग में अत्यन्त वेदना, शूल और फटफटाहट होती है । पित्तज सिरके रोग में दाह और अस्ति होती है । कफके सिररोग में भारापन होता है । सान्निपातिक शिरोरोग में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और क्रिमिजन्य शिरोरोग में खुजली, दुर्गन्धि, तोद और अस्ति होती है ।

थातज मुखरोग का लक्षण ।

मुखामयेमारुतजेतुशोष कार्कश्यरौक्ष्याणि च लारुजश्च ॥ कृष्णारुणनिष्पन्नं सुशीतं प्रमंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥

अर्थ—थातज मुखरोग में शोष, कार्कशता रूक्षता चलायमान वेदना, काला, लाल और

शीतल स्राव, प्रस्रवण, स्पन्दन, तोद और भेद ये उपद्रव होते हैं ॥

पित्तज मुख रोग का लक्षण :

तृष्णाज्वरस्फोटकतालदाहा धूमायनंचाप्यवदीर्णता च ॥ पित्तात्समूर्च्छाविषाकारुजश्च वर्णश्च शुक्रारुणवर्णवर्ज्याः

अर्थ—पित्तज मुखरोग में तृष्णा, ज्वर, स्फोटक, तालदाह, धूमांसां घुनडना, फटना, मूर्च्छा, अनेक प्रकार की वेदना, तथा सफेद और लाल के अतिरिक्त और रंग होजाना । ये उपद्रव होते हैं ॥

कफज मुख रोग का लक्षण ।

कण्डूर्गुरुत्वं सितविज्जलत्वं स्नेहोरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ । उत्क्लेशमन्दानिलताथ तन्द्रा रुजश्च मन्दाः कफयक्ष्मरोगे ॥

अर्थ—कफज मुखरोग में खुजली, भारापन, सफेदाई, गिलगिलापन, चिकनाई, अरुचि, जडता, कफप्रसेक, उत्क्लेश, मन्दामिता, तन्द्रा और मन्दवेदना होती है ॥

सान्निपातिक मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुषक्तरोगे ।

भवन्ति यस्मिन् सत्सर्वजः स्यात् ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे त्रिदोषज मुखरोग कहते हैं ॥

मुखरोग के अन्य भेद ॥

संस्थानदृष्ट्या कृतिनामभेदा चैते चतुःषष्टिविधमवन्ति ॥ शालाक्यतन्त्रे विहितानि तेषां निमित्तरूपाकृतिभेदजानि ॥

अनून्यतार्थतुचतुर्विधस्य ॥



क्रियांभवक्ष्यामिमुखामयस्य॥

अर्थ—संस्थात, दृश्य, आकृति और नामभेद से मुखरोग त्रिसठ प्रकार के होते हैं। इनके विशेष २ हेतुरूप, आकृति और चिकित्सा शालाक्यतंत्र में सविस्तर वर्णन की गई हैं। कुछ तर्पण किये जाने के निमित्त इस जगह वातजादि चार प्रकार के मुखरोगों की चिकित्सा वर्णन की जायगी (इस ग्रन्थ में शालाक्यतंत्र नहीं है हमारे छोपे हुए सुश्रुतग्रन्थ में इन रोगों का वर्णन है)।

अरुचि के भेदः

वातादिभिःशोकभयातिलोभः।

क्रोधाद्यदृष्ट्याशनगन्धरूपैः॥

अर्थ—अरुचि रोग वात, पित्त, कफ और सान्निपात के कारण उत्पन्न होने से चार प्रकार का है तथा इसका एक प्रकार और भी है कि वह शोक, भय अत्यन्त लोभ, क्रोध, तथा अदृष्ट भोजन, गन्ध और रूपादि दर्शन से होता है।

वातजरुचिके लक्षणः।

अरोचकःकर्कशशीतदन्तः।

कषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन॥

अर्थ—वातजरुचि में कर्कशता, दांतों में शीतलता और मुखमें कसालापन होता है।

पित्तजरुचि के लक्षणः।

कट्वम्लमुष्णं त्रिरसंचपूति॥

पित्तनविद्याल्लवणञ्चवक्त्रम्॥

अर्थ—पित्तजरुचि में मुख कड़वा, बड़ा, उष्ण, त्रिरस, दुर्गन्धयुक्त और भस्मीन होजाता है।

कफजरुचिके लक्षणः।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्ये।

विवन्धसंस्तम्भयुतं कफेन॥

अर्थ—कफजरुचि में मुख मीठा, गिला-गिला, भारी और शीतल होता है तथा विवन्धता और स्तम्भता भी होती है।

शोकादिजन्य अरुचिके लक्षणः

अरोचकेशोकभयातिलोभः क्रोधाद्यदृष्ट्याशनगन्धजे स्यात्॥ स्वाभाविकश्चास्य रसोरुचिश्च त्रिदोषजैर्नकारसम्भवेत्॥

अर्थ—शोक, भय, लोभ, क्रोध, अदृष्ट भोजन और गन्ध आदि से जो अरुचि होती है उसमें मुखका रस स्वाभाविक होता है और त्रिदोषजरुचि में मुख का रस एक प्रकार का नहीं रहता है।

वातजरुचिरोगके लक्षणः।

नादोऽतिरुर्कर्णमलस्य शोषः।

श्रावस्तनुश्चास्त्रेवणञ्चवातात्॥

अर्थ—वातजरुचिरोग में कानों में नाद श्रवण, मल का सूखजाना, पतला स्त्राव वा स्त्राव न होना ये लक्षण होते हैं।

पित्तजरुचिरोगके लक्षणः।

शोफः सरागोदरणं विदाहः॥

सर्पातपूतिसूचणश्चपिचात्॥

अर्थ—पित्तजरुचिरोग में छालवर्ण की सूजन, दरण, दाह और पीले रंगकी दुर्गन्धित पीव निकलती है।

कफजरुचिरोगके लक्षणः।

वैश्रत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लः।

१ अश्रवणमिति गंगाधरः॥

स्निग्धाश्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुच्य ॥

अर्थ—कफजकर्णरोग में सुनाई न देना  
खुजली, कड़ी सूजन सफेद और चिकना  
खाव तथा अल्पवेदना होती है ।

साक्षिपातिकर्णरोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।

आवश्चतत्राधिकदोषवर्णः ।

अर्थ—त्रिदोषज कर्णरोग में तीनों दोषों  
के लक्षण मिलते हैं तथा इस में सूत्र दोष  
और वर्णकी अधिकता होती है ।

वातजनेत्ररोगकालक्षण ॥

अल्पांसुरागानुपदेहताच ।

प्रस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात् ।

अर्थ—वातजनेत्ररोग के होने से आँखों  
में आंसुओं का न आना, लड़ाई का कम  
होना, कम ल्हिसावट होना, फडकन, चक्का  
और तीव्र वेदना होती है ।

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण ॥

पित्तात्तुदाहातिरुजोऽतिरागाः ।

पीतोपदेहः सृग्भूषोष्णमनु ॥

अर्थ—पित्तज नेत्र रोग में दाह, यातना  
वेदना, अत्यन्त लड़ाई पीतोपल्लितता, बहुत  
और गरम आंसू ये लक्षण होते हैं ।

कफजनेत्ररोगकेलक्षण ।

शुक्लोपदेहो बहुपिच्छिलासु ।

नेत्रस्य खेटाद्गुरुता स कण्डूः ॥

अर्थ—कफज नेत्ररोग में शुक्लां पल्लितता  
बहुत और गिलगिले आंसू, गुरुता और  
खुजली होती है ।

सान्निपातिकनेत्ररोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितु सान्निपातान्ने-

त्रामयापणवतिस्तुभेदात् ॥

अर्थ—त्रिदोषज नेत्ररोग में तीनों दोषों  
के लक्षण मिलते हैं । नेत्ररोग सब मिलकर  
छियानवें प्रकार के होते हैं ।

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालाक्यतः  
न्नेपुचिकित्सितश्च । पराधिकारे तु न वि-  
स्तरोक्तिः शस्तेतितेनात्र ननः प्रयासः ॥

अर्थ—इन रोगोंका विस्तार पूर्वक वर्णन  
शालाक्यतंत्र में है और चिकित्सा पराधिका-  
र में विस्तारपूर्वक ठीक नहीं कही गई है,  
इससे हमारा यहां प्रयास नहीं है ।

खालित्यनिदान ॥

तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिदग्ध्वाशुकुर्य-  
त्स्वल्गतिनरस्य । किञ्चित्तु दग्ध्वापलिता-  
निकुर्याद्धरिभक्त्यंच शिरोरुहाणाम् ॥  
इत्यूर्ध्वजन्त्यगदैकदेशः प्रोक्तश्चिकित्सा-  
न्तुपरांनिशोध । विस्तारतः संग्रहतश्च स-  
म्यग्यथाक्रमं सौम्यमयोच्यमानाम् ॥

अर्थ—वातादिक दोषों से मिलित होकर  
तेज केशभूमिकोजलाकर खालित्य ( बालों  
का गिरना ) रोगको उत्पन्न करता है  
और जो पूर्णरीति से केशभूमि दग्ध नहीं  
होती है तो सफेद वा हरे होजाते हैं ॥  
जन्तुसे ऊपर होने वाले रोगों का वर्णन  
इस प्रकार से किया गया है अब हम  
संक्षेप और विस्तार से उनकी चिकित्सा  
का वर्णन करते हैं ॥

वातजपीनसमं चिकित्सा ।

वातात्मका स वैस्वर्ये सक्षारपीनसे घृतम् ॥  
पिवेद्रसंपयोवोष्णः स्नेहिकं धूममेव वा ॥

शताह्वात्वम्वलामूलद्वयोनाकैरण्डविल्वजम्  
सारग्वधांपिषेदात्तमधूच्छिष्टवसाधृतैः ॥  
अथवासधृतान्सक्तून्कृत्वामल्लकसंपुटे॥  
नवप्रतिशयायवतांधूमैर्वेधः प्रकल्पयेत् ॥  
शंखमूर्धललाटातैपाणिस्वेदोपनाहनम् ॥  
स्वभ्यक्तैश्वधुसावरोधादांसङ्करादयः ॥

प्रेयाश्चरोहिपाजाजीवचातकारिचोरकाः  
स्वप्नपत्रमरिचैलानांचूर्णावासोपकुञ्चिकाः

अर्थ—घातज पीनसमें खांसी और स्व-  
रमंग होनेपर जवाखार मिलाहुआघी, मांस  
रस, गरमदूध वा स्निग्ध धूमपान हित है॥  
अथवा सोंफ, दाढचीनी खरैटीकी जड़,  
श्यानाक, अरंडीकी जड़ और बेलकी छाल  
और अमलतास इनको पीस कर मोम  
चर्बी और घी में सान कर बती घना कर  
धूमपान करै ॥ अथवा नवीन प्रतिश्याय में  
घी और जौका सत्तू इनको चिलम में धर  
कर पीवै । फनपटी, मूई और ललाट में  
वेदनी होनेपर हाथोंको गरम करै और ग-  
रम उपनाह अर्थात् पुलसट बांधै । जो  
छींक वा नाकका बहना बन्द होजाय तौ  
शरीर पर अच्छी तरह से तैलादि मर्दन  
करके शंकरस्वेद देवै । अथवा रोहिपतृण,  
कालाजीरा, वच, तर्कारी और चोरक इन  
को पीसकर सूँघै अथवा दाढचीनी, तेज-  
पात, कालीमिरच, छोटी इलायची और  
जीरा इनके चूर्णको सूँघै ।

तैलप्रयोग ।

स्रोतःशृङ्गाटनासाक्षिशोषेतैलं सनावनम्॥  
प्रभाव्याजेतिलानुक्षीरेतेन पिष्टांस्तदूप-

णा । मन्दास्विन्नान्सयप्याहचूर्णास्ते  
नैवपीडयेत् ॥ दशमूलस्यनिष्काधेरास्ना  
मधुककल्कवत् । सिद्धंससैन्धवंतैलं दशकृ  
त्याणुतत्स्मृतम् ॥ स्निग्धस्यास्थापनैर्दो-  
पनिर्हरेद्वातपीनसे ।

अर्थ—स्रोत, नासापुट, नासिका और  
आँखों में शोष होनेपर नाँचे लिखेहुए तैल  
की नस्य देवै । यथा—तिलों को बकरी के  
दूधकी भावना देकर बकरीके दूधमें ही  
तिलोंको पीसलेवै और एक हांडी में दूध  
भरकर उसपर एक कपड़ा ढककर उसपर  
उत्त पिन्हीहुई लुगदीको रखदेवै और हाँटी  
के नाँचे आग जलावै जिससे दूधकी गरमाई  
से तिल साँज जायंगे । फिर उसमें मुल्ह-  
टी का चूर्ण मिलाकर ऊपरवाले दूध मेंही  
उसे निचोड़ लेवै । इसको दशमूल के  
काथमें पकावै और इसमें रास्ना, मुल्हटी  
और सेंधानमक डालकर पकावै । इसतरह  
दशवार सिद्ध करने से अणुतैल सिद्ध हो-  
ताहै रोगी को प्रथम आस्थापन देकर स्निग्ध  
करै फिर वातज पीनस में उक्त तैल की  
नस्य देवै ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नेग्राम्यादीनां  
सैर्हितम् ॥ उष्णाम्बुनास्नानपानश्चानिवा  
तोष्णप्रतिश्रयः । चिन्ताव्यायामवाक्चे  
ष्टान्यवायविरतोभवेत् ॥ वातजेपीनसेधी  
मानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल और उष्ण ग्राम्य  
जीवोंके मांसरस के साथ लघु अन्न देवै ।  
स्नान करने में और पीने में उष्ण जलका

मायूर घृत ।

दशमूलवलारास्नात्रिफलामधुकैः सह ।  
मयूरपक्षपित्तान्नशकृत्तुण्डाधिवर्जितम् ॥  
जलेपकृत्याघृतप्रस्थतस्मिन्सीरसमपचेत् ।  
मधुरैः कार्पिकैः कल्काशिरोरोगादितः पचेत् ॥  
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वातालवास्पगलरोगनु-  
त् । मायूरामिति विख्यातमूर्ध्वजनुगदापहम् ॥

अर्थ—दशमूल, खरौटी, रास्ना, त्रिफला और मुलहठी तथा मोर के ( पंख, पित्ता, श्वात, वीट, चोंच और उंगलियों को छोड़ कर ) मांस, रक्तादि इन सबका काथ कर के एक प्रस्थ घी और उतनाही दूध तथा जीवनीय औषधियों का कल्क एक एक कर्प डालकर पकावै । इस घृतके पीनेसे सिर के रोग, कानके रोग, आँखके रोग नाक के रोग, जिह्वा के रोग, तालु के रोग, मुख के रोग और गले के रोग दूर होजातेहैं । यह ऊर्ध्वजनुगदनाशक मायूरनामक घृत है ।

महामायूर घृत ।

एतेनैवकपायेणघृतप्रस्थविपाचयेत् । च-  
तुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्चकार्पिकैः ॥ जी-  
वन्तीत्रिफलामेदामधुकाक्षिपक्षकैः । स-  
मंगाचविकाभागिकाश्मरीसुरदारुभिः ।  
आत्मगुप्तामहामेदातालखजूरमस्तकैः ।  
मृणालविसशालकशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥  
शतावरीविदारीधुवृहतीशारिवायुगैः ॥  
मूर्वाश्वदंष्ट्रपक्षशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ रा-  
स्नास्थिरातामलकीमूक्षमैलाशटीपुष्करैः  
पुनर्नवातुगीक्षीरिकाकोलीधन्वयासकैः  
मधुकाक्षोदवाताममुञ्जाताभिपुष्करैः ।

द्रव्यैरेभिर्यथाश्लभंपूर्वकल्केनसाधितम् ॥  
तत्पक्वनावनेऽभ्यगेषानेवस्तीप्रयोजयेत् ।  
शिरोरोगेषुतर्पेपुकासेद्रासेचदारुणे ॥  
मन्यापृष्टग्रहेशोपेस्वरभेदेतथादिते ॥ यो-  
न्यस्रवशुक्रदोषेषुशस्तं वन्ध्यासुतमदम् ॥  
ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रंमजायते ॥  
महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कपाय के साथ एक प्रस्थ घी चारप्रस्थ दूध और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क एक एक कर्प डाल कर पकावै, यथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, ऋद्धि, कालसा, समंगा, चव्य, भाडंगी, खमारी, दे-  
यदारु, कैचकेवीज, महामेदा, ताल, खजूर, मृणाल, कमलकीगाँठ, शालक, काकडासींगी, जीवक, पद्माख, सितावर, विदारीकन्द, ईख, बड़ी कटेरी, दोनों सारिवा, मरोडकली, गोखरू, ऋपभक, सिंचाडा, कसेरू, रास्ना, शालिप-  
णी, भूय आवला, छोटी इलायची, शठी, पुष्कर मूल, साँठ बेशलोचन, काकोली जवासा, मुलहठी, अखरोट, बादाम, मुंजात, पिस्ता इन द्रव्योंमें से जितने मिलसकें उनको पूर्वोक्त कल्कके साथ पकावै । इस घृतको नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिद्वारा प्रयोग करे इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रकारके शिरोरोग-  
ग-दारुण खाँसी और श्वास, मन्यग्रह, पृष्टग्रह, शोष, स्वरभेद, अर्दितरोग, योनिरोग, रक्तदोष शुक्रदोष, दूर होजातेहैं । इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री के पुत्र होता है । ऋतुस्नान करके जो स्त्री इसे पीतीहै उसके पुत्र होता है । इसकी भगवान् आत्रेय ने

महामायूरघृत नामसे प्रशंसा की है ।

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिबुद्धिमान  
कल्केनानेनविपचेत्सर्पिर्ध्वगदापहम् ॥

अर्थ....पूर्वोक्त रीति के अनुसारही मयूर  
मांस की जगह चूहे, हंस मुर्गे वा खगोश  
का मांस इस कल्क के साथ घृत पकाकर  
सेवन करना ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करताहै

पित्तजशिरोरोगमेंचिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः।  
जीवनीयानिसर्पापिपानान्नंचापिपित्तनु  
त् ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याहवलाव्याघ्रन  
खोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्यात्शृतैर्वा  
परिपेचनम् ॥ त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपि  
ष्टस्तंडुलाम्बुना । कायोंऽत्रपीडःसर्पिश्च  
नस्यंतत्स्यात्तुपैत्तिके ॥ यष्ट्याहचन्द  
नानन्नाक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् । नायनंशर्क  
राद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥

अर्थ—पित्तज शिरोरोगमें घृत, दूध, शी-  
तल परिपेक, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय  
गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत तथा पित्तना-  
शक अन्नपान को सेवन करना चाहिये ।  
रक्त चन्दन, खस, मुलहठी, खैरटी, बघन-  
रवा, नीलकमल इन सबको दूधके साथ पी-  
सकर सिरपर लेपकरे अथवा इनका क्वाथ  
करके सिरपर परिपेक करे । अथवा दालची-  
नी, तेजपात और शर्करा इनको तड़ुलज-  
ल के साथ पीसकर नाकमें निचोड़ें ऊपर  
से घृतकी नस्य लेवै । अथवा मुलहठी,  
चन्दन, अनन्तमूल इनके कल्कको दूध और  
घी में पाक करके इस घृत की नस्य देवै ।

इसी तरह से शर्करा, मुलहठी और दाख इन  
में दूध के साथ घृत पकाकर नस्य देवै ।  
इससे पित्तज शिरोरोग शान्त होजाते हैं ।

कफजशिरोरोगकीचिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः ।  
शुद्धंमलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥  
पुराणसर्पिपःपानस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरंवचा  
कफानिलोत्थितेदाहःशेषयोरक्तमोक्षणम्

अर्थ—कफज शिरोरोगमें स्वेदन करके  
धूम, नस्य और प्रधमन आदिक प्रयोगों  
से शुद्ध हुए मनुष्यको कफनाशक प्रलेप  
तथा अन्नपानका सेवन करावै, कफवातज  
शिर के रोगमें पुराने घृतका पान कराना  
और तीक्ष्ण वास्तियोंका प्रयोग श्रेष्ठ है शेष  
दोनों अर्थात् सान्निपातिक और क्रिमिज हृ-  
द्रोगों में फस्त खोलना हित है ।

उत्तररोगोंकीचिकित्सा ।

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुलवगुरुचन्दनैः ।  
धूमवर्तिःपिवेद्गन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥  
सन्निपातभवेकार्यासन्निपातहिताक्रिया ।  
क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णमूर्द्धाविरेचनम् ।  
त्वद्मधूकोनखोदन्तीविटङ्गनवमालिका  
अपामार्गफलंवीजंनक्तमालशिरापयोः ।  
श्वयोश्मन्तकोविल्यंहरिद्राहिगुपृथिका  
फणिज्झकयुतैस्तैलमाविमूत्रेचतुर्गुणे ।  
सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णंचैषामधमनंभवेत् ॥  
फलंशिशुकरज्जाभ्यांसच्योपंचावपीडक-  
म् । कपायारुग्धराःसारचूर्णोपकल्कोऽव  
पीडकः ॥

अर्थ—अरंडकी जड़, खस, गुग्गुल, अमर,

होनेपर भोजन के पीछे घृतपान करें। इस में नस्य तथा मधुर स्निग्ध और शीतल मांसरस भी हित है। मुखपाक में शिराकर्म शिरोविरेचन और काय विरेचन देवें तथा गोमूत्र, तेल, घी, शहत और दूध के साथ कबलप्रह भी उत्तम है। मुखपाक में त्रिफला पाठा, दाख, चमेली के पत्ते इनके क्याथ में शहत डालकर अथवा कपाय और तिक्त शीतल काथ भी मुखके धोने में उत्तम है॥

खदिरादिबटिका ।

तुलांखदिरसारस्याङ्गिगुणामरिमेदसः ॥  
प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत्  
द्रोणशेषकपायन्तं पूत्वाभूयःपचेच्छनैः ॥  
ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागि-  
कम् । चन्दनंपत्रकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकी  
घनम् ॥ प्रपुण्डरीकंप्प्याहृत्वगेलापत्रके-  
शरमूलाक्षारसाञ्जनंमांसींत्रिफलालोध-  
यालकम् ॥ रज्ज्याफलनीमेलंसांमर्द्वाकटफ-  
लंबचाम् । यवासागरुपुत्ररुगैरिकाञ्जनमा-  
वपेत् । लवंगनखककोलजातिकोशान्पलो-  
न्मितान् । कर्पूरकुडंबचापिपुनःशीतेऽवता-  
रिते ॥ ततस्तुगुलिकाःकार्याः शुष्काश्वा-  
स्येनधारयेत् । तैलं चानेनकल्केनकपाये-  
णचसाधयेत् ॥ दन्तानांचलनंभ्रंशंशौपि-  
र्यक्रिमिरोगनुत् । मुखपाकास्यदौर्गन्ध्य-  
जाड्यारोचकनाशनम् ॥ सावोपलेप-  
पैच्छिल्यपैस्वर्यगलरोगनुत् ॥ दन्तास्य  
गलरोगेषुसर्वेषां तत्परायणम् ।

अर्थ—सफेद खैरसार एक मुला, बिट खैर दो मुला इनको अच्छी तरह धोकर

कूट लेवें और फिर इस सबको चार द्रोण जल में चढ़ाकर पकावें जब एक द्रोण जल रहजाय तब इसे छानकर छने हुए को फिर धीरे २ पकावें । इसतरह पकते पक-  
ते जब गाढ़ा पड़जाय तब इसमें निम्न लि-  
खित द्रव्यों को दो दो तोले लेकर चूर्ण करके मिलादेवें । द्रव्य यथा—रक्तचन्दन, पद्माख, खस, मजीठ, धायके फूल, मोथा, पुंडरिया, मुलहठी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, केसर, लाख, रसात, जटामांसी, त्रिफला, लोध, नेत्रवाला, दोनों हलदी, प्रियंगु, बड़ी इलायची, लज्जालू, कायफल, वच, जयासा, अगर, पतंग, गेरू, और अंजन ये द्रव्य डाले फिर शीतल होनेपर अग्नि के ऊपर से उतारकर लोंग, नखी, ककोल और जावित्री एक एक पल डाले और एक कुडब कपूर गेरू । फिर इसकी गोलियां बनाकर सुखालेवें । एक एक गोली मुख में डालता रहे । अथवा इन्हीं द्रव्यों के कल्क और कपाय में तेल को पकाकर मुख में धारण करें । इन प्रयोगों से दांतों का हिलना, टूटना, छिद्र होजाना, कीड़े लगना, मुखपाक, मुखदुर्गन्ध, जड़ता, अरुचि, छाव, उपलेप, पिच्छिलता, विस्वरता और गलरोग दूर होजाते हैं । दांत और गले के जितने रोग हैं वे सब इस से दूर होजाते हैं ।

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ॥  
मनोऽमनपानञ्चहर्षणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—अरुचिरोगमें कवलग्रह, घूमपान, मुखधावन, मनोज्ञ अन्नपान, हर्षण और आश्वासन कर्त्तव्य हैं ।

कवलग्रहके चारप्रयोग ।

कुट्टसौवर्चलाजार्जीशर्करामरिचंविडम् ॥  
धात्र्येलापन्नकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम्  
लोध्रेतजोवतीपथ्यायूपणंसयवाग्रजम् ॥  
आर्द्रादाडिमनिर्वासाश्वाजार्जीशर्करायुतः  
सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः ॥  
चतुरोरोचकामूहन्नुर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥

अर्थ—( १ ) कूठ, संचरनमक, कालाजीरा, शर्करा, कालीमिरच, विडनमक । [ २ ]

आंवला, छोटी इलायची, पद्माख, खस, पीपल, नीलकमल और चन्दन [ ३ ] लोध, चव्य, हरड, त्रिकुटा और जवाखार [ ४ ] अदरक और अनारका रस, कालाजीरा और शर्करा

ये चार प्रकार के कवलग्रह तेल और शहत मिलाकर सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज अरुचिको क्रमसे दूर करते हैं ।

कारवीमरिचाजार्जीद्राक्षावृक्षाम्लदाडि-  
मम् । सौवर्चलंगुडंभौद्रसर्वारोचकनाशनम्  
वस्तिंसमीरणेपित्तेविरेकं वमनं कफे ॥

कुर्याद्बृहदानुकूलानिहर्षणं च मनोघ्नजे ।

अर्थ—कालाजीरा, कालीमिरच, दूसरा जीरा, दाख, वृक्षाम्ल दाडिम, संचलनमक गुड और शहत इन सब को समान समान भाग मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि दूर हो जाती है । वातज अरुचि में वस्तिप्रयोग, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करावे । एवं मन के विकार

से उत्पन्न हुई अरुचि में हृदय प्रिय और मनोनुकूलहर्षणादि किया करे ।

वातज स्वर भेदकी चिकित्सा ।

सर्पौप्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके ॥  
तैलैश्चतुष्प्रयोगश्चवलारास्नामृताह्वयैः ॥

वर्हिततरिदत्ताणांपञ्चमूलशृतान्नरसान् ॥

मायूरक्षीरसर्पिर्वापिवेश्युपणमेववा ॥

अर्थ—वातात्मक स्वर भेदमें भोजन के पीछे घृतपान करना चाहिये । इस में घला तैल, रास्ना तैल, गुरुचतैल, तथा क्वाथ, दूर्ण, लेह और कवल ये चार प्रकार के प्रयोग करना उचित है । पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मोर, तीतर और मुर्गे का मांसरस पान करे अथवा मायूर क्षीर, मायूर सर्पि वा त्रिकुटादि घृत का सेवन हित है ।

पित्तजस्वर भेद की चिकित्सा ।

पैत्तिकैतुविरेकः स्यात्पयस्तुमधुरैः शृतम् ॥

सर्पिर्गुडावृतं तित्कं जीवनीयं घृतपस्य च ।

अर्थ—पित्तात्मक स्वरभेद में विरेचन, मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध सर्पि-गुंड, तित्क घृत, जीवनीय घृत, और वासाघृत हित है ॥

कफज स्वर भेद में चिकित्सा ।

कफजस्वरभेदे तु तीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम् ॥ वि-

रेको वमनं घृमाय चान्नकटुसेवनम् । चव्य

भाग्यभयाव्योपक्षारमाक्षिकंचित्रकान् ॥

लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णमथपिवेचसः ।

अर्थ—कफात्मक स्वरभेद में तीक्ष्णशिरो-विरेचन, वमन, घूमपान, यवान्न, कटुद्रव्य

सेवन उचित है। चय्य भाङ्गी, हरड़, त्रिकु-  
टा, जवाखार शहत और चांता इनको ले-  
हन करे अथवा पीपल और हरड़ का शह-  
त के साथ चांटे अथवा तांदूण मशपानकरे।

**रक्तजस्वरभेदकीचिकित्सा ।**

रक्तजस्वरभेदेतुसधृताजांगलारसाः ॥

द्राक्षाविदारीशुरसाःसपृतसाद्रशकराः ॥

यद्योक्तज्ञयकासध्नतश्चसर्वाचिकित्सित-  
म् ॥ पित्तजस्वरभेदग्रंशिरानेधश्चरक्तजे।

अर्थ—रक्तजस्वर भेद में घृत सहित  
जांगलमांसरस देवे। दाखविदारीकन्द और  
ईख का रस घी, शहत और चीनी गिला-  
कर दवे तथा क्षयकास में जो जो चिकित्सा  
कही गई है वह भी सब हित है। इसरोग  
में पित्तजस्वर भेद नाशक चिकित्सा और  
गिरावेध कराना भी हित है ॥

**सन्निपातजस्वरभेदकीचिकित्सा ॥**

सन्निपातंहिताःसर्वाःक्रियाननुशिरोविधिः

अर्थ....सिरावधन, को छोड़कर और  
सब चिकित्सा सन्निपातज स्वरभेद में उप-  
योगी होती है ॥

**कर्णरोग में चिकित्साविधि।**

कर्णशूलेतुयातध्नीहितापीनसवत्क्रिया॥

प्रदेहःपूरणंनस्यपाकसावेग्रणक्रियाःभोज्या

निचयथादोपंकुयान्निर्हन्तिचपूरणान् ॥

अर्थ—कर्णशूल में पीनस के सदृश वात

नाशितो क्रिया हित होती है। इसमें प्रदेह

तेल से पूरण और नस्य भी देना उचित है

कर्णपाक अथवा कर्णज्वर में ग्रण के स-

मान क्रिया कीजाती है ॥ दोष के अनुसार

कर्णरोग में भोजन तथा कर्णपूरण और  
स्नेह हितकर होते हैं।

**कर्णपूरणप्रयोग ।**

हिंमुतुम्युकशुण्ठीभिस्तैस्तलंसापिपचयेत्॥

एतद्विपूरणथेष्टंकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—होंग, धनियाँ और सोंठ ढालकर

सरसोंका तेल पकाकर कान में डाले। यह

कर्णशूल के दूर करने में उत्तम है।

देवदारुचचाशुण्ठीशताहकुट्टसैन्धवः ॥

तैलसिद्धं वस्तुमूत्रकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—देवदारु, वच, सोंठ, सोंफ, कूट

सैंधानमक और बकरे का मूत्र इन में सिद्ध

किया हुआ तेल कर्णशूलको दूर करताहै।

चराटकानसमादृत्यदहेत्पृष्ठाजनेनवे ।

तद्भस्मच्योतयेचेनगन्धतैलविपाचयेत् ॥

रसाब्जनस्यशुण्ठवाश्चकल्काभ्यांकर्ण-

शूलनुत् ॥

अर्थ—पीली कौडी लाकर उन्हें मिट्टी के

एक नये पात्र में जला डेवे। इस भस्म को

चौगुने जल में स्वाधित करे। इस जल में

सुगंधित तेल पकावे और इसमें रसोत और

सोंठ पीसकर डाल देवे। इस तेल को कान

में डालने से कर्णशूल जाता रहता है ॥

**क्षार तैल ।**

शुण्कमूलकशुण्ठीनांसारोहिंमुमहौपधम्।

शतपुष्पावचाकुटुंदासशिमुस्ताब्जनम्।

सौवर्चलयवसारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्।

भूर्जग्रन्थिविडंमुस्तंमधुशुक्तचतुर्गुणम्।

रसश्चमातुल्यस्यकदल्यारसएवच । र.

वैरैर्यथोद्दिष्टैःक्षारस्तैलविपाचयेत् ॥ वा



धियकर्णनादश्चपूयसावश्चदारुणः॥ कि  
मयःकर्णशूलश्चपूरणादस्यनश्यति ॥ मु-  
खकर्णाक्षिरोगेपुयथोक्तपीनसेविधिम् ॥  
कुर्याद्विषयसमीक्ष्यादौदोषकालबलाव-  
लम् ॥

अर्थ—सूखी मूली और सोंठ का खार,  
हींग, सोंठ, सोंफ, वच, कूठ, दारुहलदी, स-  
हजनेकी छाल, रसौत, संचल नमक, जया-  
खार सजीखार, उज्ज्विद नमक, सेंधानमक,  
भूर्जमग्नि, विडनमक और मोथा, इन सब  
का समान भाग कल्क और उससे चौगुना  
शहतका शुक्त\*इतनाही विजौरे का रस,इत  
नाही कदली का रस और चौथाई तैल डा-  
लकर पकावै । इस तैल को कान में डाल-  
ने से बहरापन, कर्णनाद, दारुण पूयस्ताव,  
क्षिति, कर्णशूल दूर होजाते है । वैद्यकी  
उचित है कि रोगी के दोष काल और व-  
लायल को देखकर मुखरोग, कर्णरोग और  
नेत्र रोगों में भी इसका प्रयोग करै ॥

नेत्ररोग में चिकित्सा क्रम ।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः । का-  
र्यादाहोपदेहास्तुशोफरामानेवारणः ॥

अर्थ—नेत्ररोग के उत्पन्न होने परही  
विडालक नाम लेप करनेसे जलन उपलित

\*:—शहत का शुक्त अर्थात् सिर का  
पनाने की यह रीति है कि विजौरे का रस  
एक ग्रन्थ, शहत एक कुडव, पीपल पिसी-  
हुई एक पल इन सबको मिलाकर शहत के  
वर्तन में भरकर एक महीने तक धान के  
टेर में गाड़देवे ॥

ता, सूजन और लड़ाई दूर होजाती है ॥

दोपानुसारनेत्रचिकित्सा ॥  
नागरसैन्धवंसर्पिर्मण्डेनचरसक्रिया । नि-  
पृष्टंवातिकेतद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ त  
याशावरकरोधंघृतयुक्तंविडालकः । का-  
र्याहरीतकीतद्वत्घृतभृष्टारुजापहा । वै-  
क्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिविडालकः  
कार्यःपद्मकयष्ट्याहर्मासीकालीयकैस्त-  
या गैरिकसैन्धवंमुस्तरोचनासारसक्रि-  
या । कफेकार्यस्तथाशौद्रमियंगुसमनःशि-  
लम् ॥ सन्निपातेतुसर्वेःस्याद्वहिरक्षिमले  
पनम्पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पकेत्पञ्च  
नन्यदात् ॥

अर्थ—सोंठ और सेंधानमक समानभाग  
लेकर घी में सानले । और इसी तरह से  
मोथा, सेंधानमक और गेरू इनको घी में  
सानले । इन दोनों प्रयोगोंको घातज नेत्र  
रोग में रसक्रिया के अनुसार उपयोग में  
लावै । इसीतरह पठानी छोध को घी में  
सानकर अथवा हरड के कल्क को घी में  
तप्त करके विडालक देवै । पित्तज नेत्ररोग  
में रक्तचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ का  
विडालक देवै अथवा पचाख, मुलहटी, ज-  
टामासी और पीतचन्दन का विडालक दे-  
वै । और गेरू, सेंधानमक, मोथा और गो-  
रोचन इनकी रसक्रिया करै । कफजनेत्र रो-  
ग में शहत, प्रियंगु और मनसिल का वि-  
डालक देवै । सान्निपातिक नेत्ररोग में ती-  
नों दोगों की कहींहुई औषधियों का आंखों  
के बाहर बाहर लेप करै । रोग के पक हो-

मोजन इन सबको पीसकर आंखों में लगाने में नेत्रों को हित होता है । अथवा सेंधानमक, सूअरका दांत और निर्मली इनको पीसकर अंजन बनावे वा बत्ती बनाकर आंखों में आजै तौ तिमिरादिरोग दूर होजाते हैं । अथवा निर्मलीफल, शंख, सेंधानमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहत, वायविडंग, मनसिल और मुर्गे के अंडे के छिलके इन सबको पीसकर अंजन वा बत्ती बनाकर प्रयुक्त करै तौ तिमिर पटल, कांच और मल दूर होजाते है । इस का नाम सुखावती है ॥

दृष्टिमदावर्ती ।

त्रिफलाकुवकुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः ।  
नीलोत्पलंविडंगानिफेनञ्चसरितापतेः ।  
अजैनपयसापिष्ट्वाभावयेत्ताम्रभाजने ॥  
सप्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् ।  
एषादृष्टिमदावर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

अर्थ....त्रिकुटा, मुर्गे के अंडों के छिलके कर्सास, लोहभस्म, नालकमल, वायविडंग, समुद्रफेन, इन सबको बकरी के दूध में पीसकर ताँबे के बरतन में बकरी का दूध भरकर सात दिवस तक भावना देवे फिर बत्ती बना बनाकर नेत्रों में लगावे तौ वह आंख जो फूटी न होगी उसका अंधापन दूर होजायगा ॥

अन्यअंजन ।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् ॥  
चनस्तस्मात्समुद्रपृथ्व्यसथुष्कंचूर्णयेत्सह ।  
सुमनःसारकैःशुष्कैरर्द्धीर्णैःसैन्धवेनच ॥

एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिचिरघ्नमनुत्तमम् ।

अर्थ—कालेसांपके सिरको काटकर उस के मुख में रसांजन भरकर एक महीनेतक धरा रहने देवे । एक महीने पीछे उसे निकालकर सुखाकर पीसलेवे । इसमें मालती का खार और सेंधानमक आधा आधा मिलाकर नेत्रों में आजै यह अंजन तिमिर रोग के दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

सुरसःकिंशुकस्याहर्वसाकृष्णस्यसैन्धवम्  
जीर्णघृतञ्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपाक्रिया  
कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंमौधाज्यारसक्रिया ॥  
शस्तावाताक्षिरोगेषुकाचारुदमलेषुच ।

धात्रीरसाञ्जनसौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया ॥  
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैर्भिर्यपटलापहा ।  
धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःस-  
माः ॥ सौद्रयुक्तानिहन्त्यन्धं पटलञ्चर-  
सक्रिया ॥

अर्थ—पलासकी जड़ का रस, कालेसर्प की चर्बी, सेंधानमक और पुराना घी इन सबको मिलाकर पीसकर नेत्रों में लगावे । इस से सम्पूर्ण प्रकार के नेत्ररोग शान्त होजाते हैं । कालेसर्प की चर्बी, शहत, और आवले का रस इनको घोटकर आंखों में डालने से वज्र वातजनेत्ररोग तथा काच अर्बुद और मल दूर होजाते हैं । आवले का रस, रसौत, शहत और घी इसका रस क्रिया द्वारा प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग, तिमिर और पटल दूर होजाते हैं आंवला, सेंधानमक, पीपल, और काटी-सिरच ये सब समान भाग लेकर शहत के



रक्तचंदन, नील, भिलोयकी गुटली, हारा-  
कसीस, मल्लिका, सोमराजी, अशान, लोह-  
भस्म, पीपल, मेनफल, चीता, अर्जुनकेश्ल  
[ किसी २ में पुहकरमूल अर्जुन ] खंभारी  
के फल, आम, जामन, इन में से प्रत्येक पांच  
पांच पल लेकर इन सबको पीस लेंवे इन  
के साथ एक आठक बड़े का तेल, आं-  
वले का रस चार आठक इनको अग्नि पर  
चढ़ा कर या सूर्यकी धूप में पका कर गाढ़े  
होनेपर छानकर लोहे के पात्र में रखदेवै इस  
तेलको पान नस्य और सिरपर मालिश करने  
में प्रयुक्तकरै ॥ यह तेल नेत्रोंको हितकारी  
आयुवर्द्धक, और सिरके सम्पूर्ण रोगोंकानाश  
करनेवाला महानील नामक है ॥ यह तेल  
पलित दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

प्रपुण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।  
कर्पिकैस्तैलकुडवःत्रिगुणामलकीरसः ॥  
सिद्धःसपारिमर्शःस्यात्सर्वमूर्द्धगदापहः ।  
क्षीरंपियालयप्याहर्जीवकायोगणस्तिलाः  
कृष्णावबेप्रलेपःस्याद्वरिल्लोमनिवारणः  
यप्याहृतिलकिञ्जल्कसौद्रमामलकानिच  
वृष्येद्रज्जयेच्चैतत्केशान्मूर्द्धप्रलंपनम् ॥  
पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयधूर्णसतण्डुलम् ॥  
तेनालिप्तशिरःशुद्धस्निग्धमुपितंनिशि ॥  
तस्मात्तस्त्रिफलाद्यैस्तस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम्  
अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः

अर्थ—पुण्डरीकाकाठ, मुलहटी, पीपल,  
चन्दन, नीलकमल, प्रत्येक एक एक कर्ष,  
तेल एक कुडव, आवले का रस दो कुडव  
इन सबको सिद्ध कर के प्रयोग करने से

सिर के सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं । दूध  
पियाल, मुलहटी, जीवनीय गणोक्त द्रव्य  
और काले तिल इनको पीसकर लेपकरनेसे  
रोमों का हरापन दूर होजाता है ।

मुलहटी, तिल, पद्मकेसर, शहत और आव  
ला इनका मस्तकपर लेप करने से केशदृढ  
तथा काले होजाते हैं । संधानमक, शुक्त,  
काजी, लोहचूर्ण, तंडुल, इन सबको पीसकर  
बिना चिकनाई डाले सिरको शुद्ध कर के  
पहिले दिन रात में लेप करै । दूसरे दिन  
प्रातःकाल त्रिफला के जल से धोवाले तौ  
वालकोमल और काले पड़जाते हैं । लोहचूर्ण  
और त्रिफला इनको काजी के साथ पीसकर  
लेप करने से बाल काले पड़जाते हैं ॥

कुर्याच्छेषेपुरोगपुक्रियांस्वांस्वाच्चिकि  
त्सिताम् ॥ शेषेप्यादौचिनिर्दिष्टासिद्धा  
चान्याप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जब से उपर होने वाले रोगों में  
जो रोग है उसकी वैसीही चिकित्सा करै ॥  
उन में से बहुत से रोगोंकी चिकित्सा पहिले  
वर्णन करचुके हैं और शेषरोगोंकी चिकित्सा  
सिद्धिस्थान में वर्णन कीजायगी ।

अध्यायकाउपसंहार ।

वातपित्तकफान्दण्ठांवास्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः ॥  
तस्मात्तुस्थानसापीप्याद्वर्तव्यावमनादि  
भिः । अध्यात्मलोकावाताधिलोकोवातर  
वीन्दुभिः । पीडयतेधार्थतैचैवविकृताविकृतै  
सच । विरुद्धैरपिगत्वेतैर्गुणैर्धनन्तिपरस्पर  
म् ॥ दोषाःसहजसात्म्यत्वादिपंधोरम  
हीनिव ।

अर्थ—वात, पित्त और कफ के प्रधान स्थान मनुष्यके वस्ति, हृदय और मूर्द्धा हैं इसलिये स्थानकी समीपताके कारण वमनादि द्वारा उनका संशोधन करै । जैसे विकृत वायु, सूर्य और चन्द्रमा संसार को पीडित करते हैं और अविकृत संसार को धारण करते हैं उसीतरह विकृत वात, पित्त, कफ, देहको पीडित करते हैं और अविकृत देहको धारण करते हैं ॥

वात पित्त और कफ ये तीनों दोष यद्यपि गुणों में परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक दूसरे को नष्ट नहीं करते हैं, क्योंकि ये साथ उत्पन्न हुए हैं और साम्य भी हैं । जैसे सर्पका विष सर्पको नष्ट नहीं करसक्ता है ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।  
त्रिमर्षजानारोगाणां निदानाकृतिभेदजम् विस्तरेण पृथग्निर्दिष्टं त्रिमर्षचिकित्सितम् ।

अर्थ—इस त्रिमर्ष चिकित्सित नामक अध्याय में रोगों के निदान आकृति और चिकित्सा पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं ॥

इति श्री भाषाटीका विवताया अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने त्रिमर्षचिकित्सितं नाम पट्ट-

विंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथात ऊरुस्तम्भचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माद् भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

कि अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

श्रिया परमया ब्राह्म्या परया च तपः श्रिया अहीनं चन्द्रसूर्याभ्यां सुमेरुमिव पर्वतम् ॥ धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्तिक्षमालयम् अग्निवेशो गुरुं काले संशयं परिपृष्टवान् ॥ भगवन् ! पञ्चकर्माणि सप्तस्तानि पृथक्त्वा । निर्दिष्टान्यामयान्तु सर्वेषामेव भेषजम् ॥ दोषत्रयोऽस्त्यामयः कश्चिद्यस्यैतानि भिषग्वर ! । न स्युः शक्तानि शमने साध्यस्य क्रियया ततः ॥

अर्थ—जैसे सुमेरु पर्वत चन्द्रमा और सूर्य दोनों से सुशोभित है उसी तरह जो परा ब्राह्मी श्री और परा तपः श्री इन दोनों से युक्त है और जो धी धृति, स्मृति, विज्ञान ज्ञान, कीर्ति और क्षमा का स्थान है ऐसे गुरु आत्रेयसे अग्निवेशने उचित समय पर अपने संशयको दूर करने के हेतु प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपने वमन विरेचनादि पाँचों कर्मोंका पृथक् २ वर्णन किया है और सम्पूर्ण रोगोंकी औपधियाँ भी कही हैं । परन्तु हे वैद्यवर ! क्या कोई ऐसा भी दोषज रोग है जो साध्य होने पर भी उक्त सम्पूर्ण क्रियाओं द्वारा दूर करने में न आ सकता हो ।

अस्त्युरुस्तम्भ इत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम् सलिंगभेषजं भूयः पृष्टस्तेनाग्रवीरगुरुः ॥

अर्थ—यह सुनकर आत्रेय बोले कि ऊरुस्तम्भ एक ऐसा रोग है जो वमन विरेचनादि पञ्चकर्मों से अच्छा नहीं होसकता

है तब अग्निवेदा के फिर पृथक् करने पर  
आत्रेयेन ऊरुस्तम्भ का निदान, लक्षण और  
चिकित्सा वर्णन की ॥

ऊरुस्तम्भका हेतु ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णसम-  
श्रुतः । द्रवशुष्कदधिसीरग्राभ्यामनूपौद-  
कामिषैः ॥ पिष्टव्यापन्नमथातिदिवास्व-  
प्नप्रजागरैः । लंघनपुवनाद्यैश्चमवेगावि-  
धारणैः ॥ स्नेहाश्यामश्चिन्तकोष्ठेवातादी-  
न्मेदसासह । रुद्धाशुगौरवादूरुस्रोतोभि-  
र्यात्यधोगतैः ॥ पूरयन्सकृथिजंघोरुदो-  
षोमेदोषलोत्कटः । अविधेयपरिस्पन्दं  
जनयत्यल्पविभ्रमम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, लघु और शीतल  
अन्न के अत्यन्त सेवन से, विषम भोजन  
अजीर्ण में भोजन वा संशमनसे, पतले वा  
सूते दही, दूध, ग्राम्यमांस, आनूपमांस  
और औदक मांसके अत्यन्त सेवनसे पिष्टी  
के पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, दूषित मद्य  
से, दिनमें सोने से वा रात्रि में अत्यन्त  
जागने से, लंघने से, कुंदने से, भयसे, वेग  
संधारण से, और अत्यन्त स्नेह के सेवन  
करने से कोष्ठ में संचित हुआ आम मेदा  
के साथ वातादिक दोषोंको रोककर भारापन  
के कारण शीघ्रही अशोणामी स्त्रोतों द्वारा  
ऊरुमें जाताहै तब दोष मेदके साथ मिलने  
से बल्लोत्कट होकर सक्थि, जंघा और ऊरु  
को गर देताहै और ये चलने फिरने से र-  
क्षित होकर अल्प बलयुक्त होजाती हैं ॥

ऊरुस्तम्भकी उत्पत्ति ।

महासरसिगम्भीरे पूर्णेऽभ्युस्तिमिते तथा ।  
तिष्ठति स्थिरगमोभ्यंतद्वदूरगतः कफः ॥  
गौरवायाससङ्कोचदाहस्वप्नसिकम्पनैः ।  
भेदस्फुरणतोदैश्च युक्तो दहनिहन्त्यमृन् ॥  
ऊरुश्चेष्मासमेदस्कोदोषोद्वाविभूयते ।  
स्तम्भयेत्स्यैर्यशेत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु  
सः ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्  
स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं मुक्तिः कृच्छ्रा-  
दुद्धरणं तथा ॥

अर्थ—जैसे बड़े सरोवर के पूर्ण भरजाने  
पर उसमें जल ठहरजाता है उसी तरह से  
कफ ऊरु में जाकर स्थिर और अभुम्भित  
होकर ठहरजाता है । जिस ऊरुस्तम्भ में  
भारापन, आयास, संकोच, दाह, वेदना, सुन्नता,  
कम्पन, भेद, कडकन और तोड़ होता है  
उसमें प्राण शीघ्रही निकलजाते हैं । मेद  
से संयुक्तकफ वात और पित्तका पराभव  
करके स्थिरता और शीतलता के कारण  
ऊरुओंको स्ताम्भित करदेता है । तब यह  
रोग ऊरुस्तम्भ कहाता है । इस रोग में  
वात विकारकी शंका करके अज्ञानसे मनुष्य  
वातनाशक तैलादि का मर्दन करते हैं, इस  
से पांवों में शिथिलता और न्यूनता होती  
है तथा पांव बड़ी कठिनता से उठता है ।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण ।

जंघोरुलानिरत्यर्थशश्चच्चादाहवेदना ।  
पदश्चन्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शनवेत्ति च ॥  
संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः ।  
अन्यप्रणेषः सम्भ्रमनाधूरुपादौचमन्यते ॥

अर्थ—जंघा और ऊरु में अत्यन्त ग्लानि निरन्तर दाह और वेदना, पांव के धरने में व्यथा, शीतस्पर्श का मध्यम न होना तथा पांव के एक जगह रखे रहने में, चलने में पीडा होती है तथा यह मादम होता है कि ऊरु और पांव दोनों दूटेजातेहैं

ऊरुस्तम्भका पूर्वरूप ।

माधूपेध्याननिद्रातिस्तेमित्यारोचकज्वराः  
लोमहर्षश्चछर्दिश्चजंघोर्वाःसदनंतथा ॥

अर्थ—ध्यान, निद्रा, आप्त स्तिमिता, अर्चीच, ज्वर, लोमहर्ष, बमन, जंघाका सदन या ऊरुसदन ये ऊरुस्तम्भ के पूर्व-रूप हैं ॥

साध्यासाध्यऊरुस्तम्भका लक्षण ।  
यदादाहार्तितोदातोवेषनःपुरुषोभवेत् ।  
ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथा  
नवम् ॥

अर्थ—जब ऊरुस्तम्भके पुराने पड़नेपर रोगी दाह, यातना और तोद से पीडित हो और उसे कम्पन भी होता हो तो ऊरुस्तम्भ असाध्य और प्राणनाशक होता है । ऊपर कहेहुए लक्षणों से विपरीत और नवीन ऊरुस्तम्भ साम्य होता है ।

ऊरुस्तम्भमें अकर्तव्यकर्म ।  
तस्यनस्नेहनंकार्यनवस्तिर्नविरेचनम् ॥  
नचैवबमनंयस्मात्तन्निवोधतकारणम् ॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भ में स्नेहन, वस्ति, विरेचन या बमन नहीं कराना चाहिये । जिन हेतुओं से ये कर्म नहीं कियेजाते हैं उसका कारण यह है कि—

अकर्तव्यकर्मोंकाहेतु ।

वृद्धयेद्वेलेष्मणोनिर्त्यस्नेहनवस्तिकर्मच ।  
तत्स्यस्योद्धरणेचैवनसमर्थविशोधनम् ।  
कफंकफस्थानगतपित्तवाग्बमनात्सुखम् ॥  
हन्तुमामाशयस्यौचसंसनाच्चायुभावापि ।  
पक्वाशयस्याःसर्वेष्ववस्तिभिर्गुलनिर्जयात्  
शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धजघोरुस-

स्थिताः ॥

अर्थ....स्नेहनकर्म और वस्तिकर्म कफ को सदा बढ़ातेहैं । तथा बमन विरेचनादि संशोधन भी ऊरुमें स्थित कफको निकालने में समर्थ नहीं होते हैं कारण यह है कि बमन विरेचनका ऊरुसे कोई साक्षात् संबंध नहीं है ।

कफस्थानगत कफ और पित्तस्थानगत पित्त बमन द्वारा सुखपूर्वक दूर हो सकता है और आमाशयस्थ पित्त और कफ दोनों स्नसन द्वारा दूर होसके है । पक्वाशय में स्थित वातपित्त कफ ये तीनों दोष वस्तिकर्म से सुखपूर्वक दूर होजाते हैं परन्तु आम और मेदा से तब्ध जंघा और ऊरु में स्थित दोष वस्तिकर्म से दूर नहीं होसकेंहैं। वातस्थानेहितेशेत्याद्वयोःस्तम्भाश्चतद्व-  
ताः ॥ नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्ना

दिपस्थलात् ॥

अर्थ....ऊरु और जंघा यात के स्थान हैं और वायुकी शीतलता के कारणही ऊरुस्तम्भ और जंघास्तम्भ उत्पन्न होते हैं इस से इनको दूर करदेना सहजयात नहीं है । जै-से नाँचे स्थलों से जल निकालने में कठिन-

ता पडती है उसीतरह शरीर के नाचिके भाग में स्थित जंघा और ऊरु से दोनों के दूर करने में कठिनता होती है ॥

ऊरुस्तम्भमधिकित्साविधि ।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा ॥

युक्त्येपक्षीभिपक्कुर्यादधिकत्वात्कफामयोः । सदारुक्षोपचाराययवद्यामाककोद्रवान् ॥ शार्करलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः । सुनिपण्णकनिम्बार्कवेवारग्वधपल्लवैः ॥ चायसीधास्तुकरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः । क्षारारिष्टप्रयोगाच्च हरीतक्यास्तथैवच ॥ मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भाविनाशनाः ॥

अर्थ....कफ और आमकी अधिकता का विचार करके युक्तिपूर्वक ऊरुस्तम्भमें संशमन किया करना उचित है जिससे इस रोग का नाश और शोषहोवे । तथा सदा रुक्ष उपचार के निमित्त जौ, सोंखिया, कोदों का सेवन करना हित है और विना नमकके जल और तेल के साथ पकायेहुए खौपतिया, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बैत के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय वधुआ और परवलआदि अन्य तिक्तशकों का सेवन करे । इसीतरह क्षार, अरिष्ट, हरड़, मधूदक और पीपल ऊरुस्तम्भ को दूर करदेते हैं ।

ऊरुस्तम्भमें अन्य औषध ।

समक्षांशाल्मलीविल्वमधुनासहनापिवेत् । तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि । चन्दनंघातकीकुण्डंतालीशंनलदंतया ॥

अर्थ—लज्जावृक्ष, सैमरकी छाल और वेष्टकी छाल इन के क्वाथ में शहत डालकर पान करे । तथा श्री वेष्टक, नेत्रवाटा, देवदारु और तगर का क्वाथ मधु के साथ पान करे अथवा रक्तचन्दन, धाय के फूल, कूठ, ताळीसपत्र और खस इनके क्वाथको मधु के साथ पान करे ।

ऊरुस्तम्भ पर पांच प्रयोग ।

मुस्तंहरतीर्क्षीरोध्रंपन्नकंतिक्तरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेवचांकडुकरोहिणीम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंसरलंदेवदारुच ॥ चव्यचित्रकमूलानिदेवदारुहरीतकीम् । भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलीपञ्चतानपिवेत् । सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कान्कृग्रहापहान् ॥

अर्थ—[ १ ) मोथा, हरड़, लोध्र, पश्नाख और कुठकी । देवदारु, दोनों हलदी, वच और कुठकी । (३) पीपल, पीपलामूल सरलकाष्ठ, देवदारु (४) । चव्य, चीते की जड़, देवदारु और हरड़ [५) । भिल्लाया, पीपल, पीपलामूल । अधि२ श्लोकों में कहे हुए ये पांच प्रयोग हैं इन में से किसी एक का कल्क शहत डालकर पानि से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है ।

शार्ङ्गशाम्बदनंदन्तीचित्सकस्यफलवचाम् । मूर्वामारग्वधांपाठांकरंजकुलकंतथा ॥ पिबेन्मधुयुतंतल्यंचूर्णवावारिणाप्लुतम् । सक्षौद्रंदधिपण्डंचाप्यूरुस्तम्भाविनाशनम् ॥

अर्थ—शार्ङ्गछा, मेनफल, दन्ती, इन्द्रजौ, वच, मूर्वा, अमलतास, पाठा, कंजा, परवल,



इनके काथ में शहत डालकर पीवै अथवा इनके चूर्ण को जल में घोलकर शहत वा दाधिमंडके साथ पीवै । इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ।

मूर्वाभितिविपाकुण्डचित्रकंकडुरोहिणीम् ।  
पूर्वचद्रापिवेतोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥  
स्वर्णक्षीरीमतिविपांमुस्ततेजोवर्तविचाम् ।  
सुराद्वंचित्रकंकुण्डपाठांकडुरोहिणीम् ॥  
लेहयेन्मधुनाचूर्णसत्तौद्रंवाजलान्वितम् ।  
फलीव्याघ्रनखंहमपिवेदामधुसंयुतम् ॥  
त्रिफलापिप्पलीमुस्तंचव्यंकडुरोहिणी-  
म् । लिङ्गादामधुनाचूर्णमुस्तम्भादितो  
नरः ॥

अर्थ—मूर्वा, अतीस, कूठ, चीता, कुटकी इनके काथ वा चूर्ण को पहिले की तरह पीवै अथवा इन सब द्रव्यों को रात्रि के समय जल में भिगो देवै और प्रातःकाल इस जल को पीवै । अथवा स्वर्णक्षीरी, अतीस, मोथा, चव्य, यच, देवदारु, चीता, कूठ, पाठा और कुटकी, इनके चूर्ण को शहत के साथ अथवा शहत मिळे हुए जल के साथ सेवन करै । अथवा प्रियंगु, व्याघ्र-नख और नागकेशर इनके चूर्ण को शहत के साथ पीवै । अथवा त्रिफला, पीपल, मोथा चव्य, और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ चाटै ।

ऊरुस्तम्भके उपद्रवोंकी चिकित्सा ।  
अपतर्पणश्चेत्स्यादोषः सन्तर्पयेद्विदितम् ।  
युक्त्याजांगलजैर्मासैः पुराणैश्च वशाभिः  
रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशातिपूर्वकः ॥

स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकार्यैवातामयापहः ॥  
पीलुपर्णीपयस्याचरास्नागोक्षुरकोवचा ।  
सरलंगुरुपाठादचतैलमेभिर्विपाचयेत् ॥  
ससौद्रात्प्रसृतं तस्मादञ्जलिं वा पिनापिवेत्  
कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारुके सरम् ।  
अजगन्धाश्च गन्धाच्च तैलन्तैः सार्पपंचेत ॥ स-  
क्षौद्रं मात्रयात्तच्चाप्युरुस्तम्भादितः पिवेत्

अर्थ—जो ऊरुस्तम्भ अपतर्पण से उत्पन्न हुआ हो तो उस में सन्तर्पण हित है । इस में जांगल मांस और पुराने शालिचावल देना उचित है । रूक्ष व्याक्तिके यदि निद्रानाश और यातना पूर्वक वातका कोप होवै तो वातरोग नाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया का अवलंबन करै । मरोडफली, क्षीरकाकोली रास्ना, गोखरू, यच, सरल, अगर और पाठ इतको डालकर तेल पकावै । इस तेल में से एक प्रसृत वा एक अंजली शहत डाल कर पीना चाहिये । अथवा कूठ, श्रीवेष्टक, नेत्रवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागकेशर, अजगन्ध, असगंध इनको डालकर सरसोंका तेल पकावै । इस तेल में मात्रा के अनुसार शहत डालकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूर हो जाता है ।

द्वेपलैः सैन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्रका-  
त् ॥ द्वेद्वेभल्लातकास्थीनिविंशतिद्वैतथाद्वके ॥  
आरनालात्पचेत्प्रस्थं तैलस्यैतैरपत्यदम् ॥  
गृध्रस्यूरुग्रहार्शति सर्ववातविकारनुत् ।  
पलाभ्यापिप्पलीमूलनागरादष्टकद्वरः ॥  
तैलप्रस्थः समोदघ्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥  
इत्याभ्यन्तरमुष्टिमुस्तम्भस्य भेषजम् । श्ले-  
ष्मणः क्षपणं त्वन्यद्वाहं शुणुचिकित्सितम् ॥

अर्थ—सैधानमक दो पल, सौंठ पांचपल वच और चींता दो दो पल, मिठायेकी गुठली बीस, कांजी दो आढ़क, इन सब के साथ एक प्रस्थ तेल पकावे । यह तेल सैतान कारक होता है ॥ इसके सेवन करनेसे गृध्रसी ऊरुग्रह, अर्शयातना, तथा सब प्रकार के वातरोग दूर होजाते हैं ॥ पीपलामूल एकपल सौंठ एक पल, आठ प्रस्थकट्वर एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दही इन सबको पकाकर सेवन करने से गृध्रसी और ऊरुग्रह दूरहो जाते हैं ॥ इस तरह ऊरुस्तम्भकी आभ्यन्तर चिकित्सा वर्णनकी गई है, अब हम यहां से इलेभक्षपण वाद्य चिकित्साका वर्णन करते हैं ।

ऊरुस्तम्भ पर लेप ।

वल्मीकमृत्तिका मूलं फरञ्जस्य फलं त्वचम्  
पिप्पलास सर्पपत्रम् त्रैशुपितं स्यात् प्रलेपनम्  
इष्टकानां ततश्चूर्णैः कुर्यादुत्सादनं शुभम् ॥

अर्थ—वांवी की मिट्टी, कंजाकी जड़, फल और छाल और रात भर गोमूत्र में भिगोई हुई सरसों इन सबको पीस कर लेप करे अथवा ऊपर से ईटका चूर्ण धीरे-धीरे मसलै ॥

अन्यलेप ।

मूलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैर्रक्तस्य वा भिषक्  
पिचुमर्दस्य वा मूलैर्यवादेवदारुणः ।  
हौद्रसर्पवल्मीकमृत्तिकाद्युताभिषक् ॥  
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥  
द्रवन्त्यासुरसैर्दन्तपासर्पपत्रापिबुद्धिमान्  
तर्कारीविश्वशिषुमुरसवत्सकनिम्बजैः ॥  
पत्रमूलफलैस्तोयं गृह्यन् श्वसेवनम् ।

वत्सकः सुरसंकुण्डलगन्धास्तु न्बुरुशिशुमूकौ ॥  
हिंज्वार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाः सकुठेरकाः ।  
दधि सैन्धवसंयुक्तं कार्यमेतैः प्रलेपनम् ॥

अर्थ—असगंध की जड़, अथवा आक की जड़, वां नागकी जड़, अथवा देवदारु की जड़, इनके चूर्ण में शहत, सरसों, वां-वांकी मिट्टी मिठाकर ऊरुस्तम्भ पर गाढ़ा उत्सादन करे । अथवा द्रवन्ती, सुरसा, तुलसी, दन्ती और सफेद सरसोंका लेप करे अथवा जयन्ती, सौंठ, सहजना, कालीतुलसी, इन्द्रजौ इनके पत्ते, जड़ और फलों को ओटाकर उष्णजल का ऊरुस्तम्भ पर तरे-डा देवे । अथवा इन्द्रजौ, तुलसी, कूठ, असगंध, धनियां सहजना, हींसकी जड़, आककी जड़, वांवीकी मिट्टी और कुठेरक तुलसी इनमें दही और सैधानमक मिठाकर लेप करे ।

श्योनांकं खदिरं वित्थं वृहत्पौसरलासनौ ।  
अभिमन्यादकीशिमुश्च दंष्ट्रासुरसार्जकान्  
तर्कारीनक्तमालञ्जलेनोत्काश्यसेचयेत्  
प्रलेपो मूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ।  
कफक्षयार्थं सलेपुन्यायामेष्वनुयोजयेत् ॥  
स्थलान्याक्रामयेत्कालशर्कराः सिकतास्तथा ॥  
प्रतारयेत्प्रतिस्रोतां नदीं शीतजलां शिवाम् ।  
सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुन पुनः ॥  
तथा कफे विशुक्ते स्य शान्तिमूत्रं होत्रजेत् ॥  
इलेप्पणः क्षपणं यत्स्यात् न च मारुतमावहेत् ।  
तत्सर्वं सर्वदा कार्यं मूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥  
शरीरं बलमग्निञ्च कार्यं पारक्षताक्रिया ॥

अर्थ—श्वीनाक, खैर, बेलछाल, दोनों फोटेरी सरल, असन, अरनी, सहजना, गोखरू, तुलसी, अर्जक, तर्कारी, और कंजा इनका काय फाँके गरम २ कां तरड़ा देवै अथवा इनसब औषधियों को मोमूत्र में पीसकर लेप करै तौ भी ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है। कफके क्षीण करने के लिये रोगी जितना परिश्रम सहन करसकै उतना उससे शारीरिक परिश्रम करवै। रोगीको बालू वा कंकरी के ढेरपर वा ऊँचे स्थान पर चढ़ावै। शीतलजलवाली, उपद्रव रहित नदियों के स्रोतकी तरफ तैराकर चढ़ावै। तथा निर्मल, शीतल और ठहरेहुए जलों के सरोवरों में तैरावै। इसतरह कफके सूखने पर ऊरुस्तम्भ शान्त होजाता है। जो जो औषध कफको दूर करे और वायुको प्रकुपित न करे वे सब ऊरुस्तम्भ के दूर करने में उपयोगी होती हैं। परन्तु इस चिकित्सामें शारीरिक बल और अग्निकी रक्षा का पूर्ण विचार रखवै।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतुः प्राग्रूपलिंगानिकर्मायोग्यत्वमेव च ।  
द्विविधं भेषजं चोक्तं ऊरुस्तम्भचिकित्सिते ॥

अर्थ—इस ऊरुस्तम्भ चिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भ के हेतु, पूर्वरूप, लक्षण और वमनादि पाँचों कर्मों की अयोग्यता और दो प्रकारकी चिकित्सा वर्णन का है। इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने ऊरुस्तम्भचिकित्सितनाम-सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथवातव्याधिचिकित्सितं व्याख्या-  
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वायु की उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् ।  
वायुर्विश्वमिदं सर्वप्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ॥  
अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।  
वायुर्हि तोऽधिकं जीवेत् नारोगः शरदांशतम् ॥

अर्थ—वायुही देहधारियोंकी आयु है, वायुही उनका बल है, वायुही उनका विधाता है, वायुही सम्पूर्ण विश्व है और वायुही प्रभु वर्णन किया गया है ॥

जिस मनुष्यके देह में वायुकी अव्याहत ( अदूषित ) गति है और अपने स्थान में स्थित और प्रकृतिस्थ है वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त निरोग रहकर जीती है।

वायुके भेद ॥

प्राणोदानसमानाख्यव्यातापानैः सपञ्च-  
धा । देहं मन्त्रयते सम्यक् स्थानेष्वव्याहतश्चरन् ॥

अर्थ—प्राणवायु, उदानवायु, समानवायु, व्यानवायु, और अपानवायु, ये वायुके पाँच भेद हैं। ये पाँचों वायु अपने अपने स्थान में अव्याहत गतिसे विचारण करती हुई शरीर को सम्यक् रूप से नियमित रखती हैं ॥

प्रायवायुके स्थान और कर्म ।

स्थानप्राणस्यशीर्षोरःकर्णौजिह्वाक्षिना-  
सिकाः ॥ पृथ्वीवक्षवधूद्रारम्भासाहारा  
दिकर्मच ॥

अर्थ—प्राणवायु के स्थान सिर, वक्षः-  
स्थल, दोनों कान, जिह्वा, आंख और ना-  
सिका हैं । धूफना, छींकलेना, डकार, श्वास  
और आहारादि ग्रहण इसके कर्म हैं ॥

उदानवायुके स्थान और कर्म ॥

उदानस्यपुनःस्थानं नाभ्युरःकण्ठपृथ्वी-  
वाक्मृत्तिःप्रयत्नोर्जावलवर्णादिकर्मच ॥

अर्थ—उदानवायुके स्थान नाभि, हृदय  
और कण्ठ हैं । धोखना, शरीरसंचालन, ऊर्जा  
बल और वर्णादि इसके कर्म हैं ॥

समानवायुके स्थान और कर्म ॥

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्त्रोतांसिसमधिष्ठि-  
तः । अन्तरप्रदेशचार्श्वस्थःसमानोऽग्नि  
चलप्रदः ॥

अर्थ—समानवायुके स्थान स्वेदवाही,  
दोषवाही और अम्बुवाही स्त्रोत हैं । यह ज-  
ठराग्नि के पक्षबाडे में स्थित रहकर अग्निके  
चक्को घटाती है ॥

व्यान वायुके स्थान और कर्म ॥

देहं व्याप्नोति सर्वतु व्यानः शीघ्रगतिरुणे-  
म् । गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रिया  
सदा ॥

अर्थ—व्यान वायु मनुष्यके सम्पूर्ण देह  
में रहती है, इसकी गति बड़ी शीघ्र है ।  
गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेषादि  
इसके कर्म हैं ॥

अपानवायुके स्थान और कर्म ॥

वृषणौ वस्तिमदूश्च श्रोण्युखं क्षणौ गुदम् ॥  
अपानस्थानयन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृन्तिसः  
सृजत्यार्तवगर्भौ च युक्ताः स्थानस्थिताश्च  
ते । स्वकर्म कुर्वते देहो धार्यते तैरनामयः ॥

अर्थ—अपानवायु के स्थान अंडकोश,  
वस्ति, मेदू, श्रोणी, ऊरू, वंक्षण और गुदा  
हैं । इसका मुख्य स्थान आंत हैं । आंत  
में स्थित होकर वीर्य, मूत्र, विष्टा, रजःस-  
म्बन्धी रुधिर और गर्भका परित्याग करती हैं  
ये पाँचों प्रकारकी वायु अपने २ स्थानों  
में स्थित और नियुक्त रहकर अपना २  
कर्म करती है और देह को स्वस्थावस्था  
में रखती है ।

विमार्गस्थ पंचवायु के कर्म ॥

विमार्गस्थाः पञ्चवायुक्तावारोगः स्वस्थानकर्म-  
जः । शरीरं पीडयन्त्येते प्राणानाशुहर-  
न्ति च ॥

अर्थ—जब ये वायु कुमार्गगामी होजाती  
हैं और यथावत् नियुक्त नहीं रहती है  
तब अपने २ स्थान और कर्मोंसे उत्पन्न  
होने वाले रोगों द्वारा शरीरको पीडित क-  
रती है और प्राणोंको भी शीघ्रही न-  
ष्ट कर देती है ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानां तज्जानां हिमधानतः  
अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाः सूत्रे निदर्शिताः  
तानुच्यमानान्पर्यायैः सहतूपक्रमान्शृणु ॥  
केवलं वायुमुद्दिश्य स्वानभेदात्तथावृत्तम् ।

अर्थ—सूत्रस्थान में असंख्य वायुरोगों  
में मुख्यकरके अस्ती प्रकार के नखादिरोग

वर्णन कियेगये है ॥ अब हम पर्यायक्रम से उनके हेतु और चिकित्साका वर्णन कर रहे हैं उसे सुनो ॥ स्थान भेदसे केवल वायु का तथा आवृत वायुको उद्देश्य करके उनको वर्णन किया जाता है ॥

सर्वाङ्गारिव्याधियों का हेतु ।

रूक्षशीतालपलघ्नव्यञ्जयथातिप्रजागरैः॥  
विषमादुपचाराच्चदोषासृक्स्रवणादति  
लंघनपुत्रनात्यध्वन्यायामातिविघट्टितैः॥  
धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्ष-  
णात् ॥ दुःखशय्यासनात्क्रोधादियास्व  
प्नाद्भयादपि ॥ वेगसन्धारणादामाभी  
घातादभोजनात् ॥ मर्मावाधाद्रजोष्ठाश्च  
शीघ्रयानावतंसनात् ॥ मेहेस्रोतांसिरिक्ता  
निपूरयित्वाऽनिलोवली । करोतिविवि-  
धान् व्याधीन्सर्वाङ्गैर्कांसंश्रितान् ॥

अर्थ—रूक्ष, शीतल, अल्प और लघु  
अन्नके सेवन से, स्त्रीसंगम से, अत्यन्त ज-  
गनेसे, विषम उपचारोंसे, दोष और रक्तके  
अत्यन्त स्रावसे, कृपादि गर्त्तोंके लंघन से,  
छलांग मारनेसे, मार्ग चलने से, शारीरिक  
परिश्रम के करने से, अत्यन्त चेष्टा करने  
से धातुओंके क्षीण होने से, चिन्ता, शोक  
और रोग द्वारा अत्यन्त कर्षण से, दुःख दै  
ने वाली शय्या वा आसन पर बैठनेसे, क्रो-  
धसे, दिन में सोने से, मयसे, मलमूत्रादि  
घेगों के रोकने से आम से, चोट खाने से,  
भोजन न करने से, मगमें आघात होनेसे,  
हाथी, ऊंट और घोड़े पर चढ़कर शीघ्र ग-  
मन करने से वा हाथी घोड़ा आदि के ऊ-

पर से गिर पड़ने से देह के स्रोत खाली  
होजाते हैं और इस अवकाश को पाकर वा-  
यु प्रवह होकर उनमें भरजाती है और स-  
र्वांग संश्रित वा एकांत संश्रित अनेक प्रकार  
की व्याधियों को उत्पन्न करदेती है ॥

वायु के रूपादि ।

अन्यक्तलक्षणंतेपांपूर्वरूपमितस्मृतम् ॥  
आत्मरूपंतुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ।

अर्थ—वायुका अप्रकट लक्षण उसका  
पूर्वरूप है व्यक्त लक्षण उसकारूप है और  
वायुका लघु होजाना उसका नाश है ( क्योंकि  
वायु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है, प्रकु-  
पित का लघु होजानाही अपाय है )

व्यक्त वायु के लक्षण ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभंगोऽस्थनांपर्वणाम-  
पि ॥ लोमहर्षःप्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरो-  
ग्रहः । स्वाब्ज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोपोऽङ्गा  
नामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनं  
गात्रस्रस्तता । शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवा  
याश्चावहुंडनम् ॥ भेदस्तोदातिराक्षेपमो  
हश्चायसएवचा एवंविधानिरूपाणिकरो-  
तिकुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च

भवेद्रोगविशेषकृत् ।

अर्थ—जोड़ों का सुकड़ना और जकड़  
जाना, हड्डी और पोरों में भंग होना, रो-  
मोद्गम, प्रलाप, पाणिग्रह, पृष्ठग्रह, और शि-  
रोग्रह, खंजता, पांगलापन, कुबडापन, अ-  
ंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, वीर्यनाश, भा-  
र्यनाश, अंगों का फटकना, देह का शून्य  
पड़जना, सिर नासिका आंख और ग्रीवा

का विकृत होजाना, भेद, तोद, यातना आ-  
क्षेपण, मोह और आयास तथा ऐसेही अ-  
न्यरूप वायु के कुपित होने से होते हैं ।  
तथा हेतु भेद और स्थान भेद से इन रोगों  
में विशेषता होती है ॥

**कोष्ठाश्रित वायु के कर्म ।**

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहेमूत्रवर्चसोः ॥

ग्रह्महृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ।

अर्थ—कोष्ठाश्रित वायुके कुपित होने पर  
मलमूत्रका निग्रह, व्रज, हृद्रोग, गुल्म, अर्श  
और पार्श्वशूल होताहै ॥

**सर्वाङ्गगत वायु के कर्म ॥**

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणभञ्जनम् ॥

वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ।

अर्थ—वायुके सर्वाङ्ग में कुपित होनेपर  
शरीर में वेदना और स्फुरण होता है वेदना  
के कारण देह के जोड़ फटतेसे मादृम होने  
लगते हैं ॥

**गुदस्थ वायु के कर्म ॥**

विण्मूत्रवातग्रहणशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।

जंघोरुत्रिकपातृपृष्ठरोगशोपागुदस्थिते ।

अर्थ—वायुके गुदामें स्थित होने पर  
मलमूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, शूल,  
अफरा, पथरी और शर्करा ये उपद्रव उत्प-  
न्न हो आतेहैं जंघा, ऊरु, त्रिक, पांव और  
पोंटमें वेदना और शोष्य भी उत्पन्न होतेहैं

**आमाशयस्थवायुकेकर्म ।**

दृशाभिपाद्वेदरुक्कृष्णोद्गारविमूचि  
काः ॥ कासःकण्ठास्पशोपश्चश्वासश्चा  
माशयस्थिते ।

अर्थ—वायुके अमाशयमें स्थित होने  
पर हृदय, नाभि, पसली और उदरमें वे-  
दना होतीहै, तृषा, ढकार विमूचिका,  
खांसी, कंठशोष, मुखशोष और श्वास ये  
उपद्रव भी होतेहैं ।

**पकाशयस्थवायु के कर्म ।**

पकाशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोपाकरोतिच ।

कृच्छ्रमूत्रपुरीपत्वमानाहंत्रिकवेदनम् ॥

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधंकुट्यादुष्टसमीरणः ।

अर्थ—वायु के पकाशय में स्थित होने  
पर आंतोंका कूजना, शूल, आटोप, मलमूत्र  
का कठिनता से होना, आनाह, त्रिकस्थान  
में वेदना श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी शक्ति का नष्ट  
होना ये लक्षण होते हैं ।

त्वमूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकुण्णाचतुद्यते ।

आतन्यतेसदाहश्चपयस्त्वकास्थितेऽनिले

अर्थ—वायु के त्वचामें स्थित होने पर  
त्वचा में रूखापन, फटना, सुत्ति, कृशता,  
कालापन तथा मूर्च्छावेध के समान पीड़ा ये  
लक्षण होतेहैं । त्वचा फैलीसी होजाताहै उस  
में दाह होताहै और पोरों में वेदनाभीहोताहै

**रक्तगतवायु के कर्म ।**

रुजस्तीवाःससन्तापवैवर्ण्यकृशताऽरुचिः

गात्रेचारुपिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले

अर्थ—वायु के रुधिर में कुपित होने से  
तीव्रवेदना, संताप, विवर्णता, कृशता, अरु-  
चि, देहमें फुन्तियाँ और भोजन करने के  
पीछे शरीर में स्तब्धता ये लक्षण होते हैं ॥

**मांसमेदोगतवायुकेकर्म ।**

गुर्वद्रुद्यतेस्तब्धदण्डमुष्टिहतंयथा ॥ सरु-  
क्षसितमत्यर्थमांसमेदोगतेऽनिले ।

अर्थ—मांस और मेद में वायु के कुपित होने से शरीर में भारापन, तोद, स्तब्धता, लाठी वा मुक्कोंकी चोट के समान वेदना तथा अत्यन्त वेदना और श्रम मालूम होता है॥

मज्जास्थिगतवायुके कर्म ॥

भेदोऽस्थिपर्यणांसन्धिगुलंमांसवलक्षयः।  
अस्वप्नःसन्ततारूचमज्जास्थिकुपितेनिले

अर्थ—मज्जा और अस्थि में वायुके कुपित होने पर अस्थि और संधियों में भेद संधिशूल, मांस और वलकी क्षीणता, निद्रा नाश और निरन्तर वेदना ये लक्षण होते हैं

शुक्रस्थवायु के लक्षण ॥

क्षिप्रमुञ्चतिवध्नातिशुक्रं गर्भमथापि वा ॥  
विकृतिर्जनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः

अर्थ—शुक्रस्थ कुपितवायु धीर्य या गर्भ का शीघ्रही मोक्षण कर देती है वा उन्हें बद्ध कर देती है अथवा धीर्य और गर्भ दोनों में विकृति उत्पन्न करती है ॥

स्नायुगत वायुके कर्म ॥

बाह्याभ्यन्तरमायामखल्लिकुञ्जत्वमेव च ॥  
सर्वाङ्गैर्कांगरोगाश्चकुर्व्यात्स्नायुगतोऽनिलः

अर्थ—स्नायुगतवायु बाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुवडापन उत्पन्न करती है और इसी से सर्वाङ्गघात वा पक्षाघात उत्पन्न होते हैं ।

शिरागतवायुके कर्म ॥

शरीरंमन्दरूक्षशोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपि वा ॥  
सुप्तास्तन्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते

अर्थ—शिरागत वायु के कुपित होने पर शरीर में मन्द वेदना सूजन शोष,

स्पन्दन होता है तथा सम्पूर्ण शिराओं में सुप्तता, पतलापन वा दीर्घता होती है ॥

सांघिगत वायु के कर्म ॥

वातपूर्णवृत्तिस्पर्शःशोफःसन्धिगतेऽनिले ॥  
प्रसारणाकुञ्चनयोस्मवृत्तिःसवेदना ।

अर्थ—सांघिगत वायु के कुपित होनेपर हवा से भरी हुई मशकके समान स्पर्शवाली सूजन होती है, संधियों का प्रसारना वा सकोडना बन्द होजाता है और वेदना भी होने लगती है ।

अर्द्धाङ्गगत वायु के कर्म ।

अतिवृद्धःशरीरार्धमेकंवायुःप्रपद्यते ॥ यदा  
तदोपशोष्यामृगवाहुपादं च जानुच । त-

स्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धंमुखंजिह्वं करोति च ॥  
वक्त्रीकरोतिनासाग्रंललाटासिहनुन्तथा ।

ततोवक्त्रंजलस्यस्यभोजनं वक्रदर्शिनः ॥  
स्तब्धेनैत्रं कथयतःश्वबधुश्च निशृण्वते । दी-

नाजिह्वासमुत्क्षिप्ताजिह्वासज्जतिचास्य  
धाक् ॥ दन्ताश्चलन्ति याध्येते श्रवणौ भि-

द्यतेस्वरः । पार्श्वहस्ताक्षिजंघोरुं श्वश्रव  
णगण्डरूक् ॥ अर्धे तस्मिन्मुखाध्वंवाकेवा

लेस्यात्तदार्द्धितम् ।

अर्थ—जब वायु अत्यन्त कुपित होकर शरीर के दक्षिण वा वाम अर्द्धभाग का आश्रय करती है तब उसी ओरके रुधिर, वाह्य, पांव और जानु को शुष्क कर देती है और फिर वही भाग संकुचित होजाता है तथा उसी ओर का आधामुख टेढ़ा पड़जाता है । तथा नासिका का अग्रभाग, छलाट, आँख और ठोड़ी भी टेढ़ी पड़जाती

है । और इस रोगी के मुख में भोजन भी टूटा कर के प्रवेश करता है । यात कहने के समय नेत्र पधरा जाते हैं । छींक रुक जाती है, जिह्वा दीन, टेढ़ी होकर बाहर निकल आती है, याणी रुकजाती है, दांत चालित होजाते हैं, कान बहरे होजाते हैं, स्वर क्षीण पड़जाता है, पसली, हाथ, आंख जंघा, ऊरु, कनपटी, कान और गंडस्थल में वेदना होती है । यह रोग आधे अंग में होता है वा केवल आधे मुखहीमें होता है । इसे अर्धितरोग कहते हैं ।

**मन्याश्रित वायु के लक्षण ।**

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाढीःप्रपद्यते ॥  
मन्यास्तम्भतदाकुर्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥

अर्थ—जब वायु मन्या अर्थात् गले के भीतरकी नसों पर आक्रमण करती है तब अन्तरायाम नामक मन्यास्तम्भ उत्पन्न होता है ।

**अन्तरायामके लक्षण ।**

अन्तरायस्पतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम् ॥

दन्तानादशनंलालापृष्ठाक्षेपःशिरोग्रहः ॥

जृम्भावदनरांगाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् ॥

अर्थ—जब ग्रीवाके भीतर अन्तरायाम होता है तब मन्या अत्यन्त स्तब्ध होजाती है । दंतदशन, लालास्राव, पृष्ठाक्षेप और शिरोग्रह होता है तथा जंभाई और मुख में स्तब्धता गी होती है ये अन्तरायाम के लक्षण हैं ॥

**पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण ।**

पृष्ठमन्याश्रितावाह्याःशोषयित्वाशिरोवलीः  
श्रिताःकुर्याद्विनुस्तम्भंवाहिरायामसंज्ञकम् ।

अर्थ....वायु पीठ और मन्याका आग्रह लेकर बाहरकी नसों को सुखाकर धनुस्तम्भ नामक बहिरायाम रोगको उत्पन्न करती है ॥

**बहिरायाम के लक्षण ।**

चापवन्नाम्यमानस्यपृष्ठतोद्गीयतेशिरः ।  
उररत्तिक्षप्यतेमन्यास्तब्धाग्रीवाचमृद्यते ॥  
दन्तानादशनंजृम्भालालाश्चावचवाग्रहः  
जातवेगोनिहन्त्येपैवकल्यंवाप्रयच्छति ॥

अर्थ—इस रोगमें शरीर पीठकी ओर से धनुषकी तरह झुक जाता है । सिरटेढ़ा पड़जाता है । वक्षःस्थल ऊंचा होजाता है, मन्यास्तब्ध होजाती है, ग्रीवा मृदित होती है, दांत एक दूसरे से लगजाते हैं, जंभाई छालास्राव, वाग्रह होता है । यह रोग अत्यन्त उग्र होने पर मारडालता है वा अत्यन्त विकलता उत्पन्न करता है ।

**हनुग्रहके लक्षण ।**

हन्वायासोस्थितोवायुर्वन्धात्संसयतेहन्  
म् ॥ विवृतास्यत्वमधवाकुर्यात्स्तब्धमवे-  
पनम् ॥ हनुग्रहश्चसंस्तम्भ्यहन्संवृतव-  
क्त्रताम् । हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिवहु

कष्टदम् ॥

अर्थ—ठोड़ी के आयाससे उठी हुई वायु कुपित होकर हनुवन्धों को ढीलाकर देती है, इससे मुंह खुला रहजाता है वा कम्पन रहित स्तब्ध होजाता है । हनुके मूलमें स्थित वायु हनुको स्ताम्भित करके अत्यन्त कष्ट कारक हनुग्रह वा संवृतवक्त्रता ( जिसमें मुखबन्द रहजाता है ) उत्पन्न करती है ।



आक्षेपक के लक्षण ।

मृहुराक्षिपतिकुदोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः॥

पाणिपादश्चसंशोष्यशिराःसस्नायुक-

ण्डराः ॥

अर्थ—जिसमें रोगी क्रुद्ध होकर अंगोंको धारम्भार फेंकता है और हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा झुंकहो जाती हैं उसे आक्षेपक वायु कहते हैं ॥

दण्डापतानक के लक्षण ॥

पाणिपादाशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तम्भान्तिमारु-  
तः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽ

नुपक्रमः ।

अर्थ—जिस रोग में लकड़ी के समान हाथ, पांव सिर, पीठ और श्रोणी अकड जाती हैं उसे दण्डक कहते हैं । यह रोग दुःखिकित्स्य होता है ॥

अर्दितरोग के लक्षण ॥

स्वस्थःस्यादर्दिताद्यानामृदुर्व्यगतेगते ॥

पीड्यतेपीडनैस्तैर्भिपगेतान्विवर्जयेत् ।

अर्थ—अर्दितादि वातरोगों के बेगके शान्त होनेपर रांगी स्वस्थ होजाय और बेगके आने पर वेदना होने लगे ऐंसा रोगी त्याग्य होता है ।

पक्षाघातके लक्षण ॥

हृत्वेकमारुतःपक्षदक्षिणचाममेवच । कु-

र्याच्चेष्टानिष्टितिहिरुजंवाग्भङ्गमेवच ॥

गृहीत्वावाशरीरार्द्धशिराःस्नायुंविशोष्य-

च । पादंसङ्कोचयत्येकहस्तंवातोदशूल-

नुत् ॥ एकाङ्गरोगंतविद्यात्सर्वाङ्गसर्वदेह

जम् ।

अर्थ—वायु कुपित होकर दाहिने वा बांये किसी अंग को मारकर क्रियाहीन कर देती है इससे देह में बड़ी वेदना होती है और बाणी रुकजाती है । अथवा शरीर के अर्द्ध भागपर आक्रमण करके शिरा और स्नायुको सुखा देती है यदि ऊपरके भाग पर आक्रमण करती है तो हाथको संकुचित करती है और यदि नीचेके भागपर आक्रमण करती है तो एक पांवको मार देती है । इसमें सूचीवेध के समान अत्यन्त वेदना और शूल होता है । इसे एकाङ्गरोग वा पक्षाघात कहते हैं और सम्पूर्ण देह में व्याप्त रोग को सर्वाङ्गघात कहते हैं ॥

गृध्रसीके लक्षण ॥

स्फिङ्गुर्दाकटिपृष्ठोरुजानुगंधापदंक्रमात्

गृध्रसीःस्तम्भरुक्तोदैर्गृहणातिस्तम्भतेमुहुः

वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्यितः

अर्थ—गृध्रसी रोगमें वायु प्रथम नितम्ब

स्थान पर आक्रमण करके क्रम से कटि,

पीठ ऊरु जानु, जंघा और पांव पर आ-

क्रमण करती है इन स्थानों में स्तम्भता,

वेदना और तोड़ होता है । यह रोग के-

वल वातसे वा वातकफसे उत्पन्न होता है ।

इस में तन्द्रागौरव और अरुचि होती है ॥

खल्लीकालक्षण ।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटनी ।

अर्थ—जिसरोग से पांव, जंघा, ऊरु,

और करमूल में अवमोटन होता है उसे

खल्लीरोग कहते हैं ॥

स्यानानामनुरूपैश्चलित्रैःशेषान्विनिर्दि-

येत् ॥ सर्वेष्वेतेषु संसर्गपित्ताद्यैरूपलक्ष  
येत् । वायुधातुक्षयात्कोपोमागस्यावर  
णेन च ॥

अर्थ—दोष वात रोगों के नाम उनके  
स्थान और लक्षणों के अनुसार जाने जाते  
हैं । इन सब वातरोगों में कफपित्त का  
संसर्ग होता है ॥

धातु के क्षीण होने से अथवा मार्गों के  
आवरणसे वायु कुपित होती है ॥

वातपित्तकफादेहे सर्वस्रोतोऽनुसारिणः ।  
वायुरेवाहिसूक्ष्मत्वाद्वायोस्तत्राप्युदीरणः ॥  
कुपितस्तौ समुज्ज्वयत तत्राक्षिपन् गदान् ।  
करोत्यावृतमार्गत्वाद्द्रसादींश्चोपशोप-  
यन् ॥

अर्थ....वात, पित्त और कफ ये तीनों  
दोष देह के सम्पूर्ण स्रोतों में जाते हैं ।  
परन्तु वायु अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण दि-  
खाई नहीं पड़ती है और वह कफ और  
पित्तको उदार्ण करदेती है । कुपित हुई वायु  
कफपित्तको उत्तेजित करके स्रोत मार्गों में  
लेजाकर मार्गोंको रोक देती है और रसों  
को सुखादेती है ॥

पित्तावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

लिंगं पित्तावृते दाहस्त्वृणां शूलभ्रमस्तमः ॥  
कट्वम्ललघुणोष्णैश्च विदाहः शीतका-  
मिता ॥

अर्थ—पित्तद्वारा वायुका अवरोध होने  
से दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति होती  
है । तथा कटु, अम्ल, लघु और उष्ण  
पदार्थों के सेवन से विदाह होता है और शी-  
त वस्तुओं पर इच्छा होती है ॥

कफावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

शीतगौरवगूलानि कफावृणुष्योऽधिकम् ।  
लघनायासरूक्षोष्णकामिता च कफावृते ॥

अर्थ—कफवाही स्रोतों में वायु कफ से  
अवरुद्ध होकर शीत, भारापन, गूल कट्वा-  
दि द्रव्यों के सेवनसे अत्यन्त उपशय उ-  
त्पन्न करती है लघन, परिश्रम तथा उष्ण  
द्रव्योंपर इच्छा भी उत्पन्न होती है ॥

रक्तावृत वायुके लक्षण ॥

रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वर्मांसान्तरजोभृशम्  
भवेत्सरागः श्वयधुः जायन्ते मण्डलानि च ॥

अर्थ—रक्तवाही स्रोतों में रक्तद्वारा वायु  
के रुकनेपर दाह, यातना, त्वचा और मांस  
के बीच में अत्यन्त दारुण रक्तवर्ण युक्त सू-  
जन और चकत्ते उत्पन्न होते हैं ॥

मांसावृत वायुके लक्षण ॥

कठिनाश्च विवर्णाश्च पिडकाः श्वयधुस्तथा ।  
हर्षः पिपीलिकानां च सञ्चार इव मांसगे ॥

अर्थ—मांसवाही स्रोतों में मांसद्वारा वायु  
के रुद्ध होनेपर कठोर विवर्ण कुन्तियाँ और  
सूजन उत्पन्न होती है तथा चींटी चलने  
के समान देहमें सुरसुराहट होती है ॥

मेदसावृत वायुके लक्षण ॥

चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफोऽङ्गेष्वरुचि-  
स्तथा । आढ्यवात इति शेषः सकृच्छ्रोमे-  
दसावृतः ॥

अर्थ—मेदोवाही स्रोतों में मेदके द्वारा  
वायुके रुद्ध होने पर चंचलता, स्निग्धता,  
मृदुता, शीतलता, अंगोंमें सूजन और अरु-  
चि होती है । इसे आढ्यवात कहते हैं यह

गतवायु, अस्थिगतवायु, ये सब रोग अपने होने के स्थानकी गंभीरता से बहुत प्रयत्न करनेपर साध्य भी होजाते हैं और नहीं भी होते हैं । जो ये रोग बलवान् मनुष्य के नवीन उत्पन्न हुएहों और उपद्रव रहित भी हों तौ उनकी चिकित्सा करना उचित है । अब हम वातरोगों के नाश करने वाली अत्यन्त अनुभव की हुई चिकित्सा लिखते हैं । उसे सुनो ॥

वातरोगमें चिकित्साक्रम ॥

केवलं निरुपस्तम्भमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ॥  
 पायुर्मासैर्वर्षमासैर्मज्जपानैर्नरैस्ततः । स्ने  
 हेकान्तसमाश्वास्यपयोभिः स्नेहयेत् पुनः ॥  
 यूपैर्ग्राष्माण्युजानूपैः रसैर्वास्नेहसंयुतैः ।  
 पायसैः कृशैरम्ललवणैः सानुवासनैः ॥  
 नाभौ नस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धस्वेदयेत्ततः ॥  
 स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ॥  
 तथान्यैर्विविधैः स्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ।

अर्थ—निरुपस्तम्भ अर्थात् पित्तादि द्वाग अनाहत वातरोग में प्रथम स्नेहन देवे फिर उसे घृत, घसा, तेल और मज्जाका पान करावे । स्नेहके अत्यन्त सेवन से रोगी के क्लान्त होने पर उसे आश्यासन देकर दुग्ध द्वारा स्नेहन देवे । अथवा स्नेहयुक्त ग्राम्य, जलज और आनूप पशुओं के मांस रस वा स्नेहयुक्त यूप वा पायस, वा अम्ल-  
 लवण युक्त कृशारा द्वारा अनुवासन और नस्य देवे तथा अन्नद्वारा तर्पित करे । इस तरह अच्छी रीति से स्निग्ध होने पर शरीर पर स्नेहमर्दन करके स्नेहयुक्त नाडी स्वेद,

प्रस्तरस्वेद, वा संकर स्वेद देवे अथवा जैसा योग हो उसी के अनुसार अन्य स्वेदों द्वारा स्वेदित करे ॥

स्नेहार्द्रैः स्विन्नमद्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापि वा  
 यथेष्टमानामयितुं गक्यते शुष्कदारुवत् ॥  
 हर्षतोदरुगायासशोपस्तम्भोग्रहादयः ॥  
 स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्ति मार्दवचोपजायते  
 स्नेहश्च वातूनसंशुष्कान् पुष्णात्याशुप्रयो  
 जितः । बलमग्निबलं पुष्टिप्राणचाप्यभिवर्धते  
 असकृत्तपुनः स्नेहैः स्वेदैश्चाप्युपपादेयत् ॥  
 तथा स्नेहमृदादेहेन तिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥  
 यद्यनेन सदा पत्वात्कर्मणान्प्रशाम्यति ॥  
 मृदुभिः स्नेहसंयुक्ते रौपयेस्तं विशोधयेत् ॥  
 घृतं तिस्रकसिद्धं वासातलासिद्धमेव वा ॥  
 पायसैरण्डतैलं वापि वैद्योपहरं शिवम् ॥

अर्थ—जैसे सूखी लकड़ी पर तेल चुपड़ कर सेकने से इच्छानुकूल उसे नवा सकते हैं, इसी तरह स्नेहार्द्र मनुष्य को स्वेदन करनेके पश्चात् वह चाहे जैसा धक्का वा स्तब्ध क्यों न हो सीधा कर लिया जा सकता है । स्नेहन करने से वातरोगी के हर्ष, तोद, वेदना, आयास, शोष, स्तम्भ और ग्रहादिरोग शीघ्र शान्त होजाते हैं और देह भी मृदु पड़जाती है । स्नेह का प्रयोग करने से सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्ट हो जाती है वल, अग्निबल, पुष्टि तथा प्राण भी बढ़ते हैं । इन्हीं हेतुओं से स्नेह और स्वेद का प्रयोग बार बार करना चाहिये क्योंकि स्नेह से मृदु हुई देह में वातरोग नहीं ठहर सकते हैं । दोनों की अधिकता

के कारण यदि इस कर्म से वातरोग शान्त न हो तो स्नेह संयुक्त मृदु औषधियों द्वारा विरेचन देवे । छोध वा सातला में सिद्ध किया हुआ घी देकर विरेचन करावे अथवा दूध में अंडी का तेल मिलाकर विरेचन देवे यह दोष नाशक और उत्तम होता है ।  
स्निग्धाम्ललवणोष्णाधैराहारैर्हमलश्चितः । स्रोतोवृद्धानिलंश्न्योत्तस्माच्चमनुलोमयेत् ॥ दुर्बलोपोविरेच्यः स्यात्तनिरुहैरुपाचरेत् । पाचनैर्दोषनीयैर्वाभोज्यैर्वातयुतं नरम् । शुद्धस्य चोत्थिते चाग्नौ स्नहंस्वदौ पुनर्हितौ । स्वाद्वम्ललवणास्निग्धैराहारैः सततं पुनः । नाचनैर्धूमपानश्च सर्वानेवोपपादयेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्णादि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से दोष बढकर स्रोतों में बढ बात को रोकदेते हैं इस लिये वायु का अनुलोमन करावे । जो विरेचन देने पर दुर्बल होजाय उसे निरुहण यस्तिदेवे । अथवा पाचनकर्त्ता वा दीपनकर्त्ता औषध देवे । संशोधन देनेके पश्चात् यदि अग्नि उटखडी होवे तो फिर स्नेहन स्वेदन देवे । सम्पूर्ण प्रकार के वातरोगों में स्वादु अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार निरन्तर देवे तथा नस्यकर्म और धूमपान का भी प्रयोग करे ॥

विशेषतस्तु कोष्ठस्य वातेश्वरं पिबेन्नरः ॥  
पाचनैर्दोषनीयैस्तैस्सर्वोपाचयेन्मलान् ॥  
शुद्धपकाशयस्येतु कर्पोदावर्तनुद्धितम् ॥  
माशयस्येशुद्धस्य यथादोषहराः क्रियाः ॥

सर्वाङ्गुपितेऽभ्यङ्गो वसनयः सानुवासनाः ।  
स्विदाभ्यङ्गानिवातानिहृद्यंचाक्षेत्त्वगाग्नि-  
ते ॥ शीतालेपस्तुरक्तस्ये विरेको रक्तमाक्षेण-  
म् ॥ विरेको मांसमेदःस्थे निरुहाः वमनानि च-  
वाह्याभ्यन्तरतः स्नेहरैः स्थिमज्जगतं जयेत्-  
हर्षोऽनपानं शुक्रस्येव लशुनकरं हितम् ॥  
त्रिवृद्धमार्गदृष्टावायुं क्रदद्याद्विरेचनम् ॥  
विरिक्तपतिशुक्तस्य पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम्-  
गर्भेशुष्के तु वातेन बालानां चापिशुष्यताम् ॥  
सिताकाशमर्षमधुकैर्हितं मुस्यापनपयः ॥

अर्थ—अब विशेष चिकित्सा का वर्णन करते हैं । कोष्ठस्थ वात में विशेष कर के क्षार का पान हित है तथा पाचक और अग्निसंदीपन अन्न का प्रयोग कर के मल को पचावे । गुदस्थ वा पक्काशयस्थ वात में उदावर्त्तनाशिनी क्रिया हित है । आमाशयस्थ वात में संशोधन देने के पश्चात् यथा दोष चिकित्सा करना उचित है । सर्वाङ्ग कुपित वायु में अभ्यङ्ग और अनुवासन वस्त्रियों का प्रयोग करे त्वगाग्नि वायु में स्वेद, अभ्यङ्ग, निद्रास्थान सेवन और मृदय त्रिय अन्न हित है ॥ रक्तस्थ वात में शीतलेप, विरेचन और रक्तमाक्षेण करना उचित है । मांसस्थ और मेदःस्थ वात में विरेचन, निरुहण यस्ति और वमन का प्रयोग करे । अस्थिगत और मज्जागत वायुमें वाह्य और आभ्यन्तर स्नेह का प्रयोग करे । शुक्राशय वातमें हर्ष तथा लशुन और कर्पूर यथायोग्य अन्न हित है । यदि शुक्र वात मार्ग शुक्रगया होतो प्रथम विरेचन देवे और विरेचन के

क्षाराम्बुनाततःसिक्तं पुनश्चोपनाहितम् ॥ मुञ्चेद्रात्रौ दिवा वद्ध चर्मभिश्च सुलोमभिः ।

अर्थ—उत्कारिका, वेशवार, दूध, उरद, चावल, अंडीके बीज, गेहूं, जौ, बेर, शालिपर्ण्यादि पंचमूल इन सब को पीसकर स्नेह मिलाकर शरीर पर गाढ़ा गाढ़ा लेप करे । रात्रिके समय इस लेप पर अंडीके पत्ते बांध देवें और दूसरे दिन प्रातःकाल खोल डालें और दूध तथा जल से उसे धोकर फिर लेप करें इस दिन के लेप पर रोमयुक्त चमड़ा बांध देवें । इस लेपको सायंकाल के समय दूर कर देवें ॥

फालनात्तैलयोनीनामम्लापिष्टानशीतलान् ॥ प्रदेहानुपनाहांश्च गन्धैर्वातहरैरपि । पायसैः कृशरैश्चैव कारयेत्स्नेहसंयुतैः रुक्षशुद्धानिलातार्तानामतः स्नेहान्प्रवक्ष्यते । विविधानि विधिव्याधिप्रशमाया मृतोपमान् ॥

अर्थ—सरसों से आदि लेकर द्रव्यों को जिनसे तेल निकलता है पीसकर गरम करके लेप और उपनाह बनावें । तथा घात नाशक गंधद्रव्य, पायस और कृशरा इन को घृत के साथ सिद्ध करके लेप और उपनाहन करे ।

अब हम रुक्ष और शुद्ध घातरोगियों के निमित्त अनेक प्रकारकी व्याधियों को शांत करने वाले अनेक प्रकार के अमृत के समान गुणकारक स्नेहों का वर्णन करते हैं । द्रोणेऽम्भसः पचेद्भागान्दशमूलाश्चतुष्प

लान् । यवकोलकुलत्थानां भागैः प्रस्थान्मितैः सह ॥ पादशेखरे सेपिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः । तथा खर्जूरकाश्मर्यद्राक्षावदेरफल्गुभिः ॥ सक्षीरः सर्पिषः प्रस्थः सिद्धः केवलवातनुत् । निरत्ययः प्रयोक्तव्यः पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥

अर्थ—दशमूलके प्रत्येक द्रव्य चारचार पल, जौ एक प्रस्थ, कुलधी एक प्रस्थ, बेर एक प्रस्थ इन सबको एकद्रोण जलमें पकावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले फिर जीवनीय गणके दश द्रव्य, शर्करा, खर्जूर, खंभारी, दाख, बेर और गुलर सब मिलाकर एकसेर, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ इन सबको उस काथ में डालकर पकावै । यह घृत पान, अभ्यंग और वस्तिद्वारा प्रयोग किया जाता है और वातरोगको जड़ से दूर कर देता है ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकनागरं रास्नां पौष्करं पिप्पली शटीम् पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वीतरोगहरं परम् ॥

अर्थ—चीता, सोंठ, रास्ना, पुहकरमूल पीपल, कथूर इन सबको पीसकर घृत पकावै यह घृत वातरोगको नाश करनेवाला है बलाबिल्वशृतेक्षीरे घृतपण्डविपाचयेत् । तस्य श्रुक्तिः प्रकुञ्चोर्वा नस्य मूर्ध्वगतेऽनिले

अर्थ—खोटी और बेलछाल डाल कर अठगुने दूध और चौगुने जलमें पकावै जब दूध शेष रहजाय तब उतार कर छानले और उस दूधमें घृतमंड पकावै । इस घृत में चार या आठ तोलेको नस्यद्वारा प्रयोग करने पर शिरोगत वात दूर होजाती है ॥

प्राम्यानूपौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचेज्ज  
लोतस्नेहं दशमूलस्य कपायेण पुनः पचेत् ॥  
जीवकर्पभकास्फोताविदारीकापिकच्छुना  
वातघ्नेदीपनीयैश्च कल्कैर्द्वितीयं भागिकम्  
तत्सिद्धं नावनाभ्यङ्गाचयापानानुवासनात्  
शिरापथ्यास्थिकोष्ठस्थं प्रशुदत्याशुमारुतम्  
येस्युः प्रक्षीणमज्जनः क्षीणशुक्रौजसश्च ये  
बलपुष्टिं कर्तुं पामेतस्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—प्राम्य, आनूप और औदक जीवों  
की हड्डियाँ कुटकर जल में पकावै - पक-  
ने पर इसे उतार ले और धरा रहने देवै  
इस जलके ऊपर धिकनी २ मलाई सी  
जमजाती है उसे उतार कर उसमें दुगुना  
दूध चौगुना दसमूल का काथ तथा चौथाई  
घातनाशक और जीवनीय द्रव्य यथा जीवक  
ऋषभक, आस्फोता, विदारी और केंच  
इनका कल्क । इन सबको मिला कर पका-  
वै । इस घृतका नस्य, अम्यंग, पान और  
अनुवासन द्वारा प्रयोग करै । जिन मनुष्यों  
की मज्जा, शुक्र और ओज क्षीण हो गये  
हैं उनकी पुष्टाई तथा बल बढ़ानेके निमित्त  
यह घृत अमृतके समान गुण कारक है ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमस्य कर्मचुल्लूकजाः ।  
प्रत्यगाविधिनानेन नस्यपानेषु शस्यते ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे ही मगर,  
मछली, कछुआ और सूँसकी चर्बी को प-  
काकर नस्य और पीनेमें प्रयोग करने से  
तद्रत् गुणकारक होता है ।

प्रस्थः स्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम्  
कृष्णागन्धात्वाढकयोः पृथक् पञ्चपलं भवे

त् । रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोम्वितम्  
जलद्रोणे पचेत्पादशेषे प्रस्थोन्मितं पृथक् ॥  
सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् ॥  
कोलदाढिमृक्षाम्लरसांस्तैलवसांघृतम् ।  
मज्जानञ्चपयश्चैव जीवनीयपलानि षट् ॥  
कल्कीकृत्य महास्नेहं सम्यगेन विपाचयेत् ॥  
शिरामज्जास्थिगेवाते सर्वाङ्गैकांगरोगिषु ॥  
वेपनाक्षेपशूलेषु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला एक प्रस्थ, कुलधी दो  
कुडव, संहजनेकी छाल पांच पल, अड़हर  
की छाल पांच पल, रास्ना दोपल, चीतादो  
पल, दशमूलके प्रत्येक द्रव्य एक एक पल  
इन सबको जो कुटकरके एक द्रोण जलमें  
पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर  
छानले, उस काथमें सुरा, फांजी, दही,  
खटाई, सौवीरक. तुषोदक, धेरंकारस, अ-  
नारकारस, वृक्षाम्लकारस, तेल, चर्बी, घी,  
मज्जा और दूध पृथक् पृथक् एक एक  
प्रस्थ जीवनीय गणका कल्क छः पल ।  
इन सबको पकावै । यह महास्नेह शिरोगत,  
मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत,  
कम्पन, आक्षेपण और शूल इन रोगों में  
अम्यंग द्वारा प्रयोग किया जाता है ।

निर्गुंडी तैल ॥

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यां गृहीत्यास्वरसंततः ॥  
तेन सिद्धं समं तैलं नादीकुष्ठानिलाक्षिपु ।  
हितं पामापचीनांच पानाभ्यञ्जनपूरणम् ॥

अर्थ—निर्गुंडीकी जड़ और पत्रोंका रस  
निकाजकर, उसके समान तेल मिटाकर  
पकावै । इस तेल का अम्यंग और पान

अमृतादि तैल ॥

तुलाः पञ्चगुह्यं स्तुद्रोणे पृष्ठास्वपांपचे  
त् । पादशेषसमंक्षीरं तैलस्य द्वाढकंपचे  
त् । एला मांसीनतोक्षीरशारिवाकुष्ठचन्द  
नैः । बलातामलकीमेदाशतपुष्पादिजी  
वकैः ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्य  
तिबलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीवि  
दारीकपिकच्छाभिः ॥ शतावरीमहामेदा  
कैर्कटारुयाहरेणुभिः । वचागोक्षुरकैर  
ण्डरास्नाकालासहाचरैः ॥ बीराश्लक्षि  
मुस्तत्त्वकूपप्रर्पभकवालकैः । महेलाकुंकु  
मस्पृकाभिदशाह्वैश्चकार्षिकैः ॥ मञ्जिष्ठा  
यात्रिकपेणमधुकाष्ठपलेनच । कल्कैस्त  
त्क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ उन्मा  
दारत्यपस्मारैरार्तश्चमृत्तिनयेत् । वात  
व्याधिहरं श्रेष्ठं तैलाग्न्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलाय पांच तुलाको आठद्रोण  
जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उ-  
तारकर छानले । तब उस शेष क्वाथ के  
समान दूध, दो आढक तेल और नीचे  
लिखहुए द्रव्योंका कल्क डालदेवै । यथा  
छोटी इलायची, जटामांसी, तगर, खस,  
शारिषा, कूट, चन्दन, खैरटी, भूआंवला,  
मेद, सोंफ, शृङ्गि, जीवक, काकोली, क्षी-  
र काकोली, श्रावणी, अतिबला, नखी, महाश्रा-  
वणी, जीवन्ती, विदारीकन्द, कैच, सिता-  
धर, महामेदा, काकडासींगी, हरेणु, वच,  
गोखरू, अरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहचर,  
वीरा, शल्लकी, मोथा, दाडचीनी, तेजपात  
कपभक, नेत्रवाला, बटी इलायची, कुंकुम

स्पृका, देवदारु ये सब द्रव्य एक एक कर्प  
लेवै । मजीठ तनिकर्प, मुलहठी आठपल  
इम सबका कल्क डाल देवै । इस तेल के  
सेवन करने से रीर्य की क्षीणता, अग्नि-  
बल, मूढचित्तता, उन्माद, अरति, अपस्मार  
ये दूर होकर मनुष्य अपनी प्रकृति पर आ-  
जाता है यह तेल वात व्याधियोंको दूर करने  
में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥

रास्नातैल ॥

रास्नासहस्रानिगुहंतलद्रोणविपाचयेत् ।

गन्धैर्मवर्तः पिष्टैरैलान्तैश्चानिलार्तिजुवा ॥

अर्थ.... एक सहस्र पल रास्ना को अठ-  
गुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर  
उतारकर छानले इसमें पूर्वोक्त एलादि चूर्ण  
और एकद्रोण तेल डालकर पकावै । पकने  
पर उतारकर शफेद कचका चूरा घुस्क दे ।  
यह तैल वातरोग को दूर करने वाला है ॥  
कल्पोऽयमष्टगन्धार्यामसारण्यां बलाह्वये ।  
क्वाथकल्कपयोभिर्वा बलादीनां पचेत् पृ-  
थक् ।

अर्थ—असगन्ध, प्रसारिणी, दोनोंबला  
इनका तेल भी ऊपर कहीहुई रीति से त-  
यार कियाजाया है । अथवा बलादिके पृ-  
थक् २ क्वाथ, कल्क, और दूध के साथ  
तेल पकाकर प्रयुक्तकरे ॥

मूलकादितैल ॥

मूलकस्वरसंक्षीरं तैलं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।

तुल्यां विपाचयेत् कल्कैर्वलाचित्रकसैन्धवैः ॥

पिप्पल्यतिविषां रास्नाचविकागुरुशिशुके

भल्लातकवचाङ्गुश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥

पुष्करादृशटीविल्वशताह्वानंतदारुभिः ।  
तत्सिद्धं पीतमप्युग्रान्दन्तिवातात्मकान्-  
गदान् ॥

अर्थ—मूलीकारस, दूध, तेल, दही,  
और कांजी इन सबको समान भाग तथा  
तेल से चौथाई खरौटी चीता, सेंधानमक,  
पीपल, अर्तास, रास्ना, चव्य, अगर, सं-  
हजना, भिलाया, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ  
पुहकरमूल, कचूर, बेलछाल, सोंफ, तगर  
और देवदारु इनका कलक डालकर सबको  
एक साथ पकावै । इस तेल के पान करने  
से अत्यन्त उग्र वातरोग भी दूर होजातेहैं ॥

• दृपमूलादि तैल ।

दृपमूलगुह्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अ-  
श्वगन्धाचित्रफयोर्वर्वाथेतैलाढकंपचेत् ॥  
सक्षीरं वायुनाभमेदध्याज्जर्जरितेतथा ॥  
भाक्तं श्लाघापसिद्धं च स्यादेतद्द्विगुणो-  
त्तरम् ॥

अर्थ—अडुसाफी जड़ सौपल, गिलोय-  
सौपल, असगन्ध सौपल, चीता सौपल इन  
का बराब करके चौथाई शेष रहने पर उसे  
उतारकर उसमें एक आढक तेल पकावै, इसमें  
क्वाथके समानही दूधभी मिलालिये यह तेल  
वायु से भग्न अथवा जर्जरित देह में प्रयोग  
किया जाता है । पूर्वोक्त बटादि कलक डा-  
लकर सिद्ध किया हुआ यह तैल दुगुना गु-  
णदायक होता है ॥

रास्नातैल ।

रास्नाशिरीषपट्यादशुष्ठीसहचरामृताः  
श्यानाकदारुसम्पाकाह्वयगन्धात्रिकण्ट-

काः ॥ एषां दशपलान् भागान् कृपायमु-  
पकल्पयेत् । ततस्तेन कपायेण सर्वगन्धै-  
श्चकार्षिकैः ॥ दध्या रानलमापाम्बुमूल  
केशुरसैः शुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैः सार्द्धं  
तैलप्रस्थविपाचयेत् ॥ छीहमूत्रग्रहश्वास  
कासमारुतरोगनुत् । एतन्मूलकतैलाग्यं  
वर्णाशुर्वलवर्द्धनम् ।

अर्थ—रास्ना, सिरस, मुलहटी, सोंठ,  
सहचर, गिलोय, श्यानाक, देवदारु, अम-  
लतास, असगन्ध, गोखरू इन में से प्रत्येक  
दस दस पल लेकर क्वाथ करले । और इस  
क्वाथ में एक एक प्रस्थ गंधका कलक तथा  
दही, कांजी, उरदका क्वाथ, मूलीकाक्वाथ,  
ईशका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ तथा तेल  
एक प्रस्थ डालकर पकावै । इस तेल के  
सेवन करने से छीहा, मूत्रग्रह, श्वास, खा-  
सी, घात रोग दूर होजाते हैं, यह मूलक  
तेल से भी उत्तम है, इस के सेवन से वर्ण  
बल और आयु बढ़ती है ॥

यवकोलकुलत्थानां मत्स्यानां शिमुविल्व  
योः ॥ रसेन मूलकानां च तैलं दधिपयोऽ-  
न्वितम् ॥ साधयित्वा भिषग्दद्यात्सर्व-  
वातामयापदम् । लघुनस्वरसोत्तिदं तैल  
येभिश्च वातनुत् ॥ तैलानेतादृष्टस्त्राताम  
ज्ञानां पाययेत्तच ॥ पीत्वान्यतममेपां हि व-  
न्ध्यापि जनयेत्सुतम् ॥

अर्थ—जी, बेर, कुलर्था, मछली, सहजना  
बेल छाल और मूली, इनका क्वाथ तथा  
दही दूध और तेल इन को एकत्र सिद्ध  
करके देवे तो सम्पूर्ण प्रकार के वातरोग



दूर होजाते हैं । अथवा ऊपर कहे हुए द्रव्यों के साथ लहसन के रसमें सिद्ध किया हुआ तेल भी वात नाशक है ।

इन ऊपर कहे हुए तेलों में से कोई सा तेल ऋतु का स्नान करने के पाँछे स्त्रियों को पान कराये तौ धन्या के भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ।

यच्चशीतज्वरैस्तैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् । अ-  
नेकशतशस्तच्चसिद्धस्याद्वातरोगनुत् ॥ व-  
क्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच ।  
तानिचानिलशान्त्यर्थसिद्धिकामप्रयोज-  
येत् ॥

अर्थ—जो अगुर्वादि तैल से आदि लेकर शीत ज्वर में वर्णन किये गये हैं, वह अनेक बार सिद्ध किये जाने पर वातरोग को दूर करता है अथवा अनेक बार इस तैल का अनुभव किया गया है । इस से अतिरिक्त वातरक्त में जो तेल कहे जायेंगे वे भी आ-  
रोग्यता के निमित्त वातरोग के दूरकरने के लिये दिये जा सकते हैं ।

तैलक्री उत्कृष्टता ।

नास्ति तैलात्परं किञ्चिदप्यधमाकृतापहम्  
व्यवायुष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्बलवत्तरम्  
गुणैर्वातहृस्तस्मात्शतशोऽयसहस्रशःसि-  
द्धिं प्रवर्तयन्ति सूक्ष्ममार्गस्थितानुगदान् ॥

अर्थ—तेल से अधिक वातनाशक और कोई औषध नहीं है क्योंकि यह व्याघ्र, उष्ण, गुरु और तिग्म है । तथा वातना-  
शक द्रव्यों के संस्कार से यह अत्यन्त मलान होजाता है । तथा वातनाशक द्रव्यों

के साथ शत सहस्र बार सिद्ध करने पर यह सूक्ष्म स्रोतों में स्थित रोगों को शीघ्र ही दूर करदेता है ।

क्रियासाधारणीसर्वासंस्पृष्टापिशस्यते ।  
वातपित्तादिभिःस्रोतःस्वावृतेषुविशेषतः ॥

अर्थ—केवल वायु में जो साधारणी क्रिया कही गई है वह संस्पृष्ट दोषों में भी हित-  
कारी होती है और विशेष करके जय स्रोतों का मार्ग वातापित्त, वा वातकफ वा पित्त-  
कफसे रुका होता है तब वातनाशिनी क्रिया बहुत उपयोगी होती है ॥

पित्तावृतेवायुमार्गं चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतथाक्रिया-  
म् । व्यत्यासात्कारयेत्सर्विर्जीवनीयञ्च  
शस्यते ॥ धन्वमांसंयवाशालिर्वापनाः  
क्षीरवस्तयः । विरेकःक्षीरपानञ्चपञ्च-  
मूलबलाश्रितम् ॥ मधुपट्टिर्वलातैलंघृत-  
क्षीरैश्चसेचनम् । पञ्चमूलकपापेणकुर्या-  
द्वाशीतवारिणा ॥

अर्थ—जब वायुका मार्ग पित्तसे आवृत होता है तब व्यत्यास क्रम से शीत क्रिया और उष्णक्रिया करना हित है । इस में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत भी उपयोगी है । धन्वजमांस, जौ, शालीचावल, यापनकर्त्ता क्षीर घस्ति, विरेचन तथा पंचगूल वा बला डालकर औटाया हुआ दूध हित है । मुलहठी का क्वाथ, बलातैल घी, दूध, पंचमूल का क्वाथ वा ठंडा जल इन से सेचन करना भी हित है ॥

कफावृतवायु मार्ग में चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्निजाङ्गलामृगपाक्षिणः

स्वेदास्तीक्ष्णानिरूहाश्च वमनसं विरेचनम्  
जीर्णसर्पिस्तथा तैलं तिष्ठसर्पजं शुभम् ।

अर्थ—कफसे वायुके रुकने पर जौ, जंगल पशुपक्षियों का मांस, स्वेद, तीक्ष्ण निरूहण, वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल का तेल और सरसों का तेल हित होता है ।

कफपित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा ॥

संस्पृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ चिनिर्जयेत्  
आमाशयगतं हृद्वा कफं वमनमाचरेत् ॥

पक्वाशये विरेकन्तु पित्ते सर्वत्र गेतथा ॥

अर्थ—कफपित्त मिलहुए दोनों से वायु का मार्ग रुकने पर प्रथम पित्तको जीतने का उपाय करे, जो कफ आमाशयमें स्थित दिखाई दे तो वमन देवे, पक्वाशयस्थ कफ में विरेचन देवे । तथा जो पित्त सर्व देहगत दिखाई दे तो भी विरेचनही देवे ।

स्वैर्दर्विष्यन्दिदं श्लेष्मा यदा पक्वाशया  
च्छुतः । पित्तं वादर्शयेल्लिङ्गं वस्तिभिस्तं

विनिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्वेदनकर्म से श्लेष्मा यदि पिघल कर पक्वाशय को छोड़ दे और यदि पित्तके चिह्न भी दिखाई दें तो वस्तिद्वारा उसके दूर करने का उपाय करे ॥

में क्षीरसंयुक्त निरूहण देवे तथा मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए तैल की अनुवासन वास्ति देवे ॥

शिरोगतवात में चिकित्सा ।

शिरोगते तु सकफे धूमनस्यादिकारयेत् ॥

अर्थ—कफयुक्त वात के सिर में प्रवेश करने पर धूमपान और नस्यादि कर्म करे ॥

उरःस्थवात में चिकित्सा ॥

हृते पित्ते कफेऽस्याद्दुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः ।  
सशेषः स्यात्क्रियातत्र फार्या केवलं वातिकी ॥

अर्थ—पित्त और कफ के दूर होने पर जो वक्षःस्थल के स्रोतों में वात गमन करे तो इस में केवल वात के नाश करनेवाली चिकित्सा करे ॥

रक्तावृतवात में चिकित्सा ।

शोणितेनावृते कुर्याद्वातशोणितकी क्रियाम्

अर्थ—रक्तावृत वात में वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥

आढ्यवात में चिकित्सा ॥

प्रमेहवातमेदोघ्नीमाढ्यवाते प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—आढ्यवात में प्रमेह, वायु और मेद को दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥

मांसावृत वात में चिकित्सा

अर्थ—अस्थि और मज्जा में स्थितवात में महास्नेह का प्रयोग करे और शुक्रावृत वात में भी पूर्वोक्त शुक्रस्थ वातकासी चिकित्सा करे ॥

अन्नावृतवातमें चिकित्सा ।

अन्नावृततदुल्लेखःपाचनदीपनंलघु ॥

अर्थ—अन्नावृत वात में वमन, पाचन, दीपनकर्ता और लघु भोजन देना चाहिये ॥

मूत्रस्थवातमें चिकित्सा ।

मूत्रलानितुमूत्रेणस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥

अर्थ—मूत्रस्थ वात में मूत्रकारक औषध स्वेदन और उत्तरप्रसक्ति का प्रयोग करे ।

पुरीषस्थ वातकी चिकित्सा ।

शकृतातैलमैरण्डवस्तिस्नेहाश्चभेदिनः ।

अर्थ—पुरीषावृत वात में अंडी का तेल और स्नेहन वस्ति तथा भेदकर्ता औषध श्रेष्ठ हैं ॥

स्वस्थानस्पदोप की चिकित्सा ।

स्वस्थानस्थोवलीदोषःप्राक्तंस्वैरौषधैर्जयेत्वायमनैर्वाधिरैर्वावस्तिभिःशमनेनवा ॥

अर्थ—यदि दोष अपने ही स्थान में स्थित हो परन्तु कुपित होजाय तब उसी दोष के शमन करने वाली औषध का प्रयोग करे । अर्थात् अपने स्थान में स्थित कफ को वमन से, पित्त को विरेचन से और वातको वस्ति से शमन करे ॥

मारुतानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पांच प्रकार की वायु जब परस्पर एक दूसरे के मार्ग को आच्छादित

कर लेती हैं तब जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका संक्षेपसे तथा सविस्तर वर्णन करते हैं

पंचवायु का परस्पर आवरण ॥

प्राणोद्युतपानादीन्प्राणंवृण्वन्त्यथापिते उदानाद्यास्तथान्योऽन्यंसर्वेष्वयथाक्रमम् विंशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम् ॥

मारुतानांहिपञ्चानांतानिसम्यक्प्रतर्कयेत्

अर्थ—प्राणवायु अपानादि वायुओं का आवरण करती हैं और ये अपानादिक भी प्राणवायु का आवरण करती हैं, इसी तरह सम्पूर्ण उदानादिक वायु भी आपस में एक दूसरे का आवरण करती हैं । इसी तरह इन पांचों वायुओं के परस्पर आवरण करने के बीस आवरण हैं अब उनका सम्यक् वर्णन करते हैं ।

प्राणावृतव्यान वायु के लक्षण ।

सर्वेन्द्रियाणांशून्यत्वेज्ञात्वारमृतिबलक्षयम् व्यानेप्राणावृतेलिङ्गं कर्मतत्रोर्ध्वजनुकम् ॥

अर्थ—जब प्राणवायु व्यानवायुका आवरण करलेती हैं तब सम्पूर्ण इन्द्रियां शून्यहोजाती हैं, स्मरण शक्ति और बल घट जाताहै, इस में उर्ध्वजनु क्रिया करना हित है ।

व्यानावृतप्राण वायु के लक्षण ।

स्वेदोऽत्यर्थलोमहर्षस्त्वग्दोषःसुप्तगात्रता प्राणेव्यानावृततत्रंस्नेहयुक्तंविरेचनम् ॥

अर्थ—जब व्यानवायुप्राणवायुका आवरण करलेती हैं तब पसीने बहुत आतेहैं, रोमाञ्च लगे होजाते हैं, त्वचा विगड़ जाती है और देह सुन्न पड़ जाती है, इस में स्नेह युक्त विरेचन देवै ॥

प्राणावृत समानवायुके लक्षण ॥

प्राणावृतेसमानस्याज्जडगद्गदमूकताः॥

चतुष्पयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रस्यापनाः॥

अर्थ—जब प्राणवायु समान वायु का आवरण करलेती है तब जडता, गदगदता और मूकता होती है, इस में चार प्रकार के पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य कर्म हित हैं तथा क्षीरवस्ति भी उपयोगी होती है।

समानावृत प्राणवायु के लक्षण ॥

समानेनाऽवृतेप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना ॥

शूलचामाशयेतत्रदीपनसर्पिरिच्यते ॥

अर्थ—जब समानवायु प्राणवायु का आवरण कर लेती है तब ग्रहणी दोष और पार्श्ववेदना होती है, तथा आमाशय में शूल होने लगता है, इस में संदीपन घृत उपयोगी होता है।

प्राणावृत उदानवायु के लक्षण ॥

शिरोग्रहःप्रतिष्पायोनिःश्वासोच्छाससं  
ग्रहः ॥ हृद्गोमुखशोषश्चाप्युदानेप्राण  
संवृते । तत्रैर्धर्मागिकं कर्म कार्यमाश्वास  
नंतथा ॥

अर्थ—जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण करलेती है तब सिर में जकड़न, प्रति-  
श्याय, निःश्वास का रोध, उच्छ्वासका रोध,  
हृद्गोग और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं,  
इस में वमनादि ऊर्ध्वदेहिक चिकित्सा तथा  
आश्वासन हित है।

उदानावृत प्राणवायुके लक्षण ।

कर्मजोवज्रवर्णानानाशोमृत्युरस्यापिवा ।

उदानेनावृतेप्राणेतंशनैःश्रीतवारिणा ॥

सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवमुखंचैवोपपादेयत् ।

अर्थ—जब उदानवायु प्राण वायु का आवरण कर लेती है तब कर्म, ओज, वज्र और वर्ण का नाश होकर मृत्युभी होजाती है, इसमें धीरे २ शीतलजलके छोटे मारै, आश्वासन करै और सुल्लदायक कर्मों का उपयोग करै।

प्राणावृत अपान वायुके लक्षण ।

ऊर्ध्वगेनावृतप्राणेच्छर्दिश्वासादयोगदाः॥

स्युर्वातेतत्रवस्त्रादिभोज्यंचैवानुलोमनम्

अर्थ—जब प्राण वायु अपान वायु का आवरण करलेती है तब धमन और श्वासा-  
दिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसमें वस्ति कर्म और अनुलोमन कर्त्ता भोजन हित हैं ॥

अपानावृत प्राणवायुके लक्षण ॥

मोहाल्पोग्निरतीसारऊर्ध्वगेऽपानसंवृते ॥

वातेस्युर्यमनंतत्रदीपनग्राहिचाशनम् ॥

अर्थ—जब अपानवायु प्राणवायु का आवरण करलेती है तब मोह, मन्दाग्नि और अतीसार होते है। इस में वमन तथा दी-  
पन संप्राही भोजन हित हैं।

व्यानावृत अपान वायु के लक्षण ।

वम्याध्मानमुदावर्तगुल्मातीपरिकर्तिकाः॥

लिंगव्यानावृतेपानेतंस्निग्धंरनुलोमयेत् ॥

अर्थ जब व्यान वायु अपान वायु का आवरण कर लेती है तब वमन, आध्मान, उदा-  
वर्त गुल्म अर्ति और परिकर्तिकादि उपद्रव होते हैं, इसमें स्निग्ध अनुलोमन करना चाहिये।

अपानावृतव्यान के लक्षण ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विभूचरेतसाम् ॥

अतिप्रवृत्तिस्तत्रापि सर्वसंग्रहणं मतम् ।

अर्थ—अपान वायु जब व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब विद्य, मूत्र और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस में सब तरह की संप्राप्ति औषध हित होती है ॥

समानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

मूर्च्छातन्द्रामलापोऽङ्गसादोऽन्योजोवलक्ष्यः ॥ समानेनावृते व्याने व्यायायो-

लघुदीपनम् ।

अर्थ—जब समान वायु व्यानवायु का आवरण करलेती है तब मूर्च्छा, तन्द्रा, मलाप, अंगसाद, अमिक्षय, तेजक्षय, और बलक्षय होता है इसमें शारीरिक परिश्रम तथा लघु और दीपन भोजन हित है ॥

उदानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

स्तब्धतात्प्राप्तितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ॥ उदानेनावृते व्याने तत्र पथ्यमित-

लघु ।

अर्थ—जब उदानवायु व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब स्तब्धता, मन्दगति पसीनों का बन्द होजाना, चेष्टा का नाश और निमीलन होता है, इस में थोडा और हलका भोजन हित होता है ॥

पञ्चान्योन्यावृतानेव वातां हिर्यैर्निशामयेत् । एषां स्वकर्मणां हानिर्दृष्टिर्वावरणं मतम् । यथास्थूलं समुद्दिष्टमेतदावरणं पृथक् ॥ सलिलभेजं सम्यग्बुधानां बुद्धिद्वये । स्थानान्यवेक्ष्य वातानां वृद्धिं हानिश्च कर्मणाम् ॥ द्वादशावरणान्यन्या न्यभिलक्ष्या भिपग्निमतम् । कुर्यादभ्यञ्ज-

न स्नेहपानेन वस्त्यादिसर्वशः ॥ क्रममुष्ण-

मनुष्णवाग्व्यत्यासादवधारयेत् ।

अर्थ—प्राणादिक पंचवायु जब आपस में एक दूसरे का आवरण करलेती है तब उनके ऊपर कहेहुए लक्षण होते हैं, इन पंच वायु के मित्र २ कर्मों की वृद्धि वा हानि का नाम आवरण है अथवा यों कहो कि आरवणही से इनके मित्र कर्मों की घटती बढती होती है स्थूल रीतिसे इन आठ प्रकार के आवरणों का वर्णन किया गया है तथा पंडितों की बुद्धि की वृद्धि के लिये उनके लक्षण और चिकित्सा भी कही गई है ।

इनके अतिरिक्त बारह आवरण और भी हैं उन में वायु के पृथक् ३ स्थान और उनके कर्मों की वृद्धि वा हानि का अच्छी तरह विचार करके अभ्यञ्जन, स्नेहपान और वास्तिकर्म आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये, तथा इसकी शान्ति के लिये व्यत्यासक्रम से उष्ण और शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥

उदानादि वायु में चिकित्साक्रम ।

उदानं योजयेत् दध्मपाने चानुलोमयेत् ॥

समानं शमयेच्चैव त्रिधा व्यानं न्युयोजयेत् ।

अर्थ—उदान वायुके आवृत होने पर वमन और नस्यादि ऊर्ध्व क्रिया कर्त्तव्य हैं अपान वायुके आवृत होने पर विरेचनादि अनुलोमन क्रिया करनी चाहिये । समान वायुकी संशमन चिकित्सा करे तथा व्यान वायुके आवृत होने पर उक्त तीनों प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

प्राणवायु में कर्त्तव्य ।

माणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योपिस्थानेष्वस्यस्थिति  
धुर्वा ॥ स्वस्थानंगमयेदेवंवृत्तानेतान्वि  
मार्गान् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी वायुसे प्राणवायु  
की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यकिय पहिला  
काम है । इसकी निज स्थान में स्थिति हो-  
ना भी अत्यन्तही आवश्यकिय है । प्राण  
वायुकी इस तरह रक्षाकरके आवृत्त और  
विमार्गगामी शेष चारों प्रकारकी वायु को  
अपने अपने स्थान में लेजाने का यत्न क-  
रना चाहिये ॥

पित्तावृत प्राणवायु के लक्षण ।

मूर्च्छादाहोतमःशूलविदाहःशीतकामिता॥  
छर्दनश्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ।

अर्थ—जब पित्त प्राणवायु को आवृत्त  
कर लेता है तब मूर्च्छा, दाह, अधकार द-  
र्शन, शूल, विदाह और शीतल वस्तुओं पर  
इच्छा होती है तथा विदग्ध भोजन की वम-  
न भी होती है ॥

कफावृत प्राण के लक्षण ॥

घ्रीवनक्षवधूदारनिःश्वासोच्छ्वासमग्रहः  
माणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ।

अर्थ—कफावृत प्राणवायु में थुकथुकी,  
छींक, डकार, निःश्वासरोध, उच्छ्वासरोध,  
अरुचि और वमन होते हैं ॥

पित्तावृत उदान के लक्षण ॥

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोर्भ्र-  
मः ॥ ऊर्जाभ्रंशश्चसादध्याप्युदानोपित्त  
संघृते ।

अर्थ—पित्तावृत उदानवायु में मूर्च्छा-  
दिक उक्त लक्षण तथा नाभि और वक्षः-  
स्थल में दाह भ्रम, ऊर्जाभ्रंश और अंग-  
साद होता है ॥

कफावृत उदान के लक्षण ॥

आवृतेऽप्यणोदानेवैवर्ण्यंवायस्वरग्रहः॥  
दौर्वर्त्यगुहगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ।

अर्थ—कफावृत उदानवायु में विवर्णता  
वाक्निग्रह, स्वरभंग, दुर्बलता, गुहगात्रता  
और अरुचि होती है ॥

पित्तावृत समान वायु के लक्षण ॥

अतिस्वेदस्तृपादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच॥  
पित्तावृतेसमानेस्युरूपघातस्तथोष्मणः ।

अर्थ—पित्तावृत समानवायु में पसीनोंका  
अत्यन्त आना, तृषा, दाह, मूर्च्छा, अरुचि  
और ऊष्माका उपघात होता है ॥

कफावृत समान वायु के लक्षण ॥

अस्वेदोवह्निमान्द्यश्चलोमहर्षस्तथैवच ॥  
कफावृतेसमानेस्युर्ग्रात्राणांचातिशीतता॥

अर्थ—कफावृत समानवायु में पसीनों  
का बन्दहोना, मन्दाग्नि, रोमोद्गम तथा श-  
रीरका अत्यन्त ठंडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥

पित्तावृतव्यान के लक्षण ॥

व्यानेपित्तावृतेतुस्यादाहःसर्वांगगःक्लमः  
गात्रविक्षेपसंगश्चसन्तापःसवेदनः ॥

अर्थ—पित्तावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण  
देहमें दाह, क्लान्ति, गात्रविक्षेप, संग, सं-  
ताप और वेदना होती है ॥

कफावृत व्यानके लक्षण ॥

हस्तासर्वगात्राणांपर्वसन्त्यस्थयग्रहः॥

व्यानेकफावृतेलिंगगतिसद्गस्तथाधिकः।

अर्थ—कफावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण अंगान्वयों में गुरुता, पर्ववरोध, संप्यवरोध, अस्थ्यवरोध तथा अत्यन्त गतिरोध होता है।

पित्तावृत अपानके लक्षण ।

हारिद्रमूत्रनचस्त्वन्तापश्चगुदमेद्वयोः॥ लिं-  
गं पित्तावृतेऽपानेरजसःसंमवर्त्तनम् ॥

अर्थ—पित्तावृत अपान वायुमें मूत्र और विष्टा हलदी के से रंगका होजाता है, गुदा और मेदू में ताप होता है, और रज की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है।

कफावृत अपानके लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रयवर्त्तनम् ।  
श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः ॥

अर्थ—कफावृत अपान वायु में फटा हुआ और आम कफसे मिला हुआ भारी विष्टा निकलता है तथा कफमेह का आगम होता है।

कफपित्तावृत के लक्षण ।

लक्षणानां तु मिश्रत्वं पित्तस्य च कफस्य च ।

उपलभ्यभिपग्निवद्वाग्निश्रमावरणं वदेत् ॥

यद्यस्य बायोर्निर्दिष्टस्थानं तत्रैतौ स्मृतौ ।

दोर्पावहुविधान् व्याधीन् दर्शयेत्तां यथा-

निजान् ॥

अर्थ—जब वायु पित्त और कफ दोनों से आवृत होती है तब दोनों के मिले हुए लक्षण होते हैं। जब वायु कफ और पित्त से आवृत होकर जिस जिस स्थानमें विचरण करती है उसी उसी स्थान में कफ और पित्त अपने अपने लक्षणों वाली व्याधि उत्पन्न करते हैं।

प्राणोदान वायुको गुरुता ॥

आवृतं श्लेष्ममिच्छाभ्यां प्राणं चोदानमेव च।  
गरीयस्त्वेन पश्यन्ति भिपजः शास्त्रचक्षुषः॥

विशेषाज्जीवितं प्राणे उदाने संश्रितं बल-  
म् । स्यात्तयोः पीडनाद्धानिरायुपश्च व-  
लस्य च ॥

अर्थ—पित्त और कफसे आवृत प्राण और उदान वायु को शास्त्रज्ञ वैद्य बहुत भारी समझते हैं, कारण ये हैं कि जीवनप्राण वायुको आधीन है और बल उदानवायु के आधीन है। इसलिये इनके पीडित होने से आयु और बल दोनोंकी हानि होजाती है। सर्वेऽप्येते धारिण्येऽप्येते परित्यक्तस्तथा । उपेक्षणादसाध्याः स्फुरयन्वादुरुपक्रमाः ॥

अर्थ—इन सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, क्योंकि इनकी उपेक्षा करने से ये एक दरस पीछे असाध्य वा दुश्चिकित्स्य होजाती हैं।

उपेक्षित वायुके उपद्रव ॥

हृद्गोविद्रधिः शीहा गुल्मातीसार एव च ।

भयन्त्युपद्रवास्ते पागावृतानामुपेक्षणात् ॥

अर्थ—इन आवृत वायुकी उपेक्षा करने से हृद्दोग, विद्रधि, शीहा, गुल्मरोग, अतीसार आदि उपद्रव होते हैं ॥

वैद्यको उपदेश ॥

तस्मादावरणं वैद्यः पवनस्योपलक्षयेत् ।

पश्चात्पित्तस्य वातेन पित्तेन श्लेष्मणापि वा ।

भिपग्निर्तैरतः सम्पद्युपलक्ष्य समाचरेत् ।

अनभिप्यन्दिभिः स्निग्धैः स्रोतसां शुद्धि-

कारिभिः ॥

अर्थ—इसलिये वैद्यको उचित है कि वायु के आवरणों पर दृष्टि रखै कि ये पाँचों प्रकार की वायु वात, पित्त अथवा कफ से आवृत हैं, इसका अच्छी तरह विचार करके अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों के शुद्ध करनेवाली औषधियों से चिकित्सा करे ॥

आवृत वायुमें चिकित्सा ॥

कफपित्ताधिक्ये यच्च वातानुलोमनम् ॥  
सर्वस्थानावृतेष्यांशुतत्कार्यमारुतेशुभम् ॥  
चापनावस्तपःप्रायोमधुराः सानुवासनाः  
प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यमृदुवासंसंनहितम् ॥  
रसायनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।  
शैलस्पजतुनोऽत्यर्थपयसागुग्गुलोस्तथा ।  
लह्वार्भागवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुग्धुवम्  
अभयामलकीयोक्तमेकादशसिताशतम् ।

अर्थ—सर्वस्थानावृत वायु में वह चिकित्सा करनी चाहिये जो कफपित्त के अतिक्रान्त और वात के अनुलोमन करने वाली हो । इसमें क्षीरवस्ति ( चापनवस्ति ) मधुरवस्ति और अनुवासन हित है तथा बल के अनुसार मृदुभिरेचन देंगे । इस में सम्पूर्ण रसायनिक प्रयोग भी उपयोगी होते हैं, बहुत दूध के साथ शिलाजीत और गुग्गुलु का सेवन भी हित है । केवल दुग्ध का आहार करके प्रथमाध्याय में कहे हुए च्यवनप्राशका सेवन करे अथवा ग्यारह प्रकारकी अभयामलकीयोक्त रसायन भी हित हैं

अपानावृत प्राणवायुमें चिकित्सा ॥

अपानेनावृते सर्वदीपनप्रादिभेषजम् । वा

तानुलोमनं यच्च पक्वाशयविशोधनम् ॥  
इतिसंक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम्  
प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्विदित्वैव स्वयमेव तत्

अर्थ—अपानावृत प्राणवायु में दीपन, संग्राही वातानुलोमनकर्ता और पक्वाशय को शुद्ध करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥

इस तरह आवृतवायुकी चिकित्सा संक्षेप रीति से वर्णन की गई है, इनमें वैद्य अपनी बुद्धि से भी अन्य औषधों का प्रयोग करे । पित्त और कफावृतवायुकी चिकित्सा ॥  
पित्तावृते तु पित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः  
कफावृते कफघ्नैस्तु मारुतस्यानुलोमनैः ॥

अर्थ—पित्तावृतवायु में पित्तनाशक और वायुके अविरोधी चिकित्सा करे । कफावृत वायु में कफनाशक और वायुका अनुलोमन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये ॥

लोकेशास्वर्कसोमानां दुर्विज्ञेयायथा गतिः  
तथा शरीरे वायुस्पापित्तस्य च कफस्य च ॥  
संयद्वृद्धिं समत्वं वा गैवातरणं भिषक् ॥

विज्ञाय पवनानां गतिं समस्तं च ॥

अर्थ.... संसार में जिस तरह पवन, सूर्य और चन्द्रमा की गति समस्त में नहीं आती है उसी तरह देह में वात, पित्त और कफ की गति समस्त में नहीं आती है । जो वैद्य वातादिककी क्षय, वृद्धि, समता और आवरण को जानकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है वह घबडाता नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षेप वर्णन ।

पञ्चात्मनः स्थानवशाच्छरीरे स्थाना-



निकर्माणिचदेहधातोः ॥ प्रकोपेहतुः कुपित  
श्चरोगान् ॥ स्थानेषु चान्येषु वृत्तश्च  
प्राणेश्वरः प्राणभृतां करोति ॥ क्रियाचते  
पामखिलानिरुक्ता ॥ तान्देशसात्म्यवर्तुव  
लान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारि ॥

अर्थ—इस वातव्याधि चिकित्सित अ-  
ध्याय में पंचात्मक वायु के शरीर में भिन्न  
भिन्न स्थानादि, देह धातु के कर्म, प्रकोप  
के हेतु, कुपित होकर अपने स्थान में वा  
अन्य स्थानों में जिन २ रोगों को करती  
हैं, पृथक् पृथक् वायु के आवरणों के लक्षण  
और उनकी सब क्रिया वर्णन की गई हैं  
वैद्यको उचित है कि इन सब बातों को देख  
कर तथा देश, सात्म्य ऋतु, और बलको  
देखकर औपध करने में प्रवृत्त होवै ॥

इति श्रीभाषाटीकावितायां अग्निवेश विरचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-

त्सितस्थानेषां वातव्यधिचिकित्सितानां

माष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—॥—

### एकोनविंशोऽध्यायः

अथातो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्या-  
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
किं अथ हम वातरक्त नामक चिकित्सित  
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्ये पुनर्वसुम् ॥

पृष्ठवान् गुरुमेकाग्रमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥

अग्निमारुततुल्यस्य संसर्गस्यानिलासृजोः

हेतुलक्षणभैषज्यान् यथास्मै गुरवतीत् ॥

अर्थ—अथ गुरु पुनर्वसुजी अग्निहोत्र-  
कर्म से निश्चित होकर एकप्रचित्त से  
ऋषियों के बीच में अग्निकी शिखा के स-  
मान विराजित हो रहे थे तबही अग्निवेश  
ने पूछा कि हे गुरुदेव! अग्नि और वायुके  
समान मिले हुए वातरक्त के हेतु, लक्षण  
और चिकित्सा का उपदेश कीजिये, यह  
सुनकर गुरुजीने उस से कहा ॥

वातरक्त के हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोज-  
नैः । क्षिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्या  
कमलकैः ॥ कुलत्थमापनिष्पावशाका  
दिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशु-  
क्रतक्रसुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोध  
दिवास्वप्नमजागरैः ॥ मायशः सुकुमाराणां  
पिष्टान्नरसमोजिनाम् ॥ अचक्रमणशी-  
लानां कुप्यते वातशोणितम् ॥ अभिघाता  
दशुद्ध्यां च मृदुशोणिते वृणाम् ॥ कपाय  
कटुतिक्ताल्परुक्षाहारादभोजनात् । ह-  
योप्रायानयानाम्बुकीडाप्लवनलघ्वनात् ।  
एणेचात्यध्ववैषम्याद्वचवापाद्देगानिग्रहात्  
वायुधिवृद्धो वृद्धेन रक्तेनाचारितः पथि ।  
क्रुद्धस्तद्वृष्येद्रक्तं तज्ज्वेयं वातशोणितम् ।  
खुडं वातघलासारूपमादधरोगंच नामभिः

अर्थ.... नमकीन, खट्टे, कड़वे, खारे, स्नि-  
ग्ध, उष्ण और दुष्पाच्य द्रव्यों के अत्यन्त  
सेवन से गीले वा सूखे औदकमांस और  
आनूपमांस के अत्यन्त सेवन से, पिण्याक  
वा मूली के अत्यन्त सेवन से, कुलधी,  
उरद, चौलाआदि शाक तथा पल्ल और

ईश के अत्यन्त सेवन से; दही, कांजी, सौंधीर, गुक्त, तक्र, सुरा और आसव के अत्यन्त सेवन से; विरुद्धभोजन, अध्यशन, क्रोध, दिवास्वप्न और अत्यन्त जागरण से; प्रायःसुकुमार और पिष्टान्न रस भोजन करनेवालों के ( प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्याहारविहारिणाम् ), तथा जो डोलेते फिरते नहीं है एकही जगह बैठे रहते हैं उन के वातरक्त कुपित होता है तथा चोट लगने से इकट्ठे हुए मल को न निकालने से रक्त दूषित होजाता है । कपाय, कटु, तिक्त, अल्प और रुखा आहार करने से वा विना भोजन करने से, अधवा घोड़े वा ऊंटकी सवारीपर चढ़कर जाने से, वा जलक्रीड़ा, प्लवन और लंघन करने से वा गरमी के समय अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने से, व्यायाम से, वेगनिग्रह से बढी हुई वायुमार्ग में बढेहुए रक्त से रुककर कुपित होजाती है और रक्तको दूषित करदेती है इसेही वातरक्त कहते हैं । इसके पर्यावाची नाम खुडवात, वातवटास और आड्यवात भी हैं ॥

### वातरक्त के स्थान ॥

स्थानंकरौपादावंगुल्यःपर्वसन्धयः॥  
कृत्वादौहस्तपोदतुमूलंदेहोविधानाति ॥

अर्थ—वातरक्त के स्थान दोनों हाथ दोनोंपांव, अंगुलियां और पर्वसंधियां हैं ॥ यह प्रथम हाथ और पांव में उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण देह में फैलजाता है ॥

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छन्निशिराय नैः । पर्वस्वभिहतंक्षुब्धवक्रत्वादवतिष्ठते ॥

( १४३ )

स्थितं पिचादिसंस्पृतास्ताःसृजतिवेदनाः  
करोतिदुःखंतेप्वेवतम्मात्रायेणसन्धिषु॥

अर्थ—वायुकी सूक्ष्मता और रक्तकी सर्वत्र गमन करनेवाली शक्ति से कुपित हुए वातरक्त सम्पूर्ण देह में गमन करते हैं, पन्तु जत्र पीरुओं में जाते हैं तब उनकी टेढाई के कारण वहीं रुक कर ठहर जाते हैं, तब पिचादि दोषों से मिलकर बैसी २० ही वेदना उत्पन्न करते हैं और इसीलिये उनही संधियों में अत्यन्त पीडा होती है ।

### वातरक्त के पूर्वरूप ।

स्वेदोऽस्यर्थनवाकाश्यंस्पर्शाद्भ्रंशंस्वेदोऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनांपिडकोद्भयः ॥ जानुजंघोरुक्त्र्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदःस्फुरणभेदोगुरुत्वंमुक्तिरेवच ॥ कण्ठःसंधिषुलभूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत् । वैयर्थ्यमण्डलोत्पत्तिर्वात्तामृक्पूर्वलक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त पसीने आना वा सर्वथा न आना, कृशता, स्पर्श का ज्ञान, न होना क्षत में अत्यन्त वेदना होना, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अंगसाद, पुन्सियोंका होना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा, हाथ, पांव तथा देहकी संधियों में सूचभेदन के समान पीडा होना, स्फुरण, भेद, भारापन, सुप्ति, खुजली संधियों में वेदना हो होकर मिटजाना विवर्णता चकत्तों का होना । ये सब वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥

### वातरक्त के भेद ॥

उत्तानमथगम्भीरंद्विविधं तत्प्रचक्षते ॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ।  
 अर्थ—वातरक्त दो प्रकार का होता है,  
 यथा—उत्तान और गम्भीर । जो त्वचा और  
 मांस में आश्रित होता है वह उत्तान है  
 और जो मांससे भी भीतर का आश्रय ले-  
 कर उत्पन्न होता है, वह गम्भीर है ॥

उत्तान वातरक्तके लक्षण ।

कण्डूदाहर्गुगायासतोदस्फुरणधूपनैः ॥  
 अन्विताश्यावरक्तात्त्वग्वाहोत्तानात्तथेष्प्यते ।  
 अर्थ—जिसमें खुजली, दाह, वेदना, तोद  
 स्फुरण और जलनहो और चमड़ा श्याव-  
 वर्ण वातामूर्ण होजाय उसे उत्तान वात-  
 रक्त कहते हैं ।

गम्भीर वातरक्तके लक्षण ।

गम्भीरः श्वयथुः स्तब्धः कठिनोऽन्तर्भूता  
 तिमान् । श्यामस्तान्त्रोऽथवादाह तोदस्फु-  
 रणपाकवान् ॥

अर्थ—जिसमें सूजन, स्तब्धता, कठोरता  
 हो, जिसमें भीतर अत्यन्त वेदना हो, जिस  
 में त्वचा श्यामवर्ण या ताम्रवर्ण होजाय,  
 जिसमें दाह तोद, स्फुरण होता हो और  
 जो पाकाभि मुख हो वह गम्भीरवातरक्त है ।  
 रुग्निद्राहान्वितोऽभीक्ष्णं वायुः सन्ध्यस्थि  
 मज्जमु । छिन्दन्निचरत्यन्तर्वक्त्रिकुर्व-  
 श्वेगवान् ॥ करोति खञ्जं पंगुं वा शरीरे स-  
 र्वतश्चरन् ।

अर्थ—वेदना और दाहसे मिली हुई वा-  
 यु संधि, अस्थि और मज्जा में छेदनवत्  
 पीडा करती हुई विचरती है और अपने  
 नेत्र से डंगली आदि अंगोंको टेढ़ा करदेती

है और सम्पूर्ण शरीर में विचरती हुई  
 खञ्जता और पांगलापन भी करदेती है ।

उभयाश्रित वातरक्तके लक्षण ।

सर्वैर्लिङ्गैश्च विज्ञेयं वातासृगुभयाश्रयम् ॥  
 तत्र वातेऽधिके वास्याद्रक्तेऽपि त्रकफेऽपि वा  
 संस्पृष्टेषु समस्तेषु यच्च तच्छृणुलक्षणम् ॥

अर्थ—जिसमें उक्त दोनों प्रकार के वात  
 रक्त के मिले हुए लक्षण दीख पड़ते हैं वह  
 उभयाश्रित वातरक्त है । इनमें से दोनों  
 प्रकार का वातरक्त यातधिक, रक्ताधिक,  
 पित्ताधिक वा कफाधिक होता है । अथवा  
 दो दो दोषों से मिला हुआ वा सय दोषोंसे  
 मिला हुआ भी होता है अब इसके पृथक्  
 पृथक् लक्षण सुनो ।

वाताधिक वातरक्तके लक्षण ।

विशेषतः शिरायास शूलस्फुरणतोदनम् ।  
 शोथस्य कार्ष्ण्यरूक्षत्वश्यावताष्टिहानयः  
 धमन्यंगुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽग्रहोऽतिरु-  
 क्कुञ्चनस्तम्भने शीतप्रद्वेषचानिलेऽधिके ॥

अर्थ—वाताधिक्य वातरक्त में विशेष  
 करके शिरा में यातना, शूल, स्फुरण, तोद,  
 शोथ में कालापन, रूक्षता, श्यावता, कभी  
 घटाव, कभी घटाव, धमनी, उंगली और  
 संधियों में संकोच, अंगग्रह, अत्यन्त वेदना,  
 कुंचन, स्तम्भन और शीतल वस्तु में अनि-  
 च्छा ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण ॥

श्वयथुर्भृशरुकोदस्ताग्रश्चिमिचिमायते ।  
 श्लिग्धरुद्वैः शर्मनैति कण्डूवलेदान्विताऽ

सृजि ॥

अर्थ....रक्ताधिक वातरक्त में सूजना, अत्यन्त वेदना, त्वचा का ताम्रवर्ण और त्रिमिचिमापन होता है । किसी प्रकार की स्निग्ध वा रुक्ष औषधियों से शान्ति नहीं होती, इस में खुजली और छेदभी होताहै।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण ।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृणामदोभ्रमः । रागः पाकश्चभेदश्चशोफश्चोक्तान पैत्तिके ॥

अर्थ....पित्ताधिक वातरक्त में दाह, वेदना, मूर्च्छा स्वेद, तृणा, मद और भ्रम होता है इस में राग, पाक, शोफ और भेद भी होता है ।

कफाधिकवातरक्तके लक्षण ।

स्तैमित्यगौरवंस्नेहःसुप्तिमन्दचरुकफे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में स्तिमिता, भारापन, स्निग्धता, सुन्नता, अरुचि और मन्द वेदना होती है ॥

संस्पृष्टवातरक्तके लक्षण ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वत्रिदोषजम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेतु और लक्षणों के संसर्ग से द्विदोषज वा त्रिदोषज वातरक्त होता है अर्थात् जिस में दो दोषों के हेतु और लक्षण मिले हुए पाये जाते हैं उसे द्विदोषज कहते हैं और जिसमें सब दोषों के मिलित लक्षण होते हैं वह सर्व दोषज होता है ॥

वातरक्तकोसाध्यासाध्यत्व ।

एकदोषानुगंसाध्यनवंपाप्यद्विदोषजम् ॥

त्रिदोषजमसाध्यवायस्यचस्युरूपद्रवः ॥

अर्थ—जो वातरक्त एकदोषसे युक्त और

नवीन होता है वह साध्य है, जो दो दोषों से उत्पन्न है वह याप्य है जो तीन दोषों से उत्पन्न है अथवा उपद्रवों से युक्त है वह असाध्य होता है ॥

सोपद्रववातरक्त के लक्षण ॥

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः

मूर्च्छाचमदरुद्धर्दिज्वरमोहमवेपकाः ॥

हिकापांडुत्ववीसर्पपाकतोदभ्रमवलमाः ।

अंगुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहावुदाः ॥

एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यमोहेनैकेनवापिगत् । सं-

मस्राविविवर्णञ्चस्तब्धमर्बुदकश्चयत् ॥

वर्जयेद्यःसंसर्गोचकरमिन्द्रियतापनम् ।

अर्थ—नाद न आना, अरुचि, श्वास, मांस में गलायट, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मद, वेदना, वमन, ज्वर, मोह, कम्पन, हिचकी पाण्डुरोग ( पांगुल्यमपिपाठः ), विसर्प, पाक, तोद भ्रम, क्लान्ति अंगुलियों में टेढ़ापन, फोड़े, दाह, मर्मग्रह, अर्बुद, इनसब उपद्रवों के होने पर वातरक्त वर्जनीय होता है अथवा इन में से कोई उपद्रव न हो और केवल एक मोहही हो तो भी वर्जनीय है । जिस वातरक्त में स्त्राव होता हो, विवर्णता हो, स्तब्धता हो, जिसमें अर्बुद संकोचता और इन्द्रियताप हो वह भी वर्जनीय है ॥

सुचिकित्स्य वातरक्त के लक्षण ।

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यानिरुपद्रवम् ॥

अर्थ....जिस में उक्त सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ नहीं होते हैं वह याप्य है और जिस

में एक भी उपद्रव नहीं होता वह साध्य होता है ॥

वायुप्रकोप में चिकित्सा ।

रक्तमार्गनिहत्याग्निशिरासन्धिषुमारुतः  
निवेश्यान्योन्यभावार्यवेदनाभिर्हरेदस्-  
न् ॥ तत्रमुञ्चेदसृक्मृज्जलौकःमूच्यला-  
घुभिः । प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोषं-  
यथावलम् ॥ रुदाहशूलतोदात्तादसृक्-  
स्ताव्यंजलौकसा । गृह्णैस्तम्भैर्हरेत्सृप्ति-  
कण्डूचिमिचिमायनात् ॥ देशदेशेप्रज-  
न्ताव्यंशिराभिःप्रच्छनेनवा । अङ्गेम्ला-  
नेनतुस्ताव्यंरुक्षेवातोत्तरञ्चयत् ॥

अर्थ—वायु हाथ पावों की संधियों में प्रवेश करके रक्तवाही मार्गों को रोक दे-  
ती है, तब रक्त और वायु परस्पर एक दू-  
सरे को रोकते हुए प्राणों को क्षीप्त हरले-  
ते हैं, ऐसे स्थल में सींग, जोक, सूची, अ-  
लाबू, पछना वा शिराव्यध ( फस्त ) का  
मथावल प्रयोग कर के रुधिरको निकलवा  
ढाले । वातरक्त में जो वेदना, दाह, शूल  
और तोद हो तो जोक लगाकर रुधिर नि-  
काळ ढाले । जो सृप्ति, कण्डूपन और चि-  
मचिमाहट हो तो सींगी लगाकर रुधिर नि-  
काळें । जो वातरक्त एकस्थान से दूसरे स्था-  
नपर सरकजाता हो तो शिराव्यध वा  
पछना द्वारा रुधिर निकाले परन्तु जो देह  
में किसी प्रकार का क्लेश और म्लानता हो  
वां रुक्ष पुरुष के वाताधिक्य वातरक्त में  
रुधिर निकालने का निषेध है ॥

गम्भीरंश्चयथुंस्तम्भंरुक्मंस्नायुशिरामया-  
न् । ग्लानिवास्पत्तसंज्ञोचांकुर्याद्वायुर-

मृक्क्षयात् ॥ खञ्जादीन्वातरोगांश्च-  
मृत्युवात्यपसेचितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमा-

णेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त क्षीण होजाने से  
गंभीर सूजन, स्तम्भता, कम्पन, स्नायुरोग  
शिरारोग, ग्लानि और संकोच उत्पन्न होते  
हैं तथा अत्यन्त रक्तमोक्षण से खजादिक  
वातरोग उत्पन्न होकर मृत्यु भी होजाती है  
इसी हेतु से प्रथम स्नेहन करके प्रमाण से  
रक्तमोक्षण करे ॥

वातरक्त में चिकित्साक्रम ।

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः॥  
रुक्षैर्वामृदुभिःशस्तंससकृद्वस्तिकर्मच ॥  
सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदाहि-  
नः॥वातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषंतुनिबोधये ॥

अर्थ....वातरक्त में प्रथम स्नेहन कराके  
स्नेहयुक्त विरेचन देवै अथवा रुक्ष वा मृदु  
विरेचन देवै और वस्तिकर्म भी बार बार  
करता रहै । वातरक्त में प्रथम प्रायःअविदाही  
परिपेक, अभ्यंग प्रलेप, अन्न और स्नेहका  
प्रयोग करना चाहिये । अब जो विशेषता  
है उसका वर्णन किया जाता है ।

वाह्यवात रक्त में कर्म ।

वाह्यपालेपनाभ्यङ्गपरिपेकोपनाहनैः ॥

अर्थ—वाह्यवात रक्तमें आलेपन, अभ्यंग  
परिपेक और उपनाहन करना चाहिये ।

गंभीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥

अर्थ—गंभीर वातरक्त में विरेचन, आस्था-  
पन और स्नेहपान करना चाहिये ।

वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा ।  
सर्पिस्तैलबसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्ति-  
भिः । सुखोष्णरूपनाहंश्चवातोत्तरमु-  
पाचरेत् ॥

अर्थ....वातोत्तर वातरक्त में घृत, तैल,  
बसा, मज्जा, पान, अभ्यञ्जन, वस्ति और सु-  
खोष्ण उपनाह का प्रयोग करना चाहिये ।  
रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।  
विरेचनैर्घृतक्षीरपानैःसकैःसवास्तिभिः ।  
शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोत्तरंजयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में विरेचन  
घृतपान, क्षीरपान परिपेक, वस्तिकर्म और  
शीतल निर्वापण करना उचित है ॥

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।  
वमनमृदुनात्यर्थस्नेहमेकादिलंघनम् । को-  
णलेपाश्चक्षुस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफोत्तर वातरक्त में अत्यन्त मृदु  
वमन, स्नेहमेक, लंघन और सुहाता हुआ  
गरम लेप हित है ।

कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा ।  
कफवातोत्तरेशीतैःप्रलिप्तेवातशोणिते ।  
विदाहशोफरुक्कण्डूविट्टादिःस्तम्भनाद्भ-  
वेत् ॥

अर्थ—कफवातोत्तर वातरक्त में शीतल  
लेप करनेसे स्तम्भन होने के कारण विदाह,  
सूजन, वेदना और खुजली की वृद्धि होती है ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में कर्म ।  
पित्तरक्तोत्तरेदाहःक्लेदोऽवदरणंभवेत् ।  
उष्णैस्तस्माद्भिपद्मोपबलबुद्ध्याचरेत्कि-  
याम् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में उष्ण  
उपचार करने से दाह, क्लेद और अवदरण  
होता है इस से इस में दोष का बल देख  
कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातरक्त में वर्जितकर्म ।  
दिवास्वप्नससन्तापव्यायाममैथुनतथा ।  
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लचवर्जयेत् ॥

अर्थ—दिवानिद्रा, संताप, व्यायाम, मैथुन  
तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन  
और खटे पदार्थों का सेवन उचित नहीं है ॥

वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य ।  
पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिपाटिकाः ।  
भोजनार्थेरसायैवाविष्किरमनुदाहिताः ।

आढक्याश्चण्णकामुद्गामसूराःसमकुष्ठकाः  
यूपार्थेवहुसर्पिष्काःप्रशस्तावातशोणिते ॥

अर्थ—पुराने जौ, गेहूँ, नीवार, शाली-  
चावल, साठीचावल भोजन में हित हैं ।  
विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हि-  
त है । अड़हर, चना, मूँग, मसूर, मोठ  
इनका बहुत धी डालाहुआ मूय वातरक्त  
में हित है ।

सुनिपण्णकवेद्याप्रकाकमाचीशतावरीः ।  
वास्तुकोपोदकाशाकंसाकंसावर्चलंतया  
घृतमांसरसैर्भृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत् ॥

व्यञ्जनार्थतथागव्यमादिपाजंयदोद्दिनम्

अर्थ—जो वातरक्तवाटा शाकको अ-  
धिक चाहता हो और वह उसके अनुकूल  
मी हो तो चौरतिया, बैनकी कोंपड़, मकोद,  
सितावर, बथुआ, पोई, हट्टल इनके मांस  
को धी में भूनकर मांसरस के साथ लेवन

करै तथा इस रोगमें गौ, भैंस और बकरी का दूध हित है ।

इतिसंक्षेपतः भोक्तृवातरक्तचिकित्सितम् ।  
एतदेव पुनः सर्वव्यासतः संप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—यह वातरक्त की संक्षेपसे चिकित्सा कहोगई है, अब फिर इस सबको विस्तारपूर्वक कहते हैं ।

श्रावण्यादि घृत ।

श्रावणी क्षीरकाकोली क्षीरिका जीवकैः समैः  
सिद्धं सर्पभक्षैः सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ।

अर्थ—श्रावणी, क्षीरकाकोली, क्षीरिका, जीवक और ऋषभक इन सब को समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करे यह घृत वातरक्त नाशक है ।

बलादि घृत ।

बलामतिबलामेदां आत्मगुह्मांशतावरीम् ॥  
फाकोली क्षीरकाकोली रास्ना मृद्धिञ्च-  
पेपयेत् । घृतञ्चतुर्गुणं क्षीरतैः सिद्धं वात-  
रक्तनुत् ॥ हृत्पाण्डुरोगवर्षिकामलादा-  
हनाशनम् ।

अर्थ—बला, अतिबला, मेदा, केंच के बीज, सितावर, फाकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और मृद्धि इनके समान भाग कल्क में पूर्वोक्त क्रम से घी दूध डालकर पकावे । यह घृत वातरक्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह इन रोगों को दूर करदेता है ।

तामलव्यादि घृत ।

तामलव्यादिकाकोल्याः पिप्पली त्रायमा-

नयोः । कशेरुका कपायेण कल्कैरेभिः प-  
चेद्घृतम् ।

अर्थ—मूय्यांवला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरु इन सब के कपाय और कल्क में घृत पाक करके सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ।

पारूपकघृत ।

दत्त्वापरूपकद्राक्षाकाशमर्येश्वरसान्समान् ॥  
पृथग्विदार्याश्च रसंतथा क्षीरञ्चतु-  
र्गुणम् । एतत्प्रायोगिकं सर्पिः परूपकमि-  
ति स्मृतम् ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे यी सपैत्ति-  
के ज्वरे ।

अर्थ—कालसा, दाख, खंभारी, और ईख इन चारों का रस समान भाग विदारी का रस इन चारों के समान, इनसे चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध इन सब को पकाने से पारूपक नाम घृत बनता है इसके सेवन करने से वातरक्त, क्षतरोग, क्षीणरोग, विसर्प और पैतिक ज्वर दूर होजाते हैं ।

द्विपञ्चमूलादिघृत ।

द्विपञ्चमूलैर्याजमैरण्डं सपुनर्नवम् ॥ शु-  
क्लपुष्पीमहामेदां मापपर्णांशतावरीं । शं-  
खपुष्पीमवाकपुष्पीं रास्नामतिबलां बलाम्  
पृथग्विद्वलिकं कृत्वा जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
पादशेषे समक्षीरं धात्री क्षुच्छागलान् रसान् ॥  
घृताढकेन संयेज्य शनैर्मद्विनापचेत् ।  
कल्कानावाप्यमेदे द्वेकाशमर्यफलमुत्पलम् ॥  
त्वक्क्षीरीं पिप्पलीं द्राक्षां पञ्चबीजं पुनर्नवम्  
नागरं क्षीरकाकोलीं पिप्पलं कृत्वा द्वितीयम् ॥

वीरांशृङ्गाटकं भव्यमुखमाणं निकोचकम् ।  
वदरोक्षोटवाताममुञ्जाताभिपुकांस्तथा ॥  
एतैर्वृतादकेसिद्धेत्तौद्रशीतेमदापयेत् । स-  
म्यक्सिद्धश्चिज्ञापस्वनुगुप्तनिघापयेत् ॥  
रक्षाकर्मकृतश्चाक्षःसेवेताक्षमतःसदा । पा-  
ण्डुरोगज्वरं ह्रिक्कांस्वरभेदं भगन्दरम् ॥  
पार्श्वशूलक्षयं कांस्यग्रीहानं वातशोणितम् ।  
क्षतशोषमपस्मारमश्मरीं शर्करान्तथा ॥  
सर्वाङ्गैर्कांगरोगांश्च मूत्रसङ्गांश्च नाशयेत् ।  
घलवर्णकरं धन्यं घलीपलितनाशनम् ॥  
जीवनीपमिदं सर्पिर्वृष्यं बन्ध्यासुतप्रदम् ।

अर्थ—दशमूल, सफेद सांठ, अरंडकी जड़, डालसांठ, मुद्गपर्णी, महामेदा, माप-  
पर्णी, क्षतमूली, शंखपुष्पी, सोंफ, रास्ना, अतिवला और घला इन सबको दो दो पल लेकर कूट डाले और एक द्रोण जल में भरकर पकावै, जब जलते २ चौथाई रह जाय तब उतारकर छान लैवै । फिर उस काथ के समानही दूध, आंवले का रस, ईखका रस और बकरे का मांसरस तथा एक आठक घृत इन सबको मिलाकर मन्दी मन्दी आग से पकावै । पक्ते समय इसमें नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डाल देवै, यथा—मेदा, महामेदा, गम्भारीफल, नीलो-  
फर, वंशलोचन, पीपल, दाख कमलगट्टा की मिमी, सांठ, सोंठ, क्षीरकाकोली, पद्माख दोनों कोटगी, काकोली, सिंघाड़ा, भव्य, उरुमाण, निकोचक, बेर, अखरोट, बादाम, मुंजात और पिस्ता, इन सबका कल्क डाल द्रव्यै, जब पकजाय तब घृत के टंडा होने

पर उस में शहत डालकर किसी घड़े में भरकर छिपाकर रखदेवै । रक्षाकर्म करने के पश्चात् इस घृत में से प्रतिदिन दो तोले सेवन करै तौ पांडुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षयी, खांसी ग्रीहा, वातरक्त, क्षतशोष, अपस्मार, अदमरी, शर्करा, सर्वांगरोग, एकांगरोग और मूत्रसंग दूर होजाते हैं । इसके सेवनसे घल और वर्ण बढ़ता है । घली और पलित दूर होजाते हैं । यह जीवनीप, वृष्य और धन्य है, इसके सेवन करने से बन्ध्या स्त्री के भी पुत्रोत्पत्ति होजाती है ॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षामधूकतोषाभ्यां सिद्धं वाससितोष-  
लम् ॥

अर्थ—दाख और मुलहटी के काथ में सिद्ध किया हुआ घृत मिश्री मिलाकर सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है ।

गुह्युच्यदिघृत ॥

पिवेदघृतं तथा क्षीरं गुह्युचीस्वरसेधृतम् ॥

अर्थ—गिलोयके रसमें दूध और घी पकाकर के सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ॥

जीवकादिघृत ।

जीवकर्मभकौ मेदामृष्यमोकांशतावरीम् ।  
मधुकं मधुपर्णीश्च काकोलीद्वयमेव च । मुद्ग-  
मापाख्यपर्णिन्यौ दशमूलं पुनर्नवे ॥ घली  
मृताविदार्याश्च साश्च मन्धाश्च भेदकाः ।  
एपां कपायकल्काभ्यां सर्पिस्तैलञ्च साध-  
येत् ॥

अर्थ—जीवक, मधुपर्ण, मेदा, मूष्य के



भीरानुपानं त्रिवृताचूर्णद्राक्षारसेन वा ।  
काश्मर्यत्रिवृताचूर्णद्राक्षारसेन वा ।  
काश्मर्यत्रिवृताचूर्णद्राक्षारसपूरुषकाम्  
शृणां पिबेद्विरेकायलवणचौरसंयुताम् ॥  
त्रिफलायाः कपायं वापिबेत्संयुतम्  
धात्रीहरिद्रामुस्तानां कपायं वा कफाधिके ॥

अर्थ—हरड़ के काथको घी में लोंककर  
बिरेचन के लिये पीये, ऊपर से दुग्धपान  
करे अथवा दाख के रस के साथ निसोथ  
का चूर्ण पान करे। अथवा खंभारी, निसोथ  
और दाख के चूर्ण को दाख के रसके साथ  
पीये अथवा खंभारी, निसोथ, दाख, त्रिफला  
और फालसा इन के काथ में संधानमक  
और शहत मिलाकर बिरेचन के लिये पीये।  
अथवा त्रिफलाके क्वाथ में शहत भिड़ाकर  
पीये । तथा कफाधिक वातरक्त में आंवला,  
हलदी और मोधा इनका क्वाथ पीये ।  
योगैश्च कल्पाविहितैरसकृत्तं विशोषयेत् ।  
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वा वातं मलाहृतम् ॥  
निहरेदामलंतस्य सपृतैः क्षीरवस्तिभिः ।  
न हि वस्ति समं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥

अर्थ—जो वात मूत्र से आवृत हो तो  
कल्पस्थानोक्त मृदु योगों में स्नेह मिलाकर  
देवे अथवा घृत मिलाकर क्षीर वस्ति द्वारा  
मूत्र को निकाले । वातरक्त में वस्तिके समान  
और कोई चिकित्सा नहीं है ।

वस्तिवक्ष्णपाश्वोरुपर्वास्थिजठरादिषु ।  
उदावर्तचक्षस्यन्ते निरुशः शानुवासानाः ॥  
दद्यात्तैलानि चेमानि वस्तिकर्माणि बुद्धि-  
मान् । न स्याभ्यञ्जनसंकेचदाहशूलोप-  
शान्तय ॥

अर्थ—वातरक्त में रोगी की वस्ति,  
वक्ष्ण, पसली, ऊरु, पर्व, अस्थि और जठर  
के शूलों में वा उदावर्त में निरुहण वस्ति  
देकर अनुवासन वस्ति देवे ।

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि वातरक्त  
के दाह और शूल की शान्ति के निमित्त  
वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यञ्जन और परिवेक में  
नीचे लिखे हुए तेल देवे ॥

यष्ट्यादि तैल ।

मधुपट्यास्तुलायास्तुकपायेपादशेषिते ।  
तैलाढकंसमक्षीरं पचेत्कलकैः पलोन्मितैः ।  
शतपुष्पावरीमूर्वापयस्याशुरुचन्दनैः ॥  
स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥  
काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्युद्धिपत्र-  
कैः । जीवन्तीजीवकर्पभस्वकूपत्रनखवा-  
लकैः ॥ मण्डरीकमञ्जिष्ठाशारिबेन्द्रीवि-  
तुन्नकैः । चतुःप्रयोगाचक्षुन्ति तैलं मारुत-  
शोणितम् । सोपद्रवंसाशूलं सर्वगात्रा-  
नुगतं ॥ वातामृक्पित्तदाहार्तिज्वर-  
घ्नं यलवर्दनम् ॥

अर्थ—एक तुला मुलहठी को अठगुने  
जलमें चढ़ाकर क्वाथ करे, जब चौथाई शेष  
रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर उ-  
स में एक आड़क तेल और उतना दूध  
मिलेवे और एक एक पल नीचे लिखे हुए  
द्रव्यों का कल्क मिलाकर पाककरे । द्रव्य,  
यथा—सौंफ, सितार, मरोड़फली, विदारी-  
कन्द, अगर, चन्दन, शालिपर्णी, हंसपदी,  
जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली-  
क्षीरकाकोली, भूआंवला, ऋद्धि, पत्राख,

जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, तेज-  
पात, नखी, नेत्रवाला, पुंडरिया, मजीठ, सा-  
रिवा, इन्द्रायण की जड़ और धनियां । ये  
द्रव्य डालें । इस तेल का नस्य, अभ्यंग,  
वस्ति और पान इन चार रीति से प्रयोग  
करने पर सर्प देहानुमामी सोपद्रव वातरक्त  
अंगशूल, पित्त, दाह, और यातना दूर हो-  
जाती है, ज्वर भी जाता रहता है । यह  
बल को बढ़ानेवाला है ॥

**सुकुमारकतैल ॥**

मधुकस्यशतद्राक्षाखर्जूरान्पिपरूपकम् ॥  
मधुकौदन्पाकयौचप्रस्थंमुष्णातकस्यच ॥  
काश्मर्यादकमित्येतच्चतुर्द्रोणैःपचेदयम्  
शेषेऽष्टभागेपूतचतस्मिन्तैलादकंपचेत् ॥  
तथामलकाश्मर्याविदारीक्षुरसैःसमैः ।  
चतुर्द्रोणैर्नपयसाकल्कंदत्वापलोन्मितम् ॥  
कदम्बामलकाक्षौटापद्मबीजकक्षेरुकम् ॥  
शृङ्गादकंशृङ्गेवरलवणपिप्पलीसिताम् ॥  
जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेनसंसृजेत् ॥  
नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोज-  
येत् । वातव्याधिपुसर्वेषुमन्यास्तम्भेहनुग्रहे  
सर्वाङ्गकांगवातेचक्षतक्षीणक्षतज्वरे ॥

सुकुमारकमित्येतत्वातात्प्रामयनाशनम् ॥  
स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥

अर्थ—मुहलटी सौ पल, दाख एक प्रस्थ  
खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुआ  
एक प्रस्थ, खरैटी एक प्रस्थ, मूज एक  
प्रस्थ और खंभारी एक आठक इन सबको  
चार द्रोण जल में पकावें, जब जलते जलते  
आठवां भाग रह जाय तब उतार कर छान

ले फिर उस घाथ में आंवलेका रस, खंभारी  
का रस विदारीकन्द का रस, ईख का रस  
समान भाग मिलावें और चार द्रोण दूध  
मिलाकर एक आठक तेल को इन सब के  
साथ पकावें और नाँचे लिखे हुए द्रव्यों का  
एक एक पल कल्का भी इस में डाल दें,  
यथा कदंबकी छाल, आंशला, अखरोट,  
कमलगद्दा के बीज, कसेरू, सिंघाडा, अदरक,  
नमक, पीपल और चीनी तथा जीवनीय  
गणकी औषध इन सबका कल्क उस में  
डाल दें और पकने पर उतारकर रखलेवै  
जब ठंडा होजाय तब उस में एक प्रस्थ  
शहत मिलावें । इसका नस्य अभ्यंजन पान  
और वस्ति चार प्रकार से प्रयोग करें ॥  
इसके सेवन से सब प्रकारकी वातव्याधि  
मन्यास्तम्भ, हनुप्रह, सर्वांगवात, एकांग-  
वात, क्षतक्षीण, क्षतज्वर, तथा वातरक्त सं-  
बंधी अन्य उपद्रव दूर होजाते हैं । इसका  
नाम सुकुमारक तैल है ॥ यह तैल स्थिर-  
कर्त्ता, वर्णोत्तेजक, आरोग्यदायक, बलवर्द्धक  
और पुष्टिकारक होता है ।

**अमृताख्य तैल ॥**

गुडूचीमधुकंक्ष्वपञ्चमूलं पुनर्ज्वाम् । रा-  
स्नामैरण्डमूलश्चजीवनीयानिलाभतः ॥  
पलानांशतर्कैर्भागैर्वलापञ्चशतंतथा ॥  
कोलंबिल्वंयवान्मापान्कुलत्थांश्चादको-  
न्मितान् ॥ काश्मर्याणांसुशुष्काणांद्रोणं  
द्रोणशतेऽम्भसः । साधयेज्जर्जरंधौतंच  
तुर्द्रोणञ्चशेषयेत् ॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनद-  
त्वापञ्चगुणंपयः ॥ पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चै-

वचन्दनोशीरकेसरम् ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठा  
नितगरंमधुयाष्टिकाम् । मज्जिष्ठाष्टपलञ्चै  
वत्सिद्धं सार्धयोगिकम् ॥ वातरक्तेश  
तेक्ष्णीभारतक्षीणरससि । वेदनाशि  
सभग्नानां सर्वाङ्गीकांगरोमिणाम् । योनि  
दोषमपस्मारमुन्मादं खज्जपंगुताम् । हन्या  
त्पुंसवनं चैतच्चैलाग्न्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय, मुलहठी, लघुपंचमूल, साठ,  
रास्ता, एरंडकी जड़ और जीवनीय गणकी  
जो जो औषध मिल सकें उनको पृथक्  
पृथक् सौ पल लें वै खैरटी पांच सौ पल,  
सूखा बेर, कच्चा बिल्व, जौ, उरद और  
कुलथी प्रत्येक एक एक आठक, खंभारी  
के फल सूखे हुए एक द्रोण, इन सब को  
अच्छी तरह से कूटकर धोकर सौ द्रोण  
जल में पकावै जब चार द्रोण शेष रहजाय  
तब उतारकर छान ले । इस क्वाथ में एक  
द्रोण तेल और पचगुना दूध डालकर पका-  
वै और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तीन  
तीन पल उस में डाल देवै, द्रव्य, यथाः—  
चन्दन, खस, केसर तेजपात, इलायची,  
आगर, कूठ, तगर, मुलहठी ये सब तीन तीन  
पल, मजीठ आठ पल । इस तरह इस तेल  
को सिद्ध करके सेवन करने से वातरक्त  
क्षत, क्षीण, अत्यन्त वोझ ढोने से उत्पन्न  
हुए रोग, क्षीणवीर्यता, वेदना, आक्षेपक,  
भग्नता, सर्वांग रोग, एकांगरोग, योनिदोष  
अपस्मार, उन्माद, खंजता और पंगुता दूर  
होजाते हैं । यह अमृताह्वय तेल, पुंसवन  
उत्कृष्ट और अमृतके समान गुणकर्त्ता है ॥

महापद्म तैल ।

पद्मवेतसयष्ट्याहफेनिलापद्मकोत्पलैः ।  
पृथक्पञ्चपलैर्दध्मवलाचन्दनार्कशुक्लैः ॥  
जलेभृतैः पचेत्तैलप्रस्थं सौवीरसम्मितम् ।  
लोध्रपद्मोचरोशीरजीवकपर्पभकेसरैः ॥  
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेसरपत्रकैः । मधु-  
ण्डरीककालीयमांसीमेदाम्रियंगुभिः ॥  
कुंकुमद्रिगुणैः कर्पूरमज्जिष्ठायाः पलेन च ॥  
महापद्ममिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ।

अर्थ—पद्म, के फूल, वेत, मुलहठी, फेनिला  
( बेर ) पद्माख, नीलोफर, दाम, खैरटी,  
चन्दन और ढाकके फूल प्रत्येक पांचपल  
लेकर अठगुने जल में चढ़ादे, चौथाई शेष  
रहने पर उतार कर छानले फिर इस क्वाथ  
में एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ सौवीर तथा  
नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डालकर  
पाक करले । द्रव्य, यथा—लोध, पद्माख,  
उसीर, जीवक, ऋषभक, केसर, मह्लिका  
की छाल और पत्ते, कमल केसर, तेजपात,  
पुंडरिया काठ, कालीयक, जटामांसी, मेदा  
और प्रियंगु ये सब एक एक कर्प, कुंकुम  
दो कर्प और मजीठ एक पल डालकर तेल  
पकावै । इस तेल का नाम महापद्म तैल है  
इसके सेवन से वातरक्त और ज्वर दूर  
होजाता है ॥

खुड्वाकपद्म तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधितम् ।  
स्यात्पिष्टैः सर्जमज्जिष्ठावीराकाकोलिच-  
न्दनैः । खुड्वाकपद्ममिदं तैलं रुग्णाह-  
नाशनम् ॥

अर्थ—पन्नाख, उसीर, मुलहठी और हलदी के काथ में राख, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली और चन्दन का कल्क ढाल कर तैल को पकावै यह तैल खुद्वाकपण कहता है। इसका प्रयोग करने से वातरक्त में वेदना और दाह शान्त होजाती है।

बलादि तैल ।

बलाकपायकल्काभ्यांतैलक्षीरसमन्तथा।

अर्थ—खरैटी के काथ में उसीका कल्क और समान भाग तैल और दूध चढाकर पाक करै यह पूर्ववत् गुणकर्ता है ॥

सहस्रपाक तैल ।

सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत् ॥

रसायनश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांमसादनम् ।  
जीवनंवृहणंस्वर्यशक्रासृग्दोषनाशनम् ॥

अर्थ—इस ऊपरकहे हुए तैलको सहस्र बार वा सौ बार पाककरै यह वातरक्त और वातरोगों को दूर करने वाला है। यह उत्तम रसायन और इन्द्रियों को प्रकुल्लित करने वाला है। यह जीवन, वृहण, स्वरवर्द्धक, धीर्मादोषनाशक और रक्तदोषनाशक है ॥

आरनालादि तैल ।

आरनालादकैतैलपादसर्जरसाश्रुतम् ।

प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥

अर्थ—एक आढक कांजी, कांजी से चौपाई तैल, तैल से चौथाई राख इन में बहुत सा पानी ढालकर पकावै फिर रई से मथकर शरीर पर लगावै तौ ज्वर, यातना और दाह दूर होजाता है ॥

पिंड तैल ।

समधूच्छिष्टमाज्जिष्टसर्जरसशारिवम् ।

पिण्डतैलतदभ्यंगाद्वातरक्तखजापहम् ॥

अर्थ—मोम, मजीठ, राख और शारिखा इनसे चौगुना तैल और सोलह गुना जल मिलाकर पाककरै। इस पिंड तैल के लगाने में वातरक्त की वेदना दूर होजाती है ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ॥

शतेनयष्टिमधुकांसाध्यंदशगुणंपयः । तै-  
लेचतुद्वेणेतास्मिन्मधुकस्यपलेनतु ॥ सि-  
द्धंमधुरकाश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् । म-  
धुपर्ण्यापलंपिष्ट्यातैलप्रस्थंचतुर्गुणे ॥ क्षी-  
रेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतः । सिद्धं  
देयंत्रिदोषेस्याद्वातास्रश्वासकासनुत् । ह-  
त्पाण्डुरोगयीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥

अर्थ—सौ पल मुलहठी को अठगुने जल में काथ करके चौथाई दोष रहनेपर छान ले फिर इसमें दसगुना दूध ढालकर एक प्रस्थ तैलके साथ पकावै अथवा मुलहठी और खभारी के रसके साथ पकावै यह वातरक्त नाशक है ।

एकपल गिलोयको एक प्रस्थ तैल और चौगुने दूधके साथ सिद्ध करै फिर उस तैलको सौबार मुलहठी के क्वाथ में सिद्ध करै। यह तैल त्रिदोष, वातरक्त, श्वास, खांसी, हृद्रोग, पांडुरोग, विसर्प, कामला, और दाहको दूर करता है ॥

शुद्धच्यादि तैल ॥

शुद्धचीरसदुग्धाभ्यांतैलद्राक्षारसेनवा ।  
सिद्धंमधुककाश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥

अर्थ—गिलोय के काथ और दूध के साथ, अथवा दाख के रसके साथ अथवा

मुलहठी और खंभारी के रस के साथ सिद्ध  
कियाहुआ तेल वातरक्त को दूरकरता है ।  
दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् ।  
परिपेकोऽनिलमायेतद्वत्कोष्णेनसर्पिषा ।  
स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुभिःपरिपेचयेत् ।  
स्तम्भाक्षेपकशूलार्तकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः ॥  
तद्वद्रव्याविकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रि-  
तैः । निष्कवाधैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्य  
वाभिषक् ॥ द्राक्षेक्षुरसमद्यानिदधिमस्त्व  
म्लकाञ्जकम् । सेकार्येतद्वृक्षद्रव्य-  
कैराम्बुचनस्पते ॥

अर्थ—दशमूलके साथ औटयाहुआ दूध  
तत्काल शूल नाश करनेवाला है, इसी तरह  
मुहातेहुए गरम घृतसे वाताधिक वानरक्त  
में परिपेक हित है । मधुर द्रव्यों के साथ  
सिद्ध कियेहुए ईपदुष्ण घृत तैल, वसा  
और मज्जा इन चार प्रकार के स्नेहों में  
परिपेक करने पर स्तम्भ, आक्षेपक, और  
शूलार्तता दूर होजाती है और दाह हो  
तो शीतल परिपेक हित है । इसी तरह  
से गौ भेड और बकरी के दूध के साथ  
सिद्ध कियाहुआ तेल अथवा जीवनीय  
औषधियों के काथ के साथ अथवा पंच-  
मूल के काथ के साथ औटयाहुआ तेल  
हित है । वातरक्त में परिपेक के लिये  
दाख का रस, ईख का रस, मय, दहीका  
तोड़, कांजी, तड़ुलजल शहनका जल और  
खंडका जल हित है ॥

कुमुदोत्पलपद्मार्घमणिहारैःसचन्दनैः ॥  
शीततोयानुगैर्दाहिमांशेनस्पर्शनादितम् ॥

चन्द्रपादाम्बुसंसिक्तैःशामपद्मदलच्छदे ।  
शयनेषुलिनस्पर्शशीतमाह्नयोजिते ॥  
चन्द्रनाद्रकराद्रग्यमियानार्यःमिम्यवदाः ।  
स्पर्शानुशीतमुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहंजनक्र-  
मम् ॥

अर्थ—दाहकी शान्तिके लिये कमोदनी,  
नालकमंड, पद्म से आदि लेकर अन्यकमंड  
मणियों के हार, चन्दन इनको शीतल जल  
में भिगोकर दाहवाले के छाँटे मात्ता रई या  
इनका उसे स्पर्श करवि ।

चन्द्रमाकी किरण और शीतल जल से  
संसिक्त, रेशमीशस्त्र और कमंडपत्र में ध्या-  
ष्टादित पुष्टियों के बीच में ठंडी ठंडी दवा  
चली जाती हो, शय्यामंडपर चंदनरी भी-  
गोहुई देहवाली प्रियभाषिणी श्रियोंके शीत-  
ल मुग्धावक स्पर्श से वागराक्त की दाह  
वेदना और शान्ति दूर होजाते हैं ॥

सरागमरुजेटांहरक्तंमृक्त्वामलेपयेत् ।  
मधुकायस्थसर्पासीवीरांदुम्वरनाह्नयैः ॥  
जलजगैर्वर्ण्यैर्वागुयष्ट्याहपयोधृतैः ।  
सर्पिषाजीवनीयैर्वापिष्टलोपांऽन्तिदाहजुम्  
तिलाःपियालमधुकंदिसमूलेचयेताम् ।  
सधृतःपयसापिष्टमदेहोदाहरामजुम् ॥  
प्रपुण्डरीकमक्षिष्ठादानीमधुकचन्दनैः ।  
सिताल्पलंकासचतुस्रुराशीरपार्कः ॥  
लेपांगदाह्यीसर्परागशोफनिवहर्षः ।  
पित्तरक्तोत्तरत्वेनैलेपावातोपारेष्टुम् ॥

अर्थ—वातरक्त में जो छलाई, दाह और  
वेदना हो तो रक्ता निकाल कर मुग्हादी,  
पीपल की छाल, जटामासी, क्षीरकाकोठी

गूलरकी छाठ, और हरी दूध का लेप करें  
अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुल-  
हटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये ।  
अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके  
साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो  
जाता है । तिल, पिप्पल, मुलहटी, कमलनाल  
और बेतकी जड़ इनको दूध और घी के  
साथ पीसकर लेप करें तो दाह और लड़ाई  
दूर हो जाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ,  
दाहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी  
नीलकमल, सरकंडे की जड़ सक्तू, मसूर,  
उशीर, और पद्माक्ष इनका लेप करने से  
दाह विसर्प, लड़ाई और शोक दूर हो जाते हैं ।

अब उन लेपोंका वर्णन किया जाता है जो  
यातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरामृदुगपायसः  
तिलसर्पपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥

औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।

जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहनैः ।

स्तम्भतांदरुगायासश्चोथाङ्गग्रहनाशनाः ।

जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कायसापि-

चा ॥ घृतसहवरान्मूलजीवन्तीछाग

लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्द्रष्टाः प

यसिनिर्वृताः ॥ सीरपिष्टमुगालेपमण्ड-

स्यफलानिवा । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं

तावहापनिर्देऽधिके ॥

अर्थ—यातनाशक औषधियों के साथ सि-  
द्ध किया हुआ कृसर, मृग, पायस अथवा  
तिल और सरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना  
को दूर करता है अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छी तरह  
मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जी-  
वनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार  
किया हुआ उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, या-  
तना, शोथ और अंगप्रह को दूर करता है  
अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की  
हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, स-  
हचरी की जड़ जीवन्ती और बकरी का दूध  
इनका लेप भी हितकारी है । इसी तरह घी  
में मुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर  
लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी  
तरह वाताधिक यातरक्त में शूलकी शान्ति  
के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में  
पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पि-  
सीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डकथेद्विप्रस्थिकंमधक् ।

घृततैलंयसामज्जासानूपंमृगपाक्षिणाम् ॥

कल्कायेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम्

हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताव्हायरुणच्छदान्-

विल्वमात्राप्रयत्नपुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-

येत् । मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-

श्वतारिते ॥ शूलनैपोऽर्द्धिताह्नांलेपः

सन्धिगतोऽनिले । वातरक्तेक्षुतेभग्नेखड्गे

कुब्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड़, डाली और पत्तों  
का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप  
पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और  
बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीव-  
नीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर  
कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फूल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह शूलार्द्रित अंग, संधिगत वायु, सावयुक्त वात-रक्त, भग्न, खंज और कुञ्जरोगमें हित होता है

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।  
शोफगौरवकण्डवायुकेत्वस्मिन्कफो-  
त्तरे । मूत्रक्षारसुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम्  
सिद्धंसमधुशुक्रंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे  
क्षीरस्तैलज्ञवांमूत्रजलञ्चकडुकैःशृतम् ।  
परिपेकाःमशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सू-  
जन, मारापन और खुजली आदि उपद्रव  
भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके सा-  
थ सिद्ध किये हुए घृतका परिपेक और अ-  
भ्यंग हित है । इसरोगमें पन्नाख, दालचीनी  
मुलहठी, और शारिधा तथा मधुशुक्रकेसा-  
थ सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अ-  
भ्यंगमें हित है । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रि-  
कुटा इन से औटाया हुआ जल कफप्रधान  
वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्पपनिम्बार्कहिंसाक्षीरतिलैर्हितः ।  
श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसशक्तु  
भिः ॥ द्वेहरिद्वेवचागारधूमकुण्डशतान्दि  
काः ॥ प्रलेपःशूलनुदातरक्तेवातकफोत्तरे  
तगरत्त्वक्शतान्हेलाकुण्डमुस्तंहरणुकाः ॥  
दारुव्याघ्रनखशाम्भलापिष्टवातकफार्तिनुत  
मधुशिग्रोर्हितं तद्व्रीजघान्याम्लसंयुतम्  
मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥  
त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वकूक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विटङ्गपिप्पलीमूलंलोमशंरूपक  
चवधम् । ऋद्धितामलकश्चिव्यंसमभा-  
गानिपेषयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्या  
न्हेमक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक,  
हंसि, दूध और तिल इनका लेप हित है,  
अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का ससू  
इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप  
करै । अथवा दोनों हलदी, वच, धूमसा,  
कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफो-  
त्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है ।  
अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची,  
कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख  
इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात  
कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल  
दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बाजों  
को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी  
तक लेप लगा रहने दें पीछे कांजी से धो  
डाँले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात,  
इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, त्रायं-  
विटङ्ग, पीपलामूल, जटामांसी, अद्मेकी  
छाल, ऋद्धि, भूयभांवला, और चव्य  
इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर  
इस कल्क को एक छोहेके पात्र पर लेपकर  
देवै और दुपहर के समय इसको खा लेंवै

वातरक्त में पथ्य विधि ।  
वर्जयेद्दधिभृक्लानिक्षारं चैरोधकानि च ॥  
वातासेसर्वदोषंऽपिमंतंशूलार्दितेपरम् ॥  
बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चबलाव  
लम् ॥ चिकित्सितपिदंकुर्याद्वापोहं  
विकल्पयित् ॥

गूलरकी छात्र, और हरी दूध का लेप करें  
अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुल-  
हटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये ।  
अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके  
साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो  
जाता है । तिल, पियाल, मुलहटी, कमलनाल  
और बेतकी जड़ इनको दूध और घी के  
साथ पीसकर लेप करें तो दाह और लड़ाई  
दूर होजाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ,  
दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी  
नीलकमल, सरकंडे की जड़ सक्तू, मसूर,  
उशीर, और पषाण इनका लेप करने से  
दाह विसर्प, लड़ाई और शोफ दूर होजाते हैं ।

अब उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो  
वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नःसाधितःस्निग्धःकृसराशुद्गपायसः  
तिलसर्पपपिष्टाश्वाप्सुपनाहारुजापहाः ॥  
औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।  
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरूपनाहनैः ।  
स्तम्भतादरुगायासशोथान्नग्रहनांशनाः ।  
जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि-  
वा ॥ घृतसहचरान्मूलजीवन्तीछाग  
लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः प  
यसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुगालेपमरण्ड-  
स्वफलानिवा । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं  
ताव्हामनित्रेऽधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियों के साथ सि-  
द्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, पायस अथवा  
तिल औरसरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना  
को दूर करताहै अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छीतरह-  
मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जी  
वनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार  
कियाहुया उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, या-  
तना, शोथ और अंगप्रह को दूरकरता है  
अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की  
हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, स-  
हचरी की जड़ जीवन्ती और बकरी का दूध  
इनका लेप भी हितकारी है । इसीतरह घी  
में मुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर  
लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी  
तरह याताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति  
के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में  
पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पि-  
सीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डवाथेक्षिप्रस्थिकंमथकृ ।  
घृततैलंनसामज्जासानूपमृगपाक्षिणाम् ॥  
कल्काथेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम्  
हरिद्रोत्पलकुण्डलाशताब्हायरुणच्छदान्-  
विल्वमात्राप्रथकृपुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-  
येत् । मधुच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-  
ऽवतारिते ॥ शूलनैपोऽर्दिताहानांलेपः  
सन्धिगतोऽनिले । वातरक्तेभ्रूतेभग्नेखञ्जे  
कुञ्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड़, टांडी और पत्तों  
का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप  
पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और  
बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीव-  
नीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर  
कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और



अर्जुनेके फल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल भोग डाल देवै । यह शूलादित अंग, संधिगत वायु, सावयुक्त वात-रक्त, भग्न, खंज और कुञ्जरोगमें हित होताहै

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।  
शोफगौरयकण्डूवाद्यैर्युक्तेस्मिन्कफो-  
त्तरे । मूत्रचारमुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम्  
सिद्धं समधुशुक्तं स्यात्सेकाभ्यङ्गः कफोत्तरे  
क्षीरस्तैलद्रवांमूत्रं जलश्च कटुकैः शृतम् ।  
परिपेकाः मशस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सू-  
जन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव  
भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके सा-  
थ सिद्ध कियेहुए घृतका परिपेक और अ-  
भ्यंग हित है । इसरोगमें पद्माख, दालचीनी  
मुलहठी, और शारिषा तथा मधुशुक्त केसा-  
थ सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अ-  
भ्यंगमें हित है । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रि-  
कुटा इन से औटायाहुआ जल कफप्रधान  
वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपः सर्पपनिम्बार्कहिंसाक्षीरतिलैर्हितः ।  
श्रेष्ठः सिद्धः कपित्थत्वशृत्तक्षीरैः सशक्तु  
मिः ॥ द्वेहरिद्रेवचागारधूमकुण्डशतान्दि  
काः ॥ प्रलेपः शूलनुदातरक्ते वातकफोत्तरे  
तगरत्वक्शतान्देलकुण्डमुस्तं हरेणुकाः ॥  
दास्व्याग्रं नखशाम्भ्रापिष्टं वातकफार्तिनुत्  
मशुशिग्रोर्हितं तद्व्रीजधान्याम्लसंयुतम्  
मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चासिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥  
त्रिफलाव्योषपत्रैलास्तवक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विडङ्गपिप्पलीमूलं लोमशं वृषक  
स्वचम् । ऋद्धितामलकश्चिच्यं समभा-  
गानि पेपयेत् ॥ कल्कं लिप्तमयस्पात्रे मध्या  
न्हे भक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक,  
हॉस, दूध और तिल इनका लेप हित है,  
अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सत्तू  
इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप  
करै । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा,  
कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफो-  
त्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है ।  
अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची,  
कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख  
इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसे वात  
कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल  
दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बाजों  
को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी  
तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो  
ढाले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात,  
इलायची, वशलोचन, चीता, वच, त्राय-  
विडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूमेकी  
छाल, ऋद्धि, भूयभावला, और चव्य  
इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर  
इस कल्क को एक छोहेके पात्र पर लेपकर  
देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै ।

वातरक्त में पथ्य विधि ।  
वर्जयेद्दधिशुक्लानि क्षारं वैरोधकानि च ॥  
वातासे सर्वदोषेऽपि मन्तुं शूलादिते परम् ॥  
बुद्ध्वा स्थानविशेषांश्च दोषाणाञ्च चलाव  
लम् ॥ चिकित्सितमिदं कुटुर्याद्वापोहं  
विकल्पवित् ॥

अर्थ—वातरक्त में दही, शुक्र, क्षार और विरोधकर्त्ता द्रव्यों का परित्याग कर देना चाहिये । संपूर्ण दोषों से युक्त वातरक्त और शूल में स्थान और दोषों के बलाबल की अच्छी तरह परीक्षा करके उक्तगणों में प्रयोजन के अनुसार औषधियां को घटा बढ़ाकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होंगे ।

क्षुपितमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा ॥  
अतिवृद्ध्याऽनिलेनादौशस्तंस्नेहनवृंहणम्  
व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्विशोधितैः ॥  
तक्राभयामयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥  
घोधिबृक्षकपायस्तुपित्रेत्तमधुनासह । वा  
तरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥  
पुराणयवगोधूमशीध्वरिष्टासन्नैस्तथा ॥  
शिलाजतुमयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यच ।  
पश्चादातेक्रियांकुर्याच्चारक्तमसाधनीम् ॥

अर्थ—मेद और कफ के मार्ग के रुक-जाने से जघ वायु अत्यन्त क्षुपित होकर अत्यन्त बढ़जाय तब स्नेहन वा बृंहणक्रिया हित होती है । व्यायाम, शोधन, अरिष्ट गोमूत्रपान, विरेचन तथा मठा और हरड के प्रयोगों से कफ और मेदा को दूर करने का उपाय करें । अश्वत्थ की छाल के काष्ठ में शहत डालकर पाने से त्रिदोषजन्य दारुण वातरक्त भी दूर होजाता है ।

पुराने जौ, गेहूं, शीधु, अरिष्ट और आसव का प्रयोग करें अथवा शिलाजीत, गुग्गुलु या शहत का प्रयोग करके कफ और मेद को शान्त करै पीछे वातरक्त को दूर करने वाली क्रिया करें ।

गम्भीरैरक्तमाक्रान्तस्याच्चेतद्वातवर्जयेत्  
रक्तपित्तातिवृद्ध्यातुपायमाशुनियच्छति  
भिन्नंस्त्रातिवारक्तंविदग्धंप्रयमेववा ॥  
तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणौ  
कुयोदुपद्रवाणांचक्रियास्वात्स्वान्चिकि-  
त्सितात् ।

अर्थ—गंभीर वातरक्त में जो रक्त वायु से आक्रान्त होती उस में चिकित्सा न करें रक्तपित्त के अधिक बढ़जाने से वातरक्त में तत्काल पाक होता है तब उस के भिन्न होने पर विदग्धरक्त और पीव निकलने लगता है । ऐसे समय में पके हुए को घेधन करके भिन्न में शोधन और रोपणकर्त्ता क्रिया करनी चाहिये । और इस में जो कोई उपद्रव खड़े होंतो उनकी चिकित्सा रोग रोग के अनुसार करनी चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुस्थानानिगूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धि-  
पु । कुप्यतिमाक्चयैरुपद्रवविधस्यचलक्ष-  
णम् ॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्य-  
मुपद्रवाः ॥ साध्ययाप्यमसाध्यञ्चाक्रियासा-  
ध्यस्यचाखिला ॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टा-  
समासञ्चासतस्तथा । महर्षिणापिवेशा-  
यतथैवावस्थिकीक्रिया ॥

अर्थ—इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्याय में वातरक्त के हेतु, उत्पत्ति के स्थान, मूल, प्रायः संधियों में उत्पत्ति होने का कारण, प्राप्नूय, गंभीर और आन्यतर दो प्रकार के मेद, भिन्न वातरक्तके लक्षण दोषों की अधिकता, उपद्रव, साध्यता,

यायता और असाध्यता के लक्षण, साध्य वातरोग की सब तरह की चिकित्सा तथा अवस्थानुसार चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकार से वर्णन की गई हैं ॥ इन सब बातों का उपदेश महर्षि आत्रेयने अग्निवेश को किया है ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाश्रित-  
सायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-  
त्सितस्थाने वातरक्तचिकित्सितं ना-  
मैकौनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

—:—

### त्रिंशोऽध्यायः

अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्या-  
स्याम इति हस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम योनिव्यापच्चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

दिव्यौषधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावति-  
पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुरसिद्धार्पिते ॥  
विहरन्तं तपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थं दर्शनम् ।  
कृष्णात्रिंशजितात्मानं अग्निवेशोऽनुपृष्ठवान्-  
भगवन् ! रत्यपत्यानां मूलनायः परं नृणां-  
मू । तद्विधातो गदैश्चासां क्रियते योनिमां-  
श्रितैः ॥ तासां तेषां समुत्पत्तिमुत्पन्नानां-  
श्रलक्षणम् । औषधं श्रोतुमिच्छामि प्रजा-  
नुग्रहकाम्यया ॥ इति शिष्येण पृष्ठस्तुभो-  
वाचां पि वरोऽत्रिजः ।

अर्थ—पुण्यवान् हिमालयके उच्चाशि-  
खर पर जहां अनेक प्रकारकी दिव्य औ-  
षधियां उगी हुई थी, मिष्टजल वह रहा था,  
जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सु-  
शोभित थी और जहां अनेक देवता, सिद्ध और ऋषिभुनि निवास करते थे वहां विचरे-  
ते हुए तपोयोग सम्पन्न और तत्वज्ञानार्थ-  
दर्शी, जितेंद्रिय कृष्णात्रेयसे अग्निवेशने  
प्रश्न किया कि हे भगवन् ! मनुष्यों के  
लिये स्त्रियां विषयभोग और संतानोत्पत्ति  
का मूळ कारण हैं, परन्तु जब उनकी यो-  
नियों में रोग होजाता है, तब दोनों बातों  
का नाश होजाता है अतएव हे प्रभो !  
मैं प्रजाकी भलाईके हेतु स्त्रियोंके योनिरो-  
गोंकी उत्पत्तिके कारण, उत्पन्न हुए रो-  
गोंके लक्षण और उनकी औषध श्रवण  
करनेकी इच्छा करता हूं ॥

शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर महर्षि आ-  
त्रेय ने व्याख्या करनेका प्रारम्भ किया ।  
योनिरोगोंकी संख्या ।  
विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे ॥  
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तयेन च ।  
जायन्ते बीजदोषाश्च देवाश्च शृणुताः पृ-  
थक् ॥

अर्थ—रोगसंग्राह्याय में यह बात वर्ण-  
न कर चुके हैं कि योनिरोग बीस प्रकारके हो-  
ते हैं । इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियों के  
मिथ्या आहार विहार दुष्ट आर्तव, बीज दोष  
और देवप्रकोप इन चार कारणों से होते हैं ।  
वातल योनिरोगों के लक्षण ।  
वातलाहारचेष्टाया वातलाया समीरणः ।  
विट्टदोयोनिमाश्रित्य येनेस्तोदं सवेदनम् ॥  
स्तम्भपिपीलकासृग्निमिव कर्कशतां तथा ॥

करोतिमुष्णिमायामंवातजांश्चापरान्गदान्  
सास्यात्सशब्दस्त्वेनंतनुरूक्षार्तवानिलात्

अर्थ—यातल प्रकृतिवाली स्त्रीके वातो-  
त्पादक आहार, विहार और चेष्टा करने  
के कारण वायु अत्यन्त कुपित होकर यो-  
निका आश्रय लेकर योनि में वेदनायुक्त मुई  
छेदनेके समान पीडा उत्पन्न करती है तथा  
स्तम्भता, चींटी चलने का सा अनुभव,  
कर्कशता, सुति, आयाम, और अन्य वातज  
रोग भी उत्पन्न होते हैं। तथा वात के  
कारण उस स्त्रीकी योनिमेंसे पतला, रुखा  
शब्द करता हुआ झागदार रक्तनिकलता है

**पित्तल योनिरोगोंके लक्षण।**

व्यापत्तधाम्ललवणक्षाराद्यैःपित्तजाभवेत्॥  
दाहपाकज्वरोष्णार्तानीलपीतासितार्तया।  
भृशोष्णकुणपस्त्रावायोनिस्यात्पित्तदूषिता

अर्थ—खट्टे, नमकीन और क्षारादि मि-  
श्रित पदार्थों के अत्यन्त सेवन से पित्तज यो-  
निरोग होते हैं, उनरोगोंके होने से योनिमें  
दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, और यातना  
होती है तथा योनि में से नीला, पीला, काला  
आर्तव निकलता है और अत्यन्त उष्ण  
मुईकीसी गंधका स्त्राव होता रहता है।

**शूलैषिकं योनिरोगों के लक्षण।**

कफोऽभिष्यन्दिभिर्द्वयोयोनिचेदूपयोस्त्रि  
याः। सशीतापिच्छिलां कुर्यात्कण्डूग्रस्तां  
सवेदनाम् ॥ पाण्डुवर्णतथापाण्डुपिच्छि  
लार्तववाहिनीम्।

अर्थ—अभिष्यन्दी आहार के सेवन से  
फल्त बढ़कर स्त्रीकी योनि में कफज रोगोंको

उत्पन्न करता है, इन रोगों के कारण योनि  
में शीतलता, पिच्छिलता, खुजली, वेदना  
और पाण्डुता होती है और योनि मेंसे पीला  
पीला गिलगिला आर्तव निकलता है ॥

**सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण**  
समश्नत्यारसान्मर्वान्दूपयित्वात्रयाम-  
लाः ॥ योनिगर्भाशयस्थैःस्वैर्योनियुञ्ज  
न्तिलक्षणैः। साभवेद्दाहशूलार्ताश्वेतपिच्छि  
लवाहिनी ॥

अर्थ—त्रिदोषकारक आहार के सेवन  
से सम्पूर्ण रसों को दूषित करके योनि और  
गर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणों  
को प्रकट करते हैं, इन रोगों के होने से  
दाह, शूल और यातना अधिक होती है  
तथा योनि में से सफेद और गिलगिला  
आर्तव निकलता है।

**रक्तपित्तजन्य योनिरोग।**

रक्तपित्तकैरनार्यारक्तपित्तेनदूषितम्।

अतिप्रवर्ततेयोन्यालब्धेबीजेऽपिसाम्रजाः॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन  
करने से रक्त पित्त के कारण दूषित होकर  
योनिमें से अत्यन्त रक्त निकलने लगता है  
बीजके ग्रहणकरने परभी स्त्रीके संतान न-  
हीं होती है ॥

**अरजस्का योनिर्लक्षण।**

योनिगर्भाशयस्थं चेत्पित्तं संप्रयेतदसूक्ता  
सारजस्का मता कार्श्यवैवर्ण्यजननीभृशम्॥

अर्थ—योनि और गर्भाशय में स्थित  
पित्त जब रक्त को दूषित करदेता है तब  
रजोवर्ध होना बन्द होजाता है और स्त्री

अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण होजांती है, ऐसी योनि को अरजस्का कहते हैं ।

अचरणा योनि के लक्षण ।

योन्यामथावनात्कण्डूजाताः कुर्वन्ति जन्तवः । स्नास्यादचरणा कण्डूवातयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनि को न धोने से उसमें एक प्रकार के अदृश्य छोटे कीड़े पड़कर खुजली उत्पन्न करते हैं, उस खुजली के कारण योनि पुरुषकी अत्यन्त इच्छा करती है, ऐसी योनि को अचरणा कहते हैं ॥

अतिचरणा योनि के लक्षण ।

पवनोऽतिव्यवायेन शोफसृष्टिरुजःस्त्रियाः फरोति कुपितो योनौ सा चातिचरणामता

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करने के कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुति और वेदना करदेती है ऐसी योनि को अतिचरणा कहते हैं ।

प्राक्चरणा योनि के लक्षण ।

मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजंघोरवक्षणम् । रुजयन् दूपयेद्योनिं वायुः प्राक्चरणा तु सा ॥

अर्थ—अत्यन्त बाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जांघ, ऊरु और वक्षण में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है, ऐसी योनि को प्राक्चरणा कहते हैं ( प्राक्चरणा निग्रमित समय से पूर्व संगम की हुई ) ।

उपप्लुता योनि के लक्षण ।

गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छदिः श्वासविनिग्रहात् । वायुः कुदः कफं योनिमुपनी

यमदूषयेत् ॥ पाण्डुसतोदतमास्त्रावन्धेतं स्रवति वाकफम् । कफवातामयव्याप्तासास्याद्यो निरुपप्लुता ॥

अर्थ—कफजन्य आहार के अत्यन्त सेवन करने से, तथा वमन, श्वास आदि वेगों के रोकने से गर्भिणी स्त्री के वायु दूषित होकर कफको योनि में लाकर योनि को दूषित करदेती है तब योनिमें से सुई छिदने के समान वेदना से युक्त पाण्डुवर्ण का स्राव होता है अथवा सफेद र कफ निकलता है । कफवात रोगों से युक्त ऐसी योनि को उपप्लुता कहते हैं ।

परिप्लुता योनि के लक्षण ।

पित्तलायानृसंवासे क्षवधृद्धारणात् । पित्तसंमूर्च्छितो वायुर्योनिं दूषयति स्त्रियाः शूनास्पर्शक्षमासार्तिर्नालपीतमसृक्त्ववेत् श्रोणीवक्षणपृष्ठार्तिज्वरातायाः परिप्लुता

अर्थ—पित्तप्रकृतिवाली स्त्री के मैथुन के समय छींक या डकार आवे, और यदि वह उनको रोकले तो पित्तयुक्त वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनि को दूषित करदेती है उस समय योनि ऐसी सूजजाती है कि हाथ नहीं लगाया जासکتा है और उस में से वेदनायुक्त नीला पीला स्राव होने लगता है। तथा स्त्री की कमर, वक्षण, और पीठ में वेदना और ज्वर होता है । ऐसी योनि को परिप्लुता कहते हैं ।

उदावृता योनि के लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सारुगताग्जः कच्छेणोदावृत्ता विमुञ्चति

अर्थ—अधोवेगों के रोकने से वायु के कारण योनि का वेग ऊपरको होता है, इस से बड़े फट के साथ रजःसंबंधी आर्तव निकलता है इसे उदावृता योनि कहते हैं।

**उदावर्तिनी योनि के लक्षण।**

आर्तवेयाविमुक्तेतुतत्क्षणलभतेमुखम् ।  
रजस्रोमनादृद्धेयोदावर्तिनीयुधैः ॥

अर्थ—आर्तवके निकलने से जिसमें तत्काल चैन पड़जाता है, उस योनि को रजके ऊपर जाने के कारण उदावर्तिनी कहते हैं।

**कर्णिनीयोनि के लक्षण।**

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः  
कर्णिकाञ्जनयेयोर्नाश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः  
रक्तमार्गावरोधिण्यासातयाकर्णिनीमता ॥

अर्थ—छोटी अवस्था में गर्भ धारण करने से गर्भ के कारण आच्छादित वायु कफ और रक्त से मिलीहुई एक प्रकार की कर्णिका योनि के मुखमें उत्पन्न करदेती है, यह रक्त के मार्गको रोकदेती है इससे इस योनि को कर्णिनी कहते हैं ॥

**पुत्रघ्नी के लक्षण।**

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत्  
दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥

अर्थ—जो गर्भ स्त्री के दूषित रक्त से उत्पन्न होता है उसको जब जब वह उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षता के कारण नष्ट करदेती है। ऐसी योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं ॥

**अन्तर्मुखी योनि के लक्षण।**

व्यवायमतिवृक्षायाभजन्त्यास्त्वत्तपीडितः

वायुर्भिध्यमस्थिताद्वापायोनिस्तोतसिसं-  
स्थितः । वक्रपत्याननंपोन्याःसास्थिमां-  
सानिल्यार्तिभिः ॥ भृशार्तिर्भृशुनासका-  
योनिरन्तर्मुखीमता ।

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर खाने के पीछे अन्याय रीति से पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है तब वायु उसकी योनि के स्रोत में स्थित होकर योनि के मुखको टेढ़ा करदेती है उसको हड्डी और मांस में अत्यन्त घेदना होती है, ऐसी स्त्री मैथुन में असमर्थ होजाती है, इसे अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ॥

**सूचीमुखी के लक्षण।**

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिमदूष-  
यन् ॥ मातृदोषादशुद्धारात्कुर्वाद्सूची-  
मुखीतुसा ।

अर्थ—माताके दोष के कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनि को दूषित कर के उसके योनिद्वारको छोटा करदेती है। ऐसी योनि को सूचीमुखी कहते हैं।

**शुष्का योनि के लक्षण।**

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगात्प्रकुपितोऽ-  
निलः ॥ कुर्याद्विण्मूत्रमद्भार्तिशोपंयोनि-  
मुखस्यतु ।

अर्थ—मैथुन के समय जब स्त्री मलमूत्र के वेगों को रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्टा और मूत्र को रोककर योनि को शुष्क करदेती है, ऐसी योनि को शुष्का कहते हैं ॥

**वामिनी के लक्षण।**

पटहात्सप्तरात्राद्वाशुक्लंगर्भाशयंगतम् ॥

सरुजनीरुजंवापियासवेत्साचवामिनी ।

अर्थ—जिस स्त्री की योनिमें से गर्भाशय में पहुंचा हुआ वीर्य वेदना से वा बिनाही वेदना छः सात दिन के भीतर निकल पड़ता है उसे वामिनी कहते हैं ॥

पण्डी के लक्षण ।

वीजदोषात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया ॥

नृद्वेषिण्यस्तनीचैवपण्डीस्यादनुपक्रमा ।

अर्थ—बीज दोष के कारण जिस गर्भस्थ कन्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है वह पुरुष की इच्छा नहीं करती है, न उसके कुच निकलतेहैं, ऐसी स्त्री पण्डी वा हीजडी कहातीहै । इसकी चिकित्सा ही नहीं होती है ।

महायोनि के लक्षण ।

विपमंदुःखशय्यायामैधुनात्कुपितोऽनिलः ॥

गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखांविष्टम्भये

त्स्त्रियाः । असंवृतमुखासातिरूक्षफेना

स्रवाहिनी ॥ मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्व

वंक्षणशूलिनी । इत्येतैलक्षणैःप्रोक्ताविं-

शतिर्योनिजागदाः ॥

अर्थ—दूटे हुए कण्ठोत्पादक पलंग पर विपमरीति से सोकर जो पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है, उसकी वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिमुख को स्तंभित कर देती है, इसकारण से योनि असंवृत मुख-वेदनायुक्त, रूखा और क्षागदार आर्चव नि-कालने वाली और मांसोपचिता होजाती है, इस स्त्री के संधि और वंक्षण में शूल होने लगता है, यह महायोनि होती है । बीस प्रकार के योनिरोग और उन के लक्षण इस प्रकार से वर्णन किये गये हैं ॥

नशुक्रंधारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रता । त

स्पाद्वर्धनग्रहीतेस्त्रीगच्छत्यामयान्व-

हन् ॥ गुल्मार्शःप्रवरादींश्वावातार्थैश्चाति

पीडनम् ।

अर्थ—इन दोषों से उपद्रुत योनि वीर्य धारण नहीं कर सकती है, न गर्भ को ग्रहण कर सकती है तथा गुल्म, अर्श और प्रदरादिक अनेक प्रकार के उपद्रव हो आते हैं और वह वातरोगों से सदाही पीडित रहती है ।

योनिरोगों में दोषपरत्व ।

आसांपोडशयास्तासांमध्येद्वेपित्तदोषजैः ॥

परिप्लुतावमिनीचवातपित्तात्मकेमेते !

कर्णिन्पुपप्लुतेवातकफात्शेषास्तुवातजाः

देहंवातादयस्तासांस्वैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि ।

अर्थ—इन बीस प्रकार के योनि दोषों में पहिले चार वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक हैं । शेष सोलह में से पहिले दो ( रक्तपित्तजा और अरजस्का ) पित्तसे उत्पन्न हैं । परिप्लुता और वामिनी वात-पित्तसे उत्पन्न हैं, कर्णिनी और उपप्लुता वातकफ से उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल वात से उत्पन्न हैं । इन में से वातादिक दोष अपने अपने लक्षणों से देह को पीडित करते हैं ॥

वातजरोगों में चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलाघ्वानिलापहम् ।

अर्थ—वातज योनि रोगोंमें स्नेहन स्वे-

दन और वस्त्यादि उपचारों से वात शान्त

होजाती है ।

पित्तजरोगों में किया ।

कारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतपित्तकृतामुच ।

अर्थ—पित्तजनित योनिरोगों में रक्तपित्त नाशिनी शीतक्रिया हित है ॥

कफजयोनिरोगों में किया ।

श्लेष्मलामुचरुक्षोऽप्यण्कर्मकुर्याद्विचक्षणः॥

अर्थ—कफजयोनि रोगों में रूक्ष और उष्णकर्म करना हित है ।

सन्निपातिक योनिरोग में चिकित्सा ।

सन्निपातेविमिश्रन्तुसंस्पृष्टामुचकारयेत् ।

अर्थ—त्रिदोषज और द्विदोषज योनि रोगों में तीनों प्रकार की मली हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

वायुजन्ययोनिरोग में चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नातथायोनिंदुःस्थितांस्थापयेत्पुनः । पाणिनानामयेज्जिह्वांनिःसृतांस्रमवेशयेत् । वर्धयेत्संस्पृष्टांश्चैवविष्टां परिवर्तयेत् । योनिःस्थानापट्टतादिशल्य

भूतास्त्रियामता ॥

अर्थ—वायुजन्य योनिरोगों में योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने ठीक स्थान में न हो उसे ठीक स्थान पर लाये । जो योनि टेढ़ी हो उसे हाथ से नचाये, जो बाहर निकल आई हो उसे भीतर को फिर प्रवेश करे, सुकड़ी हुई योनिको चौड़ी करे और चौड़ी हुई को सुकड़ी करे । जो योनि अपने निज स्थान से हटजाती है वह स्त्रियों के शल्यस्वरूप है ॥

सर्वान्पापत्रययोनित्तुकर्माभिर्वगनादिभिः । मृदुभिःपञ्चभिर्नारिंस्निग्धस्विन्ना

मुपाचरेत् ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषकर्मविधीयते । वातव्याधिहरं कर्मवातार्तानांसदाहितम् ॥ औदकानूपजैर्मांसैः क्षीरैःसतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तालवणतैलेन साश्मप्रस्तरश्चक्षुरैः । स्विन्नांकोष्णांशुसिक्तांगीवातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ।

अर्थ—सब प्रकार के योनिरोगों में स्त्री को प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके मृदु यमन विरेचनादि पाँचों कर्मोंका प्रयोग करे, इस तरह जब योनि सब तरहसे शुद्ध होजाय तब शेष कर्मों का विधान करे ।

वायु से उत्पन्न योनि रोगों में सदैव वात व्याधिनाशक कर्म हित होते हैं । वातज योनि रोगमें औदक और आनूपमांस, दूध, तिल, चावल और वातनाशक औषधियाँ इन सब का पाक करके नाडी स्वेद कुम्भी स्वेद द्वाराउपचार करे । अथवा लवण और तैल का योग करके अश्मघन प्रस्तर स्वेद और संकर स्वेद द्वारा स्वेदित करके गरम जल का परिपेक करे पीछे वातनाशक मांस रसों का भोजन करावै ॥

अन्य प्रयोग ।

वलाद्रोणद्वयकाथेघृततैलादकद्वयम् । स्थिरापयस्याजीवन्तीयीरर्पभकजीवकैः ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमापाख्यपाणिभिः । शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेवच ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरंतथैवचयथावलम् । वातापित्तकृतान् रोगानहत्वागर्भं धातितत् ॥



अर्थ—बलाके दो द्रोण काथ में घी और तेल प्रत्येक एक एक आठक डाले, तथा सालपर्णी, क्षीर विदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, ऋषभक, जीवक, श्रावणी पीपलामूल, पीपल, मांसपर्णी, शर्करा, क्षीरकाकोली, कौआटोटी इन सबका कल्प चार सेर, और सोलह सेर दूध इन सब को पकावै । इस घृत तैल का यथाबल सेवन करने से वात पित्तरोगों के दूर होने पर स्त्री गर्भधारण कर लेती है ॥

काश्मर्यादि घृत ॥

काश्मर्यात्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरुषकैः ।  
पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासहाचरैः ॥  
शतावर्यागुड्ढ्याश्चमस्थमसमैर्धृतान् ।  
साधितपोनिवातघ्नगर्भदपरमापिवेत् ॥

अर्थ....खंभारी, त्रिफला, द्राक्षा, कसौदी, फालसा, सांठ, दोनों हलदी, कौआटोटी, सहचर, सितावर और गिलोय इन सब में से प्रत्येक का कल्क दो दो तोले इन सब के समान घृत मिलाकर चौगुने जल के साथ पाककरै । यह घृत सब प्रकार वात जन्य रोगोंको दूर करके गर्भधारण करानेवाला है

अन्यप्रयोग ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकसैन्धवंवचाम् । यवत्ताराजमोदौचशर्करांचित्रकं तथा ॥ पिष्ट्वासर्पीपिष्ट्वा निपाययेत्तप्त सन्नया । योनिपाश्चात्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवृत्तये ॥

अर्थ—पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, अड़सा, सेंधानमक, वच, जवाहार, अज-

मोदशर्करा, चीता, इन सब का कल्क कर के घीमें भूनकर प्रसन्ना के साथ सेवन करै तौ योनिशूल, पार्श्वशूल, यातना, हृद्रोग गुल्मरोग और अर्श दूर होजाते हैं ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूला निमदयान्तिकाम् ।  
पिवेत्सलवर्णैर्मयैःपिप्पल्यौकुञ्चिकेतथा ॥  
श्वदंष्ट्रां वृषकरास्नां पिवेच्छलेपयःशृतम् ।  
गुड्चीत्रिफलादन्तीवत्रायैश्चपरिपेचयेत् ।  
सैन्धवंतगरकुण्डं बृहतीदेवदारुणः ॥ समा-  
शैःसाधितकल्कैस्तैलधार्यरुजापहम् ॥

अर्थ—अड़से की जड़, विजैरै की जड़, मल्लिका की जड़, इन को पीसकर सेंधे-नमक और मद्य के साथ पान करै, इसी तरह से पीपल और जीरा पीस कर सेंधे-नमक और मद्य के साथ पीवै । जो योनि में शूल होता होतौ गोखरू, अड़सा और रास्ना पीसकर दूध के साथ पाक कर के पान करै अथवा गिलोय, त्रिफला और दन्ती के काथ से योनि का प्रक्षालन करै । अथवा सेंधानमक, तगर, कूठ, फटेरी, देवदारु, इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ तेल पकावै फिर इस तेल में रुईका फोआ भिगो कर योनि में रख देवै इस से वेदना जाती रहती है ।

अन्य पित्तु ॥

गुड्चीमालतीव्याघ्रीश्रयसीसुरदारुभिः ॥  
बलाचित्रकयष्ट्यान्हृद्युधिकाभिश्चकार्पिकैः ।  
तैलप्रस्थंगवांमूत्रेसीरेणाद्रिगुणंपचेत् ॥  
वातातार्तायैपिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्सदा ।  
अर्थ—गिलोय, मालती, फटेरी रास्ना,

देवदारु, सरैटी, चीता मुलहटी और चमेली की जड़ इनको एक एक कर्प लें। इन के कल्क के साथ एक प्रस्थ तेल, दो प्रस्थ गोमूत्र और इतनाही दूध मिलाकर पाक करे इस तेल में एक फोआ भिजो कर वातरोग से पीडित स्त्री की योनि में रख दें। इस से योनि सदा प्रणिहित रहती है ।

### अन्यप्रयोग ॥

हिंसाकल्कन्तुयातार्ताकोष्णमभ्यज्यधा रयेत् ॥

अर्थ—हिंसा की पीस कर घीमें सानकर उसकी लुगदी को वातार्ता योनि में थोड़ा गरम करके रख दें।

### कफपित्तरोगों में क्रिया ॥

पञ्चवल्कस्यपित्तार्ताश्यामादीनांकफातुरा । पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रिया ॥ शीताःपित्तहराःकार्याःस्नेह नानिघृतानिच ।

अर्थ—पित्तजयोनिरोगों में पंचवल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगों में अनंत-मूल का कल्क योनि में रखें। पित्तलायोनि वाली स्त्रियों की योनि में परिपेक, अभ्यंग पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलंक्रिया, तथा स्नेहनकर्ता घृतों का प्रयोग हित है ।

### शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाःचतस्रःसंप्रीडयेत् ॥

रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेनघृताढकम् ॥

जीवनीयैःशतावर्यामृद्धीकाभिःपरुषकैः॥

पियालेथाक्षकैःपिष्टैर्द्विपट्टीमधुकैःपचेत् ॥

सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् ॥

सितादक्षपलोन्मिश्राद्विलम्बात्पाणितलंततः योन्पसृक्शुकदोषध्न्यृप्यं पुंसवनश्चतत् ॥ सतंतयंरक्तपित्तकांसंश्वासंहलीमकम् । कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पट्टिच्छिरोग्रहम् ॥ उन्मादायामसंन्यासंवातपित्तात्मकंजयेत्

अर्थ—सितावरकी जड़ को चार तुला लेकर कूट डालें और उसे कपड़े में निचोड़ कर रस निकाल लें । फिर इस रस में इतनाही दूध और एक आठक घृत डाल कर पकावें तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का कल्क, सितावर, किसमिस, फालसा, पियाल, दोनों प्रकार की मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकावें । पकने के पीछे ठंडा होने पर इस घृत में शहत आठ पल, पीपल आठ पल और मिश्री दस पल इन सबको मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करें तौ योनिदोष, रक्तदोष, वीर्यदोष, सत, क्षय, रक्तापित्त, खांसी, श्वास, हलमिक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्भोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, सन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर होजाते हैं । यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है ।

### अन्यउपाय ॥

एवमेवक्षीरसार्पेर्जीवनीयोपसाधितम् ॥ गर्भदोषपित्तलानांचयोनीनांस्याद्भिपग्नि तम् ॥

अर्थ—इसीतरह से जीवनीय गणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध का घी गर्भकारक और पित्तलयोनिरोगोंको दूर करानेवाला है ।

कफजयोनिरोगों में चिकित्सा । योन्याःश्लेष्ममदुष्टायावर्तिःसंशोधनीहि

ता ॥ वाराहेवहुशःपित्तभाविर्नैर्नक्तकैःकृ  
ता ॥ भावितं पयमाकस्यमापचूर्णससैन्ध  
वम् ॥ वर्तिः कृतामुहुर्भाषाततः सेन्यामुखा  
भुना । पिप्पल्यामरिचैर्मपैः शतद्वा  
कृष्टसैन्धवैः ॥ वर्तिस्तुल्याप्रदोशिन्याधा  
र्यायोनिविशोधनी ॥

अर्थ—कफदूषित योनियों में संशोधनी  
बत्ती का प्रवेश करना हित है । पुराने  
कपड़ेकी बत्ती बनाकर उसे शूकर के पत्ते  
की कई भावना देकर योनि में रखदेवै ॥  
उरद का चून और उस के समान संधा-  
नमक पीसकर एक बत्ती बनावै इसको  
आक के दूधकी भावना देकर योनिमें थोड़ी  
देर रखवै फिर उसे गरमजल से धोडाले ।  
अथवा पीपल, काळीभिरच, उरंद, सोंफ,  
कूठ, संधानमक इन सबकी तर्जनी उंगली  
के समान बत्ती बनाकर योनि में रखने से  
योनि शुद्ध होजाती है ।

योनिशोधक तैल ।

उदुम्बरशलाह्नाद्रोणमन्द्रोणसंयुतम् ॥  
सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ।  
निशांस्थाप्यंजलेतस्मिस्तैलप्रस्थंविपाच  
येत् ॥ लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्वासैः शा  
ल्मलेनच । पिष्टैः सिद्धञ्चतत्तलंपिचुयो-  
नौनिधापयेत् ॥ सशर्करैः कषायैश्चशीतैः  
कुर्वीतसेचनम् । पिच्छिलाबिष्टाकाल  
न्दुष्टयोन्यथदारुणा ॥ सप्ताहादधुद्व्यति  
क्षिप्रमपत्यञ्चापिबिन्दति ।

अर्थ—कच्चे गूलर के एकद्रोण छिलके  
तथा इतनेही पञ्चवल्क, परवल्कके पत्ते, नीम

के पत्ते, मालती के पत्ते इनसब को दूने  
जल में रात्रिके समय भिगोदेवै । प्रातःकाल  
इसे मसलकर रस छानले, इस रसमें एक  
प्रस्थ तैल पकावै, पकते समय इसमें लाख,  
धौकानिर्यास, पलासका निर्यास, सेसर का  
गोंद पीसकर डालदे । जब पकजाय तब  
इसमें रुईका एकफोआ भिगोकर योनि में  
रखदेवै, तदनंतर, पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्यों  
के शतल काथ में शर्करा मिलाकर योनि  
को धोवै । इस प्रयोग से पिच्छिला, बिष्टा  
दूषिता, दारुणा, कैसीही योनि क्यों न हो  
सातदिन में शुद्ध होजाती है और शीघ्र उस  
के सन्तान भी होती है ।

अर्ण्यप्रयोग ।

उदुम्बरस्यदुग्धेनपदकृत्वोभावितांस्ति-  
लान् ॥ तैलकायेचतस्रैवसिद्धं धार्यञ्च  
पूर्वयत् ।

अर्थ—गूलरके दूधमें तिलोंको छः भाव-  
ना देकर उनका तेल निकाले । इस तेल  
को गूलरकी छालके काथमें पकावै, इसमें  
रुईका फोआ भिगोकर योनिमें भीतर रखने  
से पूर्वोक्त गुण होते हैं ।

धातक्यादि तैल ।

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोऽजमधुकोत्पलैः ॥  
जम्बाप्रमध्यकासीसलोधकद्रुफलतिन्दु  
कैः ॥ सौराष्ट्रिकदाडिमत्वग्दुम्बरशला  
हुभिः ॥ असमात्रैरजामूत्रैश्चक्षीरेचद्विगुणे  
पचेत् । तैलप्रस्थं पिचुंतस्माद्योनौचम्रण  
येत्ततः ॥ कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गंस्नेहोवस्ति  
चदापयेत् । पिच्छिलस्राविणीयोनिर्वि

प्लुतोपप्लुतातथा ॥ उत्तानाचोन्नता  
शूनासिद्धेस्तस्फोटशूलिनी ॥

अर्थ—घायके पत्ते, आवलेके पत्ते, शंख  
नाभि, मुलहटी, मीठकमल, जामनकीमिंगी,  
होमकीमिंगी, हीराकसांस, लोव, कायफल,  
तेंदू, सौराष्ट्रमृत्तिका, अनार के छिलके क-  
द्यामूलर ये सब दो २ तोले लेकर पीसले,  
इनमें एक प्रस्थ तेल, बकरीका मूत्र दो  
प्रस्थ और चार प्रस्थ दूध डालकर पकावै।  
इस तेलमें एक हईका फोआ भिगोकर योनि  
में रक्खै, तथा, कमर पीठ और त्रिक में  
इस तेलकी मालिश करावै। स्नेहन वस्ति  
में इसका प्रयोग करै। इस तेल से पि-  
च्छिलताविणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना  
उन्नता, शोथयुक्ता, स्फोटयुक्ता, और शूल  
युक्तायोनि अच्छी होजाती है।

अन्यप्रयोग ।

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः॥  
जिङ्गिणीवृषमूलानांकाथःपार्द्वीकशीधुभिः  
सधुक्तैर्धावनंभिथ्रैर्योन्यासावविनाशनम्॥  
कुर्यात्सतक्रगोमूत्रधुक्तैर्वात्रिफलारसैः ।

अर्थ—करील, धौकी लकड़ी, नीमकी  
छाल, आमकी जड़, वेणु, कोशाम्र, जामन  
की गुठली, मजीठ और अडूसे की जड़,  
इन सब का काथ, दाखका मद्य और शुक्त  
इनको मिलाकर योनिको धोने से उस  
का स्नायु मिटजाता है, इसी तरह से तक्र,  
गोमूत्र और शुक्त मिलाकर अथवा केवल  
त्रिफला के रससे योनि को धोवै।

योनिरोग में अवलेह ।

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः

अर्थ—योनिरोग में पीपल, लाहचूर्ण,  
हरद इनका चूर्ण शहत के साथ चाटने से  
बहुत उपयोगी होता है ॥

योनिरोग में वस्ति कर्म ।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः  
पित्तसमधुरक्षीरावातैतैलाम्लसंयुताः ॥

सन्निपातसमुत्थायाःकर्मसाधारणमतम्।

अर्थ—श्लेष्मला योनि में कटुद्रव्यों से  
युक्त गोमूत्रकी वस्ति हित है। पित्तल योनि  
में मधुर क्षीर युक्त वस्ति तथा वातलायोनि  
में तेल और खटाई की वस्ति उपयोगी  
होती है। इसी तरह त्रिदोषज योनि रोगों  
में तीनों दोषोंकी मिली हुई चिकित्सा हित  
कर होती है ॥

रक्त प्रदर में चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णरजुवदंसमीक्ष्यच ॥

वतःकुर्याद्यथादे।परक्तस्थापनमौपधम् ।

अर्थ—जिस योनि में से रक्त बहता हो  
उस में रक्तका रंग देखकर दोषके अनुसार  
रक्तको रोकने की औपध देवै।

वातज रक्तप्रदरमें चिकित्सा ।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंशौकरीवसा ॥

सौंद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम् । च-  
राहस्यरसोमेध्यःसकौलन्थोऽनिलाधिकै-  
शर्करातैलयष्ट्याहनागैर्वायुतंदधि ॥

अर्थ—तिलका चूर्ण, दही, घी, राव, और  
शर्कराकी चर्बी इनको शहतके साथ सेवन  
करने से वातज रक्तप्रदर दूर होजाता है।  
अथवा कुलधाके काथमें तिद्ध किया हुआ  
शर्करा मांसरस देवै अथवा चीनी, तेल,

मुलहटी और सोंठ इनके साथमें दही देवी  
पैत्तिक रक्तप्रदरमें चिकित्सा ।

पयस्योत्पलशालकाविसकालीयकाम्बु-  
जान् ॥ सपयःशर्कराक्षौद्रपैत्तिकेऽमृगदरे-  
पिवेत् ।

अर्थ—पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली,  
नीलकमल, शालक, कमलनाल, कालीयक  
और पद्मकमल इनके कल्क को दूध, चीनी  
और शहत के साथ सेवन करने से पैत्तिक  
रक्तप्रदर दूर होजाता है ॥

पुण्यानुगचूर्ण ।

पाठाजम्बवाध्रयोर्मध्यांशेलाभेदंरसाञ्जनं  
अम्बुपर्फीमोचरसंसमङ्गावत्सकत्वचम् ।  
वाहीकातिविपेविल्वमुस्तालोध्रंसगैरिकम्  
कटफलमरिचंशुण्ठीमृशीकांरक्तचन्दनम् ।  
कटुङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकाजुनम् ।  
पुष्पेणोद्धृत्यतुल्यानिमूक्ष्मचूर्णानिकार  
येत् ॥ तानिषौद्राणसंयोज्यपिवन्नातण्डु-  
लाम्बुना । अर्शःसुचातिसारेपुरक्तंयश्चो-  
पवेक्ष्यते ॥ दोषागन्तुकृतायेचवाला-  
नांतांश्चनाशयेत् ॥ योनिदोषरजोदुष्टंश्वेतं  
नीलंसपीतकम् ॥ स्त्रीणांश्यावारुणं  
यच्चप्रसह्यविनियर्तयेत् । चूर्णपुण्यानु-  
गंनामहितमात्रेणपूजितम् ॥

अर्थ—पाठा, जामन की गुठली, आमकी  
गुठली, पाखानभेद, रसांजन, पाठा, मोच-  
रस लज्जाल, गुडाकी छाल, हींग, अतीस,  
वेलगिरी, मोथा, लोध, गेरू, कायफल, काली  
मिरच, सोंठ, दाख, रक्तचन्दन, श्यानाक,  
इन्द्र जी, अनन्तमूख घायके फूल, मुलहटी

और अर्जुन इन सबको पुष्प नक्षत्रमें  
इकट्ठे करके समान समान भाग मिलाकर  
चूर्ण बनालेवे । चूर्ण में शहत मिलाकर  
तंडुल जल के साथ सेवन करे । इसके  
सेवन से अर्श, अतिसार, जमाहुआ रुधिर,  
वाल्कोंके आगन्तुकदोष, योनिदोष, रजोदोष  
सफेद नीला पीला श्याव और अरुणप्रदरतौ  
अवश्यही दूर होजाते हैं । महर्षि आत्रेयसे  
प्रशंसित इस चूर्ण का नाम पुण्यानुग है ।

प्रदरमें अन्यचिकित्सा ।

तण्डुलीयकमूलञ्चसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना ॥  
सरसाञ्जनंलाक्षंवालागेनपयसापिवेत् ॥  
पत्रकलकौष्ठेभृष्टौराजादनकपित्थयोः ॥  
पित्तानिलहरैर्पित्तैस्सर्वैवास्त्रपित्तजित् ॥  
मधुकत्रिफलांलोध्रमुस्तंसौराष्ट्रिकामधु ।  
मथैनिम्बगुडच्यौतुकफजेऽमृगदरोपिवेत् ॥  
विरेचनंमहातिक्तंपित्तजंऽमृगदरोपिवेत् ॥  
शुभंगर्भपरित्वाचोक्तंसर्वेषुकारयेत् ॥

अर्थ—चौलाईकी जड़को घोटकर शहत  
और तंडुलजलके साथ पान करे, अथवा  
रसांजन और छालको बकरी के दूधके साथ  
शिवे । अमलतास और कैथ के पत्तों को  
पीसकर धीमें भूनकर सेवन करे तौ पैत्तिक  
प्रदर में वात पित्त और सब प्रकार के रक्त  
पित्त दूर होजाते हैं । कफज प्रदरमें मुलहटी  
त्रिफला, लोध, मोथा, सौराष्ट्रचूर्णिका,  
इनके कल्क को शहत के साथ सेवन करे  
अथवा नीमकी छाल और गिलोय के कल्क  
को मद्य के साथ पान करे । पित्तज प्रदर  
में कुप्राच्यायोक्त महातिक्तक घृतसे विरेचन

देवै तथा गर्भसाव के रोकने के लिये जो जो औषधें वर्णनकी गई हैं वेभी इसमें हित हैं।

रक्तयोन्यादि की चिकित्सा ।

काशमर्षकृतजकाथंसिद्धमुत्तरवस्तिना ।

रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चाहितेष्टृतम्  
मृगजाविचराद्वासृग्दध्यम्लफलसर्पिणा।

अरजस्कापिवेरिसद्वंजीवनीयैःपयोऽपिवा

अर्थ—कुडाकी छाल और खमारी इनके

काथ में चौथाई घृत पकाकर उत्तर वस्ति

द्वारा प्रयोग करने से रक्तयोनि, अरजस्का

और पुत्रघ्नी के दोष दूर होजाते हैं। हिरण

वक्रा, भेड और सूअर इन के रुधिर में

दही, खट्वाई और घी डालकर सेवन करे

अथवा जीवनीय गणकी औषधियां डालकर

सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से अरज

स्का योनि का दोष दूर होजाता है ।

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्रायचरणामुतु

कफवातेचयोक्तव्यतैलमुत्तरवस्तिना ॥

अर्थ—कर्णिनी, अचरणा, शुष्कयोनि,

प्राक्चरणा और कफवात से दूषित योनि

में यातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए

तेल की उत्तर वस्ति देवे ।

गोपित्तमत्स्यपित्तवाक्षीमंत्रिःसप्तभावितम्।

मधुनाकिष्वचूर्णवाद्यदचरणापहम् ॥

स्रोतसांशोधनंकण्डूक्लेदशोफहरञ्चतत्।

अर्थ—गौका पित्ता मछरी का पित्ता इन

में रक्षाभीषत्र के टुकड़े को इक्कीस भावना

देकर योनि में रख देवे अथवा मुरावीज के

चूर्ण में शहत मिलाकर योनि में रखलौइत

से अचरणा दोष दूर होजाता है, स्रोत शुद्ध

होजातेहैं तथा खुजली, कटेद और शोध दूर होजाता है ॥

वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलःप्रागभिचारणैः॥

आस्थाय्येचानुयास्येचस्वेद्येचानिलम्

दनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहश्चयु

क्तितः ॥ शताहापवगोधूमकिष्वकुष्ठ

प्रियंगुभिः । बलासुपर्णिकाश्वाहैःसं

याशोधरणःस्मृतः ।

अर्थ—प्राक्चरणाऔर अचरणा इनदोनो

योनियों में वातनाशक शतपाक तैलों द्वारा

आस्थापन और अनुवासन बस्तिदेवे और

वात नाशक द्रव्यों द्वारा स्वेदन करावै। वायु

नाशक द्रव्यों का आहार तथा वायुनाशक

उपनाह करना चाहिये । सोंफ, जौ, गेहूं,

मुरावीज, कूठ, प्रियंगु, खैरटी, मूषिकपर्णी

और असंगंध इनका कल्क योनि में धरे ॥

वागिनीऔरआप्लुतायोनिमेंचिकित्सा

वामिन्याप्लुतयोन्याश्चकर्तव्यःस्वेदनेऽ

पिवा । क्रमःकार्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्त

र्पणभवेत् ॥ शल्लकीजिगिनीजम्बूवत्सव

कूपश्चवल्कलैः । कपायैःसाधितःस्नेहः

पिचुःस्याद्विप्लुतापहः॥

अर्थ—वामिनी और आप्लुता योनि में

प्रथम स्वेदन करके पाँछे संस्कार किये हुए

स्नेह का फोआरखकर संतर्पण करे शल्ल-

की, मजीठ, जामनकी छाल भौकी, छाल

और पंचवल्कल इन के काथ में सिद्ध किये

हुए तेल को फोआ विप्लुता योनि में रखने

से रोग की शान्ति होती है॥

कर्णिनीयोनिमंचिकित्सा ।

कर्णिन्यांवर्तिकाकुष्ठपिप्पल्याकग्रसैन्धवैः  
वस्तिमूत्रकृताधार्यासर्वचश्लेष्मनुद्धितम् ॥

अर्थ—कर्णिनीयोनिमें कूठ, पीपल, आक  
की डाली का अग्रभाग और सेंधानमक इन  
को बफरे के मूत्र के साथ पीसकर कल्क  
करलेवै, फिर इसकी बत्तीसी बनाकर योनि  
में रखै तथा इस में कफनाशक सब प्रकार  
की क्रिया भी हित हैं ।

उदावृत्तायोनि की चिकित्सा ।

त्रैवृत्तस्नेहनस्वेदोग्राग्न्यान्पादकारसाः ।  
दशमूलपयोवस्तिश्चोदावर्त्तानिलातिपु ॥  
त्रैवृत्तेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः ।  
तदेवचमहायोन्यांस्तस्तायाश्चाविधीयते ॥  
चसाकृश्वराहाणांघृतञ्चमधुरैःशृणम् ।  
पूरयित्वा महायोनिं बध्नीयात्क्षीमनक्तकैः ॥

अर्थ—वाताधिक्य उदावृत्तायोनि में नि  
सोथ का विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, ग्राम्य आ  
नूप, और जलज पशुपक्षियों का मांसरस  
और दशमूल के काथ में सिद्ध किये हुए  
दूध की वस्ति देवै । इसमें निसोथके साथ  
सिद्ध किये स्नेह की वस्ति और उत्तर वस्ति  
भी हित होती है । शिथिल हुई महायोनि  
में भी यही क्रिया हित होती है । रीछ और  
सूअर की चर्बी और घृत मधुर गणक काथ  
के साथ सिद्ध करके योनि में भरकर ऊपर  
से रेशमीबस्त्रकी पट्टी बांधदेवै ।

यहिः निष्क्रान्तयोनि की चिकित्सा ।  
प्रस्थस्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेक्ष्य-  
चावध्नीयाद्देशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः

अर्थ—जो योनिवाहर निकलआई हो उ  
सपर घृत चुपडकर दूध से स्वेदित करके  
भीतर को प्रवेश करदेवै । और वेशवारका  
पिण्डा उस के मुखपर रखकर बांधदेवै जि-  
स से फिर बाहर न निकलने पावै, और  
मूत्र की आशंका होने पर उसे खोलदेवै ॥  
यद्यवातविकाराणां कर्मोक्तं तच्च कारयेत् ।  
सर्वव्यापत्स्मृतिमान्महायोनिं वा विशेषतः

अर्थ—वातविकारों में जो जो चिकित्सा  
शुभ फलदायक हैं वे सब भी इस जगह  
सब प्रकार के योनिरोगों में करनी चाहिये  
परन्तु महायोनि में वातनाशक चिकित्साका  
विशेष ध्यान उचित है ।

नहिवातादृतेयोनिर्नारीणांसंमदुप्यति ।  
शमयित्वा तमन्यस्य कुटुर्याहोपस्य भेषजम् ॥

अर्थ—वातके अतिरिक्त और किसी का  
रण से योनिरोग नहीं हुआ करते हैं, इस  
से प्रथम वातको शमन करके और दोनोंकी  
चिकित्सा करनी चाहिये ।

पांडुमदरमें चिकित्सा ।

मूलकलंकतुरोहीतात्पाण्डुरमदरेपिबेत् ।  
जलेनामलकाद्रीजकलंकाससितामधु ॥  
मधुनामलकाच्चूर्णरसं बालेहयेत्सिते ।  
न्यग्रोधत्वक्पायेणलोघ्रकल्केनवापिबेत् ॥

अर्थ—पांडुमदर में रोहेडे की जड़का कल्क  
करके जल के साथ पीवै, अथवा आंवले के  
बीजों को पीसकर चीनी और शहत के साथ  
पीवै, अथवा आंवले का चूर्ण वा रस शहत  
के साथ पीवै । अथवा बड़की छाल के  
क्वाथ में लोघ का कल्क मिलाकर पीवै ॥

योनिस्त्राय में चिकित्सा ।

आस्तावेसौमपट्टंवाभावितंनेऽनुधारयेत् ।  
प्लुतत्वक्चूर्णीपिण्डंवाधारयेन्मधुनोऽतम् ।  
योन्यास्त्रेहाक्तयालोऽप्रमिषंशुमधुकस्यच ।  
धार्यामधुयुतावर्तिःकपायाणाञ्चसर्वशः॥  
स्त्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः॥  
सरलागुग्गुलुपर्वःसतैलकदुमत्स्यकैः ॥

अर्थ—योनिस्त्राय में बड़की छाल के का  
थ अथवा लोध की छालके ब्याध में रेशमी  
वस्त्र के एक टुकड़ेको भावना देकर योनि  
में रखकर धांवदेवै अथवा पाकडकी छाल  
का चूर्ण वा कल्क का पिंडा शहत के साथ  
बनाकर योनि में रखदेवै । अथवा योनिमें  
सोह लगाकर लोध, प्रियंगु, मुलहठी इनके  
कल्क को शहत में सानकर बत्ती बना-  
कर योनि में रखदेवै अथवा सब प्रकार के  
कपाय रस वाले द्रव्यों के कल्क में शहत  
मिलाकर योनि में रख देवै । अथवा स्त्राय  
को दूर करने के लिये सरलकाष्ठ, गुग्गुल,  
जौ, फटु तेल और मछली इन के कल्क  
को घी में सानकर योनि में घूप देवै ॥

पिच्छिलायोनि की चिकित्सा ।

फासीशत्रिफलाकाच्छीसाम्रजम्ब्वस्थि-  
धातकी । पैच्छिल्येसौद्रसंयुक्तःचूर्णोवि-  
शद्यकारकः ॥ पलाशसर्जजम्बूत्वक्समं  
गामोचधातकीः । सपिच्छिलपरिकिञ्चा  
स्तम्भनःकल्कद्विष्यते ॥

अर्थ—पिच्छिल योनिमें कसीस, त्रिफला,  
अडहरकी जड़, आमकी, गुठली, जामनकी  
गुठली, धायके फ़ड़ इन के चूर्ण को शहत

में सानकर रखने से विंशदता होती है ।  
ढाककीछाल, राठ, जामनकी छाल, उज्जाड़  
मोच और धाय के फ़ड़ पासकर योनि में  
रखने से गिलगिलापन और शिथिलता दूर  
होजाती है ॥

योनि के अन्यदोषों की चिकित्सा ।  
स्तब्धानां कर्कशानाञ्च पिण्डोमार्दवकार-  
कः । धारयेद्देशवारंवापायसंकुश्ररं तथा ॥  
दुर्गन्धानां कपायः स्यात्तलं वा कल्क एव वा  
चूर्णवासर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥

अर्थ—योनि की स्तब्धता और कर्कश-  
ता दूर करने के निमित्त वेशवार, पायस वा  
कुशरा का गोला बनाकर योनि में रखवै  
योनि की दुर्गन्धि दूर करनेके लिये सुगंधित  
द्रव्यों का तेल, वा कल्क वा सर्वगंध का  
चूर्ण लगाने से दुर्गन्धि जाती रहती है ॥

योनि चिकित्सा का उपसंहार ।

एवं योनिपुमुद्धासुगर्भं विन्दन्ति योऽपितः ॥  
अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे सति ॥

पञ्चकर्म्या विशुद्धस्य पुरुषस्यापि चेन्द्रिय  
म् । परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्ग्रेष्ठापचरे  
त् । स लिङ्गाव्यापदो योनिः स निदानचि-  
कित्सिताः ॥ उक्ताविस्तरतः सम्यक् समु-  
नातश्च दर्शिता ।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए प्रयोगों से  
योनि्यों के शुद्ध होने पर तथा प्राकृतकर्म  
और बीज के निर्दोष होने से गर्भ में जीव  
का संचार होने पर स्त्रियों के गर्भ रहजा-  
ता है । इसी तरह जो पुरुषोंका धीर्य दू-  
षित हो तो उसे यमन विरेचनादि पंचक-



मौसे शुद्ध करके विगडे हुए वीर्यके वर्णकी परीक्षा करके उस दोषके दूर करने वाली चिकित्सा करे ॥

तत्त्वदर्शी भगवान् पुनर्वसुने योनिके भिन्न भिन्न रोग, उनके लक्षण, निदान और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन की है ।

शुक्रदोष का प्रकरण ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपमच्छभिपजांवरम् ॥

आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोषास्त्वयानघ ॥

रोगाध्यायेसमुद्दिष्टाष्टौपुंतामश्रेयतः ॥

तेषां हेतुं भिषक् श्रेष्ठदुष्टदुष्टास्य चाकृतिम् ।

चिकित्सितश्चकारस्वर्णैर्नवलैर्बन्धयश्चतु

र्विधम् ॥ उपद्रवेपुयोनीनां प्रदरो यश्च की

र्तितः । तेषां निदानं लिङ्गञ्च चिकित्सां

चैव तत्त्वतः ॥ समासव्यासयोगेन प्रवृद्धि

भिषजांवरः । तस्मै शुभ्रपमाणाय प्रोवा

चमुनिपुद्गवः ॥ वीजं यस्माद्वयवायाचह

र्पयोनिसमुत्थितम् । शुक्रं पौरुषमिच्छुक्तं

तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥

अर्थ—अग्निवेश ने भिषज्ज्वर पुनर्वसुसे

फिर पूछा कि हे भगवान् आपने अष्टोदरीय

रोगाध्याय में पुरुषों के आठ प्रकार के

शुक्र दोष वर्णन किये थे, सो हे प्रभो वीर्य

के दूषित होने के हेतु, दूषित और निर्दू-

षित वीर्यकी आकृति, दूषित वीर्य की

चिकित्सा, चार प्रकार के क्लेशरोग, तथा

योनिरोगों में वर्णन किये हुए प्रदररोग का

निदान, लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और

विस्तार दोनों रीति से वर्णन कर दीजिये ।

यह सुनकर मुनिपुंगव आत्रेयबोले कि पुरुष

का बीज अर्थात् शुक्र मैथुन में हर्ष और योनि के स्पर्श से उठता है यह बात प्रथम वर्णन कर दी गई है, अब जिस तरह उस वीर्यमें दोष उत्पन्न होते हैं, उसका वर्णन करता हूँ वीजके विगडने में दृष्टान्त ।

यथा गीजमकालाम्बुकमिकीटाग्निदूषितम् नावरोहति सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी बर्षा, कीड़े, कीट या अग्नि के कारण बिगड़ा हुआ बीज अंकुरित नहीं होता है इसी तरह मनुष्यों का बिगड़ा हुआ वीर्य भी संतान के उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता है।

वीर्यके दूषित होने का कारण

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्स्यानाश्च संवे

नात् । अकाले चाप्ययोनौ वामैथुनं न दग्ध

च्छतः । रुक्षतित्क कपाया तिलवणाम्लोष्ण

सेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जर

या तथा । चिन्ताशोकाद्विस्मभाच्छस्त्र

क्षाराग्निभिस्तथा ॥ भयात् क्रोधादभी

चाराद्व्याधिभिः कपितस्य च ॥ घेगाद्यां

तात्क्षयाच्चापि धातूनां संमदूषणात् ॥

दोषाः पृथक्समस्तावाप्यप्यरेतो यहाः शिराः

शुक्रं संदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामि विभागशः ॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त शारी-

रिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य द्रव्यों का

सेवन, कुसमय मैथुन या अधोनि से मैथुन

अगम्य योनि में मैथुन, रुक्ष तिक्त और

कपाय द्रव्यों का अत्यन्त सेवन, अत्यन्त

नमकीन, खड़े और उष्ण पदार्थों का सेवन

अत्यन्त मीठे, चिकने और मारी अन्न का

सेवन (नारीणामरसज्ञानांतरणादित्यपिपाठः)  
 सुहापा, चिन्ता, शोक, प्रकाश स्थान में  
 स्त्रीगमन, शस्त्रकर्म, अग्नि कर्म और  
 क्षार कर्मका अयोग्य प्रयोग, भय, क्रोध  
 अभिचार, रोगादि द्वारा कर्षण, मलमूत्रादि  
 वेगों का अवरोध, धातुकी क्षीणता, तथा  
 धातुओं का दूषित होना इन कारणों से  
 सम्पूर्ण दोष पृथक् २ वा मिलकर धीरेवाही  
 शिराओं में पहुँचकर शुक्र को शीघ्रहीनदूषित  
 कर देते हैं, अब उनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं  
 दूषित शुक्रके भेद ।

फेनिलंतनुरुक्षञ्चविवर्णपूतिपिच्छिलम् ॥  
 अन्यधातूपसंसृष्टव्यसादितथाष्टमम् ॥

अर्थ—दूषित धीरे आठ प्रकारका होता  
 है यथा—झागदार, पतला, रुखा, विवर्ण,  
 दुर्गन्धित, गिलागिला, अन्यधातु से मिला  
 हुआ और अवसादी ।

वातदूषित शुक्र के लक्षण ।

पातेनफेनिलंशुष्कं कृच्छ्रेणपिच्छिलंतनु ॥

भवत्युपहतंशुक्रं नतद्गर्भायकल्पते ॥

अर्थ—वातके कारण शुक्र झागदार,  
 शुष्क, पिच्छिल, पतला और कठिनता से  
 बाहर निकलने वाला होजाता है, वात से  
 बिगड़ा हुआ शुक्र गर्भ उत्पन्न करने के  
 योग्य नहीं होता है ।

पित्तदूषित शुक्र के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णं पूतिगन्धिच ॥

ददेच्छिंघ्रिनिर्घातिशुक्रं पित्तेन दूषितम् ।

अर्थ....पित्त से बिगड़ा हुआ शुक्र कुछ  
 नीला, पीछा, अत्यन्त उष्ण और दुर्गन्धित

होता है तथा बाहर निकलने के समय बड़ा  
 दाह होता है ।

कफदूषित शुक्रके लक्षण ।

श्लेष्मणावदमार्गंतुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम्

अर्थ—कफदूषित धीरे का कफके कारण  
 मार्ग रुकजाता है और वह अत्यन्त गिला-  
 गिला होजाता है ॥

अन्य हेतुओं से दूषित शुक्र के लक्षण  
 स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि  
 शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥

अर्थ....अत्यन्त स्त्री गमनसे, अभिघात  
 से वा क्षीण होने से जो शुक्र निकलता है  
 उस में रुधिर मिलारहता है ॥

अवसादी शुक्रके लक्षण ।

वेगसन्धारणात्शुक्रं वायुनाविहितं पथि ।

कृच्छ्रेण याति प्रथितमवसादितथाष्टमम्

इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सल

क्षणाः ।

अर्थ—मल मूत्रादि के उपस्थित वेगोंके  
 रोकने से शुक्र मार्ग में विहृत होकर बड़ी  
 कठिनता से गाँठदार होकर निकलता है, इसे  
 ही अवसादी शुक्र कहते हैं ॥

इस तरह शुक्र के सलक्षण आठों दोषों  
 की व्याख्या की गई है ।

शुद्ध शुक्र के लक्षण ।

स्निग्धघनपिच्छिलमधुरञ्चाविदाहिच  
 रेतः शुद्धं विजानीयाच्छुतस्फाटिकसन्नि-

भम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर,  
 अविदाही और स्फटिकके समानश्वेत शुक्र  
 शुद्ध होता है ॥

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैःसुखैर्हितैः ॥  
रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा ।  
दुष्टं यथाभवेद्रेतःततस्तत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—वाजीकरण योगोक्त सुखदाई प्र-  
योग, रक्तपित्तनाशक योग, योनिरोगनाशक  
योग, इनसे जो शुक्र विगड़ जाताहै उसकी  
चिकित्सा निम्नलिखित रीति से करे ।  
घृतञ्चजीवनीयंयच्छ्यावनःप्राशएवच ॥  
गिरिजश्चप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥

वातान्वितेहिताःशुक्रैरनिरूहाःसानुवासनाः  
ब्राह्ममामलकीयश्चपित्तेशस्तरसायनम् ॥  
मागध्यमृतलोहानांत्रिकलायारसायनैः ॥  
कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच ॥  
अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रंवीक्ष्यभिपक्तमैः ॥  
यथादोषंप्रयोज्यंस्यादोषधातुभिपग्निम् ॥

अर्थ—जीवनीय घृत, श्यावनप्राश और  
शिलाजतु-प्रयोग वीर्य दोषों का दूर करते  
हैं । वातान्वित शुक्र में निरूहण और  
अनुवासन वस्ति हित है । पित्तान्वित शुक्र  
में ब्राह्मरसायन और अभयामलकीय रसाय-  
न हित है । कफान्वित शुक्र में पिण्डी  
रसायन, गुडूचीलौह, त्रिकला रसायन और  
भल्लातक प्रयोग हित हैं । यदि शुक्रमें अन्य  
धातुका संसर्ग हो तो उसकी परीक्षा कर-  
के यथादोष उसकी चिकित्सा करने में  
प्रवृत्त होना चाहिये ।

शुक्रदोष में साधारण प्रयोग ।  
सर्पिःपयोरसाः शालिर्यवगोधूमपट्टिकम्  
प्रशस्तंशुक्रदोषेषुवस्तिकर्मविशेषतः ॥

अर्थ—शुक्र दोषों में घी, दूध, मांसरस,

शालीचावल, जौ, गेहूँ और साठी चावल  
हित हैं और वस्तिकर्म विशेष करके उप-  
योगी होता है ॥

कलीवता के अन्यकारण ।  
रेतोदोषोद्भवकैव्यंयस्माच्छुद्धौवसिद्ध्य-  
ति । अतोवक्ष्यामि तेसम्यग्गग्निवेशः । य-  
थातयम् ॥ वीजध्वजोपघाताभ्यांजरया  
शुक्रसंक्षयात् । वैकल्यसम्भवस्तस्यमृषु  
सामान्यलक्षणम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! शुक्रके दोषसे जो  
कलीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होने ही  
पर मिट जाती है । अब मैं यथा रीति से  
तेरे सामूहिक कहता हूँ । कलीवता के चार  
कारण हैं, यथा वीर्यदोष, प्वजभंग, वृद्धावस्था  
और वीर्यकी क्षीणता । अब मैं इन के  
सामान्य लक्षणों का वर्णन करता हूँ ।

कलीवताके साधारण लक्षण ।  
सङ्कल्पप्रणवोनिर्त्यंभियां वक्ष्यामपिस्त्रिय-  
म् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति-  
वापुमान् । श्वासारतःस्विन्नगात्रांसोमोघ-  
संकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्वाननिर्वाजः  
स्यादेतत्कैव्यलक्षणम् । सामान्यलक्षणं  
हेतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—यदि मनुष्य इच्छा उत्पन्न होने  
पर भी लिंगकी शिथिलताके कारण अपनी  
प्रिया और वशीमूना स्त्रियों के पास भी नहीं  
जा सकता है और जो जाता भी है तो  
श्वास चलने लगता है पसीने आजाते हैं,  
उसका संकल्प व्यर्थ होजाता है, चेष्टाव्यर्थ  
होजाती है, शिश्नेन्द्रिय शिथिल पड़जाती है

निर्विज होजाती है, तब इसी को क्लीवता या नामर्दी कहते हैं, क्लीवताके ये सामान्य लक्षण हैं अब विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं।

**वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण।**

शीतरुक्षाल्पसंक्षिष्टविरुद्धार्जीर्णभोजनात् शोकचिन्ताभयत्रासास्त्रीणांचाल्पार्थसेवनात्। अभीचारादविसम्भाद्रसादीनांच संक्षयात् ॥ घातदीनामोजसश्रवणश्रवणच्छमात्। नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्मपचारतः। वीजोपघातोभवतिपाण्डुवर्णः सुदुर्बलः॥ अल्पमाणोल्पहर्षश्चमदासुभवेन्नरः॥ हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः। छर्द्यतीसारशूलार्तःकासज्वरानिपीडितः। वीजोपघातजं ह्येवं ध्वजभनकृतं गृणु ॥

**अर्थ—**शीतल, रुखा, अल्प, गृष्ट, विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, त्रिषोंका अत्यन्त सेवन, अभिचार, आविर्लभ, रसादि धातुओं की क्षीणता, वातादिक धातुओं की विषमता, भोज की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञस्त्रीगमन वमनादि पंचकर्मों का योगातियोग, इन कारणों से शुक्र का नाश होता है, इससे पुरुष पांडुवर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है, उसकी प्रमदा स्त्रियों में अनिच्छा और निश्चोष्टिता होती है, इससे पाले हृद्दोग, पांडुरोग, समकदवास कामला और श्रम होता है। उसके वमन, आतिसार, शूल और कासज्वर की उत्पत्ति होती है। ये वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण हैं। अब ध्वजभंग से हुई क्षीयता के लक्षण कहते हैं

**ध्वजभंग के हेतु।**

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धार्जीर्णभोजनात्। अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्तगुरुभोजनात् दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात् कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि॥ दीर्घरोम्नीचिरात्सृष्टांतैवचरजस्वलाष्टुर्गन्धांदुष्टयोनिचतथैवचपीरसुताम्॥ ईदृशीममदामोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः॥ चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः॥ अधावनाद्गोमदस्यशस्त्रदन्तनखक्षतात्। काष्ठमहारनिष्पेषशूकानांचातिसेवनात्॥ रेतसश्चमतीघातावध्वजभङ्गः प्रयत्नेते॥

**अर्थ—**अत्यन्त खट्टे, नमकीन, क्षारयुक्त विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन, अत्यन्त जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्त भोजन, गुरु भोजन, दही दूध और मांस का अत्यन्त सेवन, व्याधिद्वारा कर्षण, कम उमरकी स्त्री से गमन, अयोनिगमन, दीर्घरोमवाली स्त्री से गमन, बहुत दिनसे जिसने पुरुषसंसर्ग त्यागदियाहो ऐसी स्त्रीसे गमन, रजस्वला से गमन, दुर्गन्धयोजि गमन, दुष्टयोजि गमन, स्त्रावयुक्त योजि गमन, ऐसी स्त्री में मोह वा हर्ष से गमन करना, गौ भेंस आदि चौपायों से गमन करना, लिंग में चोट लगना, लिंग का प्रक्षालन न करना, उस्तरा, दांत वा नख से घाव होना, लकड़ीकी चोटलगना निष्पेषण, ( हस्त मैथुन ) शूकप्रयोगों का अत्यन्त सेवन और वीर्यका नाश। इन सब कारणों से ध्वजभंग होता है।

**ध्वजभंगके लक्षण।**

भयभुर्वेदनामोद्वेगार्थैवोपलक्ष्यते ॥ रफो

टाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि ।  
मांसवृद्धिर्भवेचास्पत्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि ।  
पुलाकोदकसङ्काशःस्त्रावःश्यावारुणममः ।  
पलर्याकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहम् ॥  
ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छदिश्चास्योप-  
जायते ॥ रक्तकृष्णंघ्रवेच्चापिनीलमा-  
यिललोहितम् । अग्निनेत्रचदग्धस्यतीव्रो-  
दाहःसवेदनः ॥ वस्तौतृष्णयोर्वापिसी-  
वन्पात्रंक्षमेपुच । कदाचित्पिच्छिलोचा-  
पिपाण्डुस्त्रावश्चजायते ॥ न्ययधुश्चभवे-  
न्मन्दस्त्रिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिरात्स-  
पाकंन्रजतिशीघ्रंवाधप्रपद्यते ॥ जायन्ते-  
क्रिमयश्चापिपिलयतेपूतिगन्धिच । प्रशी-  
र्यतेमणिश्चास्यमेदमुष्कावथापिच ॥ ध्व-  
जमङ्गकृतंवल्लेव्यंइत्येतत्समुदाहृतम् । ए-  
वंपञ्चविधंकेचित्ध्वजभंगवदन्त्यपि ॥  
अर्थ—मेदू में सूजन, वेदना और लड़ाई  
उत्पन्न होआती है । घड़े तीव्र फोड़े और  
लिंगपाक भी होता है, लिंगका मांस बढ़-  
जाताहै, घाय जल्दी २ होजाते हैं, पुलाक  
के जलके सदृश श्याम और अरुणरंग का  
स्त्राव होने लगता है, लिंग में टेढ़ापन,  
कठिनता और स्तब्धता होती है, ज्वर,  
तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, और वमन ये उपद्रव  
होभाते हैं । नाँडा, लाल, काला, मैला  
और लोहितवर्ण का स्त्राव होता है, अग्नि-  
द्वारा जलनेके समान तीव्र दाह और वे-  
दना वस्ति, वंक्षण, अंडकोप और सीवनी  
में होने लगती है, कभी कभी पिच्छिल  
और पांडुवर्ण का स्त्राव भी होता है, मन्द

स्तिमित और अल्पस्राववाली सूजन होती  
है, पाक देर में होताहै और कभी २ शीघ्र  
भी होजाता है, फोड़े पड़जाते हैं, सड़ीहुई  
गंध आनेलगती है, मणि, मेदू और मुष्क  
विशीर्ण होजाते हैं । यह ध्वजभंग की क्री-  
यता के लक्षण हैं । कोई कोई ध्वजभंग के  
पांचभेद कहते हैं ।

जरासंभवक्रीवताके लक्षण ।

लैव्यंजरासम्भवंहिमवक्ष्याम्यथतच्छृणु ।  
जघन्यमध्यमवरंवयस्त्रिविधमुच्यते ॥  
अथमवयसांशुक्रंप्रायशःक्षीयतेनृणाम् ।  
रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात् ॥  
यलयर्णेन्द्रियाणांचक्रमैषैवपरिक्षयात् ।  
परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्र-  
मात् ॥ जरासम्भवजंवल्लेव्यंइत्येतैर्हेतुभि-  
रुणाम् । जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसु-  
दुर्बलः ॥ विवर्णोविह्वलोदीनःक्षिप्रंव्या-  
धिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थ-  
क्षयजंमृणु ॥

अर्थ—अवहम वृद्धावस्था से उत्पन्नहुई  
क्रीवता के लक्षण कहते हैं । मनुष्य की  
तीन प्रकारकी अवस्था होतीहै, यथा जघन्य  
( बालापन ), मध्य ( यौवन ) और प्रवर  
( बुढ़ापा ) । बड़ी हुई अवस्था वाले मनु-  
ष्यों का शुक प्रायःक्षीण होजाता है क्योंकि  
रसादि धातु क्षीण होती चलीजाती है और  
पुष्टिकारक द्रव्यों का सेवन नहीं करतेहैं इस  
से बल वर्ण और इन्द्रियों का पराक्रम क्रम  
से क्षीण होता चलाजाता है । आयु के  
क्षीण होने से, आहारकी शक्ति न रहने से

और श्रम से जरासंभव क्लीबता होती है, इससे मनुष्य की धातु अत्यन्त क्षीण पड़ जाती है और वह दुर्बल होजाताहै, वह वि-वर्ण, विह्वल हीन और शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाताहै, यह जरासंभव क्लीबता है अब चौथी क्षयज क्षीणता को सुनो ।

**क्षयज क्लीबता ।**

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि ईर्ष्यात्कण्ठादथोद्वेगात्समाविशतियो-  
नरः ॥ कृशोवासेवतेरुभ्रमभ्रपानमयौ-  
पधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्य-  
दि ॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्य-  
वस्थितः ॥ रसःप्रधानधातुर्हिंसीयेताशु-  
नरस्ततः । रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्त-  
स्यदेहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्योहिशु-  
क्लंभामपरंमतम् । चेतसोवातिहर्षेणव्य-  
घायंसेवतेतुयः ॥ शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततः  
मामोतिसंक्षयम् । घोरांव्याधिमवामोति-  
मरणंवासमृच्छति ॥ शुक्रंतस्माद्विशेषेण  
रक्ष्यमारोग्यमिच्छता । एतीन्द्रदानलिंगा

**भ्यामुक्तंलैव्यंचतुर्विधम् ।**

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कंठा और उद्वेग से सदा घ्नानाश्रित रहताहै, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्बल प्रकृ-  
तिका है, उपवास बहुत करता है, वा अल्प  
[ वा असाध्य ] भोजन करता है उसका  
हृदयस्थ प्रधान धातुरस शीघ्रही क्षीण हो-  
जाताहै, उस मनुष्यके रक्तादिक शुक्र पर्य-

न्त सब धातु क्षीण होजाते हैं । और शुक्र ही सब धातुओंका तेजस्वरूप है अथवा जो मनुष्य चित्तकी अत्यन्त हर्षता से मैथुन में प्रवृत्त होता है, उसका शुक्र क्षीण हो-  
जाता है और क्षयरोग उपस्थित होता है, अथवा घोर व्याधियोंके होने के कारण यह मृत्युका प्रास होजाता है ।

इसी हेतुसे जो मनुष्य आरोग्यता की इच्छा करता है उसे शुक्र की अत्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये ।

इस तरह चारों प्रकारकी क्लीबता के निदान और लक्षण वर्णन किये गये हैं ।

**असाध्य क्लीबता ।**

केचित्कैर्न्येत्यसाध्यमेध्वजभङ्गक्षयोद्भवे ॥  
वदन्तिशेफमश्नेद्वावृणोत्पाटनेनवा ॥

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि ध्वज भंगज और क्षयज क्लीबता असाध्य होती है और कोई यह कहते हैं कि शेफ में छिद्र होने वा अंडकोशों के फटने से जो क्लीबता होती है वह भी असाध्य होती है ।

**अन्य क्लीबताओं को असाध्यत्व ।**

मातापित्रोर्वीजदापादभुभैश्चकृतात्मनः ॥  
गर्भस्थस्ययदादोषाः प्राप्तेरतोवहाः शिराः  
शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ।  
तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान् ॥  
एतेत्वसाध्यान्प्राख्याताः सान्निपातसमु-  
च्छ्रयात् ॥ चिकित्सितमतस्तूर्ध्वसमास-  
व्यासतःमृणु ॥

अर्थ—मातापिता के बीज दोष से, अपने पूर्व जन्म के किये हुए अशुभकर्मों से जब

गर्भस्थ दोष शुक्रवाही स्त्रोतो में पहुँच कर उन्हें शुष्क कर देते हैं और उनके शुष्क होने से शुक्र भी नष्ट होजाता है । ऐसा पुरुष सम्पूर्ण अंगोपांग समेत जन्म लेने पर भी क्लीब होता है ।

यह क्लीबता सन्निपातकी उदीर्णताके कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती है ।

अब यहाँ से संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे क्लीबताकी चिकित्साकार्थनकरते हैं

**कलैव्य की संक्षिप्त चिकित्सा ।**

**शुक्रदोषे पुनर्दिष्टं भेषजं न्ययानघ !**

**कलैव्योपशान्तये कुर्यात् क्षीणक्षताहितञ्च यत् ।**

**यस्तयः क्षीरसर्पापिष्टप्ययोगाश्च ये म-**

**ताः ॥ रसायनप्रयोगाश्च सर्वानेता न्य-**

**योजयेत् । समीक्षयेद्देहदोषाग्निबलभे-**

**पजकालवित् ॥ व्यवाये हेतुजं कलैव्यं य-**

**स्याद्धेतुविपर्ययात् । देव्यप्राश्रयश्चै-**

**व भेषजश्चाभिचारजम् । समासेन न दुश्चि-**

**ष्टं भेषजं कलैव्यशान्तये । विस्तरेण प्रवक्ष्या-**

**मि कलैव्यानां भेषजं पुनः ॥**

**अर्थ—**हे अनघ! शुक्रदोष के दूर करने

के लिये जो जो चिकित्सा में कही हैं

तथा क्षीणक्षत में जो जो चिकित्सा उपयो-

गी हैं वे सब क्लीबताको दूर करनेमें उप-

योगी हैं । देह, दोष, अग्नि, बल, औषध

और काल का विचार करके वस्ति, दूध,

घृत, वृष्ययोग और रसायन के प्रयोग

करने चाहिये ॥ व्यवाये हेतुज विपरीत हेतुसे उ-

पन्न और अभिशापज क्लीबताको देव्य-

प्राश्रय औषधियोंसे दूर करनेका प्रयत्न करे

क्लीबता दूर करने के ये संक्षिप्त उपाय वर्णन किये गये हैं अब इसकी चिकित्सा का विस्तार वर्णन किया जाता है ॥

**बीजोपघातकी चिकित्सा ।**

**सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य स्नेहयुक्तं विरेचनं प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् ।**

**पलाशैरण्डमुस्तार्धैः पश्चादास्थापयेत्ततः ॥**

**वाजीकरणयोगाश्च पूर्वये समुदाहृताः ।**

**भिपजाते प्रयोज्याः स्युः कलैव्ये बीजोप-**

**घातजे ॥**

**अर्थ—**क्लीबरोगी को अच्छी तरह अ-

भ्यक्त करके पसीने देवे फिर स्नेहयुक्त

विरेचन देवे, तत्पश्चात् अनुवासन करे

देवे ॥ पीछे ढाक, बरंड और मोथा के काथ

आदि से आस्थापन देवे और पहिले जो

वाजीकरण प्रयोग वर्णन कर दिये गये हैं

वे सब इस बीजोपघातज क्लीबता में हित हैं

**ध्वजभंग में चिकित्सा ।**

**ध्वजभंगकृतं कलैव्यं श्लात्वा तस्याचरोत्क्रि-**

**याम् । प्रदेहान्परिपेकाश्च कुट्याद्वारक्त-**

**मोक्षणम् ॥ स्नेहपानञ्च कुर्वीत स्नेहं वा**

**विशोधनम् । अनुवासनं ततः कुर्यादथ**

**वास्थापनं पुनः ॥ व्रणवचक्रियाः सर्वास्त**

**त्रकुर्याद्विचक्षणः ॥**

**अर्थ—**ध्वजभंगज क्लीबता में प्रदेह,

परिपेक, रक्तमोक्षण, स्नेहपान और स्नेह-

युक्त विरेचन हित है । पीछे अनुवासन

और आस्थापन करके व्रणवत् क्रिया करे ।

**जरासंभवकलैव्यकी चिकित्सा ।**

**जरासम्भवजे कलैव्ये क्षयजे चैव कारयेत् ।**

स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहशोधनंहितम् ॥  
क्षीरसर्पिर्दृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः ।  
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥  
विस्तरेणैतदुद्दिष्टवैद्यनानाभेषजमया ॥

अर्थ—जरासंभव और क्षयज कटीवतारों  
स्नेहन स्वेदन करके स्नेहयुक्त विरेचन  
देवै । दूध, घी, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और  
रसायन प्रयोग इन रोगों में हित हैं ।

यह कटीवतारोंकी विस्तारपूर्वक चिकि-  
त्सा वर्णन की गई है ।

### प्रदरवर्णन ।

यः पूर्वमुक्तः प्रदरः शूलहेत्वादिभिस्तुतम् ॥  
यात्यर्थे सवतेनारीलवणाभ्लगुरुणिच ॥  
कटुन्धविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच  
प्राग्यौदकानिसेव्यानेकसर्पायसंदधि  
शुक्तमस्तुसुरादीनिभजन्त्याः कुपितोऽनिलः  
रक्तप्रमाणमुत्कम्प्यगर्भाशयगताः शिराः ।  
रजोवहाः समाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः ॥  
यस्माद्विबर्ज्यस्याशुरक्तीपत्तंसमारुतम् ॥  
तस्मादसृग्दरं प्राहुरेतत्तन्त्रविशारदाः ॥  
रजःप्रदीर्यते तस्मात्प्रदरस्तनसमृतः ॥

अर्थ—जो प्रथम प्रदररोग वर्णन किया  
गया है अब उसके हेतु आदिका वर्णन करते हैं  
जो स्त्री अत्यन्त खट्टे, नमकीन और भारी  
पदार्थों का सेवन करती हैं, जो कटु विदाही  
स्निग्ध तथा प्राग्य और औदक पशुओं का  
मांस सेवन करती हैं, जो सिचडी, खीर,  
दही, शुक्त और सुरा आदिका अत्यन्त  
सेवन करती हैं, उनकी वायु कुपित होकर  
रक्तको प्रमाण से अधिक निकालने लगती है

उस समय रजोवाही शिराओं में वायु रक्तके  
साथ पहुंचकर रजको बढ़ा देती है । शाक-  
लोग इस वायुसंसृष्ट रक्तपित्तको रक्तप्रदर क  
हते हैं । रजके प्रदार्ण होनेसे इसे प्रदर कहते हैं

### प्रदरके भेद ।

सामान्यतः समुद्दिष्टकारणलिङ्गमेव च ॥  
चतुर्विधं व्यासतस्तुवाताद्यैः सन्निपाततः ॥  
अतः परं प्रवक्ष्यामि हेत्वाकृतिभिर्भग्नितं ॥

अर्थ—प्रदर के कारण और लक्षण संक्षेप  
से कहेंगे हैं । यह वातज, पित्तज, कफज  
और सान्निपातक चार प्रकार का होता है,  
अब इन के हेतु, लक्षण और चिकित्साका  
विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है ॥

### वातजप्रदर के हेतु ।

रूसादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादाय पूर्ववत् ।  
कुपितः प्रदरं कुर्याद्विद्रुतस्यावधारयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त रूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त से-  
वन से कुपित हुई वायु रक्त को ग्रहण क-  
रके प्रदर उत्पन्न करती है अब इसके ल-  
क्षणों को सुनो ॥

### वातजप्रदर के लक्षण ।

फेनिलंतनुरुक्षञ्च श्यावं चारुणमेव च ।  
किंशुको रक्तसङ्काशं सरुजं वाथनीरुजम् ॥  
कटीवक्षणादृतपादर्वपृष्ठश्रोणिपुमारुतः ।  
करोति वेदनां तीव्रामेतद्वातात्मकं विद्रुः ॥

अर्थ....वातज प्रदर में रक्त श्यागदार, प-  
तला, रूखा, श्याववर्ण, अरुण और टेसूके  
फूलों के जल के समान होता है इसमें वे-  
दना होती भी है और नहीं भी होती । इस  
रोग में वायु के कारण कमर, वक्षणादयः



पसली, पीठ और श्रोणी में तीव्र वेदना होने लगती है ।

पित्तजप्रदर के हेतु ।

अम्लोष्णलवणक्षारैः पित्तप्रकुपितं यदा ।  
पूर्ववत्प्रदरं कुर्यात्लक्षणं तत्कृतं शृणु ॥

अर्थ—खट्टे, गरम, नमकीन और क्षार पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदररोग को उत्पन्न करता है तब उस के लक्षणोंको सुनो ॥

पित्तजप्रदर के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णमासितं तथा ।  
नितान्तरक्तं स्रवति मुहुर्मुहुर्दुरथातिमत् ॥  
विदाहरागदृग्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ।  
असृग्दर्पैर्तिकृतुश्चैर्मिकंतुमवश्यते ॥

अर्थ—पित्तजप्रदर में नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण काला और वेदनायुक्त बार बार बहुतसा रक्त निकलता है इसमें दाह, राग, तृषा, मोह, ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ये पित्तज प्रदर के लक्षण हैं अब कफज प्रदरका वर्णन किया जाता है ।

कफज प्रदरके हेतु ।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्च पूर्ववत्कुपितः कफः ।  
प्रदरं कुरुते तस्य लक्षणं तच्च तः शृणु ॥

अर्थ—गुरु आदि पदार्थों के सेवन करने से कुपित हुआ कफ प्रदररोग को उत्पन्न करता है अब इसके लक्षणोंका वर्णन करते हैं

कफज प्रदरके लक्षण ।

पिच्छिलपाण्डुवर्णचक्षुःश्लिग्धं च शीतलम् ।  
स्रवत्यसृक्फेनेद्भूतधामर्मरुजाफरम् ॥  
उर्ध्वरोचकृद्ग्लान्निवासकाससमान्वितम् ।

अर्थ—कफज प्रदर में भिलगिला, पांडुवर्ण, भारी, श्लिग्ध, शीतल और आस्रदार रक्त निकलता है, इस से मर्म स्थानों में वेदना होती है । तथा वमन, अरुचि, ग्लानि, आस और खांसी ये भी उस में होते हैं ।

सान्निपातिक प्रदरका हेतु ।

वश्यते क्षीरदोषाणां सामान्यमिहकारणम् ।  
यच्च देवत्रिदोषस्वकारणं प्रदरस्पतु ।

अर्थ—सामान्यदोष के जो सामान्य कारण कहे जायेंगे वेही सान्निपातिक प्रदर के हैं

सान्निपातिक प्रदरके लक्षण ।

त्रिलिङ्गसंयुतं विद्वान्नैकावस्थमसृग्दर्पम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रदर में तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं, इसकी एकसी अवस्था नहीं रहती है ॥

दुश्चिकित्स्यस्त्री ।

नारीत्वतिपरिविहृष्टाय दाम्पती लोहिता ।  
सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तयानिलः ॥

रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीकगुणं कफम् ।  
दुर्गन्धपिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा ॥

वसामेदश्च यावद्विसृष्टपादाववेगवान् ॥  
सृजत्यपत्यमार्गेण सर्पिर्मजावसोपमम् ।

श्लेष्मत्स्रवत्यथास्त्रावंतृष्णादाहज्वरान्विता ।  
सृजति रक्तादुर्बलाश्च तामसाध्यां वि-  
चर्जयेत् ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्तरक्तलावके कारण परिक्रिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है तब तीनों दोष अपना प्रभाव जमाछेते हैं इन में से वायु अत्यन्त कुपित होकर उक्त मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफको निकालती

है, उस समय पित्त के तेजके कारण रक्त दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीला और विदग्ध हो जाता है । तब वज्रान् वायु शरीर की सम्पूर्ण घसा और मेद को ग्रहण करके योनि द्वारा घी, मज्जा और चर्बी के सदृश निरन्तर निकालती रहती है । इस रोग में स्त्री तृषा, दाह और ज्वर से भी पीडित रहती है । ऐसीक्षीणरक्ता और दुर्बला स्त्री चिकित्साके योग्य नहीं होती है ॥

### विशुद्धऋतुके लक्षण ।

मासाभिप्पन्नवाहार्तिपञ्चरात्रानुबन्धिच नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवशुद्धमादिशेत् ॥

अर्थ—जो स्त्री महीने के महीने ऋतुवती होती है और ऋतुकाल में दाह वा यतना कुछ नहीं होता और रजोदर्शन पाञ्चरात्रतक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोड़ा निकलता है, उसे शुद्ध कहते हैं ॥

### विशुद्धआर्तव के लक्षण ।

गुञ्जाफलसमानञ्चपद्मालककसन्निभम् इन्द्रोपकसङ्काशमार्तवशुद्धमेवतत् ॥

अर्थ—जो रुधिर चिरमिठी, लालकमल, महापद्म वा पीरपट्टी के रंग के समान लाल लाल होता है वह शुद्ध आर्तव है ॥

योनीनांवातलाघ्यानांयदुक्तंइहभेषजम् ॥ चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वकारयेद्भिषक् ॥

रक्तातिसारिणाञ्चैवतथालोहितपिचिनाम् ॥ रक्तार्शसाञ्चतत्प्रोक्तंभेषजंतच्चकारयेत् ॥

अर्थ—वातलादि योनियों की जो जो

चिकित्सा कहीगई है वेही चारों प्रकार के प्रदरों में करना श्रेष्ठ है । रक्तातिसार, रक्त पित्त और गूनी ववासरमें जो जो चिकित्सा कहीगई है वे भी सब यहां करनी चाहिये । धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतःपुरा । स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम् वातादिदृष्टान्निद्रञ्चक्षीणस्यचचिकित्सितम् ॥ तत्सर्वमुक्तंयेत्वाक्षीरद्रोपाःप्रकीर्तिताः । वातादिष्वेवतानुविद्याच्छास्त्रचक्षुभिपक्तम् ॥ त्रिविधास्तुयतःशिष्यास्ततोवक्ष्यामिबिस्तरम् ।

अर्थ—जातिसूत्रीय अध्याय में धात्री के स्तनसंबंधी दूध के गुण विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं तथा उसीस्थलमें दूध के उत्पन्न करनेवाले और शुद्ध करनेवाले उपायभी वर्णन कियेगये हैं । वातादिदोषों से दूषित स्तन्य के लक्षण और चिकित्सा भी वर्णन कीगई है । तथा अष्टोदरीय अध्याय में दूधक दोषोंका वर्णन भी किया गया है । विद्वान् वेद्य स्तन्यमें वातादि दोषों को देखकर उसके अनुसारही चिकित्सा करे । परन्तु शिष्य तीन प्रकार के हेतु हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अतएव इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है जिससे प्रत्येक प्रकार के शिष्य को उपयोगी होवे ॥

अजीर्णासात्प्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् ॥ लवणाम्लकटुसारमलिनानाञ्च सेवनात् । मनःशरीरसन्तापादस्वप्नाभि शिचिन्तनात् । मासवेगप्रतीघातादमा-

सोदीरणेनच । परमान्नं गुडकृतं कृसरंद  
धिमत्स्यकम् ॥ अभिष्यन्दीनिमांसानि  
ग्राम्यान्पौदकानिच । शुक्त्वाशुक्त्वा  
दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात् ॥ अ-  
नायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्पणैः  
दोषाः क्षीराशयाः प्राप्यशिराः स्तन्यप्रदप्य  
तत् ॥ कुर्युरष्टविधं भूयो दोषास्तत्तान्नि  
बोधत ।

अर्थ—दुग्ध्याध्य, असात्म्य, विषम, वि-  
रुद्ध और अत्यन्त भोजन करने से, नम-  
कीन, खड़े, खार, प्रक्षिन्न अन्न के अत्यन्त  
सेवन से, मानसिक ताप, शारीरिक संताप,  
रात्रिजागरण, चिन्ता, मलमूत्र के उपस्थित  
वेगों का अवरोध, अप्राप्तवेगों के जोर  
मारकर करने का प्रयत्न, गुडका अन्न  
[ धानी आदि ] खिचड़ी, दही, मछली,  
अभिष्यन्दी ग्राम्य, आनूप, और औदकजीवों  
का मांस, भोजन करतेही दिन में सो रहना,  
अत्यन्त मद्यपान, शारीरिक परिश्रम का  
अवरोध, चोट, क्रोध और व्याधियोंसे कृश,  
होना, इन संपूर्ण कारणों से दोष क्षीराशय  
में पड़चकर, क्षीरवाहिनी शिराओंको दूषित  
करके स्तन्य को दूषित करदेते हैं । इस  
से आठ प्रकार के स्तन्यदोष उत्पन्न होते  
हैं । अब उन सबका वर्णन करते हैं ।

स्तन्यदोष के लक्षण ।

वैरस्यफेनसंघातेरौक्ष्यं चेत्यनिलात्मकम् ॥  
पित्ताद्वैषण्यं दौर्गन्ध्यं स्नेहपैच्छिल्यगौरवम्  
कफाद्भवति रुक्षाद्यैरनिलैः स्वैः प्रकोपणैः ॥  
कुहः क्षीराशयप्राप्यरसस्तन्यस्य दूषयेत् ।

विरसं वातसंसृष्टं कृशी भवति तत्पिबन् ॥  
न चास्य स्वदेत क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्द्धते ।

अर्थ—वात से दूषित स्तन्य विरस,  
झागदार, रूखा होता है । पित्त से दूषित  
स्तन्य विवर्ण, दुर्गन्धयुक्त होता है, तथा  
कफदूषित स्तन्य चिकना, गिलगिला और  
भारा होता है ।

इस तरह रूक्षादि हेतुओं से वायु कुपित  
होकर क्षीराशय में अपना अधिकार जमा-  
कर स्तन्यरस को दूषित करदेती है । ऐसे  
विरस और वात दूषित दुग्धको पीनेवाला  
बालक कृश होजाता है । इस बालक को  
दूध अच्छा नहीं लगता है और यह बड़ी  
कठिनता से बढ़ता है ।

वातदूषित दुग्धके अवगुण ।

तथैव वायुः कुपितः स्तन्यमन्तर्विलोडयन्  
करोति फेनसङ्घातं तत्तु कृच्छ्रात् मवर्तते ।  
तेन क्षामस्वरोवालो वद्विण्मूत्रमारुतः ॥  
वातिकं शीर्षरोगं वापीनसंवाभिगच्छति ।  
पूर्ववत् कुपितः स्तन्ये स्नेहं शोषयतेऽनिलः ॥  
रूक्षं तत्पिबतो रौक्ष्याद्बलं ह्रासश्च जायते ।

अर्थ—इसी तरह से वायु कुपित होकर  
दूध को भीतरही भीतर विलोडित करके दूध  
को झागदार करदेती है और यह दूध बहुत  
थोड़ा बाहर निकलता है । इस दूध के  
पीने से बालक का शब्द क्षीण पड़जाता है,  
विष्टा, मूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं,  
फिर वातज सिर के रोग, और पीनस रोग  
उत्पन्न होते हैं ॥ पूर्ववत् कुपित ईर्ष  
वायु स्तन्य की चिकनाई को सोखदेती है ।

इस रूक्ष दूध के पीने वाले बालकका दूध की रूक्षता के कारण बल क्षीण होजाताहै

पित्तदूषित दुग्धके अवगुण ।

पित्तमुष्णादिभिः कुट्टंस्तन्याशयमभिप्लु-  
तम् ॥ करोतिस्तन्यववर्णनीलपीतासि-  
त्तादिकम् । विवर्णगात्रः स्वन्नः स्यात्तृष्णा  
हृभिन्नचिद्विशिष्टः ॥ नित्यमुष्णशरीरश्च  
नाभिनन्दिततत्स्वयम् । पूर्ववत्कुपितेपि  
चेदौर्गन्ध्यक्षीरमृच्छति ॥ पांड्वामयस्त-  
द्भवतः कामलाचभवेच्छिष्टोः ॥

अर्थ—उष्णादि पदार्थों के सेवन से पित्त  
कुपित होकर दुग्धाशय में उत्पात कर के  
दूध में नीलापन, पीलापन और कालापन  
आदि विवर्णताओंको करताहै ॥

ऐसे दूधको पीने वाले बालकका देह वि-  
वर्ण, पसीनों से युक्त होताहै उसे तृप्ता बहुत  
लगती है, उसका मल फटजाताहै और श-  
रीर सदा गरम रहता है और उस दूध में  
बालक की रुचि नहीं होती है इसी तरह  
पित्तके कुपित होने पर दूध में दुर्गन्ध आ-  
ने लगती है और पीछे उस बालक के पांडु  
रोग और कामला रोग होजाते हैं ॥

कफदूषित दुग्ध के अवगुण ।

स्निग्धगुर्वादिभिः श्लेष्माक्षीराशयगतः  
स्त्रियाः ॥ स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमिति  
स्निग्धं करोति तु । छर्दनः कुंयनस्तेनला-  
लालुर्जायते विशिष्टः ॥ नित्योपादिग्धैः श्लो-  
ताभिर्निद्रालस्यसमन्वितः ॥ श्वासकास-  
परीतस्तु प्रसेकतमकान्वितः ॥ अभिभूय  
कफः स्तन्यपिच्छिदं कुंस्तेयदा । लाला

लुः शीनवक्राक्षिर्जडः स्यात्तु पिवन् विशिष्टः ॥  
कफः क्षीराशयगतो गुरुत्वात् क्षीरगौरवम् ।  
अतिस्नेहान्वितं पीत्या बालो हृद्रोगमृच्छति  
अन्यादंच विविधान् रोगान् कुर्यात् क्षीरस-  
माश्रितान् । क्षीरे वातादिभिर्दुष्टैः सम्भव-  
न्ति तदात्मकाः ॥

अर्थ—स्निग्ध और भारी पदार्थों के से-  
वन करने से कफ-दुग्धाशय में जाकर स्व-  
यं स्नेहान्वित होनेके कारण दूध को अत्य-  
न्त चिकना करदेता है । इस दूध के पीने  
से बालक यमन करने लगता है, किंचता है  
और उसकी छार टपकने लगती है । कफ  
के कारण बालक के स्रोतों के अत्यन्त विह-  
सजाने से निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी,  
प्रसेक और तमककी अधिकता होती है ।  
जब कफ दूध को बिगाड़ कर गिलगिला  
कर देता है तब उस दूध के पीने वाले बा-  
लक के छार पड़ती है, उस के मुखपर सू-  
जन होती है और आँखें पथराईसी होजा-  
ती हैं । दुग्धाशय में कफ जाकर भारी हो-  
ने के कारण दूध को भारी कर देता है, उस  
अति स्निग्ध दूध के पीने से बालक के हृ-  
द्रोग होजाता है । तथा क्षीरसंबन्धी और  
भी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते  
हैं । तथा वातादि दोषों से दूषित दुग्ध में  
वात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के  
उपद्रव होते हैं ॥

स्तन्यशोधनमवमन ।

तदादौ स्तन्यशुद्ध्यर्थं धात्री स्नेहोपपादिता  
म् । संस्वेद्य च घृताभ्यक्तां वमनेनोपपाद-

येत् ॥ वचाभिपंगुयष्ट्याहफलवत्सकस-  
र्पपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानांकायैर्वालि-  
वैर्वमेत् ॥ सम्यग्यान्तां पथान्याय्यंकृतसं-  
सर्जनांपुनः ।

अर्थ—दूध के शुद्ध करने के निमित्त प्र-  
थमही धात्री को स्निघ करै और फिर घृत  
की मालिश कराके पसीने देकर नीचे लि-  
खी वमनकारक औषध देवै यथा वच, प्रियं-  
गु, मुलहठी, इन्द्रजौ, संरसों, इनका कल्क  
अथवा नीम और परबल के क्वाय में नम-  
क मिलाकर गरम २ देवै । जब अच्छीतर-  
ह वमन होचुके तब पेयादि क्रमका पालनकरै  
विरेचनविधि ।

दोषकालबलापेक्षीस्नेहपीत्वाविरेचयेत् ।  
त्रिवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम् ॥  
पाययेत्तमधुसंयुक्तामभयाञ्चापिकेदलाम् ।  
पाययेन्मूत्रसंयुक्तं विरेकञ्चापिशस्त्रवित् ॥  
अथसम्यग्विरिक्तांचकृतसंसर्जनांततः ।

अर्थ—फिर दोष, काल और बल का  
विचार कर के स्नेहन कराके विरेचन देवै ।  
निसोथ अथवा हरड के कल्कको त्रिफला  
के रस के साथ देवै अथवा केवल त्रिफला  
के काथ में शहत मिलाकर पान करावै,  
अथवा केवल हरड को गोमूत्र के साथ देवै  
जब अच्छीतरह विरेचन होजाय तब पेयादि  
क्रमका पालन करावै ।

स्तन्यदोषमें पथ्य ।

ततोदोषावशेषधनैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥  
शालयःपट्टिकावास्युःश्यामाकोभोजने  
हिताः । प्रियङ्गवःकोरुपायवावेणुयवा

स्तथा । वंशवेत्रकहायाश्चसस्नेहायूपसं-  
स्कृताः । मुद्गान्मसूरान्पूपायेंकुलुत्थांश्च  
प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताका  
मलकैःशृतान् । सन्योपसैन्धवान्यूपान्  
कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ शशात्कपिञ्ज-  
लानेणान्संस्कृतांश्चप्रकल्पयेत् । शार्ङ्ग-

प्रासप्तपर्णत्वग्गन्धामृतजलम् ॥

अर्थ—तदनन्तर शेष दोषोंके दूर करने  
के लिये दोषनाशक अन्नपान देवै । शाली-  
चांवल, साठी चांवल, सोंखिया इनका भो-  
जन हितहै । प्रियंगु कोदों, जौ, वेणुयव, वां-  
सकी कोंपल, वेतकी कोंपल इनका घी में  
छोंकाहुआ शाक, मूंग, मसूर और कुलधी  
का यूय देवै । नीम के पत्ते, वेत की कों-  
पल, परबल, बेंगन और आंवला इन के  
साथ सिद्ध किये हुए यूयोंमें सोंठ, मिरच,  
पीपल, और सेंधानमक डालकर सेवन कर-  
ने से स्तन्य शुद्ध होता है ॥

खर्गोश, तीतर और हिरण के अच्छीतरह  
सिद्ध कियेहुए मांसरस देवै ॥

शार्ङ्गपट्टा, सप्तपर्णकी छाल और असगंध  
डालकर औटाया हुआ जल पानिको देवै ॥

स्तन्यशोधकअन्यमयोग ।

पाययेताथवास्तन्यशुद्धयेकदुरोहिणीम् ।  
अमृतासप्तपर्णत्वक्काथंचैवसनागरम् ॥  
किराततिक्तककाथंश्लोकपादेरितान्पिबे-  
त् ॥ त्रिनेतान्स्तन्यशुद्धयर्थमिति सामान्य  
भेषजम् ॥ कीर्तितंस्तन्यदोषाणांपृथग-  
न्यनिबोधत ।

अर्थ—स्तन्य की शुद्धि के निमित्त कु-

टकी का क्याथ भी हित है। अथवा गिलो-  
य और ससपणी की छाल के क्याथको सों-  
ठ डालकर पान करावै अथवा चिरायते का  
क्याथ पान करावै। इसतरह आधे २ छो-  
क में लिखे हुए तीन प्रयोगों में से किसीको  
दूध के शुद्ध करने के निमित्त देवै। ये सं-  
क्षिप्त योग कहे गये हैं अब विस्तृत योगों  
को कहते हैं ॥

**स्तन्यदोषमैविशेष चिकित्सा ।**

**प्रपिबेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः ॥**

**श्लक्ष्णपिष्टोपयस्याञ्चसमालोच्यमुखा-  
म्युना ॥**

अर्थ—जिस स्त्री का दूध विरस हो वह  
दाख, मुलहठी, शारिया अथवा क्षीरकाकोली  
को महीन पीसकर गरम गरम जल में मि-  
खाकर पिये ॥

**स्तन्यशोधक लेप ।**

**पञ्चकोलकुलत्पैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ ॥**

**शुष्कीमक्षालयनिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुद्धयति**

अर्थ—पंचकोल और कुलथी को पीस  
कर स्तनों पर लेप करे, सूखने पर खूब  
धोकर साफ कर देवै ॥

**फेनिल स्तन्यका उपाय ।**

**फेनसंघातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत्तच्च ॥**

**पाठानागरशार्ङ्गामूर्वाः पिष्टासुखाम्युना**

**अञ्जनं तगरं दासु विस्त्वमूलं प्रियंगवः ॥**

**स्तनयोः पूर्ववत्कार्यं लेपनं क्षीरशोधनम् ।**

अर्थ—झागदार दूध होवै तो पाठा, सोंठ,  
शार्ङ्गगुटा, मरोडकली इनको पीसकर सुहाते  
हुए गरम जलके साथ पान करावै। अथवा

अंजन, तगर, देयदार, विल्वमूल और प्रि-  
यंगु इनको पीसकर स्तनों पर लेप करे।

**किराततित्तकं गुंठीममृताकाथयेद्विपक्वा  
तत्काथं पाययेत्तथा शीतस्तन्यदोषनिवर्णनम्  
स्तनौ चालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्पपैः ।**

अर्थ—चिरायता, सोंठ और, गिलोयका  
काथ करके स्तन्य शोधन के निमित्त धात्री  
को पान करावै, तथा जौ, गेहूं और सरसों  
को पीसकर स्तनों पर लेप करे।

**रूक्षतानाशक प्रयोग ।**

**पट्विरेकाश्रितोपायैः स्तन्यशोधनैः**

**रूक्षक्षीरापिवेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिवेत् ।**

**पूर्ववज्जीवकाथञ्चपञ्चमूलं प्रलेपनम् ॥**

**स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोध-  
नम् ।**

अर्थ—जो दूध रूखा पड़जाय तो सूत्र  
स्थानके पटविरेकाश्रितोपाय में कही  
हुई स्तन्यशोधक औषधके साथ सिद्ध किया  
हुआ दूध वा घी पान करावै। तथा जी-  
वकादि गणोक्त द्रव्य वा लघु पंचमूल को  
पीसकर सुहाते हुए गरम जल के साथ स्तनों  
पर लेप करे।

**विनर्णतानाशक प्रयोग ।**

**यष्टीमधुकमृदाकापयस्यासिन्धुवारिका ॥**

**शीताम्युना पिबेत्कल्कं क्षीरवैद्यर्णनाशन-**

**म् । द्राक्षामधुकल्केन स्तनौ वास्याः प्रले-**

**पयेत् ॥ प्रक्षाल्य चारिणा चैव निर्दिह्यात्**

**तौ पुनः पुनः ।**

अर्थ—मुलहठी, दाख, क्षीरकाकोली और  
संमाल इनके कल्क को सुहाते हुए गरम

जलके साथ पान करे तौ दूधकी विवर्णता दूर होती है । इसमें दाख और मुलहटी के फलक का लेप स्तनों पर करे और मुखने पर खूब धो डाले ।

**दुर्गन्धिनाशक प्रयोग ।**

चिपाणिकाजशृंगयौचत्रिफलारजनीवचा  
मू । पिवेत्क्षीराम्बुनापप्राक्षीरदौर्गन्ध्य-  
नाशनम् ॥ लिङ्गाद्वाप्यभयाचूर्णसन्धो-  
पमाक्षिकाप्लुतम् । क्षीरदौर्गन्धनाशा-  
धीधत्रीपथ्याशिनीतथा ॥ शारिवोक्षीर-  
मंजिष्ठाश्लेष्मान्तकसचन्दनैः । पत्राम्बु-  
चन्दनोक्षीरैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में दुर्गन्ध आती हो तो मैदासिंगी, अजशंगी, त्रिफला, हलदी, वच इनको दुग्ध और जलके साथ पीसकर पीवे अथवा हरड त्रिकुटा इनके चूर्ण को शहत में मिलाकर चाटे, इसमें स्त्रीको पथ्य से रहना उचित है । तथा शारिका, खस, म-  
जीठ, लिहोडे की जड़ और रक्तचन्दन अथवा तेजपात, नेत्रयाला, रक्तचन्दन और खस इनका लेप स्तनों पर करे ।

**दूधकी स्निग्धताका उपाय ।**

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाभिप्रासुखा-  
म्बुना । पीत्वाससैन्यवाग्निप्रक्षीरशुद्धि-  
मवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो दूधमें चिकनाई हो तौ देव-  
दारु, मोथा, पाठा, इनको सेंधे नमकके साथ पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथपीवै ॥

**दूधकी पिच्छिलता का उपाय**  
प्रपिवेत्पिच्छिलक्षीरार्शगृध्रमभयांच-

चाम् । मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्यावि-  
शोधनम् ॥ तत्कारिष्ठात्पिवेदक्षसांपानि-  
दर्शिताः । विदारीविल्वमधुकैःस्तनौचा-

स्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में पिच्छिलता हो तौ शार्ङ्गगुग्गु, हरड, वच, मोथा, सोंठ और पाठा इनको घोटकर पीवै । अर्शरोग में कोह हुए तत्कारिष्ठ भी इस रोग में हित हैं । विदारीकंद, बेल और मुलहटी का स्तनोंपर लेप करना चाहिये ।

**दूधकी गुरुताका उपाय ।**

त्रायमाणामृतान्मिषपटोलत्रिफलाशृतम्  
गुरुक्षीरापिवेदेतत्स्तन्यदोषविशुद्धये ॥  
पिवेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।  
बलानागरशार्ङ्गगुग्गुमूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ ॥  
पृष्णिपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याः

प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में भारापनहो तौ त्राय-  
माणा, गिलोय, नीमकी छाल, परबल और त्रिफला का काथ पीवै । अथवा पीपलामूल चव्य, चीता, सोंठका काथ पानकरे अथवा खैरटी, सोंठ, शार्ङ्गगुग्गु और मूर्वा अथवा पृष्णि पर्णी और क्षीरकाकोली का लेप करे ॥

अष्टावेतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेदजैः ।  
निर्दिष्टाःक्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताःकेचि-  
दामयाः ॥

अर्थ—ये आठ प्रकारके क्षीर दोष हेतु, लक्षण और चिकित्सा के साथ वर्णन किये गये हैं, यथा दूषित दूध के पीने से जो बालकों के उपद्रव होते हैं, उनका वर्णन भी किशान्या है ॥

बालकों की मात्रा का विचार ।  
 दोषदूष्यमलाश्चैवमहतां व्याधयश्च ये ।  
 तएव सर्वे बालानां मात्रास्त्वल्पतरामता ।  
 निवृत्तिर्वमनादीनां मृदुतां परतंत्रताम् ॥  
 वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यवीक्ष्य बालेषु शास्त्र-  
 धित् । भेषजंचाल्पमात्रन्तु यथा व्याधिप्र-  
 योजयेत् ॥ मधुराणिकपायाणि क्षीरवन्ति  
 मृदूनि च । प्रयोजयेद्भिषग्वाले मतिमानप्र-  
 मादतः ॥

अर्थ—दोष, दूष्य, मल और बड़े मनु-  
 ष्यों के होनेवाली सम्पूर्ण व्याधियां बालकों  
 के भी होती हैं परन्तु बालकको औषधकी  
 मात्रा बहुत कम दी जाती है, क्योंकि ये  
 कोमल और परतंत्र होते हैं । और बोल-  
 कर अपने मनका हाल प्रगट नहीं कर सकते  
 हैं और न किसी प्रकार की चेष्टा कर सकते  
 हैं इससे बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि  
 व्याधि के अनुसार अल्पमात्रा का प्रयोग  
 करें । चिकित्सक को उचित है कि बालकों  
 को मधुर, कपाय और मृदु औषध दूध के  
 साथ में अत्यन्त सावधानी से देवें ।

शिशुपक्ष में गर्हितकर्म ॥

अत्यर्थस्निग्धरुक्षोष्णमम्लं कटुविपाकि च  
 गुरुचौषधपानान्नमेतद्वालेषु गर्हितम् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रुक्ष, उष्ण,  
 अम्ल, कटुविपाकी और भारी औषध  
 तथा अन्नपान बालकों को देना ठीक  
 नहीं है ।

भवति चात्र ।

समासात् सर्वरोगाणामेतद्वालेषु भेषजम् ।

निर्दिष्टं शास्त्रबुद्ध्या तत्त्वविभक्त्यप्रयोजयेत्  
 सलिङ्गं व्यापदोयोनेः सनिदानचिकित्सिता  
 उक्ता विस्तरतः भक्ष्यकृद्गुणिना तत्त्वदर्शना ॥

अर्थ—इस तरह बालकों के रोगों की  
 सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा वर्णन की गई  
 है । इनका शास्त्र के अनुकूल विचार कर  
 के प्रयोग करें ॥

इस तरह भगवान् पुनर्वसुने योनिरोगों  
 के लक्षण निदान और चिकित्सा का सवि-  
 स्तर वर्णन किया है ।

इति सर्वविकाराणां युक्तमेतच्चिकित्सितम्  
 स्थानमेतद्धितन्त्रस्य रहस्यं सारमुत्तमम् ॥

अर्थ—इस तरह सम्पूर्ण विकारों की चि-  
 कित्सा वर्णन की गई है, यह चिकित्सितस्थान  
 इस ग्रन्थ का सारभाग और परम रहस्य  
 स्वरूप है ॥

अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय ए-  
 व च । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरक-  
 संस्कृते ॥ तानेतां नृणां कपिलबलिः शेषान्  
 दृढबलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्य महार्थस्य  
 पूरणार्थं यथा तथम् ॥

अर्थ—चरकप्रतिः संस्कृतः अग्निवेश के  
 रचे हुए ग्रन्थ में शेष सत्रह अध्याय और  
 कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान इन दोनों  
 के बारह बारह अध्याय नहीं हैं । इन शेषों  
 को दृढबल ने इकट्ठे कर के इस ग्रन्थकी  
 पूर्ति के लिये लगा दिये हैं ॥

रोगायेऽप्यत्र नो हि प्यायहुत्वा न्नामरूपतः  
 तेषामप्येतदेव स्यादोपादीन् वीक्ष्य भेषजम्  
 दोषदूष्यनिदानानां विपरीतं हितं ध्रुवम् ॥



उक्तानुक्तानुगदान्सर्वान्सम्यग्युक्तानि  
यच्छति ॥

अर्थ—रोगों के नाम और रूप असंख्य हैं; इससे जिन रोगोंका यहां वर्णन नहीं कियागया है उनके भी दोषादिकों को देख कर तदनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये सम्पूर्ण प्रकार के उक्त और अनुक्त रोगों में दोष दृश्य, और निदान के विपरीत औषध करना हित है ॥

पथ्यापथ्यकालक्षण ॥

देशकालप्रमाणानां सात्म्यासात्म्यस्यैव हि ॥ सम्प्रयोगोऽन्यथान्येषांपथ्यमपथ्य-  
न्यथाभवेत् ॥

अर्थ—देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और असात्म्य का विचार करके जो अन्नपान का सेवन किया जाता है वह पथ्य है । इस से विपरीत अपथ्य होता है ।

आस्यादामाशयस्थानहिरोगान्नस्तःशिरो  
गतान् ॥ गुदात्पक्वाशयस्थांश्च हन्त्याशु  
तरमौषधम् ॥

अर्थ—मुख से आमाशय तक, नासिका से मस्तक तक और गुदा से पक्वाशय तक के रोग औषध के आभ्यन्तर प्रयोगों से शीघ्र दूर होजाते हैं ।

प्रलेपादिजन्यरोग ।

शरीरावयवोत्थेषु विसर्पपिडकादिषु ॥

यथादेशं प्रदेहादिशमनं स्याद्विशेषतः ॥

अर्थ—शरीर के बाहर के अंगों में जो विसर्प और पिडकादिक उत्पन्न होते हैं उन पर उन के उत्पन्न होने के स्थान के अनु-

सार छेप आदिका प्रयोग करने से वे शीघ्र अच्छे होजाते हैं ।

चिकित्सा विचार ।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिङ्गत्वपेक्षणम् ॥

अर्थ—दिन, रोगी, औषध, व्याधि जीर्ण लक्षण और ऋतु इन सबका विचार कर के चिकित्सा करना उचित है ।

दिन विचार ।

कालं विद्यादिनापेक्षः पूर्वाह्णे वसनं यथा ॥

अर्थ—काल का विचार दिनोपेक्ष है, जैसे पूर्वाह्न में बमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये ॥

रोगी विचार ।

रोग्यपेक्षो यथा प्रातर्नरन्नो वलवान्पिबेत्  
भैषजं लघुपथ्यन्नैर्युक्तमघातुर्दुर्वलः ॥

अर्थ—वलवान् रोगी प्रातःकाल बिना कुछ खाये ही औषधों का सेवन करे और दुर्वल मनुष्य थोड़ा पथ्य अन्न सेवन कर के औषध का सेवन करे ।

औषध विचार ॥

भैषज्यकालाद्भुक्त्वादौ मध्ये पथ्यान्मुहुर्मुहुः  
सामुद्रमुक्तसंयुक्तं ग्रासग्रासान्तरं देह ॥

अर्थ—औषध सेवन के दस समय हैं, यथा—भोजन के पहिले, भोजन के बीच में भोजन के पीछे, बार बार थोड़ी देर ठहर के, सामुद्र, भक्तसंयुक्त [ आहार के साथ मिलाकर ] ग्रासग्रास में, ग्रासान्तर में बिना कुछ खाये वा पथ्य में मिलाकर ।

पंचवायु में औषध सेवन ।

अपाने विद्युणोर्पूर्वसमाने पथ्यभोजनम् ॥

व्यानेतुप्रातराशान्ते उदाने भोजनोत्तरम् ।  
वायौ प्राणप्रदुष्टे त्वासे त्वासीन्तारिप्यते ॥  
श्वासकामपिपासां सुत्वं वधार्य मुहुर्मुहुः ॥  
सामुद्रहिकेन भुक्तं लघुना न्नेन संयुतम् ॥  
सम्भोज्यं त्वौषधं भोज्यं विचित्रैरुच्चैर्मतम्

अर्थ—अपान वायु के दूषित होने पर भोजन से पहिले, समान वायु के दूषित होने पर भोजन के बीच में, व्यान वायु के दूषित होने पर प्रातःकाल, उदानवायु के दूषित होने पर भोजन के पीछे और प्राण वायु के दूषित होने पर प्रासप्रास में अथवा प्रासान्तर में औषध सेवन करे। श्वास खांसा और पिपासा रोग में औषध को धार वार मुख में धारण करे, हिचकी रोग में हल के भोजन के साथ सामुद्र औषध देवे। तथा अरुचि में अनेक प्रकार के भोजनों के साथ औषध मिलाकर देवे ॥

व्याधि विचार ।

ज्वरे पेयाः कपायाश्च क्षीरसर्पिर्विरेचनम् ।  
षड्वह्णहृद्देहं कालं वीक्ष्यामवस्यतु ॥

अर्थ—ज्वर में प्रति छठे दिन पेया, कपाय दध, सर्पि ( घी ) और विरेचन देवे। जैसे प्रथम दिन लघन करा के सातवें दिन तक पेया, आठवें दिन से चौदहवें दिन तक दूध आदिका प्रयोग करे, इसी तरह व्याधि के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये

जर्ण लक्षण ।

भुद्गेगमोक्षौ लघुता विशुद्धिर्जीर्णलक्षणम् ।  
तदा भेदजमादेयस्याजिदोषवदन्यथा ॥

अर्थ—भूय लगना, मलमूत्र का स्पष्ट

होना, शरीर में हलकापन, डकार, अधो वायु आदि का शुद्ध होना ये जीर्ण के लक्षण है। ऐसे समय में औषध देना चाहिये, इससे अन्यथा दोषोत्पादक होता है ॥

ऋतु विचार ।

चयादयश्च दोषाणां वर्ज्यसेव्यश्च तत्र यत् ।  
ऋतावपेक्ष्यं यत्कर्म पूर्वैः सर्वमुदाहृतम् ।

अर्थ—प्रथम सूत्रस्थान में जहाँ ऋतुचर्या वर्णन की गई है वहाँ दोषों का संचय और प्रकोप तथा उनकी शांति का वर्णन हो चुका है। तथा सेवनीय और असेवनीय कर्मों का वर्णन भी हो चुका है।

उपक्रमाणां करणं प्रतिपेक्षे चकारणम् ।  
व्याख्यातमवलानासविकल्पानामवेक्षणम् ।  
मुहुर्मुहुश्च रोगाणामवस्थामातुरस्य च ।  
अवेक्ष्यमाणस्तु भिषक् चिकित्सायां नुम-  
हति ॥

अर्थ—सुचिकित्स्य व्याधियों का कारण वर्जनीय व्याधियों का कारण, और दुर्बल रोगियों के लिये औषधों का विकल्प ये सब बातें भी प्रथम वर्णन कर दी गई हैं। जो वैद्य रोग और रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है, वह मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥

इत्येव षड्विधं कालमनपेक्ष्य भिषग्जितम् ।  
प्रयुक्तमहिताय स्याच्छस्यस्य कालवर्षवत् ।

अर्थ—इस तरह रोगों के विषय में इन छः कालों पर विचार किये जो औषध प्रयोग करता है उसकी औषध खेती में सुसमयकी वर्षाकी तरह हानिकारक होती है

कालविचार ।

व्याधीनामृतवहोरात्रवयसांभोजनस्यतु ।  
विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसन्त्यते ॥  
वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः  
वर्षामुवातजाश्चैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि ॥  
निशादौदिवसान्तेचवयोऽन्तेवातजागदाः  
प्रायः शरान्तेकफजास्तयोर्मध्येतुपित्त-  
जाः ॥ जीर्णान्तेवातजारोगाजीर्यमा-  
णेतुपित्तजाः ॥ श्लेष्मजाश्चुक्तमात्रेतुल-  
भन्तेप्रायशोवलम् ॥

अर्थ—सब व्याधियों ऋतु, दिन, रात,  
अवस्था और भोजन कालकी अपेक्षा भिन्न  
भिन्न दोषों से उत्पन्न होती है। यथा वसन्त  
ऋतु में कफजरोग, शरत्काल में पित्तजरोग  
और वर्षा में प्रायः वातजरोग होते हैं ।

रात्रिके प्रथम प्रहर में, दिनके पिछले प्रहर  
में और सुहाये में वातजरोग होते हैं । रात्रि  
के अन्त में और प्रातः काल कफजरोग होते  
हैं, तथा पित्तज रोग दुपहर और आधिरात  
के समय होते हैं । भोजन पचने पर वात-  
जरोग, पचनकाल में पित्तजरोग तथा भो-  
जन करते ही कफजरोगों की वृद्धि होती है।

औषधकी मात्राका प्रमाण ।

नाल्पहन्त्यौषधं व्याधियथापोऽल्पमहा-  
नलम् ॥ दोषवद्वातिमात्रं स्याच्छस्यस्या-  
त्युदकं यथा । संप्रभार्यवलंतस्मादामय-  
स्यौषधस्यच । नैवातिबहुत्यात्यल्पंभैष-  
ज्यमवधारयेत् ॥

अर्थ—अल्पमात्रा रोग को ऐसे दूर नहीं  
कर सकती है जैसे थोड़ासा जल बड़ी अग्नि

को नहीं बुझा संकता है और दार्ढ्यमात्रा  
दोषोंको उद्दीर्ण करदेती है जैसे बहुत जल  
के बरसने से खेती नष्ट होजाती है । इस  
लिये औषध और रोगों के बलका विचार  
करके न बहुत थोड़ी और न बहुत अधिक  
औषध देनी चाहिये ।

औचित्याद्यस्ययत्सात्स्यदेशस्यपुरुषस्य  
च ॥ अपथ्यमपिनैकान्तात्तत्वाज्यलभ-  
तेसुखम् ॥

अर्थ—जिस देश में औषध प्रचलित  
है, वा जिस देशके मनुष्यों को जो वस्तु  
सात्स्य है ॥ और यदि वह शास्त्रसे वि-  
रुद्ध भी है, उसको एक दमसे छोड़ देने  
से सुख नहीं मिलता है किन्तु स्वास्थ्य वि-  
गढ़ जाता है ।

देशानुसूलसात्स्यद्रव्य ।

पाहीकाःपल्लवाश्चीनाःसूलीकायवनाः  
शकाः । मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वा-  
नरोचिताः ॥ क्षीरसात्स्यास्तथाप्राच्या  
मत्स्यसात्स्याश्चसैन्धवाः । अश्मकाश्च  
न्तिकानां तु तैलाः सात्स्यमुच्यते ॥ शा-  
कमूलफलंसात्स्यांविधान्मलयवासिनाम्  
सात्स्यंदाक्षिणतःपेषामन्धश्चौत्तरपदिच-  
मे ॥ मध्यदेशेभवेत्सात्स्यं पद्मगोधूमगोर-  
साः । तेषां तत्सात्स्यमुक्तानि भैषज्यान्वय-  
चारयेत् । सात्स्यं शालाशुचलं पचनेनातिदोषं  
च वद्वपि ॥ योगैरेतच्चिकित्सनुद्दिशाय  
ज्ञोऽपराध्यति ॥

अर्थ—वाल्हीक [ बल्लभ देशवासी ],  
पल्लव, चीनी, सूलीक, यवन, शक (तातारी)

इन लोगोंको मांस, गेहूँ, मद्य, शास्त्रकर्म और अग्निकर्म सात्म्य हैं । पूर्वदेशवासियों को दूध और सिंधियों को मत्स्य सात्म्य है ( यहां पाठ में गडबड़ मालूम होती है हमारी समझ में पूर्वदेश वासियों को मछली और सिंधियों को दूध सात्म्य है ) पहाड़ी तथा अवान्तिका देशियों को तेल और ख-टाई सात्म्य है ॥ मलयवासियों को शाक फल और मूल सात्म्य है ॥ दक्षिणीयों को पेया और उत्तर पश्चिम के लोगोंकोमन्थ सात्म्य है । मध्यदेश वासियोंको जौ, गेहूँ, और दुग्धादि सात्म्य हैं ॥ इन भिन्न भिन्न देशवासियों के भिन्न २ सात्म्योंको देखकर चिकित्सा करे । सात्म्यद्रव्य शीघ्रही बल को बढ़ाते हैं और दैवात् सात्म्य द्रव्यका मात्रा से अधिक सेवन करलेना भी विशेष हानिकारक नहीं है । बिना देशके विचार के जो शास्त्रलिखित औषधों से चिकित्सा करता है वह दोनों का अपराधी है ।

चयोवलशरीरादिभेदादिवहवोमताः ॥  
तथान्तःसन्धिमार्गाणां दोषाणां गूढचारिणाम् ।

अर्थ—रोगियों के वय, बल और शरीर के भेद नानाप्रकार के हैं, इसी तरह भीतर संधियों में, स्रोतों में तथा गुप्त रहने वाले दोषों में अनेक प्रकार के रोग हैं ।

शास्त्रविरुद्धक्रियाकानिर्देशः ।

भवेत्कदाचित्कार्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया ॥ अन्तर्गतपित्तपातुंस्वेदसेकोपनाहनेः । नयन्तोवहिरुष्णैर्हितयोष्णशम-

यन्तितम् ॥ चास्त्रेदचशीतैः सकाद्युष्मा न्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढकफं दन्ति शीतैः शीतंतथाजयेत् । श्लक्ष्णः पितृघ्नो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत् ॥ त्वग्गतस्योष्मणो रोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरुः ॥ छर्दिघ्नीमक्षिकाविष्टामक्षिकैव तु व्रामयेत् ॥ द्रव्ये पुरिस्विन्नदग्धे पुर्व्वेधे तेष्वेव विक्रिया । तस्माद्दोषौषधादीनि परीक्ष्य दशतत्त्वतः । कुर्याच्चिकित्सितं प्राज्ञो न योगैरेव कवलैः ॥

अर्थ—कभी २ शास्त्रविरुद्ध क्रिया भी हित होती है । जैसे जत्र पित्तकी उष्मा देह के भीतर बढजाती है तब उष्णसेक, स्वेद और उपनाह द्वारा भीतरकी ऊष्मा को बाहर लाकर शान्त करते हैं, यहां ऊष्मासे उष्मा दूर होती है । यदि यहां शीतल सेक, स्वेद और उपनाह करें तो उष्मा शरीरके भीतर घुसकर पीडा को और भी बढादेवै । दूसरी बात यह है कि व्रण के भीतर जत्र कफ पीव का रूप धारण कर के गुप्त रहता है तब ऊपर शीतल लेप करने से ऊष्मा भीतरको प्रवेश कर के उसे सुखादेती है यहां शीत द्वारा शीतकी शान्ति है । यदि शरीरपर चन्दन को बारीक पीसकर गाढा गाढा लेप करदे तो उस से दाह बढता है, क्योंकि वह त्वचाकी ऊष्मा को रोकलेता है । और अगर यद्यपि उष्ण है तो भी इसे बारीक पीसकर पतला लेप करने से दाह की शान्ति होजाती है । जैसे मक्खी का विष्ट वमन को रोकता है परन्तु मक्षिका के प्रयोग करने से वमन होताहै ।

इसतरह सम्पूर्णद्रव्य स्थित और दग्ध होनेपर अन्यगुणों का अवलम्बन करलेते हैं । अत एव उक्त दस रीति से औषवादिककी परीक्षा करके चिकित्सा करै, केवल शास्त्रालिखितप्रयोगों परही भरोसा करना ठीक नहीं है । (यहां चरकने 'विषयविषमौषधं, इस चिकित्सा की संक्षिप्त सूचनादी है । डाक्ट-

र हैनीमान् ने इस विद्या को बहुत उन्नति दी है, यह चिकित्सा होमियोपैथी के नाम से सब भूमंडल पर अपना प्रभाव घटाती जाती है ।

**निवृत्तरोगमौषधसेवन ।**

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना । क्षीणे मार्गो कृते देहशेषः सूक्ष्म इवानलः तस्मात्तमनुवन्धीयात् प्रयोगेणानपायिना

अर्थ—निवृत्तहुई व्याधि थोड़ेही कारण से फिर उदय होआती है, दोष क्षीणहोने और अपने मार्गपर चलने पर भी अग्नि के पतंगकी तरह सूक्ष्मरूप में शेष रहजाते हैं । अतएव रोग के निवृत्त होने पर भी दोषों की शमन करने वाली औषधोंका कुछ कालतक प्रयोग करता रहै ॥

**पथ्यान्तरनिधि ।**

सिद्ध्यर्थं प्राक्प्रयुक्तस्य सिद्धस्याप्यौषधस्य तु । काठिन्याद्भ्रमभावद्वादोपोन्तःकुपितो महान् ॥ पथ्यैर्मृदुलपतानीतो मृदुदोषकरो भवेत् । पथ्यमप्यश्रुततस्माद्योग्याभिरुपजायते ॥ शात्वैर्षट्पदिमभ्यासमथवान्यस्य कारयेत् ।

अर्थ—तिद्धि के लिये जो प्रथम औषध

का प्रयोग कियागया है उस के सिद्धहोने पर भी उसकी कठिनता वा स्वल्पता के कारण अन्तःकुपित महान् दोष पथ्यसेवन द्वारा मृदु और अल्प होकर मृदु दोषका रफ होता है । पथ्य सेवन करने पर भी जो व्याधि की वृद्धि हो तो धन्यपथ्य का सेवन करावै ॥

सातत्यात्स्याद्दवायादपथ्यद्वैत्वमागतम् कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः मनसोऽर्थानुकूल्यादितुष्टिरुर्जाहविर्बलम् सुखोपभोगता च स्याद्दवाधेश्चातो बलक्षयः

अर्थ—एकही वस्तु के निरन्तर सेवन करने से वा स्वादु के अभाव से जो पथ्य दोषकारक होजाय तो विविधि प्रकारकी कल्पनाओं से पथ्यका सेवन करावै जिससे रोगी को प्रिय लगे । विषयों में मनकी अनुकूलताही से तुष्टि, ऊर्जा वृद्धि, बल, और सुखोपभोगता की वृद्धि होती है तथा व्याधि का बलक्षीण होता है ॥

**अरुचिर्मेपथ्याविधि ।**

लौल्याहोपक्षयादघाधैर्वधर्म्याच्चापि यारुचिः । तामुपथ्योपचारः स्याद्योगेनाद्यविकल्पयेत् ॥

अर्थ—जिह्वा की लालता से, वातादिदोषों के क्षयहोने से व्याधिके विधर्म से जो अरुचि होती है उस में पथ्य वस्तुका सेवन करै । तथा उस पथ्य को योगान्तर से संस्कृत करलेवै ॥

**अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।**

तत्रश्लोकाः शिवातिव्यापदोयोने निदानं

लिङ्गमेव च । चिकित्साचापि निर्दिष्टा शि-  
ष्याणां हितकाम्यया ॥ शुक्रदोषास्तथा  
चाष्टौ निदाना कृतिसाधनैः । क्लृप्यान्युक्ता  
निचत्वारिचत्वारः प्रदरास्तथा ॥ तेषां  
निदानलिङ्गश्च भैषज्यञ्चैव कीर्तितम् ।  
क्षीरदोषास्तथा चाष्टौ हेतुलिङ्गा भिपग्जितैः ॥  
तेषां चिकित्सानिर्दिष्टा समासव्यासतो म-  
या ॥ रेतसोरजसश्चैव कीर्तितं भृद्धिलक्ष-  
णम् । उक्तानुक्तचिकित्सा च सम्यग्यो-  
गो यथैव हि ॥ देशादिगुणशंसा च कालः  
पट्टविधयेव च । देशे देशे च यस्मात्संन्ययथा  
वैद्योऽपराध्यति ॥ चिकित्साचापि निर्दि-  
ष्टा दोषाणां गूढचारिणाम् ।

अर्थ—इस योनिव्यापचिकित्सित ना-  
मक अध्याय में बीस प्रकार के योनिरोग,  
उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा शि-  
ष्यों के हित की इच्छा से वर्णन की हैं ।  
आठ प्रकार के शुक्रदोष, उन के निदान,  
लक्षण और चिकित्सा, चार प्रकार के  
क्षीररोग, चार प्रकार के प्रदररोग तथा इन  
के निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की  
गई हैं । आठ प्रकार के स्तन्यदोष, इनके  
निदान, लक्षण, औषध और चिकित्सा  
संक्षेप से और विस्तार से वर्णन की गई हैं ।

वीर्य और रज की शुद्धि के लक्षण भी  
वर्णन किये गये हैं । इसी तरह उक्त अनुक्त  
रोगों की चिकित्सा, सम्यक्योग, देशविशेष  
के गुण, छः प्रकार का काल, भिन्न भिन्न  
देशवासियों के साम्यद्रव्य, वैद्य के अप-  
राधी होने के कारण तथा गूढचारी रोगों  
की चिकित्सा भी वर्णन की गई है ।

अध्यायका उपसंहार ।

यो हि सम्यक् न जानाति दोषं दोषार्थमेव च ।  
न कुर्व्यात्सत्क्रियां चित्रमचक्षुरिव चित्रकृत् ॥

अर्थ—जो वैद्य अच्छी रीति से दोष  
और दोषों के विषयों को ( पाठान्तर "शास्त्र-  
शास्त्रार्थमेव च ) अथवा शास्त्र या शास्त्र  
के विषयों को नहीं जानता है, वह अच्छी  
रीति से चिकित्सा करने में ऐसा असमर्थ  
होता है, जैसा नेत्रहीन चित्रकार अच्छे  
चित्र को नहीं खींच सकता है ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश त्रिरचि-  
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-  
त्सितस्थाने योनिव्यापचिकित्सितं ना-

मत्रिशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इति चिकित्सितस्थानं पठ्य समाप्तम् ॥

॥ ओ१म् ॥

॥ श्रीहरिम्बन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथकल्पस्थानम् ॥

— — ○ \* ○ — —

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अयातोमदनकल्पंव्याख्यास्याम

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम मदनकल्पनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथखलुधमनविरेचनार्थमदनफलादितृ-  
ष्टादीनां धमनविरेचनद्रव्याणां सुखोपभो-  
ष्यतमैः सहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैः प्रकल्पनार्थं  
तद्योगानां च क्रियाविधेः सुखोपायस्य स-  
म्पगुणकल्पनार्थं कल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽ-  
ग्निवेशः ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! धमन विरेचन कराने वाले जो मेनफल और निसोध से आदि ले-  
कर द्रव्य हैं उनका दिग्दर्शनमात्र वर्णन सू-  
त्रस्थान में हो चुका है परन्तु अब इस क-  
ल्पस्थान में उन बातों का वर्णन किया  
जायगा कि जिन सुखोपसेवनीय द्रव्यों के  
इन में मिलाने से अनेक भेद होजाते हैं,  
और अनेक प्रकार के योग और सुखकारी  
चिकित्साविधि यहां वर्णन की जायगी ॥

धमनादिकी निरुक्ति ।

तत्रदोषहरणपूर्वभागं धमनसंज्ञमधोभागं

विरेचनसंज्ञमुभयं वा शरीरमलविरेचनाद्विरे-  
चनशब्दं लभते ॥

अर्थ—जो दोष मुखकी ओर से निकाले  
जाते हैं उस क्रिया का नाम वमन है ।  
अधोमार्ग द्वारा दोषों के निकालने का नाम  
विरेचन है, अथवा शरीरस्थ मल के रेचन  
अथवा निकालने के कारण धमन विरेचन  
दोनों को विरेचन कहते हैं ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यायविकाशीन्यौ  
पधानिस्ववीर्येण हृदयमुपेत्य धमनीरनुस-  
ृत्य स्थूलाणुस्रोतोभ्यः केवलं शरीरगतं दो-  
षसंघातमाग्नेयत्वाद्विष्पन्दर्यातैर्दृष्ट्यादि  
च्छिन्दन्ति । सविच्छन्नः परिप्लवः स्नेहभा-  
वितेकाये स्नेहाक्तभाजनस्थमिव भौद्रमस-  
जदनुप्रवणभावादामाशयमगत्योदानम-  
णुन्नोग्निवाय्वात्मकत्वाद्ध्वभागप्रभावा-  
दौषधस्योर्द्धगुत्तिष्ठत्यते ॥ सलिलपृथिव्या-  
त्मकत्वादधोभाग प्रभावाच्चौषधस्याधः  
प्रवर्तते ॥ उभयतश्चोभयगुणत्वादिति  
लक्षणोद्देशः ॥

अर्थ—इनमें से उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यायी  
और विकाशी औषध अपने धीर्य के प्रभाव  
से सेवन करतेही हृदय में पहुंचकर वहां से  
धमनियों का अनुसरण करके आग्नेयत्व  
होने के कारण स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों से  
शरीरगत केवल दोष समूहको विष्पन्दित  
अर्थात् पतला कर देती हैं और तीक्ष्णताके  
कारण उन को अपने अपने स्थानों से अ-  
लग कर देती है यदि स्नेहन कर्म करने  
के पश्चात् धमन विरेचन का प्रयोग किया

जाय तब वह औषध शरीरस्थ दोषों को विच्छिन्न और द्रवीभूत करनेके पश्चात् शरीरमें इस तरह नहीं लगती है, जैसे चिकने पात्र में शहत नहीं चिपक सकता है। फिर अनुप्रवण भावसे आमाशय में पहुँचकर वमनकारक द्रव्यों के अग्निवाय्वात्मक तथा ऊर्ध्वगामी प्रभावयुक्त होने के कारण उदाननायु से प्रेरित होकर आमाशयस्थ दोषों को ऊपरके मार्गसे वमन द्वारा निकलती है। इसी तरहसे वैरेचनिक द्रव्य जल और पृथिव्यात्मक होने के कारण अधोगामी प्रभाव रखने के कारण दोषोंको अधोमार्ग से विरेचन द्वारा निकालते हैं। इसी तरहसे उभयगुण विशिष्ट वमन विरेचन द्रव्यों के संयोगसे वमन विरेचनदोनों होते हैं। तत्रफलं जीमूतकेश्वाकृधामार्गवकुटजकृत वेधनार्ना, श्यामाग्निष्टुतुरंगुलतिल्वक महावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रव्यन्तीनाश्च नानाविधदेशकालसम्भवास्वादुरसवीर्य विपाकप्रभावमहणाद्देहदोषप्रकृतिवयोवलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनां नात्मकस्याश्चिद्विभ्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानामपिसत्ताद्रव्याणां विकल्पमार्गदर्शनार्थपह विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्वामः।

अर्थ—इन में से मैनफल, जीमूत, कटु-तुंद्री, धामार्गव, कुटज और कृतवेधन, तथा श्यामनिसेध, अमडतास, लोध, सेहूंड, सातला, शंखिनी, दंती और द्रव्यंती। ये औषध अनेक तरह के देशों में उत्पन्न

होती हैं और अनेक प्रकार के स्वाद, रस, वीर्य, विपाक और प्रभावको धारण करती हैं तथा मनुष्यों के देह, दोष, प्रकृति, वय, बल, अभिन, भोजन, सात्म्य रोग और अवस्था अनेक प्रकार की है, इन सब के मुख पूर्वक उपयोग में लाने के निमित्त इसी प्रकार के भिन्न भिन्न विरेचनों की कल्पना का वर्णन करेंगे, यद्यपि इनके मध, वर्ण, रस और स्पर्श तथा संयोग वे भिन्न होती हैं तानितुद्रव्याणि देशकालगुणभाजनसम्पद्वीर्यबलाधानात्क्रियासमर्थतमानि भवन्ति

अर्थ—ये संपूर्ण द्रव्य देश, काल, गुण और पात्रकी उत्कर्षिता और वीर्य बल के यथावत् होने से चिकित्सा में अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होते हैं।

देशभेद।

त्रिविधिः खलु देशो जांगलोऽनूपः साधारणश्चेत्ते।

अर्थ—देश तीन प्रकारके होते हैं, यथा जांगल, आनूप और साधारण।

जांगलदेशके लक्षण।

तत्र जांगलः पर्याकाशभूमिपटः। तरुभरपिकदरखादिराशनाभ्वर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमवल्कलदरीतिन्दुकाश्वत्थबटामलकीवनगहनः। अनेकशमीककुभशिशपाप्रायः स्थिरशृष्कपवनबलविधूयमानमृत्पुच्छरुणचितपः। प्रततमृगतृष्णाकूपोगृहस्तनुस्तरपरुषिकताशर्कराबहुलः। लावतिचिरचकोरानुप्रचितभूमिभागो वातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्पमा योजांगलोक्षेयः।



अर्थ—इन में से जांगलदेश के चारों ओर भूमि विस्तृत और स्वच्छ आकाश से युक्त होता है। इस में कदर, खैर, अशन, पीतसाल, धव, तिनिश शल्लकी, साल, सोमवल्क बेर, तेंदू, पीपल, बड, आंवला इन के गहनवन होते हैं। जगह जगह शमी, अर्जुन और शिंशपा वृक्षों की बहुतायत होती है। वृक्षों की शाखा बड़ी दृढ़ होती हैं और पवन के बल से हिलती रहती हैं, सूर्यकी तांड़ण किरणोंसे शुष्कस्थल में जल दिखाई देता है, कूप बड़े गहरे गहरे होते हैं, पतली, खरदरी और कर्करी वाढ़ की अधिकता होती है, लवा त्रातर, चकोर आदि पक्षी बहुत होते हैं, यहां घातपित्त की अधिकता होती है और यहां के मनुष्य दृढ़ और कठोर होते हैं। ये जांगल देश के लक्षण होते हैं।

### आनूपदेशकेलक्षण।

अथानूपोद्दिन्तालतमालनारिकेलकदली घनगहनः। सरित्समुद्रपर्यन्तप्रायः॥ शिशिरपवनबहुलोवज्जुजवानारोपशोभिततीराभिःसरिद्रिरूपगतभूमिभागःअक्षि तिधरोनकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवीजितः। क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनोभूमिभागः॥ स्निग्धतरुतानोपगूढहंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुख पुण्डरीककादम्बमद्गुभृद्गराजशतपत्रयत्त कोकिलमुदिततरुणचिटपःसुकुमारपुरुषः पवनकफमायेक्ष्यः॥

अर्थ—आनूपदेश में हिन्ताल, तमाल

नारियल और केले के गहनवन होते हैं। इसके चारों ओर समुद्र और बीच २ में बहुतसी नदियां होती हैं, शीतल पवन अधिक चलती है, बंजल और वानीर के वनों और नदियों से उपशोभित होते हैं। इस में पर्वत और कुंज नहीं होती है परंतु मन्द मन्द पवन से चलायमान वृक्षों के समूह बहुत होते हैं। अनेक प्रकार के फलों से यह देश सुशोभित होता है, तरह तरहकी सचिककण लताओं से यह भूमि आकीर्ण होती है, यहां चकवे, बलाका, नन्दीमुख, पुंडरीक, कादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र पक्षियों के समूह वृक्षों की शाखाओं में बैठे हुए आनन्द से कुहकते हैं, मतवाली कोयल नवीन वृक्षों की शाखाओं में बैठकर मुदितमन से अपने राग आलापती है। यहां के मनुष्यों के देह कोमल होते हैं। और उनकी प्रकृति घातकफप्राय होती है॥

### साधारणदेशके लक्षण।

अनयोरेयद्वयोर्देशयोर्धीरुद्धनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतःस्थिरसुकुमारवर्णसंघननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषःसाधारणोक्ष्यः॥

अर्थ—जिस भूमि में जांगल और आनूप दोनों देशों के लक्षण मिलते हैं उसे साधारण देश कहते हैं। इस देश में दोनों देशों के लता, वनस्पति, वानस्पत्य, पशु और पक्षी होते हैं॥ यहां के मनुष्य दृढ़, सुकुमार, वर्ण और संहननयुक्त होते हैं।

उत्कृष्ट देशजात औषध ।

तत्रदेशोजाङ्गलसाधारणवायुकांलांशि-  
शिरातपवनसलिलसेकसेवितेसमेष्टुचौप्र-  
दक्षिणेश्मशानचैत्यदेवयजनागारंश्वभ्रा-  
रामवल्मीकोपरविरहितेकुशरोहिपास्तीर्णे  
स्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिकेमृदावफा-  
लकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्वलयत्तदुमैरौषधानि

जातानिप्रशस्यन्ते ।

अर्थ—इन में से नीचे लिखे हुए गणों से विशिष्ट जांगल वा साधारण देशमें उत्पन्न हुई तथा ठीक समय में लाई हुई औषधियां उत्तम होती हैं । स्थान के गुण यथा- जहां अपने अपने समय पर सर्दी गमी हवा और जल आते रहते हैं ॥ जहां की भूमि समान पवित्र और ठीक होती है जहां श्मशान, चैत्य देवालय, पक्षशाला, खाई, बगीचा, बांघी और ऊसर भूमि नहीं होती है । जहां कुशा और गंध तृण बहुतायत से होते हैं । जहां की मृत्तिकी चिकनी काली, पीली और मिष्ट होती है । जहां बड़े बड़े जंगली वृक्ष नहीं होते हैं, जहां की भूमि कीड़ों से खाई हुई नहीं है ऐसे स्थान की औषधियां उत्तम होती हैं ।

औषध संग्रह विधि ।

तत्रयानिकालजातान्युपगन्तसम्पूर्णप्रमा-  
णरसवीर्यगन्धादिकालातपाग्निसलि-  
लपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्श-  
प्रभावाणिप्रत्यगाणिजदीच्यांदिशिस्थि-  
तानितेगानारापलाक्ष्मचिरप्ररूढवर्षा-  
वसन्तयोगार्द्रांश्वीष्मेमूलांनिशिशिरेवाशी

र्णप्ररूढवर्षानांशरदित्वरूकन्दसीराणि  
हेमन्तेसाराणियथर्तुपुष्पफलमितिमङ्गला-  
चारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसं-  
पूज्यदेवताअश्विनागोब्राह्मणांश्चकृतोप-  
वासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृह्णीयात् ।

अर्थ—इन में से जो औषध अपने ठीक समय पर उत्पन्न हुई है, जो सम्पूर्ण प्रमाण, सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण, वीर्य और सम्पूर्ण गन्धादियुक्त हैं । काल, आतप, अग्नि, सलिल, वायु और कीड़ों से जिनके गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव नहीं बिगड़े है, जो उत्तम और उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई हैं। ऐसी थोड़े काल की उत्पन्न हुई औषधों के शाखा और पत्ते बर्षा और वसन्त ऋतु में ग्रहण किये जाते हैं, प्राप्तिऋतु वा शिशिर ऋतु में औषधियों की जड़ लावें जब उन के पत्ते पककर गिर पड़ें । शरद ऋतु में छाल, कन्द और दूध लावें तथा हेमन्त में निपास, पुष्प और फल इकट्ठे करने चाहिये । जिस दिन औषध लाने का विचार करें उसे दिन स्नानादि द्वारा पवित्र होकर मंगलाचार करके इवेतवस्त्र धारण करे देवता अश्विनी कुमार और गौ ब्राह्मण का पूजन करके उस दिन उपवास करे, फिर पूर्व वा उत्तर की ओर मुखकरके औषध का ग्रहण करे ।

औषधियों की रक्षाविधि ।

शुद्धीत्वाचानुरूपगुणवद्भाजनेसंस्थाप्या-  
गारेषुप्रागुदग्द्वारेषुनिवातमवातैकदेशेषु  
नित्यपुष्पोपहारवलिर्कर्मवत्स्वग्निसलि-

लोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनाभि  
गमनीयानिस्वच्छिन्नानिश्चिक्येष्वस  
ज्यास्त्रापयेत्तानिचयथादोषप्रयुज्जति ।

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे औषधियाँ  
लाकर उन्हें अपने अपने गुणके अनुरूप  
पात्रों में रखकर ऐसे स्थानमें जिसका मुख  
पूर्व वा उत्तरकी ओर हो, जिसमें वायु प्र-  
वेश न करती हो और एक स्थान उसमें  
ऐसा हो जहाँ हवा आती हो और जिसमें  
नित्यप्रति पुष्प उपहार, बलि और कर्न  
होता हो ऊँचे छोंकों पर लटककर दें और  
उन पात्रों को ऐसी रीति से ढक दें जिसमें  
अग्नि, जल, ताप, घूँआ और रज, तथा  
मूत्र और चोपाये आदि न पहुँच सकें ।

इन औषधियों का दोष के अनुसार प्र-  
योग करना उचित है ।

दोषानुसारमयोगविधि ।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्य  
फलदध्यम्लोदिभिर्वाते । मृद्रीकामलक  
मधुमधुकपर्षकफाणितसीरादिभिःपि  
षे । श्लेष्मणितुमधुमूत्रकपायेभाविता  
न्यालोढितानिचैत्युद्देशस्तंविस्तारेणद्रव्य  
देहदोषसात्म्यादीनिप्रविभज्यन्याख्या  
स्यामः ।

अर्थ—वातरोग में इन औषधोंको सुरा  
सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्बु,  
फलाम्बु, दही और खटाई के साथ में दें  
पित्तजरोर में दाख, आवला, शहत, मुल-  
हठी, फालसा, फाणित और दूध आदि  
के साथ दें, तथा कफ रोगों में शहत,

गोमूत्र और काथों में मिलाकर दें । अब  
इन्हीं का द्रव्य, देह, दोष और सात्म्या-  
दिक के अनुसार विभाग करके विस्तार  
पूर्वक वर्णन करते हैं ।

मेनफलकावर्णन ।

वमनद्रव्याणामदनफलानिश्रेष्ठानिआच  
सतेऽनपायेत्वात्तानिचसन्तग्रीष्मयोर-  
न्तरेषुष्पावश्चपुष्पांमृगशिरसावाष्टकी  
यात्मैत्रेमुर्द्ध्वानिपकानिप्रहरितानिपा-  
ण्डून्पत्रिणीण्यकुशान्यह्रस्वानिअजग्धा  
नितानिप्रमृज्यकुशपुटेवध्वागोमयेनालि  
प्ययवतुपमापशालिग्रीहिकुलत्थमुद्रप-  
णानामन्यतमेनिदध्यादष्टराग्रमतजर्द्धमृ-  
दुभूतानिमध्विष्टगन्धान्युद्रुष्यशोपयेत् ।  
सुशुष्कंतुफलपिप्पलीरुद्धरेत्तासांदिधिम  
धुपललविमृदितानांपुनःशुष्काणानवक  
लशंसुप्रमृष्टवाल्मुकमरजस्कमाकण्ठपूरयि  
त्वास्वावच्छन्नमनुसुप्तंशिक्येऽवसज्यस्था  
पयेत् ।

अर्थ—वमनकारक द्रव्यों में, मेनफल  
सब से उत्तम होता है क्योंकि यह किसी  
प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता है । इसको  
वसन्त और ग्रीष्मऋतुओं के सांधिकाल में  
पुष्प, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्र में मैत्री  
सुहृत् में लाना चाहिये । इन में से जो  
जो फल पककर हरे वा पांडुरवर्ण के होगये  
हों, जिस में कीड़े न लगे हों, जो पिचके  
झुप वा छोटे न हों वा किसी पक्षी ने न  
बिगाड़े हों उनको लाकर कुशा में लपेट  
कर बांध दें ऊपरसे गोबर लपेट दें फिर

उसे जौ का मुस, उरद का ढेर, शाली वा ब्रीहि चांवल का ढेर कुल्पी वा मूंगके पत्तोंके ढेर में से किसी एक में आठ दिवस तक गड़ा रहने देवै । फिर यह जब मुलायम पड़जाय वा इस में मांठीर उत्तमगंध-आनेलगे तब निकालकर सुखेंछे । अच्छी तरह सूखने पर फलों के बीज बाहर निकाल देंवै और दही, मधु वा तिल कल्क के साथ फिर मर्दन करके फिर सुखाकर यादू वा रेतसे अच्छीतरह मजेहुए स्वच्छ नवीन कलसे में कंठ तक भरदेवै और अच्छी तरह ढक् दावकर छीके पर लटका देवै ॥

वमनकरानेकीविधि ।

अयच्छर्दनीमातुरं द्रव्यहं व्यहं वा स्नेहस्वेदोप-  
पन्नश्च चर्दयितव्य इति । ग्राम्या नूपोदक-  
भृतमांसरसक्षीरदधिमापतिलशकादि-  
भिः समुत्कलेशितश्लेष्माण्ड्युपितं जीर्णं  
हारं पूज्वाहणे कृतवलिहोममङ्गलप्रायश्चित्तं  
निरन्वमनतिस्तिग्धं वाग्वाघृतमात्रापीत-  
वन्तमातासाफलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टि-  
यावद्वासाधुमन्यते जर्जरीकृत्य यष्टीमधुक-  
पायणकोविदारफर्षुदारनीपविदुलविम्बी  
शणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्षपुष्पीकपायाणां  
मन्यतोमेन वारात्रिमुपितं विमृष्टपूतं मधुसं-  
न्धवयुक्तं मुखोष्णं कृत्वा पूर्णशरावमन्त्रेणा-  
नेनाभिमन्त्रयेत् ।

अर्थ—वमन कराने के योग्य रोगी को वमन करानेसे दो-तीन दिन पहिले स्नेहन स्वेदन कराके वमन करावै । वमन करानेकी विधि यह है कि ग्राम्य, आनूप और औदक जन्तु-

ओं का मांसरस, दूध, दही, उरद तिल आदिके भक्षण से कफ को उत्केशित करावै दूसरे दिन आहार पचने पर द्रुपहरसे पहिले बलि होम, मंगलाचार और प्रायश्चित्त कराके बिना भोजन करयेही अनतिस्निग्ध पु-  
रुषको यवागू के साथ घृत की मात्रा का सेवन करावै । वमन करानेकी रात्रिको अ-  
न्तर्नखमुष्टि मेनकलके बीजोंको मर्दान पीस-  
कर मुलहटी के काथ के साथ अथवा को-  
विदार ( लालफचनार ) फर्षुदार ( स्वेतफ-  
चनार ) कदम्ब, वेत, कंदूरी, शणपुष्पी आक, वा ओंगा में से किसी के क्वाथ में भिगेदेवै । प्रातःकाल होतेही सबको मसल कर छानलेवै फिर इसमें शहत और संधा-  
नमक मिलाकर गुनागुना कर के प्याले में भरकर नाचे लिखे हुए मंत्र से अभि-  
मंत्रित करै ॥

वमन कराने के मंत्र ।

ब्रह्मदत्ताश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः  
ऋषयः सौषधिग्रामाभूतसंघाश्च पान्तुते ॥  
रसायनमिव पर्षाणां देवानाममृतं यथा । सु-  
धेवोऽक्षमनागानां भैषज्यमिदमस्तुते ॥

अर्थ.... ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार वरु-  
इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य अग्नि, वायु, ऋ-  
षिगण, औषध समूह और भूत समूह तेरी  
रक्षाकरे । जैसे ऋषियोंको रसायन, देवता-  
ओंको अमृत और नागों को सुधा गुणका-  
रक है इसी तरह यह औषध वृक्ष को  
फलप्रद होवै ।

इत्येवमभिमन्त्र्योदहमुखमातुरं प्राययेत् ।

श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायान्तविशेषणे पु-  
नरापिप्तागमनाचेनसाधुवमति ।

अर्थ—इस तरह मंत्र पढ़कर रोगी का  
मुख उत्तर की ओर कराके औषध पान  
करावै । विशेष करके कफज्वर, गुल्मरोग  
और प्रतिश्याय में यह वमन कराई जाती  
है । इस में पित्तका आगमन होवै तौ सम-  
झना चाहिये अच्छी होती है ।

हीनमेगंतुपिप्पल्यामलकसर्पकलकलव  
णोष्णोदकैः पुनः पुनः प्रवर्तयेदित्येष सर्व  
छर्दनयोगविधिः । सर्वपुतुमधुसंन्यवक  
फविलायनच्छेदार्थवमनेपुविदध्यात् ॥

नचाष्णविरोधोमधुनच्छर्दनयोगयुक्त  
स्याविपक्वप्रत्यागमनादोपहरणाच्च ।

अर्थ—जो वमन का हीनवेग हो तौ पी-  
पले, आंवला और सरसों इन के फल्क में  
संधानमक डालकर गरम जल के साथ बार  
बार पान करावै । इस से वमन का वेग बढ  
जायगा । यह काम हर प्रकारकी वमन में  
करना ठीक है । कफके पतले करने और  
दूर करनेके निमित्त सब प्रकारकी वमनों  
में शहत और संधानमक देना चाहिये ।  
इस स्थल में शहत को उष्ण द्रव्य के साथ  
देने में कोई दोषापत्ति नहीं है, क्योंकि  
शहत पाकको प्राप्त होने से पहिलेही दोषों  
को निकालता हुआ आप भी निकलजाताहै  
फलपिप्पलीनांद्वौ भागौ कोविदारादिक  
पापेण त्रिःसप्तकृत्वः भावयेत्तेन रसेन तु तृती  
यं भागं पिष्ट्वा मात्रा हरितकीर्णं विभक्तिकै  
रामलैर्कैर्वा तुल्यावर्त्तयेत्तासामेकाद्वेवापू

वोक्तानां कपायाणामन्यतमस्याञ्जलिमा  
त्रेण प्रमथ्य बलवत् श्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरो  
दरा रुचिपुपाययेतेति समानं पूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज दो भाग, इनको  
पीसकर कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी  
एक के क्वाथकी इक्कीस भावना देवै । फिर  
एक भाग और लेकर उसी क्वाथमें पीसकर  
उस को पूर्वोक्त चूर्ण से मिलावै । फिर इस  
में से हरड बहेडे और आंवले की बराबर  
गोली बना कर तयार करले फिर इस में  
एक वा दो गोलीयों को पूर्वोक्त कोविदारादि  
के क्वाथों में से किसी एक के आध सेर  
क्वाथ के साथ सेवन करै । इस के द्वारा  
वमन करानेसे कफप्रसेक, ग्रन्थि, ज्वर, उद-  
ररोग और अरुचि ये रोग दूर होजातेहैं ।  
शेष किया पूर्व के समान हैं ॥

फलपिप्पलीक्षीरं तेन बाक्षीरयवागूमधोभा  
गेरक्तपित्ते हृद्वाहेतज्जनस्यं वा दध्न उत्तरकं  
कफछर्दिस्तमकप्रसेके पुतस्यैव पयसः शी  
तः ससन्तानिकाञ्जलिपित्तप्रकुपिते उरः  
कण्ठहृदये तनुकोपदिग्ध इति समानं पूर्वेण

अर्थ—मेनफलके बीज डालकर औटाय  
हुआ दूध अथवा उस दूधकी यवागू अधो  
गामी रक्तपित्त और हृद्वाह में देवै । और  
उसी दूध को दही पर से मलाई उतारकर  
कफकी वमन, तमकस्वास और कफप्रसेक  
में देना चाहिये । उसी दूध को ठंडाकरके  
उसकी मलाई उतार कर एक अंजली भर  
प्रकुपित पित्तमें देवै । तथा जो यक्षःस्थल,  
कण्ठ और हृदय में पतला कफ लित होरहा  
हो तौ उक्त संतानिका पान कराके वमन  
करावै । शेष किया पूर्व के समान है ॥

मेनफल का घृत ।

फलपिप्पलीक्षीराश्वनीतमुत्पन्नफलानि  
कल्ककपायसिद्धकफाभिभूताग्निविशु-  
ष्कदेहश्चात्रयापाययेतेतिसमानपूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज के साथ सिद्ध  
किये हुए दूध का मक्खन निकालकर मेन  
फलादिके कल्कके साथ सिद्ध करके मात्रा-  
नुसार पान करावै । इस विरेचनसे कफाभि-  
भूत आग्नि और विशुष्क देह शुद्ध होजाते  
हैं । शेषकिया पूर्व के समान है ।

फलपिप्पलीनां फलादिकपायेण त्रिःसप्तक  
स्वःपरिभाषितेन पुष्परजःप्रकाशेन चूर्णे  
न सरसि दृष्टसरोरुहं सायाह्नेऽवचूर्णयेत्  
द्रात्रिमुपितं प्रभाते पुनरवचूर्णितमुदधृत्य  
हरिद्राकुसरक्षीरयथाग्नौ नान्यतमसैन्ध  
वगुडफाणितयुक्तमाफण्टं पीतवन्तपात्रा  
पयेत् । सुकुमारमुत्क्रिष्टपित्तकफमौषध  
द्विपमितिसमानपूर्वेण ॥

अर्थ—मेनफलके बीजों को मेनफलादि द्रव्यों  
के काथकी इक्कीस भावना देकर फलकी रजके  
समान महीन चूर्ण करले, फिर इस चूर्णको सा  
येकालके समय तलावमें एक बड़े से कमलके  
फूलमें रखदेवै । प्रातःकाल इस चूर्णको लाकर  
हलदी, कृशरा, दूध और यथाग्न इनमेंसे  
किसी एक के साथ संधानमक, गुड और राव  
मिलाकर कंठ पर्यन्त पान करे और उस फूल  
को सूखे । इस रीतिसे वमन करना सुकुमार,  
उत्क्रिष्ट कफ और पित्तवाले और औषध  
सेवन से द्वेष रखनेवाले को हित है । शेष  
किया पूर्वके समान है ।

फलपिप्पलीनां भल्लातकविधिपरिस्तुम्ब  
रसं पक्त्वा फाणितमावर्तलीभावाल्लेहये  
दातपशुष्कवाचूर्णाकृतं जीमूतादिकपाये  
ण पित्तकफस्थानगते पाययेते तिसमानं पू-  
र्वेण । फलपिप्पलीचूर्णानि पूर्ववत् फला-  
दीनां पण्णामन्यतमकपायस्तुतानि वर्तित्ति-  
याः फलकपायोपसर्जनाः पेया इति समानं  
पूर्वेण ॥

अर्थ—भिल्लायकी तरह मेनफल के बीजों  
का रस निकालकर राव के सदृश पकाकर  
चाटे । अथवा इन बीजों को धूप में सुखाकर  
जीमूतादिके काथके साथ पान कराके उस  
समय वमन करावै जब पित्त कफके स्थान  
में चलागया हो । अथवा मेनफलके बीजों  
को मेनफलादि छः द्रव्यों में से किसीएक  
के काथ के साथ परिस्तुत कर के बटिका  
बनावै, इन बटिकाओं को पूर्वोक्त कपायों  
के साथ पान करे ।

फलाद्यबलेह ।

फलपिप्पलीप्वारस्वपट्टक्षकत्वादुफण्टक  
पाठा पाटली शार्ङ्गामूर्चासप्तपर्णनक्तमाल  
पिचुमर्दपटोलसुपवीगुडूचीसोमवलकदी-  
पिकानां पिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रक  
शृङ्गवेराणां चान्यतमकपायेण सिद्धो लेहः  
तिसमानं पूर्ववेण ।

अर्थ—अमलतास, इन्द्रजी, स्वादुकटक  
पाठा, पाटला, शार्ङ्गमष्टा मरोडफली, सप्त-  
पर्णी, कंजा, नीम, परवल, सुपवी, गिलोय  
सफेदखैर, अजवायन की जड़, पीपल, पीप-  
लामूल, गजपीपल, चीता और सोंठ इन

बीस द्रव्यों में से किसी एक के काथ के साथ मेनफल के बीजों को सिद्ध करके लेह बनावै । शेष क्रिया पूर्वके समान है ॥

फलपिप्पली, त्वेला, हरेणु, काशतपुष्पाकुस्तु, म्युरुतगरकुष्ठत्वक्चोरक, मरुवका, गुग्गुलु, लुवालक, श्रीवेष्टक, परिपेलवर्मा, सीशैलेयक, स्थौण्यक, सरलपारावतपद्मशोकरोहिणी, नाविंशतेरन्यतगस्यकपायेणसाधितोत्कारिका, कल्पेनयथामोदकोवामोदक, कल्पेनयथादोपरोगविभक्तिप्रयोज्यइतिसामानपूर्वेण । फलपिप्पली, स्वरसकपायपरिभाविता, नितिलशालितण्डुलपिष्टानितत्कपायोपसर्जनानि पङ्कलीकल्पेनवापूपा इतिसामानपूर्वेण ॥

अर्थ—छोटी इलायची, हरेणु, सौंफ, धनिया, तगर, कूठ, दालचीनी, चोरक, मरुवा, अंगर, गुग्गुलु, नेत्रवाला, श्रीवेष्टक मोथा, जटामांसी, शैलेय, धूनेर, सरलकाष्ठ, पारावतपदी, अशोक और कुटकी इन बीस द्रव्यों में से किसी एक के काथके साथ मेनफल के दानों की उत्कारिका या मोदक बनावै । इनकी रोग के अनुसार वमन कराने में देवै शेष क्रिया पूर्व के समान है ।

मेनफल के रस और उस के बीजों के क्वाथ में तिल और शाली चावल के चूर्ण की भावना देकर मेनफल के क्वाथ के साथ पूरी वा पूर बनावै । शेष क्रिया पूर्व के समान है ।

एतैर्नवचकल्पेन सुमुख, सुरस, कुठेरक, गण्डी, रकाल, मालकपर्णा, सफसवक, फणिज्जक

शृङ्गेरि, गृज्जनभूस्तृणककासमर्दधृक्तराजा, नामिधुवालि, कातक्रेष्णकाण्डेष्णान् चान्यतमस्यकपायेणकारयेत् । तथा वदरपाठवरा, गलेहमोदकोत्कारिका, तर्पणपानकमांस, रसयूपमद्यानां मदनफलान्यन्यतमेनोपसृज्य तथा दोपरोगदोषभक्तिदद्यात्सैः साधु वमतीति ।

अर्थ—इसी तरह सुमुख, सुरस, कुठेरक, गण्डी, कालमालक, पर्णास, फणिज्जक [ ये सब तुलसी के भेद हैं ] गाजर, सोंठ, गंधतृण, कसौदी, भांगरा, इधुवालि, ईख और काण्डेष्ण इन सत्रह द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों की पूरी वा पूर बनावै ॥

इसी तरह से पाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मद्य मेनफल के साथ पाक करके उसीके क्वाथके साथ दोषके अनुसार पान करवै । तो अच्छी तरहसे वमन होती है ॥

मेनफल के नामान्तर ।  
मदनः, करहाटश्चराठः, पिण्डीतकः, फलम् ।  
वसनश्चेति पर्यायैरुच्यते तस्य कल्पना ॥

अर्थ—मदन, करहाट, राठ, पिण्डीतक, फल और वसन ये मेनफल के नामान्तर हैं ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

नवयोगाः कपाये पुनर्तिस्वाष्टीपयोधृता ।  
अफाणितचूर्णैर्द्वाध्रेयोवस्ति क्रियापुपट् ॥  
विंशतिविंशतिलेहमोदकोत्कारिकासुचपङ्कलीयूपयोश्चेत्कायोगाः षोडशोदशा ।  
दशान्येपाठवान्ये पुत्रयस्त्रिंशदिमंशतपू ।

योगानां विधिवद्दृष्टं फलकल्पे महर्षिणेति ॥

अर्थ—इस अध्याय में व्राध के नौ वर्ति आठ, दूध के पांच, फाणित का एक चूर्ण का एक, सूंघने का एक, वर्तिक्रिया के छः, लेहवीस, मोदक बीस, उत्कारिका बीस, पूरी के सोलह, पूये के सोलह, और पाड़वादि में दस । इस तरह सब मिलकर मेनफल के एकसौ तैतीस कल्प हैं ।

इति श्री भाषाटीका ग्वितायां अग्निवेश विर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

। द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्याम

इति हस्मा भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करेंगे।

जीमूत के पर्याय शब्द ।

कल्पं जीमूतकल्पे मफलपुष्पाश्रयं शृणु ॥

स्वरागरी च वैष्णवी च तथा स्याद्देवतालकः ।

अर्थ—जीमूतके पुष्प और फल दोनों वसन कराने में प्रयुक्त किये जाते हैं ॥ खरा, गरी, वैष्णी और देवतालक ये इसके पर्यायवाची नाम हैं ।

जीमूत के गुण ।

जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथास्वौषधकाल्पितम् ।  
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासद्विधाद्येष्वामयेषु च ॥

अर्थ—यथानुरूप औषधों के साथ फलपना किया हुआ जीमूत त्रिदोषनाशक तथा ज्वर, श्वास और द्विचकी रोगों में हित है।

जीमूत के प्रयोग ।

यथोक्तगुणयुक्तानां देशानां यथाविधि  
पयःपुष्पेऽस्य निर्वृत्तफलेपे वापय श्रताः । लो  
मनेक्षीरसन्तानं दध्नुः उत्तरमलोमने । शृते  
पयसि दध्यम्लं जाते हरितपाण्डुके ॥

अर्थ—( १ ) यथोक्त गुण वाले देशों में उत्पन्न हुए जीमूत के पुष्पों को दूध में औटाकर पान करें । [ २ ] इसके फलों को दूध में औटाकर पीये । ३ । दोषों के अनुलोम में जीमूत डालकर औटोय हुए दूध की मलाई देवे ( ४ ) दोषों का प्रति-लोम होने पर जीमूत द्वारा सिद्ध दूध का दही देवे । ( ५ ) हरितपाण्डु में जीमूत डालकर औटाये हुए दूधका अम्ल दही देवे ।

अन्य प्रयोग ।

जीर्णानां च सुशुष्काणामन्यस्तानां भाजने  
शुचौ । चूर्णस्य पयसा शुक्तिवातपित्तादि  
तः पिवेत् ॥ आसृत्य च सुरामण्डे मृदित्वा  
प्रकृतं पिवेत् । कफजेऽरोचके कासे पाण्डु  
रोगे स यक्ष्मणि ॥ द्वेषापोऽध्याथवात्रीणि  
शुद्ध्या मलकस्य च । कोषिदारादिका  
नां वानिम्बस्य कुटजस्य च । कपायमा  
सुतं पूत्वा तेनैव विधिना पिवेत् ॥ अथ वार  
ग्वधादीनां सस्तानां पूर्ववत् पिवेत् ॥ एकैक  
शः कपायेण पित्तश्लेष्मज्वरादितः ॥

अर्थ—( ६ ) अच्छी तरह पके हुए और सूखे हुए जीमूत के फलों को एक स्वच्छ पात्र में रखे । इनका आधे पख चूर्ण दूध के साथ फांकने से वातापित्तरोग दूर हो जाता है । [ ७ ] जीमूत के फलों



को सुरामण्ड में भिगोकर उन्हें सुरा में मर्दन कर के छान कर पाँछे तौ इससेकफज अरुचि, खाँसी, पाण्डुरोग और यक्ष्मा दूर होजाते हैं । [ ८ ] जीमूत के दो वा तीन फलों को कूटकर गिलोय, आंवला, कोविदारादिगण, नीम वा कुड़ा इन द्रव्यों में से किसी के काथ में भिगोकर मर्दन करे और फिर छानकर पीवै तो पूर्वोक्त गुण करने वाला है । [ ९ ] अथवा आरग्वधादि सात द्रव्यों में से किसी एक के काथ में पूर्ववत् फलों को भिगोकर और छानकर पीवै इस से पित्तकफ ज्वर दूर होजाता है ।

अन्यप्रयोग ।

वर्षयःफलवच्चाटौकोलमात्रास्तुतामताः  
जीमूतकस्यवाफल्कचूर्णवाशिशिराम्बुना।  
ज्वरेपित्तभेववातदुष्टश्लेष्माणिचानुगे ॥  
जीवकर्पभकेक्षूणांशतावर्यारसेनवा ॥  
पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा॥  
तथाजीमूतकक्षीरासमुत्पन्नंनपचेद्घृतम्॥  
फलादीनांकपायेणश्रेष्ठतद्वनमतम् ।

अर्थ—(१०) मेनफल के सदृश कोवि-  
दारादि गण के क्वाथ के साथ आठप्रकार  
की वसितियां प्रस्तुत करे । ( ११ ) जीमूत  
के कल्क वा चूर्ण को ठंडे जल के साथ  
एक पित्त, वात मध्यम और हीन कफ के  
ज्वर में पान करे । [ १२ ] जीमूतके कल्क  
को जीवक, क्षपभक, ईख वा सितावर के  
रस में सेवन करने से पित्तकफज्वर वा  
वात पित्तज्वर दूर होजाता है । [ १३ ]  
जीमूत डाल कर औटायें हुए दूधको जमा

कर घी निकाले । इस घीको मेनफलादि के  
कपाय के साथ पान करे तौ बहुत उत्तम  
वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पदार्थरेमादिरायोगएकद्वादशचापरे ॥  
सप्तचारग्वधादीनांकपायेऽष्टौचर्वीक्षिपु ।  
जीवकादिपुचत्वारोघृतश्चैकंपकीक्षितम्॥  
कल्पेजीमूतकानांययोगास्त्रिशन्नवाधिकाः

अर्थ—जीमूत के उन्तालीस कल्प इस  
तरह वर्णन किये गये हैं, यथा—दूध केछः  
मदिरा का एक, आसुत के बारह, आर-  
ग्वधादि के सात, बत्ती आठ जीवकादि के  
चार और जीमूत का घृत एक प्रकार का ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविर-

०. चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता  
यां कल्पस्थानेजीमूतकल्पो नाम  
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—४—

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातश्स्वाकुकल्पंव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम इस्वाकुकल्पकी व्याख्या करेंगे ॥  
सिद्धंस्वाम्ययेस्वाकुकल्पंयेषांप्रशस्य-  
ते । पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगाअस्मिन्म  
हर्षिणा ॥

अर्थ—कटुतुष्णी के कल्प सिद्ध हैं इन  
में महर्षि आत्रेय ने उत्तम उत्तम पैंतालीस  
योगों का वर्णन किया है ॥

इक्ष्वाकुकेपर्यायशब्द ।

लम्बापिण्डफलातुम्बीकटुकालावुनीचतत्  
इक्ष्वाकुः फलिनी चैव प्रोच्यते तस्य कल्पना

अर्थ—इक्ष्वाकुके पर्यायवाची शब्द ये  
हैं, यथा—लम्बा, पिण्डफला, तुम्बी, कटुका  
आलावू, इक्ष्वाकु और फलिनी ।

इक्ष्वाकुके गुण ॥

कासश्वासविपच्छादिज्वरान्तैकफकाशिते  
प्रताम्यति नरे चैव वमनार्थं तदिष्यते ।

अर्थ—खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर  
और कफ में तथा पित्तज मूर्च्छा में इस  
की वमन हित है ।

इक्ष्वाकुके कल्प ।

अपुष्पस्य मवालानामृष्टिमादेशसंमिताम् ।

क्षीरमस्थे मृतं दद्यात्पित्तोद्विक्ते कफज्वरे ।

पुष्पादिपुचचत्वारः क्षीरे जीमूतके यथा ॥

योगाहरितपाण्डूनामुरामण्डेन पञ्चमः ।

फलस्वरसभाग्त्रिगुणक्षीरसाधितम् ॥

उरःस्थिते कफे दद्यात्स्वरभेदसपीनसे ।

जीर्णे मध्याद्भृते क्षीरं माक्षिपेत्तद्यदादाधि ॥

जातं स्यात्कफजेकासे श्वासे वम्पाश्च त

त्पिबेत् ।

अर्थ—कटुतुम्बी की छत्ताकी जिस में फूल  
न आये हों नवीन बारह बारह अंगुल  
की टहनी एक पल लेकर एक प्रस्थ दूध  
में बीटावे । इस दुग्ध के पान करने से  
पित्तोत्पन्न कफज्वर दूर होजाता है । जिस  
तरह जीमूत के फल पुष्प संत्रयी दूध  
के चार प्रयोग हैं । उसी तरह इस के  
भी चार प्रयोग हैं इन चार प्रयोगों से हरितपाण्डू

आदि रोग अच्छे होजाते हैं । जिस तरह सुरा-  
मंडमें जीमूत भिगोकर एककल्प वनता है इसी  
तरह एक प्रयोग इसका भी है । इक्ष्वाकु  
के फल का रस निकालकर तिगुने दूध के  
साथ औटाकर पीने से हृदय में स्थित कफ  
स्वर भेद और पीनस दूर होजाती है । एक  
कटुतुम्बी के बीच का गूदा निकालकर  
पोली करले और उसमें दूध भर देवे, जब  
उसका दही जमजाय तब कफज खांसी श्वास  
और वमन में इस दही के द्वारा वमन करावे ।  
अजाक्षीरेण वीजानि भावयेत्पाययेत्तच ॥  
विपगुल्मोदरग्रन्थिगण्डपुष्ठीपदेषु च ।

दधिमण्डैः फलान्मध्यं पाण्डुकुण्डज्वरादितः ॥

तेन तर्कविपकं वासक्षौद्रलघणं पिबेत् ।

तुम्ब्याः फलरसैः गुल्मैः सपुष्पैर्वचूर्णितम् ॥

उदयेन्माल्यमाग्रायगन्धसम्पत्सुखोचितम् ॥

भक्षयेत्फलमध्यं पाण्डूनेन पललेन च ॥

इक्ष्वाकुफलतैलं वासिष्ठं वा पूर्ववद्भृतम् ।

अर्थ—कटुतुम्बी के बीजोंको बकरी के दूध  
की भावना देकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णका  
सेवन कराने से विषरोग, गुल्मरोग, उदर-  
रोग, ग्रन्थि, गंडमाला और श्लीपद दूर  
होजाते हैं । कटुतुम्बीकी गिरिका दही के  
तोड़के साथ पकाकर पान करनेसे पाण्डुरोग,  
कुष्ठ और विष दूरहोजाते हैं । अथवा उसी  
के साथ तक्र को पकाकर संधानमक और  
शहत डालकर पीना चाहिये । कटुतुम्बी के  
पुष्पों को तृती ही के रसकी भावना देकर  
सुखाकर चूर्णकर लेवे । फिर इस चूर्ण को  
सुगंधित पुष्प में छपेट कर सूघने से सुख-

पूर्वक वमन होती है । कटुतुंबी के गूदे को गुड़ अथवा तिलके कल्क के साथसेवन करै अथवा कटुतुंबी ढालकर सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीमूत की तरह सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से वमन होती है ।

पञ्चासदशवृद्धानिफलादीनांयथोत्तरम् ॥  
पिवेद्विमृशवीजानिकपांयेष्वासुतंपृथक् ।  
यत्प्याहकोविदारायैर्मृष्टिमन्तर्नखंपिवे  
त् ॥ कपायैःकोविदारायैर्मात्राश्चफलव  
त्स्मृताः ॥

अर्थ—मेनफलादिक वमनकारक द्रव्यों के क्वाथ में कटुतुम्बी के बीजों को मर्दन करके और छानकर नीचे लिखे क्रम से पान करै, यथा—पहिले दिन दस बीज, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन तीस, चौथे दिन चासी और पांचवें दिन पचास बीज लेवै । कटुतुम्बी के अन्तर्नख मुष्टि [ अंगूठे का नख भीतर करके भरी हुई मुठ्ठी ] बीज लेकर मुलहठी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में पीसकर मेनफल के सदृश मात्रा का प्रयोग करै ॥

त्रिलवमूलकपायेणतुम्बीबीजाञ्जलिपचेत्  
पूतस्यास्यत्रयोभागाःचतुर्थःफाणितस्यतु  
सप्ततंवीजभागश्चपिष्टमर्धाशिकांस्तथा ॥  
महाजालिनिजीमूतकृतवधेनवत्सकान् ।  
लेहयेत्साधयेद्दर्प्याघट्टयन्मृदुनायिना ॥  
यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितंचनशीर्यते ॥  
तंलिह्यान्मात्रपालेहंमन्थंचापिपिवेदनु ॥

अर्थ—वेलकी जड़ के क्वाथ में एक अंजली भर तूंबी के बीजों को पकावै ।

फिर इस को छानकर तीन भागलेवै, एक भाग फाणित, एक भाग घृत तथा अर्द्धभाग तोरई जीमूत, घीयातोरई और इन्द्रजौ इनके बीजों की पीसकर ढालदे और मन्दी मन्दी अग्निसे पकावै और करलीसे चलाता रहै, जब इस में तार से छूटने लगे और पानी में डालने से यह शीर्णनहो तब तक पकाता रहै पीछे उतार कर मात्राके अनुसार इसका पान करै ऊपरसे मन्थ पीवै ।  
कल्पएषोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते ।  
शक्नुभिर्वापिवेन्मथतुम्बीस्वरसभाषितैः  
कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके ।  
गुल्मेमेहमेसेकचकल्कमांसरसैःपिवेत् ॥  
नरःसाधुवमत्येवंनचदौर्विलपमश्नुते ।

अर्थ—इसी तरह अग्निमन्थादि अवलेह की चार कल्पना हैं । अथवा तूंबी के रस की भावना देकर जौ के सत्तू का मन्थपान करै । कफज ज्वर, खासी, कंठरोग, अरुचि, गुल्म, प्रमेह, लालास्राव आदि रोगोंमें इस के कल्क को मांसरस के साथ पान करै । इससे वमन बहुत अच्छी होती है और दुर्बलता भी नहीं होने पाती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।  
पयस्यष्टौसुरामण्डेमस्तुतक्रेचतेत्रयः ॥  
घ्न्यंसपललंतैलंवरुमानाःफलेपुपद् ॥  
घृतमेकंकपायेपुनवान्येमधुकादिषु ।  
अष्टौवर्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थारसस्तथा  
योगाइस्वाकुलपेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच ।  
उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया  
अर्थ—इस अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने

प्रजा की भलाईकेलिये इक्ष्वाकु के पैंतालीस प्रयोग वर्णन किये हैं ॥ यथा दूध के आठ सुरामंद, दही के तोड़ और तक्र के एक एक, सूँघने का एक, गुड, तिलकल्क, तेल और घी के एक एक, वर्द्धमान् छः मुलहटी आदि के व्वाथ के नौ, आठ प्रकार की वार्ति, पांच प्रकार के अत्रलेह, मन्थानुपान का एक और मांसरस का एक ।

इति श्री भाषाटीकाश्रितायां अग्निवेशविरचि-

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने इक्ष्वाकुकल्पो नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

—\*—

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो धामार्गवकल्पंव्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवानाधेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

धामार्गव के पर्यायवाची शब्द ।

ककोटकीकटुकलामहाजालनिरेवच ।

धामार्गवस्य पर्यायाराजकोशातकी तथा ॥

अर्थ—ककोटकी, कटुकला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकोशातकी ये धामार्गव के पर्यायवाची शब्द हैं । इसे भाषा में घीयातोरई कहते हैं ।

धामार्गव के गुण ।

गरेगुल्मोदरेकासेवातश्लेष्मापयस्थिते ।

कफेचकण्ठवक्रस्थेकफसञ्चयजेपुच ॥

रोगेभेत्तपयोज्यं स्यात् शिराःस्युर्गुरुवश्चये

अर्थ—गारोष, गुल्मरोग, उदररोग, खासी, वातरोग, कफरोग, कंठस्थ वा मुख स्थकफ तथा अन्य कफसंचय कारकरोगों में एवं वद्धमूल और गुरुरोगों में धामार्गव के प्रयोगों से वमन करना हित है ।

धामार्गवकी कल्पना ।

फलं पुष्पं प्रवालञ्च विधिना तस्य संहरेत् ॥

प्रवालस्वरसंशुष्कं कृताश्च गुलिकाः पृथक्

कोविदारादिभिः पेया कपायैर्मधुकस्य च ।

पुष्पादिपुपयोयोगाः चत्वारः पञ्चमीसुरा

पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतः कल्पः प्रवक्ष्यते ॥

मधुकस्य कपायेण बीजकण्ठोद्भूतं फलम् ॥

सगुडव्युपितं रात्रिकोविदारादिभिस्तथा

दद्याद्गुल्मोदरातं भ्योये चाऽप्यन्येकफा

मयाः ॥ दद्याद्म्लेन वा युक्तोर्छादद्दृष्ट्वांग

शान्तये ।

अर्थ—धामार्गव के फूल, फल और पत्तों को विधि पूर्वक लावे । धामार्गव के पत्तों के रस को सुखा कर गोली बना लेवै, इस गोली को विदारादि आठ द्रव्यों से पृथक् और मुलहटी इन के काथ के साथ पान करै । पूर्वोक्त विधि से धामार्गव के पुष्पादि कों के दूध के साथ चार प्रयोग हैं । पांचवां सुरा में भिगोकर मसलकर उसको पान करना है । इन प्रयोगों में पकेहुये फल सुखा कर काम में लाये जाते हैं । धामार्गव के बीज, छिलके आदि दूर कर के मुलहटी के काथ में अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में से किसी एक में भिगो देवै । प्रातःकाल इसको छान कर धाड़ा सा गुड

डालकर पीवै, इस से गुल्मरोग, उदररोग, या अन्य कफरोग दूर होजाते हैं । अथवा इस में खटाई मिलाकर देने से वमन और हृद्रोग शान्त होजाते हैं ॥

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनिभायितानिप्रभृतशः  
रसक्षरियवाग्वादिदृष्टोप्रात्त्रावमेत्सुखम्  
चूर्णाकृतस्यवार्तवाकृत्वावदरसाम्पिताम्  
विनीयाञ्जलिमात्रेत्तुपिवद्दोशकृतोरसे ।

पृषतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्टश्वतराविके ॥  
श्वदंष्ट्रीखरखड्गानांचैत्रं पेयाशकृद्रसे ॥  
जीवकर्पभक्षाक्षीरात्मगुप्ताशतावरीम्  
काकोलीश्रावणीमेदांमहामेदांमधूलिका  
म् । एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण  
तु ॥ शर्करागधुसंयुक्तालेष्टादृदाहकासिनाम्

अर्थ—धामार्गव के चूर्ण में नालकमल आदि के पुष्पों को खूब धरा रहने देंवै । मांसरस, दूध और यथागू आदि को तृप्ति पर्यन्त भोजन करके इन पुष्पों के सूँघने से बहुत सुख से वमन होती है । अथवा सोले भर धामार्गव के फूल के चूर्णको गौ के गोबर के एक अंजली रसके साथ पान करै । इसी तरह चितकवरा हिरन, रीछ, फालाहिरन, घोडा, हाथी, ऊँट, खिच्चर, भेडा, श्वदंष्ट्रा, गधा और गेंडा इन में से किसी के विष्टा के रस के साथ धामार्गव का चूर्ण पान करै । अथवा जीवक, कपभक क्षीरकाकोली, आत्मगुप्ता, सितावर, काकोली श्रावणी, मेदा, महामेदा और -मुलहर्टा इन में से किसी एक के चूर्ण को धामार्गव के चूर्ण के साथ मिलाकर शहत और मिश्री

के साथ चाटने पर हृदय का दाह और खाँसी दूर होजाती है ।

मुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितकफे  
धान्यतुम्बुरुयूपेणकल्कःसर्वत्रिपापहः ।  
जात्यासौमनसायिन्यारजन्पाश्चोरकस्य  
दा ॥ पुनर्नवाकासमर्दविम्बीहैमवतस्यच  
महासहाभुद्रसहावृद्धीराणांपृथक्पृथक् ॥  
एकंधामार्गवंदेवाकपायेपरिमृद्यतु ॥ पू-  
तंमनोत्रिकारेपुपिवेदमनमुत्तमम् ॥ तच्छृ-  
तंक्षीरजंसर्पिःसाधितंवाफलादिभिः ॥

अर्थ—पित्तकीकृष्णशुक्त कफमेंधामार्गव का चूर्ण फाँककर ऊपरसे गरम जल पीवै । धनियाँ, तुम्बरू धनियाँ और यूपके साथ पान करे तो सब प्रकार के विष दूर होजाते हैं । मालती के फूल, हलदी, चौरफ, पुनर्नवा कसौदी, कंदूरी, वच, महासहा, भुद्रसहा और रक्त पुनर्नवा इन के पृथक् पृथक् कपाय में एक वा दो धामार्गव को मसल कर छानकर पीवै । अथवा उस के साथ औटायें हुए दूध के घी को मैनफलादि के कल्कके साथ सिद्ध करके सेवन करने से उत्तम वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।  
पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे ।  
कपायाःत्रिंशतिःकल्कौदशद्वौचशकृद्रसे ।  
अत्रएकस्तथाप्रेयेदशलेहास्तथाघृतम् ।  
कल्पधामार्गवस्योक्ताःपट्टियोगामर्हपिणा  
अर्थ—इस अध्यायमें धामार्गवपत्तोंकेचार प्रयोग, दूध का एक प्रयोग, सुरासवका एक, ववाथ के बीस, गौ आदिके पुरीपरस

के वारह, अन्न का एक, संधने का एक  
अवलेह दस तथा घृत के दस । इस तरह  
धामार्गवके साठ प्रयोग वर्णन किये गये हैं ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनाम -

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

— — — — —

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातो वत्सकं कल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद् भगवन्नात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम वत्सककल्प की व्याख्या करेंगे।

अथ वत्सकनामानि भेदं स्त्रीपुंसयोस्तथा ।

कल्पश्चास्य मवक्ष्यामि विस्तरेण यथा तथम् ।

अर्थ—अब हम वत्सक के नाम तथा  
उस के स्त्रीजाति और पुरुषजाति के भेद  
तथा इस के कल्पों की व्याख्या करेंगे ॥

वत्सक के नाम ।

वत्सकः कुटजश्चैव वृक्षको गिरिमल्लिका ।

वीजानीन्द्रपवास्तस्य तथा च्यन्ते काले-

द्रकाः ॥

अर्थ—वत्सक, कुटज, वृक्षक, गिरिम-  
ल्लिका इस के पर्यायवाची नाम हैं । इस  
के बीजों को इन्द्रजो और कालिंग भी  
कहते हैं ॥

वत्सक के भेद ।

वृहत्फलः श्वेतपुष्पः स्निग्धपत्रः पुमान् भ-  
वेत् । श्यावारुणा च पुष्पी स्त्रीफलवृन्तै-  
स्तथा पुभिः ॥

अर्थ—जिस वत्सक के बड़े फल, सफेद  
फूल और चिकने पत्ते होते हैं वह पुरुष  
जाति है जिस के फल काले या लाल और  
जिस के फल और वृन्त छोटे होते हैं वह  
स्त्री जाति है ॥

वत्सकके गुण ।

रक्तपित्तकफघ्नस्तु मुकुमारेष्वनत्ययः ।

हृद्रोगज्वरवातासृग्घिसर्पादिपुण्यस्यते ॥

अर्थ—वत्सक रक्तपित्त नाशक, कफना-  
शक, मुकुमारों को अनुपद्रवकर्त्ता, हृद्रोग,  
ज्वर, वातरक्त शौर विसर्प आदि रोगों में हित  
होता है ॥

वत्सक के कल्प ।

काले फलानि संगृह्यत योर्वैष्मनि निक्षिपेत् ।

तेषामन्तर्नखं मुष्टिजर्जरीकृत्य वामयेत् ॥

मधुकस्य कपायेण कोविदारादिभिस्तथा ।

निशि स्थितं तृणमृदलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

पिचोत्तद्रूपनं श्रेष्ठं पित्तश्लेष्मनिवर्हणम् ।

अष्टाहं पसां कर्णेन तेषां चूर्णानि भावयेत् ॥

जीवकस्य कपायेण ततः पाणितलं पिचेत् ।

फलजीमूतकेश्वाकुजीवन्तीनां पृथक्तथा ॥

सर्पपाणामधूकानां लवणस्याथ वाम्बुना ।

कृशरेणाथ वायुक्तं विदध्या द्रुमनं भिषक् ॥

अर्थ—ठोक समय पर दोनों प्रकार के  
वृक्षों के फल लाकर सुखाकर घर में रख  
लेवें । इनमें से अन्तर्नख मुष्टि लेकर चूर्ण  
करले । इस चूर्णको मुलहटी अथवा कोवि-  
दारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में से किसी  
एक के साथ रात्रि में भिगो दें, प्रातःकाल  
इसे मसलकर छानले और इसमें संधानमक

और शहत मिलाकर पाँच पित्तरोग में इस की वमन बहुत अच्छी होती है और यह पित्त कफको नष्ट भी करता है । अथवा इन के चूर्ण को आठ दिनतक आकके दूध की भावनादेवै और फिर इसमेंसे दो तोले जीवक के कपाय के साथ पीये । अथवा आक के दूध में भावना किया हुआ उक्त-चूर्ण मेनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु वा जीवन्ती के क्वाथ के साथ पान करै अथवा सरसोंका क्वाथ, वा मुलहठी का क्वाथ, वा लवणका जल, वा कुशरा के साथ इन्द्रजों के कल्क का पान करै तो वमन होवे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।  
तत्रश्लोकः । कपायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताः  
सलिलैस्त्रयः । कुशराष्टादशायोगवत्स  
कस्यानिर्दिष्टाः ॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ, चूर्ण के पाँच, जल के तीन वा कुशरा का एक इस तरह वत्सक के अठारह कल्प वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकाश्रितायांआग्निवेशविरचितायां  
चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां  
कल्पस्थाने वत्सक कल्पो नाम  
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—:~\*~:—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःकृतवेधनकल्पव्याख्यास्यामः ।  
इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥  
अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि  
अब हम कृतवेधन कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम ।  
कृतवेधननामानिकल्पञ्चास्यनिबोधत ।  
क्ष्वेदःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच ॥  
अर्थ—अब हम कृतवेधन के नाम और उस के कल्पों की व्याख्या करते हैं । नाम यथा, क्ष्वेद, कोशातकी और मृदङ्गफल ये कृतवेधन के नाम हैं, भाषा में इसे तोरई कहते हैं ॥

कृतवेधनके गुण ॥

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णगाढेप्विष्टम्भदेपेतु ।  
कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥  
अर्थ—तोरई अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है, । यह मादरोगों में उप-योगी होती है, कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोफ, गुल्मरोग और विपरोग इस के सेवन से दूर होजाते हैं ॥

कृतवेधन के कल्प ॥

क्षीरादिकुसुमादीनिमुराचंतेपुपूर्ववत् ।  
सुधुष्काणान्तुजीर्णानामेकद्वेवायथावलम्ब  
कपायैर्मेधुकादीनानवभिःफलवत्पिबेत् ।  
काथयित्वाफलंतस्यपूत्वालेहनिधापयेत् ।  
कृतवेधनकल्काक्षेफलाद्यर्द्धांशसंयुतम् ॥  
पृथक्चारुवधादीनांत्रयोदशभिरासुतम् ॥  
शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्तथा ।  
वर्तिक्रियापटुफलवत्फलादीनांष्ट्र  
तंतथा ॥

अर्थ—कृतवेधन के पत्ते, फूल और फल आदि के साथ दूध पकाकर वमन के लिये दिया जाता है, इसके पुष्प फलादिकों को रात्रि में सुरा में भिगोकर प्रातःकाल

छानकर पीने से वमन होती है । कृत-  
वेधनके एकत्रा दो पकेहुए सूखेबीज मुलहटी  
और कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में  
किमी के साथ मेनफल की तरह छेवें ।  
कृतवेधन का क्वाथ करके छान छेवें और  
फिर उसे छेह की तरह पकाकर सेवन करें  
कृतवेधन का कल्क दो तोले इस में मेनफल  
का कल्क एक तोले मिलाकर सेवन करें ।  
आम्रव्यादि तरह द्रव्यों के भिन्न भिन्न  
क्वाथ में कृतवेधन को भिगोकर और छान  
कर सेवन करें । सेमर की जड़ और डंठल  
का पिच्छा आदि दस द्रव्यों के साथ पृथक्  
पृथक् सिद्ध करके सेवन करें । इसी तरह  
कोविदारादि भिन्न २ छः द्रव्यों के साथ  
कृतवेधन की छः प्रकार की वत्ती बनाई  
जाती है ॥ तथा मेनफल के सदृश ही कृत-  
वेधन का घृत भी तयार किया जाता है ।  
कोशातकानिपञ्चाशत्कोविदाररसेपचेत् ।  
तद्भायंफलादीनांकल्कैर्लेहं हि साधयेत् ॥  
क्ष्वेदस्पतत्रभागः स्याच्छेषाण्यर्द्धांशिक-  
स्पच ॥ कपायैः कर्षुदाराद्यैरेवन्तत्कल्प-  
येत्पृथक् ॥ कपायेपुफलादीनामानूपं पि-  
शितेपृथक् ॥ कोशातकीफलंपक्त्वातद्र-  
संलवणं पिवेत् ॥ फलादिपिप्पलीतुल्य-  
न्तद्रत्नैर्वेदरसं पिवेत् । क्ष्वेदं काये भवेत्सि-  
द्धं मिश्रमिभ्रुरसेन च ॥

अर्थ—पचास कृतवेधन फलोंको को-  
विदारके रसमें पकावें । इसकाथमें मदन  
फलादि द्रव्यों का कल्क डालकर छेह व-  
नाई । जितनी कृतवेधन डाली जाय उस

से आधे अन्य द्रव्य डालने चाहिये । फिर  
इन सबको कोविदारादि द्रव्योंके पृथक् २  
क्वाथमें पकाकर सेवन करें । मेनफलादि  
के क्वाथमें आनूपमांस और कोशातकीको  
पकाकर उस रसको नमकके साथ पीना  
चाहिये । उक्त कोशातकी और आनूपमांस  
इनके पकेहुए रसको मेनफलादि पीपल प-  
र्यन्त द्रव्यों के क्वाथ में पकाकर सेवन  
करें अथवा मेनफलादि के क्वाथ में सिद्ध  
कीहुई कोशातकी को ईखके रसके साथ  
पीना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

सारेद्वौर्द्धासुराचैकाकाथाद्वाविंशतिस्तथा  
दशपिच्छाघृतंचैकंपट्चयतिंक्रियाः शुभाः ॥  
लेहेऽष्टौमसृपांसंचयोगेश्वरसेऽपरः ॥ कृत  
वेधनकल्पेऽस्मिन्पट्टियोगाः प्रकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में दूध के चार  
सुरा का एक, क्वाथके षाईस, पिच्छाके दस,  
घी का एक, यति छः, छेह आठ, मांस के  
सात और ईख के रस का एक इस तरह  
कोशातकीके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश त्रि-  
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता

यांकल्पस्थानेकृतवेधनकल्पोर्णोम

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्यामात्रिवृत्कल्पं व्याख्यास्यामः ।  
इतिहामाहभगवानात्रेयः ।



अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम इयामत्रिवृतकल्पकी व्याख्या करैगे विरेचनेत्रिवृत्तमूलश्रेष्ठमाहुर्यनीपिणः ॥

तस्याःसंज्ञागुणःकर्मभेदाःकल्पश्चवक्ष्यते

अर्थ—पण्डितोंने विरेचनके लिये निसोथ की जड़ बहुत उत्तम कही है इसी से अब हम उस के नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पों की व्याख्या करते हैं ॥

त्रिवृताकेनाम।

त्रिभाण्डात्रिवृताश्यामासुवहाकोटारातथा त्रिवृत्सर्धानुभूतिश्चशङ्खःपर्यायवाचकैः।

अर्थ—त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, सुवहा कोटारा [ कुटवणा ] और सर्वानुभूति ये इस के पर्यायवाची शब्द हैं, इसे भाषामें निसोथ कहते हैं ।

निसोथकेगुण ।

कपायामधुरारूक्षाविपाकेकटुकाचसा ।

कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥

सेदानीमौपैथ्युक्तावातपित्तकफापहैः ॥

कल्पावशेष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ।

अर्थ—निसोथ कसीली, मिष्ट, रूक्ष और कटुपाकी होती है यह कफपित्तको दूर करती है, रूखी होनेके कारण वात को प्रकुपित करती है । परन्तु वात, पित्त तथा कफनाशक औषधियोंके योगसे अनेक कल्पनाओं के द्वारा सम्पूर्ण प्रकार के रोगों को दूर करती है ।

निसोथकेभेद ।

मूलन्तुद्विविधतस्याःश्यामंचारुणमेवच ॥

तयोर्मुख्यतरंविद्धिमूल्यंदरुणप्रभम् ॥

अर्थ—निसोथ की जड़ लाल और का. ली दो तरह की होती है, इनमें से लाल जड़ वाली निसोथ बहुत उत्तम होती है । यह सुकुमार, बाढक, वृद्ध और मृदु कोष्ठ वालोंके लिये उत्तम होती है ।

श्यामात्रिवृतकेगुण ॥

सुकुमारेणिशौवृद्धेमृदुकोष्टेचतच्छुभम् ।

मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामाकण्डक्षिणो

त्यपि । तैक्ष्ण्यात्कर्पतिहृत्कण्डमाशुदो

पंहरत्यपि ॥ शस्पतेचहुदोषाणांक्रूरको

ष्टाश्चयेनराः॥

अर्थ—श्यामानिसोथ आशुकारी होने से मोह और कंठमें क्षोणता करती है तैक्ष्ण्य होनेसे हृदय और कंठको कर्पित करती है, तथा दोषको शीघ्रही दूर करदेती है । यह निसोथ बहुत दोषवाले और कड़े को ठे वालों के पक्ष में हित है ।

गुणवत्यन्तयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् ॥

उपोष्यप्रयतःशुक्लेथुलवासाःसमाहितः।

गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंअतिर्यग्विसृतश्चयत्

गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वंचंशुष्कानिधा

पयेत् ॥

अर्थ—श्रेष्ठ गुणवाली भूमिमें उत्पन्न हुई दोनों प्रकारकी निसोथकी जड़ लावे, लानेके दिन उपवास करे और पवित्रता से स्वच्छ वस्त्र धारण कर के शुरुपक्ष में लाने का प्रयत्न करे । निसोथकीजड़ जो सीधी और फैलती हुई बहुत नीचे की चली गई हो और धिकनी हो उसे निकाल कर छालको सुखाकर रखलेवे और काटको त्याग देवे

निसोथकी मात्रा ।

स्निग्धास्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितः  
सुखम् । अक्षमात्रन्तयोःपिण्डविनीया  
म्लेननापिबेत् ॥ गोव्यजामहिपीमूत्रसौ  
वीरकतुपोदकैः । प्रसन्नयात्रिफलयाशृत  
याचपृथक्पिबेत् ॥ एकैकसैन्धवादीनां  
द्वादशानांसनागरम् । त्रिवृद्विगुणसंयु  
क्तचूर्णमुष्णाभ्युनापिबेत् ॥

अर्थ—जिसको विरेचन देना हो उसे  
स्निग्ध और स्वेदित करके दोनों प्रकारकी  
निसोथ में से किसी को तोले भर कांजी में  
मिलाकर पीवै विरेचन के पीछे पेया आदि  
का सेवन करे । इसी तरह से तोले भर  
निसोथ की जड़ को गौ, भेड़, बकरी भेंस  
का मूत्र, सौवीर, तुपोदक, प्रसन्ना वा त्रिफला  
के काथ के साथ पीवै । अथवा चार सैन्धवा  
दिक और आठ प्रकार के मूत्र इन में से  
किसी के साथ, निसोथ से दुगुनी सोंठ  
ढालकर पीवै ऊपर से गरमजल पीलेवै ॥  
मरिचंपिप्पलीमूलमगधागजपिप्पली ॥  
सरलःकलिमहिद्वग्भार्गतिजोवतीतथा  
मुस्तहैमवतीपथ्याचित्रशोरजनीवचा ॥  
स्वर्णक्षीर्यजमोदाचशृङ्गेरवेरञ्चतैःपृथक् ॥  
एकैकाधौशसंयुक्तपिबेद्गोमूत्रसंयुतम् ॥  
मधुकाद्वीशसंयुक्तशर्कराम्युयुतापिबेत् ॥  
अर्थ—कालीमिरच, पीपलामूल, पीपल,  
गजपीपल, सरलकाष्ठ, देवदारु, हिंग, भा-  
दंगी, चव्य, मोथा, वच, हरड़, चीता, हलदी,  
पच, स्वर्णक्षीरी, अजमोद, और सोंठ इन  
सब द्रव्यों से दूनी निसोथ मिलाकर गोमू-

त्र के साथ पान करे । अथवा एक भाग  
मुल्हटी और दो भाग निसोथ मिला कर  
शर्करा के जल के साथ पीवै ॥  
कर्कटादश्रावणीचमेदर्पभकजीवकौ ॥  
मुद्गमापाख्यपर्णीचमहतीश्रावणीतथा ॥  
काकोलीक्षीरकाकोलीछत्राछिन्नरुहांतथा  
क्षीरशुक्लांपयस्याश्वयष्ट्याहंविधिना  
पिबेत् ॥ वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि  
तुक्फानिले ।

अर्थ—काकड़ा सींगी, श्रावणी, मेदा,  
ऋषभक, जीवक, मुद्गपर्णी, मांषपर्णी, म-  
हाश्रावणी, काकोली, क्षीरकाकोली, छत्रा,  
गिलेय, क्षीरशुक्ला, विदारिकन्द और मुल्ह-  
टी इन के समान निसोथ मिलाकर पीवै ।  
ये प्रयोग वातपित्त में हित हैं तथा अन्य  
प्रयोग वातकफ में हित हैं ।

क्षीरमसिशुकाश्मर्याद्राक्षपीलुरसैःपृथक्  
सर्पिषावातयोश्चूर्णमभयार्धाशिकंपिबेत्  
लिङ्गाद्वामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम्  
अजगन्धातुगाक्षीरीविदारीशर्करात्रिवृत्  
चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यालीङ्गासाधुविरच्यते  
सन्निपातञ्चरस्तम्भदाहवृणादितोनरः

अर्थ—दूध, मांसरस, ईख का रस, खं-  
भारी, दाख, पीछ का रस वा घी के साथ  
आधा भाग हरड़ का मिलाकर दोनों प्रकार  
की निसोथ में से कोई सी पीवै । अथवा  
निसोथ के चूर्ण में शहत, घी और चीनी  
मिलाकर चाटे । अजगन्ध, वंशलोचन, वि-  
दारीकन्द, चीनी और निसोथ इन के चूर्ण  
को शहत और घी में सानकर चाटने से

अच्छी तरह विरेचन होता है। सन्निपातज  
ज्वर, स्तम्भ, दाह और तृष्णा में यह विरे  
चन हित होता है।

श्यामात्रिष्टुत्पायेण कल्केन च शर्कराम् ॥  
साधयेद्विधिवलेहं लिखात्पाणितलंततः ।  
ससौद्रांशं शर्करां पक्त्वा कुर्यान्मृद्भाजनेन वै ॥  
क्षिपेच्छीतं त्रिवृच्चूर्णं त्वक्पत्रमारिचैः सह ।  
मात्रया लेहयेदतदीश्वराणां विरेचनम् ।  
कुडवांशान् रसानिधुद्रासापीलुं पक्त्वात्  
सितोपलापलेक्षौद्रात्कुडवाद्द्वयसाधये-  
त् । तलेहं योजयेच्छीतं त्रिवृच्चूर्णेन श-  
स्त्रवित् । एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां  
विरेचनम् ॥

अर्थ—श्यामा निसोध का काथ, कल्क  
धौर चीनी मिलाकर लेह की तरह पकावें  
और इस में से दो तोले चाँटें। शर्करा को  
पकाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर  
मिट्टी के नये पात्र में रख दें। इसी में  
निसोधका चूर्ण, दालचीनी, तेजपात, काली  
मिरच इनका चूर्ण भी उस में डाल दें।  
इसको मात्रावत् सेवन करें। यह विरेचन  
सेठसाहूकार राजा महाराजाओंको उपयोगी  
है। अथवा ईख का रस, दाख का रस,  
पीछूका रस और फालसे का रस एक एक  
कुडव और चीनी दो पल इन सबको प-  
का कर ठंडा कर ले ठंडा होने पर आधा  
कुडव शहत मिलाकर धर लें। इस लेह में  
निसोध का चूर्ण मिलाकर सेवन करें। यह  
विरेचन धनंजान् उदीर्ण पित्तवालों के लिये  
हितकर है।

पैत्तिक प्रकृति वालों का विरेचन ॥  
शर्करामोदकान्वर्तिगुलिकामांसपूषकान् ॥  
अनेन विधिना कुर्यात्पैत्तिकानां विरेचनम् ॥

अर्थ—पित्तप्रकृति वालों के लिये निसोध  
के दूरे के लड्डू, वर्ति, गुलगुला, मांसके  
पूषा आदि बनाकर विरेचन के लिये दें।

कफप्रकृति के लिये विरेचन ।  
पिप्पलीनागरं सारं श्यामात्रिष्टुत्पासह ।  
लेहयेन्मधुना सार्द्धं श्रेष्मलानां विरेचनम् ॥

अर्थ—कफप्रकृति वालों के लिये पीपल  
सोंठ, क्षार और श्यामात्रुत इनको शहत  
के साथ चटाने से विरेचन होता है ॥

कफाधिक्य में राजाओंके योग्य विरेचन  
मातुलुङ्गाभयाधार्वाश्रीपर्णीकोलदाडिमा  
त् ॥ सुभृष्टान्स्वरसांस्तैले साधयेत्तत्र चा-  
वपेत् ॥ सहकारान्कपित्थांश्च साध्यमम्ल  
श्वयत्फलम् । पूर्ववद्गहलीभूते त्रिवृच्चूर्णे  
समावपेत् ॥ त्वक्पत्रफेतरैर्लानां चूर्णञ्च  
मधुमात्रया । लेहोऽयं कफमूलानामीश्व-  
राणां विरेचनम् ॥

अर्थ—विजोरा, हरड, आमला, श्रीपर्णी,  
वेर और अनार इन सबका समान भाग  
रस और इतनीही शर्करा लेकर मिला दें।  
और पक करें। पाँछे इसे तेलमें भून लें।  
और फिर इस में निसोध डाल दें। इसी  
तरह से आम, कैथ, तया अन्य खट्टे फलों  
के क्वाथ को पकाकर गाढ़ा कर लें और  
फिर उस में निसोधका चूर्ण डालें और  
दालचीनी, तेजपात, केसर और इलायची  
इम में डाल दें, फिर इस को शहत के

साथ चाटे । यह विरेचन कफप्रधान राजा  
महाराजाओं के लिये बहुत हित है ।

पानकानिरसान्पूषान्मोदकान् रागपाट  
वान् । अनेन विधिना कुर्याद्विरेकार्येण कफा  
धिके ॥ त्वगैलाभ्यां समं नीतैस्तैस्त्रिवृत्तै  
श्शर्करा । चूर्णफलरससौद्रशक्तुभिस्तर्प  
णं पिवेत् ॥ वातपित्तकफोत्थे पुरोगेष्वल्पा  
नलेषु च । नरोपसुकुमारो पुनिरपायं विरेच  
नम् ॥ शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्माग  
धिके मधु । मोदकः सन्निपातो ध्वरक्तपि  
त्तज्वरापहः ॥

अर्थ—इसी तरह से पानक, रस यूप  
मोदक और रागपाटव बनाकर कफाधिक  
व्यक्तियों के लिये विरेचन के निमित्त देवै  
एक भाग दालचीनी, एन भाग इलायची  
दो भाग निसोथ और चार भाग चीनीको  
मिलाकर अम्लफल के रस, शहत और  
जौ के सत्तू के साथ तर्पण पान करे । यह  
विरेचन वात, पित्त और कफ के रोगों में,  
मन्दाग्नि में और सुकुमार मनुष्यों के लिये  
हित है । अथवा चीनी, त्रिफला, दोनों  
प्रकार की निसोथ, पीपल और शहत इन  
सबके मोदक बनावै । ये मोदक सन्निपात  
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त और ज्वर को दूर करता है  
त्रिवृच्छाणामृतास्तिस्वस्तिस्त्रिचक्रिफला  
त्वचः ॥ विडङ्गपिप्पलीसारशाणास्तिस्त्र  
चचूर्णिताः । लिप्तात्सर्पिर्मधुभ्याश्च मो  
दकं वा गुडेन च ॥ भक्षयेन्निपरीहारमेत  
च्छोषनमुत्तमम् । गुल्मं ग्रीहोदरं वासं ह  
लीमकमोचकम् ॥ कफवातकृतांश्चान्या  
नूप्यापीने वद्व्यपोहति ॥

अर्थ—निसोथ तीन शाण, गिलोय तीन  
शाण, त्रिफलाकी छाल तीन शाण, वायविडंग  
एक शाण, पीपल एक शाण और जवाखार  
एक शाण इनका चूर्ण करके घी और शहत  
के साथ चाटे अथवा इसमें गुड मिलाकर  
मोदक बनालेवै । इन मोदकों के सेवनमें  
आहारादि के त्यागने की कुछ आवश्यकता  
नहीं है, यह विरेचन बहुत उत्तम है इस  
से गुल्म, ग्रीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक,  
अरुचि, तथा कफवातकृत अन्य व्याधियां  
दूर हो जाती हैं ।

कल्याणक गुटिका ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्याचित्रकम् ॥  
मरिचन्द्रयवाजानीपिप्पलीहस्तिपिप्पली ॥  
लवणान्यजमोदाचूर्णितं कापिकं पृथक् ॥  
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥  
धात्रीफण्डरसप्रस्थांस्त्रीनृगुडादौ तुलान्तथा  
पक्त्वा मृदाग्निना खादेद्द्वारोदुम्बरोपमानम् ॥  
गुढानकृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा  
कुष्ठार्शः कामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगाश्च हन्त्युः पुंसवनाश्च ते ॥  
कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्वेतुषु यौगिका

अर्थ—वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला,  
धनियां, चीता, कालीमिरच, इद्रजो, जीरा,  
पीपल, गजपीपल, सेंधानमक, अजमोद,  
इन में से प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण  
कर लेवै तथा तिलका तेल आठ पल, निसोथ  
का चूर्ण आठ पल, आंवले का रस तीन  
प्रस्थ और पुराना गुड आधी तुला, इक्केकरे ।  
प्रथम आंवले के रस में गुडकी चासनी करे ।

फिर इस में उक्त द्रव्योंका चूर्ण और सुपक तैल डालदेवै फिर इसमें से वेर वा गूलर की बराबर गोलियां बनावै । इन गोलियों के सेवन करने में किसी प्रकार के आहार विहार का निषेध नहीं है । इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, गृहणी रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । यह पुंसवनभी है । इसका नाम कल्याणक गुटिका है । यह सम्पूर्ण ऋतुओंमें उपयोगी होती है ।

### व्योषादि विरेचन ॥

व्योपत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः  
समभागाभिपद्मधाद्विद्युणञ्चमुकूलक  
म् ॥ त्रिवृतोऽष्टगुणं भागं शर्करायाश्च पद्म  
गम् ॥ चूर्णितं गुलिकान्कृत्वा क्षौद्रेण प  
लसम्मितान् । भक्षयेत्कल्पमुत्थाप्य शीतं  
चानुपिवेज्जलम् ॥ मूत्रकृच्छ्रे ज्वरे वम्या  
कासे श्वासे भ्रमे क्षये । तापे पाण्ड्वामयेऽ  
ल्पेऽग्नौ शस्तानि र्यन्त्रिताग्निना ॥ योगः  
सर्वविपाणाश्च मतः श्रेष्ठविरेचनम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, दालचीनी, तेजपात, मोथा, इलायची, वार्पाविडंग, आंबला, हरड़, इन सबका चूर्ण समान भागलेवै, दंतीदोभाग लेवै, निसोथ आठ भाग और शर्करालः भाग । इन सबका चूर्ण करके शहतमें सानकर एक २ पल की गोली बनावै । इन में से प्रातःकाल एक गोली को खाकर ऊपरसे ठंडा जल पीलेवै । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन खांसी, श्वास, भूम, क्षयरोग, ताप, पाण्डुरोग और मन्दाग्नि दूर होजाते हैं, इसमें आहार

विहार की कुछ यंत्रणा नहीं है । यह सब प्रकार के विपरोग में भी श्रेष्ठ है ।

### दशमोदकोंका प्रयोग ।

त्रिवृत्पलं द्विपलं तपथ्याधान्यरूकयोः ।  
दशैतान्मोदकान्कुर्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोथ एक पल, हरड़, धनियाँ और अरंड की जड़ दो प्रस्तुत इन सबका चूर्ण बनाकर शहत वा गुड के साथ दस मोदक बनावै । यह विरेचन राजा वा धनी लोगों के पक्ष में बहुत हित है ।

त्रिवृद्धै मवती श्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली  
समूलापिप्पलीमुस्तमजमोददुरालभा ।  
अर्द्धांशिकं पलं श्रुत्या गुडस्य पलं विंशतिम्  
चूर्णितं मोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमानम् ।  
हिगुसौवर्चलव्योपयवानीविडङ्गीरकैः ॥  
यचाजगन्धात्रिफलाचन्यचित्रकधान्यकैः  
मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्बुरुदादिभैः  
त्रिक्वंक्षणहृद्वास्तिकोऽष्टांशः प्रीहृत्क्षालनाम् ।  
हिकाकासारुचिश्वासफोदावर्तिनां शुभाः

अर्थ—लाल निसोथ, सफेदवच, श्याम-निसोथ, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपला-मूल, मोथा, अजमोद, जवासा, ये सब आधे आधे पल लेवै । सोंठ एक पल और गुड बीस पल इन सबका चूर्ण करके गूलर के बराबर मोदक बनालेवै । पीछे हींग, संचर-नमक, त्रिकुटा, अजवायन, वाय विडंग, जीरा, वच, अजगंध, त्रिफला, चन्य, चीता, धनियाँ इन सब का चूर्ण करके ऊपरके मोदकोंको इस चूर्ण में लपेट देवै, अथवा

तुम्बरू और अनार के छिलके के चूर्ण में  
लेपेटें देवें । इसके सेवन करने से त्रिक,  
वैक्षण, हृदय, वस्ति, कोष्ठ, अर्श और  
प्लीहा इनका शूल दूर होजाता है । हिचकी  
खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त  
वालों के लिये भी ये हित है ।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यःकार्पिकाःस्युःपृथक्  
पृथक् ॥ द्विगुणेशर्करैलेचसातलास्याच्च  
सुगुणा । नीलिनीमष्टगुणितांद्विगुणितां  
तथा ॥ दन्तीद्रवन्तीत्वक्छाणमेकंचात्र  
प्रदापयेत् । अस्मादर्द्धपलंचूर्णाद्विद्यात्मा  
शिक्षसंयुतम् ॥ शीतोदकानुपानन्तुनिर  
पायंविरेचनम् ।

अर्थ—सोंठ, कालीमिरच, पीपल, ये  
तीनों एक २ कर्प लेवें, शर्करा दो कर्प  
इलायची दोकर्प, सातला चार कर्प, नीलिनी  
आठ कर्प, दन्ती षष्ठीसकर्प, द्रवन्ती और  
दालचीनी एक एक शाण लेकर सब का  
चूर्ण बनालेवें, इस चूर्ण में से आधापल  
शाहत के साथ सेवन करें, ऊपर से ठंडा  
पानी पीले तौ उपश्रव रहित विरेचन होताहै

भिन्न भिन्न क्रतु के विरेचन ।

त्रिवृतांकोटजबीजपिप्पलीविश्वभेषजम्  
समाद्धीकरमशौद्रवर्षास्वेतद्विरेचनम् ॥  
त्रिवृद्दुरालभासुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम्  
द्राक्षाम्बुनासयप्याहशीतलंजलदाय  
ये । त्रिवृतांचित्रकंपाठांअजाजीसरलंवचा  
म् ॥ स्वर्णदुग्धीचहेमन्तेपिप्पलातूष्णाम्बुना  
पिवेत् । शर्करात्रिवृतातुल्याग्रीष्मकाले  
विरेचनम् । द्रुपांसप्तश्लश्यामाद्रवन्तीक

दुरोहिणीम् । स्वर्णक्षीरीश्वसंचूर्णयोगो  
त्रेभावयेज्यहम् ॥ एषसर्वतुकोयोगःस्नि  
ग्धानांमलदोषहृत् ॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ  
इनके चूर्ण को दाख के रस और शाहतके  
साथ लेवें यह विरेचन वर्षा ऋतु में हित है  
निसोथ, जवासा, मोथा, शर्करा, नेत्रवाला,  
रक्तचन्दन, और मुलहटी इनके चूर्ण को  
द्राक्षा के शीतल कपाय के साथ पानकरें  
तौ शरदऋतु में अच्छा विरेचन होता है ।  
हेमन्तऋतु में निसोथ, चीता, पाठा, जीरा,  
सरलकाष्ठ, वच और स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण  
को गरमजल के साथ पानकरें । ग्रीष्मऋतु  
में विरेचन के लिये निसोथ और चीनीको  
समानभाग मिलाकर देवें । हाउवेर, सात-  
ला, श्यामनिसोथ, द्रवन्ती, कुठकी और  
स्वर्णक्षीरी इन सब का चूर्ण कर के तीन  
दिनतक गोमूत्र में भिगो देवें । इस का से-  
वन सब ऋतुओं में होसक्ता है, स्निग्ध-  
कर के इस विरेचन को देने से मलके दोष  
दूर होजाते हैं ॥

त्रिवृच्छ्यामेदुरालम्भावत्सकंहस्तिपिप्प  
ली । नीलिनीत्रिफलागुस्तंकडुकाचसुचू  
णितम् ॥ सर्पिर्मासरसोष्णाम्बुयुक्तंपा  
णितलंततः । पिवेत्सुखतमंश्वेतद्रूक्षाणाम  
पिशस्यते ॥ त्र्युपणंत्रिफलांहिगुकार्पि  
कंत्रिवृतापलम् । सौवर्चलार्द्धकर्पदचप  
लार्धचाम्लवेतसात् ॥ तच्चूर्णशर्करातु  
ल्यमयेनाम्लेननापिवेत् ॥ गुल्मपाश्वर्ति  
नुत्तिदंजीर्णेषांघ्रादसौदनम् ॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी निसोथ, जवासा, इन्द्रजौ, गजपीपल, नॉलिनी, त्रिकला मोथा और कुटकी इन सब का चूर्ण करके, घृत मांसरस वा उष्णजलके साथ दो ताले सेवन करें। यह विरेचन रुक्ष व्यक्तियों को भी सुखपूर्वक होता है। त्रिकला, त्रिकुटा और हींग एक २ कर्ष निसोथ एक पल, संचल नमक आधा कर्ष, अम्लवेत आधा पल, इस सबके बराबर चीनी मिलाकर मद्य वा अम्ल के साथ पान करें। इस के सेवन से गुल्म, रोग और पार्श्ववेदना दूर हो जाती है। औषध के पचनेपर मांसरस और भातका भोजन करें ॥

सप्तलांशिकलादन्तीत्रिवृतांव्योपसैन्धवे।  
कृत्वाचूर्णितुसप्ताहंभाव्यमामलकीरसे ॥  
तथोज्यंतर्पणेषूपेपिशितेरागयुक्तिषु ॥  
तुल्यमलं त्रिवृताफलं सिद्धं गुल्महरं घृतम्  
मूल्यं श्यामा त्रिवृतयोः पचेदामलकैः सह ॥  
जले तेन कृपायेण पक्त्वा सर्पिः पिवेन्नरः।  
निर्गुहेण तथोयुक्त्वासिद्धसर्पिः पिवेत्तथा।  
साधितं वापयस्ताभ्यां मुखे तेन विरिच्यते ॥

अर्थ—सातला, त्रिकला, दन्ती निसोथ त्रिकुटा, सैन्धवमक इनका चूर्ण करके सात दिवस तक आंवले के रस में भिगोवै। इसका तर्पण, यूप, गोस और रागपाडवादि द्वारा प्रयोग करे। कांजी और घृत समान भाग तथा चतुर्थांश निसोथ मिलाकर पाक करें यह घृत गुल्मनाशक है। दोनों प्रकार की निसोथ को आंवलों के साथ अठगुने जल में पाक करें चौथाई

शेष रहने पर छान कर उस क्वाथ में घृत पकावै। अथवा इन दोनों के निर्यूह में केवल दूध वा घी पकाकर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

जलद्रोणेपचेदष्टैत्रिवृन्मुष्टीतसन्नखात् ॥  
पादशेषं कृपायंतं शीतं गुडतुलायुतम् ॥ स्त्रि  
गंधस्थान्यं घटैः सौद्रापिण्णलीकलाचित्रकैः ॥  
मल्लिंसेविधिना मासज्जातं तन्मात्रयापि वेत् ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं गुल्मश्च यधुनाशनम् ॥

अर्थ—नखसहित आठ मुट्ठी निसोथ को एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रह जाय तब छानले। जब वह क्वाथ ठंडा होजाय तब उस में एक तुला गुड मिलावै। फिर एक चिकने घड़े के भीतर शहत, पीपल, मेनफल और चीते का लेप करके उस में इसे भर दे एक महीने पीछे मात्राके अनुसार इसका सेवन करें तो ग्रहणी पाण्डुरोग, गुल्म और सूजन दूर होजाती है। सुरांश त्रिवृतां पादकिष्कांतं कापसंयुताम् यवैः श्यामा त्रिवृताथे स्निग्धैः कुल्मापमन्मसा ॥ आसुतं पट्टपल्ले जातं सौवीरकं पिवेत् ॥ भृशान्वासतु पानशुद्धान्वांस्तच्छूर्णसंयुतान् ॥ आसुतान्मसातद्रात्रिपेज्जातं तु पोदकम् ॥ तयामदनकल्पोत्पान्पाडवादीन्पृथग्दश ॥ त्रिवृत्क्षौण्णसंयुज्यविरेकार्पेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सुरा, त्रिवृता और चतुर्थांश सुरा बीज इनको पकाकर सेवन करें। अथवा दोनों प्रकार की निगोथके क्वाथमें जीर्णो को अच्छी तरह सिजाकर छानले फिर

इस क्वाथमें कुल्माष मिलाकर छःराततक जौके ढेर में गाढ़ देवै। यह सौंवार विरेचन से हित होता है। अथवा छिडकों समेत जौ को मुनवाकर इतनीही निसोथ मिलाकर जल में भरकर जौ के ढेरमें गाढ़ देवै। छः दिन पीछे ये तुषोदक तयार होता है। इसी तरह मदन कल्पोक्त दस प्रकार के पाडवादि निसोथ के चूर्ण में मिलाकर विरेचन के लिये देवै। वे ये हैं यथा पाडव राग, अवलेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मय।

उपसंहार।

त्यक्तेसराभ्रातकदादिहैमलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः। मयैस्तथान्यैश्चमनोऽनुकूलैर्युक्तानिदेयानिविरेचनानि॥शीताम्बुनापीनघृतश्चतस्यसिञ्चन्मुखंछर्दिषिषातहेतोः॥ दृष्याश्चमृत्पुष्पफलप्रबालादम्लं चदद्यादुपजिघ्रणार्थम्॥

अर्थ.....दालचीनी, नागकेशर, आमदा, अनार, इलायची, चीनी, शहत, विजौरा और मय अथवा अन्य मनोऽनुकूल द्रव्यों में मिलाकर विरेचन देना चाहिये। विरेचन का एक द्रव्य के पान करने से पीछे वमन न होने पाने, इसलिये ठंडे जलसे मुख को धोता रहै। तथा सूघनेके लिये हृदय प्रिय मिठी फूल, फल और पत्ते देता रहै॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

एकोम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्धवादिभिः मृत्रैः षट्दशमष्टौद्वौजीवकादौचतुर्विंशः॥ शीरादौतप्तलेदष्टौचत्वारःसितयापिच।

पानकादिपुष्पैश्चैवपट्टौपंचमोदकाः॥ चत्वारश्चघृतक्षीरेद्वौचूर्णेतर्पणातथा। द्वाँमद्येकाञ्जिकेद्वौचदशान्यपाडवादिषु॥ श्यामायासिञ्चितायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदाहृतम्। शतदशोचरासिद्धयोगानांपरमपिणा॥

अर्थ.....इस अध्याय में निसोथ के एक सौ दस कल्पवर्णन किये हैं। अम्लादि के नौ, सैन्धवादिके वारह, मूत्र के अठारह, मुलहठी के दो, जीवकादि के चौदह, क्षीरादि के सात, लेह आठ, शर्करा के चार, पानकादि के पांच, ऋतुओं के छः, मोदक के पांच, घृत और दूध चार, चूर्ण और तर्पण दो, मय के दो और कांजी के दो और पाडवादि के दस॥ इस तरह एक सौ दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं॥

इतिश्री भापाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितयां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने श्यामात्रिचूत्कल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातश्चतुरंगुलकल्पं व्याख्यास्यामः। इतिहस्माद्भगवान्नात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करेंगे।

चतुरंगुलके अन्यनाम।

आरग्वधोराजवृक्षःशम्पाकश्चतुरंगुलः



मग्रहः कृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः ॥

अर्थ—आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक चतुरंगुल, मग्रह; कृतमाल, कर्णिकार और अवघातक ये अमलतास के संस्कृत नाम हैं

अमलतास के गुण ॥

ज्वरहृद्दोगवातासृग्गुदावर्तीदिरोगिषु ॥

राजवृक्षोऽधिकपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः ।

मालेवृक्षेक्षतेक्षिणेषुकुमारैश्चमानवे ॥ यो

ज्योमृद्वनपापित्वाद्विशेषाचतुरंगुलः ।

अर्थ....ज्वर, हृदयरोग वातरक्त और उदावर्तीदि रोगों में राजवृक्ष अधिकपथ्य है, यह मृदु, मधुर और शीतल है । यह मृदु और क्षनपायी ( निरुपद्रव्यकर्ता ) है इस से इसका विरेचन बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारों के लिये बहुत हित है ॥

अमलतासके रखनेकी विधि

फलकालेफलंतस्यग्राह्यपारिणतश्चयत्पा-

पांगुणवतांभारसिक्तासुनिधापयेत् ।

सप्तरात्रात्समुद्धृत्यशोषयेदातपेभिषक् ।

ततोमज्जानमुद्धृत्यधुचौभाण्डेनिधापयेत् ।

अर्थ—जिस ऋतु में इसके फल लगते हों उस में पके हुए फलों को लाकर बाल में गाढ़ दें । सात दिन पीछे निकाल कर धूपमें सुखालें तदनन्तर इनका गूदा निकाल कर एक झुड़ा पात्र में भर दें ॥

अमलतासके कल्प ॥

द्राक्षारसयुतांदेयोदाहोदावर्चपीडिते ॥

चतुर्दशमुखेवालेपात्रद्वादशवार्षिके ।

चतुरंगुलमज्जस्तुमसृत्वायवाज्जलिम् ॥

सुरामण्डेनसंपुक्तमधवाकोलशीघुना ॥

दधिमण्डेनवायुक्तरसेनामलकस्यवा ॥

कृत्वाशीतकपायंतपिवेत्सौवीरकेणवा ।

त्रिवृन्मज्जस्तथाकल्कंतत्कपायेणवापिवेत्

तथाविरुक्कपायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

अर्थ—दाह और उदार्च से पीडित चार वर्ष के बालकसे लेकर बारह वर्ष के बालक तक द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया हुआ अमलतास का गूदा बहुत हित है । अमलतासके दो पल वा आधसेर गूदे को सुरामण्ड, वा कोलशीघु, वा दधिमण्ड वा आंवले के रसके साथ पान करें । अथवा इस के शीतकपाय को सौवीरक के साथ पान करें । अथवा अमलतास के गूदे को घोटकर उस के काथ के साथ पीवें । अथवा बेलके काथ के साथ संधानमक और शहत मिलाकर पीवें ॥

कपायेणायवातस्यभिवृच्छूर्णगुढान्वितम् ॥

साधयित्वाशर्नैलेहंलेहेयन्मात्रयानरम् ॥

चतुरंगुलसिद्धाद्वितीयाद्यदुदियाद्घृतम्

मज्जःकल्केनधात्रीणारसंतत्साधितंपिवेत्

तदेवदशमूलस्यकुल्लथानांपवस्वच ॥

कपायेसाधितंककैःसर्पिःश्यामादिभिः

पिवेत् ॥ दन्तीकाथोज्जलिमज्जःशम्पाक

स्यगुलस्यच ॥ कृत्वासाधमासस्यपरि

ष्टंपायमेतच्च ॥ यस्ययत्पानगन्नञ्चदृश्यं

द्विषाकडु ॥ लवणवाभवेत्तनयुक्तं दशां

विरेचनम् ॥

अर्थ—अमलतास के काथ में निसीस का

चूर्ण और गुड डालकर ठेक्यत् धीरे धीरे

पाक करके चटावें । अमलतास से अठगुना दूध और चौगुना जल मिलाकर पाक करै जय पानी जलजाय तब उतरकर छान लेंवें और इस दूध को जमादेवै फिर इसका घी निकाल कर अमलतास के गूदे और आमले के रस के साथ सिद्ध कर के पान करै ॥ अथवा उसी घृतको दशमूल, कुलर्था और जौ के काथ में श्यामादि निसोथ का कल्क ढालकर सिद्ध करके पान करै । अथवा दन्ती का काथ एक अजली, अमलतासका गूदा और गुड इनको मिलाकर पन्द्रह दिन तक एक पात्र में भरा रहने दे फिर इस अरिष्ट को पान करावै । जिस मनुष्य को जैसा अन्नपान मधुर, कटु या नमकीन अच्छा लगता हो, उसका उसी में मिला कर विरेचन देना चाहिये ।

अध्यायकासीसप्तवर्णन ।

तप्तश्लोकाः ॥

द्राक्षारसेसुराशीर्ध्वोर्दधिनचामलकीरसे।  
सौवीरकृपायाभ्याविल्वशम्पाकयोस्त  
था ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वयोगाद्वादशकी  
र्तिनाः चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराः  
प्रकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में अमलतास के वा-  
रह कोमल प्रयोग वर्णन किये गये हैं, यथा  
दाख के रस, सुरा, कोलशावु, दही आंवले  
का रस, सौवीरक, निसोथ, विल्व और  
शम्पाक इनके एक एक कल्प, लेह एक  
अरिष्ट एक और घृत दो । इस तरह ये  
चारह कल्प हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकाश्रितायां आग्निवेशविराचे-  
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां  
कल्पस्थाने चतुरंगुलकल्पो नामा  
ध्मोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पव्याख्यास्यामः ।  
इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर्गत भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम तिल्वक कल्पकी व्याख्या करेंगे।

लोधकेनाम ।

पिल्वकस्तुमतेरोध्रोवृहत्प्रस्तिरीटकः ॥

अर्थ—तिल्वक लोध्र या रोध्र, वृहत्प्र  
और तिरीटक ये लोध्र के संस्कृतनाम हैं।

लोधकेकल्पः ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम्।  
चूर्णयेच्चुत्रिधाकृत्वाद्वाभागौश्च्योतयेत्ततः  
लोध्रस्यैवकपायेणतृतीयंतेनभावयेत् ।  
भागंतदशगूलस्यपुनःकाथेनभावयेत् ।  
शुष्कचूर्णपुनःकृत्वाततज्जर्दं प्रयोजयेत् ॥  
दधितकसुरामण्डमूर्ध्वदरशीधुना ॥ रसे  
नामलकानांवाततःपाणितलेपिवेत् ॥

अर्थ—लोध्रकी जड़में से काठ को छोड़  
कर केवल छाल निकालकर उसके तीन  
भाग करै । एक भाग को सुखाकर चूर्ण  
करलेवे, और शेष दो भागों का क्वाथकरै  
फिर इस काथ की उक्त चूर्ण में भावना  
देवै । फिर दशमूल के क्वाथ की भावना  
देवै । फिर इसको सुखाकर चूर्ण बनाकर  
खछोड़े इसमें से दो तोले दही, मठा, सुरा-

सुरामन्द, गोमूत्र, कोलशीधु वा आवले के रस के साथ पानकरै ॥

मेपशृंग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेभृते॥

मरुजानसुनुपात्तचजातंसौवीरकंयदा॥

भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिबेत्तदा॥

सुरालोध्रकपायेणजातांपक्षस्थितांपिबेत्

दन्तीचित्रकयोर्द्रोणिसलिलस्याढकंपृथक्

समुत्काथयगुडस्यैकांतुलारोध्रस्यचाञ्जलि

म्।आवपेत्तत्परंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम्॥

अर्थ—मेंढासिंगी, हरद, पीपल और चीता

इन के क्वाथ में जौ को उबालकर टपका

ले इससे सौवीरक बनताहै । यह सौवीरक

आधसेर तथा इसमें मात्राके अनुसार लोध

मिलाकर पानकरै अथवा सुरा और लोध

का क्वाथ मिलाकर पन्द्रह दिनतक धरा

रहने देवै । पीछे इसका सेवन करै । अथवा

एक एक आढक दन्ती और चीतेको अलग

अलग एक एक द्रोण जल में क्वाथ करै,

फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड और

आधसेर लोध मिलाकर धराकरहने दे इस

मद्य के पान करनेसे विरेचन होता है ।

तिल्वकस्यकपायेणदशकृत्वः सुभाविताम्

मात्रांकम्पिल्लकस्यैकपायेणपुनःपिबेत्॥

चतुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यएवच ।

त्रिफलायाःकपायेणससर्पिर्मधुफाणितः॥

लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठविरेचनम् ।

अष्टाष्टौत्रिष्टतादीनांपृथङ्मुष्टांस्तुमन्त्रखान्

द्रोणेऽर्पासाधयेत्पादशेषेसंस्थष्टतात्पचेद्

पिष्टैस्तैरेवविल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ॥

ततोमात्रांपिबेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ।

लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम्।

चतुरंगुलकल्पेनसर्पिर्पीद्वेचसाधयेत् ॥

अर्थ—लोध्र के क्वाथ में लोध्र के चूर्ण

को दस भावनादेवै फिरइसी चूर्ण में कवीले

के क्वाथ की दस भावना देवै फिर इसे

पान करै । अथवा अमलतास के लेह की

तरह इस का भी लेह बनाकर चाटै । अथवा

त्रिफला के क्वाथ में घी, शहत, राव और

लोध्र का चूर्ण डालकर लेह बनालेवै । यह

विरेचन बहुत अच्छा है । तृष्टादि द्रव्यों

की सनख आठ आठ मुडी लेकर एक

द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर

इस क्वाथ में घृत पकावै । अथवा उनही

तृष्टादि द्रव्यों को एक एक तोले पी-

सकर गोमूत्र और सेंधे नमकके साथ सिद्ध

करके पान करै । अथवा चतुरंगुलकी तरह

लोध्रका कल्क, गोमूत्र, खटाई और नमकके

साथ दो रीति से पाक करै [अमलतास के

कल्कका पिछला प्रकरण देखो ] ।

तिल्वकस्यकपायेणकल्केनचसर्पिर्कर्कः॥

सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठविरेचनम्॥

अर्थ—लोध्रका कल्क और क्वाथ, मिश्री

और घी इनको एकत्र पकाकर लेह बनावै

यह सर्वोत्तम विरेचन है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकःपुरासौवीरकेणच

एकोऽरिष्टस्तयायोगएकःकम्पिल्लकेनच

लेहस्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्पदर्शिताः।

योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेपादशसंमताः

अर्थ—इस अध्याय में लोध्र के सोलह

कल्प वर्णन किये गये है, यथा दही तक सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीघ्र और आवटके रस का एक-एक, मुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कर्वाल का एक, डेह के तीन और घी के चार ।

इति श्रीमापाटीकान्वितायां अभिनवेश विरचि

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने छाप कल्पो नाम

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—○\*○—

दशमोऽध्यायः ।

अथातो महावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोल कि-

अब हम महावृक्ष कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

विरचनानां सर्वेषां सुधातीक्ष्णतमामता ॥

संघातंतु भिन्त्याधुदोषाणां कष्टविभ्रमा ॥

तस्मान्नपामृदां कोष्ठे प्रयोक्तव्या कदाचन

न दोषानि चैवाल्पे सति वान्यपरिभ्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्ता द्रव्योंमें सेण्डुड अत्यन्त तीक्ष्ण है । यह दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है । यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन से साथ हैं उनमें भी इसका देना ठीक नहीं है ।

सेण्डुड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरे गुल्मकुष्ठे वृषी विपादिते ॥

श्वयथौ मधुमेह च दोषविभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेव भिन्नेष्वस्तं ज्ञात्वा समाणमातुरम् ॥

प्रयोजयेन्महावृक्षसम्पयसत्प्रवचारितः ॥

सद्यो नुदति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ॥

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ, वृषी विपरीक, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि षण्डवान् होतौ सेण्डुड का प्रयोग करे ॥ सेण्डुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने पर दोषों का बड़ा संचय भी शीघ्रही दूर हो जाता है ।

सेण्डुड के भेद ।

द्विविधः समतौ यश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैः कण्टकरूपैः प्रवरो बहुकण्टकः ॥

अर्थ—सेण्डुड दो तरह का होता है एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता है, दूसरी तरह के में बहुत घने छोटे कांटे होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों से युक्त अच्छा होता है ।

सेण्डुड के नाम ॥ -

सनामा स्नुग्गुडानन्दा सुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—स्नुक, गुडा, नन्दा, सुधा और

निस्त्रिशपत्र ये सेण्डुड के संस्कृत नाम हैं ॥

सेण्डुड के लाने की विधि ।

तं विपाठ्याहरेत्सीरंशस्त्रेण मतिमान्भिषक्

द्विर्वर्षवात्रिर्वर्षाशिशिरान्ते विशेषतः

विल्वादीनां वृक्षस्यावाकण्टकार्यापि चैकशः

कपायंतं समांशेन कृत्वा द्वोरपुशोपयेत् ॥

ततः कोलसमांशान् पित्तसौवीरकेण वा

तुषोदकेन कोलान्तरसेनामलकस्पृष्टा ॥

सुरयादिमण्डनमातुल्यं रसेन वा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेहुंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकाले । दूध निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, बृहती और कटेरी क्रम से इन के ब्रथा में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावै । पीछेसे इसमें से झाड़वीर की बराबर सौवीरफके साथ पानकरै, अथवा तुषोदक, या घेर के रस वा आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा विजैरे के रस के साथ पान करे ।

सातलांकाञ्चनतीरिश्यामादीनिकदुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहसुधाक्षीरेणभावयेत् । फालमात्रघृतेनातःपिवन्मांसरसेनवा ॥ द्यूपणात्रिकलादन्तीचित्रकात्रिघृतांतथा । स्तुक्षीरभावितंसम्यग्विदद्याऽऽहुडपानके ॥ त्रिवृतारग्वधदन्तीशङ्खिनीसप्तलांसमाम् । गोमूत्ररजनीकृत्वाशोपयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वैवंस्तुक्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्थुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाद्यापभावृतपटमेवच । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेहुंड के दूध की भावनादेवै । फिर घेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिकला, दन्ती, चीता, नि- सोध इनको सेहुंड के दूध की भावना

देकर गुड़ के शरबत के साथ पान करावै । अथवा निसोध, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै । प्रातः काठ घूप में सुखावै । इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहुंड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित झूल में रखकर सूधै, सूधते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्तपायेणस्तुक्षीरघृतफाणितैः । लेहपक्त्वाविरेकार्थलेहयेन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूपैर्मांसरसैर्घृतैर्भावितान्शुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरघृतंवापूर्ववत्पचोदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोध के ब्रथा में सेहुंड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तौ विरेचन होता है । सेहुंड के दूध को घी, मांसरस वा यूप के साथ पान करै अथवा सेहुंड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करे । अथवा अमलतास की तरह सेहुंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेहुंड का दूध, और चौगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेहुंडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रखवै अथवा पूर्वकी तरह घृत पका कर सेवन करे ॥

कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तक्र  
सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवलेके  
रस का एक-एक, सुराका एक सौवीर का  
एक, अरिष्ट का एक, कबीले का एक, डेह  
के तीन और घी के चार ।

इतिश्रीभाषार्ढाकान्वितायांअग्निवेश विराचि  
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां  
कल्पस्थाने लोघ कल्पो नाम  
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—○\*○—  
दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि—  
अब हम महावृक्षकल्प की व्याख्या करेंगे ॥

विरेचनानांसर्वेषांमुधातीक्ष्णतमामता ॥

संघातंतुभिनत्याधुदोपाणांकष्टविभ्रमा ॥

तस्मान्नैपापृद्धांकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन  
नदोपनिचयेचाल्पेसतिव्यान्यपरिक्लमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता  
द्रव्योंमें सेण्डुड अत्यन्त तीक्ष्ण है । यह  
दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है  
यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता  
है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी  
न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका  
देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन  
क्षेत्र साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहींहै  
सेण्डुड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मकुष्ठेद्वीविषादिते ॥  
श्वयथोमधुमेहचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेवम्बिर्धग्रस्तंज्ञात्वासमाणमातुरम् ॥

प्रयोजयेन्महावृक्षसंम्यक्संज्ञवचारितः ॥

सद्योनुदतिदोषाणामहान्तमपिसञ्चयम् ॥

अर्थ—पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ,  
द्वीविषरोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा  
ऐसेही अन्यरोगों से पांडित मनुष्य यदि  
बलवान् होतौ सेण्डुड का प्रयोग करे ॥  
सेण्डुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने  
पर दोषों का बड़ा संचय भी शीघ्रही दूर  
हो जाता है ।

सेण्डुड के भेद ।

द्विविधःसमतोयेश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैःकण्टैकरल्पैःप्रवरोचबहुकण्टकैः ॥

अर्थ—सेण्डुड दो तरह का होता है  
एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता  
है, दूसरी तरह के में बहुत पैसे छोटे कांटे  
होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों  
से युक्त अच्छा होता है ।

सेण्डुडकेनाम ॥

सनामास्तुगुडानन्दामुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—स्तुक, गुडा, नन्दा, मुधा और  
निस्त्रिशपत्र ये सेण्डुड के संस्कृत नाम हैं ॥

सेण्डुडकेलानेकीविधि ।

तंविषाद्याहरेत्सीरंशस्त्रेणमतिमान्भिरपक्व  
द्विर्वर्षवात्रिर्वर्षवाशिशिरान्तेविशेषतः

विल्वादीनांमृदुहत्यावाकण्टकार्यापिचैकशः  
कपायंतंममांशेनकृत्वाद्वाहोरेपुशोपयेत् ॥

ततःकोलसमांमात्रांपिबेत्सौवीरकेणवा ।

तुपोदकेनकोलानारसेनामलकस्यवा ॥

सुरयादधिमण्डेनमातुल्यहरेत्सेनवा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेहंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकालें । दूध-निकालने का समय-विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, बृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावें । पीछेसे इसमें से झाड़ोवर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरे, अथवा तुषोदक, या वेर के रस या आंवले के रस के साथ पान करे, अथवा सुरा दधिमंड वा त्रिजैरे के रस के साथ पान करे ।

सातलांकाञ्चनक्षीरं श्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथापचितसप्ताहं सुधाक्षीरेण भावयेत् ॥ कालमात्रं घृतेनातः पिवेन्मांसरसेन वा ॥ द्यूपणां त्रिकलां दन्तीं चित्रकं त्रिघृतां तथा ॥ स्नुक्षीरभाषितं सम्यग् विद्वद्वाङ्गुडपानके ॥ त्रिवृत्तारग्वधं दन्तीं शङ्खिनीसत्सलां समा ॥ गोमूत्ररजनीकृत्वा शोषयेदातपेततः ॥ सप्ताहं भावयित्वा स्नुक्षीरेणापरं पुनः । सप्ताहं भावयेत् शुष्कं ततस्तेनापि भाषितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाश्रायमावृत्य पटमेव च । सुखमाशु विरिच्यन्ते मृदुकोष्ठानराधिपाः ॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिन तक सेहंड के दूध की भावना देवें । फिर घेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पान करे । अथवा त्रिकुटा, त्रिकला, दन्ती, चीता, निःसोय इनको सेहंड के दूध की भावना

देकर गुड़ के शरबत के साथ पान करावें । अथवा निसोय, अमलतास, दन्ती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो दें । प्रातः काल घूप में सुखावें । इस तरह सात दिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहंड के दूधकी भावना दें । इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूँघें, सूँघते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कपायेण स्नुक्षीरघृतफाणितैः । लेहंपक्त्वा विरेकार्थं लेहयेन्मात्रं या नरम् ॥ पाययेत् सुधाक्षीरं घूपैर्मांसरसं घृतैर्भाषितान् शुष्कमत्स्यान्वा मांसं वा भक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैः सर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरां वा कारयेत् क्षीरं घृतं वा पूर्ववत्पचोदिति ॥

अर्थ—श्यामानिमोथ के क्वाथ में सेहंड का दूध, घी और राव पकाकर मात्रा के अनुसार छहन करे तौ विरेचन होता है । सेहंड के दूध को घी, मांसरस वा घूप के साथ पान करे अथवा सेहंड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करे । अथवा अमलतास की तरह सेहंड के साथ पकाये हुए दूध का घी निकालकर उस में चीथाई सेहंड का दूध, और चीगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेहंडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रक्ते अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिपाचरसेनच ।  
पानकंघ्रेयलेहौचयोगायुपादिभिःस्त्रयः  
द्वौशुष्कमत्स्यमांसानांसुरकैद्वचसर्पिर्पी ।  
महावृक्षस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः॥

अर्थ—इस अध्याय में सेहंढके बीस प्र-  
योग वर्णन किये गये हैं । सौवीरक के सात,  
घाँकाएक, मांसरका एक, गुडपानकका  
एक, सूँघने का एक, लेहका एक, यूप के  
तीन, सूखी मछली और मांस के दो तथा  
घी के दो, इस तरह सब मिलकर बीस  
कल्प हैं ॥

इतिश्रीभापाटीकान्वितायांअग्निवेशविर-

चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता

यांकल्पस्थानेमहावृक्षकल्पोनाम

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःसप्तलाशंखनीकल्पंव्याख्यास्यामः॥

इतिहस्माद्भगवानाग्नेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आग्नेय बोले  
कि अब हम सप्तलाशंखनी कल्पकी व्याख्या  
करेंगे ॥

सप्तलाशंखनी के नामान्तर ॥

शंखनीतित्कलाचैवयवतित्काक्षिपीडकः  
सप्तलाचर्मसाढेचबहुफेनरसाचसा ॥

अर्थ—शंखनी, तित्कला, यवतित्का, अक्ष-  
पीडक ये शंखनीके नाम हैं । तथा सप्तला  
चर्मसाहवा और बहुफेनसा ये सप्तला के  
नाम हैं ॥

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । वि-  
कासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिके  
पुनः ।

अर्थ—सातला और शंखनी विकाशी,  
तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण गुल्मरोग  
गरदोष, हृद्रोग, कुष्ठ, शोफ और उदर  
रोगोंको नष्ट करती हैं तथा कफाधिक रोगों में  
ये बहुत गुणकारी होती हैं ॥

उक्तदोनोंकीकल्पना ।

नातिशुष्कफलंघ्राह्यंशंखिन्यानिस्तुपीकृ-  
तम् ॥ सप्तलायाश्चमृन्नानिगृहीत्वाभाज-  
नेक्षिपेत् । अक्षमाग्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नां  
लवणायुतम् ॥ हृद्रोगेकफघातोत्थेगुल्मे  
चैवप्रयोजयेत् । पियालपील्लुकर्कन्धुको  
लाम्रातकदाडिमैः ॥ द्राक्षापनसखजूर-  
वदराम्लपरूपकैः । मेरेयदधिमण्डेऽम्ले  
सौवीरकतुपोदके ॥ शीघ्रौचाप्येपकल्पः

स्यात्सुखंशीघ्राविरेचनः ।

अर्थ....शंखनी फलोंके छिलके दूर करके  
ऐसे फल लेंवें जो बहुत सूखेहुए नहों और  
सातलाकी जड़ लाकर दोनों को एक पात्र  
में रखदेवें । फिर इनमें छे दो तोले प्रसन्ना  
वा सेंधे नमकके साथ हृद्रोग तथा कफघात  
जनित गुल्मरोगमें सेवन करें अथवा पियाल-  
पील्ल, बेरकारस, अंबाडा, खट्टाअनार, दाख,  
पनस, खजूर, बेरकाकाथ, फालसा, मेरेय,  
दधिमंड, कांजी, सौवीरक तुपोदक वा शी-  
घ्रके साथ सेवन करें । इससे सुखपूर्वक शीघ्र  
विरेचन होता है ।



तैलविदारिगन्धादिपयसापीडितं पचेत् ॥  
सप्तलाशंखिनीकल्कात्रितृत्श्यामार्द्धभा-  
गिके । दधिमण्डेनसन्नीयसिद्धन्तम्पाय-  
येतच ॥ शंखिनीचूर्णभागौद्वौनीलीचूर्णस्य  
चापरः । हरितकीकपायेणतैलतत्पीडि-  
तं पिबेत् ॥ अतसीसर्पपैरण्डकरञ्जेष्वेपस-  
न्विधिः । शंखिनीसप्तलासिद्धाक्षीरात्  
यदुदियांघृतम् । कल्कभागंतयोरेवत्रिशृ-  
त्श्यामार्द्धसंयुतम् । क्षीरेणालोढ्यसम्प-  
क्षेपिषेत्तच्चविरेचनम् ॥

अर्थ—तेल चार सेर, शालिपर्ण्यादि पंच  
मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दूध सोलह  
सेर, इसी तरह सातला, शंखिनी और  
दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क एकत्र  
पाक करके, तेल तयार करे इस तेलको द-  
धिमंडमें मिलाकर पान करे । अथवा शंखि-  
नी का चूर्ण दो भाग, नीलिनी का चूर्ण  
एक भाग इनको मिलाकर कोल्हू में पिलवा  
कर तेल निकलवा लें । इस तेलको हरड  
के क्याधके साथ पान करे । इसी तरह से  
अलसी, सरसों, अरण्ड और कजा की भीगी  
मिलाकर तेल निकलवाकर हरडके क्याध  
के साथ पीते हैं । शंखनी और सप्तला डा-  
लकर सिद्ध किये हुए दूध में से घी निका-  
लकर उन्हीं दोनों का कल्क दोनों प्रकार  
की निसोथका कल्क और चैगुना दूध मि-  
लाकर पाक करे यह घृत विरेचक होता है ।  
तथादन्तीद्रवन्तोः स्यादजगन्मृजगन्धयोः  
क्षीरिण्यानीलिकायाश्चतर्थवचकरञ्जयोः  
मसूरविदलायाश्चतस्यश्चेप्पास्तर्थवच ॥

विडङ्गार्द्धाशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतं पुनः ।  
शंखिनीसप्तलाधात्रीकपायेसाधयेद्घृतम् ॥  
त्रितृत्कल्केनसापिथत्रयोलेहाश्चलोधवत् ॥  
सुराकाम्पिलयोयोगः कार्थोलोधवदेवच ॥  
दन्तीद्रवन्तोः कल्केनसौवीरकतुपोदके ।  
अजगन्धाजगन्मृजगन्तद्वत्स्यातां विरेचने ॥

अर्थ—इसी रीति से दन्ती द्रवन्ती के  
साथ औटायें हुए दूधका घी निकाल कर  
दन्ती, द्रवन्ती और दोनों प्रकार की नि-  
सोथ का कल्क और दूध मिलाकर पाक  
करे । इसी तरह से शंखनी और सातला  
के साथ सिद्ध किये हुए दूध का घी निकाल  
कर इन्हीं दोनों का कल्क दो भाग, तथा  
भेडासिगी और अजगंध का कल्क एक भाग  
मिलाकर तथा दूध डालकर घी पकावे,  
इसीतरह उक्त दुग्धोद्घृत घृतमें क्षीरिणी  
और नीलिनी का कल्क मिलाकर अथवा  
दोनों प्रकारके कंजोंका कल्क मिलाकर  
घी सिद्ध करे । इसीतरहसे मसूर की दाल  
प्रत्यक् श्रेणी वा वायविडंग का कल्क डाल  
कर घृत सिद्ध करे । अथवा शंखनी, सातला  
और आंवलेके रसमें घृत तयार करे ।  
सप्तला और शंखनीके साथ तीन प्रकार  
के घी निसोथ की तरह तयार करे और  
लोधकी तरह छेह बनावे । तथा लोध की  
ही तरह सुरा और कशाले के कल्क तयार  
करे । यथा दन्ती, द्रवन्ती के कल्क की तरह  
अजगंध और भेडासिगी के सौवीर और  
तुपोदक बनाकर सेवन करे ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

कपायादशपट्टचैवपट्टतैलेऽष्टौचसार्पिणि ।

पञ्चमद्यत्रयोल्लेहायोगःकम्पिल्लकेतया॥  
सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तानयाधिका  
योगाःसिद्धाःसप्तस्ताभ्यामेकशोऽपिच  
तेहिताः ।

अर्थ—इस अध्यायमें सप्तला और  
शंखनी के उगतालीस योग वर्णन किये गये  
हैं । यथा, वक्त्र के सोलह, तेल के छः,  
घी के आठ, मद्य के पांच, लेह तीन और  
कर्त्रालेका एकाग्र सब योग सिद्ध किये हुए हैं।  
इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-  
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां  
कल्पस्थाने सप्तला शंखनी कल्पो नाम  
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—\*—

### द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातो दन्ती द्रवन्ती कल्पव्याख्यास्याम  
इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि 'अथ हम दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी  
व्याख्या करेंगे ।

दन्ती द्रवन्ती के नामान्तर ।

दन्त्युदुम्बरपर्णी स्यान्निकुम्भोऽथ मुकु-  
लः । द्रवन्ती नाम तच्चित्रान्यग्रोधामूपिका  
द्वया ॥

अर्थ—उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ और मुकु-  
ल ये दन्ती के नामान्तर हैं। चित्रा न्यग्रोधा  
और मूपिका द्वया द्रवन्ती के नाम हैं ।

उक्त द्रव्यों के कल्प ।

तयोर्मूलानि मृगस्थिराणि वहलानि च ।  
हस्तिदन्तप्रकाराणि श्यावताम्राणि बुद्धि-

मान् । पिप्पलीमधुलिप्तानि स्वेदयेत्तृप्त  
कुशान्तरे ॥ शोषयेदातपेऽग्न्यर्कौ हते  
हृत्पां विकापिताम् । तीक्ष्णोष्णान्याशुका  
रीणि विकाशीनि गुरुणि च ॥ विलापय  
न्ति दोषौ द्वौ मारुतं कोपयन्ति च ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती की जड़ जो दृढ़,  
पुष्ट, हाथी के दांत के सदृश हो तथा श्याव-  
वर्ण या ताम्रवर्ण हो उसे लाकर शहत  
और पीपल में लपेट दें और उस के उपर  
कुशा बांधकर कपडमिट्टी फरे दे इसको धूप  
में सुखाकर अग्नि में स्वेदित करें। ऐसा करने  
से इसकी तीव्रता दूर हो जावेगी । दन्ती  
और द्रवन्ती तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी,  
विकाशी और भारी होती हैं ये दोनों कफ  
और पित्त को विलीन करती हैं और वायु  
को प्रकुपित करती हैं (वायुकारक होने  
से पेट में ऐंठा उत्पन्न करती हैं इससे निम्न  
लिखित द्रव्यों के साथमें इनका सेवन हित है)  
दधितक्रसुरामण्डैः पिण्डमक्षसमन्तयोः ॥  
पियालकोलददरी पीलुशीधुभिरेव च ॥  
पिबेद्गुल्मोदरीदोषैराभिप्यन्दश्च योनरः  
गोमूगाजरसः पाण्डुः क्रिमिकुट्टी भगन्दरी ।  
तथोक्त्वा कल्के पाये च दशमूलरसायुते ॥ क  
क्ष्यालजीवि सर्पे पुदाहे च विपचेद्द्रुतम् ॥  
तैलमेहचगुल्मे च सोदावर्ते कफानिले ॥ च-  
तुःरनेहं शकृच्छुक्रवातसङ्घानिलातिपु ॥  
रसोदन्त्यजशृंग्योश्च गुडसौद्रघृतान्वितः ॥  
लेहः सिद्धो विरेकार्थे दाहसन्तापमेहनृत् ॥  
वाततपेज्वरेपेक्षे स्यात्सर्पवाजगन्धया ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीका कल्क दो तोले दही, तक्र, मुरामण्ड, पियाल, बेर, झाड़ी बेर, पीछ, शीघ्र, इनके साथमें पीनेसे गुल्मरोग, उदररोग, अभिष्यन्दरोग दूर होजाते हैं, तथा गौ, हिरन और बकरे के मांसरस के साथ पीने से पांडुरोग, किमि-रोग, कुष्ठ और भगन्दर जाते रहतेहैं। दन्ती द्रवन्ती का कल्क एक सेर, क्वाथ आठ सेर, दशमूलका क्वाथ आठ सेर और घृत चार सेर इनको पकाकर घृत तयार करे। यह घृत फलराई, विसर्प और दाहमें हित होता है। अथवा घृत की जगह तेल चार सेर पकानेसे यह तेल गु-ल्म, उदावर्त और वातकफ में हितहै अथ-वा घृत वा तेल दोनों के बदले में चार प्रकारके स्नेह पकाकर सेवन करनेसे मल-वद्धता, वीर्यवद्धता, वायुविबन्ध और वायु-रोग दूर होजाते हैं। अथवा दन्ती और में-ढासिंगी की जड़ समानभाग लेकर आठ गुने जलमें पकावे जब चौथाई शेष रहजा-य तब गुड और घृत के साथ पकाकर ले-ह करेले फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पांस रखछोड़े। इसके सेवनसे विरेचन द्वा-रा दाह, संताप और प्रमेह दूर होजाते हैं। इसीरीतिसे अजगंध और दन्तिकाजड़ समा-न भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करे चौथाई शेष रहनेपर छानकर चतुर्थांश घी, गुडके साथ पकाकर लेह करे। उस में श-हत मिलाकर रख छोड़े, इसकासेवन करने से तृषा और पित्तज्वर शान्त होजाते है।

मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे । त्रिस्तस्यचकपायेऽस्यभागान्द्वौफाणित स्यच ॥ तप्तसर्पिर्पितलेवाभजयेत्तत्रचाव पेत् । कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीनाञ्चभागशः ॥ तात्सिद्धमाशयलेहंमुखं तेनविरिच्यते । रसेचदशमूलस्यतथावै भीतकेरसे ॥ हरीतकीरसेचैवलेहानेव पचैत्पृथक् । तयोर्विल्वसमंचूर्णतद्रसेनैव भावितम् ॥ अष्टपृषिपातोत्थेगुल्मेचा म्लयुतंशुभम् ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीकी जड़को आबले के रसमें पकावे चौथाई शेष रहनेपर यह क्वाथ तीन भाग, फाणित दोभाग मिलाकर तप्त घी वा तैलमें छोक देवे। पीछे इसमें दन्ती द्रवन्ती और अपामार्ग तंडुलीय अ-ध्यायोक्त त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्योंका कल्क पूर्वोक्त कपाय और फाणितसे चतुर्थांश डाले। इस लेहको पान करनेसे मुखपूर्वक विरेचन होता है। अथवा इसी तरह से आबलेके रसकी जगह दशमूल का क्वाथ, बहेडे का क्वाथ वा हरड का क्वाथ इनमें दन्ती द्रवन्तीकी जड़ को पकाकर पूर्वोक्त तृ-वृतादि द्रव्यों को डालकर लेह तयार करे। दन्ती द्रवन्तीकी जड़ का एक पल चूर्ण में इनहीके क्वाथ की भावना देकर कांजीके साथ सेवन करे तो मलका विबन्ध और वातजगुल्म दूर होजातेहैं।

पाठयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्तरा ॥ स्वेदयित्वाततःखादेत्तुष्यतेनविरिच्यते। मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चतसृष्टैर्विपा

चयेत् । लाववर्तीरकाणांचितेरसाःस्युर्वि  
रेचनम् । तयोर्वापिकपायेणयवागूजांग  
लंसम् ॥ माषयूपांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते  
नविरिच्यते । तत्कपायास्त्रयोभागाद्वौ  
सितायास्तथैवच ॥ एकोगोधूमचूर्णा  
नांकोथिचोत्कारिकाशुभा । मोदकोवा  
स्वकल्केनकार्यस्तच्चविरेचनम् ॥ तयो  
र्वापिकपायेणमद्यान्यस्यविकल्पयेत् ॥

• दन्तीव्याधेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधि  
तम् ॥ गुडलावणिकानभक्ष्यान्विविधा  
न्भक्षयेन्नरः ।

अर्थ—इन्की एक पोईको बाँध में से  
चौर कर उसमें दन्ती द्रवन्तीके कल्क को  
भरदे फिर उसका मुँह बन्द करके डोर से  
बाँध देवे । फिर उस पोईको आग्नि में  
गरम करके चूसले तौ सुखपूर्वक विरेचन  
होता है दन्ती और द्रवन्ती की जड़ समान  
भाग गूंग के साथ वा घटेर के मांसरस के  
साथ पाक करके पीये तौ विरेचन होता है  
अथवा दन्ती द्रवन्ती की जड़के क्वाथ के  
साथ यवागू, वा जांगल मांसरस वा उरद  
के यूप के साथ संस्कार करके दैने से वि-  
रेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्तीकी  
जड़ का काथ तनि भाग चिनी दो भाग  
और गेहूँ का चून एक भाग मिलाकर  
मोहनभोग वा मोदक बनावे । इनके सेवन  
से विरेचन होता है । अथवा इनही दोनों  
के काथ से मद्य बनाकर सेवन करें । दन्ती  
के काथ में सानकर गुड और सेंधानमक  
डालकर बनाये हुए भक्ष्य पदार्थ दन्ती के

तेलही में सेक कर सेवन करने से सुख  
पूर्वक विरेचन होता है ॥

वैरेचानिकचूर्ण ।

द्रवन्तीमरिचंदन्तीयवानामुपकृञ्चिकाम्  
नागरंहेमदुग्धीचचित्रकंचेतिचूर्णितम् ।  
सप्ताहंभावयेन्मूत्रगवांपाणितलंततः ॥  
पिवेद्घृतेनजीर्णेतुविरिक्तश्चापितर्पणम् ।  
सर्वरोगहरंमुख्यं सर्वेष्टतुपुशोभनम् ॥  
चूर्णतदनप्रायित्वाद्वाष्टवृद्धेःपुष्टितम् ॥  
दुग्धक्ताजीर्णपार्श्वीतिगुल्मप्लीहारेपुच ।  
गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

अर्थ—द्रवन्ती, कालीमिरन, दन्ती, अ-  
जबायनकी जड़, कालाजीरा, सोंठ, स्व-  
र्णक्षीरी और चीता इनका चूर्ण करके सात  
दिन तक गोमूत्रकी भावना देवे । फिर  
इसका चूर्ण करके दी तोले घी में मिलाकर  
चाटै, विरेचन के पीछे तर्पण सेवन करें ।  
यह योग सम्पूर्ण रोगों को दूर करनेवाला  
और सम्पूर्ण ऋतुओं में हित है ॥ यह चूर्ण  
किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करता है इस  
से वृद्ध और बालकों कोभी उपयोगी है इस  
के सेवन से विपरीत भोजन के कारण  
उत्पन्न हुआ अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्मरोग  
प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला घातरोग और  
पाण्डुरोग दूर होजाते हैं ॥

पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः  
पिप्पलीत्रिवृताक्षौद्रगुडस्याप्रपलेनतत् ॥  
विनीयमोदकानकुर्पादशैकंभक्षयेत्ततः ॥  
उष्णांबुचपिवेच्चाजुदशमेदशमेऽन्हिच  
एतेनिप्परीहाराःस्युःसर्वरोगनिवर्हणाः ॥

ग्रहणीपाण्डुरोगार्थः कण्डूकोटानिलापहाः

अर्थ—चीता एक पल, दन्ती एक पल, हरड नग बीस, पीपल दो तोला, निसोध दो तोला, और गुड आठ पल इन सबको पाककर दशमोदक बनावै । इन मोदकों को उष्ण जल के साथ दसवै २ दिन एक एक खाय । इन मोदकोंके सेवन करते समय आहार विहारकी विशेष यंत्रणा नहीं है । यह सर्व रोगोंका दूर करने वाला है और विशेष करके इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, खुजली, फोड और वायुरोग नष्ट होजाते हैं ॥

दन्तीद्विपलनिर्यूहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ॥

शोधनं पित्तकासेचपाण्डुरोगे च शस्यते ।

दन्तीफलकंसमगुडंशीतवारिपुतं पिबेत् ॥

विरेचनं मुखपतमं कामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—दन्तीकी जड़को अठगुने जल में काथ करके चौथाई शेष रहने पर इस मिले हुए द्रव्यको लेह की तरह पाक करके सेवन करै तो पित्तज फास और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं । अथवा दन्तीके कल्कमें बराबर का गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पान करै तो उत्तम विरेचन होता है । इससे कामलारोग दूर होजाता है ।

श्यामादन्तीरसेर्गण्डः पिप्पलीफलाचैव कैः ॥ लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफग्रीहपाण्डुरापहाः । तथादन्तीद्रवन्त्योद्वेचकपायेणाजगन्धया ॥ गण्डः कार्योऽजशृंग्यावारसैः मुखविरेचनः । तच्चूर्णकवाधिमापाम्बुकिण्वतोयतुरोद्भवा । मदिराकफगुल्मास्पचन्दिपाद्वर्कटिग्रहे । अजगन्धाकपा

( १५४ )

येणसौवीरकतुपोदके ॥ सुराकम्पिष्ठकेयोगालोधवच्चतयोः स्मृताः ॥

अर्थ—एक पात्रके भीतर पीपल, मैन. फल और चीते का छेप करके कालीनिसोध और दन्ती का क्वाथ तथा गुड भरकर रखदे । एक महीन पीछे अरिष्ट वनमें पर सेवन करने से वात कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग, और उदररोग दूर होजाते हैं । इसी तरह से दन्ती द्रवन्तीकी जड़ और अजगन्धके काथ में गुड डालकर अरिष्ट तयार करै । इसी तरह से मेढासिंगी और दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ में गुड डालकर सुखपूर्वक विरेचन देवै । दन्ती द्रवन्ती का चूर्ण और क्वाथ, उरद का क्वाथ, सुरावाज और जल इनको एक पात्र में भरदेवै । यह मय कफज गुल्मरोग मन्दाग्नि, पार्श्वग्रह और कटि रोग दूर करता है । अजगन्ध के क्वाथके साथ दन्ती द्रवन्ती के सौवीरक और तुपोदक तथा लोष के समान सुरा और कम्पिष्ठक योग प्रस्तुत करके सेवन करै । ( सौवीरक और तुपोदक बनाने की यह रीति है कि अजगन्ध का क्वाथ, बिना छिलके के जौ और इतनी ही दन्ती द्रवन्ती का कल्क और कांजी एक पात्र में छः दिनतक धरे रखने से सौवीरक बनता है । तथा छिलके समेत जौ और भुनेहुए जौ ओ को बूट कर उक्त रीति से मिश्रित करने पर तुपोदक होता है ) । दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ और समान भाग सुरा को मिलाकर पन्द्रह दिवस तक धरा रखने से सुरा वनती,

हे । दन्ती द्रवन्तीके कल्क में दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण को दस बार भावना देकर फिर दस बार कवीले के बवाय की भावना देने से कम्पिष्टक योग बनता है ॥

दन्तीद्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन ।  
 दध्यादिपुत्रयःपञ्चपियालाद्यैस्त्रयोरसे ।  
 स्नेहेपुत्रयपोलेहाःपञ्चूर्णत्वकएवच ॥  
 ईक्षावेकस्तथामृद्गमांसानाञ्चरसास्त्रयः ।  
 पवाग्वाद्रौत्रयश्चैवउक्तउत्कारिकाविधौ  
 एकश्चमोदकेमधेचैकतत्कायतैलिके । चूर्णमेकं पुनश्चैकोमोदकःपञ्चचासवे । ए  
 कःसौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुतुपोदके ॥  
 एकासुराकम्पिष्टकचैकःपञ्चघृतस्मृताः ॥  
 दन्तीद्रवन्तीफलपेऽस्मिन्मोक्ताःषोडशका  
 स्त्रयः । नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोषा  
 ययान्मति ॥

अर्थ—इस अध्याय में दहीके तीन पि-  
 याल के पांच, क्वाथके तीन, स्नेहके तीन  
 लेह छः, चूर्ण एक, ईख का एक, मुद्गमांस  
 रस के तीन, बवायू के तीन, उत्कारिका  
 का एक, मोदक एक, मध का एक, बवाय  
 और तेल का एक, चूर्ण का फिर मोदक  
 एक, आसव पांच, सौवीरक एक, सुरा एक  
 कम्पिष्टक एक, और घृत पांच । इस तरह  
 सब अढतालीस योग है । इन प्रयोगों से  
 अनेक प्रकार के भोजन के दोष और रोग  
 शान्त होजाते हैं ॥

त्रिशतपञ्चपञ्चाशत्योगानां वमने स्मृतम् ॥

द्वे सतेनवकाः पञ्चयोगानान्तु विरेचने ।

ऊर्ध्वानुलोमेभागानामित्युक्तानि शतानि

पट् ॥ प्राधान्यतः समाश्रित्य द्रव्याणि दश  
 पञ्चच । यद्वियेन प्रधानेन द्रव्यं समुप  
 सृज्यते ॥ तत्संज्ञकः संसंयोगो भवतीति  
 विनिश्चितम् । फलादीनां प्रधानानां गु-  
 णभूताः सुरादयः ॥ तेहितान्यनुवर्तन्ते म  
 नुजेन्द्रमिवेतर ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में तीन सौ पञ्च-  
 पन वमनयोग और दो सौ पैतालीस विरेचन  
 के योग वर्णित हैं । इस तरह श्रुतादि पन्द्र-  
 ह द्रव्यों का आश्रय लेकर वमन और विरे-  
 चन के सब मिलकर छः सौ प्रयोग हैं ।  
 जो द्रव्य जिस प्रधान द्रव्य से संयोजित  
 किया जाता है उस प्रयोगमें उसी के गुण  
 प्रधान होते हैं जैसे मेनफलादि प्रधान द्रव्य  
 के गुण से युक्त सुरादिक मेनफलादि के  
 गुणोंकाही अनुवर्तन करती हैं जैसे प्रजा  
 राजा की अनुगामिनी होती है ॥

विरुद्धवीर्यमप्येषां प्रधानानामवाधकम् ॥  
 अधिकेतुल्यवीर्येऽपि क्रिया सामान्यमिष्य  
 ते । इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामय  
 स् ॥ अतो विरुद्धवीर्याणां प्रयोग इति नि-  
 श्चितम् ॥

अर्थ—अप्रधान द्रव्य वीर्य विरुद्ध होने  
 पर भी प्रधान द्रव्यके गुण का वाधक नहीं  
 होसکتा है । तथा समान वीर्यवाला अप्रधान  
 द्रव्य भी प्रधान द्रव्य के वीर्यको बढ़ाता है,  
 क्योंकि उनकी क्रिया समान है । मनोऽनु-  
 कूल वर्ण, रस स्पर्श और गंध के कारणही  
 विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का संयोग किया जाता है  
 तथा रोग के अनुसार भी विरुद्धवीर्य द्रव्य  
 मिलाये जाते हैं ॥

स्वरससेभावितकरनेकाकारण ।

भूयश्चैवावलाधानकार्यस्वरमभावनात् ॥  
सुभावितहृत्पमपिद्रव्यस्याद्दृक्कर्मकृत् ।

स्वरसैतुल्यचार्यैर्वातस्माद्द्रव्याणिभावयेत्

अर्थ—एक द्रव्य को उसी के रस की भावना देने का कारण यह है कि उस द्रव्य का बल अधिक बढ़ जाता है । अल्पशीर्ष वाला वा अल्प द्रव्य भी अच्छी तरह भावना दिये जाने पर बहुत से कर्मों का करने वाला हो जाता है । इसलिये उसी द्रव्य के रस से अथवा समान धीर्यवाले अन्य द्रव्य के रस से भावना देनी चाहिये ॥

अल्पस्यापिमहार्थत्वंप्रभूतस्यापिकर्मताम् ।  
कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥

अर्थ—संयोग, वियोग, काल और संस्कार द्वारा अल्पद्रव्य का महार्थत्व और प्रभूतद्रव्य का अल्पार्थत्व हो जाता है ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रव्यमिहपट्टशतम् ।

सुषुक्ष्मसहस्राणिकोटिर्वापिमकल्पयेत् ॥

यहद्रव्यधिकल्पत्वाद्योगसंख्यानाविद्यते ।

तीक्ष्णमध्यमृदुनान्तुतोपांशुतलक्षणम् ॥

अर्थ—इस जगह छः सौ प्रकार के वमन विरेचनों का आंशिक वर्णन किया गया है । अच्छी बुद्धियाला वैद्य इन को सहस्र क्या करोड प्रकार से देसक्ता है । बहुत द्रव्यों से विकल्प होने के कारण इनकी संख्या नहीं हो सकती है ।

अब हम तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं ।

तीक्ष्ण विरेचन के लक्षण ।

सुखंक्षिप्तमहवेगमसक्तंयत्प्रवर्तते । ना

तिग्लानिकरं पायौ हृदयेन चरुकरम् ॥

अन्तराशयमक्षिण्वन्कृत्स्नंदोषं निरस्यति

विरेचनं निरुहोवात तीक्ष्णमिति निर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिसके प्रयोग करने से मल अ-

सक्त होकर बड़े वेग से निकलने लगता

है जो ग्लानि बहुत नहीं करता है परन्तु म-

ल के निकलने के समय गुदा और हृदय

में वेदना करने लगता है और आमाशय को

क्षीण करके सम्पूर्ण दोष को दूर कर देता है

उस विरेचन वा निरुहको तीक्ष्ण कहते हैं ।

औषध की तीक्ष्णता का कारण ।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टं देशकालगुणान्वितम् ।

ईप्समात्राधिकं युक्तं तुल्यवीर्यैः सुभावितम् ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तीक्ष्णत्वं याति भेषजम् ।

अर्थ—जो औषध जल, अग्नि वा कीड़े

से दूषित नहीं हुई है, जो देश और काल

के गुण से युक्त है । जो समान धीर्य वाली

औषधों से मात्रा दी गई है और मात्रा से

कुछ अधिक दी भी गई है तथा स्नेहन

और स्वेदन कर्मों के पश्चात् प्रयुक्त हुई है

वह औषध तीक्ष्ण हो जाती है

मध्य औषध के लक्षण ।

किञ्चिदेदभिर्गुणैर्हीनं पूर्वोक्तैर्मात्रया तथा ।

स्निग्धस्विन्नस्य वा सम्यग्मध्यं भवति भेषजम्

अर्थ—जो औषध ऊपर कहे हुए गुणों

से कुछ कम गुणवाली होती है वा उक्त

मात्रा से कम स्नेहन स्वेदन के पश्चात् दी

जाती है वह मध्यम वाली होती है ।

हीन औषध का लक्षण ॥

मन्दवीर्यविरुक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम् ॥

अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तमृदुस्थान्मन्दवेगवत् ।

अकृत्स्नदोषहरणादभुभंतद्वलीयसाम् ॥

मध्यावरणलानान्तुप्रयोज्यसिद्धिमिच्छता

अर्थ—रुक्षरोगी को मन्दवीर्यवाली औषध अतुल्य औषधों के संयोगमें हीन मात्रासे प्रयोग की जाती है वह मृदु और मन्द वेग वाली होती है। ऐसी औषध दोषों को अच्छी तरह दूर नहीं कर सकती है इस से अगर इसका प्रयोग बलवान् मनुष्य के साथ किया जाय तो अशुद्धि को बढ़ाती है। इस हेतु से जो इस औषध को सिद्ध किया चाहै उन्हें उचित है कि मध्यबल और हीनबल वालों को यह औषध देवै।

तीक्ष्णोमध्यामृदुर्व्याधिःसर्वमध्याल्पलक्षणः ॥ तीक्ष्णार्दानिवलापेक्षाभेषजा न्येपुयाजयेत् ॥

अर्थ—सर्वलक्षणयुक्त व्याधि तीक्ष्ण, मध्यलक्षणवाली मध्य और अल्पलक्षण वाली मृदु होती है। इन सब का विचार कर तीक्ष्णादि औषधादि का प्रयोग करे। देयन्त्यनिर्हतेपूर्वपूतेपश्चात्पुनःपुनः । भेषजं वमनार्थमायआपित्तदर्शनात् ॥ बलमैविध्यमालम्ब्यदोषाणामातुरस्यच। पुनःप्रयोज्यभेषज्यंसर्वशोहिविवर्जयेत् ॥

अर्थ—यदि वमनकारक औषध के सेवन करने परभी दोष न निकलें तो जब तक पित्त न निकले तब तक बार बार औषध पान कराता रहे। रोग और रोगी के तीनों

प्रकार के बलों की विवेचना करके बार बार औषध का प्रयोग करे और जो समय न रहा हो तो सर्वथा औषध न देवै।

निर्हतेवापिजीर्णेवादोषनिर्हरेण्युधः ॥

भेषजेऽन्यत्प्रयुज्जीतत्प्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमम् ॥ अपक्वमनंदोपात्पच्यमानंविरेच

नम् । निर्हरेद्वमनस्यातःपार्कनमंतिपालयेत् पीतेप्रसंसनेदोषान्निर्हरेत्यजराद्भते । वामि तेचौषधेधीरःपातयेदातुरगुणः ॥

अर्थ—जो वमनकारक औषध निकल गई हो, वा पचगई हो वा दोष को न निकालसकी हो तो सिद्धि की इच्छा करने वाला वैद्य फिर औषधदेवै। वमन औषध पचने से पहिले दोषों को निकालदेती है और विरेचक औषध पचनावस्था तक दोषों को निकालती है। इस से वमन औषध के पाक की प्रतीक्षा न करे। विरेचक औषध के पीने पर वह दोषों को बिना निकाले हुएही पचगई हो वा उसकी वमन होगई हो तो फिर औषध पान करावै ॥

सुखामुखसाध्यरोगी ॥

दीप्ताग्निबहुदोषश्चहृदस्नेहगुणंनरम् ।

दुःशोध्यंतदहर्शुक्तंस्वोभूयःपाययेत्तत् ॥

दुर्बलोबहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः । विरिच्यतेसर्वैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥ वमनैश्चविरिक्तैश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः । भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमनयेत्

अर्थ—दीप्ताग्निवाला, बहुत दोषों से युक्त और आतिशय स्निग्ध मनुष्य का

शोधन कठिनता से होता है, क्योंकि दीप्ता



गिन के कारण औषध को वह शीघ्र ही प-  
चालेता है बहुदोष युक्त होने के कारण  
अल्प औषध कुछ काम नहीं करसक्ती है  
तथा वमन द्रव्य रुक्ष होनेके कारण अति-  
स्निग्ध मनुष्यपर कुछ काम नहीं करसक्ती  
है । इससे जो वमनकारक औषध के पान  
कराने पर उसे वमन न हुई हो तो उस  
दिन भोजनादि करा के दूसरे दिन फिर  
वमनकारक औषध पान करावै ॥

बहुत दोषों से युक्त दुर्बल मनुष्य का  
मल सहज ही में नहीं निकलसक्तता है ।  
किन्तु दोष के पचने पीछे मल निकलता  
है । ऐसे रोग को विरेचन औषध देनेपर  
भी विरेचन न हो तो फिर विरेचन न देवै  
परन्तु दस्तावर आहार देकर मलको निकाल  
जो रोगी वमन विरेचन द्वारा यथा प्रमाण  
शुद्ध न हुआ हो तो फिर ममन विरेचन  
न-देकर पान भोजन के किसी प्रकारान्तर  
से शेष दोषों का निवारण करै ।

मृदु औषधका विधान ।

दुर्बलशोथितपूर्वमल्पदोषप्रमाणयम् ।  
अपरिज्ञातकोष्ठश्रपाययेत् औषधं मृदु ॥  
धेयोमृदुसकृत्पीतमल्पवाधं विरेचनम् ।  
नचातितीक्ष्णं वत्सिमंजनयेत्प्रमाणसंज्ञयम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दुर्बल हो, वा पूर्व में  
शुद्ध किया हुआ हो, वा अल्प दोष युक्त  
हो वा जिस के कोष्ठ का हाल माध्यम न  
हो उसे मृदु औषध पान करावै । थोड़ी  
थोड़ी औषध का बार २ पीना अच्छा है  
जिससे किसी प्रकार की वाधा वा अपकार

न हो अत्यन्त तीक्ष्ण औषधका पान कराना  
ठीक नहीं है जो शीघ्र ही प्राणोंको हरण करलेवै ।  
दुर्बलोऽपिमहादोषो विरेच्यो बहुशोऽल्प-  
शः । मृदुभिर्भेषजैर्दोषान् न्युद्धेन मनोर्हि-  
ताः ॥ यस्यादूर्ध्वकफमंष्ट्रं पीतं यात्यनु-  
लोमिकम् । बभितं कवलैः शुद्धैर्लङ्घितं पाय-  
येत् ॥ निबद्धेऽल्पे चिराद्दोषे सवत्पुष्पं  
पिबेज्जलम् । तेनाध्मानं सत्तृच्छदि विव-  
न्धश्चैव शाम्यति ॥ भेषजं दोषरुद्धं च नो-  
र्दनाधः प्रवर्तत । सोद्गारं सांगशूलवास्वे-  
दं तत्रावचारयेत् ॥ सुविरिक्तस्तु सोद्गार-  
माश्वेयौ पथमल्लिखेत् । अतिप्रवर्तनजी-  
र्णमुशीतैस्तम्भयेद्भिषक् ॥

अर्थ....महा दोष वाले दुर्बल रोगीको  
थोड़ा २ विरेचन कई बार करके पान क-  
रावै । क्योंकि औषध को मृदुता के का-  
रण दोष न निकल कर प्राणों को नष्ट  
कर देते हैं ॥ ऊर्ध्व मार्गके कफाश्रुत  
होनेसे वेग ऊपरको न जाय और अ-  
नुलोमगती को प्राप्त हो तो कवल द्वारा  
वमन की इच्छाको रोककर लघन करा के  
कफके क्षीण होनेपर वमन करावै । जो दोष  
थोड़ा २ विवद्धतासे वा देरमें निकलै तो  
उष्ण जलका पान करावै । इससे अफरा,  
तृप्ता, वमन और विवन्ध सब दूर हो जाते हैं ।  
दोषों से रुकी हुई औषध जो न ऊपरको  
जा सके न नीचे को जा सके तथा डकार  
और अंगशूल होने लगे तो पसीने देवै ।  
अच्छी तरह विरेचन होनेके पीछे जो  
डकार में औषधकी गंध आती हो तो शीघ्र

ही आमाशयस्थ औषधको घमन द्वारा निका  
लेदे जो औषध के पचने पर अधिक दस्त  
आने लगे तो शीतल क्रिया से शान्त करे  
कदाचिद्वलेष्मणारुद्धेतिप्रत्युरसिभेषज  
म् । क्षीणेश्लेष्मणिमायाहनेरात्रौवातत्  
प्रवर्तते ॥ रूक्षानाहारयोर्जीर्णविष्टभ्यो  
र्जगतेऽपिवा । वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्ने  
हलघणंशृतम् ॥ तृणमोहघ्नममूर्च्छाद्याःस्यु  
र्जीर्यतिहिभेषजे । पित्तघ्नस्वादुशीतञ्च  
भेषजंतत्रशस्यते ॥

अर्थ—यदि औषध कफसे रुककर वक्षः-  
स्थलमें ठहर जाय और सन्ध्या के समय वा  
रात्रि में कफके क्षीण होने पर निकले  
रूक्षता के कारण वा भोजन न करने के  
कारण, औषध के जीर्ण होने पर वा बिना  
जीर्ण हुएही गुडगुडाहट करके वायुके कारण  
ऊपर को जाय तो फिर उसी औषध को  
स्नेह और लघण के साथ पान करावे ।  
औषध के पचने पर यदि तृण, मोह, भूम  
और मूर्च्छादिक हों तो स्वादु शीतल और  
पित्तनाशक औषध पान करावे ।

लालाट्टल्लासत्रिष्टम्भशीतहर्पाःकफावृते  
भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णकट्वादिक्कफनुद्धितम्  
गुस्निग्धंशूरकोष्ठञ्चलघवेदविरेचितम् ।  
तेनास्यस्नेहःश्लेष्मासंगश्चैवोपशाम्यति

अर्थ—कफावृत रोग में लालासाव,  
ट्टल्लास, विष्टब्धता, रोमहर्षण और शीतहो  
तो तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशककट्वादि  
औषध देवे । अच्छी तरह से स्निग्ध हुए  
मनुष्य को विरेचन न देकर लघन करावे

इस से उसका स्नेहजन्य कफ और मल  
की विवन्धता दूर होजायगी ।

वस्तिकर्मके योग्यरोगी ॥

रूक्षवद्वानिलकूरकोष्ठव्यायामशूलिनाम्  
दीप्ताग्नीनाश्चभषज्यमविरेच्यवजीर्यात् ॥  
तेभ्योवस्तिपुगदत्वापश्चादद्याद्विरेचनं  
वस्तिप्रवर्तितंदोषहरेच्छीघ्रंविरेचनम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य रूक्ष, अत्यन्त वात  
प्रकृतिवाला, कूरकोष्ठ, व्यायामशील [कसरत  
कुस्ती करनेवाला] शूलरोगी और दीप्ता-  
ग्निवालाहो तो विरेचनकर्त्ता औषध उस  
को बिना विरेचन कराये ही पचजाती है  
इसलिये उसे पहिले वस्तिकर्म करा के  
पाँछे विरेचन दैवे । वस्तिसे प्रवृत्त हुएदोषों  
को विरेचन शीघ्रही निकाल देता है ॥

स्नेहन के योग्य रोगी ॥

रूक्षाशनाःकर्मनित्यायेनरादीष्मपावकाः  
तेपादोषा क्षययान्तिकर्मवातातपाग्नि  
भिः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णदोषानापस  
हन्तिते ॥ स्नेहास्तेमारुताद्रूक्ष्यानाव्या  
धौतान्विसोधयेत् ॥

अर्थ—रूक्षभोजी, गित्यप्रति परिश्रम  
करने वाले, दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के दोष,  
परिश्रम, वायु, धूप और अग्निसे क्षय हो-  
जाते हैं । तथा इन्हीं कारणों से विरुद्ध  
भोजन, अध्यशन और अजीर्ण भोजनादि  
से उत्पन्न हुए दोष भी मिटजाते हैं । ऐसे  
मनुष्यों को स्नेहन देना उचित है क्योंकि  
वायु ॥ इनकी रक्षा कर्त्तव्य है । तथा  
किसी विशेष रोग के बिना हुए विरेचन दे-  
ना भी ठीक नहीं है ॥

नातिस्निग्धशरीराय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ।

स्नेहोत्क्रिष्टशरीराय रूक्षदद्याद्विरेचनम् ।

अर्थ—जिसका शरीर अति स्निग्ध नहो  
अर्थात् रूक्षहो उसे स्नेह विरेचन देवै अथवा  
यों कहौ कि अति स्निग्ध देह वाले को स्ने-  
ह विरेचन न देवै । जो स्नेह से उत्क्रिष्ट  
हो उसे रूक्ष विरेचन देवै ॥

एवं ज्ञात्वा विधिं धीरो देशकालप्रमाणवित् ॥

विरेचनं विरेच्येभ्यः प्रयच्छन्नापराध्याति

विभ्रंशो विपवद्यस्य सम्यग्योगो यथा मृतम्

कालेष्ववश्यं पेयश्च तस्माद्यन्नात्प्रयोजयेत्

अर्थ—इन सब ऊपर लिखी हुई बातों  
को अच्छी तरह समझकर देश काल और  
प्रमाण के अनुसार जो वैद्य विरेचन के योग्य  
मनुष्य को विरेचन देता है वह अपराध का  
भागी नहीं होता है ।

जो औषध अन्यथा प्रयुक्त किये जाने  
पर विपके समान और सम्यक् प्रयोग किये  
जाने पर अमृत के समान फल दिखाती है  
ऐसी औषध को ठीक समय पर बहुत सोच  
विचार के साथ पान करना चाहिये ।

उपसंहार ।

द्रव्यप्रमाणान्तु यदुक्तमास्मिन्मध्येषु तत्को  
ष्टवयो वलेषु तन्मूलमालम्ब्य भवेद्विकल्पं  
तेषां विकल्पोऽभ्याधिको न भावः ॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में जिस द्रव्य का जो  
प्रमाण कहा गया है । कोष्ठ, वय और  
वल के अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये  
इसी कोष्ठ, वय और वल के भेद से मात्रा  
में घटा बढ़ी होती है ।

मान परिभाषा ॥

पहचंश्यस्तु मरीचिः स्यात्पण्मरीच्यस्तु स-  
र्पपः ॥ अष्टौ तैसर्पपारत्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्व-

यमाधान्यामापो भवेदको धान्यमापद्वयं यवः

अण्डिकास्ते तु चत्वारस्ताश्च तत्सप्तमापकः

हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तु त्रेत्रयः ॥

शाणौ द्वौ द्रक्षणं विद्यात्कोलं वदरे मेव च ।

विद्यात्द्वौ द्रक्षणं कर्पसुवर्णश्चाक्षमेव च ॥

विडालपदकन्तश्च पिचुम्पाणितलन्तथा ।

तिन्दुकञ्च विजानीयात्कवलग्रहमेव च ॥

द्वे सुवर्णे पलार्थं स्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ।

द्वे पलार्थे पलमुष्टिः प्रकुञ्चेऽथ चतुर्थिका ॥

विल्वं पोडशिकश्चाम्रद्वे पले प्रसृतम्विदुः ।

अष्टमानन्तु विज्ञेयं कुडवौ द्वौ तु मानिका ॥

पलञ्च चतुर्गुणं विद्यादञ्जलि कुडवन्तथा

चत्वारः कुडवाः प्रस्यश्च तुष्पस्थमथा ढकम्

पात्रं तदेव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकन्तथा ॥

कंसश्च चतुर्गुणो द्रोणः चामर्णलवनश्च तत् ।

स एव कलशः ख्यातो घटश्चान्मानमेव च ॥

घटन्तु द्विगुणं सूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च ॥

गोणी शूर्पद्वयं विद्यात् खारं भागीन्तथैव च

द्वान्निशतं विजानीयाद्वा इंशूर्पाणि शुद्धिमान्

तुलां शतपलं विद्यात्परिमाणविशारदः ।

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेव मादिमकीर्तितम्  
द्विगुणं तद्द्रवेष्विदं तथा सद्यो कृतं पुच ॥  
यद्धिमानन्तु लामोक्ता पलं वा तत्प्रयोजयेत्  
अनुक्ते परिमाणे तु तुल्यमानं प्रकीर्तितम् ॥  
अर्थ—छः वंशी की एक मारीचि होती  
है ( घर के जाली शरोखों में जो धूप  
आती है उस धूप में जो रज के कण से

उडते दिखाई देते हैं उसे बंशी वा त्रसरेणु कहते हैं, तीस परिमाणु की एक बंशी वा त्रसरेणु होता है ) छः मरीची की एक सरसों होती है । आठ सरसों की एकरत्ती वा तण्डुल । दो तण्डुल का एक धान्य मापक, दो धान्य मापक का एक जौ, चार जौ का एक अण्डका, चार अण्डका का एक मामा वा हेम, वा धानक होता है ॥ तीन मापक का एक शण, दो शण का एक ब्रक्षण, वा कोल वा बदर होता है । दो ब्रक्षण का एक कर्प वा सुवर्ण, वा अक्ष, वा विडालपदक वा पिचु वा पाणितल, वा तिंदुक, वा कवलग्रह होता है ॥ दो सुवर्ण का एक पलार्द्र, वा शुक्ति वा अष्टमिका होता है । दो पलार्द्र का एक पल वा मुष्टि, वा प्रकुञ्च, वा चतुर्थिका, वा विल्व, वा पोडशिका, वा आग्र होता है । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक अष्टमान वा कुडव, दो कुडव का एक मानिका, चार प्रलका एक अञ्जली वा कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थ चारप्रस्थ का एक आढक, वा पात्र, आठ प्रस्थ का एक कंस चार कंस का एक द्रोण, वा अर्मण, वा टल्वन, वाघट वा कलश वा उन्मान होता है । दो घटका एक सूर्य वा कुम्भ होता है । दो सूर्य का एक गोणी, वा खारी, वा भारी होता है । दत्तीस सूर्य का एक चाह और सौपट की एक तुला होती है ॥

यह शुष्क द्रव्यों का मान वर्णन किया गया है द्रव अथवा ताजी लिये हुए द्रव्य

इस तोल से दुगुने लिये जाते हैं । परन्तु जिनकी तोल पल से तुला पर्यन्त लिखी है वे उतनीही ली जाती है जहां द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा गया है वहां औषध समान भाग लेनी चाहिये । [ एक कुडव अर्थात् आघसेर तक गीठे द्रव्यों का द्विगुण ग्रहण न करे । कुडव से ऊपर गाले द्रव्य दूने लेने चाहिये । घी, खांड, गुड, शहता, दूध, तैल, और मद्य आदि के पक्षमें कुडव आठ पलका ग्रहण किया जाता है ना-रियल के सम्बन्ध में भी यह बात है )

द्रव्यत्रयऽपि चानुक्ते मर्वत्रसलिलं स्मृतम् ।  
यतश्च पादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चतस्रः ॥

जलस्नेहौ पधानान्तु प्रमाणं तत्र न रितम् ॥

तत्र स्यादापधात् स्नेहः स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥

अर्थ—पाचनादि स्थल में जो द्रव्य द्रव्यों का नाम न लिखा गया हो तो जल ग्रहण करना चाहिये । पादनिर्देश से चौथाई ग्रहण किया जाता है । जिस स्थान पर जल, औषध और स्नेह का प्रमाण न दिया गया हो वहां औषध से चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना जल डाले ॥

स्नेहपाक के भेद ॥

स्नेहपाकस्त्रिधा ज्ञेयो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।  
तुल्येककलेन निर्य्यासं भेषजानामृदुः स्मृतः ॥  
सम्पाक इव निर्य्यासं मध्योद्वीविगुञ्चति  
शीर्ष्यमाणे तु निर्य्यासं चत्तमाने खरस्तथा ॥

अर्थ—स्नेह पाक तीन प्रकारका होता है, यथा—मृदु, मध्य और खर । जहां

स्नेह की गाद कलककी तरह पतली होती है, वह मृदुपाक होता है । जहां स्नेह की गाद अमलतास के गूदे के सदृश गाढी होती है वह मध्यपाक है । जो गाद कलछी से दूर होजाय परन्तु कुछ चिप चि पाहट सा रहे वह खरपाक है ।

स्नेहपाकोंकी प्रयोग विधि ।

खरोऽभ्यङ्गेस्पृतः पाकोमृदुर्नस्तः क्रियासु च ॥ मध्यपाकस्तु पानार्थे वस्तौ च विनियोजयेत् ।

अर्थ—स्नेह का खरपाक अभ्यंगमें, मृदुपाक नस्यक्रियामें और मध्यपाक पाने और वस्तिकर्म में प्रयुक्त किया जाता है ॥

मान के भेद ।

मानञ्च द्विविधं प्राहुः कालिङ्गमागधं तथा कालिङ्गान्म गधं श्रेष्ठमेवंमानविदो विदुः ॥

अर्थ....मान दो प्रकारका होता है । यथा-कालिङ्ग और मागध । परन्तु इन दोनों में मागध मान श्रेष्ठ है ॥

इस ग्रन्थमें कालिङ्गमान नहीं लिखा है इसे हम भावप्रकाश से उद्धृत करते हैं ॥

कालिङ्ग मान ।

यद्योद्वादशभिर्गौरसरपैः प्रोच्यते बुधैः ।

यद्यद्वेयं गुंजा स्यात् त्रिगुजो वल्य उच्यते ॥

मापो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचि ।

चतुर्भिर्मापकैः शणः सनिष्कष्टं च ।

एव च । गद्याणो मापकैः पद्भिः कर्पः स्या ।

दशमापकः । चतुःकर्पपलं मोक्तं दशशानामि ।

तु बुधैः ॥ चतुःपलं च कुडवः प्रस्थायाः पू ।

वैवन्मताः ।

अर्थ—चारह सफेद सरसों का एक जो होता है । दो जो की एक गुंजा वा रत्ती होती है । तीन रत्ती की एक बल्ली, आठरत्तीका एक मापा, तथा कोई २ सातरत्ती का भी मापा मानते हैं । चार मासेका एक शण होता है उसी को निष्क वा टंक भी कहते हैं । छः मासेका एक गद्याणक होता है । दस मासे का एक कर्प, चार कर्प का एक पल अर्थात् दस शण होते हैं । तथा चार पलका एक कुडव होता है । प्रस्थ से ऊपर की तोल मागध परिभाषा के सदृश होती है ॥

कल्पस्थान का संक्षिप्तवर्णन ।

कल्पार्थः शोधनसंज्ञा पृथग् हेतुः प्रवर्तने । देशादीनां कलादीनां गुणायोगशतानि पद् विकल्पहेतुर्नामानितीक्ष्णमध्याल्लक्षणम् । विधिश्चावस्थिको मानस्नेहपाकश्च दार्शितम् ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में कल्प के विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधन के पृथक् २ हेतु, देशादि के गुण, मेनकलादि द्रव्यों के गुण, विरेचन के छःसौ योग, विकल्प के हेतु, नाम, तीक्ष्ण, मध्य और अल्प विरेचन के लक्षण, आवस्थिक विधि, द्रव्योंका मान तथा स्नेहपाक का वर्णन किया गया है ॥ इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितयां चरकप्रतिसंस्कृतोपासंहितायां कल्पस्थाने दन्तीद्रवन्तीकल्पानाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ इति कल्पस्थानं समाप्तम् ॥

॥ श्रीहरिश्चन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथसिद्धिस्थानम् ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः

अथातः कल्पनासिद्धिव्याख्यास्यामं  
इतिहस्माद्भगवान्नामः ।अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम कल्पनासिद्धिनामक अध्याय की  
व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

काकल्पनापञ्चसुकर्मसूक्ता क्रमश्चकः कि  
ञ्चकृताकृतेषु ॥ लिङ्गं तथैवातिकृतेषु सं  
ख्याकाकिं गुणाः के पुचकाचवस्तिः ॥ किं  
वर्जनीयं प्रतिकर्मकाले कृते कियान्वाप-  
रिहारकालः । प्रणीयमानश्चनयातिव-  
स्तिः केनेति शीघ्रं मुचिराच्चकेन ॥ साध्या  
गदाः द्यैः शमनैश्चकेचित् कस्मात्प्रयुक्तं  
नैषां व्रजन्ति ॥ प्रचोदितः शिष्यवरेण स  
म्यक् इत्यग्निवेशेन भिषग्वरिष्ठः ॥ पुनर्व  
सुस्तन्त्रविदाहृतस्मै सर्वप्रजानां हिनका  
भ्ययेदं ॥अर्थ.... आग्निवेशने नीचे लिखे हुए चारह  
प्रश्न आत्रेय भगवान् से किये, यथा—( १ )  
वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य और वास्ति इन  
पाँचकर्मोंकी प्रक्रियाक्याहै? ( २ ) इन सब  
कर्मोंमें आहार, आदिका नियम क्या है? ( ३ )  
सम्यक् प्रयुक्त असम्यक् प्रयुक्त अतिप्रयुक्तपंचकर्मों के लक्षण क्या हैं? ( ४ ) संह्या  
क्या है? ( ५ ) गुण, क्या है? ( ६ )  
वस्ति क्या है? ( ७ ) प्रतिकर्म काल में  
वर्जनीय, क्या है? ( ८ ) वमन विरेचन  
के पीछे स्वाभाविक आहार विहारका कितने  
दिन तक परित्याग करना चाहिये? ( ९ )  
वास्ति किस तरह से प्रवेश नहीं कर सकती  
है? ( १० ) वास्ति किस तरह शीघ्र प्रत्याग-  
मन करती है? ( ११ ) विस्तरह, दर में  
प्रत्यागमनकरती है? ( १२ ) कौन कौन से  
साध्यरोग उनके नष्ट करने वाली औषधियों  
से भी शान्त नहीं होते हैं? ॥आग्निवेश के इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि  
आत्रेय ने संसारके हितकी कामना से नीचे  
लिखा हुआ उत्तर दिया ।

स्वेदनकालका निर्णय ।

व्यहोवरसप्तदिनपरन्तुस्निग्धोनरः स्वेदयि  
तव्यउक्तः ॥ नातः परं स्नेहनमादिशन्ति  
सात्स्यो भवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥अर्थ—यह बात सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय  
में वर्णन करदी गई है कि मृदु कोष्ठवाला  
मनुष्य थोडासाही स्नेह सेवन करने से  
तीन दिन में स्निग्ध होजाता है, यह स्नेह  
मात्रा अधम है । तथा क्रूर कोष्ठवाला मनुष्य  
सात दिन तक स्नेह सेवन करने से स्निग्ध  
होता है यह स्नेह की उत्तम मात्रा है । सात  
दिवस से पीछे रोगी को स्वेदन देना चाहिये  
इससे पीछे स्नेहन कर्म करना ठीक नहीं  
है क्योंकि सात दिन पीछे स्नेह सात्स्य होजाता है

स्नेहनं स्वेदनं का फलः ॥

स्नेहोऽनिलं हन्ति मृदुं करोति देहं मला  
नां विनिहन्ति सङ्गम् ॥ स्निग्धस्य मूत्रस्योष्ण्यं  
नेपुलीनं स्वेदस्तु दोषं नयति द्रवत्वम् ॥

अर्थ—स्नेह या तैल को नष्ट करता है, देह  
को मृदु करता है, और मलकी विवद्धता  
को दूर करता है। स्वेदन स्निग्ध व्यक्ति  
के सूक्ष्म स्रोतःसमूहों में लीन दोषों को  
द्रव कर देता है ॥

ग्राम्पोदकानूपरसैः समासैस्तु क्लेशनीयः  
पयसा च वम्यः ॥ रसैस्तथा जाह्नलजैः स यू  
पैः स्निग्धः कफावृद्धिं करोति विरेच्यः ॥ श्लेष्मो  
त्तरश्छर्दयति हृद्दुःखं विरेच्यते मन्दकफ  
स्तु सम्यक् ॥ अपः कफेऽल्पे वमनं नित्यच्छे  
द्विरेचनं वृद्धकफे तथाऽर्ध्वम्

द्विरेचनं वृद्धकफे तथाऽर्ध्वम्

अर्थ—जिसको वमन करानी हो उसे  
पहिले ग्राम्य, औदक, और आनूप मांस  
और मांसरस तथा दूध का सेवन करा  
के कफको उत्क्रोशित करना चाहिये जि-  
ससे अपने आप वमन होजाय। इसी  
तरह जिस विरेचन देना हो उसे कफको  
न बढ़ानेवाले जांगल मांसरस और यूपद्वारा  
स्निग्ध करना चाहिये। क्योंकि ग्राम्या-  
दिके मांस सेवन से कफ-के बढ़ जाने के  
कारण वमन सहज में होजाती है और  
मन्द कफवाले को विरेचन सहज में हो-  
जाता है कफके थोड़े होने पर वमन कारक  
औषध नाँचे की जाती है इसी तरह से कफ  
के अधिक होने पर विरेचनकर्ता औषध  
ऊपर की जाती है ॥

स्निग्धाय देयं वमनं यथोक्तं वान्तश्च पेयादि  
रनुक्रमश्च। स्निग्धस्य च स्निग्धवतश्च का  
र्यं विरेचनं योग्यतमं ततश्च ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वमन देना होय  
उसको प्रथम स्निग्ध-करके पीछे अच्छी  
तरह वमन होने पर पेयादि क्रम का पालन  
करावे। इसी तरह जिसको विरेचन देना  
होय उसे प्रथम स्नेहन और पीछे स्वेदन  
देकर योग्यतम विरेचन देवे ॥

पेयां विलेपी मृकृतं कृतं च यूपरसां त्रिद्विरयैक-  
शश्च। क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधान  
मध्यावरं शुद्धिशुद्धः ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और अधम  
तीन प्रकार का शोधन होता है। इन  
तीनों प्रकार से शुद्ध शरीर वाला मनुष्य  
क्रम से पेया, विलेपी, कृताकृत यूप और  
मांसरस का तीन बार, दोबार, या एकबार  
करके सेवन करे ॥

पेयादि से अन्तराग्नि की ॥

वृद्धि का दृष्टान्त ॥

यथाग्निरग्निस्तृणगोमयाद्यैः तन्धुसमागो  
भवति क्रमेण महान् स्थिरः सर्वसहस्तयैव  
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः।

अर्थ—जैसे अणुमात्र अग्नि प्रथम ति-  
नुके, फिर उपले और फिर काठ में लग  
कर महान् दृढ़ और सर्वसह होजाती है  
उसी तरह शुद्ध मनुष्य की अन्तराग्नि  
क्रम से पेयादि द्वारा बढ़ाई हुई महान्  
दृढ़ और सबको पचाने वाली होजाती है  
( ' सर्वसहः, और ' सर्वपचः ' दोनों पाठ हैं )

वमन विरेचन के वेग ॥

जघन्यमध्यप्रवरेतुवेगाः चत्वार इष्टावमने पड्युः । दशवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्यस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ।

अर्थ—वमन के अधम वेग चार, मध्यम छः और उत्तम वेग आठ होते हैं, इसी तरह विरेचन के अधम वेग दस, मध्यम बीस और उत्तम तीस वेग होते हैं, वात द्रव्य का प्रमाण एक प्रस्थ होने से उत्तम, पौन प्रस्थ होने से मध्यम और आधा प्रस्थ होने से अधम मात्रा होती है । इसी तरह विरेचन द्वारा निकले हुए मलका प्रमाण दो प्रस्थ हो तो अधम, तीन हो तो मध्यम और चार प्रस्थ हो तो उत्तम होता है [ शिवदास लिखते हैं कि प्रस्थ साढ़े तेरह पल का होता है ]

वमनविरेचनकी अवधि ॥

पित्तान्तमिष्टवमनंतथोर्ध्व

मधःकफान्तंचविरेकमाहुः ॥

अर्थ—जबतक वमन में पित्त न आने लगे तबतक वमन कराना ठीक है और जबतक मल में कफ का दर्शन न हो तब तक विरेचन कराना उचित है ।

वमनविरेचनमेंप्रथमवेगोंका निषेध ।

द्वित्रीनसविट्कानपनीयवेगान् ॥

पेयविरेकेवमनेतुपीतम् ॥

अर्थ—विरेचन के वेगोंको उक्त संख्या में औषध के पीतेही जो दो तीन वेग होते हैं वे गिनेनही जाते हैं इसीतरह वमनवेगों में भी पहिले दो तीन वेग नहीं गिनेजाते

हैं जिन में पीढ़ई औषध निकलती है ।

सम्यग्व्यमितकलक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च यस्येति सम्यग्व्यमितः स तु स्यात् ॥ दृत्पाश्वमूर्ध्निन्द्रियमार्गशुद्धी तथा लघुत्वेऽपि चलक्ष्यमाणे ॥

अर्थ—क्रम से कफ, पित्त और डकार आये तौ समझना चाहिये कि वमन ठीक हुई है । तथा वमन के ठीक होनेपर हृदय पसली, मूर्धा, इन्द्रियगण और स्रोतःसमूह शुद्ध होजातेहैं और देहभी हलकी होजातीहै ।

असम्यग्वमनके लक्षण ।

दुश्छादितेस्फोटककोठकण्डू ।

हृत्त्वाविभृदिर्गुणाग्रताच ॥

अर्थ—जो वमन ठीक नहीं हुई हो तौ फोडे, पित्ती, खुजली, हृदय की अशुद्धि, इन्द्रियों की अशुद्धि और देहमें भारापन होताहै

अतिवमन के लक्षण ।

तृणोद्गमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ॥

बलादिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥

अर्थ—वमन के अत्यन्त होने से तृण मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रा हानि, और बलहानि ये लक्षण होते हैं ॥

सम्यग्विरिक्त के लक्षण ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादोलघुत्वम्

जोऽग्निरनामयत्वम् ॥ प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानाम् । सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण ॥

अर्थ—सम्यग्विरेचन होने पर स्रोतःसमूह की विशुद्धि, इन्द्रियों में प्रफुल्लता, देह



में हलकापन, बलवृद्धि, अग्निकी तीक्ष्णता, अनारोग्यत्व, तथा विष्टा, पित्त, कफ और अधोवायु का अच्छी तरह निःसरण होता है।

असम्पग्विरिक्तके लक्षण ।

स्यात्श्लेष्मापित्तानिलसंयुक्तोऽसौ साद-  
स्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्रया । तन्द्रातथाछर्दि-  
र्रोचकश्च वातानुलोम्यनचदुर्विरिक्ते ।

अर्थ—सम्पग्विरेचन न होने पर कफ पित्त और वात का प्रकोप होता है। अग्नि की मन्दता, देह का भारापन, प्रातःश्याय तन्द्रा, वमन अरुचि, और वात का प्रति-  
लोम होता है ।

अतिविरिक्तके लक्षण ।

कफाक्षयपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः सुप्त्यग्रम-  
र्दचलप्रवेपनाद्याः ॥ निद्राबलाभावतमः  
प्रलापः मोहमादहेकादशविरोचितेऽति ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचन होने पर कफ, रक्तपित्त, क्षय और वात से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं । तथा सुप्ति, अंगमर्द, क्लान्ति, कम्पन, निद्राभाव, बलाभाव, तमः प्रवेश, उन्माद और हिचकी ये उपद्रव होते हैं।

संसृष्टमृक्तं न वमः स हि निःसर्पिस्तं पाययेताप्य-  
नुवा मयेष्टा । दद्याच्च हात्रातिबुद्धिस्तथा  
तैलाक्तगात्रापततो निरुहम् ॥ प्रत्यागते  
मांसरसेन भोज्यः समीक्ष्य वादोपचलं यथा-  
हम् ॥ नरस्ततो निश्यनुवासनाहो नात्याशि-  
तः स्यादनुवासनीयः ॥

अर्थ—सम्पक वमन विरेचन के पीछे क्रम से पेयादि का सेवन कराके नवें दिन

भात का भोजन कराके घृत पान करावे अथवा अनुवासन देवे । तदनन्तर तनि दिन पीछे शरीर को अच्छी तरह से तैल से सिक्त करके कुछ खराकर निरुहण वरित देवे । निरुहण के प्रत्यागमन करने पर दोप और बलकी परीक्षा करके जागल मांसरस का भोजन करावे । और अनुवासन के पांच होने पर उसीदिन रात्रि के समय थोड़ा भोजन कराके अनुवासन वरित देवे ॥

शीतेव सन्ते च दिवानुवास्यो रात्रौ शरत् प्री-  
ष्म घनागमे पुताने वदोपान्परिरक्षिता यो-  
स्नेहस्पपाने परिकीर्तिताः प्राक् ॥

अर्थ—शीत और वसन्त ऋतु में दिन के समय और शरद, ग्रीष्म और वर्षा में रात्रि के समय अनुवासन देनी चाहिये । स्नेहपान में जो २ दोप निरूपण किये गये हैं वेही सब अनुवासन में भी लागने चाहिये ॥

प्रत्यागतचाप्यनुवासनीये दिवा मयेदं य-  
थिताय भोज्यम् । सायञ्च भोज्यं परतश्च-  
देवाय हेऽनुवा स्योऽहनि पञ्चमे वा ॥

अर्थ—अनुवासनीय तैल के प्रत्यागमन करने पर रात्रि में उपवास कराके प्रातः काल भोजन करावे । और अनुवासनीय तैल के दिन में प्रत्यागमन करने पर रात्रि में भोजन करावे, पश्चात् तीन दिन पीछे वा पांच दिन पीछे अनुवासन देवे ॥

अथ हे देवाय पञ्चमे वा दद्यान्निरुहं दनु-  
वासनं वा । एकं तथा त्रीन कफजं शिकारे पि-  
चात्मके पञ्चतुसप्तवारि ॥ वातेन चैकाद-  
शवारुणं च त्रीन युग्मान् कुशलो विदध्यान्

अर्थ—इस तरह दोषों के अनुसार निरुहण से दो दिन पीछे, तीन दिन पीछे अथवा पांच दिन पीछे, अनुवासन वरित देवे। कफज विकार में एक वा तीन वरित, पित्तज विकार में, पांच वा सात, वातज विकार में नौ वा ग्यारह वरित देवे। इस तरह ऊना वरित देवे जैसे एक, तीन, पांच, सात। परन्तु दो चार, छः आठ आदि न देवे।

नरो विरिक्तस्तु निरुहदानम् । विवर्जयेत् सप्तदिनान्यवश्यम् ॥ शुद्धो विरेकनानि रुहदानम् । तद्ध्यस्तशून्यं विकृपेच्छरीरम्

अर्थ—विरेचन कराने के पीछे सात दिन तक निरुहण वरित देना ठीक नहीं है क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध हुए मनुष्य को निरुहण का देना उस के शून्य शरीरका आकर्षण कर लेता है।

वस्ति के गुण ॥

वस्तिर्वयस्यापि तासु खायुर्बलाग्निमेधा स्वरवर्णकृच्च । सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयु नाम् । निरत्ययः सर्वगदापहश्च । विट ह्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षी स्थिरत्वकृत् शुक्रसुतप्रदश्च ॥

अर्थ—वस्ति वय को स्थापित करती है सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्ण को बढ़ाती है। बालक, वृद्ध और युवा पुरुषों के सम्पूर्ण कार्य करनेवाली है। इसमें कोई उपद्रव नहीं होता है यह संपूर्ण रोगों के नाश करनेवाली है। विष्टा मित्त, मूत्र, पायु और कफ को निकालती

है दृढ़ता बढ़ाती है, वीर्य और सन्तान देनेवाली होती है ॥

निरुहणवस्ति के गुण ।

विश्वकृष्यितंदोपचर्यतिरस्याः

सर्वान्विकारानुशमयेन्निरुहः ॥

देहो निरुहेण विशुद्धमार्गं सस्नेहनं वर्णवल्प्रदः

अर्थ—निरुहवास्ति संपूर्ण देहके दोषों को निकालकर सम्पूर्ण विकारों को शान्त कर देती है। निरुहण द्वारा श्रोतः समूह के शुद्ध होने पर स्नेहन कर्म किये जाने पर वर्ण और बल बढ़ता है।

अनुवासन के गुण ।

नान्वासनात्किञ्चिदिहास्तिकर्मपरं विशेपेण समीरणान्ते । स्नेहेन रौक्ष्यं लघुबां गुरुत्वादौष्ण्याच्च शैत्यं पवनस्य हृत्वा ॥ तैलं ददत्याशु मनः प्रसादं धीर्यं बलं वर्णमथाग्निपृष्टम् । मूले निपिक्तो हियथाद्रुमः स्यात् श्रीलच्छदः कोमलपल्लवाग्रः काष्ठं महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवा-

सनेन ॥

अर्थ—वायु के दूर करने के लिये अनुवासन से अधिक और कोई उत्तम कर्म नहीं हो क्योंकि तेल की चिकनाई ॥ वायुकी रुक्षता, भ्रंशपन से लघुता और उष्णता से शीतलता दूर हो जाते हैं ॥ तेल शीघ्र ही मन को प्रसन्न करता है और वीर्य बल, अग्नि पुष्टि को बढ़ाता है। जैसे वृक्षकी जड़ में जल सींचने से उसके प्रते हरे, शोभायुक्त और पत्तों के अग्रभाग

कोमल होजाते हैं और समय पाकर बड़ी होकर बहुत से फल पुत्र देने लगता है इसीतरह मनुष्यों के लिये अनुवासन क्रिया है स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपि येषां च येऽपि चरुणभग्नः ॥ येषां च शाखांसुचरन्ति वाताः शस्तो विशेषेण चते पुवस्तिः ॥ आध्यापने विग्रथिते पुरीषे शूले च भक्ता न भिनन्दने च । एवं प्रकाराश्च भवन्ति कुसौ ये चामयास्ते पुचवीस्तरिष्ठः ।

अर्थ—जो मनुष्य वायु से स्तब्ध, संकुचित पंगु तथा रोगों से भग्न है, जिनके हाथ पावों में वायु विचरती है, उन के लिये वस्ति बहुत हितकारी होती है । जिसको अपरा हो, जिसके विष्टा में गुठले पड़ गये हों, जिसके शूल हो, जिसकी भाजन में अरुचि हो, तथा जिसकी कुक्षि में अन्यथा तज रोग हों, उन सब के लिये वस्ति अत्यन्त हित है । याश्च स्त्रियां वातकृतोपसर्गाद्भर्भनशृङ्गान्ति नृभिः समेताः ॥ क्षीणेन्द्रिया ये च नराः कृशाश्च वस्तिः प्रशस्तः परमश्च ते पु । उष्णा भिभूते पुवदन्ति शीतान् शीताभिभूते पु तथा सुखोष्णान् ॥ तत्प्रत्यनीकौ पथसं प्रयुक्तान् सर्वत्र वस्तिनः प्रविभज्य युञ्ज्यात् ॥

अर्थ....जिन स्त्रियों के वातज रोगों के कारण पुरुष के सहवास से गर्भ नहीं रह सकता है और जो पुरुष क्षीणेन्द्रिय और कृश हैं, उन के लिये वस्ति बहुत ही हित है । उष्ण प्रवाण रोगों में शीत वीर्य वाली औषधों के योग से और शीताभिभूत रोगों में उष्ण औषधों के योग से वस्ति देवै ।

अर्थात् जैसा रोग हो उसके प्रतिकूल औषधों के संयोग से वस्ति देवै ।

वृंहणवस्ति के अयोग्यव्यक्ति ॥ नवृंहणीयान्विदधीतवस्नी न्विशोधनी ये पुगेदपुवद्यः ॥ कुष्ठप्रमेहादिपुमदुरे पु नरे पु ये चापि विशोधनीयाः ॥

अर्थ....वैद्य को उचित है कि जो रोग संशोधन के योग्य हैं उन में वृंहण वस्ति न देवै ॥ कुष्ठ और प्रमेहादि रोगों में मूद संसृष्ट रोग में तथा अन्य संशोधनीय रोगों में वृंहण वस्ति न देवै ॥

संशोधन वस्ति का निषेध । क्षीणक्षतानाम् च विशोधनीया न शोषिणानो भ्रश दुर्वलानाम् ॥ न मूर्च्छितानान् विशोधितानाम् येषां च दोषे पुनि वदवायु अर्थ....क्षीणक्षत रोगी, शोषरोगी अत्यन्त दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त रोगी, तथा संशोधित मनुष्य को संशोधन वस्ति न देवै ॥ तत्रा जिनके दोषों में वायु निवृद्ध हो, उन्हें भी संशोधन वस्ति न देवै ॥

वायुजन्य रोगों में वस्ति को प्रधानता । शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा । मर्मोर्ध्व सर्वात्रयवांगजाश्च । ये सन्ति ते पांनतुक् शिचदन्यो । वायोः परं जन्मानि हेतुरस्ति ॥

विष्णुत्रापि चादिमलाचयानाम् । विशेषसंहारकरः सयस्मात् । तस्यातिवृद्ध स्पृशमायनान्य द्रुस्तेनृते भेषजगरितिकिञ्चित् तस्माच्चिकित्सा र्द्धमिति श्रुवन्ति ॥ सर्वोच्चिकित्सायाश्चिस्तिमेके ।

अर्थ—जो रोग हाथ पांवों में होते हैं जो रोग कौष्ठ में है, जो मर्म स्थान में है, जो ऊर्ध्वगामी है, जो संपूर्ण अंगों में होते हैं वा अवयवों में होते हैं, ऐसे सब रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु ही है । वायुही विष्टा, मूत्र और पित्तादि दोषों का संचय और विक्षेप करती है । इस बड़ी हुई वायु के शमन करने के लिये वास्तिके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है, इस लिये वास्तिके को चिकित्सा कहते हैं किसी किसी के मत में वास्तिके को संपूर्ण चिकित्साही कहते हैं ।

सम्यक् मयुक्त वास्तिके लक्षण ।  
नाभिप्रदेशे कटिपार्श्वकुक्षिगत्वाशकुक्षोप  
त्रयं विपोत्थय । संस्नेहकायं सपुरीषदोषः  
सम्यक्मुखेनेति चयः स वास्तिके ॥

अर्थ—नाभि प्रदेश में कमर, पसली और कूख में जाकर मलदोषके समूह को मथित करके तथा शरीर को स्निग्ध करके पुरीष दोष को साथ लेकर लौटती है उसे असम्यक् प्रयुक्त वास्तिके कहते हैं । ( यहां पाठान्तर भी है ) नाभिप्रदेशं च कटीश्च गत्वा कुक्षिं समालोच्य पुनश्च पार्श्वम् । संस्नेहकायं दिथिलंश्च कृत्वा दोषान्पुरीषं प्रथितं विमथ्य ॥ स्वसक्तवेगः सपुरीष दोषः प्रत्यागतो वास्तिरतिप्रशस्तः । )

सम्यक्प्रयुक्तनिरुहके लक्षण ।  
ममृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं । रुच्यग्रिवृद्धया  
पायलाघवान्नरोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता  
च वलञ्चतत्स्यान्निरुहो लक्षणम् ॥

अर्थ—निरुहणवास्तिके के सम्यक् प्रयोग होनेपर मल, मूत्र और अधोवायु का परित्याग होता है रुचि और अग्नि की वृद्धि होती है । आमाशय, ग्रहणी, मलाशय और मूत्राशय में हलकापन होता है । रोगों की शान्ति होती है, दोष प्रकृतिस्थ होजाते हैं और बल भी बढ़ता है ॥

असम्यक्निरुहके लक्षण ।  
स्याद्भुविच्छरो हृद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफः प्र  
तिश्यायविकर्तिका च । हृल्लासिकामा  
रुतमूत्रसंगः ॥ श्वासो न सम्यक्चनिरु  
हितस्य ॥

अर्थ—निरुहणवास्तिका के सम्यक् प्रयोग न होनेपर शिर, हृदय, गुदा, कूख और लिंग में शूल होता है । सूजन, प्रतिश्याय और विकर्तिका होती है । तथा हृल्लास, वातविवन्ध, मूत्रविवन्ध, और श्वास भी उत्पन्न होते हैं ।

अतिनिरुहके लक्षण ।  
लिंगयदेवाभिचिरेचितस्य  
भवेत्तदेवातिनिरुहितस्य ॥

अर्थ—जो लक्षण विरेचन के अतियोग के होते हैं, वही अत्यन्त निरुहित के होते हैं ॥

सम्यक्अनुवासितके लक्षण ।  
प्रत्येत्यसक्तं सशकृच्चतैलं रक्तं दिशुद्धी  
न्द्रियसंभसादः । स्वप्नानुवृत्तिर्लघुता च  
लञ्चस्रग्राथवेगाः स्वनुवासिते स्युः ।  
अर्थ—सम्यक् अनुवासन होनेपर तेल विना रुकावट के विष्टा को लेकर बाह

आजाता है । रक्तादिधातु और पाँचों बुद्धीन्द्रिय प्रकुलित होजाती है, निद्रा आजाती है । देह में हलकापन और बल बढ़ता है और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति अच्छी रीति से होती है ॥

असम्यक् अनुवासितकेलक्षण ।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वे पुरुषसुखरश्मिमात्रम् । ग्रहाश्चाविष्मूत्रसमीरणानाम् असम्यगेतान्यनुवासितस्य ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ति के ठीक न होने पर शरीर के नीचे के भाग में, उदर में बाहु में, पीठ में, और पसलियों में दर्द होता है । शरीर रूखा और खरदरा होजाता है । बिटा, मूत्र और वायु का विवन्ध होता है ॥

अत्यनुवासितकेलक्षण ॥

हृष्टाममोहकमसादमूर्च्छा

विकर्तिकाचाल्यनुवासितस्य ।

अर्थ—अनुवासन वस्ति का अतियोग होने से हृष्टास, मोह, क्लान्ति, अवसाद, मूर्च्छा और पेट में मरोड़ा होता है ॥

यस्येह यामाननुवर्तते त्रीन् स्नेहान्नरश्पातु सविशुद्धदेहः । आश्विनानोऽन्यस्तु पुनर्विधेयः स्नेहान्नस्नेहयतेऽतिष्ठन् ॥

अर्थ—अनुवासन का तेल शरीरमें तीन पहर तक रहने से देह शुद्ध होता है । तेल के शीघ्र निकल जाने पर फिर अनुवासन देना चाहिये, जो तेल शरीर में नहीं ठहरता है वह स्निग्ध नहीं करसका है ।

वस्तियों की संख्या ॥

त्रिंशत्स्पृताः कर्मसु वस्तयो हि कालस्ततोऽर्द्धेन ततश्च योगः । सान्वासनाद्वादशैव निरूहाः प्राक् स्नेह एकः परतश्च पञ्च ॥ कालेत्रयोन्तः पुरतस्तथैकः स्नेहानिरूहान्तरिताश्च पट्स्त्रयोऽयोगे निरूहा ज्ञाप्य एव देयाः स्नेहाश्च पञ्चैव परादि मध्याः ॥

अर्थ—कर्मवस्ति तीस हैं कालवस्ति पन्द्रह हैं । अनुवासन और निरूहण बारह २ हैं इन वस्तियों के देने का क्रम यह है कि ये वस्तियाँ स्वेदन, वमन, विरेचन और नरय कर्म के भीतरही इस रीति से दी जाती हैं कि स्नेहन और स्वेदन के पीछे एक स्नेह वस्ति देकर वमन करावै, फिर एक स्नेहन वस्ति देकर विरेचन करावै पीछे एक बार स्नेह वस्ति और एक बार निरूह वस्ति देकर इस क्रम से बारह निरूह वस्ति और बारह स्नेह वस्ति देकर नश्यकर्म करावै । पीछे पाँच स्नेहन वस्ति देवें तथा एक स्नेहन वस्ति पहिले दी गई थी इसतरह सब मिलकर तीस वस्ति हुईं इनको कर्मवस्ति कहते हैं वस्ति के ऊपर वस्ति न दैनी चाहिये, एक २ वस्ति के पीछे पे-यादि क्रम का पाठन कराता रहे । काल वस्ति पन्द्रह होती है, ये बर्षा ऋतु में वायु की शान्ति के लिये दी जाती हैं । कालवस्ति के प्रयोगकी यह रीति है कि प्रथमही एक स्नेह वस्ति देवें, फिर एक निरूह इसी क्रम से बारह वस्ति देवें, अन्त में तीन स्नेहन वस्ति एक के ऊपर एक देवें । योग वस्ति आठ

होती है, ये वाजी कारण के लिये दी जाती हैं। इस में पहिले और पीछे एक एक अनुवासन वस्ति देवे बीच में तीन निरुहण और तीन अनुवासन देवे ॥

त्रीनपञ्चराहुश्चतुरोऽथपद्वावाताधिके  
भ्यस्त्वनुवासनान्यान् । स्नेहान्प्रदाया  
शुभिपग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो  
निरुहम् ॥

अर्थ—वाताधिक्य रोगों में तीन, पांच, चार या छः अनुवासन वस्ति देकर स्रोतों के शुद्ध करने के लिये निरुहण वस्ति देवे।

शिरोविरेचन की विधि ॥

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणस्निग्धंतुतैस्वेदि  
तप्तुत्तमांगम् । विरेचयेन्निद्रिरथैकशोवाव  
लंसमीक्ष्यत्रिविधमलानां ॥

अर्थ—धमन विरेचनादि से शरीर के शुद्ध होने पर शिरोविरेचन के लिये पूर्वोक्त तेल से मस्तक को स्निग्ध और स्निग्ध करे, इस तरह रोगी का घल और तीनों दोषों को देखकर तीन, दो या एक बार शिरोविरेचन देवे ॥

सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण ॥

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणाम् ।

स्रोतोविशुद्धिश्चभवेद्दिशुद्धे ॥

अर्थ—सम्यक् रीतिसे शिरोविरेचन होने पर वक्षःस्थल, सिर और इन्द्रियों में हल कांपन होता है और सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं

असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण ॥

गलोपलेपःशिरसोयुक्तं ।

निष्ठीवनंचाप्यथदुर्विरिक्ते ॥

अर्थ—अच्छी तरह शिरोविरेचन होने पर कंठ में कफकी लिहसावट, सिर में भारापन और मुख में थूक भरना यह लक्षण होते हैं ॥

शिरोविरेचन का अति योग ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणाक्षितोदा ।

दत्यर्थशुद्धस्तिमिरेचपश्येत् ॥

अर्थ—शिरोविरेचन का अतियोग होने पर माथा, आंख, कनपटी और कान में मुई छिदने की सी पीड़ा होती है और रोगी की आखों के साम्हने अंधेरा सा छाजाता है ॥

वस्तिप्रयोग के अन्य नियम ॥

स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवश्चस्निग्धस्यतीक्ष्णन्तु  
पुनर्नयोगे । इत्यातुरस्यस्थसुखमयोगे  
बलायुपोष्टिद्विकृदामयघ्नः ॥ कालस्तुव  
स्त्यादिपुयातियावां स्तावान्भवेद्द्विः

परिहारकालः ॥

अर्थ—शिरोविरेचनके अतियोगादि में रोगी को स्निग्ध करके मृदु और द्रव तर्पण देवे। इस में तीक्ष्ण द्रव्योंका संयोग न करे रोगी और स्वस्थ पुरुष को ऐसे प्रयोग होने से बल और आयुकी वृद्धि होती है और रोग का नाश होजाता है। वस्त्यादि कर्मों में जितना समय लगता है उस से दुगुना काल पेयादि कर्मके पालन में लगना चाहिये ॥

पंचकर्म के पीछे वाजित कर्म ।

अत्याशनस्यानवचांसियानम् स्वमेदि  
वामैशुनवेगरोधान् । शीतोपचारातपशो-

करोषां स्तयजेदकालाहितभोजनञ्च ॥

अर्थ—पंचकर्मसे पीछे अति भोजन, अत्यन्त बैठना अत्यन्त सोलना, अत्यन्त चलना दिनमें सोना, मैथुन, मलग्वाादिके उपस्थित वेगों का अवरोध, शीतोपचार, धूप, शोक, रोग अकाल भोजन और अहित भोजन ये सब त्याग देने चाहिये ॥

वद्वेप्रणीतिविषमेचनेत्रे ।

मार्गेतधार्षः कफविद्विविबन्धे ॥

नयातिवस्तिनसुखं निरेति ।

दोषावृतोऽल्पोयं दिवाल्पवीर्यः ॥

अर्थ—वस्तिके, नल का मुख बद्ध वा विषम प्रणीत हो अथवा अर्शका मार्ग कफ या विष्टा से बन्द हो, उस में वस्ति न सहज में प्रवेशही कर सकती है और न आही संकती है । वस्ति का मार्ग यदि दोनों से आवृत हो वा वस्ति का द्रव्य अल्प वा निर्वीर्य तैलादि से बना हो तौ भी ऊपर कही हुई दशा होती है ॥

मासेतुयर्चोऽनिलमूत्रवेगे वातेविद्वेऽल्पवलेगुदेवा । अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदांपकोष्ठे प्रणीतमात्रः पुनरेति वस्तिः ॥ मेदः कफाभ्यामनिलो निरुद्धः शूलांगसृष्टि श्रयधून् करोति ॥ स्नेहन्तुयुञ्जन्ननुषस्तु तस्मै सम्बर्धयत्वेव हितानुविकारान् ॥

अर्थ—विष्टा, अधोवायु और मूत्रका वेग उपस्थित हो, वायुकी वृद्धि हो, गुदा अत्युत्पन्न हो कोष्ठ मृदु हो और वस्तिद्रव्य अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण हो तौ वस्ति प्रवेश करते ही लोट आती है । मेद और

कफसे रुकी हुई वायु शूल 'अंगसृष्टि ( सुन्ता ] और सूजन उत्पन्न करती है । इस को अबुध वैद्य वात विकार समझ कर अनुवासनादि प्रयोग करता है । तौ इससे रोगों की वृद्धिही होती है ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाः

परस्परेणावगृहीतमार्गाः ॥ सन्दृष्टिताधातुभिरेव चान्यैः ॥ स्वैर्भेषजैर्नोपशमं वृजन्ति ॥

सर्वश्चरोगप्रशमाय कर्म हीनातिमात्रं विपरीतकालम् । मिथ्योपचारश्च न तं विचारं । शान्तिनयेत्पथ्यमपि प्रयुक्तमिति

अर्थ इस तरह एक दोष द्वारा दूसरे दोष का मार्ग रुक जाने पर अन्य २ रोग प्रकट हो जाते हैं । अन्य धातुओं से दूषित दोष रुद्ध मार्ग होकर अपनी २ औषधों से शान्त नहीं होते हैं । रोगी के पथ्य मेधन करने पर भी यदि रोग की औषध अच्छी तरह से प्रयुक्त न हुई हो, हीन, या अधिक वा मिथ्या प्रयुक्त हुई हो वा विपरीत कालमें प्रयुक्त हुई हो तौ रोगकी शान्ति नहीं होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्नानिमान्द्रादशपञ्चकर्मण्युद्दिश्यसिद्धाविद्वकल्पनायाम् । प्रजादितार्थभगवान् महार्यान् मम्यकृजगादार्पवरोऽत्रिपुत्रः ।

अर्थ—इस कल्पना सिद्धि नामक अध्याय में भगवान् आश्रय ने प्रजा के हित के लिये वमन विरेचनादि पंच कर्म सम्बन्धी बारह गूढ प्रश्नों का उत्तर दिया है ॥

इति श्री चरकसंहितायां सिद्धिस्थाने

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथानःपञ्चकर्मायांसिद्धिव्याख्यास्यामः

इतिहस्तादभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम पञ्चकर्माय सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ।

येपापस्मात्पञ्चकर्माण्यभिवेशनकारयेत्  
येपावकारयेद्यानितत्सर्वसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—हे अभिवेश ! जिन के विषयमें पंचकर्म करने के योग्य नहीं है और जिन के विषय में पंचकर्म करने के योग्य हैं अब हम उनकी व्याख्या करेंगे ।

पंचकर्मकेअयोग्यव्याक्ति ॥

चण्डःसाहसिकोभीरु कृतघ्नोव्यग्रएवच  
सद्वैद्यनृपतिद्वेषातद्विष्टःशोकपीडितः ॥

यादृच्छिकोमुग्ध पुंसचबिहीनःकरुणैश्चयः  
वैरीवैद्यविदग्धश्चश्रद्धाहीनःसुशक्तितः ॥

भिपजामविधेयश्चनक्रम्याहिभिपग्विदा  
एतानुपाचरन्वैद्योबहून्दोषानवाप्नुयात् ॥

एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यान्राःसर्वैरुपक्रमः ॥  
अवस्थाप्रविभज्यैपावज्यैकार्यचवक्ष्यते ॥

अर्थ—चण्ड, साहसी, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सदैवद्रोही, राजद्रोही, विद्विष्ट, शोकपीडित, यदृच्छाचारी, मुग्ध, करुणहीन, वैरी, वैद्याभिमानी, श्रद्धाहीन, शंकेतचित्त, वैद्य की पताई हुई यात का न करनेवाला ये सब पंचकर्मके योग्य नहीं हैं । ऐसी की चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त पापका भागी होता है । इनको छोड़कर अन्य मनुष्य सम्पूर्ण चि-

कित्साओं के योग्य होते हैं । इनमें अवस्था भेद से जो जो कार्य वर्जनाय हैं उनकी व्याख्या करते हैं ।

वमनकेअयोग्यव्याक्ति ।

अच्छर्दनीयास्तावत्तत्तक्षीणातिस्थूलकृ  
शवालचृद्धदुर्बलश्रान्तपिपासितक्षुपितक  
र्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्याया  
मचिन्तामशक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृत  
कोष्ठदुश्छर्दनीध्वरक्तपित्तमंसकच्छर्दिन्  
ध्ववातास्यापित्तानुवासितहृद्रोगोदावत्त  
मूत्राघातप्लीहगुल्मोदराप्लीहास्वरोपधा  
ततिमिरशिरःशंखकर्णाक्षिपाश्वशूलार्ताः

अर्थ—क्षतक्षीण, अतिस्थूल, कृश, वालक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, व्यायाम, क्षुधा-  
र्त, परिश्रम से थका हुआ, वास से थका हुआ, मार्ग से थका हुआ, उपवाससे क्लान्त  
मैथुन, अध्ययन, व्यायाम, चिन्ता इन से  
थका हुआ, क्षाम, गर्भिणी, सुकुमार, संवृत-  
कोष्ठ ( जिसको सहज में वमन न होसकी  
हो, दुश्छर्दनीय, ऊर्ध्वगामी, रक्तपित्त से  
पीडित, वमनरोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आस्था-  
पित्त [ जिसको आस्थापन योस्त दीगई हो ]  
अनुवासित, हृद्रोगी, उद्वारवतरोगी, मूत्र-  
घातग्रस्त, प्लीहारोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी  
अप्लीहारोगी, स्वरभंगरोगी, तिमिर रोगी,  
शिरोरोगी, कनपटी के रोगवाला, कर्णरोगी  
नेत्ररोगी और पसली के दर्दवाला । ये सब  
वमन करने के अयोग्य होते हैं ।

सूकररोगियोंकेअवम्यहोनेकाहेतु ॥

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनात्रक्वातिमृष्टतिः  
स्यात् । क्षीणातिस्थूलकृपवालवृद्धदुर्ब



लानामौपधवलासहत्वाप्राणोपरोधः ॥  
 श्रान्तपिपासितक्षुधितानांचतद्वत् । कर्म  
 भाराध्वहतोपवासमैधुनाध्ययनव्याया  
 मचिन्ताप्रसक्तक्षामाणारौक्ष्याद्वातरकच्छे  
 दक्षतक्षयभयंस्यात् । गर्भिण्यागर्भव्या  
 पदामगर्भभ्रंशाच्चदारुणरोगप्राप्तिः ।  
 सुकुमारस्यहृदयविकर्पणादूर्ध्वधोवारु  
 धिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयो  
 रतिमात्रप्रवाहनादोषाःसमुत्क्रिष्टाःकोष्ठे  
 जनयन्त्यन्तर्विषपस्तम्भजाड्यवैचिंत्यम  
 रणंवा । ऊर्ध्वरक्तपित्तनिष्ठदानमुत्तिष्ठ  
 प्यमाणानहरेद्रक्तचातिप्रवर्तयेत् । प्रसक्त  
 छर्दिपस्तद्वर्द्धवातास्थापितानुवासिता  
 नामूर्धवातातिप्रवृत्तिः । हृद्रोगिणेहृदयो  
 परोधः । उदावर्तिनांघोरतरउदावर्तः  
 स्याच्छीघ्रतरहन्ता । सूत्रघातादिभिरा  
 र्त्तानांतीव्रतरःशूलप्रादुर्भावः तिमिराणां  
 तिमिरातिवृद्धिः । शिराःशूलादिपुगूला  
 तिबृद्धिः । तस्मादेतेनवम्याः ।

अर्थ....क्षतरोगी को वमन कराने से  
 उरःभ्रत और भी अधिक बढ़जाता है जिस  
 से रक्त अधिक निकलने लगता है शीण,  
 अतिस्थूल, कृश, पालक, वृद्ध और दुर्बल  
 वमन के वेगको सहनही सकते हैं, इस से  
 इनको वमन कराने से प्राणों का अवरोध  
 होता है । श्रान्त, पिपासित और क्षुधितको  
 भी इनहीं कारणोंसे वमन नहीं कराईजाती  
 है । परिश्रमसे व्यथित, भारवहन से थकित,  
 मार्ग से थकित, उपवासहृत, मैधुन शौल,  
 अध्ययनशौल, व्यायामशौल, चिन्ता प्रसक्त,

और क्षामरोगियों को वमन करानेसे रूक्षता  
 के कारण वात और रक्त प्रकुपित होते हैं ।  
 कण्ठनाली आदिमें छिद्र होना और उरःक्ष-  
 त होना इनका भय रहता है । गर्भिणी  
 को वमन कराने से गर्भव्यापत् गर्भस्त्राव तथा  
 गर्भसंबंधी अन्य अन्य रोगभी होते हैं ।  
 सुकुमार को वमन करानेसे उसका हृदय  
 विकर्षित होजाता है इससे ऊर्ध्वमार्ग वा  
 अधोमार्गसे रुधिर अत्यन्त निकलने लगता  
 है । संवृत कोष्ठ और दुश्छर्दनीय मनुष्यको  
 वमन करानेसे वमन तो ठीक होती नहीहै  
 और वह जोर मारकर वमन करनेकी चेष्टा  
 करता है इससे दोष कोष्ठ को उत्क्रेशित कर  
 के विसर्ग, स्तम्भता, जडता, वैचित्ति  
 [ मन में उद्वेग ] और मृत्यु आदि रोग  
 उत्पन्न करते हैं । ऊर्ध्वगामी रक्त पित्तवाले  
 को वमन करानेसे उदानवायु ऊपरको उठ-  
 ती है और उससे प्राणों का नाश और  
 रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।  
 जिसको वमनरोग हो उसको वमन करानेसे  
 भी उक्त दशा होती है । ऊर्ध्व वात रोगी,  
 अनुवासित और आस्थापितको वमन कराने  
 से ऊर्ध्ववात की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।  
 हृद्रोगी को वमन कराने से हृदय का उध-  
 रोध होता है ॥

उदावर्त रोगी को वमन कराने से घोर  
 तर उदावर्त होता है जिससे रोगी शी-  
 घ्रही मरजाता है । सूत्रघात, प्लीहा, गुल्म,  
 उदर, अग्रान्त और स्वर भंग वाले को व-  
 मन कराने से अत्यन्त तीव्र शूल उत्पन्न

होता है । तिमिर रोगीको वमन कराने से तिमिर की वृद्धि होती है ॥ शिरःशूल शंखशूल, और पार्श्वशूलवालेको वमन कराने से शूल की अत्यन्त वृद्धि होती है इससे ऊपर लिखे सब रोगों में वमन कराने का निषेध है

वमनका अप्रतिषेधः ॥

सर्वेष्वपि सख्येतेष्वपि विषगणैर्विरुद्धाभ्य  
वहारामकृतेष्वप्रतिसिद्धं क्षीघ्रतरकारि  
त्वादेषाम् ॥

अर्थ—ऊपर लिखे हुए सम्पूर्ण रोगों के होने पर भी यदि विषजनित, विरुद्ध भोजन जनित, गर जनित या आमदोषजनित उपद्रव का प्रादुर्भाव होता वमन करानेका निषेध नहीं है । कारण ये हैं कि ये रोग आशुकारी होते हैं ॥

वमनीय व्यक्तिः ॥

शेषास्तु वम्याः पीनसकुष्ठनवज्वरराज्य-  
क्ष्मकासश्वासगलगण्डश्लेष्मपदमेहम-  
न्दाग्निविरुद्धजीर्णाग्निविशूचिकालसक-  
विषगणपीतदण्डिग्रविद्धाधःशोणितपि-  
त्तप्रसेकहृत्लासांरोचकाविपाकापच्यप-  
स्मारोन्मादातिसारशोफपाण्डुरोगमुख-  
पांकदुष्टस्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयो विशे-  
षेण रोगाद्यायोक्ताश्चेतेषु द्विवमनप्रथा-  
नतममित्युक्तं केदारसेतुभेदेशाल्यादि-  
शोषदोषविनाशवत् ।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगियों से अन्य वमनके योग्य होते हैं । पीनस, कोष्ठ, मवीन ज्वर, राज्यक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलगण्ड, श्लेष्म, मेह, मन्दाग्नि

विरुद्ध भोजन, दुष्पाच्यभोजन, विस्मृ-  
का, अलसक, विषपान, गरपान, काटने  
का विष, दिग्ध शिराआदि का व्यर्थ, अ-  
धोगत रक्तपित्त, कफप्रसेक, धर्श, हृ-  
त्लास, अरुचि, अविपाक, अपच, अपस्मार,  
उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुख-  
पाक, दुष्टस्तन्यादि धात्रीरोग, और वि-  
शेष करके महारोगाद्याय में कहे हुए बीस  
प्रकार के कफविकार । ये सब वमन सा-  
ध्य हैं । जैसे खेत की मेंढ तोड़ देने से  
जल के निकल जाने के कारण खेती सू-  
ख जाती है, इसी तरह से वमन द्वारा  
दोषों के निकल जाने के कारण सब रोग  
नष्ट होजाते हैं ॥

अचिरेभ्य रोगी ॥

अचिरेभ्यस्तु सुभगक्षतगुदमुक्तनालाधो-  
भागरक्तपित्ताविलंघितदुर्बलेन्द्रियाल्पाग्नि-  
निरुद्धकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदा-  
त्यथिताध्मानशल्यादित्याभिहतात्तिस्नि-  
ग्धरुक्षदारुणकोष्ठः क्षतादयश्च गम्भी-

र्यन्ताः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी विरेचन  
के योग्य नहीं होते हैं । यथा—सुकुमार,  
क्षतगुद [ जिनकी गुदा में घाव हो ], मु-  
क्तनाल [ जिनका मलद्वार शिथिल हो-  
गया हो ], अधोगामी रक्तपित्त रोगी,  
उपवास कर्षित, दुर्बलेन्द्रिय, मन्दाग्नि, नि-  
रुहित [ जिसे निरुद्धपरिस्थिति दी गई हो ],  
जो कामादि हेतुओं से व्यग्रमन हो, जो  
अजीर्ण रोग से पीडित हों, जिसको न-

वीन उग्र हो, जिसको मदात्यय रोग हो  
जिसको अकरा हो, जो शय्य से पीडित हो  
जिसके चोट लगिहो, जो अतिस्निग्ध वा अ-  
तिरूक्ष हो, जिसका कोष्ठ दारुण हो तथा वमन प्रक-  
रणमें कृहे हुए क्षतसे गर्भिणी पर्यन्त अर्थात्  
क्षतरोगी, क्षीणरोगी, अतिस्थूल, अतिरूक्ष,  
बालक, वृद्ध, दुर्बल, धकित, पिपासित,  
क्षुधित, श्रमछान्त, भाराकान्त, मार्गछान्त  
उपवास कर्पित, मैथुनरत, अध्ययनरत,  
व्यायामशील, चिन्ताप्रस्त, क्षाम और गर्भिणी  
इन सबको विरेचन न देना चाहिये ।  
उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होने का कारण  
तत्र भूभगस्य सुकुमारोक्तो दोषः स्यात् ॥  
क्षतगुदस्य क्षते गुदे वायुः प्राणोपरोधकरीं  
घरां रुजां जनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या  
हृन्पात् । अथो भागरक्तपित्तिना तद्वदेव ॥  
विलंघितदुर्बलेन्द्रियाऽल्पाग्निनिरूढा औ-  
पधवेगं न सहेरन् । कामादि व्यग्रमनसो  
न प्रवर्तते कृच्छ्रेण वा प्रवर्तमानमधोगदोषा  
न कुर्यात् । अजीर्णिन आमदोषः स्यात्  
न बज्ज्वरस्यापि पक्वान् दोषान्न निहरेत्वा  
तमेव च कोपयेत् । मदात्ययितस्य मद्यक्षी-  
णो देहवायुः प्राणोपरोधकुर्यात् ॥ आ-  
ध्मातस्त्वभायमानस्य वा पुरीषकोष्ठे नि-  
चितो वायुर्विसर्पन् स हसानां हंती घ्नतं रं मर-  
णं वा जनयेत् ॥ सशल्यादिताभिहतयोः  
क्षते वायुराश्रितो जीवितं हि स्यात् ॥ अति-  
स्निग्धस्यातियोगभयं भवेत् ॥ रूक्षस्य  
वायुरंगग्रहं कुर्यात् ॥ दारुणकोष्ठस्य  
विरेचनोद्धता दोषा हृच्छूलपर्वभेदानां हा-

त्रमर्दलर्दमूर्च्छाक्लृमान् जनयित्वा प्राणा  
न हन्त्युः ॥ क्षतादीनां गर्भिष्यन्तानां छर्द-  
नोक्तो दोषः स्यात् ॥ तस्मादेतेन विरेच्याः  
अर्थ—सुकुमार मनुष्य को विरेचन देने  
से हृदय कर्पित होता है । गुदा में घाव  
वाले को विरेचन देनेसे प्राणोपरोधकारी  
अत्यन्त तीव्र वेदना होती है मुक्तनाल  
मनुष्यको अत्यन्त विरेचन देनेसे प्राणों  
की हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्त  
वाले को विरेचन देने से रक्तकी अत्यन्त  
प्रवृत्ति होती है । उपवास कर्पित, दुर्बलेन्द्रिय  
मन्दाग्नियुक्त और निरूहित औषध के  
वेग को नहीं सह सकते हैं । जो मनुष्य  
कामादि वेगों से दुश्चित हो रहे हैं उनको  
विरेचन से दस्त नहीं आते हैं और जो काठिनता  
से दस्त आते हैं । तौ अधोमार्ग में संपूर्ण  
दोष कुपित होजाते हैं अजीर्ण वाले को  
विरेचन देने से आमदोष की उत्पत्ति होती  
है ॥ नवीन उग्र में विरेचन देने से आम-  
दोष नहीं निकलते हैं किन्तु वात कुपित  
होजाती है मदात्ययरोगी को मद्य से क्षीण  
देह में विरेचन देने से वायु प्राणों को रोक  
देती है जिसके अकरा हो वा जो आध्माय  
मान हो उसे विरेचन देने से मलाशय में  
संचित वायु फैलकर शीव्रही अत्यन्त तीव्र  
आनाह वा मृत्यु को उपस्थित करती है श-  
ल्यादित और आहत व्यक्ति के घावमें वा-  
यु रहती है उस दशा में यदि विरेचन दि-  
याजाय तौ प्राणनष्ट होजाते हैं । अत्यन्त  
स्निग्ध मनुष्य को विरेचन देने से उसका

अति योग होता है। रुक्ष व्यक्ति को विरेचन देने से वायु अंग को पकड़ लेती है। कड़े कोठेवाले को विरेचन देने से दोष उदीर्ण होकर हृदय में शूल, पर्वभेद, आनाह, अंगमर्द, वमन मूर्च्छा और हान्ति उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देते हैं। क्षत्ररोगी से लेकर गर्भिणी पर्यन्त को विरेचन देने से वमन प्रकरण में कहे हुए रोग होते हैं। इससे ये सब विरेचनके अयोग्य हैं।

**विरेचन के योग्य व्यक्ति ।**

**शेषास्तुविरेच्याः ।** कुष्ठज्वरपेहोर्ध्वरक्तपित्तभगन्दरोदराशौर्वधृष्टीहृगुल्माशुदगलगण्डग्रन्थिविसृचिकालसकमूत्राघातकिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरपार्श्वशूलोदावर्तनेत्रास्यदाहदृदोगव्यङ्गनीलीकानेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिराचकाविपापच्छादिद्वयध्वपचीविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषरोगाध्यायोक्ताश्चाएतेपुहिविरेचनमपानतममित्युक्तमनुपशमेऽग्रिमुहवत् ।

अर्थ....ऊपर कहे हुए रोगियों को छोड़कर शेष सब रोगी विरेचन के योग्य होते हैं। कोठ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वरक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, अर्श, मूत्र, शीहा, गुल्मरोग, शूल, गलगण्ड, ग्रन्थि, विसृचिका, अलसक, मूत्राघात, किमिकोष्ठ, विसर्प, पाण्डुरोग, शिरो वेदना, पार्श्वशूल, उदावर्त, नेत्रग्राह, मुखदाह, हृदोग, व्यंग, नीलीका, भोरोग, नासिका रोग, मुग्नरोग, कर्णरोग

हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, मृगीरोग, उन्माद, वातरक्त, योनियोप, शुक्रदोष, तिमिर, अरुचि, अधिपाक, वमन, सूजन, उदररोग, विस्फोटकादिरोग, तथा महारोगाध्याय में कही हुई चालीस प्रकार की पित्तज व्याधियां विशेष करके विरेचन से दूर हो जाती हैं। इन सब रोगों में विरेचन ही प्रधान है। जैसे आग्ने के बुझने से घर अपने आप शान्त होजाता है इसी तरह विरेचन द्वारा दोषों के निकलने से शरीर के रोग अपने आप शान्त होजाते हैं ॥

**अनास्थाप्यरोग ।**

**अनास्थाप्यस्तुअजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्रिष्टदोषाल्पाग्निमानकान्तातिदुर्बलक्षुत्तृण्णाथमार्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितधिरिक्तसतकृतनस्तःकर्मकुब्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तछादिनिष्टीविकाश्वासकासहिक्कावद्धिद्रोदकोदराध्मातालमकविसृचिकामप्रनामातिसारमधुमेह**  
**कुष्ठाः ॥**

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी आस्थापन के योग्य नहीं होते हैं। यथा—अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, पीतस्नेह, उत्क्रिष्टदोष, मन्दान्ति, यान्कान्त, (सपारीसे थक हुआ) अतिदुर्बल, क्षुभार्त्त, तृणार्त्त, ध्रमार्त्त, अत्यन्तकृश, सुकभक्त ( जिसने भात खाया हो ) पीतोदक, वमित, विरिक्त, क्षत, कृतनस्य-कर्मा [ जिसने नस्यकर्मका सेवन किया हो ] कुब्ध, डरा हुआ, मत्तवाला, मूर्च्छित, वमनरोगी, जिसके मुँहमें थूक भरता हो, आ-

सरोगी, कासरोगी, हिक्कारोगी, वद्धोदरी, छिद्रोदरी, दकोदरी, अलसकरोगी, विसूचिका रोगी, आमगर्भा [ जिसका गर्भ सातमहीने के भीतर हो ] अतिसारी, मधुमेही और कुष्ठरोगी, ये सब आस्थापन के योग्य नहीं हैं

अनास्थापनका कारण ।

तत्राजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहानां दुष्पद रंमूर्च्छाश्च यथुर्वा स्यात् । उत्क्रिष्टदोष मन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः । यानक्लान्त स्यक्षोभमापन्नोवस्तिराशुदेहं शोषयेत् ॥ अतिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमातीनां पूर्वोक्तो दोषः स्यात् । अतिकृशस्य फार्श्यं पुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तेभ्योत्कलेइयोद्ध मधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रं वस्तौघो रान्विकारान् जनयेत् ॥ वमितविरिक्त पोस्तुरुक्षशरीरानिरुहः क्षतक्षारइव दहेत् । कृतनस्तः कर्मणो विभ्रंशश्च शंसं रुद्रस्रोत सः कुर्यात् । क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरुद्धमुपश्रु वेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशं विचलितयां संज्ञायां चित्तोपघाताद्व्यापत्स्यत् । प्रसक्त छर्दिनिष्ठीवांश्वाससकासहिकार्त्तानामूर्च्छाक्रान्वायुरुद्धं वस्तिं नयेत् । वद्धछि द्रोदकोदराध्मातानां भृशतरमाध्मावस्तिः प्राणान्निहं स्यात् । अलसकविसूचिका ममजातिसारिणामामकृतोदोषः स्यात् । मधुमेहकुष्ठिनोव्याधेः पुनर्दृष्टिः तस्माद्वेते

नास्थाप्याः ॥

अर्थ ..... इनमें से अजीर्णरोगी, अति स्निग्ध और पीतस्नेह वाले रोगियों को आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा और सूजन उत्पन्न

होती है उक्लिष्ट दोष और मन्दाग्नि वाले को आस्थापन देनेसे तीव्र अरुचि होती है । सवारिसे थके हुएको आस्थापन देनेसे क्षौभको प्राप्त हुई वस्ति शांतिही उसके देहको सुखा देती है । अति दुर्बल, क्षुधार्त, तृपार्त्त और श्रमार्त्त को आस्थापन वस्ति देने से पूर्वोक्त दोष होते हैं । अत्यन्त कृशको वस्ति देनेसे और भी कृशता हो जाती है । जल पीने और भोजन कर लेने के पीछे वस्ति देने से उसका वायु ऊपर वा नीचे उत्कलित होकर और वस्ति को उत्क्षिप्त कर के शांतिही वस्ति में घोर विकारों को उत्पन्न कर देती है । वमित और विरिक्त का शरीर पहिलेही रुक्ष होता है, इस पर भी यदि निरुह दी जाय तो क्षतक्षार की तरह दग्ध कर देता है जिस मनुष्य ने नस्यकर्म किया है उसको आस्थापन देने से स्रोतःसमूह रुककर नस्यकर्मके फलको नष्ट कर देते हैं । क्रुद्ध और भीत को आस्थापन वस्ति देने से वस्ति ऊपरको चली जाती है । मत्त और मूर्च्छित को अत्यन्त विंगड़ी हुई दशा में देने से चित्तोपघात होता है । वमनरोग, श्वास, खांसी और हिचकी वाले को आस्थापन देने से आस्थापन को वायु ऊपरको लेजाती है । वद्धोदर, छिद्रोदर, दकोदर और आध्मान में वस्ति देने से उदर में बहुत अफरा उत्पन्न होता है और प्राण जाति रहते हैं । अलसक, विसूचिका, आमगर्भा और अतिसारमें आ-

स्थापन देने से आम्लकृत दोष होते हैं । मधुमेह और कुष्ठ में आस्थापन देनेसे रोग की वृद्धि होती है, इस से ऊपर लिखे हुए रोगों में आस्थापन वस्ति न देनी चाहिये ।

आस्थाप्यरोग ।

शोषास्त्रास्थाप्याः सर्वाङ्गैर्काङ्क्षिरोगवा-  
तवर्चोभ्रूयशुकसंगवल्वर्णमांसरेतःक्षयदा-  
पाध्मानाङ्गमुत्तिष्ठिमिकोष्ठोदावर्तवित्सा-  
रपर्वाभितापष्टीहङ्गुलमृद्द्रोगभगन्दरोन्मा-  
दज्वरवर्ध्मशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठक-  
टीग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्ष-  
यानातव्यविपमग्निनिस्फिजानुजंघोरु-  
ल्फवाटिणमयद्योनिबाह्वाङ्गुलितलांस-  
दन्तपार्श्वस्थिशूलशोषस्तम्भान्त्रज्जन-  
नपरिकर्तिकादयःधातव्याधयोविशेषेण  
रोगाध्यायोक्ताश्चाप्येतेष्वस्थापनप्रधा-  
नतममित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदवत् ।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगों से अन्यरोग आस्थापन के योग्य होते हैं । यथा—सर्वाङ्ग वात, एकाङ्ग वात, कुक्षिरोग, अधोवायु, मूत्र और वीर्य के विवन्ध, वलक्षय, वर्णक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, आध्मान, अङ्गमुत्ति, क्रिमिकोष्ठ, उदावर्त, अतिसार, हृडफूटन, ग्रीहा, गुल्म, हृद्द्रोग, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, मन्त्र, शिरःशूल, कर्णशूल, हृदयग्रह, पार्श्व-ग्रह, पृष्ठग्रह, काटिग्रह, कम्पन, आक्षेप, अङ्गगौरव, देह का अत्यन्त हलकापन, रज-क्षय, रजस्वला होने का अभाव, विपमग्नि, नितम्बशूल, जानुशूल, जेपाशूल, ऊरुशूल, टकने का दर्द, ऐड़ी का दर्द, पंजे का दर्द,

योनिशूल, बाहुशूल, अङ्गुलिशूल, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अश्वक्वज, परि-  
कर्तिका, तथा वक्षिप करके महारोगाध्याय में कही हुई अस्ती प्रकार की बात व्याधियां आस्थापन से दूर होजाती हैं । इन रोगों में आस्थापन प्रधान है, जैसे जड़ काट डाल ने से वनस्पति एक साथ ही नष्ट होजाती है उसी तरह आस्थापन देने से भी सम्पूर्ण रोग जड़ से मिटजाते हैं ।

अनुवासन के अयोग्य रोगी ॥

यएवानास्थाप्यास्तएवाननुयास्याः । वि-  
शेषतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगका-  
सकामलाममेहार्शःप्रतिश्यापारोचकमंदा-  
मिदुर्वलप्लीहकफोदरोरुक्कम्भवर्चोभिद-  
विपगरपीतकफाभिप्यन्दगुरुकोष्ठश्री-  
पदगलगण्डापचिकिमिकोष्ठिनः ।

अर्थ—जो जो रोग आस्थापन योग्य वर्णन नहीं किये हैं उनहीं में अनुवासन भी न देवे । विशेष करके अभुक्तभक्त, नवज्वर, पाण्डुरोग, खांसी, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मन्दाग्नि, दुर्वलता, ग्रीहा, कफोदर, उरुस्तम्भ, मूलभेद, पीत विप, पीतगर, कफाभिप्यन्द, भारी कोष्ठ, रलीपदरोग, गलगण्डरोग, अपची और क्रिमि-कोष्ठ । इन सब रोगों में अनुवासन न देनी चाहिये ।

उक्त रोगों में अनुवासन के न देने का कारण तत्राभुक्तभक्तस्यानाहतमार्गत्वाद्भूमाति-  
वर्ततेस्नेहो ॥ नवज्वरपाण्डुरोगकाम-  
लाममेहिणादोषानुत्क्रेश्चोदरजनमेद-

शस्यशस्यभिष्यन्त्याध्मानमरोचकार्त  
स्यान्त्रवृद्धिपुनर्हन्त्यात् । मन्दाग्निदुर्बल  
योर्मन्दतरमग्निर्कुर्यात् ॥ प्रतिश्यायप्ली  
हादिमतांभृशंचोत्किलष्टदापाणाभूयए  
वंदोषंवर्द्धयेत्तस्मादेतेनानुवास्याः ॥

अर्थ—बिना भोजन कराये अनुवासन  
देने से वास्तिका मार्ग खुला रहनेसे तेल  
ऊपरको चला जाता है । नवज्वर, पांडु-  
रोग, कामला और प्रमेह में अनुवासन देने  
से दोष उत्केशित होकर उदररोग उत्पन्न  
करते हैं । अश्वरोग में अनुवासन देने से  
स्नेहन अर्श को अभिष्यन्दी करके आध्मान  
उत्पन्न करता है । अरुचि में अनुवासन  
देने से अन्त्रवृद्धि होकर प्राणों को नष्ट  
कर देती है ( अन्न में अनिच्छा होती है  
ऐसा पाठभी है ) मन्दाग्नि और दुर्बल को  
अनुवासन देने से अग्नि अत्यन्त मन्द हो-  
जाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा में अनु-  
वासन देने से सम्पूर्ण दोष और भी बढ  
जाते हैं । इसलिये इन सम्पूर्ण रोगों में  
अनुवासन न देना चाहिये ।

अनुवासन के योग्य व्यक्ति ।  
यएवास्याप्यास्तएवानुवास्याः । विशेष  
पतस्तुरुक्षतीक्ष्णाग्निशःकेवलवातरोगा  
र्त्तादयः । एतेपुनरनुवासनप्रधानतममित्यु  
क्तवनस्पतिमूलच्छेदनवत्तमूलद्रुमप्रसि  
क्तवच्च ॥

अर्थ—जिन जिन रोगों में आस्था-  
पन दी जाती है उन्हीं में अनुवासन भी  
दी जाती है । विशेष करके रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि

और केवल वातरोग पीडितको तो अवश्य  
ही अनुवासन देना चाहिये । इन सब रोगों  
में अनुवासन ही प्रधान औषध है । जैसे  
जड़ के काटने से वनस्पति नष्ट होजाती है  
वैसेही अनुवासन से सब रोग जड़से मिट  
जाते हैं और जैसे वृक्षकी जड़ में जड़ देने  
से वह ऊपरसे नीचे तक हरा होजाता है  
उसी तरह अनुवासन देने से उसकी सब  
धातु पुष्ट होजाती हैं ।

शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी ।  
अशिरोविरेचनाहीःअजीर्णभुक्तभक्तपी  
तस्नेहमद्यतोयपातुकामःस्नातशिरःस्नातु  
कामःभुक्तृष्णाश्रमातमत्तमूर्च्छितशस्त्रदंढा  
हस्तव्यथायव्यायामपानकान्तवलांतनव  
ज्वरशोकाभितप्तविरपतानुवासितगर्भि  
णीनवप्रतिश्यायार्ताःअन्तुदुर्दिनेच ।

अर्थ—नाचि लिखेरीगी शिरोविरेचन के  
योग्य नहीं होते हैं । यथा— अजीर्ण रोगी  
भुक्तभक्त, पित्तस्नेह, मद्यपान वा जलपान  
की इच्छारखने वाला, स्नातशिरः ( सिरसं  
मेतन्हूनेवाला, ] स्नातुकाम [ स्नानकी  
इच्छारखनेवाला ), क्षुधार्त्त, तृपार्त्त, श्रमार्त्त  
मूर्च्छित, शस्त्राहत, दंढाहत, मैथुनक्रान्त,  
व्याधामग्नान्त, मद्यपान से थका हुआ, नव  
ज्वर पीडित, शोकाभितप्त, विरिक्त, अनुवा-  
सित, गर्भिणी, और नवीन-प्रतिश्यायसे  
पीडित । इन को शिरोविरेचन न देवे ।  
इसके अतिरिक्त युक्तु और जिस दिन  
बादल हो रहे हों उस दिन भी शिरोविर-  
चन न देवे ॥

शिरोविरेचन न देने का कारण । तत्रार्जीर्णभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्ध्ववाहानिस्रोतांस्यावृत्त्यकासश्वासछादिति श्यायान्जनयेत् । पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानाकृतेचपिवतांमुखनासास्त्रावाक्षुपदेहतिमिरशिरोरोगान्जनयेत् । स्नातशिरसःकृतेचस्नानाच्छिरसःप्रतिश्यायः । क्षुधार्तस्यघातप्रकोपः । तृणार्तस्यपुनस्तृणाभिष्टुद्धिमुखशोषञ्च । श्रमार्तमत्तमूर्छितानामास्थापनोत्तमदोषः । शस्त्रदण्डहतस्यतीव्रतराङ्गजनयेत् । व्यायामग्लानव्यायामबलान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरपीडनं । नवज्वरशोकाभितप्तयो रूपमानेत्रनालीभिरनुसृत्यतिमिरज्वरवृद्धिचकुर्यात् । विरिक्तस्यवायुरिन्द्रियोपघातमनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वकण्टकिमिदोषान् । अन्तर्वन्त्यागर्भस्तम्भयेत्सक्राणःकुणिःपक्षहतपीठसर्पीवाजायेत । नवप्रतिश्यायस्यस्रोतांसिन्व्यापादयेदनृत्तदुर्दिनेशीतदोषात्पूतिर्नासिकाशिरोदोषश्चस्यात्तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः ।

अर्थ—इन में अजीर्ण रोगी को और मुक्तभक्त को शिरो विरेचन देने से दोष ऊर्ध्ववाही स्रोतो को रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं । पीत स्नेह, जलपातुकामी और मद्यपातुकामी को शिरोविरेचन देने से मुखस्त्राव, नासिकास्त्राव आँखों में लिहसावट, तिमिर और शिरोरोग उत्पन्न होते हैं । शिरःस्नात या न्हाये हुए मनुष्य को शिरोविरेचन देने से प्रतिश्याय

होता है । क्षुधार्त को देने से वायुकोप, तृणार्त को देने से तृणाकी वृद्धि और मुखशोष, श्रमार्त को देने से तथा मत्त और मूर्च्छित को देने से आस्थापन में कहे हुए दोष होते हैं । शस्त्राहत और दण्डाहत को देने से वेदना तीव्र होती है । व्यायाम और व्यायामसे थके हुआ को देनेसे सिर, कंधा, नेत्र और वक्षःस्थल में पीडा होती है । नव ज्वर वाले को देने से ज्वर की वृद्धि होती है । शोक्पीडित को देने से दोष नेत्रकी नालियों में प्रवेश करके तिमिर रोग को उत्पन्न करते हैं । विरिक्त को देने से वायु कुपित होकर इन्द्रियों को चेष्टाहीन करती है । अनुवासितको देने से कफ बढ़कर सिर में भारापन, खुजली और क्रिमिरोग उत्पन्न करता है । गर्भिणी को देने से गर्भ बढ़नेसे रुकजाता है और काना, कुनख, पक्षाघाती और पांगला होजाता है । नवीन प्रतिश्यायवाले को देने से स्रोत निष्काम होजाते हैं । कुसमय वा दुर्दिन देनेसे शीतपूतिनासिका और शिरोरोग होते हैं । इस से इन रोगियों को शिरोविरेचन न देवे ।

शिरोविरेचन के योग्य रोगी ।

शेषार्हाः । शिरोदन्तमन्यागलहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूकशुकृतिमिरवर्धरोगव्यंगोपजिह्विकार्धावभेदकप्रीवास्कन्धासास्यनासिकाकर्णाक्षिर्मुखकपालरोगादितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरागार्बुदस्वरभेदवाग्गृहगृहदकयनादयऊर्ध्वज्वगतावातादिविक्ता



राः परिपक्वाश्चेतेषु शिरोविरेचनं प्रधानं ।  
न तममित्युक्तं तद्युक्तमांगमनुप्रविश्य  
मञ्जुपपीका सप्ततदोषं विकारकरमपकर्षति  
अर्थ—इन से अन्यरोगों में शिरोविरेचन  
देना हित है । यथा शिरोरोग, दन्तरोग, मन्था  
स्तम्भ, गलग्रह, हनुग्रह, पीनस, गलशुण्डिका  
शाङ्ख, शुक्र, तिमिर, वर्मरोग, ज्वर, उपजि-  
ह्वा, अर्द्धाभिदक, मीमांसा रोग, स्कंधरोग  
भास्वरोग, नासिकारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग  
भूदा रोग, कपालरोग, मस्तकरोग आदित,  
अपतत्रक, अपतानक, गलगंड, दंतशूल,  
दन्तहर्ष, दंतचू, अक्षिरोग, अर्बुद, स्वरभेद,  
घ्राणग्रह, गदगदता, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, और  
घातादिरोग इन सब रोगों में शिरोविरेचन  
प्रधान है । इस कारण से शिरोविरेचन शिर  
में प्रवेश करके मज्जा और पेशी में स्थित  
विकार करने वाले दोषों को निकाल देता है ।

नस्य फलं विधि ।

मावृत्तशरद्वसन्तेष्वितरेषु आत्ययिके पुरोगेषु  
नावनं कुर्याद्ग्रीष्मे पूर्वाह्णे शीते मध्याह्ने च  
प्रास्वदुर्दिने चेति ।

अर्थ....वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु में  
नस्य देवे । यदि कोई आत्ययिक रोग उत्पन्न  
हो जाय तो प्राग्म ऋतु में दुपहर से पहिले  
शीत ऋतु में दुपहर के समय, और वर्षा में  
जिस दिन बादल न हो उसादिन नस्य देवे ।

अध्यायका उपसंहार ।

इति पंचविधं कर्म विस्तरणं निदर्शितम् ।  
येभ्यो यन्न हितं यस्मात्कर्म येभ्यश्च यद्विदितं  
५ । न चैकान्तेनानिर्दिष्टे तत्राभिनिवेशेत्

युवः ॥ स्वयमप्यत्र वैद्येन तत्रैव बुद्धिमता  
भवेत् । उत्पद्येत हि सावस्यादेश कालच-  
लम्पनि ॥ यस्यां कार्यमकार्यस्यात्कर्म  
कार्यञ्च वर्जयेत् । छर्दिहृद्रोगगुल्मार्तेष्वम-  
नंश्चेत्किं कित्सिंते ॥ अवस्थां प्राप्य निर्दि-  
ष्टं कुष्ठिनाम्बस्ति कर्म च । तस्मात्सत्यापि  
निर्दिष्टे कुर्याद्द्वयं स्वयन्धिया ॥ विना वि-  
तर्काद्यासिद्धिर्दृष्टच्छासिद्धिरवसा ।

अर्थ—इस तरह वमन विरेचनादि पंच-  
कर्म की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है ।  
जिस कारण से जिसके लिये जो हितकारी  
और जो अहितकारी है उसका भी वर्णन  
किया गया है जो ये संपूर्ण नियम वर्णन  
किये गये हैं वेच को केवल इन्हीं पर भरोसा  
न रखना चाहिये, उसे अपनी बुद्धि भी  
लगानी चाहिये, यदि किसी नियम में परि-  
वर्तन की आवश्यकता दिखाई दे तो परि-  
वर्तन भी कर देवे देश, काल और बल के  
विषय में कभी कभी ऐसी दशा हो जाती है  
कि उसमें करने योग्य काम अकार्य हो जाता  
है और न करने के योग्य काम अच्छा  
और करने के योग्य हो जाता है । वमनरोग  
हृद्रोग और गुल्मरोग में वमन नहीं कराई  
जाती है पर कभी २ ऐसा होता है कि व-  
मन कराना ही पड़ती है । कुष्ठरोग में वृ-  
स्ति नहीं दी जाती है परन्तु विशेष अवस्था  
में इस में भी वस्ति दी जाती है अतएव य-  
द्यपि सम्पूर्ण नियम वर्णन किये भी गये हैं  
तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना  
आवश्यक है । अपनी बुद्धि को विना

काममें लाये जो कार्य सिद्ध होजाता है। वह यदृच्छा सिद्ध होता है ॥

इति श्रीभाषाटीकाश्रितायां अग्निवेशविर-  
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां  
सिद्धिस्थाने पञ्चकर्मोपासिद्धिर्नाम  
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

— + × + —

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो यस्ति सूत्रीयां सिद्धिं व्याख्यास्याम  
हर्तुं हस्माह भगवान् आत्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम वस्तिसूत्रीयसिद्धि की व्याख्या  
करेंगे ॥

कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धने शायतनस्य  
पार्श्वे । महर्षिर्संघे हृतमग्निवेशः पुनर्वसु  
म्प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ वस्तिर्नरेभ्यः  
किमपेक्ष्य दत्तः स्यात्सिद्धिमान् किमप्यम-  
स्यने भ्रम् ॥ कीदृक्प्रमाणां कृतिर्किं गुणश्च  
केपाश्च किं योनिगुणञ्च वस्तिः निरुहक  
र्मप्रणिधानमात्राः स्नेहस्य वाकाः शमने वि-  
धिः कः ॥ केवंस्तयः के पुमता इतीदं श्रुत्वो-  
त्तरं प्राह वचो महर्षिः ॥

अर्थ—हिमालय के कैलाशनामक रमणीक  
शिखर पर कुवेर के घरके पास ही ऋषियों  
के समूहसे परिभेष्टित पुनर्वसु अवकाश  
पाकर बैठे हुए थे उस समय आग्निवेशने  
प्राथम्य जोड़कर पूछा कि हे भगवन् ! किस  
अवस्था में किस तरह से वस्ति का प्रयोग  
करने पर सफलता हो सकती है । वस्ति  
नेत्र का प्रमाण क्या है । वस्ति किस द्रव्य

से बनाई जाती है, इसका प्रमाण, आग्नि  
और गुण क्यों हैं ? किस को किस द्रव्य  
की बनी हुई वस्ति क्या गुण करती है ?  
निरुहण कर्म की कल्पना क्या है ? अनु-  
वासन की मात्रा कितनी है ? रोगों के शमन  
करने के निमित्त वस्ति देने के समय कौन  
सी विधि ग्रहण करनी चाहिये ? किस के  
लिये कौनसी वस्ति हितकर है ? भगवान्  
आत्रेय अग्निवेशके इन प्रश्नोंको मुनकर  
कहने लगे ।

समीक्ष्य दोषौ पधदेशकालसात्म्याग्निं स-  
त्यौजत्रयोचलानि । वस्तिः प्रयुक्तो नियतं  
गुणाय स्यात् सर्वकर्माणि च सिद्धिमन्ति ॥  
सुवर्णरूप्यवपुताम्ररीतिकां स्यात्स्थिशस्त्र-  
द्रुमवेषु दन्तैः नेत्राणि शृङ्गैर्मणिभिर्नैलैश्च  
गुकर्णिकानि प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

अर्थ—दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य,  
अग्नि, सत्व, ओज, यय और बल की  
विशेष रूप से परीक्षा करके वस्ति प्रयोग  
करने से निश्चयही फलदायक होती है  
और इस तरह प्रयोग करने से सम्पूर्ण कर्मों  
की सिद्धि होती है । वस्ति का नेत्र सोना,  
चांदी, सीसा, तांबा, पीतल, कांसी, हड्डी,  
लोहा, काठ, बांस, दांत, सींग और मणि  
वा नल इनमें से किसी एक द्रव्यसे बनसकता  
है । वस्ति के मुखपर एककर्णिका होनी चाहिये ।

वस्ति का प्रमाण ॥

पट्टद्वादशाष्टांशुलसम्मितानि पर्वशत-  
द्वादशवर्षजानाम् । स्युर्मुद्रकैर्न्युसर्तानि च  
हिच्छिन्नाणि वर्त्यापि हि तानि चापि ॥

अर्थ—छः, बीस और बारह वर्ष की अवस्था वाले के लिये वस्ति क्रम से छः बारह और आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिये और नल के भीतर का छिद्र मूंग, भटर और छोटे झाड़ी के सदृश क्रम से होना चाहिये । वस्ति के छिद्र में कुछ घुसने न पावे इसलिये उस के मुखमें बत्ती लगी रहनी चाहिये ।

वस्ति की परिधि का प्रमाण ॥

यथावयोंऽगुष्टकनिष्ठिकाभ्यांमूलाग्रयोःस्य परिणाहवन्तिऽज्जनिगोपुच्छसमाकृतानि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुलिकामुखानि ॥ स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्भागेमूलाश्रितेवस्ति निबन्धनेद्दे । जरद्वरोमाहिपहारिणो वास्यातसौकरोवस्तिरजस्यवापि ॥ दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः कपाचरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ॥ नृणां ययोर्वाक्ष्ययथानुरूपनेत्रे पुण्यो ज्यस्तु सुवद्वसूत्रः ।

अर्थ—जितनी अवस्था के मनुष्य को वस्ति देना होय, उतनीही अवस्था के मनुष्य के अंगुठे का मुट्ठाई के समान वस्ति की नली के नाँचे की परिधि होनी चाहिये और मुखकी परिधि कनिष्ठिका अंगुली की मुट्ठाई के समान होनी चाहिये वस्ति की नली सीधी, गौ की पूंछके समान आकृति वाली, चिकनी और गोलमुखकी होनी चाहिये । उसी नल के चौथे भागमें मुखकी और एक कर्णिका और नाँचे की और दो कर्णिका होनी चाहिये । वृक्ष बैल, भैंसा, हरिण, अथवा बकरे की वस्ति ( गुत्रा-

शय ) लाकर एक चौंगा बनवावे । यह बहुत दृढ, शिराहीन, गन्धराहित, कपाय वर्ण से रंगा हुआ, मृदु और शुद्ध होना चाहिये । रोगी की अवस्था का विचार करके वस्ति पुट छोटा वा बड़ा होना चाहिये और यह पुटक बल के साथ डोर से अच्छी तरह बांध देना चाहिये ।

वस्तेरभावेषु वजोगोलोवास्यादं कपादः सुघनः पटो वा ॥

अर्थ—यदि वृषादिक की वस्ति उपलब्ध न हो तो मेंढक आदि के चमड़े की वस्ति बनावे अथवा चौपाये पशुओं के भीतर का चमड़ा ग्रहण करके बनावे और जो कुछ भी न हो सके तो गाँदे के पड़े सेही काम चलावे ॥

आस्थापनार्हपुरुषविधिः समीक्ष्य पुण्येऽहनि शुक्लपक्षे । प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे जर्णिगमेकाग्रमुपक्रमेत ॥

अर्थ—आस्थापन के योग्य रोगी को अन्न पचने के पछे शुक्लपक्ष में शुभदिन नक्षत्र, मुहूर्त और योग देखकर सावधानी से आस्थापन देवे ।

बलांगुर्वात्रिफलांसरास्नाद्विपञ्चमूलेषु पलोन्मितानि ॥ अष्टौ पलान्यर्द्धतुलां च मांसाच्छागानपचेदपुचतुर्थेऽपम् ॥ पूतयवानां फलविल्वकुष्ठचाम्पाशताहवाघनपिप्पलीनाम् ॥ कल्कैर्गुडसोदघृतैः सतैले युतं मुखोष्णं तु पिबु प्रमाणं ॥ गुडात्पलं द्विप्रसृतान्तुमात्रां स्नेहस्य युवत्यामघुसन्धवादि ॥ प्राक्षिप्य च स्तोमं धितं खजेन सुवद्वसू-

निरुहपादांशसमेनतेलेनाम्लानिलंघ्वौ  
पथसाधितेन । दत्त्वास्फिजौपाणितलेन  
हृन्पात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थं ॥ इप  
त्पदांगुष्ठयुगञ्चकर्पेदुत्तानेदहस्यतली  
प्रमृज्यात्स्नेहेनपाण्यंगुलिपिण्डिकाश्चये  
चास्पगात्रावयवारुगार्ताः ॥ तांश्चाव  
मृज्यान्सुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतो-  
पधानः ॥

अर्थ—निरुहकी मात्रा में चौथाई तेल  
अनुवासन में दिया जाता है, यह तेल कांजी  
और लवु औषध द्वारा सिद्ध किया जाता  
है । तेल शीघ्र ही बाहर न आजाय इस लिये  
हथेलियों से चूतड़ों को धीरे धीरे कूटता  
रहै । दोनों पांशों के दोनों अंगुठों को कुछ  
खाँचे । तथा चित्तशयन कराके पगलियों  
को धीरे धीरे मलता रहै । एढी, लंगली  
दोनों पिंडली और पीडित अंगावयवों को  
तेल से मसलता रहै, जब उसको कुछ चैन  
सा होने लगे तब सिरके नीचे तकिया  
लगा दे जिस से मुखपूर्वक निद्रा आजाय ॥

निरुहण द्रव्यका प्रमाण ।

भागाः कपायस्यतुपञ्चपिचस्नेहस्यपष्टः  
प्रकृतौस्थितेच ॥ वातेविबृद्धेतुचतुर्थभा  
गो तथानिरुहेषुक्केष्टभागः ॥

अर्थ—पैत्तिकरोग में यदि वायु-प्रकु-  
त्तिस्थ होती पांचभाग काथ और छटाभाग  
स्नेहका लेंवै । यदि वायु बड़ी हुई हो तो  
कपायसे चौथाई तेल देंवै और कफमें नि-  
रुहण देनी होय तो आठवां भाग तेल  
ढालना चाहिये ।

निरुहमात्राप्रसूतादमायेवर्षेततोऽर्द्धप्रमृ-  
ताभिवृद्धिः । आद्यादशात्स्यात्प्रमृताभि  
वृद्धिरष्टादशाद्द्वादशतः परं स्युः ॥ आस  
प्तैस्तद्विहितप्रमाणंवालेचवृद्धेचमृदुविशेषः

अर्थ—एकवर्षके बालकोके लिये निरुहकी  
मात्रा एक पल है, उससे आगे प्रतिवर्ष एक  
एक पलमात्रा अधिक बढ़ानी चाहिये ।  
इसतरह बारहवर्षकी अवस्थातक यही कम  
रखै । बारहवर्ष की अवस्थासे अठारहवर्ष  
की अवस्थातक प्रतिवर्ष दो २ पल बढ़ावै ।  
फिर अठारह वर्ष से सत्तर वर्ष की अवस्था  
तक यही प्रमाण होना चाहिये । बालक  
और वृद्ध के पक्ष में मृदु वस्ति का ध्यान  
रखना चाहिये । [ किसी २ पुस्तक में  
ऐसा पाठ भी है कि “अतः परंपोडशवर्द्धिर्धे  
यम्,, यहां से आगे सोलह वर्षकी अवस्था  
तक जो प्रमाण होता है वह होना चाहिये  
अर्थात् २० पलकी वस्ति सत्तर से ऊपर  
की अवस्था में देंवै ।

शयन का नियम ।

नात्युच्छ्रितेनात्यतिनिचिपादे सपादपीठंश्च  
यनंमशस्तं ॥ प्रधानमृदास्तरणापपन्नमा  
कूटैरसंयुक्तपटोत्तरीयम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वस्ति दीर्घ  
हो उस के पलंग के पाये न बहुत ऊँचे  
और न बहुत नीचे होने चाहिये । पाँव रख  
ने के लिये उन के नीचेभी तकिये होने  
चाहिये । पलंग पर बहुत कोमल विछौने  
विछावै, खाट का सिरहाना पूर्वकी ओर  
रखै । जोड़ने विछाने के कपड़े सफेद होंवै

भोजनादि नियम ।

भोज्यं पुनर्व्याधिं मपेक्ष्य तत्तत्प्रकल्पयेद्य-  
पयोरसाद्यैः ॥ सर्वे पुविद्याद्वाधो विमेत  
दांश्च वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान् ॥

अर्थ—वस्ति देने के पीछे व्याधि के अनु-  
सार दूध, यूप और मांसरसादिक द्वारा भोजन  
बनाकर देवै । सब प्रकारकी वस्तियों में  
प्रथम नियम भोजन का यही है । अब  
अन्य वस्तियों का वर्णन करते हैं ।

वातनाशक निरूहण प्रयोग ॥

द्विपञ्चमूलस्पर्शोऽम्लयुक्तः स छागमां  
सस्यसपूर्वपेप्यः ॥ त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो  
निरूहः सर्वा निलव्याधिहरः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—वक्रे का मांस और दशमूल इन  
को अठगुने जल में सिद्ध करके चौथाई शेष  
रहने पर छानले तीनभाग यह काथ और  
एक भाग तेल मिलाकर कुछ कांजी डाल  
कर मिलाले । यह निरूहण प्रयोग सब  
प्रकार के वातरोगों के दूर करने में बहुत  
उत्तम है ॥

स्विराद्यवगस्य वलापटोल त्रायान्तिकैरन्द  
यवैर्पुतस्य ॥ प्रस्थोरसश्छागरसार्धयुक्तः  
साध्यः परः प्रस्थरसश्च यावत् । प्रियंगु  
कृष्णोयनकल्कयुक्तः स तैलसर्पिर्मधुसै-  
न्धवश्च ॥ स्याद्दीपनो मांसवल्प्रदश्च  
चक्षुर्वलं चापि ददाति वस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्णादिपञ्चमूल, खरैटी, पर-  
पल, त्रायनाणा, अरंडकी जड़ और जी इन  
को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई  
शेष रहने पर छानले । यह काथ चारसेर

वक्रे का मांसरस दो सेर मिलाकर पाक  
करै जब दो सेर बच रहै, तब प्रियंगु, पी-  
पल और मोथा इनका कल्क तथा तेल धी-  
शहत और सेंधानमक मिलाकर अच्छी त-  
रह से मथडाले । यह निरूहण वस्ति दी-  
पन मांसवर्द्धक बलकाकरक और नेत्रों में  
बल की बढ़ानेवाली है ॥

एरण्डमूलात्त्रिपलं पलानि दृश्वानिमूला  
निचयानि पञ्च ॥ रास्नाश्वगन्धाथ वला  
शुद्धी पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥

भागाः पलांशमदनाष्टयुक्ता जलद्विकंस  
कथितेऽष्टशेषे । पेप्यंशताहाह पुष्यामियंश  
सपिप्पलीकं मधुकम्बचाच ॥ रसाञ्जनं  
वत्सकपीजमुस्तं भागाक्षमाश्रंतवणांश  
युक्तम् ॥ समाश्लिक्तैस्तैलयुतः समूत्रो  
वस्तिर्नृणां दीपनलेखनीयः ॥

अर्थ—अरंडकी जड़ तीन पल, लघु प-  
ञ्चमूल एक पल, रास्ना, असगंध, खरैटी  
गिलोय, पुनर्नवा, अमलतास, देवदारु, ये  
सब एक एक पल मेनफल आठ पल, इन  
सब को दो कंस जल में सिद्ध करके आठवां  
भाग रहने पर बचाव को छान लेये फिर  
इस में सौंफ, हाजरेर, प्रियंगु, पीपल, गुलहटी,  
वच, रसोत, इन्द्र जी और मोथा दो दो  
तोले सेंधानमक दो तोले तथा शहत, तेल  
और गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवे । यह वस्ति  
दीपनीय और लेखनीय होती है ।

अरंडतेल की वस्ति के गुण ।

जंगोरूपादत्रिपृष्ठशूलं कफाहृतिमारुत  
निग्रहं च ॥ विष्णुवत्वात्प्रहणं सशूल-

माध्माततामरमरिचकरं च आनाहपश्चाद्भि  
हणीमदोषा नेरण्डवस्तिः शमयेत्प्रयुक्तः ॥

अर्थ—भरुंड के तेल की वस्ति देने से  
जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक और पांठ का दर्द  
मिट जाता है। यह पकावृत वायु को नष्ट  
कर देती है। मल, मूत्र और अधोवायु का  
शूलयुक्त विषण्ण दूर हो जाता है। आप्मान  
अमरी और शर्करा दूर हो जाती है। इसी  
तरह आनाह, अर्श और ग्रहणी दोष दूर  
हो जाते हैं।

चतुष्पलैतैलघृतस्य भृष्टश्लेष्माच्छताधौ  
दधिदाडिमांशुः ॥ रसः सपेण्डो वलवर्ण

मांस रेतो घृतैर्मिष्ये सिरोति शस्तः ॥

अर्थ—बकरे का मांस पचास पल अठगुने  
जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर रस  
को छान ले। इस मांसरस को दही और  
अनार रसकी छटाई डालकर दो पल तेल  
और दो पल घी में तलकर इस में संधानम-  
क और मेनफल डालकर निरुहण देवे।  
इससे वलवर्ण और मांसकी वृद्धि होती है।  
धीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। तिमिर  
रोग और शिःपीडा भी दूर हो जाती है।

जलद्विकसेष्टपलं पलाशान् पक्त्वा रसो  
ऽर्धादकमात्रशेषः ॥ कल्कैर्वचामागधि  
कांपलाभ्यां युक्तः शताह्वादिपलेन चा-  
पि ॥ ससंघवसौद्रयुतः सतैलो देयो नि-  
रुहो वलवर्णकारी आनाहपाश्वर्यामपयोनि  
दोषान्गुल्मानुदावर्तकं च हन्यात् ॥

अर्थ—आठ पल दोंककी छाल दो फंस  
जल में पाक करके आधा शेष रहने पर

छान लेवे पाँछे बच और पीपल एक एक  
पल सौंफ दो पल, संधानमक शहत और  
तेल मिलाकर निरुहण वस्तिदेवे। इस से  
वल वर्ण बढ़ता है। आनाह, पाश्वर्या, अ-  
योनिदोष, गुल्म, उदावर्त और वेदना ये  
सब शान्त हो जाते हैं।

यष्ट्याह्वयस्याष्टलेनासिद्धं पयः शताह्वा-  
वाफलापिप्लोभिः ॥ युक्तसप्तर्षिर्भुवा-  
तरक्त वैस्वर्यवीसर्पहतो निरुहः ॥

अर्थ—आठपल मुलहटी, अठगुना दूध  
और दूधसे चौगुना जल डालकर पकावे।  
जब दूध शेष रह जाय तब इस में सौंफ,  
मेनफल, पीपल, शहत और घी मिलाकर  
निरुहवस्ति देवे। यह वस्ति वातरक्त, स्व-  
रभंगता और विसर्प को दूर कर देती है।

पित्तरोगनाशक निरुहवस्तिः ।

यष्ट्याहलोधाभयचन्दनैश्च शृतं पयो  
गुण्यकमलोत्पलैश्च ॥ सशर्करासौद्रयुतैः  
मुशीतः पित्तामयान् हन्ति सजीवनीयः ।

अर्थ—मुलहटी, छोध, हरड, रक्तचन्दन  
कमल और नीलोत्तर इनको डालकर दूध  
पकावे ठंडा होने पर जीवनीय गण का  
कल्क, चीनी और शहत डालकर पानकरे  
तो पित्तरोग दूर हो जाते हैं ॥

पित्तरोगनाशक अन्याविधिः ।

द्विकापिकांश्चन्दनपञ्चकादौ यष्ट्याह्व-  
रास्नाष्टपशारादिश्च ॥ सलोध्रमाञ्जिष्टव-  
लायवाशाः स्थिराशरादिद्वयपञ्चमूलम् ॥  
निःकाप्यतोयेन रसेन तेन शृतं पयोर्द्धादक-  
ममृहीनम् ॥ जीवन्ति मेदंदिशतावरीभिः

वीराहिकाकोलिशतावरीभिःसितोप-  
लाजीवकपद्मरेणुपुण्डरीकैःकमलोत्पलै-  
श्च ॥ लोधात्प्रगुप्तामधुपिचन्दरीमुञ्जा-  
तकैःकेशरचन्दनैश्चपिष्टैर्घृतसौद्रयुतैर्निरुहं  
ससैन्धवंशीतलमवदधात् ॥ मत्यागतेषु  
श्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाघातपरिपिक्त-  
गात्रः ॥ दाहातिसारप्रदरासपिचद्वृत्पा-  
ण्डुरोगान्विषमज्वरं च ॥ सगुल्ममूत्रग्रहका-  
मलादीन्सर्वामयान्पिचकृताभिहन्ति ॥  
अर्थ—रक्तचन्दन, पद्माक्ष, ऋद्धी, मु-  
लहठी, रास्ना, अडुसा, अनन्तमूल, लोष,  
मंजीठ, खैरीटी, जवासा, शालिपर्ण्यादि प-  
चमूल, तृणपचमूल इनसब द्रव्योंको दो दोकरप  
लेकर अठगुने जलमें काथकरे, चौथाई शेष  
रहने पर छान ले, फिर इस काथके साथ  
आधा आठक दूध पकावै जब जलते जलते  
दूध शेष रहजाय तब नीचे लिखे हुए  
जीवन्त्यादि द्रव्योंका कल्क, घी, शहत, और  
सेत्रागमक डालकर ठंडा करके निरुहण  
वास्ति देवै। जीवन्त्यादिद्रव्य यथा जीवन्ती,  
मेदा, ऋद्धि, शतावर, बृहत्सतावर, का-  
फोली, क्षीरकाकोठी, सितावर, मिश्री,  
जीवक, पद्मरेणु, पुण्डरीकाकठ, कमल,  
नीलोफर, लोष, केंचकेवाज, मुलहठी, वि-  
दारीकन्द, मूज, केशर, चन्दन इन सब  
द्रव्यों को पीसकर उसमें डाल देवै। व-  
स्तिके प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे  
देह धोकर जांगल मांसरस वा दूधके साथ  
शाली चावलोंका भोजनकरे। इस वास्तिसे  
दाह, अतिमार, प्रदर, रक्तपित्त, हृदय,

पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रग्रह, वि-  
वन्ध, तथा कामलादिक सम्पूर्ण प्रकारकी  
पित्त व्याधिषां शान्त होजाती है।  
द्राक्षादिकाश्मर्यमधुकसेव्यैःसशारिवाच-  
न्दनशीतपाकयैः। पयःशृतश्रावणिमुद्रप-  
र्णितुमात्मगुप्तामधुपिचकल्कैः ॥ गोधूम-  
चूर्णैश्चतथाक्षमात्रैःससौद्रसर्पिमधुपिष्टैर्लैः  
पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेनचस्तिर्युतंपित्तहरं  
विदध्यात् ॥ हन्नाभिपाश्वोरुचमदेहदाहेदाहे  
ऽन्तरस्थचसकुच्छ्रमूत्रे ॥ क्षीणक्षतरेतसि-  
चापिनष्टैपैत्तेऽतिसारचनृणांमशस्तः ॥

अर्थ—द्राक्षादि द्रव्य, खंभारी, महुआ,  
उसीर, शारिवा, रक्तचन्दन, और खैरीटी इनके  
कल्क में चौगुना जल और अठगुना दूध  
डालकर औठावै जब दूध शेष रहजाय तब  
उसमें श्रावणी, मुद्रपर्णी, केंचके वाज,  
मुलहठी, का कल्क मिलादेवै। फिर इसमें  
देतोले गेंहूँ का चूर्ण, शहत, घी, मुलहठी  
का तेल, डरड, विदारीकन्द, ईख का रस  
और गुड मिलादेवै। यह वास्ति पित्तनाशक  
होती है। इससे हृदय, नाभि, पसली और  
मस्तक का दाह, अन्तरस्थ दाह, मूत्रकुच्छ्र  
की जलन, क्षीणक्षत रोग, नष्टप्रसारांग,  
और पित्तज अतिसार दूर होजाते हैं।

कफनाशकचस्ति॥

कोशातकारग्वधदेवदारुशार्ङ्गमूर्वाकुटजा-  
र्कपाठाः ॥ पकाकुलत्यानष्टहृत्तीचतोयै-  
रसस्पतस्वप्रमृतादक्षस्युः ॥ तांसर्पपैला-  
मदनैः सकुपूरक्षममाणैःप्रमृतैश्चयुक्तान् ॥  
फलाहृतैलस्य समामेकस्य शारस्य-  
तैलस्य च सर्पपस्य । दद्यान्निहृदक

फरोगिणेऽज्ञोमन्दाग्नियेचाप्यशतद्विपेच॥

अर्थ—फोशातकी, अमलतास, देवदारु, मरोडफली, शार्ङ्गगुष्ट, कुडा की छाल, आक, पाठा, कुलर्था और यडी कटेरी इनको अठगुने जलमें पकावे जब इसमें से दस प्रसृत रहजाय तब काथ को निकालले फिर इसमें सरसो, इलायची, मेनफल और कूठ इनसब द्रव्यों का दोदोपल फल्क, मेनफल का तेल दोपल, शहतदोपल, जवाखार दोपल और सरसोंकातेल दोपल मिलाकर निरूहण वस्ति देवे। इससे कफजन्यरोग, मन्दाग्नि और अन्नमें अरुचि होना ये सब मिटजाते हैं।

पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा  
सपिप्पलीकैःवर्षाथैर्जलारुहैः॥

अर्थ—परवल, हारड, देवदारु और पीपल इनका व्वाध पान कराने से भी उत्तरोग दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलेत्रिफलासविल्वाफलानिगोम्  
प्रयुताःकपायः॥ कलिङ्गपाठाफलमुस्तक  
ल्कामसैन्धवःक्षारमधुःसतैलः॥ निरूह  
मुख्यःकफजात्बिकारान्सपाण्डुरोगाल  
सकामदोषप्रणा॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, त्रिफला, बेलगिरी और मेनफल इनका अठगुने जल में काथ करले। फिर इस काथ में गोमूत्र, इन्द्रजौ, पाठा, मेनफल और मोथा का कल्क, सैधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर निरूहण देने से कफरोग, पाण्डुरोग, अलसक और आमशोष दूर होजाते हैं।

वायुनाशक वस्ति ।

रास्नामृतैरण्डविट्कदारुसप्तच्छदोशीरसु  
राहनिम्बैः॥श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठा  
तिक्तासुपर्णीदशमूलमुस्तैः॥त्रायन्तिका  
शिशुफलत्रिकैश्चकाथःसपिण्डीतकतोयम्  
त्रः॥ यष्ट्यादिकृष्णाफलिनीशताहारसा  
ञ्जनस्वेतवचाविट्कैः॥ कलिङ्गपाठाभु  
दसैन्धवश्चकल्कैःससर्पिमधुनैलमिश्रः॥अ  
यंनिरूहःक्रिमिकृष्टमेहघ्नोदराजीर्णक  
फातुरेभ्यः॥ रूक्षापधैरत्यपितपितेभ्यः  
ऐतेपुरोगेष्वापिसत्सुदचः॥ निहत्यवातं  
ज्वलनंप्रदीप्यधिजित्यरोगांश्चबलंकरोति  
ह्न्याक्षथामारुतमूत्रसङ्गमवस्तेस्तथाटोप  
मथापिघोरम्॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, अरंड की जड़, वायविडंग, देवदारु, सप्तच्छद, खस, देवदारु, नीम की छाल, सोंखिया, चिरायता, परयल, पाठा, कुटकी, मूषकपर्णी, दशमूल, मोथा, जावित्री, सहजना और त्रिफला इन को अठगुने जल में चढादे, चौथाई शोष रहने पर उतार कर छान ले। फिर इस काथ में मेनफल का व्वाध, गोमूत्र, मुलहठी, पीपल प्रियंगु, सोंफ, रसोत, सफेद वच, वायविडंग, इन्द्रजौ, पाठा, मोथा और सैधानमक इनका कल्क तथा घी, शहत और तेल मिला देवे यह निरूह वस्ति क्रिमरोग, कुष्ठ, प्रमेह, मूत्र, उदररोग, अजीर्ण और कफको दूर करती है। जो रूक्ष औषधों के सेवन से अपतपित हुआ हो, उसको भी उपयोगी होती है इससे वायु नष्ट होती है, जठ-



रागि वढती है, यह रोगों को दूर कर के देह में बल बढ़ाती है, अधोवायु और मूत्र के विवन्ध को दूर करके वस्तिके घोर आटोप को भी दूर करती है ।

पुनर्नर्वण्डवृषाश्मभेदरुच्यीरभूतीकवला पलाशाः ॥ विपञ्चमूलञ्चपलांशिकानि धुण्णानिर्घातानिपलानिचाष्टौ ॥ विल्वं यवान्कोलकुलत्पधान्यफलानिचैचमसृ तोन्मितानि ॥ पयोजलद्वयादकयोः शृतं तंतक्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥ यचाश ताहामरदारुकुण्डयप्याहसिद्धार्थकपिप्प लीनाम् ॥ फल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तं नः त्यु ण्णशीतगुडसैन्धवाक्तम् ॥ सौद्रस्यतैलस्य चसर्पिपश्वतयैवयुक्तंमसृतंत्रिभिश्च । दद्या न्निरुहंविधिनाविभिन्नः संसर्गसंसर्गकृताम यध्नः ॥

अर्थ—साठ, अरंड की जड़, अइसा, पाखान भेद, सफेद साठ, अजवायन, खरैटी ढाक, दसमूल, ये सब एक एक पल बेल-गिरी आठ पल, तथा जी, बेर, कुलथी, धनियाँ और मेनफल पृथक् २ दो दो पल अच्छी तरह कूटकर धोकर एक भाटक जल और एक भाटक दूध में कर के दूध शैष रहने पर सफेद वस्त्र में छान ले फिर उसी दूध में बच, सोंफ, देवदारु, कूठ, मुलहठी, पीपल, अजवायन और मेनफल का कत्का, गुड, सैधानमक, शहत दो पल, दो पल तेल, और दो पल घी मिलाकर न बहुत गरम, न बहुत ठंडा कर के निरूहण देवै । यह वस्ति इन्द्रज रोगों को दूर करती है ॥

स्निग्धोष्णएकःपवनंसमानौ । दौस्वादु शीतौपयसाचपित्ते ॥ त्रयःसमूत्राःकटुको ण्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरविधेयाः ॥ रसेनवातेप्रतिभोजनस्यात्क्षीरेणपित्तु कफेचयूपैः ॥ तथानुवासेपुचविल्वतैलं स्याज्जीवनीयफलसाधितंच ॥

अर्थ—वातज व्याधि में एक समय में एक स्निग्धोष्ण निरूहण वस्ति देव । पित्तज व्याधि में दूध के साथ श्वादु और शीतल दो वस्ति एक साथ देवै । कफ व्याधि में गोमूत्र के साथ कटु, उष्ण और तीक्ष्ण तीन वस्ति एक समय में देवै ।

वायुरोग में निरूह देने के पीछे मांसरस पित्त में दूध औरकफ में मूत्र के साथ पथ्य देवै । इन सब रोगोंमें अनुवासन देने के निमित्त वायुरोग में विल्वतेल, पित्तरोग में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ तेल और कफरोग में मेनफलादि से सिद्ध किया हुआ तेल देना चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन । इतीदमुक्तंनिखिलयंयथावदस्तिमदानस्य विधानमगम्यम् ॥ योऽधीत्यविद्वानिहवः स्तिकर्मकरोतिलोकेलभतेससिद्धिम् ॥

अर्थ—इस तरह इस अध्याय में वस्ति देने की युक्तियाँ यथावत् वर्णन की गई हैं, जो विद्वान् इन को सोच समझकर वस्ति कर्म करने में प्रवृत्त होता है वह संसार में सिद्धि पाता है ॥

इतिग्रीचरकसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिस्त्वौ-

यसिद्धिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥३॥

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः स्नेहव्यापादिकां सिद्धिं व्याख्यास्यामः ॥

मदतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम स्नेह व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

स्नेहवस्तीन्निषोभमान्वातपित्तकफापहान् । मिथ्याप्रणिहितानां व्यापदः सचि कित्सिताः ॥

अर्थ....अथ हम वात, पित्त और कफ को दूर करने वाली स्नेह वस्तियों का वर्णन करते हैं । इन वस्तियों के मिथ्या प्रयोग से जो २ दुर्घटना होती हैं, उनका और उनकी चिकित्साओं का वर्णन भी करेंगे ।

वातनाशक अनुवासन विधि ।

दशमूलं बलां रास्नामश्च गन्धां पुनर्गन्धाम् । गुह्येण्डभूतीकभार्गीष्टपकरोहिपम् ॥

शतावरी सहचरं कफनासां पलांशिकम् ।

यवमापातसीकोलकुलस्थान्मसृतोन्मिताम् ॥ चतुर्द्रोणं श्लेष्मसः पक्त्वा द्रोणशेषेण

तेन च । पचेत्तैलाढकं क्षीरे जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ अनुवासनमेतद्विषयं वातविकारमुत् ॥

अर्थ....दशमूल, खैरी, रास्ना, असगंध साठ, गिलोय, अरंडकीजड़, अजवायन भाइंगी, अड़सा, रोहिपतृण, सितावर, सहचरी, कौमाटोटी, ये सब एक २ पल, जो उरद, अलसा, बेर, कुलथी प्रत्येक दो २ पल इन सबका चारद्रोण जल में पकावे । पक्ते २ पय एक द्रोण रह जाय तब उसे छानले

फिर इस न्याय में एक आढक दूध, एक आढक तेल और एक २ पल जीवनीय गणक द्रव्यों का फलक मिलाकर पकावे । इस तेल के अनुवासन वस्ति देने से सब प्रकार की वात व्याधियां दूर हो जाती हैं ।

वसामयोगः ॥

आनुपानां वसातद्वर्जनीयं योपसाधिता

अर्थ—उक्त दस मूलादि द्रव्यों के न्याय में दूध, जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का फलक और तेल के बदले में एक आढक आनुप जीवों की चर्बी पकाकर अनुवासन देने से भी वातरोग दूर होते हैं ।

अन्यतैलम् ।

घृताहाय वविल्वाम्लैः सिद्धं तैलं समीरणे ।

अर्थ—सोंफ, जौ और बेलगिरी इनके फलक, कांजी और तेल को मिलाकर पकावे । फिर इस तेल को अनुवासन वस्ति देवे तो उक्त फल होता है ॥

अनुवासनीयघृतम् ॥

सैन्धवेनाग्निवर्णेन तप्तं चानिलनुद्घृतम् ॥

अर्थ—सैन्धव नमक को आग में देकर छाल गरम करले फिर इसे घी में डालदे । इस सुहाते हुए गरम घी की अनुवासन वस्ति देवे तो उक्त फल होता है ॥

जीवन्तीमदनं मेदांश्चावर्णीमधुकं वलाम् ।

शताह्वर्षिकैः कृष्णैः कालैः कर्कटारुणैः शर्द्विचाम् ॥ पिष्ट्वा तैलं घृतं क्षीरे साधयेत्

चतुर्गुणे ॥ वृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्द्धनम् । मूत्ररतो रजो दोषान्हरति दनुवा

सनम् ॥

अर्थ—जीवन्ती, मेनफल, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सोंठ, ऋषभक, पीपल, कौभाटोंटी, सितावर, केच, के बीजू, क्षीर-काकोली, काकडासीगी, कचूर, वच, इन सबको पीसकर मिलाहुआ तेल और घी चार सेर, दूध सोलहसेर इन सबका पाक करे यह अनुवासन वृंहणकर्त्ता, वातपित्तनाशक यल, धीरे और अग्निको बढानेवाला है । इस से मूत्रदोष बीर्यदोष, और रजोदोष दूर होजाते हैं ॥

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् । तैलपादघृतंसिद्धं पित्तघ्नमनुवासनम् ॥

अर्थ उवर चिकित्सा में जो चन्दनादिक तैल के द्रव्य वर्णन कियेगये हैं उन में से जो जो मिलसके उनको पीसकर समान तेल, तेल से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करे यह वरित पित्तरोगों को दूर करती है ।

सैन्धवंमदगंकुष्ठंशताह्वांनिचुलंबलाम् । ह्रीविरंमधुकंभार्गोदिवदारुसकटफलम् ।

नागरं पुष्करं मेदांचविकांचित्रकंशटीम् ॥

विडङ्गातिविषेश्यामाहरेणुनीलीर्नीस्थिरा म् । विल्वजामोदौकृष्णांचदन्तीरास्नांच पेपयेत् ॥ साध्यमेरुण्डतैलंबातैलवाकफरो गनुत् । वध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्रीहमेहाद्य मारुतान् ॥ आनाहमश्मरींचैवहन्त्याचद नुवासनम् ।

अर्थ—सैधानमक, मेनफल, कूठ, सोंफ, हिज्जल, खरैटी, हारुवेर, मुलहटी, भाडेगी देवदारु, कायफल, सोंठ, पौहकरमूल, मेदा,

चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, श्यामानिसोथ, रेणुका, नीलिनी, शालिपर्णी, विल्व, अजमोद, पीपल, दन्ती, रास्ना इन सबको समानभाग लेकर पीस लें । इस कल्का के साथ अरंडका तेल वा सरसों आदि का तेल सिद्ध करके अनुवासन दें । तौ कफरोग, वर्ष्म, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्रीहा, प्रमेह, आल्यवात, आनाह और अश्मरी, ये सबरोग दूर होजाते हैं

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्विल्वाद्येनगणेनवा । तैलकफहरैर्वापिकफघ्नंफलपेदिपक् ।

अर्थ—मेनफल का कल्क और काजी अथवा विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और कल्क अथवा कफनाशक पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ तेल पकाकर अनुवासन देने से कफ दूर होता है ।

विडंगैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः । जातिमवालानिर्गुण्डीदशमूलाखुर्पीणकाः । निम्बपाठासहचरसम्पाकरबीरकम् । एपाकाथेनविपचेत्तैलमोभिश्चकण्ठिकैः ॥

अर्थ वायविडंग, अरंडफांजड़, हल्दी, परवल, त्रिफला, गिलोय, चमेली के पत्ते, निर्गुंडी, दशमूल, मूषिकपर्णी, नीम, पाठा, सहचर, अमलतास, कर्वीरकी छाल इनके क्वाथ में इनही का कल्क डालकर तेल पकाकर अनुवासन दें तौ कफरोग दूर होजाते हैं ।

फलविल्वहृत्तृकृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः । सप्तपर्णवचोक्षीरदारौकुष्ठकास्तनैः ॥ लतायष्टिश्चाद्गुग्गुलिनीचोरु

पौष्करैः । तत्कुष्ठानिक्रमीन्मेहानशीसि  
ग्रहणीगदम् ॥ क्लीवतां विपमग्नि त्वं मलदो  
पत्रयंतथा । मयुक्तं प्रणुदत्वा शुभानाभ्यंगा  
नुवासनैः ॥

अर्थ—मेन्फल, बेलगिरी, निसोय, पीपल,  
रान्ता, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णी, वच,  
खस, दारुहलदी, कूठ, इन्द्रजौ, प्रियंगु,  
मुलहठी, सौंफ, चीता, कचूर, चोरक और  
पुहकरमूल इन द्रव्यों के कल्क के साथ सि-  
द्ध किया हुआ तेज पान, अभ्यंग और  
अनुवासन में देने से फोड़, क्रिमि, प्रमेह,  
अर्श, गृहणारोग, क्लीवता, विपमग्नि और  
त्रिदोष को दूर करता है ॥

स्नेह वस्ति के गुण ।

व्याधि व्यायाम कर्माध्वक्षीणा वलानैरौज-  
साम् ॥ क्षीणशुक्रस्य चातीव स्नेहवस्तिर्व  
लमदः । पादजघोरुपृष्ठस्य कउवाश्च स्थि-  
रतापराम् ॥ जनयेदप्रजानां च प्रजां स्त्रीणां  
तथानृणाम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, कर्म,  
मार्ग धमण से क्षीण होगये हैं । वा और  
किसी कारणसे क्षीण होगये है, वा जिन  
के हृदय का ओजो धातु नष्ट होगया है,  
वा जिन का शुक्र क्षीण पड़गया है उन के  
पक्ष में स्नेह वस्ति बहुतही यत्न बढ़ाने वाली  
है । पांय, आंघ, ऊरु, पीठ और कमर को  
अत्यन्त दृढ करदेती है । जिन स्त्री पुरुषों  
के सन्तान नहीं होती है उन के सन्तान  
होने लगती है ।

स्नेहवस्ति में छः आपति ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैरावृतस्य च ॥  
अभुक्ते च गणीतस्य स्नेहवस्तेः पटापदः ॥

अर्थ—यह वात, पित्त, कफ, अन्न और  
पांचवें पुरीष से आवृत होजाती है तथा  
बिना भोजन किये भी इसका प्रयोग करने  
से आपत्ति होती है । इस तरह स्नेह वस्ति  
में छः बिघ्न हैं ।

दस्ति में बिघ्न के कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिके वा तोषितेऽत्युष्णः कफे मू-  
दुः ॥ अतिभुक्ते गुरुर्वर्चः सञ्चयेऽल्पवल्-  
स्तथा । दत्तस्तैरावृतः स्नेहो न यात्यभिभ-  
वादपि ॥ अभुक्तेनावृतत्वाच्च यात्यूर्ध्वं  
तस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त कुपित वात में शीतल  
वा अल्प वस्ति देने से वह प्रत्यागमन नहीं  
कर सकती है, इसी तरह पित्तकी अधिकता  
में अत्युष्ण वस्ति, कफकी अधिकता में  
अत्यन्त मृदु वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर  
सकती है । बहुत भोजन करलेने पर भारी  
वस्ति और विष्टा की अधिकता में अल्प-  
वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकती है तथा  
जो अभुक्त अवस्था में वस्ति दीजाती है  
उसका कोई रोकनेवाला नहीं होता है  
इस से वह ऊपरको चली जाती है ।

वातावृत स्नेहवस्ति के लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः  
पाद्वर्षवेष्टनैर्विद्वान्स्नेहवातावृतं भिषक्

अर्थ—अंगमर्द, ज्वर, आध्मान, शीत,  
स्तम्भता, ऊरुओं में पीड़ा, पसली में दर्द

और शरीर में अंगड़ाई आती हो तो यह समझना चाहिये कि स्नेहवस्ति वायुदारा आवृत है ।

वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णोष्णैस्तंरास्नापीतदु  
तिलवकैः॥सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसा  
धितैः॥निरुहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्च  
मूलिकैः ॥ ताभ्यामेवचर्तैलाभ्यांसायंभु  
क्तेऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—वातावृत स्नेह के निकालने के  
लिये रास्ना, सरल काष्ठ, लोध का कल्क  
तथा सौवीरक, सुरा, बेर, कुलथी और जौ  
इनके क्वाथ के साथ सिद्ध करके स्नेह,  
काजी, संधानमक डालकर उष्ण निरुहण  
वस्ति देवै । अथवा गोमूत्र और पंचमूल के  
क्वाथ के साथ निरुहण देवै ॥अथवा उक्त  
दोनों प्रकारके द्रव्योंके साथ तेल सिद्धकर  
के भोजन करने के पीछे अनुवासन वस्तिदेवै

पित्तावृतवस्तिकेलक्षण ।

दाहरागतृषामोहतमकज्वरदूषणैः॥विद्या  
त्पित्तावृतस्वादुस्तिक्तैस्तंवास्तिभिर्हरेत्॥  
अर्थ—स्नेहवस्ति देने के पीछे शरीर में  
दाह, ललाई, तृषा, मोह, तमक और ज्वर  
हो तो समझना चाहिये कि स्नेह पित्तावृत  
है इस में स्वादु और तिक्त निरुहण देकर  
स्नेह को निकाल देवै ।

कफावृत वस्ति के लक्षण ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेफारुचिगौरवैः॥  
समूर्च्छाम्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्ने  
हमावृतम् ।

अर्थ—स्नेहन वस्ति के पीछे तन्द्रा, शीत-  
ज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि, भारापन,  
मूर्च्छा और ग्लानि हो तो स्नेहको कफा-  
वृत समझना चाहिये ॥

कफावृत वस्ति में उपाय ।

कटुतिक्तकपायोष्णःसुरामूत्रोपसाधितैः॥  
फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ।

अर्थ—कफावृत वस्ति में कटु, तिक्त,  
कपाय और उष्ण द्रव्य, तथा सुरा और  
गोमूत्र के साथ सिद्धकी हुई निरुहण वस्ति  
जिस में मेनफल का कल्क, तेल, और काजी  
मिला हो देकर स्नेह को निकाल देवै ।

अतिभोजनावृत वस्ति के लक्षण ॥

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिशूलनिद्रागमर्दनैः॥

आमलिंगैःसदाहैस्तंविद्यात्पशनावृतम्-

अर्थ—वमन, मूर्च्छा, अरुचि ग्लानि,  
शूल, निद्रा, अंगमर्द, आम के लक्षण और  
दाह हो तो समझना चाहिये कि स्नेह  
अत्यन्त भोजन से आवृत है ।

उक्तरीगमें उपाय ॥

कटूनालवणानांचक्राथैश्चूर्णैश्चपाचनम्  
विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ।

अर्थ—इस में कटु और लवण द्रव्यों  
का क्वाथ और चूर्णद्वारा आमदोषका पचाना  
ठीक है, इसी तरह मृदु विरेचन और  
आमनाशक अन्य अन्य क्रिया भी हित हैं ।

पुरीषावृत वस्ति के लक्षणोपाय ।

विण्मूत्रानिलसद्भातिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः॥

स्नेहंविद्यावृतंज्ञात्वास्नेहस्वेदैःसंघातिभिः  
श्यामाविल्व्यादिसिद्धैश्चनिरुहैःसानुवा-

सनेः॥निर्हरेद्विधिनासम्पगुदावत्तर्हरेणच

अर्थ—स्नेहन वस्ति के ग्रहण करने के पीछे जो मिष्टा, मूत्र और अधोमायु का विवध हो, भारापन, अफरा और हृदय में शूल होता होतौ समझना चाहिये कि स्नेह मिष्टा से आवृत है। उसके निकालने के लिये स्नेह स्नेद और वार्ति प्रयोग करै तथा श्यामा निसोध की जड़, और बिस्वा दि पचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध की हुई निरुह और अनुवासन वस्ति देवे॥तथा इस में उदावर्तनाशक क्रियाओंका करनाभी हितहै ऊर्ध्वगतवस्ति के लक्षण ॥

अभुक्तेऽशून्यपायौवाधेगास्नेहोऽतिपीडितः  
धावत्सूक्ष्मततःकण्ठादूर्ध्वंभ्यःखेभ्यस्त्यापि

अर्थ—विना भोजन किये वा शून्य गुदा में स्नेह वस्ति का अत्यन्त पीडन करने से स्नेह ऊपर की दौडता है तब यह कठ से ऊपर के मार्ग मुख और नासिका द्वारा निकल पडता है ॥

—ऊर्ध्वगतवस्तिमेंउपाय ।

मूत्रश्यामानिष्टसिद्धोयवकूलकुलस्थवान्  
तत्सिद्धतैलदृष्टोऽनिरुहःसानुवासनः

अर्थ—गोमूत्र, दोनों प्रकार की निसोध इन की जौ, घेर, घु उर्था के क्वाथ के साथ सिद्ध करके निरुह देवे अथवा उक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध करके तेल देवे तौ ऊर्ध्वगतवस्ति ठीक होजाती है ।

कण्ठादगच्छतःस्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः॥

उर्दिम्नीभिःक्रियाभिश्चतत्पर्यकार्यनिवर्तनम्॥

अर्थ—कण्ठ से स्नेह के निकलने पर कठ रुम्कर स्नेह को रोक लेता है, इस का निवर्तन विरेचन और छर्दिनाशक चिकित्सा से होता है ।

उपेक्ष्य वस्ति

यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहवस्तिरानिमृतः॥

सर्वोऽल्पोद्वृत्तरौक्ष्याद्वोपेक्ष्यःसहिविजानता ॥

अर्थ—रुक्षताके कारण स्नेहनवस्ति विना निकले किसी प्रकार का उपद्रव न करे उसका सत्र वा थोडा स्नेह उपेक्षा करने के योग्य होता है।

मुक्तस्नेहका पश्चात् कर्म॥

मुक्तस्नेहंमुखोष्णंचलमुपधोपसेवनम्॥

भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुयास्यज्यहाज्यहात्धान्यनागरसिद्धहितोयंदद्याद्वि ।

चक्षण । व्युपितायनिशाकल्यमुष्णंवाके-  
वलंजलम्॥

अर्थ—आवृत स्नेह के निकल जाने के पीछे सुखोष्ण हलका पथ्य मात्राके अनुसार देवे फिर तीसरे दिन अनुवासन देवे । पीने के लिये धनिया और सोंठ डालकर औटाया हुआ जल देवे, अथवा रात्रि में भोजन न कराके प्रातःकाल केवल उष्ण जल देवे ।

उष्णोदक के गुण

स्नेहोऽग्नीर्णजरयतिश्लेष्माणंतन्निनत्ति

च॥ मारुतस्यानुलोम्यंचकुर्यादुष्णोद

यंनृणाम् ॥ यमनवाधिरकेचनिरुहसानु-

वासने ॥ तस्मादुष्णोदकंदेयं वातश्लेष्म प्रशान्तये ॥

अर्थ—उष्णजल अजीर्ण स्नेह को पचाता है । कफका भेदन करता है और वायुका अनुलोमन करता है इसी से वमन, विरेचन निरूहण वा अनुवासन में वातकफकी शाम्ति के लिये उष्ण जल देना चाहिये । रूक्षनित्यस्तुदीप्ताग्निव्यायामीमारुताशयी वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्चाश्वादिनेदिने ॥

एपां चाधुजरास्नेहोपात्यम्युसिकतास्विव

अर्थ—नित्यप्रति रूक्ष सेवन करनेवाले दीप्ताग्नि वाले, व्यायामशील, वात कोष्ठ-वाले, तथा जिनकी वंक्षण, श्रोणी और उदावर्त्त-वातप्रस्त हों उन्हें दिया हुआ स्नेह शीघ्रही ऐसे जीर्ण होजाता है जैसे बाद्धरेत में ढाला हुआ जल शुष्क होजाता है ।

अतोऽन्येपां त्र्यहोत्रायाः स्नेहं पचति वाक्-  
कः ॥ न त्वामं प्रणयेत् स्नेहं स ह्यभिप्यन्दयेद्गु-  
दम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मनुष्यों से भिन्न मनुष्यों की अग्नि तीन दिन में स्नेह को पचा सकती है ॥ वस्ति द्वारा आम स्नेह का प्रयोग कदापि करना उचित नहीं है, क्योंकि इस से गुदा अभिष्यन्दित होजाती है ॥ सावशेषं चक्षुर्वीतवायुः शेषे हि तिष्ठति ।

अर्थ—वस्ति में जितना स्नेह होता है उस सब का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि वचे हुए स्नेह के साथ वायु होती है न चैव गुदकण्ठाभ्यां दद्यात् स्नेहमनन्तरम् ॥ उभयस्मात्समं चक्षुर्वाध्वगर्भानि दूषयेत्समं

अर्थ—एक ही समय में गुदा और कंठ दोनों से स्नेह का प्रयोग करना उचित नहीं है, क्योंकि एक साथ जानेसे वायु और अग्नि को दूषित करता है ।

स्नेहवस्तिनिरूहं नैकमेवातिशीलयेत् ॥  
उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहाभिरूहात्पवनान्द्रव्यम् ॥ तस्मान्निरूहः स्नेहः स्यान्निरूहश्चा-  
नुवासितः ॥ स्नेहशोधनयुक्तैव वस्तिक-  
र्मत्रिदोपनुत् ॥

अर्थ—स्नेह वस्ति और निरूह वस्ति एक साथ देना ठीक नहीं है, क्योंकि स्नेहसे उत्क्लेश और अग्निका नाश होता है और निरूह से वायुका भय होता है । इस लिये जिस-को निरूह देना हो उसे प्रथम स्नेहन देवै स्नेहन और शोधन की युक्तिही से वस्ति-कर्म त्रिदोपनाशक होता है ।

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकर्पितेषु च ॥  
दुर्बले वातभग्ने च मात्रावस्तिः सदा मत्तः  
ह्रस्वायाः स्नेहमात्रायामात्रावस्तिः समो भवे-  
त् ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्य सर्वकालं निरत्ययः  
वर्त्यसुखोपचर्य च सुखं स्पष्टपुरीषकृत् ॥  
स्नेहमात्राविधानं हि दृष्टं वातरक्तमुत् ।

अर्थ—परिश्रम, व्यायाम, भारवहन, मार्ग की थकावट, सवारी से थकित और स्त्रियों-गम से कर्पित तथा दुर्बल और वातप्रस्त रोगों में नीचे लिखी हुई मात्रावस्ति देनी चाहिये । मात्रावस्ति स्नेह की ह्रस्वमात्रा के समान होती है । मात्रावस्ति ग्रहण करके यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये जिससे किसी प्रकार का उपद्रव न हो । मात्राव-

सार स्नेह प्रयोग करनेसे यह स्नेह बल को बढ़ाता है, मुख फरता है दस्त मुख पूर्वक होता है । वातरक्त दूर होजाता है और पुष्टि बढ़ती है [भोस्नेह आधेदिन में पचजाता है और जो सुकुमार मनुष्यों के पक्ष में प्रयोग किया जाता है, उसही स्नेह की हस्वमात्रा कहते हैं] ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

वातादीनांशमायोक्ताः प्रवराः स्नेहवस्त  
यः । तेषांचाज्ञप्रयुक्तानां व्यापदः सचिकि-  
रितताः । प्राग्भोज्यं स्नेहवस्तेर्यद्भुवं येऽ  
हस्त्र्यहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिश्चोक्ता  
मात्रावस्तिविधिरुत्तरा ॥

अर्थ—इस स्नेहव्यापद अध्याय में वाता-  
दिदोषोंकी शान्ति के लिये उत्तम २ स्नेह  
वस्तियों का वर्णन किया गया है, तथा अ-  
योग्य रीति से प्रयोग की हुई स्नेहवस्तियों  
के रोग, उनकी चिकित्सा और वस्ति के  
प्रयोग करने से पहिले जो आहार किया  
जाता है, जो स्नेह प्रयोग के योग्य है,  
जो तीन दिन के भीतर स्नेहवस्ति के योग्य  
है, उनका भी वर्णन किया गया है । तथा  
इसमें स्नेहवस्ति की विधि और मात्रावस्ति  
की विधि भी वर्णन की गई है ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां आग्निवेशाधिरनिता-  
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि-

स्थाने स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातो नेत्रवस्तिव्यापादिकां सिद्धिं व्या-  
ख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि अ-  
ध्यायका वर्णन करेंगे ॥

अथ नेत्राणि वस्तींश्च शृणु वर्यानि कर्मसु  
नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्य व्यापदः सचिकित्सि-  
ताः ॥

अर्थ—चिकित्सा में प्रयोग न किये जाने  
के योग्य नेत्र और वस्ति तथा अज्ञान के  
हाथ से प्रयुक्त की हुई वस्तिनलकी विपत्ति  
और फिर उन रोगों में जो २ चिकित्सा  
कर्तव्य हैं, उन सब का वर्णन विस्तारपूर्वक  
किया जाता है ॥

वर्जित वस्तिनल ।

ह्रस्वदीर्घतनुस्थूलजीर्णशिथिलबन्धनम् ।  
पार्श्वछिद्रं तथा चक्रमष्टौ नेत्राणि वर्जयेत् ॥

अर्थ—ह्रस्व, दीर्घ, पतला, मोटा, पुराना  
शिथिल बन्धन, पार्श्वछिद्र ( जिसके इधर  
विधर छेद हो ) और छेदा, ये आठ प्रकार  
के वस्तिनल वर्जित हैं ॥

ह्रस्वादि वस्तिनलके उपद्रव ।

अप्राप्त्यतिगतिसोभकर्मणः प्रणयनस्य च ।  
गुदपीडागतिर्जिस्राते पांशोपायथाक्रमम् ।

अर्थ—वस्तिनल छोटा होने से उचित  
स्थान पर नहीं पहुँचता है । दीर्घ होने से  
उचित स्थान से ऊँचा खला जाता है ॥  
पतला होने से, क्षोभ को प्राप्त होता है ।  
स्थूल होने से, वस्ति मूलमार्ग की खींचती



है। पुराना होने से भीतर जाकर दृढ़जाता है। शिथिल बन्धन होने से स्राव होता है। पार्श्व में छिद्र होने से गुदा को पीड़ित करता है और टेढ़ा होने से वस्ति की गति टेढ़ी होती है ॥

यजित वस्ति ॥

विषमछिद्रमांसलस्थूलजालीकवातलाः॥

छिन्नः क्लिन्नश्चतानष्टौवस्तिनकर्मसुवर्जयेत् ॥

अर्थ—विषम, सछिद्र, मांसल ( जिसका चमड़ा उड़कर केवल मांस रह गया हो ), स्थूल, जालीक [ जालयुक्त ], वातल [ वायुयुक्त ], छिन्न [ फटी हुई ] और क्लिन्न [ गीली ] ये आठ प्रकार की वस्ति यजित हैं ॥

विषमादिवस्तिषोके उपद्रवः ।

गतिवैषम्यविलसत्त्वत्तान्द्र्यदौर्गन्धनिस्तवाः॥

फेनिलच्युतिघार्यस्त्ववस्तिः स्युर्वस्तिदोषतः ॥

अर्थ....विषम वस्ति होने से वस्ति की गति ऊँची नीची होजाती है। मांसल होने से विसृक्, सछिद्र होनेसे स्राव, स्थूल होने से पकड़नेके अयोग्य, जालयुक्त होनेसे स्राव, वातल होनेसे वस्तिके द्रव्यमें झाग, छिन्न होनेसे वस्ति द्रव्य का निकलना, और क्लिन्न होने से वस्ति द्रव्यकी रुकावट, ये उपद्रव होते हैं ॥

प्रणेतृ की अज्ञता के उपद्रवः ।

सयातानिद्रुतोत्तिष्ठतिर्यगुत्तिष्ठकम्पिताः

अतिमन्दगमन्दातिवेगदोषाः प्रणेतृतः ॥

अर्थ—वस्ति की वायुके साथ प्रेरण होना अति उक्षिप्त, टेढ़ापन के साथ उक्षिप्त, कम्पन, अति मन्दागति, मन्द वेग और अतिवेग। ये सब दोष वस्ति के प्रणेतृकी अज्ञानता के हैं ।

अनुच्छासानुबन्धेवादत्तेनिःशेषएववा ॥

प्रविश्यशुभितावायुःशूलतोदकरोभवेत् ।

तत्राभ्यगामुदस्वेदोष्मातघ्नान्प्रशान्तवानिच ॥

अर्थ—वस्ति के प्रयोग करने से पहिले उसे दावकर भीतर की सब वायु निकाल देनी चाहिये। ऐसा न करने से वस्ति शेष जब वायुका अनुबन्ध हो और उसका भी प्रयोग कर दिया जाय तब वायु उदर में प्रवेश करके कुपित होगी तथा शूल और तोद उत्पन्न करेगी। इस जगह तैल का मर्दन, गुदा में स्वेदन कर्म और वातनाशक अग्निपान सेवन करना चाहिये ।

द्रुतादि प्रणीत वस्ति के कर्म ।

द्रुतप्रणीतेनिष्कृष्टेमहसोत्तिसर्पयवा ॥

स्पात्कटीगुदजंघातिवस्तिस्तम्भोरुभेद

नम् । भोजनतत्रवातघ्नस्नेहःस्वेदाःसंघ

स्तयः ॥

अर्थ—वस्ति के शीघ्रतासे प्रयोग करने शीघ्रता से निकलने और सहमा उक्षिप्त होने से कमर, गुदा और जंघा में वेदना होने लगती है, वस्ति में स्तम्भता और ऊरुओं में भेदन होता है। इस में वातनाशक भोजन, स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म तथा अनुपासन और निरुहण वस्तिषोके का प्रयोग करना उचित है ।

तिर्यग्बन्धनकेलक्षण ।

तिर्यग्बन्धावृतद्वारेवदेवापिनगच्छति ॥  
नेत्रेतद्वज्जुनिष्कृप्यसंशोध्यचपुनर्नयेत् ।

अर्थ—टेढ़ेबन्धन से वास्तिका मार्ग रुक जाने पर अथवा और किसी कारण से बद्ध होनेपर, बसित जा नहीं सकती है । इस से उस समय वास्ति के नलको गुदा से अलग कर के उसे सीधा और शुद्ध कर के फिर प्रविष्ट करे ॥

पीडनकेउपद्रव ।

पीड्यमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः ॥

वरःशिरोरुजंसादमूर्ध्वोश्चजनयेद्वली ।

वास्तिःस्यात्तत्रविल्वादिफलश्यामादिभू-  
त्रवान् ॥

अर्थ—वास्ति पीडन पूर्वक वास्ति क्रिया के बिना समाप्त हुयेही जो बसित मुक्त क रदी जाय तौ गुदा में प्रतिहत वायु कुपित होकर हृच्छल, शिरोवेदना और ऊरुसाद उत्पन्न करती है । इसमें विल्वादिपंचमूल मैनफल, त्रिवृतादिगण और गोमूत्र इन से सिद्ध की हुई निरुहणवास्ति देवे ।

कम्पनकेउपद्रव ।

स्यादाहोदवयुःशोफःकम्पनाभिहेतुगुदे ।

कपायमधुराःशीताःसेफास्तत्रसवस्तयः ॥

अर्थ—वास्ति प्रयोग में कम्पन होजाने से गुदा में चोट लगकर दाह, जलन और सूजन उत्पन्न होती है इसमें कपाय मधुर शीतल परिपेक और अनुवासन तथा निरुहण वास्ति का प्रयोग करना ठीक है ॥

अतिमणीतवस्ति के उपद्रव ।

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनादलः ।

स्यात्सातिदाहनिस्तोदगुदयर्चःप्रवर्तनम् ॥

तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरंविच्छावस्तिश्चक्षस्यते

अर्थ—वास्ति के अत्यन्त बलपूर्वक प्रविष्ट करने से गुदामार्ग विदीर्ण होजाता है, इससे वेदना, दाह, सुई छिदनेक समान पीडा और गुदा के मलका निकलना ये लक्षण होते हैं । इसमें घृत, पिचु ( घृत-प्लुत रुई का फोभा ), दूध और पिच्छा-वास्ति हित हैं ।

मन्दप्रणीत वास्ति के लक्षण ।

नवावहितमन्दस्तुवाहस्त्याशुनिवर्तते ।

स्नेहास्तत्रपुनःसम्यक्प्रणयःसिद्धिमिच्छता

अर्थ—मन्दप्रणीत वास्ति गमन नहीं करसकी है किन्तु शीघ्रही प्रत्यागमन करती है । इस जगह पुनः अच्छी रीति से स्नेहन वास्ति का प्रयोग करना उचित है ।

अतिपीडित वास्ति के लक्षण ।

अतिमपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम्

तत्रवस्तिविरेकश्चगलपीडादिकर्मच ॥

अर्थ....अत्यन्त पीडित वास्ति कोष्ठ में रुकजाती है अथवा गले में आजाती है । ऐसी जगह पर अनुवासन वास्ति, विरेचन और गलपीडनादिकर्म करना ठीक है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ॥

नेत्रवस्तिप्रणेतृणांदोषानेतान्समेषजान्  
चेन्नियस्तेनमतिमान्वास्तिकर्माणिकारयेत्

अर्थ—इस अध्याय में वास्तिनल और



नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्  
 स्नेहोत्क्रिष्टशरीरायस्नेहदद्याद्विरेचनम् ।  
 स्नेहस्वेदोपपन्नेचर्जीर्णेमात्रावदौषधम् ॥  
 एकाग्रमनसापीतसम्यग्योगायकल्पते ॥  
 स्निग्धात्पात्राद्ययातोयमयवेनमणुचते ।  
 कफादयःप्रणुयन्तेस्निग्धाद्देहाच्चयौषधैः ।  
 आर्द्रकापुंषथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः ॥  
 तथास्निग्धस्वपैदोपान्स्वेदोविष्यन्दयेत्  
 स्थिरान् ॥

अर्थ—अतिस्निग्ध शरीर वाले को स्नेह विरेचन न देना चाहिये । स्नेह से उत्क्रिष्ट शरीर वालेको रुक्ष विरेचन देवे । पहिले दिन का आहार पचने पर स्नेह और स्वेद से युक्त होकर एकाग्रमन से वमन विरेचन औषधों का पान करने से वमन विरेचन का सम्यक् योग होता है । जैसे चिकने पात्रसे बिना प्रयत्नही पानी निकल जाता है उसी तरह स्निग्ध औषधियों द्वारा स्निग्ध देह से कफादि दोष शीघ्रही निकल जाते हैं ।

जैसे अग्नि गीले काष्ठ को चारों ओर से विष्णुन्दित करदेती है अर्थात् उस के जल को खींच लाती है, उसी तरह से स्वेदन कर्म स्निग्ध देह के स्थिर दोषों को विष्णुन्दित करदेता है ।

स्नेहस्वेद से संशोधन का दृष्टान्त ॥  
 क्रिष्ट्वासोपपोत्क्रिश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा ॥ स्नेहस्वेदस्तथोत्क्रिश्यशोध्यतेशो-  
 धनैर्मलैः ।

अर्थ—वैले पत्र को जैसे साबुन, सजी

आदि से मसल कर जल से धोकर स्वच्छ करते हैं उसी तरह शरीरस्थ मल को स्नेहन स्वेदन से उत्क्रिष्ट करके संशोधन औषधियों द्वारा शुद्ध करते हैं ।

अजीर्ण भोजनमें संशोधन निषेध ॥  
 अजीर्णवर्धतेग्लानिर्विवन्धश्चैवजायते ॥  
 पीतंसंशोधनश्चैवविपरीतमवर्त्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में वमन विरेचनादि औषध के सेवन करने से ग्लानि बढ़ती है और विवन्ध उत्पन्न होजाता है तथा वमन विरेचन की विपरीत गति होजाती है ।

मात्रावत् औषधके लक्षण ॥

अल्पमात्रमहावेगवहुदोषहरं सुखम् ॥  
 लघुपाकं सुखाद्यादं ग्रीणनं व्याधिनाशनम्  
 अविकाराविपन्नश्चनातिग्लानिकरश्चतद्  
 गन्धवर्णरसोपेतं विद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषध अल्पमात्रा होने पर भी महावेगवती होती है, बहुत दोषोंको नाश करनेवाली और सुखदायक होती है, जो लघुपाकी, सुखाद, ग्रीणनकर्त्ता और व्याधिनाशक होता है, जो अविकारी, अव्यापन्न, ग्लानि न करनेवाली, गन्धवर्ण और रससे युक्त है वह मात्रावत् कहाती है ।

सम्यग्योग करनेवाली औषध ॥

विधूयमानसान्द्रोपान्कापादीनशुभोदय  
 नाएकाग्रमनसापीतसम्यग्योगायकल्पते ॥

अर्थ—औषध पीनेके समय कामकोधादि अशुभकर्त्ता मानसिक दोषों को दूर करके जो औषध एकाग्रमनसे सेवन की जाती है उसका सम्यग्योग होता है ।

वमनविरेचन का पूर्वकर्म ॥

नरः श्वो वमनं पाता भुञ्जीत कफवर्द्धनम् ।

सुजरं द्रवभूयिष्ठं लघुशीतं विरेचनम् ॥

उत्किष्टाल्पकफत्वेन क्षिप्तं दोषाः स्रवन्ति हि ।

अर्थ—जिस को प्रातःकाल वमनकारक औषध पान करानी है उसे आज कफका घटाने वाला भोजन कराना चाहिये । जिस को प्रातःकाल विरेचनकर्त्ता औषध पान करानी है उसे आज ऐसा लघु और शीतल आहार देवें जो बहुत शीघ्र ही पच जाय । इस प्रकार आहार सेवन करने से कफके घटने के कारण वमन और घटने के कारण विरेचन बहुत शीघ्र ही होता है ।

शुद्धि के लक्षण ॥

पीतौषधस्य तु भिषक् शुद्धिर्लिङ्गानिलक्षणैव ।

ऊर्ध्वकफानुगेषिते विट् पित्तनुकफे त्वथः ॥

अर्थ—जिसने वमन विरेचन औषध पान करी हो उस के शुद्धि के लक्षण देखने चाहिये । वमन देने के पीछे जो प्रथम कफ उद्गर्ण हो और पीछे पित्त उद्गर्ण हो तो वमन से शुद्धि समझना चाहिये । विरेचनिक औषध के पीछे यदि विट् और पित्त के पीछे कफ आने लगे तो विरेचन द्वारा शुद्धि समझना चाहिये ।

हृतदोषं वदेत्काश्यं दौर्बल्यं चेतुःसलाघवे ।

वामयेक्षततः शेषमौषधं न त्वलाघवे ॥

स्तैमित्येऽनिलसङ्गे च निरुद्गारेऽपि वामये

त् ॥ आलाघवात्तनुत्वाच्च कफस्यापत्परं

भवेत् ॥ वमिते वर्द्धते वह्निशमं दोषाव्रजं

न्ति हि ॥ वमितं लघयेत्सम्यक्जीर्णलिङ्गा

न्यलक्षयन् ॥ तानि दृष्ट्वा तु पेयादिक्रमं कु

र्यान्नलंघनम् ॥

अर्थ—यदि रोगी को कृशता, दुर्बलता और देह में हल्कापन हो जाय तो समझना चाहिये कि वमन ठीक होगाई, उस में जो औषध उस के आमाशय में शेष बची हो उसे वमन कराके निकाल देंगे । यदि देह में हल्कापन न हुआ हो तो औषध को न निकालें । जो देह में स्तिमिता हो, अघोवायु और डकार रुक गई हो तो भी वमन करावें । जब तक देह में हल्कापन न होगा और थोड़ा सा भी कफ रहेगा तब तक व्याधि रहेगी, वमन कराने के पीछे अग्नि बढ़ती है और दोष सब शान्त हो जाते हैं । वमन कराने के पीछे भी जो कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण न दिखाई दें तो लंघन करावें यदि कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण दिखाई दें तो पेयादिक्रमका पालन करावें । लंघन कराना उचित नहीं है ।

पेयाके योग्य रोगी ॥

संशोधनाभ्यां शुद्धस्य दृढतदोषस्य देहिनः ॥

यात्यग्रिमन्दतां तस्मात्क्रमेण पेयादिमाचरेत्

अर्थ—जिसका देह वमन विरेचन से शुद्ध होगया है और जिसके दोष सब दूर हो गये हैं उसकी अग्नि मंद पड़ जाती है, इसलिये उसे पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ।

पणादिक्रमं कुर्यात्पेयाभिष्यन्दयोद्धतान्  
अर्थ—जिस मद्यप और यात पित्त रोगी  
का कफ पित्त वमन विरेचन द्वारा शुद्ध हो गया  
है उसे अल्प मात्रा के द्वारा तर्पणादिक्रम का  
पालन करावे । क्योंकि पेया उसको अभि  
ष्यन्दित करती है ।

जीर्ण औषधके लक्षण ॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णोर्जोऽपन  
स्विता ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्धारशुद्धिः जी  
र्णौषधाकृतिः ।

अर्थ—वायु का अनुलोमन, स्वस्थता,  
क्षुधा, तृप्ता, ऊर्जा, मन में प्रफुल्लता, इ-  
न्द्रियों का हलकापन और शुद्ध उकार ये  
सब जीर्ण औषध के लक्षण हैं ।

जीर्णविशिष्ट औषधके लक्षण ।

कृमोदाहोद्गमर्दश्च भ्रममूर्च्छा शिरोरुजा ॥

अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥

अर्थ—बलाति, दाह, अंगमर्द, भ्रम मूर्च्छा  
शिर में वेदना, यातना और बलहानि ये  
सब जीर्णविशिष्ट औषध के लक्षण हैं ।

अकालेऽल्पातिमात्रं च पुराणं न च भावितम् ॥

असम्पक्वसंस्कृतं चैव न्यापयेत्तौषधं द्रुतम् ॥

अर्थ—जो औषध कुसमय पानकी जाय,  
अथवा अतिमात्रा वा अल्पमात्रा वा पुराणी,  
वा अभावित वा अच्छीतरह संस्कार न की हुई  
औषध सेवन की जाय तो उस से शीघ्र ही  
उपद्रव होते हैं ॥

असम्पक्व औषधके दृश उपद्रवः

आध्मानं परिकर्तिश्च सावोद्गमः प्रोर्धः  
जीषादानं सविभ्रंशः स्तम्भः सोपद्रवः कलमः

अयोगादतियोगाच्च दशैताव्यापदो मताः

अर्थ—औषध के अयोग वा अतियोग से  
आध्मान, परिकर्तिका, स्ताव, हृद्ग्रह, अंग-  
ग्रह, जीषादान, विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव  
और क्लान्ति ये दस रोग उपस्थित होते हैं ॥

प्रेत्यभैषज्यवैद्यानां वैगुण्यादातुरस्य च ॥

शुद्धेऽक्लिष्टेन दुर्गन्धामहृद्यमतिवाच्यते ॥

अर्थ—परिचारक, औषध, वैद्या और  
रोगी इनके विगुणता से शुद्ध दोष भी  
उत्क्रिष्ट होकर दुर्गन्ध और अत्यन्त वा  
बहुत अप्रियताको उत्पन्न करते हैं ।

योगः सम्यक्प्रवृत्तिः स्यादतियोगोऽतिव

र्चनम् ॥ अयोगः प्रातिलोम्येन न चाल्पं वा

प्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—औषध का योग होने से दोषों की  
सम्पक् प्रवृत्ति होती है । अतियोग होने से  
अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । औषधका अयोग  
होने से दोषों की प्रतिलोमता के कारण  
दोषों की प्रवृत्ति सर्वथा नहीं होती है अथवा  
थोड़ी होती है ॥

अजीर्ण में विरेचन पानका अवगुणः ॥

श्लेष्मोत्क्रिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यमतिवाच्यम् ॥

विरेचनमजीर्णं च पीतमूर्ध्वमवर्त्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में विरेचन के पान कर-  
ने से कफकी उत्क्रिष्टता के कारण थोड़ा वा  
बहुत ऊपर के मार्ग से निकल जाता है ।

वमनकर्चा औषध से विरेचन ॥

शुयार्तपृदुकोष्ठाभ्यां स्वल्पोऽतिवृष्टकफेन

वा । तीक्ष्णपीतस्थितं शुब्धं वमनं स्याद्वि-

रेचनम्

अर्थ—जिसको भूखलग रही हो, जिसका कोछ मृदु हो वा जिसका कफ बहुत उद्गीर्णन हो उसको तीक्ष्ण वमन कारक औषध के पान करानेसे वह औषध स्थिर और क्षुब्ध होकर दस्त लाने लगती है ।

प्रतिलोम्येन दोषाणां हरणात्तेजकृत्स्नशः  
अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेण यदागच्छति चाल्पशः ॥

अर्थ—इस तरह वमन औषध के विरेचनमें बदल जानेसे प्रतिलोम रीति से दोषों के निकलने पर भी यदि रोगी को किसी प्रकारका कष्ट न हो तौभी वमनका अयोग होता है क्योंकि इस दशामें दोष थोड़े थोड़े वा कष्टसे निकलते हैं ।

पीतौषधोनशुद्धश्चर्जार्णतस्मिन् पुनः पिबेत् । औषधं तु जर्णेऽन्यद्भयं स्यादति योगतः ॥

अर्थ—संशोधन औषध के पान करनेसे यदि रोगी शुद्ध न हो तौ उस औषध के पचने पर फिर वही औषध पान कराना चाहिये । यदि औषध के बिना पचे ही और औषध पान करा दी जायगी तौ अति योग के कारण अन्य भय होगा ।

कोष्ठस्फुग्गुत्तांशत्वालघुत्वं च लभेत् च ।  
अयोगे मृदुवादया दीप्यतीक्ष्णमेव वा ॥

अर्थ—संशोधन औषध के अयोग में कोष्ठका भारापन, हलकापन और बलका विचार कर फिर मृदु वा तीक्ष्ण औषधका पान करावे ।

वमनं न तु दुश्छन्दोऽप्युक्तं विरेचनम् ।  
पाययेत्तौषधं भूयो हन्यात्पीतं पुनर्हि तौ ॥

अर्थ....जिसको वमन कठिनतासे होता है, उसे वमन न करावे । जिसका कोष्ठकड़ा हो उसे विरेचन न देवे । क्योंकि ऐसे मनुष्यों को वमन विरेचन करानेसे प्राणों की हानि होती है ॥

अस्निग्धास्विन्नदेहस्य रूक्षस्यानवमौषधम् ।  
दोषानुत्कलेश्यानिर्हर्तुमशक्तं जनयेद्भदान् ॥  
विभ्रंशश्च यथुहिकांतमसोदशं नंशुशम् ।  
पिण्डकोद्वेष्टनं कण्डूमुखीः सादं विवर्णताम् ॥

अर्थ....अस्निग्ध, अश्वेदित और रूक्ष देह वाले को पुरानी औषध देनेसे दोष उत्क्रिष्ट तौ होजाते है परन्तु निकल नहीं सकते क्योंकि यह कीर्यहीन होती है ॥ तथा रोग उत्पन्न होजाते हैं । ऐसी औषधियोंसे विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दर्शन, पिंडलियोंमें ऐठन, खुजली और ऊरुसाद ये उपद्रव होते हैं ॥

स्निग्धस्विन्नस्पृच्छात्पृच्छादीनामौषधौ पथम् ।  
शीतैर्वास्तब्धमामैर्वा दोषानुत्कलेश्यनाहरेत् ॥  
तानेव जनयेद्गोमानयोगः सर्व एव सः ।  
विशायमतिमांस्तत्र यथोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥

अर्थ....स्निग्ध और स्विन्नरोगी को यदि मात्रा थोड़ी दीजाय अथवा वह रोगी को दीप्ताग्निके कारण पचजाय, अथवा शीतल उपचार और आम द्वारा औषध स्तब्ध होजाय तो वह दोषों को उत्क्रिष्ट कर के निकाल नहीं सकती है । ऐसा होनेसे ऊपर लिखे हुए सम्पूर्ण रोग उपस्थित होते हैं । इसी को औषध का अयोग भी कहते हैं ॥

इसतरह औषध का अयोग समझकर बुद्धिमान् वेष को उचित है कि नीचे लिखी हुई क्रिया का अवलंबन करे ॥

वमनविरचन के अयोगमैउपाय ॥

तैतिललवणाभ्यक्तैरिवन्नंप्रस्तरसङ्घैः ॥

पाययेत्पुनर्जाणैःसमूत्रैर्वानिरुहयेत् । नि

रुहैश्चरसैर्धान्वैर्भोजयित्वा अनुवासयेत् ॥

फलमागधिकादाहसिद्धतैलेनमात्रया ॥

स्निग्धवातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णैश्शोध

येत् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को नमक मिलेहुये तेल से अभ्यक्त कर के प्रस्तरस्नेह और संकरस्नेह द्वारा स्वेदितकरे पहिले औषध वा आहार के पचनेपर गोमूत्र मिली हुई निरुहण वस्ति देवे । तत्पश्चात् जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके अनुवासन देवे । अनुवासन का तेल मात्रावत् मैनफल पीपल और देवदारु इन के फलक और काष्ठ के साथ सिद्ध करना चाहिये । फिर इस रोगी को वातनाशक तैलों से स्निग्ध करके तीक्ष्ण संशोधन देना उचित है ।

अतितीक्ष्णक्षुधार्तस्यमृदुकोष्ठस्यभेषजम् ॥  
दृत्वाशुविद्विपित्तफफान्धातून्विस्त्रावयेद्  
द्रवान् ॥ वर्णस्वरस्यदाहकण्डूशोषंभ्र-  
मंठपाम् ॥ कुर्याच्चमधुरैस्तत्रशेषमौषधमु-  
ल्लिखेत् ॥

अर्थ—क्षुधा से पीडित और मृदु कोष्ठ वाले को तीक्ष्ण संशोधन देने से प्रथम विष्टा पित्त और कफ निकल जाते हैं । वही औषध फिर धातुओं को पिघलाकर स्थावित करती

है तथा वलवर्णनाश, स्वरमंग, दाह, बुन ली, शोष, भ्रम और ठूपा इन उपद्रवों को उत्पन्न करती है । ऐसे स्थलपर मधुरद्रव्यों से मिश्रित वमन देकर विनापची शोष औषध को वमन द्वारा निकाल देना चाहिये । वमनेतुविरक्तःस्पादितैकैवमनंमृदु ॥ परिपेकावगाहाद्यैःसुशीतैःस्तम्भयेच्चतत् ॥ कपायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा । रक्तपित्तातिसारघ्नेर्दाहज्वरहरैरपि ॥

अर्थ—वमन के अतियोग में विरेचन और विरेचन के अतियोग में मृदु वमन देना हित है, तत्पश्चात् शीतल परिपेक और अवगाहनादि द्वारा उसका स्तम्भन करे । कसीली, मीठी और शीतल अन्नपान और औषधी तथा रक्त पित्तातिसारनाशक और दाहज्वर नाशक औषधादिका ध्ययहार कर के स्तम्भन करना चाहिये ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अञ्जनंचन्दनोक्षीरमजामृच्छर्करोदकंमू-  
लाजचूर्णैःपियेन्मन्थमतियोगहरंपरंम् ॥  
शुक्लाभिर्वावटादीनांसिद्धांपेयांसमाक्षि-  
काम् । वर्चःसांग्राहिकैःसिद्धांक्षीरभोज्य-  
ञ्चदापयेत् ॥ जांगलैर्वारसैर्भोज्यापच्छा-  
वस्तिश्चशस्यते ॥ मधुरैरनुवात्यथसिद्धे-  
नक्षीरसर्पिषा ॥

अर्थ—रसोत, रक्तचंदन, खस, इनको पीसकर बकरे के रुधिर और खांड के शर-  
वत के साथ खील के चूर्ण में मन्थ बनाकर पान करने से अतियोग दूर होजाता है । वटादि दूधवाले वृक्षों की टहनियों के अम-



भाग पेया में ढालकर सिद्ध करै फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पानकरै तो अति योग्य दूर होजाता है ॥

मूत्र को संग्रह करनेवाली औषधियां ढालकर सिद्ध कियाहुआ दूध पान करनेसे भी अतियोग दूर होजाता है तथा जांगलमांस रस के साथ भोजन कराना और पिच्छावस्ति भी दैना हित है तथा जीवनीयादि मधुर गणोक्त द्रव्य ढालकर दूध को पकावै फिर उस में से घी निकालकर उसकी अनुयासन वस्ति देवै ॥

ये ऊपर लिखे सब प्रयोग विरेचन के अति योग में हित हैं ॥

वमनातियोगमेंमयोग ॥

वमनस्यातियोगेतुशीताम्युपरिपेचितम् पिबेत्फलरसैर्मन्यसघृतसौद्राशर्करम् ॥

सोद्वारायाभृशं वम्यामूर्च्छायां धान्यमुस्तयोः समधूकाब्जनं चूर्णलेहयेन्मधुसंयुतम्

अर्थ— वमन के अतियोग में शीतलजल के छोटे रोगी के मारे और फलों के रसों के साथ मन्थ बनाकर उस में घी, शहत और शर्करा ढाल कर पान करै । उकार सहित अत्यन्त वमन में और मूर्च्छा में धनियां मोथा, मुलहठी और रसोत इनका चूर्ण शहत मिलाकर चटावै ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः

स्निग्धाम्ललवणाद्यायूपक्षीररसैर्हिताः फलान्यम्लानि खोदयुस्तस्य चान्येऽग्रतो

नराः ॥

अर्थ— वमन करते १ जो जिह्वाभीतर

को घुसगई हो तौ नमक और हृदय प्रिय यूप वा दूध वा मांसरसका केवल धारण करावै । ऐसे स्थलपर खट्टे अनार आदि के फल रोगी को खवावै अथवा रोगी के सामने किसी अन्य मनुष्य को खवावै ।

निःसृतजिह्वामें उपाय ॥

निःसृतांतु तिलद्राक्षाकलकयुक्तामिवेशयेत् ॥

अर्थ— वमन करते करते जो जिह्वा बाहर निकल आई हो तौ जबि पर तिल और दाख का लेप करने से जिह्वा भीतर को चली जायगी ।

वाग्ग्रहमें चिकित्सा ॥

वाग्ग्रहानिलरोगेष्वृतमांसोपसाधितम् ॥

यवाचूतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौ च बुद्धिमान् ॥

अर्थ— वमन करते करते घाणी के रुक जाने पर वा वायुके कुपित होने पर घृत और मांसरसके साथ सिद्ध की हुई पतली यवागू और स्नेह स्वेद का प्रयोग करना चाहिये ।

वमितश्चाविरिक्तश्च मन्दाग्निश्चाविलंघितः ॥

अग्निप्राणविदुद्वर्धकमपेयादिकमभजेत् ॥

अर्थ— वमन विरेचन द्वारा संशुद्ध, मन्दाग्नि और लंघन करने वाले की अग्नि का बल बढ़ाने के लिये पेयादि क्रमका पालन करना उचित है ।

बहुदोषस्य रसस्य हीनाग्नेरल्पमौषधम् ॥

सोदावर्तस्य चोत्लेज्यदोषान् मार्गान् निरुद्धयेत् । भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्ठाभ्यां शिरो रुनम् ॥ श्वासं विष्णुमूत्रवातानां संकुप्य

च च्चदाकणम् ॥

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रुक्ष वा मृदाग्नि वाले को अथवा उदावर्त्त रोगी को अल्पमात्रा में वैरेचनिक औषध का पान कराने से दोष उत्क्रिष्ट होकर मार्गों को रोक देते हैं। इससे नाभि के पास बड़ा अफरा होजाता है, पीठ, पसली और सिर में दर्द होने लगता है। श्वास, विघ्रा, मूत्र और अधोवायु दाहण रीति से रुकजाते हैं ॥

अभ्यङ्गस्वेदवस्त्र्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ उदावर्त्तहरंसर्वकर्माध्मातस्यशस्यते

अर्थ—ऐसा अफरा होने पर तैल मर्दन स्वेद, वस्त्रि प्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक सम्पूर्ण प्रयोग इस जगह हित हैं।

पेटा होने का कारण ॥

स्निग्धेनगुरुकोष्ठेनसामेवलवदौषधम् ॥ क्षामेणमृदुकोष्ठेनश्रान्तेनाल्पवलेनवा ॥ पीतत्वागुदंसाममाधुदोषंनिरस्यति ॥ तीव्रशूलसपिच्छास्त्राकरोतिपरिकर्चिकाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्य को अथवा भारी कोष्ठे वाले को अथवा आमदोष वाले को बलिष्ठ औषध देने से, अथवा क्षीण, मृदु कोष्ठ श्रान्त और अल्पबल वाले को वैसी ही औषध देने से आमसहित दोष उद्गर्ण होकर गुदाके मार्ग से निकलने लगते हैं। तब पेट में अत्यन्त शूल युक्त, पिच्छा युक्त और रुधिर सहित परिकर्चिका वा मरोडा होने लगता है।

पेटकी चिकित्सा ॥

लघनपाचनंसामेरुसोष्णलघुभोजनम् ॥

घृह्णीयोविधिःसर्वःक्षामस्यमधुरस्तथा ॥

अर्थ—इस तरह आमयुक्त दोष में लघन पाचन तथा रुक्ष और उष्ण हलका भोजन हित है। यदि क्षीण पुरुष के ऐसा उपद्रव हो तो उसे घृह्णीय तथा मधुर औषधों का सेवन कराना हित है ॥

आमार्जीणेतुवद्वद्वत्क्षाराम्ललघुशस्यते ॥ पुष्पकासीसमिश्रावाक्षारेणलवणेनवा । सदादिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिके सति ।

अर्थ—आमार्जीण के कारण जो दिवन्ध हुआ हो तो क्षार और खटाई डालकर हलका भोजन प्रशस्त है। जो वायुकी अधिकता हो तो पुष्पकासीस मिश्रित, अथवा क्षार और नमक युक्त अनार कारस मिला हुआ घृत हित है।

दध्यम्लंभोजनेपानेसंपुक्तंदादिमत्वचा । देवदारुतिलानांवाकलकमुष्णाम्बुनापि वेत् ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वाभृत्तं पयः ॥

अर्थ—उसी तरह वायुकी अधिकता होने पर खाने पीने की द्रव्यों में अनारके छिलके के साथ खट्टे दही का सेवन करना चाहिये ॥ अथवा देवदारु और तिलके कल्कको गरम जल के साथ पान करे। अथवा पीपल मूल्, पाफड़ और कदंब की छाल दूध में सिद्ध करके पान करावे ॥

कपायमधुरवस्तिपिच्छावस्तिमथापिवा ॥

यष्टीमधुकसिद्धास्नेहवस्तिमदापयेत् ।

अर्थ—कपाय और मधुर द्रव्यों को वस्ति अथवा पिच्छावस्ति अथवा मुलहृदी के साथसिद्ध को हुई स्नेहवस्ति भी वायुकी अधिकतामें हितहै। अल्पतुवहुदोपस्यदोपानुत्प्लेद्यभेषजम् अल्पार्धस्त्रावयेत्कण्डूशफकुष्ठानिगौरवम् कुर्याद्याग्निवधात्प्लेद्यस्तमित्यारुचिपा ण्डुताम् ॥ परिस्त्रावयेत्तदोपशमयेद्दामयेदपि

अर्थ.... बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को अल्प विरेचन देने से दोष उद्गर्ण होकर थोड़े थोड़े स्त्रावित होते हैं। ऐसा होने से पुज्जली, सूजन, फोड़, भारापन, अग्निनाश लक्ष्मेश, स्तिमिता, अरुचि और पांडुरोग उत्पन्न होते हैं और स्त्राव भी होता रहता है। इस उपद्रव में संशमन औषध देकर दोषों की शान्ति करे, जो संशमन से भी शान्त न हों तब वमन करावे ॥

स्नेहिन्वापुनस्तीक्ष्णशययेद्विरेचनम्। शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्चमदा-

पयेत् ।

अर्थ.... रोगी को स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये। फिर शुद्ध होने पर चूर्ण, आसव, अरिष्ट और संस्कार किये हुए यूपदि का सेवन करावे ॥

पीतौषधस्यवेगानानिग्रहान्मारुतादयः

क्षुपिताहृदयं ग्रावाघोरं कुर्वन्ति हृदयम् ॥

सदिकाकासपार्श्वार्तिदं न्यलालासि विभ्रमैः

जिह्वाखादतिनिःसंशोदन्तान्किटिकदाप

यन् । नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदाशुतंभिपक्

मधुरैः पित्तमूर्च्छां तैकदुभिः कफमूर्च्छितम्। पाचनीयैस्ततश्चास्यदोपशोषविपाचयेत् क्वाग्निश्चचलंचास्यक्रमेणोत्थापयेत्तत्

अर्थ.... वमन विरेचन कर्त्ता औषध को पीकर जो वेगों का निग्रह करता है, उस के वातादेक दोष कुपित होकर हृदय में पहुंचकर घोर हृदयमह उत्पन्न करते हैं। हिचकी, खांसी, पसलीका दर्द, दानता, नेत्र-रक्तता और विभ्रम ये उपद्रव भी उत्पन्न होते हैं, रोगी बेहोश होकर जिह्वा को चयाजाता है दांतों को किडकिडाने लगता है ऐसे समय पर वैद्य को उचित है कि विन घबड़ाये शीघ्र ही वमन करावे। जो रोगी पित्तकी अधिकता से मूर्च्छित हो तब मधुर द्रव्यों से और कफ मूर्च्छित को कटुद्रव्यों के प्रयोग से वमन करावे। फिर जो दोष शेष बचेहों उन्हें पाचनद्रव्यों से पक्व करे। तत्पश्चात् रोगी की जठराग्नि और बल के बढ़ाने का प्रयत्न करे।

पचनेनातिथमतो हृदयं यस्य पीड्यते ॥ तस्मै स्निग्धाम्ललवणं दद्यात् पित्तकफेऽन्यथा।

अर्थ—अत्यन्त वमन करनेके कारण वायु जिस के हृदयको पीडित करे उसको स्निग्ध, नमकांन और खट्टी औषध देनी चाहिये। परन्तु पित्तकफकी अधिकता होनेपर स्निग्ध खट्टी और नमकीन औषध न देनी चाहिये ॥

पीत औषधके वमनानिग्रहमप्युपद्रव।

पीतौषधस्यवेगानानिग्रहेण कफेन वा ॥ रु-

द्धोतिवाविशुद्धस्य गृह्णात्यहानिमारुतः

स्त्वम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्देष्टातिमूर्च्छितैः

तत्रवातहरं सर्वस्त्रोदस्वेदादिकारयेत् ॥

अर्थ—जिसने वमन करानेवाली औषध पानकी हो और वह अपने उस बेग को रोकेले, उसका कफ प्रवल होजाता है और उस प्रवल कफ से वायु रुककर अंगग्रह, स्तम्भ, कम्पन, सुई भिदने कीसी पीडा, अंगसाद, उद्वेष्टन, यातना और मूर्च्छा रोगों को उत्पन्न करती है । ऐसी जगह पर वातनाशक क्रिया तथा स्नेह और स्वेददेना आवश्यकीय है ।

अतितीक्ष्णमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम् ।  
दोषानहत्वाविनिर्मध्यजीवहरतिशोणि-

तम् ॥

अर्थ—लघुदोष वाले के मृदु कोष्ठ में अतितीक्ष्ण औषध का प्रयोग सम्पूर्ण दोषों को दूर करके तथा मन्थन करके जीव शोणित को निकाल देता है ।

शोणित की परीक्षा

तेनान्नमिश्रितंदद्यादायसायधुनेऽपिवा  
भुंक्तेतच्चेद्देज्जीवनभुंक्तेपित्तमादिशेत् ।

अर्थ—तीक्ष्णवमन से जो रक्त निकलता है उसकी यह परीक्षाकरनेके लिये कि यह शोणित जीवशोणित है वा रक्त पित्तका शोणित है, यह काम करना चाहिये कि उस वमनके रुधिरको अन्न में मिलाकर कौए कुत्ते को खवावैजो कुत्ते कौए उसे खाँले तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये और जो न खाँय तो उसे पित्तरक्त समझना चाहिये ।

दूसरीपरीक्षा ।

शुक्लंवाभावितं वस्त्रं साधानं कोष्णवारि  
णा ॥ मसालितं विवर्णस्यपित्तं भुन्दु  
शोणित ॥

अर्थ—दूसरी परीक्षा यह है कि एक सफेद कपड़े को इस रक्त में भिगोकर सुखा लें, फिर इसे थोड़े गरम जल से धोवें । यदि रंगत बिगड़ जाय तो रक्तपित्त का रक्त है, यदि शुद्ध बनी रहे तो जीवशोणित समझना चाहिये ॥

तृष्णामूर्च्छामदार्तस्य कुर्यादामरणात्कि-  
याम् ॥ तस्यपित्तहरांसर्वामतियोगेचया  
मता ।

अर्थ—विरचन के अतियोग में तृष्णा, मूर्च्छा और मत्तता होनेपर मरणपर्यन्त पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा अतियोग में जो जो उपाय कहे हैं वे भी सब करने चाहिये ।

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कजीवतामसृक्  
पाययेताशुसन्धानंजीवाजीवेनगच्छति ।

तदेवदर्भमृदितं रक्तं वांस्तिप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त क्षीण होने पर हिरन, गौ, भैंस वा बकरे का तत्काल नि-  
कला हुआ रक्तपान करावें । इस से निकले हुए जीवशोणित का सन्धान होता है और रोगी भी शीघ्रही सजीव होजायगा । तथा इन्ही पशुओं के रुधिर में दांभ रगड़कर वसित देनी चाहिये ।

श्यामाकाश्मर्यवदरीर्द्धावीरैः मृतं जल-  
म् ॥ घृतमण्डाञ्जनयुतं वांस्ति शीतं प्रदापयेत् ।

अर्थ—अनन्तमूल, खभारी, घेर, दूध, और क्षीरकाकोली इनका कांथ करले- उस कांथ में घृतमण्ड और रसौत मिलाकर शीतल वसित देने ।

पिच्छावस्तिमुशीतिवाधृतमण्डानुवासन  
म ॥ गुदंभ्रष्टं कपायैश्चस्तम्भयित्वा प्रवेश  
येत् ॥ सामगान्धर्वशब्दाश्चसंज्ञानाशेऽ  
स्पकारयेत् ॥

अर्थ—अथवा शीतल पिच्छावस्ति देकर  
घृतमण्डकी अनुवासन देवे ॥ बहुत विरेचन  
होने से जो गुदाभ्रंश होगई हो अर्थात् का-  
च निकलती हो तो उसे क्षीर वृक्षों के क-  
पाय से स्तब्ध कर के भीतर को प्रवेश  
करदेवे । जो रोगी बेहोश होगया हो तो  
सामवेदकी ऋचाओं का गान और सुन्दर  
गायों का शब्द रोगी के सम्मुख करे ॥

पदाविरेचनं पीतं विडन्तमवतिष्ठते ॥ व-  
मनं भेषजान्तं वा कोषानुत्सृज्य नाचहेत् ॥  
तदा कुर्वन्ति कण्डवादीन् दोषाः प्रकुपिता  
गदान् ॥ सविभ्रंशः पुनस्तत्र स्याद्यथाव्या  
धिर्भेषजम् ॥

अर्थ—जो विट्वा के निकल चुकतेही  
विरेचनिक औषध का फल जाता रहे और  
पित्त न निकले, इसीतरह वमन औषध के  
निकलतेही वमन क्रियाका फल जाता रहे और  
कफ का दर्शन न हो तो उस मनुष्य के  
खुजली आदिरोग उत्पन्न होजाते हैं, इसको  
वमन विरेचन औषधों का विभ्रंश कहते हैं।  
पीतं स्निग्धेन सस्नेहं तदोषान् मार्दवाद्बुध-  
तम् ॥ नवाहपतिदोषास्तु स्वस्थानात्स्व-  
भयेच्छ्रुतान् ॥ वातसङ्गदस्तम्भशूलैः  
क्षरति चाल्पशः ॥ तीक्ष्णं वास्ति विरेकं वा  
सोर्ध्वं धितपाचितः ॥

अर्थ—जो स्निग्ध मनुष्य स्नेहयुक्त वि-

रेचन पानकरे तो वह विरेचन मृदुता के  
कारण दोषों से रुकजाता है और अपने  
स्थान से हटेहुए दोषों को भी स्तम्भित कर  
देता है, इससे वातविक्रम, गुदस्तम्भ  
और गुदशूल होता है, उसः के मल थोड़ा  
थोड़ा निकलता है । ऐसी जगहपर तीक्ष्ण  
वमन विरेचन वा लघन पाचन हित होता है ।  
रूक्षां विरेचनं पीतं रूक्षेणाल्पवलेन वा ॥  
मारुतं कोषयित्वा शुक्रव्याध्यां पानपत्रवा-  
न् ॥ स्तम्भशूलानि घोरानि सर्वाङ्गानि पु-  
मुहयतः ॥ स्नेहस्वेदादिकस्तत्र कार्यो वा  
तहरो विधिः ।

अर्थ—रूक्ष वा थलहीन मनुष्य जो रूक्ष वि-  
रेचनका पान करे तो वह विरेचन वायु को  
कुपित करके घोर उपद्रवों को उत्पन्न करता है  
इससे सम्पूर्ण देह में घोर स्तम्भ और शूल  
होते हैं । इस में वातनाशक स्नेहन स्वेदन  
विधि करनी चाहिये ।

स्निग्धस्य गुरुकोष्ठस्य मृदुत्वलेदयौ पथक फ-  
पित्तं वातं च संरुध्य सतन्द्रागौरवं कलमम् ॥  
दौर्बल्यञ्चाङ्गसादञ्च कुर्पादाधृतदुल्लिखे-  
त् ॥ लघनं पाचनं चात्र स्निग्धे तीक्ष्णं च शो-  
धनम् ॥

अर्थ—जो स्निग्ध और भारी कोष्ठवाला  
मनुष्य मृदु औषध का पान करे तो वह  
औषध उसके कफको उत्क्रिष्ट कर और वात  
पित्त को रोककर तन्द्रा, भारापन, क्लान्ति,  
दुर्बलता और अङ्गसाद को उत्पन्न करती  
है । इस में उस औषध को शीघ्रही वमन  
द्वारा निकलवा देवे, फिर लघन और पाचन

द्वारा सिग्धता और गुरुता को दूर करके  
तक्षिण विरचिन देवै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन  
तत्रश्लोकौ ।

इत्येताव्यापदः प्रोक्ताः सर्वाहिसचिक्कि-  
त्सिताः ॥ वमनस्य विरेकस्य कृतस्याकुश-  
लैर्नृणाम् ॥ एतान् मित्राय मतिमानवस्या  
धैवतस्वतः । कुर्यात्संशोधनं सम्यगारो-  
ग्यार्थं नृणां सदा ॥

अर्थ—इस अध्याय में अप्रवीण वैद्य द्वारा यमन विरेचन के प्रयोग में जो जो व्याधियाँ होजाती हैं वे सब चिकित्सा सहित वर्णन की गई हैं । बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि इन घातों को और अवस्था को जानकर आरोग्य की अभिलाषासे मनुष्यों को यमन विरेचन देवै ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अभिनेशविरचिता-  
यां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धि  
स्थानेयमनविरचनव्यापत्तिसिद्धिर्नाम  
पटोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातो नस्ति व्यापादिकां सिद्धिं व्याख्या  
स्याम इति हस्माद् भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् खात्रेय घोले  
कि अब हम व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या  
करेंगे ॥

धौपैय्यौदार्यगाम्भीर्यशमादमतपोनिधि  
म् । पुनर्यमुंशिष्यगणःपप्रच्छविनयान्वि  
तः ॥ काःकृतिव्यापदोवरतेःकिंसमुत्था

नलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्नान्  
श्रुत्वातानव्रवीद्गुरुः ॥ ३ ॥

अर्थ—शिव्यगणों ने बुद्धि, धीरता, मीरता, उदारता, क्षमा, दम और तपकी निधि पुनर्वसु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया कि हे भगवन् ! वसिष्ठ के रोग कैसे होते हैं, कितने हैं उन के उत्पन्न होनेके कारण और लक्षण क्या हैं और उनकी चिकित्सा भी क्या है । इन प्रश्नों को सुनकर गुरु उनका समाधान करने लगे ॥

### वस्ति के रोग ।

नातियो गौयलमाध्माताह्विकाहृतमासि  
 क्षता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गार्तिः पारिकर्तः  
 परित्ववः ॥ द्वादशव्यापदोवस्तेरसम्य-  
 ग्योगसम्भवाः । आसामेकैकशोरुपेदि  
 कित्साचनिवोधता॥

अर्थ—अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आप्मान, हिचको, हृदय में धक् २, उर्ध्वता प्रगाहिका, शिरोवदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका परित्ताव । ये बारह रोग वस्ति के हैं, ये सब रोग वस्ति के असम्यक् योग से होते हैं अब हम इन में से प्रत्येकके रूप और चिकित्सा का वर्णन करते हैं, श्रवण करो ।

### अयोगव्यापलक्षण ।

गुरुकोष्ठेऽनिलमायेरुसेवातोल्वणेऽपिवा।  
शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रोघनोऽपिवा॥  
यस्तिः संसोभ्यतंदोषदुर्बलत्वादानिर्हरन्।  
करोतिगुरुकोष्ठत्ववातमूत्रशुद्धगृहम्॥  
नाभिवस्तिरुजंदाहेदृष्टेपेऽवयधुंगुदं। क-  
पट्टगण्डानिवैद्यर्षमरुच्यहिमादिवम् ॥

अर्थ—घातप्राय भारी कौष्ठवाला वा वा-  
ाविक्रम रूक्ष पुरुष इनको शीतल, थोड़े  
रंगकरी, थोड़े स्नेह की, इसी तरह केवल  
तली वा गाढ़ी वस्ति दीजाय तौ यह व-  
स्ति दोषको कुपित करती है परन्तु दुर्बलता  
के कारण उसे निकाल नहीं सकती है, इससे  
कौष्ठ में भारापन, अधोवायु, मल और मू-  
त्रकी रुकावट, नाभिशूल, वास्तिशूल, दाह,  
हृस्लेप, गुदामें सूजन, खुजली, गंठमाला,  
विषर्णता, अक्षि और मन्दानि ये लक्षण  
होते हैं ॥

अयोगव्यापचिकित्सा ।

तत्रोष्णायाः प्रमथ्यायाः पानं स्वेदाः पृथग्वि-  
धाः । फलपत्न्योऽथवा कालं शास्त्राशस्तं  
विरचनम् ॥ यित्वमूलविट्हाक्यवकील  
कुलत्थवान् । सुरादिमूत्रवान् वस्तिः स  
प्राक्पेप्यस्तमानयेत् ॥

अर्थ—इस रोगमें गरम प्रमथ्या पान  
करानी चाहिये, अनेक प्रकारके स्वेदनकर्म,  
फलवर्ष और यदि उचित समय होतौ  
विरचन भी देवै । [ दोषल चावलों को  
फूटकर अठगुने जलमें पककर चौथाई  
शेय रहने पर ग्रहण करै, इसे प्रमथ्या  
कहते हैं ] ॥

बेलकी जड़, निसाध, देवदारु, जी, बेर  
और कुलधी इनका कल्क तथा सुरा और  
गोमूत्र के साथ निरुहण देवै, परन्तु प-  
हिले दीहई वस्तिको प्रथम निकाल लेना  
चाहिये ।

अतियोगव्यापलक्षण ।

स्तिग्धस्त्रिभोऽतितीक्ष्णोष्णोऽपृष्टकोऽप्येति

युज्यते । तस्य लिङ्गचिकित्सां च शोधना

भ्यांसमाभवेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्नेह स्वेदन करने के  
पीछे पृष्टकोष्ठ वाले मनुष्य को तीक्ष्ण  
और उष्ण वस्ति देने से वस्ति का अति-  
योग होता है । वमन विरेचन के अतियोग  
के सदृशहीं वस्ति के अतियोग के लक्षण  
और चिकित्सा होती है ।

अतियोगव्यापचिकित्सा ॥

पृष्ठिनपणीं स्थिरां पत्रं काश्मर्यं मधुकं वलाम् ॥  
पिष्टाद्रासां मधुकं चर्क्षीरेतण्डुलधावनम् ।  
द्राक्षायाः पञ्चलोष्टस्य प्रमादे मधुकं स्पृच ।  
विनीय सगृहं वस्तिं दद्याद्वाहातियोगिने ।

अर्थ—दूधमें चावलों को धोकर उन में  
महुआ का कल्क, वा दाख का कल्क, वा  
जली हुई मृत्तिका, वा मुलहटी का कल्क  
डालकर जो प्रसाद अर्थात् स्पृच्छ पदार्थ  
निकले उसमें पृष्ठिनपर्णी, वा शाखिपर्णी,  
वा पत्रकाष्ठ वा खभारी वा मुलहटी वा  
खरैटी इनमें से एक एक का वा जो सब  
मिलसकें तौ सबका कल्क मिलाकर धीके  
साथ वस्ति देने से अतियोगका दाह नष्ट  
हो जाता है ।

वलमव्यापलक्षण ॥

आमदोषे निरुहणमृदुना दोषैरितः ॥  
रुग्दिमार्गवातस्य हन्त्यग्निमृच्छयत्यपि ।  
रुग्मं विदाहं च्छले मोहं च्छेदयति गौरवम् ॥ कु-  
र्यात् स्वेदं विरुहं स्तं पानं दद्यात्पुष्पाचरेत् ॥

अर्थ—आमदोष में मृदु निरुहण वस्ति  
देने से दोष उद्गर्ण होकर घात के मार्ग

को रोक देते हैं, तथा अग्नि को मन्द कर के मूर्च्छित भी कर देते हैं। इस में क्लान्ति विदाह, हृदयशूल, मोह, अंगडाई और भारापन होता है। इस में रुक्षस्वेदन और पाचन द्वारा चिकित्सा करनी उचित है।

कलमन्यापिचिकित्सा ।

पिप्पलीकतृणोशीरदारुमूर्धाशृतंजलम् ।  
पिवेत्सौवर्चलोन्मिश्रदीपनं हृदिशोधनम् ॥  
वचानागरशुठ्योवादिमण्डनचूर्णिताः ।  
पेयाः प्रसन्नयावास्तुररिष्टेनासवेन वा ।  
दारुत्रिकटुकपथ्यापलाशचित्रकंशठीम् ।  
पिष्ट्वाकुण्डश्चमूत्रेणपिष्टेत्क्षारांश्च दीपना ॥  
नास्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलि  
कम् समूत्रमथवाव्यक्तलवणमधुतैलिकम् ॥

अर्थ—पीपल, रोहिण्यतृण, उशीर, देवदारु, मरोडफली इनके बन्ध में सचलनमक डाल कर पान करने से अग्निसंदापन और हृदय की विशुद्धि होती है  
अथवा वच, सोंठ, कचूर [ सज्जीला = सज्जी और छोटी इलायची पाठान्तर ] इन के चूर्ण को दधि मंडके साथ, वा प्रसन्नाके साथ वा अरिष्ट के साथ, वा आसवके साथ पान करे ।

अथवा देवदारु, त्रिकुटा, हरड, पल्लस च्वाता, कचूर और कूठ इन को गोमूत्र के साथ पीसकर पान करे अथवा सब प्रकार के दीपनकर्त्ता क्षीर पान करे ।

अथवा दशमूल के बन्ध में गोमूत्र मिलाकर वास्ति देवे अथवा गोमूत्र में थोड़ा सानमक तथा शहत और तेल डालकर वास्ति देना चाहिये ।

आध्मानन्यापपट्टक्षण ॥

अल्पवीर्योमहादोषरुक्षेकराशयेकृतः ॥  
वस्तिदोषावृत्तोरुद्धमार्गोरुन्ध्यात्समीरण  
म् ॥ सविमार्गोऽनिलः कुर्यादाध्मानं मर्म  
पीडनम् । विदाहंशुक्रोष्ठस्यमुष्कवंक्षण  
वेदनाम् ॥ रुणद्धिहृदयंशुर्लेरितश्चेतश्च

धावति ॥

अर्थ—कूर कोष्ठवाले बहुत दोषोंसे युक्त रुक्ष मनुष्यों को अल्पवीर्यवाली धरित देने से दोषों से आश्रुतवायु ऊपर के और नीचे के सम्पूर्ण मार्गों को रोक देती है, यह विमार्ग गामी वायु मर्मपीडनकर्त्ता आध्मान उत्पन्न करती है विदाह, कोष्ठ में भारापन, अङ्कोप और वंक्षण में वेदना और हृदय में रोध होता है। और वायु शूल करती हुई पेट में इधर उधर दौडती है ।

आध्मानन्यापिचिकित्सा ॥

फलश्यामादिभिः कुण्डकुण्डालवणसर्पपैः ।  
धूममापवचाकिण्वक्षारचूर्णगुदैः कृताम् ।  
करांगुष्ठनिर्भातियवमध्यानिघापयेत् ॥  
स्त्रभ्यक्तीस्त्रिभगात्रस्यतलाक्तास्तीहेत  
गुदे । अथवालवणागारधूमसिद्धार्थकैः  
कृताम् ॥ विल्वादिश्चनिरुहः स्यात्पीलु  
सर्पपमूत्रवान् ॥ सरलामरदारुभ्यां सि  
द्धं चैवानुवासनम् ।

अर्थ—इस जगह सूत्रस्थान के अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय में कहे हुए मेनफलादि और निसोथ आदि, कूठ, पीपल, संधानमक सरसों, धूमसा, माप, वच, सुराबीज और जवाखार इन सबको पीसकर गुड में सान-



कर हाथ के अंगूठे की बराबर बत्ती बनाकर उस में जौका चून भरदे, इस बत्ती को तेल में भिगोकर रोगीकी गुदा में रख देवै । बत्ती रखने के पहिले रोगीको अच्छी तरह से अभ्यक्त और स्वेदित करले और गुदा में भी तेल लगादेवै । अथवा सेंधानमक, धूमसा और सफेद सरसों इनकी बत्ती बनाकर पूर्ववत् गुदा में रखै । अथवा विस्वादि पंचमूल के काथ के साथ पीछ और सरसोंका कल्क और गोमूत्र मिलाकर निरुहणवस्ति देवै, अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु इन से सिद्ध की हुई अनुवासन वस्ति देवै ।

**हिकाव्यापच्चिकित्सा ।**

मृदुकोष्ठेऽर्धवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हर  
न ॥ कुर्प्यादिकाहिततस्मैहिकाघ्नवृंह-  
णश्चयत् । बलास्थिरादिकाश्मर्यत्रिफला  
गुडसैन्धवैः । सुमसन्नारनालाम्लैस्तैलं  
पक्त्वानुवासयेत् ॥ कृष्णालवणयोरक्षं  
पिवेदुष्णाम्बुनायुतम् ॥ धूमलेहरससी  
रस्वेदाश्चात्रं च वातनुत् ॥

अर्थ—मृदु कोष्ठवाले दुर्बल मनुष्य को तीक्ष्णवस्ति देने से वह वस्ति दोषों को नि-  
फाल कर हिचकी उत्पन्न करती है इस में हिकानाशक और वृंहण औषधदेना हित है । हिचकियों को रोकने के लिये खैरटी, शालिपपर्मादि पंचमूल, खंभारी, त्रिफला, गुड और सेंधानमक इन सबका कल्क एक सेर, तेल चारसेर, प्रसन्ना और अम्लकाजी सोलह सेर इन सबको मिलाकर पाक कर

के अनुवासन देवै । अथवा पीपल और सेंधा नमक दोनों दो तोले लेकर गरम जल के साथ पीने चाहिये । इस में धूम, लेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्न हितकर होते हैं ॥

**हृदयचिकित्सा ।**

अतितीक्ष्णः सत्रातोवानवासम्यक्प्रपीडि-  
तः। घट्टयेद्घृदयं वस्तिस्तत्रकाशकुशोत्कटैः  
स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरवदरीफलैः  
शृतैर्वस्तिर्हितः सिद्धं वातघ्नैश्चानुवासनम्  
अर्थ—वस्तिके अत्यन्त तीक्ष्ण होनेपर अथवा वायुयुक्त होनेपर अथवा ठीक रीति से पीडित न होनेपर वह हृदय में धक्का-  
काइट उत्पन्न करती है । इस में कांस, कुशा और ईख की जड़ का क्वाथ करके इस में अम्लस्कन्ध और लवणवर्गके द्रव्य करीर और बेर डालकर सिद्ध करके वस्ति देवै । तथा वातनाशक औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ।

**ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा ।**

वातमूत्रपुरीषाणां दत्तवेगान्निगृह्यतः ॥  
अतिवापीडितो वस्तिर्मुखेनायाभिर्गमवा-  
न ॥ मूर्च्छाविकारतस्यादौ दृष्ट्वाश्रयिता  
म्बुनामुखम् ॥ सिञ्चेत्पाश्र्वादरं चाधः प्र-  
मृज्याद्वयप्रयेच्चतम् ॥ केशेष्वालम्ब-  
चाकाशेषनुपात्रासयेद्भृशम् ॥ गोखरा  
श्वगजैः सिंहैराजप्रेत्यैस्तथोरगैः । उल्का  
भिरवमन्यैश्च भीतस्याधः प्रवर्तते ॥

अर्थ—अधोवायु, मूत्र और पुरीष के उपस्थित वेगों को रोककर वस्ति ग्रहण

की जाय अथवा वस्ति अत्यन्त पीडित कीजाय  
तो यह मुखके द्वारा बाहर निकल जाती है।  
ऐसा होने पर यदि रोगी को मूर्च्छा रोग  
होजाय तो प्रथमही मुख पर ठंडे जल के  
छींटे मारे। पसली और उदर तथा अधो-  
भाग में मार्जन करे और फिर उसे व्यग्र  
करदे। उसके केश पकड़कर ऊंचे करे  
और धनुष खींच कर उसे डरावे अथवा  
गौ, घोड़ा, हाथी, सिंह, राजकर्मचारी, सर्प  
और उल्का आदि दिखाकर डरावे जिस से  
वस्ति नीचे की प्रवृत्त हो जाय।

वस्त्रपाणिग्रहैः कण्ठोरुन्ध्याभ्रमिषतेतदा  
प्राणोदाननिरोधादिप्रसिद्धतरमार्गगः  
अपानः पवनोर्वास्तिपमाग्नेवापकर्पति ॥  
ततः क्रमुककल्काक्षपाययेताम्लसंयुतम् ।  
औष्ण्याच्चैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्चवस्तिचा-  
स्यानुलोमयेत् ॥ पक्षाशयास्थितेस्निग्धेन  
रूहोदाशमूलिकाः । ययकोल कुलत्थैश्च  
विधेयोमूत्रभायितः ॥ विल्वादिपञ्चमूले  
नसिद्धोवस्तिरःस्थिते । शिरःस्थेनाव  
नधूमः प्रच्छाद्यसर्पपैः शिरः ॥

अर्थ—वस्त्र और हाथ से कंठ को इस  
तरह दबै कि मरने न पावे, इस तरह कंठ  
को दाबने से प्राण और उदान वायुके रुकने  
के कारण अपान वायु का वेग नीचे की  
घट जाता है, इस से वस्ति शीघ्रही नीचे  
की चली जाती है। तत्पश्चात् दो तोले  
सुपारी का कल्क कांजी के साथ पान करावे  
इस कल्क की उष्णता, तीक्ष्णता, और खर-  
ता के कारण वस्ति शीघ्रही निकल आती

है। जो वस्ति पक्षाशय में स्थित हो तो  
उसे निकालने के लिये दशमूलके काथ के  
साथ जौ, बेर, कुलथी का कल्क तथा गो-  
मूत्र मिलाकर निरुहण देवे। जो वस्ति  
हृदय में स्थित होगई हो तो विल्वादि पंच-  
मूल के काथ के साथ निरुहण देवे। जो  
वस्ति शिर में स्थित हो तो नस्य और घूम  
पान का प्रयोग करे और सिरसे ऊपर सरसों  
का छेप करे।

प्रवाहिका व्यापन्नचित्ता।

स्निग्धस्विन्नेमहादोषवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः  
उत्कृष्टयाल्पद्वरेक्षोपजनयेच्चप्रवाहिका  
म् ॥ सवस्तिपायुशोफेनजंघोरुसदनन  
वा । निरुद्धमारुतो जन्तुरभीक्ष्णसंप्रवा-  
हतः ॥ स्वेदाभ्यङ्गान्नि रूक्षांशशोधनीयानु-  
लोमिकान् । विदध्याल्लघचित्त्वात्पुष्टि-  
कुर्याद्विरिक्तवत् ।

अर्थ—यह दोषों से युक्त मनुष्य को  
स्निग्ध और स्विन्न करके मृदु वीर्य और  
अल्पवस्ति का प्रयोग किया जाय तो वह  
सब दोषों को उद्गर्ण करके अल्पदोष की  
निकलती है, इस से प्रवाहिका रोग हो-  
जाता है “ प्रवाहिका उसे कहते हैं जो  
पुरीपोतसर्ग की थोड़ी थोड़ी देर में शंका  
होती है और गल थोड़ासा निकल जाता  
है और पेट में दर्द सा रहता है ॥ इस  
वस्ति से गुदा में सूजन तथा जंघा और ऊरु  
में अवसाद उत्पन्न करती है। रुकी हुई  
वायुके कारण बार बार पुरीपोतसर्ग की  
शंका होती है।

इस में स्वेदन, अभ्यंग, तथा शोधनीय और अनुलोमनकर्त्ता निरुहण देना उचित है। इस तरह रोगी को लघन कराके विरेचन दिये हुए रोगी की तरह पेयादिक्रमका पालन करावै।

**शिरःशूल के लक्षण ।**

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शी-  
तोऽल्पश्चावृतोदोषोवस्तिस्तद्विहितोऽ-  
निलः ॥ मार्गेर्गात्राणिसन्धावनूर्द्धमूर्द्ध-  
न्युपाहितम् । ग्रीवांमन्येचयुक्तातिशिरः  
कण्ठभिक्षत्तिच ॥ वाधिर्यकर्णनादचपी  
नसनेत्रविभ्रमम् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को जो दुर्बल हो और जिस के दोष तीव्र हों और कोष्ठ मृदु हो उसे ठंडी और अल्पवस्ति देनेसे वह वरित दोषों से घिरजाती है, वरित के इसतरह आवृत होनेपर वायु विहत होकर ऊपर को जाती है, वहां जाकर ग्रीवा और दोनों मध्याओं को जकड़ लेती है। सिर और कंठ में भिदने कीसी पीडा होती है। तथा वहरा-  
मन, कर्णनाद ( कानों में शनकार ), पीनस और नेत्रविभ्रम ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

**शिरःशूलचिकित्सा ॥**

कुर्यादभ्यञ्जनंतैललवणेनययाजोषि ॥  
युञ्ज्यात्प्रथमनैर्नस्यैर्धूमैरास्यविरेचनैः ।  
विरेचनैर्निरुहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः  
अर्थ—इसरोगमें त्रिधिपूर्वक तेल और नमक का अभ्यंग करे। तथा प्रथमन, धूम, तथा विरेचन, निरुहणवस्ति और अनुलो-  
मिक वस्तिका भी प्रयोग करे।

( १६२ )

**अंगशूललक्षण ॥**

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्यस्यवास्तिर्विधीयते  
अतितीक्ष्णोऽगुरुश्चैवसोऽतिमात्रं प्रवर्त्तये  
त् ॥ सुतेपुतस्यदोषेषुनिरुद्धस्यातिमात्र-  
शः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिह-  
न्यते ॥ विलोममसमुद्भूतोरुजत्यङ्गानि  
देहिनः । गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजु-  
म्भणैः ॥

अर्थ — जिस रोगी को अच्छी तरह से स्निग्ध और स्विन्न करके अतितीक्ष्ण और मारी वस्ति दी जाती है, उसके दोष वद्धत निकलने लगते हैं। इस तरह दोषों के निकलने पर अत्यन्त निरुहित, स्तब्ध उदावृत्त कोष्ठवाले मनुष्य की वायु प्रतिहत हो जाती है। तब वायु की विलोमताके कारण अंगोंमें शूल होने लगता है। देह में अंग-  
डाई, निस्तोद, भेद, स्फुरण और जंभाई ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

**अंगशूलचिकित्सा ॥**

तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा ॥  
एरण्डपत्रनिष्कायैःपस्तैश्चोपपादयेत् ॥  
यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभ-  
ये । जलादकद्रव्येपक्त्वापादशेषेणतेनच  
कुर्यात्सविल्वतैलोष्णलवणेनानुवासन-  
म् ॥ निरुहणसमाश्वस्तद्रोण्यांसमवगाह-  
येत् । ततोभुक्तवतस्तस्यकारपेतानुवास-  
नम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनविल्वतैलेनवाभि-  
पक् ।

अर्थ—उक्तरोगी के देहपर तेल और न-  
मक का मर्दन करके उसे गरमजल से से-

चन करै तथा अरंड के पत्तों के क्वाथ से  
सेचन कर प्रस्तरस्वेद का प्रयोग करै ॥  
जो, कुलधी, येर, दसमूल इनको अठगुने  
जल में पक्व करके चौथाई शेष रहने पर  
छतार लैवै, फिर इसमें प्रमाण से विल्वतैल  
और सेंधानमक मिलाकर गरम २ से अनुवा-  
सन देवै । तथा निरुहण देकर रोगी के  
स्वस्थ होनेपर जलसे मरीड्डई द्रोणीमें स्नान  
करावै फिर भोजन कराके भोजनके पचनेपर  
अनुवासन देवै । इसमें मुलहटी के तेल का  
वा विल्वके तेलका अनुवासन दियाजाता है ।

**परिकर्तिकाकीचिकित्सा ।**

मृदुकोष्ठाल्पदोपस्यरुक्षतीक्ष्णोऽतिमात्र-  
दानावस्तिदोषान्निरस्याभुजनयेत्परि-  
कर्तिकां ॥ त्रिकबंधणवस्तीनांतोदनाभे-  
रधोरुजम् ॥ विवन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुद-  
निर्लेखनंभवेत् । स्वादुशीतौषधैस्तत्रपय  
इक्ष्वादिभिःशृतम् ॥ यष्ट्याहतिलक-  
ल्काभ्यावस्तिस्पातुक्षीरभोजिनः ॥

अर्थ—ऐसे रोगीको जिसका कोष्ठ मृदु  
हो और दोष भी कमहों उसे रुक्ष, तीक्ष्ण  
और अतिमात्रावाली वस्ति देने से दोषों के  
निकलने पर परिकर्तिका रोग उत्पन्न होता  
है । तथा त्रिक, बंधण और वस्तिमें सुई छि-  
दने कीसी पीड़ा होतीहै, नाभिके नीचे वेदना  
होतीहै, विवन्ध और मलका थोड़ा थोड़ा  
स्त्राव होताहै । वस्तिके अत्यन्त पीड़न कर-  
नेसे गुदा विदीर्ण होजाती है । इस में  
ईश आदि स्वादु और शीतल द्रव्योंके साथ  
ओटायें हुए दूध में मुलहटी और तिलका

कल्क मिलाकर पान करावै । इस में केवल  
दूध का पथ्य हित है ॥

**पित्तरक्त में चिकित्सा ।**

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवाल्बणो-  
ऽधवावस्तिर्लिखतिपायुतुतीक्ष्णोऽतिवि-  
दहत्यापिसविदग्धःस्रवत्यसंपिचंचानेकव-  
र्णवत्सार्यतेबहुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृद्  
आर्द्रशाल्मलिवृन्तस्तुक्ष्णैराजंपयःशृतम् ॥  
सर्पिपायोजितशीतवस्तिमस्मैप्रदापयेत्  
वटादिपल्लवेष्वेपःकल्पोयवतिलेषुच ॥

सुवर्चलोपोदकयोःकर्षुदारेचशस्पते ॥  
गुदसेकाःप्रदेहाश्चशीताःस्युर्मधुराश्चये ॥

रक्तपित्तातिसाररुग्नीक्रियाचात्रप्रशस्पते  
अर्थ—रक्तपित्तमें खट्टी, गरम, तीक्ष्ण

वा नमककी वस्ति देने से गुदा विदीर्ण  
होजातीहै ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर विदाह  
भी होता है ॥ इस तरह गुदा के विदीर्ण  
और विदाह होने पर अनेक रंगका पित्त  
स्त्रावित होता है, तथा बहुत वेग से स्त्राव  
होने पर मूर्च्छा भी हो जाती है ।

इस रोग में सेमर के कच्चे डंठलों को  
कूटकर उनके साथ बकरीका दूध सिद्ध  
करै फिर इस में घृत मिला कर टंडा होने  
पर वस्ति देवै ।

इसी तरह से बट आदि वृक्षोंके पत्तों का  
कल्क अथवा जौ और तिलका कल्क अथवा  
सुवर्चला और पोई अथवा रक्त केनेर इन-  
के साथ दूध ओटाकर घृत मिला कर टंडा  
होने पर वस्ति देवै ।

गुदा में शीतल परिषेक, मधुर द्रव्यों का शीतल लेप तथा रक्तपित्तनाशक और अति-सार नाशक चिकित्सा इसमें करना चाहिये ।

अध्यायका उपसंहार ।

भवति चान्न ॥

इत्येताव्यापदः प्रोक्ता वस्तेः साकृतिभेष-  
जाः ॥ बुद्ध्या कात्स्न्येन नानुवस्तीन्निपुञ्ज-  
न्नापराध्यति ॥ तीक्ष्णत्वं सूत्रविल्लादिलव-  
णचारसर्पपैः ॥ प्राप्तकालं विधातव्यं क्षीराद्यै-  
र्मर्दवं नथा ॥ आपादतलमूर्दस्थानदोषान्-  
पञ्चशयोरस्थितः ॥ वीर्येण वस्तिरादत्तेख-  
स्थोऽर्कोभूरसानिव ॥ यद्वत्कुसुम्भसंभि-  
थाचोयाद्रागंहरत्पटः ॥ तद्वद्द्रवीकृता-  
त्कायाग्निरूहो निर्हरेत्तमलान् ॥

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार वस्ति की व्यापत् उन के लक्षण और चिकित्सा वर्णन की गई है । इन सम्पूर्ण बातों को विचारकर वस्तिका प्रयोग करने से वैद्य अपराध का भागी नहीं होता है ॥

यदि योग्य समज्ञा जाय तौ गोमूत्र, विल्व, मेनफळ, छयण, क्षार और सरसों सिल्लोंकर वस्ति ताँदण करली जाती है ॥ तथा दूध और घृतादिके मिलानेसे वस्ति मृदु होजाती है जैसे आकाश में स्थित सूर्य पृथ्वी के रस को खींचलेता है उसी तरह से मलाशयस्थ वस्ति अपने बाँयसे पाँव के तलुए से लेकर मस्तक के तलुए तकके दोपोंको खींचलेती है जैसे वस्त्र का सूत मिलेहुए जलमें से छलाई को खींच लेता है उसी तरह स्नेहनस्वेदनादिसे

द्रवकी हुई देहमें से निरूहणवस्ति दोपों को खींच लेती है ।

इति श्री भाषाटीका न्विताया अग्निवेशविरचिता यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि-

स्थाने वस्तिव्यापादिका सिद्धिर्नाम

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

—+—

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः प्राप्ततयोगिकां सिद्धिं व्याख्या-  
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ.... तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्राप्ततयोगिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ॥

अथेमानसुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान् मृदन् ॥ कर्मणा विप्लुतानां च वक्ष्यामि मसृतैः पृथक् ॥

अर्थ.... अब हम सुकुमार और परिश्रम से थकेहुए मनुष्योंके लिये जिस तरह मृदु निरूह और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये उनके प्रसृत द्वारा अलग अलग प्रमाणों को कहेंगे ॥

क्षीरात् द्रौमसृतां कायौ मधुतैलघृतात् त्रयः ॥  
खेत्रेण मथितो वस्तिर्वा तघ्नो वलवर्णकृतः ॥

अर्थ.... दो प्रसृत दूध और शहत, तेल तथा घी तीनों मिलेहुए तीन प्रसृत, इन सबको मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवे । इससे घात दूर होजाती है तथा बल और वर्ण बढ़ते हैं ॥

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिः ॥  
विल्वादिमूलकायात्क्षौद्रौलत्यात्क्षौस  
वातनुत् ॥

अर्थ—तेल, प्रसन्ना, शहत और घी  
एक २ प्रसृत, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ  
दो प्रसृत और कुलधी का क्वाथ दो प्रसृत,  
ये सब मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवे  
तो वात दूर होजाती है ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्सौद्रसर्पिणोः  
एकैकः प्रसृतौ वस्तिः स्नेहनीयोऽनिलापहः

अर्थ—पंचमूल का क्वाथ पांच प्रसृत,  
तेल दो प्रसृत, शहत और घी एक एक  
प्रसृत इनको मिलाकर वस्ति देनेसे स्नेहन  
होता है और वादी दूर होजाती है ।

वीर्यवर्द्धननिरुहः ।

सैन्धवार्धाक्षएकैकः क्षौद्रतैलपयोधृतान् ।  
प्रसृतो ह्युपायौ च निरुहः शुक्रकृत् परम्

अर्थ—सैधानमक एक तोला, शहत,  
तेल, दूध और घी एक २ प्रसृत, इसी  
तरह ह्युपा का क्वाथ एक प्रसृत । इन  
को मिलाकर निरुहण वस्ति देनेसे वीर्य  
की अत्यन्त वृद्धि होती है ।

पञ्चतिक्त निरुह वस्ति ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भ  
सः ॥ चत्वारः प्रसृता एको घृतात्सर्प  
कल्कितः । निरुहः पञ्चतिक्तोऽयं मोहा  
भिष्यन्दकुप्यनुत् ॥

अर्थ—परवल, नीमकी छाल, चिरायता,  
रास्ना और सप्तच्छद इनका क्वाथ चार प्र-  
सृत, घी एक प्रसृत तथा उचित प्रमाण से

सरसों का कल्क । इन सब को मिलाकर व-  
स्तिका प्रयोग मोह, अभिष्यन्द और कुट  
को दूर कर देता है ।

क्रिमिनाशक वस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिथुफलमुस्ताखुपणिजात्  
कपायात्प्रसृताः पञ्चतैलादेको विमथ्यता  
न् । विडङ्गपिप्पलीकल्काभिरुहः क्रिमि  
नाशनः ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, सहजने के  
बीज, मोथा और मुखिकपर्णी इनका क्वाथ  
पांच प्रसृत और तेल एक प्रसृत । इनमें  
योग्य प्रमाणसे वायविडंग और पीपल का  
कल्क डोलकर मथ डाले । इस निरुहण  
वस्ति से क्रिमि दूर होजाते हैं ।

दृष्यवस्ति ॥

पयस्येक्षुस्थिरारारस्नाविदारीसौद्रसर्पिः  
एकैकः प्रसृतो वस्तिः कृष्णाकल्को घृपत्त्व  
कृत् ।

अर्थ—क्षीरकाकोली, ईख, शालिपर्णी,  
रास्ना, विदारीकन्द, शहत और घी, इन  
मेंसे क्वाथके योग्यों का क्वाथ और रसके  
योग्यों का रस एक एक प्रसृत लेकर पी-  
पलका कल्क डोलकर वस्ति दीजाय तो  
अत्यन्त दृष्यता होता है ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाक्षिका  
त् ॥ प्रसृताः सर्पपैः कल्कैर्विहसन्नानाह  
भेदनः ॥

अर्थ....तेल, गोमूत्र, दधिमण्ड और अ-  
म्लकाजी एक एक प्रसृत और सरसों का

कल्क इनकी वस्ति देनेसे विष्टाका विन्ध और आनाह दूर होजाते हैं ।

श्वदंष्ट्रादभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरातया ॥  
प्रमृताः पञ्चद्वय्याकौन्तीमागधिकासि  
ता । कल्कोवस्तिःसमानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरो  
मतः ॥

अर्थ—गोखरू, पालान भेद और अरंड की जड़ इनका क्याथ तीन प्रसृत, तेल एक प्रसृत, और सुरा एक प्रमृत इनमें मुलहटी, रेणुका, पीपल और मिर्चा इनका कल्क उचित प्रमाण से ढालकर वस्ति देवै । यह वस्ति आनाह और मूत्रकृच्छ्रमें अत्यन्त उत्कृष्ट है एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रमृतानव ॥

अर्थ....ये जो ऊपर नौ प्रकार की वस्ति कही गई हैं, इनमें से धानमक ढालकर कुछ गरम कर लेनी चाहिये और फिर इनका प्रयोग करना चाहिये ॥

मृदुवस्तौजडीभूवेतीक्ष्णोऽन्यावस्तिरिष्य  
वे ॥ तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापन  
मेवचा

अर्थ....मृदुवस्ति जब निकाम होजाय तब तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहिये, तथा तीक्ष्ण वस्तिके प्रयोगसे रोगीके विकर्षित होने पर मधुर द्रव्योंके द्वारा आस्थापन करना हित है ॥

वातोपमृष्टस्योष्णैःस्युर्गुदादाहादयोयदि  
द्राक्षाम्युनात्रिहृत्कल्कंदद्यादोपानुलोम  
नम् ॥ तद्विपिचशकृद्वातानहृत्वादाहादि  
कानुजयेत् ॥

अर्थ—जो वातरोगी मनुष्य को तीक्ष्ण

वस्ति देने से गुदा में दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो दाख के क्याथ के साथ नि-  
सोधका कल्क पान करावे । इससे दोषों का अनुलोमन होताहै और पित्त, विष्टा और वायु दूर होकर दाहादि उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

शुद्धश्चापिपिवेत्सीतांयवागूंशर्करायुताम् ।

अर्थ—इस तरह रोगी के शुद्ध होने पर उसे शीतल यवागूं में शर्करा मिलाकर पान करावे ।

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणव्रिदकःसभ  
क्षयेत् । मापयूपेणकुलमापान्पिवेदध्ययवा  
सुराम् ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचनसे जिसका वि-  
ष्टा क्षीण होगयाहो उसे माययूपके साथ कुलमाय का भोजन देवै अथवा दही वा सुरा का पान करावे ।

सामंभेदतिसार्येतप्रतिशूलैररोचकी । स  
तदाहपुपाकुष्ठनतदाखचाःपिवेत् ।

अर्थ—वस्ति देने से पीछे शूल, अरु-  
चि और आमोतिसार हों तो हाऊबेर, कूठ, तगर, देवदारु और वच इनका चूर्ण पान करे ।

शकृद्वातमसृक्पित्तकफंवायोऽतिसार्येत ।  
पकंस्तत्रस्ववर्गीयंवास्तिःश्रेष्ठंभिपगितम्

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे विष्टा, अ-  
धोवायु रक्त पित्त और कफ अत्यन्त नि-  
कलता हो. तो अतिसारनाशक द्रव्यों से सिद्ध कीहुई वस्तिका प्रयोग अत्यन्त हित करहै ॥

पण्णामेपांसिंसर्गात्तत्रिंशद्भेदाभवान्ति ॥  
केवलैः सह पट्विशद्विद्यात्सोपद्रवानापि ।

अर्थ—आम, विष्टा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन दो दो के मिलने से पन्द्रह भेद होते हैं तथा केवल आमदि छः और नौ उपद्रव जो आगे वर्णन किये जायेंगे इन सब के मिलने से तीसभेद होते हैं ।

नौ उपद्रव ॥

शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान्  
सत्पण्णोदाहमूर्च्छादींश्चैपांविद्यादुपद्रवान् ।

अर्थ—उपद्रव नौ प्रकारके होते हैं यथा-शूल, प्रवाहिका, अध्मान, परिकर्त्तिका अरुचि, ज्वर, तृष्णा, दाह और मूर्च्छा ॥ तथा भोजनमनकाट्येव्योपाम्ललवणैर्भुतम् ॥ पाचनशस्यतेवास्तिरामेहिपतिषिध्यते ॥

अर्थ—आमातिसारमें त्रिकुटा, खाटाई और नमक के साथ घमन कराना उचित है ॥ अथवा पाचन देनाभी हित है परन्तु आम में वस्ति देना अहित है ॥

वातघ्नग्राह्यर्गैर्वैवस्तिः शकृतिशस्यते ।  
स्वादुम्ललवणः शस्तः स्नेहवस्ति समीरणे  
रक्तेरक्तेन पित्ते सैकपायः स्वादुतिक्तकैः

अर्थ—विष्टा के अतिसार में वातनाशक और संप्राही वर्गकी औषधें देवें । वातातिसार में स्वादु, अम्ल और लवण द्रव्यों की स्नेहनवस्ति देवें । रक्तातिसार में वकरे आदि के रक्तकी वस्ति देवें । पित्तरक्त में कपाय, स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥ कफातिसार में कपाय, कटु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥

सार्धमाणेकफेवस्तिः कपायकटुतिक्तकैः ।  
शकृतावायुनाचामेतेनवर्चस्यथाऽनिले ॥  
संसृष्टेऽन्तरपानस्यादुव्योपाम्ललवणैर्भुतम् ॥

अर्थ—आमविष्टा से युक्त अतिसारमें वा आमवायुसे संसृष्ट अतिसारमें वस्ति कफसे पीछे त्रिकुटाका चूर्ण, काजी और सेवानमक पान करावें ।

पित्तेनामं संसृजावापितपोरामेनवायुनः ॥  
संसृष्टयोर्भवेत्पानं सव्योपस्वादुतिक्तकम्

अर्थ—पित्त और आमके संसर्ग युक्त अतिसार में अथवा रक्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें, पित्तरक्त आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें त्रिकुटा, स्वादु और तिक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिये ।

तथामेकफसंसृष्टेकेपायव्योपातिक्तकम् ॥  
आमेतनुकफेव्योपकपायलवणैर्भुतम् ॥

अर्थ—आमकफातिसारमें कपाय, त्रिकुटा और तिक्तद्रव्यों का सेवन करे । तथा आमसंसृष्ट-अलकक में त्रिकुटा, कपाय और नमक का सेवन हित है ॥

वातेनविशिपित्तेचापिदृष्टिपित्तास्तेस्तथानिले ॥  
मधुराम्लकपायः स्यात्संसृष्टेवस्ति रक्तमः ॥

अर्थ—वातसंसृष्ट विष्टातिसारमें अथवा वातपित्तातिसार में अथवा वातापित्तयुक्त विष्टातिसारमें वातयुक्त पित्तरक्तातिसारमें मधुर, अम्ल और कपाय द्रव्योंकी वस्ति देना हित है ।



शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तापित्तयोः।  
वस्तिरन्योन्यसंसर्गकपायस्वादुतिक्तकः ॥

अर्थ—विष्टा और रक्त अथवा विष्टा और  
पित्त अथवा रक्त पित्त इनके अतिसारमें अ-  
थवा तीनों के सान्निपातिक अतिसारमें कपाय  
स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै ।  
कफेनविंशपित्तेवाकफेविट्पित्तशोणितैः।  
व्योपतिक्तकपायःस्यात्संसृष्टवस्तिरुत्तमः  
अर्थ—कफविष्टातिसारमें वा कफपित्ताति-  
सार में तथा कफ, विष्टा, पित्त और रक्तके  
अतिसार में त्रिकुटां, तिक्त और कपाय  
द्रव्यों की वस्ति हित है ।

स्वाद्वस्तिव्योपतिक्ताम्लःसंसृष्टोवायुना  
कफं ॥ मधुरव्योपतिक्तस्तुरकंकफविमू-  
च्छिते ॥

अर्थ—वात कफातिसार में त्रिकुटा और  
तिक्त अम्ल द्रव्यों की वस्ति हित है । तथा  
कफ रक्तातिसारमें मधुर, त्रिकुटा और  
तिक्त द्रव्यों की वस्ति उत्तम है ।

मास्तेकफसंसृष्टव्योपाम्ललवणोभवेत् ॥

वस्तिर्वातिनरक्तेतुकार्यःस्वाद्वम्लतिक्तकः

अर्थ—कफसंसृष्ट वातातिसारमें त्रिकुटा  
अम्ल और लवण द्रव्योंकी वस्ति देवै ।

तथा वातसंसृष्ट रक्तातिसारमें स्वादु, अम्ल  
और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देनी चाहिये ॥

त्रिचतुःपञ्चपड्याग्निवमेवबिकल्पयेत् ॥

युक्तिश्चैपातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृतः

अर्थ—इसीतरह से आम, विष्टा, वायु  
पित्त, रक्त और कफ इन छः मलों के तीन  
तीन, चार चार, पांच पांच और छःदोषों

के मिलने से बीस प्रकार के उपद्रव होते  
हैं, यथा आमविष्टावात, आमविष्टापित्त, आम  
विष्टारक्त, आमविष्टाकफ, विष्टावातपित्त,  
विष्टावातरक्त, विष्टावातकफ, वातापित्तरक्त,  
वातपित्त कफ और पित्तरक्त कफ । चार ३  
दोष वाले यथा आमविष्टा वातपित्त, आम  
विष्टावातरक्त, आमविष्टावात कफ, विष्टा  
वातापित्तरक्त, विष्टावातपित्तकफ और वात  
पित्तरक्तकफ ॥ पांच पांच दोष वाले यथा  
आमविष्टावातपित्तरक्त, आमविष्टावातपित्त  
कफ और विष्टावातपित्तरक्त कफ ॥ छःवाला  
एक, यथा—आमविष्टावात पित्तरक्तकफ ॥  
अतिसार में कही हुई यही युक्ति सब  
रोगोंमें स्मरण रखनी चाहिये ॥

युगपत्पट्टसंपण्णांसंसर्गपाचनंभवेत् ॥  
निरामाणानपञ्चानांविस्तिपाइसिकोमतः

अर्थ—आमविष्टावातपित्तरक्तकफ इन  
छःओंके संसर्ग में स्वादु अम्ललवणकटु  
तिक्त कषाय इन छःओंका एक साथ प्रयोग  
करने से मलका पाक होता है तथा आमर-  
हित अन्य पांच उपद्रवों के संसर्गमें छःओं  
रसोंकी वस्ति हित है ।

उदुम्बरशलाद्निजम्बवाभ्रोदुम्बरत्वचः।

शंखसर्जरसलाक्षाकर्मचपलांशिकम् ॥

पिप्पलैःसर्पिषःप्रस्थंसीराद्विशुणितं पचेत्

अतीमारोपुसर्वेषुपेयमेतद्यथावलम् ॥

अर्थ—सूखा हुआ गूलर, जामनकी छालें  
आमकी छाल, मूलरकी छाल, शंखका चूर्ण,  
रौंछ, लाख और कदन अलग २ एक एक

पल लेकर पीसलेहै इस में एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावै । इस को सब प्रकारके अतिसारोंमें बलके अनुसार पान कराना उचितहै ।

कच्छुराधातकीविल्वसमंगारक्तशालिभिः  
मसूराश्वत्थशुंगैश्चयवागूःस्याज्जलेनृतैः ॥

अर्थ—कैचके बीज, धायके फूल, बेलगिरी, लज्जादू, रक्तशाली, मसूर और पाँपलके पृक्षकी डठल इनके क्वाथ के साथ सिद्ध कर के यवागू पीने से अतिसार दूर हो जाता है बालोदुम्बरकद्वंगसमंगामुक्षपल्लवैः ।

मसूरधातकीपुष्पबलाभिश्चतथाभवेत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, गूलर, श्यानाक, लज्जादू, पाफडके पत्ते, मसूर, धाय के फूल और खरैटी इनके क्वाथके साथ पूर्ववत् यवागू पान करै स्थिरादीनांवलादीनांश्क्ष्वादीनामथापि वा । काथेपुसमसूराणांयवागूःस्यात्पृथक्पृथक् ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, अथवा वलादि गणोक्त द्रव्य, अथवा श्क्ष्वादि गणके द्रव्योंके क्वाथके साथ मसूरकी यवागू पान करै कच्छुरामूलशाह्यादितण्डुलैरुपसाधिताः दधितक्रारतालाम्लक्षीरैर्विष्टुरसेऽपिवा शीताःसशर्करासौद्राःसर्वातीसारनाशनाः संसर्पिर्मरिचाजार्गमधुरालवणाःश्लिवाः ॥

अर्थ....कैचकी जडके क्वाथ के साथ शालीतंडुलोंकी यवागू अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखके साथ सिद्ध की हुई यवागूके ठंडा होने पर उसमें चीनी और शहत मिलाकर पान करनेसे सब प्रकार

के अतिसार दूर होजातेहैं । सब प्रकारकी यवागू में घी, काली मिरच, जीरा, मधुर द्रव्य और नमक ये मसाले भी डाल देने चाहिये ।

अध्यायकाउपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरानं वस्तिश्चमात्र  
तेकोष्णः ॥ शीतंतिक्तकपायंमधुरंपित्तं  
चरक्तेच । तिक्तोष्णकपायकटुश्लेष्मणि  
संग्राहिवातनुच्छकृति ॥ पाचनमामेपा  
नंपिच्छासृग्वस्तयोरक्ते । अतिसारात्तम  
त्युक्तंमिश्रद्वन्द्वादियोगेज्वपिच ॥ तत्रो

द्रेकविशेषादोपेपपक्रमःकार्यः ।

अर्थ....धातमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषध सेवन करनी चाहिये और वस्ति कुछ कुछ उष्ण होना चाहिये । पित्त और रक्तमें शीतल, तिक्त, कपाय और मधुर औषधों का सेवन हितहै । कफमें तिक्त उष्ण, कपाय और कटु द्रव्य सेवन करने चाहिये । मलमें संग्राही और वातनाशक औषधों का सेवन हित है । आममें पाचन द्रव्योंका सेवन हितहै । रक्तमें पिच्छा वस्ति और रक्त वस्तिका सेवन उत्तम है । इसी तरहसे द्वन्द्वजादि और साक्षिपातिक अतिसार में भी समझना चाहिये । मिश्रित दोषोंमें जिस दोषकी अधिकता दीखे पढ़े उसीके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

मास्रतिकाःसंख्यापत्क्रियानिरूहास्तथा  
तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंश्चो  
कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ....इस प्रासृतिकासिद्धि अध्याय में सम्पूर्ण प्रासृतिक योग, जुदे २ उपद्रव, उनकी जुदी २ चिकित्सा, अतिसार को दूर करनेवाली भिन्न २ प्रकारकी निरुद्धण वास्ति, रसोंकी कल्पना, घृत और यथागु वर्णन कियेगये हैं ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशधिरचिता-  
यां चरकप्रासृतिसंस्कृतायां सांहितायां सिद्धि-  
स्थाने प्रासृतियोगिकासिद्धिर्नामा-

एवमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—x—

नवमोऽध्यायः ।

अथातः त्रिमर्माणां सिद्धिं व्याख्यास्याम  
इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि  
अब हम त्रिमर्माय सिद्धि की व्याख्या करेंगे  
सप्तोत्तरमर्मशतं अस्मिन् शरीरे स्कन्धशाखा  
श्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायां स  
मधिकपीडा भवति चेतनानिवर्द्धयै शेष्यात्

अर्थ—हे अग्निवेश ! इस शरीरमें स्कन्ध  
और शाखाओं में आश्रित एकसौसात मर्म  
हैं । इन मर्मों में से किसी एकमें भी पीडा  
होनेसे सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त व्याकुलता  
उत्पन्न होती है क्योंकि मर्मस्थानमें चेतना  
विशेषरूपसे निवद्ध है ॥

मर्मस्थानों में गुरुता ॥

तत्र शाखाश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रि-  
तानि गरीयांसि शाखानां तदाश्रितत्वात् ॥  
स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि दृष्टिस्तिसिरोसितन्मू-  
लत्वाच्छरीरस्या ॥

अर्थ—इनमें से जो मर्म शाखामें ( हाथ

पात्रों में ) आश्रित हैं उनसे स्कन्ध के मर्म  
गुरुतर हैं ॥ ( स्कन्धसिर और धड ) क्योंकि  
शाखा भी स्कन्ध के आश्रित हैं ॥ स्कन्धा-  
श्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंकी अपेक्षा हृदय  
वास्ति और शिर अत्यन्त गुरुतर हैं, क्योंकि  
येही शरीरके मूल हैं ॥

तत्र हृदि दशचधमन्यः प्राणोदानमनोबुद्धि-  
चेतनामहाभूतानि च नाभ्यामराइव प्रति-  
ष्ठितानि ॥

अर्थ—जैसे नाभमें अमरानाडी रहती  
है, उसीतरह हृदयमें दस धमनियां रह-  
ती हैं । प्राण, उदान, गन, बुद्धि और  
चेतना ये भी हृदयमें रहती हैं ॥ शरीर  
के अन्य अंगोंकी अपेक्षा हृदयमें पंचमहा-  
भूत का स्थान भी अधिकतर है ॥

शिरसीन्द्रियाणि इन्द्रियप्राणवाहानि च  
स्रोतांसि सूर्यमिव गभस्तयः संश्रितानि ॥

अर्थ—जिस तरह सूर्यमें सम्पूर्ण किरण  
आश्रित हैं उसीतरह मस्तकमें सम्पूर्ण  
इन्द्रियां और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत  
आश्रित हैं ॥

वस्तिस्तु स्थूलगुदमुष्णकतेवनीशुक्रपूत्रवाहि-  
नीनां नालीनां मध्ये मूत्राधारो मूत्रवाहानां  
सर्वस्रोतसामुद्रधिरिवापगानां प्रातिष्ठिता  
भवति बहुभिश्च तन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैः स्रोतो  
भिर्गगनमिव दिनकरैर्व्याप्तमिदं शरीरम्

अर्थ—स्थूल अंत्र, अंडकोष, सीयन, शुक्रवा-  
हिनी नाडी और मूत्रवाहिनी नाडियों के  
बीच में वस्ति होती है । जैसे समुद्र सब  
नदियों के बीच में रहता है इसतरह यह

वस्ति भी सम्पूर्ण जलवाही स्रोतोंकी मूत्रा-  
धार है अर्थात् मूत्र यहीं आकर इकट्ठा  
होता है ॥ जैसे आकाश सूर्यकी किरण  
जालों से व्याप्त है, उसीतरह से यह सम्पूर्ण  
शरीर भी तन्मूल मर्मसंज्ञक स्रोतोंके जाल  
से व्याप्त है ॥

तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदादाश्वेव मे  
दः स्यादाश्रयनाशादाश्रितस्य नाशः तदु-  
परताद्युधोरव्याधिमादुर्भावस्तस्मादेतानि  
विशेषेण रक्ष्याणि वाह्याभिघाताद्वातादि

दोषेभ्यश्च ॥

अर्थ.... उक्त तीनों मर्मों में से किसी एक  
मर्मका भेद होनेसे शीघ्रही शरीर का भेद  
होजाताहै, क्योंकि आश्रय का नाश होनेसे  
आश्रित का भी नाश होजाता है ॥ इन मर्म-  
स्थानोंके उपघातसे अनेक घोर व्याधियाँ  
उत्पन्न होजाती हैं, इसलिये इन मर्मस्थानों  
की बाह्य अभिघात और आन्तरिक वाता-  
दिदोषों से विशेषरक्षा करना चाहिये ॥

हृदयाभिघातके उपद्रव ।

तत्र हृद्यभिहेतकासश्वासबलक्षयकंठशोष  
प्लोमाकर्षणजिह्वा निर्गममुखतालुशो-  
षापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयः स्युः

अर्थ—इन मर्मों में से हृदय में चोट  
लगने पर खांसी, श्वास, बलकी क्षीणता,  
कंठशोष, प्लोमाकर्षण, जिह्वाका बाहर निक-  
लना, मुखशोष, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद,  
प्रलाप और संज्ञानाश ये उपद्रव होते हैं ॥

शिरमें चोट के उपद्रव ।

शिरस्यभिहेतमन्यास्तम्भादितचक्षुर्विभ्र

ममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहम्  
कगद्रदत्वनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भण  
लालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि  
अर्थ—शिरमें चोट लगनेसे मन्यास्तम्भ,  
आदित, नेत्रविभ्रम, मोह, अंगड़ाई, चेष्टानाश,  
खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, गदगदता,  
चक्षुनिमीलन ( आँखों में झपकीभाना) गण्ड,  
स्पन्दन, जंभाई, लालास्राव, स्वरभंगता और  
मुखका टेढ़ा पड़ जाना, ये उपद्रव होते हैं  
वस्ति में चोटके उपद्रव ॥

वस्तौ तु वातमूत्रवर्चोनिग्रहवक्षणे मेहनव-  
स्तिशूलकुण्डलोदावर्तगुल्मवर्ध्मानिला-  
प्लीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहा-  
दयः ।

अर्थ—वस्ति में चोट लगनेसे अघोत्रायु  
मूत्र और विष्टा का विवन्ध, वक्षणशूल,  
लिगशूल- वस्तिशूल, वात कुंडल, उदावर्त,  
गुल्म, वातप्लीला, उपस्तम्भ, नाभिग्रह, कु-  
क्षिग्रह, गुदग्रह, और श्रोणिग्रह, ये उपद्रव  
होते हैं ॥

वाताद्युपसृष्टानां त्वेषां लिङ्गानि चिकित्सि-  
ते सक्रियाविधीन्युक्तानि । किन्त्वेतानि  
विशेषतोऽनिलाद्राक्षायनि लोहिपित्तक-  
फसमुदीरणे हेतु ॥ प्राणमूलञ्च सच वस्ति  
साध्यतमः । तस्मान्न वस्ति समं किञ्चित्क-  
र्म मर्मपरिपालनम् ॥

अर्थ—चिकित्सितस्थान में वातादि दोषों  
से संसृष्ट इन मर्मस्थानों के उपद्रवों के  
लक्षण और उनकी चिकित्सा विधिपूर्वक  
वर्णन करदी गई है, किन्तु ये तीनों मर्म

वायु से अधिकतर रक्षा के योग्य है क्योंकि वायुही पित्तकफ के उदीर्ण करने का हेतु है । यह प्राणमूल वायु अन्य उपायों की अपेक्षा वास्तिकर्म से अत्यन्त साध्य होती है । इसलिये मर्मों की रक्षाके लिये वास्तिकर्म से अधिक और कोई उपाय नहीं है । तत्रपडास्थापनस्कन्धानविमानेद्वौचानुवासनस्कन्धाविहचविहितानुवस्तीनुवुद्ध्या विचार्यमहामर्मपरिपालनार्थप्रयोजयेद्वा

तव्याधिचिकित्साञ्च ।

अर्थ— इन में से विमानस्थान में छः आस्थापन स्कन्ध और सिद्धिस्थान में दो अनुवासन स्कन्ध वर्णन किये गये हैं । इनका बुद्धि द्वारा अत्यन्त विचार करके महामर्मों की रक्षा के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये । यदि इन मर्मों में वेदना होने लगे तो वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ।

वातोपमृष्टहृच्चिकित्सा ।

भूषधहृपुपमृष्टेवातेहिगुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तमातुल्यस्यरसेनवान्येनवास्लेनहृद्येनवापाययेतस्थिरादिपञ्चमूलरसःसर्शर्करःपानार्थविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवाग्दृष्टागविहितञ्चकर्म अर्थ— वात द्वारा हृदय के उपमृष्ट होने पर हिगुचूर्ण या और किसी प्रकारके नमक के साथ पेया बनाकर विजौरे का रस या और किसी खट्टे द्रव्य का रस डालकर पान करे । शालिपर्णादि पंचमूलके कषाध में शर्करा डालकर पानकरे अथवा विल्वादि पंच-

मूल के काय में सिद्धकी हुई यवागू पान करे । तथा हृदयरोग में कही हुई चिकित्सा भी हित है ।

वातोपमृष्टशिरकीचिकित्सा ॥

मूर्ध्निनुवातोपमृष्टेऽभ्यङ्गस्वेदनोपनाहन स्नेहपाननस्तःकर्मावपीडधूमादीनि ।

अर्थ— वातोपमृष्ट शिर में अभ्यंग, स्वेदन, उपनाहन, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमादिकर्म प्रशस्त हैं ॥

वातोपमृष्टवस्तिर्मेचिकित्सा ॥

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्तयश्च ॥ श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरुहः ॥ विल्वादिभिः स्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलभृतक्षीरैश्च ॥ त्रपुसैर्वास्त्रवराश्वाबीजयवान्दृढीकलिकतोनिरुहः ॥ पीतदारुकसिद्धतैलानुवासनम् । तैलवक्त्रञ्चसर्पिर्विरेकार्थम् ॥

अर्थ— वातोपमृष्ट वस्ति में कुम्भीस्वेद और वर्तिप्रयोगप्रशस्त हैं । त्रिभृतादि दसद्रव्यों का कषाधकरके गोमूत्र में मिलाकर निरुहण देना चाहिये । विल्वादि पंचमूल के कषाध के साथ सरकंडे की जड़, कुशाकी जड़, ईख की जड़ और गोखरूकी जड़ इन से सिद्ध किया हुआ दूध मिलाकर वस्ति का प्रयोग उत्तम है ॥ अथवा खीरा ककडी के बीज, वन अजवायन इनके काय में श्रुद्धि श्रुद्धि का कल्क डालकर निरुह देवे । सरलकाष्ठ डालकर सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन देवे ॥ तथा विरेचन करानेके लिये तिलक डालकर सिद्ध किया हुआ घृत हित है ॥

शतावरीगोक्षुरकटुह्रीकण्टकारिकागुहची  
 पुनर्नवोशिरमधुकादिशारेवालोघ्रश्रेयसी  
 कुशकाशमूलकपायसीरचतुर्गुणवलाटुपर्प  
 भक्तखराद्योपकुञ्चिकावत्सकत्रपुष्पैर्वारु  
 बीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभे  
 दमदनफलकल्कसिद्धतैलमृचरवस्तिर्नि  
 रूहशुद्धस्निग्धस्विन्नस्यवास्तिशूलमूत्रवि-  
 कारहरइति ॥

अर्थ—सितावरी, गोखरू, वडी, कटेरी, छोटी  
 कटेरी, गिलोय, सांठ, उखीर, मुलहठी,  
 निसोधकी जड़, अनन्तमूल, लोध, गजपी-  
 पल, कुशाकी जड़, कांसकी जड़, इन सब  
 द्रव्यों का काथ, क्याथ से चौगुना दूध तथा  
 खैरटी, अडूसा, ऋपमक, धन अजवायन  
 कालाजीरा, इन्द्रजौ, खीराके बीज, कफडी  
 के बीज, शितिमारक, मुलहठी, यच, सोंफ  
 पापाण भेद और मेनफल इन द्रव्यों का  
 कल्क और तेल मिलाकर पाक करे। पीछे  
 रोगी को निरूहित, शुद्ध, स्निग्ध और  
 स्वेदित करके इस तेलकी उत्तर वास्ति देनी  
 चाहिये इस से वास्तिशूल और मूत्रविकार  
 दूर होजाते हैं ॥

मर्मप्रकरण का उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्ताचैतृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः  
 तस्माच्चेपांसदायुक्तः कुर्वीत परिपालनम् ॥

अर्थ—हृदय, मूर्द्धा और वास्ति में  
 मनुष्यों के प्राण रहते हैं। इस लिये युक्ति  
 पूर्वक इन मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

आयातवर्जनं नित्यं स्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम् ।

उत्पन्नासि विधातश्च मर्मणां परिपालनम् ॥

अर्थ—मर्मोंकी रक्षाके लिये नित्य प्रति-  
 चोदसे वचना, स्वस्थवृत्ति का अनुसरण  
 करना और उत्पन्न रोगों का नष्ट करना  
 ये ही उपाय हैं ।

अत ऊर्ध्वविकाराये त्रिमर्माये चिकित्सिते ।  
 नमोक्तामर्मजास्तेषां कांश्चिद्वक्ष्यामि सां प-  
 धान् ॥

अर्थ—जो जो मर्म संबंधी रोग त्रिमर्माय  
 चिकित्सिताभ्याय में वर्णन करने से रहगये  
 है अब उनका चिकित्सा सहित वर्णन  
 किया जाता है ॥

अपतन्त्रकके लक्षण ।

कुष्ठः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थनादूर्ध्वमपद्यते ।  
 पीडयन् हृदयं गत्वा शिरः शरीराच्च पीडयन् ॥  
 नमयेच्चाक्षिपेच्चांगान्युच्छासं निरुणाञ्च  
 च । उच्छसितिसचकृच्छ्रेणस्तब्धासोऽ-  
 यनिपीलनः ॥ कपोतइव कूजं दचनिः सं-  
 ज्ञश्चोऽपतन्त्रकः ॥

अर्थ—अपने उदीर्ण होने के कारणों से  
 वायु कुपित होकर अपने स्थान से ऊपर  
 को जाती है और हृदय में पहुँचकर हृदय  
 को अत्यन्त पीडित करती है, शिर और  
 कनपटी में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती  
 है । अंगों को झुकादेती है और आक्षेपण  
 करती है, श्वास को रोक देती है अथवा  
 श्वास कठिनता से आता है । आँख स्तब्ध  
 होजाती है अथवा आँख झपकी, चली जाती  
 है । कंठ में क्यूतर की गुटरगूँके सदृश  
 शब्द होने लगता है । बेहोशी छा जाती  
 है, इसे ही अपतन्त्रक कहते हैं ।

अपतानक के लक्षण ।

वृष्टिस्तम्भ्यसंज्ञाच्चहृत्वाकण्डेनकृजति  
हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमोहंवृतेपुनः ।

वायुनादारुणंमाहुरेकेतदपतानकम् ॥

अर्थ—नेत्रों का स्तब्ध होना, बेहोशी होना, कण्ठ में कूजन होना, हृदय से वायु के दूर होने पर स्वस्थता होना, तथा वायुके फिर आवृत होने पर अस्वास्थ्य होना ये सब लक्षण दारुण अपतानक के हैं ।  
इवसनःकफवाताभ्यांरुद्धस्तस्यविमोचयेत् । तीक्ष्णैःमधमनैःसंज्ञान्तामुमुक्तामुचिन्दति ।

अर्थ—जिस मनुष्य का श्वास कफ और वात से रुक गया हो उस श्वास को तीक्ष्ण मधमन द्वारा निकालने का यत्न करे । श्वास के खुलने पर चेतनी होजाता है ।  
परिचंशिष्टुबीजानिचिदङ्गचफणिज्झकम्  
एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम्  
अर्थ—कालीमिरच, सहजने के बीज, माषविडंग, फणिज्झक, इनको महीन पीसकर शीर्ष विरेचन दैये ।

तुम्बुरुण्यभयाहिंणुपौंकरंलवणत्रयम् ॥

यवक्वाथाम्युनापेयंहृत्पार्श्वपतन्त्रके ।

अर्थ—धनियां, हरड, हींग, पौहकरमूल, सैधानमक, संचरनमक और विडनमक इन के चूर्ण को जीके काथ के साथ पान करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल और अपतन्त्रक दूर होजाते हैं ॥

हिंमल्लवेतसंशुण्ठीससौर्वर्चलदाडिमम्  
पिबेद्वातंकफघ्नचकर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥

शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्यचकु-  
त्स्नशः । सौर्वर्चलाभयाव्योपैःसिद्धन्तु  
स्याद्भूतंहितम् ॥

अर्थ—हींग, अमलवेद, सोंठ, संचलन मक और अनारका छिलका इनका चूर्ण पान करने से उक्त रोग दूर होजाते हैं, इन में वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया भी हित है । इन रोगों में शोधन-कर्त्ता तीक्ष्णवस्ति पूर्णराति से उपयोगी होती है । तथा संचलनमक हरड और त्रिकुटा इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत भी हित है ।

तन्दारोगकाहेतु ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनात्प्र-  
मात् ॥ शोकाद्व्याध्यनुपश्लाच्चवायुनोदी-  
रितःकफः ॥ यदासौसमदस्कन्धहृदयं  
हृदयाभयान । समावृणोतिज्ञानादींस्त-  
दातन्द्रोपजायते ॥

अर्थ....मधुर, स्निग्ध, भारी और खटे पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, चिन्ता करने से परिश्रम से, शोक से, व्याधि के अनुपग से वायु के कारण कफ उदरिणी होकर जब रोगी के हृदय को आवृत कर लेता है तब हृदय के आश्रयभूत ज्ञान आदि को आवृत करलेता है उस समय तन्द्रानामक रोग उत्पन्न होता है ।

तन्द्रा के लक्षण ॥

हृदयेव्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरव-  
म् । मनोबुद्ध्याप्रसादश्चतन्द्रायांलक्षणं  
मतम् ॥

अर्थ....हृदय में व्याकुलता, याणी में भारापन, चेष्टा में भारापन और इन्द्रियों में भारापन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता ये सब तन्द्रा के लक्षण हैं।

तन्द्रा में चिकित्साक्रम ॥

कफघ्नं तत्र कर्तव्यं शोधनं शमनानि च ॥

व्यायामो रक्तमोक्षश्च भोज्यञ्च कटुतिक्त कम् ॥

अर्थ—तन्द्रारोग में कफनाशक संशोधन तथा रोगों के दुर्बल होनेपर संशमन किया करनी चाहिये यदि यह तन्द्रा अवरादि रोगों से उत्पन्न न हुई हो तो व्यायाम, रक्तमोक्षण और कटु तिक्त द्रव्यों के साथ भोजन भी हित है ॥

वस्तिरोगों के भेद ॥

मूत्रैकसादं जठरं कुण्डलं सोत्सङ्गं संक्षयम् ॥

मूत्रातीतोऽनिलाष्टीला वातवस्त्युष्णमाह  
सौ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविह्वलातो व  
स्ति कुण्डलम् अयोदशे तन्मूत्रस्य दोषास्तां  
लिंगतः शृणु ॥

अर्थ—मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकुण्डल, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रसंक्षय, मूत्रातीत, वाताष्टीला, वात वस्ति, उष्णवायु, वातकुण्डलिका, ग्रन्थि, विह्वला और वस्ति कुण्डल। ये तेरह मूत्र के विकार हैं। अब इनके लक्षणों का वर्णन करते हैं ॥

मूत्रैकसाद के लक्षण ॥

पित्तकफद्वयं वापि वस्तौ संहन्यते यदा ॥

मास्तेन तदा मूत्रैरक्तपीतघ्नं मुजेत् ॥ स

दाश्चेत्सान्द्रं वा सदैर्बालं लक्षणैर्धुतम् ॥

मूत्रैकसादं तं विद्वान्पित्तश्लेष्महरं जयेत् ॥

अर्थ....पित्त वा कफ अथवा दोनों पित्त कफ जब वायुके कारण वस्ति में इकट्ठे होजाते हैं तब छाछ, पीछा और गाढ़ा पेशाव होने लगता है अथवा दाहयुक्त सफेद और गाढ़ा पेशाव होता है अथवा समस्त लक्षणों से युक्त पेशाव होता है ॥ इसे मूत्रैकसाद कहते हैं इसमें पित्तकफनाशक क्रिया करनी चाहिये।

मूत्रजठरकी सहेतु चिकित्सा ॥

विभारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तिनं यदा ॥

पूरयत्युदरं मूत्रं तदा तदनिमित्तं रुक् ॥ अ

पक्तिमूत्रविदुस्तन्मूत्रजठरं वेदेत् ॥ मूत्र

वैरेचनी तत्र चिकित्सां संप्रयोजयेत् ॥ हि

गुद्वृत्तरं चूर्णी त्रिमर्मीये प्रकीर्तितम् ॥ हन्या

मूत्रोदरानाहं ध्मापितं गुदमेद्रयोः ॥

अर्थ—मूत्र के उपस्थित वेगको रोकने से मूत्र प्रतिहत होकर जब वायुके कारण उलटा लौटता है तब उदर को पूरण करके मूत्र वहां स्थित होजाता है और बिना कारण ही वेदना होने लगती है ॥ फिर धीरे २ पाचन शक्ति कम होजाती है और मूत्र तथा विष्टाका वियन्ध होजाता है इसे मूत्रजठर कहते हैं ॥ इसमें मूत्र के विरेचन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। तथा त्रिमर्मीय चिकित्सित अध्यायमें जो द्विरुत्तर हिगुर्चूर्ण वर्णन किया गया है वह भी हित है इसके प्रयोग से मूत्ररोग, उदर रोग, आनाह, अफरा तथा गुदा और लिग के अन्य रोग भी दूर होजाते हैं ॥



ते हैं। इस से वास्ति और उपस्थ में बड़ी वेदना होता है।

**वातकुंडलिका के लक्षण।**

गतिसङ्गादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः ॥  
मूत्रस्पविगुणोवायुर्भग्नव्याधिदकुण्डली।  
मूत्रंविहन्तिस्तम्भभङ्गगौरववेष्टनैः ॥  
तीव्ररुक्मूत्रविट्सङ्गैर्वातकुण्डलिकेतिसा।  
अर्थ....वायु विगुण होकर मूत्राशय और मूत्र के मार्ग को रोक देता है, इससे मूत्र ऊपर को फिर चढ़ने लगता है। यह वायु भग्न और व्याधिद होकर चक्कर खाजाती है, इससे मूत्राघात उत्पन्न होता है। इस रोग में स्तम्भता, दृढ़ने की सी वेदना, भारा पन, ऐंठन, तीव्रशूल, मूत्रविगन्ध और पुरीष विगन्ध ये लक्षण होते हैं। इसे वातकुंडलिका कहते हैं ॥

**मूत्रग्रन्थि के लक्षण।**

रक्तवातकफाददुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम् ॥  
ग्रन्थिकुर्यात्सकृच्छेण सृजेन्मूत्रं तदावृत्तम् ।  
अभ्रमरीसमशूलन्तं मूत्रग्रन्थिप्रचक्षते ।

अर्थ....वायु और कफ के क्षुपित होजाने से विगडा हुआ रुधिर वस्ति के द्वारपर एक दारुण गांठ उत्पन्न करता है ॥ इस गांठसे रुकजाने के कारण मूत्र बड़ी कठिनातासे होता है। इसमें पथरी के समान घोर वेदना होती है। इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥

**विट् विघात के लक्षण।**

रुक्मूर्ध्वलघोर्वातिनोदावृत्तं शकृद्यथा ॥

मूत्रस्रोतः प्रपथेत बिट्समृष्टतदानरः । वि

द्वगन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विद्विघातं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—रुक्म और दुर्बल मनुष्यके वात के प्रकोप से उल्टा फिरा हुआ विट्टा मूत्रवाही स्रोत पर आक्रमण करेला है। ऐसा होने से विट्टा भिला हुआ मूत्र कठिनता से निकलने लगता है और इस में विट्टा कीसी दुर्गन्ध आती है ॥ इसरोग को विट् विघात कहते हैं ॥

**वस्तिकुंडल के लक्षण।**

दुताध्वलहुनायासैरभीघातात्मपीडनात् ।  
स्वस्थानाद्वस्तिरुद्धसंस्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥  
शूलस्पन्दनदाहार्तोविदुर्विन्दुस्रवत्यपि ।  
पीडितः संसृजेच्छारासंस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ।  
वस्तिकुण्डलमाहुस्तघोरशस्त्रविपोषमम् ॥  
पवनमवलमायोदुर्निवार्यमबुद्धिभिः ।

अर्थ—जल्दी चलनेसे, भ्रमण करनेसे, छलांग मारनेसे, परिश्रम करनेसे, चौट लगनेसे, प्रपीडनसे वस्ति अपने स्थानसे उलटी फिरकर गर्भ की तरह स्थूल होकर ठहर जाती है ॥ इस से वस्ति में शूल, स्पन्दन, दाह और वेदना होती है और मूत्र बूंद २ टपककर निकलता है। वस्ति को हाथ से दबाने पर मूत्र की धारा निकलती है परन्तु निकलते समय संस्तम्भन, उद्वेष्टन और बड़ी घोर वेदना होती है। इस रोगको वस्तिकुण्डल कहते हैं, या शस्त्र और विट्ट के समान दारुण रोग है। इस रोग में प्रायः वात की प्रचलता

है । यह रोग निर्वृद्धि वैद्य से अच्छा नहीं होसका है ॥

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता।

श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धमूत्रवर्णनसितम्

अर्थ—इन रोगोंमें यदि वायु पित्त-

न्वित होती है तो दाह, शूल और मूत्र

की विवर्णता होती है ॥ यदि कफान्वित होती

है तो वस्ति में भारापन और सूजन, तथा

मूत्र में चिकनाई, गाढापन और सफेदाई

होती है ॥

श्लेष्मण्डाविलोचस्तिःपित्तोदीर्णो नसि-

द्ध्यति ॥ अविश्रान्ताविलःसाध्यो नचयः

कुण्डलीकृतः ।

अर्थ....जो वस्ति कफ से रुद्ध हो और

कुपित पित्त से युक्त हो वह असाध्य होती

है । परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफद्वारा रुद्ध

न होनेपर भी असाध्य होती है ।

कुण्डलीभूतवस्ति के लक्षण ।

स्यादस्तीकुण्डलीभूतेतृहोहःश्वासम्वच

अर्थ—वस्ति के कुण्डलीभूत होनेपर तृषा,

गोह और श्वास ये उपद्रव होते हैं ॥

दोषाधिनयमपेक्ष्यतान्मूत्रकृच्छ्रहर्जयेत् ।

वस्तिमुत्तरवस्तिचसर्वेषामेवयोजयेत् ॥

अर्थ .... मूत्रतद्वधी इन संपूर्ण रोगों में

जिस दोषकी अधिकता हो उसीके अनुसार

मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी

आविये । इन सब प्रकार के रोगों में उत्तर

वस्ति देना हित है

उत्तरवस्तिप्रत्यक्षण ।

पुण्यनेत्रेवृहेसंस्यान्गुल्ममोत्तरवस्तिप्रकम् ।

जातीपुष्पस्यवृन्तेनसमंगोपुच्छसंस्थितम् ॥

रौप्यंवासर्पपछिद्राद्विकर्णदादशांगुलम् ।

अर्थ—उत्तरवस्ति का नल सुवर्ण का बना-

या जाता है इसका मुख चमेडीके फूल के

डंठल के समान सूक्ष्म होता है और यह

नल गौकी पूंछ के समान बीचमें मोटा

होता है, यदि सुवर्ण कान होसके तो चां-

दी के ही से काम चलजाता है । इसके मुख

का छिद्र सरसों के समान होता है इसकी

लम्बाई बारह अंगुल भी होती है, तथा इस

में दो कर्णिका होती हैं ।

उत्तरवस्तिकीमात्राकाममाण ।

तेनाजवस्तिमुक्तेनस्नेहस्यार्धपलंनयेत् ।

यथावयोविशेषेणस्नेहमात्राधिकल्पया ।

अर्थ—दकंर की वस्ति से भी उत्तर

वस्ति बनाई जाती है । उत्तरवस्ति द्वारा

आधा पल स्नेह दिया जाता है । भवया

अवस्था के अनुसार भी स्नेहकी मात्रा घटून

वा अधिक होसकी है ॥

उत्तरवस्ति के देनेकी रीति ॥

स्नानस्यशुक्तभक्तस्पर्सेनपयसापिवा ॥

मृष्टविष्णुप्रवेगस्यपीठेनानुसमेष्ट्वौ ॥

क्रजोगुरोपचिष्टस्यदृष्टेमेदघृतान्विते ॥

शालाक्यान्निष्पग्नितियमपानिदनावनेत् ॥

नतःशोफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रं प्रवेष्टयेत् । गुदत्र

न्मूत्रमार्गेणपणयेदनुसंघनीम् ॥

अर्थ—रोगीको स्नान कराके मानसम

वा दूध के साथ भाग का मोजन करावे ॥

फिर मटर का न्याग करवा के पुटने के

मगान ऊँच कोमल शासन पर बांधा दिया

देवै परन्तु इसमें रोगीको किसी प्रकार क्लेश न होने पावै। फिर चिकित्सक रोगीके लिंगको दृष्ट और घृताभ्यक्त कर के उसके छिद्र में सलाई डालकर मार्ग को देखै कि मार्ग कहाँ तक ठीक है। यदि सलाई बिना रुके चली जाय तो लिंग के समान उस के भीतर वस्ति का नल प्रवेश करदे ॥ इसके प्रवेश करते समय बड़ीही सावधानी का काम है कहीं ऐसा नहो कि हाथ हिलजाय। प्रवेश करते समय इसका मुख लिंग और गुदाके बीच में जो सीधन होती है, उसकी ओर होना चाहिये।

### वस्ति की गति का वर्णन ॥

हिंस्याद्व्यतिगतं वस्तिदूने स्नेहो न गच्छति ॥

अर्थ—अत्यन्त बेगसे प्रेरित की हुई वस्ति अनिष्ट संपादन करती है और अत्यन्त मन्द बेगसे प्रेरित वस्ति उचित स्थान पर नहीं पहुँच सकती है।

सुखं प्रपीड्य निष्कम्पं निष्कर्षेन्नेत्रमेव च ॥

प्रत्यागते द्वितीयं तु तृतीयं च प्रदापयेत् ॥

अनागच्छन्नुपेक्ष्य स्तुरजनी व्युपितस्य च ॥

अर्थ—जिस तरह निष्कम्पता के साथ वस्ति नल प्रवेश किया गया है उसी तरह से पीडन करके निष्कम्पता के साथ निकाल लेना चाहिये। वस्ति के प्रत्यागत होने पर दूसरी और तीसरी वस्ति देवै। जो वस्ति प्रत्यागत न हुई हो, तो एक रात्रि तक उपेक्षा करनी उचित है ॥

### प्रत्यागमन का उपाय।

पिप्पली लवणागारधूमापामार्गसर्पवैः ।

वार्ताकुरसनिर्गुण्डी शम्पाकैः ससहाचरैः  
मूत्राम्लपिष्टैः सगुडैर्वर्तितकृत्वा प्रवेशयेत् ।

अर्थ—पीपल, संधानमक, धूमता, आंगा के बीज, सरसों, बेगनका रस, निर्गुण्डी, अमलतास का गूदा और सहचरी इनको गौमूत्र और कांजीके साथ पीसकर गुड मिलाकर बत्ती बनाकर लिंगमें प्रवेश करने से वस्ति प्रत्यागमन करलेती है ॥

### वर्ती का आकारादि वर्णन।

अग्रेतु सर्पपाकारापश्चाद्धमापसम्भिताम् ॥

नेत्रदीर्घा घृताभ्यक्तां सुकुमारामभंगुराम् ॥

नेत्रवनमूत्रनाड्यांतु पायीं वांगुष्ठसम्भिताम् ॥

अर्थ—वर्ती का मुख आगेकी ओर सरसों के समान और नीचे की ओर उरद के बराबर होना चाहिये। यह भी वस्ति नल के समान बारह अंगुल लम्बा बनाई जाती है। यह कोमल हो, टूटी हुई न हो और इसपर घी भी चुपड़ देना चाहिये। जो बत्ती मूत्रनाडी में होकर प्रविष्ट की जाती है उसका आकार वस्ति के नल के सदृश होता है और जो गुदामार्ग द्वारा प्रविष्ट की जाती है वह हाथके अंगुठ के समान होती है।

### उत्तर वस्ति में पथ्यादि वर्णन ॥

स्नेहप्रत्यागते ताभ्यां सानुवासनिको विधिः ।

परिहारश्च सव्यापत्तसम्पक्वदत्तस्य लक्षणः ।

अर्थ—स्नेहके प्रत्यागत होने पर वही पथ्यादि सेवन करने चाहिये जो अनुवासन में वर्णन किये गये हैं, उत्तर वस्ति में किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा होजाय तो वही काम करना चाहिये जो अनुवासन संबंधी

उपद्रवोंमें वर्णन किया गया है। सम्यक् प्रदत्त उत्तर वस्ति के लक्षण सम्यक् प्रदत्त अनुवासन वस्ति के सदृश होते हैं ॥

स्त्रीको उत्तरवस्ति ॥

स्त्रीणां चात्तवकाले तु प्रतिकर्षतदाचरेत् ॥

गर्भाशानासुखं स्नेहं तदादत्तेष्वपावृता ॥

गर्भयोनिस्तदाशीघ्रं जिते गृह्णाति मारुते ॥

अर्थ....जो स्त्री को उत्तरवस्ति देनी हो तो ऋतुकाल में देनी चाहिये क्योंकि उस समय योनिगर्भ ग्रहण के योग्य होती है और उसका मुख खुला रहता है इस लिये स्नेह को मुखपूर्वक ग्रहण कर सकती है। उस समय उत्तर वस्ति के देने से वायु के दूर हो जाने के कारण गर्भ भी शीघ्र रह जाता है।

वस्ति जे पुर्विकारे पुयोनि विभ्रंश जे पुच ॥

योनि शूल जे पुती त्रे पुयोनि व्यापत् स्वसृग्दर ॥

अमस्र वस्ति मूत्रे च विन्दुं विन्दुं स्रवत्यापि ॥

विदग्धा दुर्त्तर वस्ति यथास्वोपध संस्कृतम् ॥

अर्थ—सब प्रकारके वस्ति विकार, योनि विभ्रंशजन्य विकार, तीव्र योनिशूल, योनि व्यापत्, रक्त प्रदर, मूत्ररोध, और मूत्रके विदु विदु उपकना। इन सब रोगों में स्त्रियों को भिन्न २ औषधियों से संस्कार की हुई उत्तर वस्ति देनी चाहिये ॥

स्त्रियों की वस्ति का प्रमाण ॥

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तु प्रमदानां दशांगुलम् ॥

मूत्रस्रोतः परीणाहं मुहस्रोतोऽनुवाहि च ॥

गर्भमार्गे तु नारीणां विधयंचतुरंगुलम् ।

द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे तु बालायास्त्वेकमंगुलम् ॥

अर्थ—स्त्रियों की उत्तरवस्ति का नटदस

अंगुलका होता है। इसकी स्थूलता मूत्र के स्रोत की स्थूलता के समान बनवावे ॥

इसकी गति मूत्र के स्रोत के अनुरूप होती है ॥ नलका छिद्र भगकी बराबर होना चाहिये ॥ स्त्रियों के गर्भमार्ग में चार अंगुल वस्ति, मूत्रमार्ग में दो अंगुल और घालिका के एक अंगुल लम्बी वस्ति होनी चाहिये ॥

उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् वस्तुकोच्य सविथनी । अधास्याः प्रणयेन्नेत्रमनुबंश गतं मुखम् । द्विस्त्रिधनुरिति स्नेहानहोरात्रेण योजयेत् ॥ वस्ति वस्तौ प्रणीते च वस्तिश्चान्तरा भवेत् ॥ त्रिरात्रं कर्म कुर्वीत स्नेहमात्रां विवर्द्धयेत् । अनेनैव विधानेन कर्मकुर्यात् पुनरप्यहम् ॥

अर्थ....स्त्रियों को उत्तरवस्ति देने के समय चित्त शयन करा देवे, दोनों पांव इकट्ठे कर दे फिर योनि में पाँठ के घाँसे की ओर मुख करके वस्ति नलको प्रविष्ट करे। एक दिन रात में दो तीन वा चार बार स्नेह का प्रयोग करे। इस तरह वस्ति के प्रायोगमन करने पर फिर वस्ति का प्रयोग करे। इस तरह तीन दिन करता रहे परन्तु वस्ति की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ा देनी चाहिये फिर तीन दिन ठहर कर इसी तरह से फिर वस्ति देनी चाहिये ॥

शैलक के सहित लक्षण ॥

अतः शिरोविकाराणां काश्चिज्ज्वरः प्रवक्ष्यते ॥ रक्तपित्तानि व्यादृष्टाः शैलदेशे विमूर्च्छिताः । तत्रिरुदाहराणां हि संकुर्वन्ति दारुणम् ॥ स शिरोविषवद्देगी निरुद्धा

शुगलंतथा । शंखकोऽग्निनिभःसिपंवि  
नाशयतिमानवम् ॥ जीवेत्यहंचेद्वैपज्यं  
प्रत्याख्यायास्यकारयेत् । शिरोविरेक  
सेकादिसर्वशीर्षसर्पनुचयत् ॥

अर्थ—अथ हम सिरके विकारों के कुछ  
भेद वर्णन करते हैं । कनपटीमें रक्त पित्त  
और वायु दूषित होकर उसजगह तीव्र वेदना  
दाह, राग और शोक उत्पन्न करते हैं ।  
यह शंखकनाम रोग विप के समान वेगवान्  
होताहै और कंठको रोककर अग्निवत्  
शीघ्रही मनुष्य को मार डालता है । यदि  
रोगी तीन दिवस तक जीता रहै तब यह  
कहकर कि रोगी असाध्यहै, चिकित्सा  
करे । इस रोगमें शिरोविरेचन, परिपेक  
और सब प्रकारकी विसर्पनाशक क्रिया करे ।

अर्द्धावभेदकके सहेतु लक्षण

रुक्षात्यध्वशनात्पूर्ववातावश्यायमैथुनैः।  
वेगसन्धारणायासव्यायामैःकुपितोऽनि  
लः । केवलःसकफोवाह्यगृहीत्वाशिरस  
स्ततः ॥ मन्याभ्रशंखकर्णाक्षिललाटेर्धे  
चवेदनाम् । शस्त्राशनिनिभांकुर्याच्छी  
घ्रांसोऽर्द्धावभेदकः ॥ नगनैवाथवाश्रो  
त्रमतिवृद्धोविनाशयेत्

अर्थ—रुक्षभोजन, अतिभोजन, अध्यशन,  
पुरुषेया पवन, ओस, मैथुन, मलमूत्रादि  
वेग धारण, परिश्रम और व्यायाम, इनसे  
वायु कुपित होकर श्वयं वा कफके साथ  
मिलकर आधे मस्तकमें स्थित होजाती है,  
और मन्या, भ्रकुटी, कनपटी कान और  
नेत्र तथा आधे मस्तक तें शस्त्र वा वज्रके

समान तीव्र वेदना उत्पन्न करती है । यह  
अर्द्धावभेदक रोग जब बहुत बढ़ जाताहै  
तब नेत्र और कानोंको भी हानि पहुंचाताहै ।

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा ॥

चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम्  
नाडीस्वेदोपनाहादिकुर्यादन्तेऽग्निनकर्मच  
जीर्णश्च घृतदेयं वस्ति कर्मानुयासनम् ॥ प्र  
तिश्यायेशिरोरोगेयचोद्विष्टचिकित्सितम्

अर्थ....इस अर्द्धावभेदक रोगमें चार  
प्रकार के स्नेह की उत्तम मात्राका पान  
कराना चाहिये । नाडी स्वेद, उपनाह, अ-  
ग्निनकर्म, पुराना घृत और अनुवासन वस्ति  
कर्म इस रोग में प्रशस्तहैं, तथा प्रतिश्याय  
और शिरोरोगमें जो २ चिकित्साएं कही  
गई हैं वेभी इस रोगमें करनी चाहिये ॥

सूर्यावर्च के सहेतुलक्षण ॥

सन्धारणाद्यजीर्णाद्यैर्मास्तिष्करक्तमारुतौ  
दुष्टौदूषयतस्तच्चदुष्टताभ्यांविमूर्च्छितम्  
सूर्योदयांशुसन्तापाद्दुःखंविष्यन्दतेश  
नैः ॥ ततोदिनशिरःशूलंदिनवृद्ध्याचव  
र्द्धते । दिनक्षयेचतदस्त्यानामस्तिष्केसं  
प्रशाम्ब्यति ॥ सूर्यावर्तःसतप्रस्यात्सर्पि  
रौत्तरभक्तिकम्

अर्थ—मल मूत्रादि वेगोंके संधारण और  
अजीर्णादि कारणोंसे रक्त और वायु दूषित  
होकर मस्तकको दूषित करदेतेहैं । इसतरह  
रक्त वातसे दूषित मस्तकमें सूर्यकी किरणों  
के तापसे उष्यो २ दिन चढ़ताहै मस्तक में  
वेदना बढ़ती चलीजाती है, तथा दुपहर  
पड़े उष्यो २ दिन घटता है वेदना भी

घटती चली जाती है ॥ इस रोग को सूर्या  
वर्च कहते हैं, इसमें भोजन के पीछे घृतपान  
करना हित है ॥

सूर्यावर्चमें उपाय ॥

शिरःकायविरैकौचमूर्ध्नाचस्नेहधारणम् ।

जांगलैरुपनादश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम् ॥

वाहीतत्तिरिलावादिशृतक्षीरोत्थितं घृतम्  
नावनं जीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥

अर्थ—इस रोग में शिरो विरेचन, काय  
विरेचन, मस्तकमें तैल धारण, जांगल मां-  
सका उपनाह, तथा घृत और दुग्ध से से-  
चन करना हित है । मोर, तातर, लवा  
आदि जांगल पक्षियोंके मांस डालकर औ-  
टायें हुए दूध का घी, जीवनीय गणोक्त द्र-  
व्योंका कल्क और अष्टगुणा दूध मिलाकर  
पाक करै । इस घृतकीनस्य लेने से यह रोग  
जाता रहता है ।

अनन्तवात के लक्षण ॥

उपवासातिशोकातिरुक्षणीताल्पभोजने ।

दुष्टादोषाश्चयीमन्यापश्चाद्घाटेतुवेदनाम् ।

तीव्रांकुर्वन्ति सा चाक्षिभूशंखेव्यवतिष्ठिते ।

स्पन्दनं गण्डपाश्वर्येनैरगर्हनुग्रहम् ॥

सोऽनन्तवातस्तंहन्यात् शिरोर्कावर्तनाशनैः ।

अर्थ—उपवास करना, अत्यन्त शोक  
करना, अत्यन्त रुखा और शीतल भोजन  
करना वा अत्यल्प भोजन करना । इन  
वातोंसे तीनों दोष कुपित होकर मन्या के  
पिछले भाग में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न  
करते हैं, और यह वेदना आंख भ्रुकुटी  
और कनपटी में स्थित होकर गण्डस्थल

के इधर उधर स्पन्दन, नेत्ररोग और हेतु-  
ग्रह को उत्पन्न करता है । इस रोग को  
अनन्तवात कहते हैं इसमें उदावर्तना-  
शिनी क्रिया हित है ।

शिरःकम्प के लक्षण ।

वातोरुशादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ।

स्नेहस्वेदातिवातघ्नं शस्तनस्यश्च तर्पणं ।

अर्थ—रुक्षादि सेवनसे क्रुद्ध हुई वात  
शिरःकम्पको उत्पन्न करता है इसमें वात-  
नाशक स्नेह, स्वेद तथा नस्य और तर्पण  
हित है ॥

शिरोरोग में नस्यको प्रधानता

नस्यकर्मचकुर्वीत शिरोरोगेषु सूक्ष्मवित् ॥

द्वारं हि शिरसो नासातेन तद्वाप्यहन्ति तान् ।

अर्थ—सब प्रकार के शिरोरोगोंमें नस्य-  
कर्म करना हित है क्योंकि नासिका सिर  
का द्वार है, इस द्वारसे प्रेरित औषध मस्त-  
क में पहुँचकर उसके सब रोगोंको नष्ट  
कर देती है ॥

नस्यकर्मके भेद ।

नावनञ्चावपीडश्च ध्यापनं धूमएव च ॥

प्रतिमर्पश्चापि ज्ञेयं नस्यः कर्म तु पञ्चधा ॥

अर्थ—नावन, अवपीड, ध्यापन, धूम  
और प्रतिमर्प । ये पाँच नस्य के भेद हैं ।

नावनादि के लक्षण

स्नेहनः शोधनश्चैव द्विविधं नावनं स्मृतम् ।  
शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधामतम् ।  
चूर्णस्याद्ध्यापनं नाम देहस्रोतो विशोध-  
नम् ॥ विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमना

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभय

याथकृत् ॥

अर्थ—नावन के स्नेह और शोधन दो-  
भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद  
श्वपीडके हैं घ्मापन नस्य उसे कहते हैं  
कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर  
कर फूक मार कर नाक में पहुंचाया जा-  
ता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो  
जाते हैं । घूमके शमनादिक तीन भेदों  
का वर्णन पहिले हो चुका है । प्रतिमर्ष में स्ने-  
हका प्रयोग होता है, यह संशोधन और  
संशमन दोनों काम करता है और निर्दो-  
ष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और श-  
मन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भमुत्तिष्ठरुत्वायाः श्लेष्मिकायो शिरोग-  
दाः ॥ शिरसो रेचनं तेषु नस्तः कर्ममश-  
स्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुति, भारा-  
पन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन  
कर्म हित है ॥

तर्पणसाध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरःकम्पादि ताद-  
यः ॥ शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्ममशस्यते

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्द्धित से  
आदि लेकर वातात्मक रोगोंमें उनमें तर्पण  
नस्य प्रधान है ।

शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादि दोषेषु शमनं न स्यामिष्यते ॥

अर्थ....रक्तपित्तादि दोषों में शमन नस्य  
हितकारी होती है ॥

ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥  
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक् सत्यं कृत्वा कारयेत्

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके य-  
थायोग्य घ्मापन और धूमपान का प्रयोग  
करना चाहिये ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजं मोक्तं शिरसो यदि विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत् स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये  
फलादि द्रव्य वर्णन-कियोगये हैं उन्हीं द्रव्यों  
के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेच-  
न देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेषजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक्य स्नेहं नस्तः कुर्याद्विधा-  
नवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का  
वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्ने-  
ह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकीरीति ॥

माकसूर्ये मध्यसूर्ये वा प्राक्कृता वश्यकस्य च  
उत्तानस्य शयानस्य शयने वा स्वात्तृते मुख  
प्रलम्बशिरसः किञ्चित् किञ्चित् पादोन्म-  
स्य च ॥ दद्यान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमा-  
न भिषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांशों को सुकडवा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाकशिरसोनस्यंनशिरःप्रातिपद्यते ।  
अत्यवाकशिरसोनस्यंमस्तुल्लङ्घ्येचतिष्ठते॥

अर्थ....बिना नीचा सिर किये नस्य देने से यह सिर में नहीं पहुँचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुँचजाती है

अतएवशयानस्यशुद्धयर्थरेचदयेच्छिरः  
संस्वेद्यनासासुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा  
हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्पाहुभयतः समम् ॥  
प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि  
कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः॥ तं  
स्नेहंश्लेष्मणासाकृतथास्नेहोनतिष्ठति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करे पीछे बाँधे अंगूठे के पोरु से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से वा रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करे । इस तरह नस्य कर्म कराके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्कलोशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्यु  
पस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनगिरसि  
स्त्यापतेतवः । श्रोत्रमन्यागलाघेयविका  
रायसक्तत्प्यने॥

अर्थ—मस्तक का कफस्वेदन से उच्छिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाताहै । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततोऽनस्तःकृतेधूमंपिवेतृकफविनाशनम् ।  
हितान्नभुङ्गन्निवातोष्णसेवीस्यान्निहते-

न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफ-नाशक धूमपान करे, पथ्य भोजन का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करे तथा जितेन्द्रियतासे रहे ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवर्षादस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु।  
तत्पदंगुलपानाढ्याधमेचूर्णंभुञ्जेन्नतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखा हुई विधि अव-  
पीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर ढ़क मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुँचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पञ्चातरुम् ।

विरेक्तशिरसंतृष्णपाययित्वाभ्युभोजये-  
त् । लघुभिन्विचिरुद्भ्यनिवातस्यमनन्द्रि-  
तम् ॥

अर्थ....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनो दोषों से अभि-  
रुद्ध लघुभोजन कराके निषान स्थान में बैठवै परन्तु नींद न लेने देवै ।

विरेकशुद्धादोपस्पष्टोपनयस्यमेवने । स  
दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्नानादान्बहन्॥



## शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषु शमनं न स्यामिष्यते ॥

अर्थ....रक्तपित्तादि दोषों में शमन न स्यादितकारी होती है ॥

ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥  
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक् संप्रकृच्छकारयेत्

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य ध्मापन और धूमपान का प्रयोग करना चाहिये ॥

## विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजं मोक्षं शिरसो यद्विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन-किये गये हैं उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

## तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेषजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक् स्नेहं नस्तः कुर्याद्विधा-  
नवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देये ॥

## तर्पणकी रीति ॥

भाक् सूर्ये मध्यसूर्ये वा प्राक् कृतावश्यं कत्यच-  
उत्तानस्पृश्या न स्पृशयेन्वास्वास्तृते सुस्तम्  
मलम्बं शिरसः किञ्चित् किञ्चित् पादोन्नत-  
स्य च ॥ दद्यान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमा-  
ना भिषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभ-  
याथकृत् ॥

अर्थ—नाशन के स्नेह और शोधन दो-  
भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद  
अवपीडके हैं ध्मापन नस्य उसे कहते हैं  
कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर  
कर झुक मार कर नाक में पहुंचाया जा-  
ता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो  
जाते हैं । धूमके शमनादिक तीन भेदों  
का वर्णन पहिले हो चुका है । प्रतिमर्ष में स्ने-  
हका प्रयोग होता है, यह संशोधन और  
संशमन दोनों काम करता है और निर्दो-  
ष भी है ॥

## नस्य के कर्म ।

एवं तद्वेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और श-  
मन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

## रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भमसृतिगुहत्वायाः श्लैष्मिका ये शिरोग-  
दाः ॥ शिरसो रेचनं ते पुनस्तः कर्म प्रश-  
स्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सृति, भारा-  
पन तथा अन्य कफजन्य रोगों में रेचन  
कर्म हित है ॥

## तर्पणसाध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरः कम्पादि ताद-  
यः ॥ शिरसस्तर्पणं ते पुनस्तः कर्म प्रशस्यते

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से  
आदि लेकर वातात्मक रोग है उनमें तर्पण  
नस्य प्रशस्य है ।

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पाँवों को सुकडवा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाक्शिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते ।  
अत्यवाक्शिरसोनस्यमस्तुल्लङ्घ्यचिच्छिद्यते ॥

अर्थ.....विना नीचा सिर किये नस्य देने से यह सिर में नहीं पहुँचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुँचजाती है अतएव शयानस्यशुद्धार्थस्वेदयेच्छिरः संस्वेधनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्यादुभयतः समम् ॥

प्रणाल्यापिचुनावपिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भूयःआकर्षेच्चपुनः पुनः ॥ तं स्नेहंश्लेष्मणासाकृतयास्नेहोनतिष्ठति ।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे बाँये अंगूठे के पोरुए से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें फरके नलके से वा रुईके फोए से त्रिधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्क्लेशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्युपस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाधेपुविका रायसकल्प्यते ॥

अर्थ—मस्तक का कफस्वेदन से उत्कृष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाता है । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततो नस्तःकृतेधूमपिवेतकफविनाशनम् ।  
हिताश्वधुनिवातोष्णसेवस्याग्निहते ।  
न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफनाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवपीडस्यकार्यःप्रध्मापनस्यनु ।  
तत्पटङ्गुल्यानाढ्याधमेच्छूर्णमुत्खेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखी हुई विधि अवपीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर ब्रूक मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुँचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पञ्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूष्णपाययित्वाभ्युभोजयेत् ।  
लघुत्रिष्वविरुद्धश्चानिवातस्थमतन्द्रितम् ॥

अर्थ.....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनो दोषों से अतिरुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में बैठवै परन्तु नींद न लेने देवै ।

विरिक्तशुद्धौदोपस्यकोपनंयस्यसेवते । स दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहूना ॥

वर्ण, हृष्य, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्र ही बढ़ते हैं ।

**वस्तियोंकेगुण ॥**

अनुवासनं निरुह्योत्तरवस्तिश्च सत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानां सकृच्चित्तस्तन्व भग्नरुणानाम् । चित्सङ्गाध्मानारुचिपरिक्तरुगादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरुहण और उत्तर में तीन प्रकार की वस्तियां होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविकण्ड, आध्मान अरुचि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णतार्तानां शीतान् शीतार्तानां तथा सुखोष्णान् । तथोग्रैः पथयुक्तान् वस्तीन् सर्वप्रधिनिपुञ्जयत् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्यों को शीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

**वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।**

वस्तीन् वृंहणीयान् दद्याद्वाधिपुविशोद्यनीमेषु । मेदस्विनो विशोध्यो यच्च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्यक्तियों में वृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी पगन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिके अयोग्यव्यक्तिः । नक्षीणक्षतदुर्बलभूच्छितकृदाशुष्कदेहाना

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान् दोषनिवद्धायुषोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निवद्ध हैं उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्च मधुघृतपयोयुताः । सर्वेऽस्ताः सतैलमूत्रारनाललवणक्षकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणि वस्तिष्वम्लमूत्रंपयःसुराकाथम् । अविरोधाद्वातूनारसयोनित्वाच्च जलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तैल, कांजी और सेंधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से आविष्ट हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्यों को योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताहंलाकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्दानुलोमभागानि सर्पपाशफेरालवणम् ॥ आदापो वस्तीनामतः प्रयोज्यानि येषु यानि स्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, घमनकारक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्या-  
न रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही  
डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसद्वक्त्यापैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ।  
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्नि  
पर्ययेचमृदून । समतिवापकपाथान्मुञ्ज  
त्यनुवासननिरुहान् ।

अर्थ—अथ कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों  
का वर्णन करते हैं । जोरोग बहुत पुराने  
कठिन और बलान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों  
से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त  
अनुवासन या निरुहण दें । और जो  
रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण  
और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनु-  
वासन और निरुहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानान्याधिपुवर्ग  
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह  
तानशृणु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी  
सम्पूर्ण वस्तियाँ यथावीर्य और यथाभाग  
आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जाती हैं,  
उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

वित्वाग्निमन्यदयोनाकाःकाश्मर्यःपाट  
लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहत्यौ  
वर्धमानकः । यवाःकुलत्पाःकोलास्थि  
स्थिराचेतित्रयेऽनिलो ॥ शस्यन्तेसचतुः  
स्नेहाःपिशितस्यरसान्विताः ॥

अर्थ—( १ ) वित्, अस्ती, श्योनाक,  
क्षमारी और पाटला, ( २ ) शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड़  
( ६ ) जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालि-  
पर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ५ कपायों  
में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डा-  
लकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाति है ।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलबज्जुलवानारशतपत्राणिशेवळम् ॥

मज्जिप्राशारिवानन्तापयस्यामधुषट्ठिका  
चन्दनपद्मकोशिरन्तुश्चपैचिकेप्रयः ॥

ससर्कराक्षौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः

अर्थ....[१] नरसल की जड़, जलवेत,  
वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२] मजीठ,  
सारिका, अनन्तपल, क्षीरकाकोली, और  
मुलहटी, ( ३ ) रक्तचन्दन, पभाज, खस,  
और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों  
के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के  
साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से  
पित्तजरोगों को दूरकरते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कपकाष्टीलापुनर्नवा ॥

हरिद्रात्रिफलासुस्तंपीतदारुकुटसुठम् ।

पिप्पल्यःचित्रकश्चेतित्रयस्तेऽप्येप्ररोगि

णाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा

न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक,  
वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिफला,  
मोथा, दारुहल्दी, और केवटी मोथा,

[ ३ ] पीपल और चीते की जड़ । इन  
तीन भिन्न ३ वर्गों का कपाय जवा-  
खार, शहत, गोमूत्र और थोड़े से स्नेह के

वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्र ही बढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासननिरूह्योत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तन्ध भग्नरुणानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिक्तरुगादिपुत्रशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियाँ होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविवन्ध, आध्मान अरुचि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानां शीतानां शीतार्तानां तथा सुखोष्णांश्च । तथोग्रौषधयुक्तान् वस्तिन् सर्वत्र धिनियुज्यत ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्यों को शीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन् वृहणीयान् दद्याद्वाध्याधिपुविशोधनीषेपु । मेदस्विनो विशोष्याये च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में वृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी दमन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिके अयोग्यव्यक्तिः ।

नशीनक्षतदुष्यलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहानां

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान् दोषनिवन्दाय पोषेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निवृद्ध हैं उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽमृक्पित्तयोश्च मधुघृततपयोयुताः । सर्वेशस्ताः सतैलमूत्रारनाललवणश्च कफवाते ॥ युञ्ज्याद्दृव्याणि वस्तिष्वम्लमूत्रपयःसुराकाथम् । अविरोधाद्वातूनारसयोऽनित्वाच्च जलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तैल, कांजी और सेधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से आविरोध हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्यों की योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्लाकुकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्दानुलोमभागानि सर्पपाशैर्करालवणम् ॥ आदापो वस्तीनामृतप्रयोज्यानि येषु यानि स्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, यमनकाक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और तैल आनमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यान रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वहाँ डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसहकपायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ।  
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्वि  
पर्ययेचमृदून । समतिवापकपायान्मुञ्ज  
त्यनुवासननिरूहान् ।

अर्थ—अथ कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों की वर्णन करते हैं । ओरोग बहुत पुराने कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त अनुवासन या निरूहण दें। और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धद्वलोकैरतःसिद्धाभ्रानान्याधिपुवर्ग  
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथाहानिह  
तान्मृशु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियों यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोकोमें नीचे लिखी जाती हैं, उन्हें प्यान्ते श्रवण करो ॥

यातनाशकप्रयोग ॥

विज्वाग्निमन्थशयोनाकाःकाश्मर्यःपाट  
लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृष्ठिपर्णीट्टहृत्पौ  
वर्धमानकः । यवाःकुलत्थाःकोलास्थि  
स्फिराचेतित्रयेऽनिलो ॥ शस्यन्तेसचतुः  
स्नेहाःपिशितस्परसान्विताः ॥

अर्थ—( १ ) विज्व, अजनी, शयोनाक, तिनारी और पाटला, ( २ ) शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और भरंडकी जड़ (६) जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ५ कपायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाते हैं ।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलबन्जुलवानेरशतपत्राणिशैबलम् ॥  
मझिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका  
चन्दनंपद्मकोशोरिन्तुङ्गश्वपैत्तिकेत्रयः ॥

सशर्करासौद्रघृताःसक्षीरावस्तपोहिताः  
अर्थ....[१] नरसल की जड़, जलघेत, वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२] मजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और गुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पद्माख, खस, और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से पित्तजतोगों को दूरकरते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्टीलापुनर्नवा ॥  
हरिद्रात्रिकलामुस्तंपीतदारुकुटसप्तम् ।  
विप्पल्यःचित्रकथेतित्रयस्तेऽश्लेष्मरोगि  
णाम् ॥ सप्सारसौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा  
न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाठ आक, वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिकला, मोथा, दारुहल्दी, और केवटी मोथा, [३] पीपल और चीते की जड़ । इन तीन भिन्न २ वर्गों का कपाय जवाखार, शहत, गोमूत्र और धोडे से स्नेह के

साध मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से  
कफरोग दूर होजाते हैं ॥

पक्वाशयशोधनप्रयोग ।

फलजीमूतकेश्वाकूधामार्गवकवत्सकाः ॥  
श्यामाचत्रिफलाचैवस्थिरादन्तीद्रवन्त्य  
पिप्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनीक्षीरिणीं  
तथा ॥ सप्तलाशंखिनीलोघ्रफलकाम्पि  
ल्लकस्यच । चत्वारोमृशसिद्धास्तेपक्वा  
शयविशोधनाः ॥

अर्थ—( १ ] मेनफल, जीमूत, कटुतु-  
म्बी, तोरई और इन्द्रजौ, [ २ ] श्यामा-  
निसोध, त्रिफला, दन्ती और द्रवन्ती, [ ३ ]  
दोनों प्रकार के कजा, नीलिनी और क्षी-  
रिणी, ( ४ ] सातला, शंखिनी, लोघ, मे-  
नफल और कबीला । इन चार भिन्न २  
वर्ग के प्रयोग को गोमूत्र में सिद्ध करके  
वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पक्वाशय शुद्ध  
होजाता है ।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशितावरी  
विदारामधुयष्ट्याद्वाहृग्माटकेशश्चके ॥  
आत्मगुप्ताफलमापाःसगोधूमायवास्तथा  
जलजानूपजंमांसमिरयेतेशुक्रवर्धनाः ॥

अर्थ—[ १ ] काकोली, क्षीरकाकोली  
मुद्गपर्णी और शितावर ( २ ) विदारीकन्द,  
मुलहठी, सिन्धुआ और कसेरू, [ ३ ]  
केच के बीज, उरद, गेहूँ और जौ, ( ४ )  
जांगल और आनूप मांस । ये चार प्रयोग  
शुक्र को बढ़ाने वाले हैं ।

सांघ्राहिक प्रयोग ।

जीवन्तीचाग्निमन्यश्चघातकीपुष्पवत्स  
कौ । प्रग्रहःखादिरःकुष्ठंशमीपिण्डीतकोय  
वाः ॥ प्रियंगूरक्तमूलीचतुष्णीस्वर्णमूषि-  
का । वटाद्याः किंशुकलोघ्रमिति सांघ्राहि  
कामताः ॥

अर्थ—( १ ) जीवन्ती, अरनी, धायके  
फूल और इन्द्रजौ, ( २ ) अमलतास, खैर-  
कूठ, शमी, मेनफल और - जौ, [ ३ ]  
प्रियंगु, लज्जालु, ग्वारपाठा और स्वर्णयूषी  
( ४ ) वटादि क्षीर वृक्ष, किंशुक और  
लोघ । ये चारों प्रयोग समाही हैं ॥

परिस्ताव में प्रयोग ।

परिस्तावेष्टतक्षीरसंष्टक्षीरपुनर्नवम् । आ-  
खुपणिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥

अर्थ—सफेद साठ और लालसाठ डाल  
कर ओटाया हुआ दूध अथवा मूषिकपर्णी  
और चौलाई डालकर ओटाये हुए दूध की  
वस्ति देने से परिस्ताव दूर होजाता है ।

दाहनाशक प्रयोग ।

कोलंकतककाण्डेक्षुर्भकालेक्षुशालिभिः ।  
दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः ॥

अर्थ—खैरकी गुठली, निर्मलीफल, कांडे-  
क्षु, दाम, ईखकी जड़, और शालि की जड़  
और घी इन को दूध के साथ ओटाकर वस्ति  
द्वारा प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है ।  
इसी तरह उत्पलादि गणोक्त द्रव्य और  
दूध के सिद्ध साथ किये हुए घृत की वस्ति  
दाहनाशक है ॥

कर्बुदारादकीनीपाविदुलैःक्षीरसाधितैः ॥

वस्तिःप्रदेयाभिपजाशीतःसमधुशर्करः ॥

अर्थ....सफेद कचनार, अडहरकी जड़, कंदर्प और वेत इन सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई दूध की वस्ति को ठंडा करके शहत और चीनी डालकर प्रयोग करने से दाह दूर हो जाता है ।

परिकर्तिका में वस्ति ।

परिकर्तितथावृन्तैःश्रीपर्णाकोविदारजैः ॥  
मुष्टिशालमल्लिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृता  
न्वितः ।

अर्थ....खमारी और छाल कचनारके डंठलों को दूध और घी के साथ सिद्ध करके अथवा सेमर के डंठल एक पल और दूध इनके साथ घी को सिद्ध करके वस्ति देने से परिकर्तिका दूर होजाती है ॥

प्रवाहिकानाशक प्रयोग ॥

हितःप्रवाहणेतद्रवृन्तैःशालमल्लिकत्यच ॥

अर्थ....प्रवाहिका में सेमर के डंठल और दूध के साथ सिद्ध घृतकी वस्ति भी हितकर है ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अश्वावरोहिकाःकाकनासारजकशेरुकैः॥

सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युःसौद्राक्षनघृतैर्यु-  
ताः ॥ न्वप्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधि-  
नापरः ।

अर्थ—असंगंध, कौआटोटी और राज-  
कसेरु इन के साथ सिद्ध दूधकी वस्ति  
में शहत, शर्करा और घी मिलाकर प्रयोग  
करने से अतियोग दूर होता है ।

इसी तरह से बड़, गुल्फ, पीपल और पाकड़

इनके साथ सिद्ध दूधकी वस्ति भी अतियो-  
गनाशक है ।

वृहतीक्षीरकाकोलीपृष्णिपर्णीशतावरी॥

काश्मर्यवदरीदूर्वातयोक्षीरप्रियङ्गवः ।

जीवनीयैःशृताक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ ॥

वस्तीप्रदेयाभिपजाशीतामधुशर्करौ ।

अर्थ—[ १ ] बड़ी कटेरी, क्षीरकाकोली,  
पृष्णिपर्णी, शितावर, [ २ ] खमारी, वेर  
की, गुठली, दूध, लसीर और प्रियंगु ।

इन दो वर्गों के साथ पृथक् २ दूध सिद्धकर  
के उस में घी, अंजन, शहत और चीनी  
मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर हो-  
जाता है ।

जीवशोणित में वस्ति ।

शशैणदसमार्जरमहिषाव्यजशोणितैः ॥

सद्यस्कैर्षृदितैर्वस्तिर्जीवादानेमशस्यते ।

अर्थ—खरगोश, हरिण, मुर्गा, बिल्ली,  
भैंस, भेड़ और बकरी इनका ताजा रुधिर  
लेकर वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे अतियोग  
से हुई जीवशोणित की क्षीणता दूर होजाती है ।

गौव्यजामहिषीक्षीरजीवनीययुतैस्तथा ॥  
तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षीद्रशर्करः ।

अर्थ—गौ, भेड़, बकरी और भैंस इनका  
दूध जीवनीय गणका कच्चा, घी, शहत  
और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग  
दूर होजाता है ॥

मधुकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ।

अर्थ—रक्त के क्षीण होनेपर गदुभा,  
मुल्हठी, दास, दूध, खमारी और चन्दनकी



वस्ति । अथवा चीनी, रक्तचन्दन, दाख मुलहटी, आवला और नीलकमलकी वस्ति हितकारी होती है ॥

रक्तपित्तप्रयोग ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकपायःसोमवल्कजइति ॥

अर्थ—रक्तपित्त और प्रमेह में सफेद खैर के कषाय की वस्ति हित होती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्पाश्चापरे  
त्रयः ॥ पक्वाशयविधुद्धयैष्टुष्यासांग्राहि  
कास्तथा ॥ परिस्त्रावेतथाद्वाहेपरिफर्तेप्र  
वाहणे ॥ सातियोगौमत्तौद्वाहीजीवादा  
नेतथात्रयः ॥ रक्तपित्तेद्वयमहएकत्रिशय  
पञ्चच ॥ मुलभारूपौषधकेशवस्तयोगु-  
णवत्तमाः ॥

अर्थ—इस वस्तिसिद्धि अध्यायमें वात-  
रोग में तीन, पित्तरोग में तीन, कफरोग में  
तीन, पक्वाशय के शोधन में चार, शुक्र-  
वर्द्धक तीन, संग्राहक तीन, परिस्त्राव में  
तीन, दाह में दो, परिकर्षिका में एक, प्र-  
वाहिकामें एक, अतियोग में पांच, जीवितर-  
क्त के क्षय में तीन, रक्तपित्त में एक और  
प्रमेह में एक इस तरह वस्ति के छत्तास  
प्रयोग वर्णन किये गये हैं ॥

अध्यायकाउपसंहार ॥

गुल्मातिसारोदावर्तस्तस्थसंकुचितादिपु  
सर्वाङ्गीकाङ्गवेगेपुरोग्ज्वेवाविधेपुच ॥ यथा  
स्वमौषधैःसिद्धान्वस्तीन्द्रयादिवसन पूर्वो  
क्तनिधानेनकृर्ष्यायोगान्पृथग्विधानिति

अर्थ—गुल्मरोग, अतीसार, उदावर्त,  
स्तब्धता, संकोच, सर्वाङ्गघात, एकाङ्गघात  
तथा इसी प्रकार के अन्यरोगों में भी उसी  
उसी रोग को नाश करनेवाली औषधियों  
के साथ सिद्ध की हुई वस्ति देना चाहिये  
ये वस्तियाँ विद्वान् वेद द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे  
पृथक् २ कल्पना करके दीजसक्ती हैं ।  
इति श्रीमापाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता-  
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि-

स्थाने वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽ

ध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातः फलमात्रासिद्धिर्न्यासाख्यास्यामः ॥  
इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि  
अब हम फलमात्रा सिद्धि की व्याख्या करेंगे  
भगवन्तमुदारसस्वधीश्रुतिविज्ञानसम्पन्न  
मन्त्रिजम् । फलवस्तिवरत्वनिश्चये सवि-  
वादा मुनयोऽप्युपागमन् ॥ भृगुकौशिक  
काप्यशौनकाः सपुलस्त्यासितगौतमाद-  
यः ॥ कतमत्प्रवरं फलादिपुष्मत्तमास्था-  
पनयोजनान्विति ।

अर्थ—एक समय भृगु, कौशिक, काप्य,  
शौनक, पुलस्त्य, असित और गौतम आदि  
मुनियों में इसबत पर विवाद हुआ कि  
आस्थापन में कौन फल श्रेष्ठ है । इस  
झगड़े को निवटाने के लिये ये सब मिलकर  
उदारसत्त्व, उदारधी, श्रुति विज्ञानसम्पन्न  
भगवान् अत्रिन्दन के पास उपस्थित हुए

फल विषय में भिन्न २ मत ॥  
 कफपित्तहर्परफलेष्वयं जीमूतकमाह शौ-  
 नकः ॥ मृदुवीर्यतयाभिनेत्तितदिति चोवा-  
 च नृपोऽथ वामकः ॥ कटुतुम्बी फलमुत्तमं मतं  
 यमने दोषसमीरणञ्च तत् ॥ तदधृष्यमशैत्य  
 तीक्ष्णताकटुरौक्षैरिति गौतमो ब्रवीत् ॥  
 कफपित्तनिवर्हणं परं सत्तु धामार्गवमेष्वम-  
 न्यन्तातदमन्यत्वात्तलपुनर्यद्विशो ग्लानिकरं  
 वलापहमुकुटजं मशशं स चोत्तमं नवलघ्नं कफ-  
 पित्तहारि च अतिविज्जलमूर्द्धभागि कफवन-  
 शो भिचकाप्य आहतत्कृतवेधनामाभवात्तलं  
 कफपित्तमवलहरेदिति ॥ तदसाध्विति भद्र-  
 शौनकः ॥ कटुचारो हि वलघ्नमिच्छापि ॥  
 अर्थ—शौनक कहते थे कि कफपित्तनाशक होने  
 से जीमूतका फल उत्तम है । राजा वामक  
 का यह मत था कि जीमूत मृदुवीर्य और मलको  
 भेदनकर्ता है, और कटुतुम्बी का फल यमन  
 करने में उत्तम है क्योंकि यह दोषों को  
 शीघ्र ही उद्गीर्ण करता है । परन्तु गौतम  
 की यह राय थी कि कटुतुम्बी उष्ण, तीक्ष्ण  
 कटु और रुक्ष होती है इससे अधृष्य  
 होती है और धामार्गव कफपित्त को नाश  
 करनेवाली है इससे इस काम में धामार्गव  
 श्रेष्ठ है । इसपर वद्विश बोले उठे कि  
 धामार्गव यातकर्ता, ग्लानिकारक और वल-  
 नाशक है, इससे तो इन्द्रजौ अच्छे हैं  
 क्योंकि वे घल को दूर नहीं करते हैं और  
 कफपित्तनाशक भी हैं । यह सुनकर काप्य  
 बोले कि इन्द्रजौ अत्यन्त पिच्छिल, ऊर्ध्व-  
 गामी और वातप्रकोपक है, किन्तु कृतवेधन

आशुकार, अवातल और प्रबल कफपित्त  
 को दूर करनेवाली है ॥ भद्रशौनक बोले  
 कि कृतवेधन अच्छी नहीं होती है, क्योंकि  
 यह कटवी है और वलघ्न भी है ॥  
 इतितद्वचनानि हेतुभिः सुविचित्राणि निश-  
 म्य तुष्टिमान् ॥ प्रशंसं स फले पुनिश्चयं पर-  
 मञ्चा त्रिसुतोऽग्रवीदिदम् ॥

अर्थ—इन ऋषियों के सहतु क भिन्न भिन्न  
 वचनों को सुनकर अत्रिनन्दन फलों के  
 विषय में अपना मत प्रकाश करने लगे।  
 फलदोषगुणानुसरस्वतीप्रतिसर्वरूपिस-  
 म्यगीरिता ॥ ननु किञ्चिदोपनिर्गुणं गु-  
 णभूयस्त्वमवोविचिन्त्यते ॥

अर्थ—आप सब लोगों ने इन फलों के  
 गुण दोषों का वर्णन बहुत अच्छी रीति से  
 किया है । परन्तु इनमें से कोई द्रव्य  
 निर्दोष और निर्गुण नहीं है ॥ किन्तु  
 प्रत्येक द्रव्य में स्थान की विशेषता से गुणों  
 की अधिकता होती है ।

विषयविशेष से फलों को उत्कृष्टत्व ।  
 इह कुप्टाहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहि-  
 नेमतम् ॥ कुटजस्य फलं हृदामये प्रवरं कोट-  
 फलञ्च पाण्डुपु । उदरे कृतवेधनं हितं मदनं  
 सर्वगदाविरोधितु ॥

अर्थ—जीमूत का फल कोठ में हितकारी  
 है, कटुतुम्बी प्रमेह में उत्तम है, इन्द्रजौ  
 हृदोग में, कोटफल पाण्डुरोग में और कृत-  
 वेधन उदररोग में हितकारी है, तथा मेनफल  
 सब प्रकार के रोगों में अविरোধी है ।

मदनफलकी उत्कृष्टता ।

मधुरंसकपार्यतिक्रंतदरुसंसकट्पणावि-  
ज्जलम् ॥ कफपित्तदृढाशुकारिचाप्यन  
पायंपवनानुलोमिच ॥ फलनामविशेषत  
स्त्वत्तोलभतेऽन्येषु फलेषु तत्स्वविप ।

अर्थ—मेनफल मधुर, कुछ कसीला,  
तिक्त, खापन से रहित, कटु, उष्ण और  
पिच्छिल होता है, यह कफपित्तनाशक,  
आशुकारी, उपद्रव रहित और घातानुलोमी  
है, इस हेतु से बमनकारक अन्य फलों  
के विद्यमान होनेपर भी मेनफल श्रेष्ठ होता है  
शुरुणाचवचस्युदाहृतमुनिसंघैरिति पूजि-  
तेततः । मणिपत्यमुदासमन्वितः स-

हितः शिष्यगणोऽनुगृष्टवान् ॥

अर्थ....गुरु के इस वचन को सुनकर  
सब मुनियों ने पूजन किया और चरणों में  
नमस्कार करके फिर पूछा ।

सर्वकर्मगुणकृद्गुरुणोक्तो वस्तिरुद्धमतम  
ध्वेदिना ॥ नाभ्यधोगुदगतश्च शरीरा  
स्सर्वतः कथमपोहतिदोषान् ॥

अर्थ....हे गुरु ! आपने पहिले कहा है  
कि वस्ति सम्पूर्ण कर्मोंके करनेवाली और  
सम्पूर्ण गुण करनेवाली है । परन्तु वस्ति  
नाभिके नीचे गुदा में स्थिर होकर किस  
तरह दोषोंका अपकर्षण करती है ।

तद्गुरुर्ब्रवीदिदं शरीरं तन्त्रयतेऽनिलः सद्ग  
विधातात् ॥ केवलएव दोषसहितः स हि  
वायुः प्रकोपमुपयाति ॥ तत्पवनं सपिच  
कफविद्वक्थुदिकरीऽनुलोमयति वस्तिः ॥

सर्वशरीरगश्च गदसंयात्यकाशनात्यशान्त  
मुपयाति ॥

अर्थ—उक्त प्रश्नको सुनकर गुरु बोले  
कि वायु शरीर के सम्पूर्ण द्रव्योंको इकट्ठे  
रखती है ॥ और वायुही शरीरको धारण  
करती है, अकेली वायु कुपित होजाती है  
तथा अन्य दोषके साथ भी कुपित होती है  
वस्ति पकाशय में जाकर पित्त कफ और  
विष्टके साथ उस वायुको अनुलोमित क-  
रती है । इस तरह शुद्ध हुई वायु सम्पूर्ण  
शरीरमें गमन करके रोगों के समुद्र को  
दूर करती हुई शान्त होजाती है । इसका  
यह तात्पर्य है कि वायुका शरीर के सब  
द्रव्योंसे संबंध है, इससे वायुके शुद्ध होने  
पर शेष द्रव्य भी शुद्ध होजाते हैं । किन्तु  
पकाशय वायुका प्रधान स्थान है और वस्ति  
पकाशयकी वायुको मलके साथ शुद्ध करती  
है । इस तरह वायुके शुद्ध होनेपर वह  
सम्पूर्ण देह में विचरती हुई शरीर को शुद्ध  
करके रोगों को शान्त कर देती है ॥

अथाभिगम्यार्थमस्वणितं धिया ।

गजोष्ट्रोऽभ्याव्यजवस्ति कर्म ॥

अपृच्छदेनं सच वस्ति मब्रवीत् ।

विधिञ्च तस्याह पुनः प्रचोदितः ॥

अर्थ—तात्पश्चात् शिष्योंने उक्त सब वर्णन  
जानकर पूछा कि हे महाराज ! हाथी, ऊँट  
गौ, घोड़ा, भेड़ और घकरी को वस्ति  
किस तरह दीजाती है । यह सुनकर आत्रेय  
उक्त पशुओं को वस्ति देनेकी विधि वर्णन  
करने लगे ॥

अजात्रिके सौम्यगजोष्ट्रौर्वागवाभ्योर्व-  
स्तिमुशन्ति माहिपम् ॥ अजात्रिकादन्त

सुवस्तिमुत्तरवदन्तिवस्तिविपरीतरूपम् ॥

अर्थ—वकरी, भेड, हाथी, ऊंट, गौ और घोड़े के लिये भेसे की वस्तिपुट से वस्ति बनवानी चाहिये। वकरी, भेड आदि की वस्ति को सुवस्ति और उत्तरवस्ति को उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥

सुवस्तिकाममाण ।

सुवस्तिमष्टादशपोडशांगुलंतयैवनेत्रञ्चद  
शांगुलंक्रमात् । गजोऽङ्गोऽश्वात्पञ्चवस्ति  
संधौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत् ।

अर्थ—हाथी और ऊंट के लिये सुवस्ति के गज का प्रमाण अठारह अंगुल गौ और घोड़े के लिये सोलह अंगुल तथा भेड और वकरी के लिये दश अंगुलका होता है। इसकी कार्यका मनुष्यकी वस्तिसे चौगुनी होती है ॥

सुवस्तिस्त्रीमात्राकाममाण ।

प्रस्थस्त्वजाव्योहिंनिरूहमात्रागवादिषु  
द्वित्रिगुणोपधावलम् ॥ निरूहउष्टस्यतथा  
इकद्वयंगजस्यवृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥

अर्थ—वकरी और भेडकी निरूहण मात्रा एक प्रस्थ होती है। गौ और घोड़े की निरूहमात्रा षड के अनुसार दो तीन प्रस्थकी होती है, ऊंटकी निरूहमात्रा दो आदक तथा हाथीकी मात्रा षडके अनुसार बढ़ा दी जाती है। इन सब जीवों को जो अनुवासन वस्ति देनी हो तौ निरूह से आठवां भाग काम में लाया जाता है।

निरूहकासाधारणप्रयोग ।

कलिङ्गकुष्ठमधुकंसपिप्पलिचचाशताहाम  
दनरसाञ्जनम् । हितानिसवैपुण्डःससै-  
न्धवोद्विपञ्चम्लंसविकल्पनात्वयम् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, कूठ, मुलहटी, पीपल, वच, सोंफ और मेनफल इनके क्वाथ में रसोत, गुड और सेंधानमक मिलाकर सब प्रकार के मनुष्यों को साधारण रीति से निरूहण दी जाती है। तथा दशमूल के क्वाथ की भी निरूहणवस्ति दी जाती है।

हाथीकोनिरूहणप्रयोग ।

गजेऽधिकोऽश्वत्थवराश्यकर्णजाः ॥

सखादिराःप्रग्रहसालतालजाः ॥

अर्थ—विशेष कर के हाथी को पीपल वड, सालकी निरूहण देवै, अधवा खैर, अमलतास साल और तालकी निरूहण वस्ति देनी चाहिये ॥

ऊंटका निरूहण प्रयोग ।

तथाचउष्ट्रेधवशिमुपाटली ।

मधूकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः ॥

अर्थ—ऊंटके लिये धौ, सहजना, पाटला महुआ का सार, दन्ती और चीते का निरूह प्रयोग करे।

गौ के लिये प्रयोग ॥

पलाशभूतीकसुराहरोहिणी ॥

कपायउक्तस्त्वधिकोगर्वाहितः ॥

अर्थ—गौके लिये पलास, अजवायन, देवदारु और कुटकी इनके कपायकी निरूहण देवै घोड़े के लिये प्रयोग ॥

पलाशदन्तीमुरदारुकचूच ।

द्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥

अर्थ....घोड़े के लिये पलास, दन्ती, देवदारु, गन्धतृण और दन्तीकी निरूहण देवै ॥

खरोष्ट्र प्रयोग ॥

खरोष्ट्रयोःपीठकरीरखादिराः

शम्पाकविल्वादिगणस्थचच्छदाः

अर्थ....गंधे और ऊंट के लिये, पीछ, करील, खैर, अथवा अमलतास और विल्वादि गण के पत्तों का प्रयोग करें ॥

भेड बकरीकेलियेप्रयोग ।

अजाविकानात्रिफलापरूपकं ।

फपित्थकर्कन्धुसविल्वकोलजम् ॥

अर्थ....भेड बकरियों के लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ, वेर, विल्व और मडा वेर इनकी निरूहण देवै ।

आयग्निवेशःसततोन्तरान्तराहितंचपम  
च्छगुस्तदाहच ॥ सदातुराःश्रोत्रियरा  
जसेवकास्तैथध्वेद्याःसहपण्यजीविभिः॥

अर्थ—सदनन्तर आग्निवेश ने फिर पूछा कि हे महाराज । श्रोत्रिय, राजसेवक, वेद्या और पण्यजीवी सदा रोगी क्यों रहते है, यह सुनकर गुरु बोले ॥

श्रोत्रियादिके रोगी रहने का कारण॥

द्विजोर्हीनश्चाध्ययनव्रतान्हकीक्रियादि  
भिर्देहहितंनचेष्टतेऽनृपोपसेवीनृपचित्तर  
क्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात् ॥

नृचित्तवर्तिन्युपचारतस्परामृजाविभूषा

निरतापरांगनाःसदासनादर्थ्यनुबद्धवि

क्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः॥

अर्थ—ब्राह्मण सदा शिष्यों का पढ़ाने तथा व्रत और आन्धिक क्रिया में तत्पर रहते है, इससे शरीरकी मलाई की चेष्टा नहीं करते हैं । राजसेवक राजा के अनुकूल काम करने में तत्पर रहते हैं और परार्थीनता, बहुचिन्ता और भय उनके जी में सदा बना रहता है इससे स्वस्थता-

का यत्न नहीं कर सकते हैं । वेद्या पर-  
पुरुषों के चित्तको छुमाने में और पराई  
सेवाकरने में तत्पर रहती है और रात-दिन  
आमूषणादि से अपने देह को आभूषित करने  
में लीन रहती है इसीसे यह भी सदैव  
रोगिणी रहती है । दुकानदार एक स्थान  
पर बहुत बैठे रहते हैं, द्रव्योपाजन तथा  
क्रयविक्रय ( खरीद फरोख्त ) में लगे रहते  
हैं, एवं लोभ के कारण, स्वास्थ्यपालन में  
असमर्थ होते हैं ।

अन्य सदारोगियों का वर्णन ।

सदैवतेह्यागतवेगनिग्रहसमाचरन्तेचनका  
लभोजनम् । अकालनिर्हारविहारसेवि-  
नोभवन्तियेन्येऽपिसदातुराश्चन्तः॥

अर्थ—ये लोग मलमूत्रके उपस्थित वेगों  
को रोक लिया करते हैं, ठीक समय पर  
भोजन नहीं करते हैं, कुसमय मलत्याग  
करते हैं और कुसमय डोलते फिरते हैं ।  
इससे सदारोगी बने रहते हैं ॥ तथा और  
भी मनुष्य जो इसी तरह करते हैं वे भी  
सदैव रोगी बने रहते हैं ॥

समीरणवेगविधारणोद्धतंविनद्धसर्वाङ्ग  
रुजाकरंभिषक्॥समीक्ष्यन्तेपांफलवर्ति  
मादितःसुकल्पितास्नेहवर्तीप्रयोजयेत् ॥

अर्थ....उपस्थित वेगों के रोकने से ऐसे  
मनुष्यों के वायु कुपित होजाती है, मल  
मूत्र का निवन्ध होजाता है और सम्पूर्ण  
अंग में घेदना होने लगती है । इसमें प्रथम  
ही अच्छी तरह तयार की हुई स्नेह युक्त  
फलवर्ती का प्रयोग करना चाहिये ।

निरुहणकापश्चात्कर्म ।

निरुहितंधनवरसेनभोजितं ।

निकुम्भतेलेनततोऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरुहण के पीछे जांगल मांस-  
रस के साथ भोजन कराके दन्तीके साथ  
सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

बलाश्वगन्धामहविल्वचित्रकान्दिपञ्च  
मूत्रकृतमालकोत्पलेः।यवान्कुलत्थांश्च  
पंचजलादेकरसःसपेप्यस्तुकलिङ्गकादि  
भिः॥सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितःसदा  
नराणांवलवर्दनःपरः ।

अर्थ—तुरैटी, असगंध, वेड, चीता, दस-  
मूत्र, अमलतास, नीलोकर, जौ, कुलथी,  
इनको एक आढक जलमें पकाकर चौथाई  
घोष रहने पर छानले, इस क्वाथ में इन्द्रय-  
वादि दस द्रव्यों का फल्क तेल, घी, गुड़  
और सेंधानमक मिलाकर पकावै । इसका  
अनुवासन श्रोत्रिणादि रोगियों के बलका  
पढानेवाला है ॥

पुनर्नवरण्डनिकुम्भचित्रकान्

सर्ववृक्षाद्यविवृतानिदिग्धिकां ॥

महान्तिमूलानिचपञ्चतद्वयान्विषाण्य  
पूत्रेद्विधमस्तुसंप्रुते । सतैलसर्पिलवणैश्च  
पञ्चभिर्विपुर्छिन्नंयस्तिमथप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सोठ, अरंड, दन्ती, चीता, देव-  
दारु, निमोष, काटेरी, गृह्यचमूल इन को  
दही के गोठ मिलेहुए गोमूत्र में पकावै ।  
फिर इस क्वाथ में तेल, घी और पांचों  
नमक मिलाकर बर्तन देवै ।

तर्पणशस्त्रमपुत्रेनसाधितम्

फलेनविल्वेनप्रनाहयापवा ॥

अर्थ—उक्तरीति से मुँहहटी, अथवा  
वेलफल अथवा सोंफ के साथ सिद्ध किये  
हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

वालकऔरवृद्धकोनिरुहण ।

सजीवनीयस्तुरसोनुवासनेनिरुहणेचाल  
वणेशिशोर्हितः॥नचान्यदाश्वक्वलाभि-  
वर्दनंनिरुहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥

अर्थ....वालकों के लिये जीवनीय गण  
के क्वाथ के साथ सिद्ध तेलकी अनुवासन  
देनी चाहिये । वालकों को जो निरुहण  
दाँजाती है उस में नमक डाला नहीं जाता  
है वालक और वृद्धों के लिये निरुहण के  
अतिरिक्त शरीर के बलको शीघ्र बढ़ाने-  
वाली और कोई औषध नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्मवस्तिरवरतत्त्वनिश्चयोवाज्याटी  
नाम् । सततातुरांश्चदृष्टाःफलमात्रायां

• हितंचपाम् ॥

अर्थ—इस फलमात्रा सिद्धि नामक  
अध्याय में वमनकारक औषधोंसे मेनका  
को उत्कृष्टता, हाथी, घोड़े आदि जीवोंकी  
वस्तियों का वर्णन, राजमेधक, घेरया आ-  
दि परोपजीवी मनुष्यों के सदा रोगी रहने  
का कारण और उनकी चिकित्सा विधि-  
पूर्वक वर्णन की गई है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निपेक्षाविरचिता-

यां चरकप्रतिमंस्कृतःयां संहितायांसिद्धि  
स्थानकृतमात्रासिद्धिर्नामिका

दशोऽध्यायः ॥११॥

## द्वादशोऽध्यायः

अधातु उत्तरसिद्धिर्व्याख्यास्यामइतिहस्मा  
ह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले  
कि अब हम उत्तर वस्ति सिद्धि की व्या-  
ख्या करेंगे ।

संशोधनकेपीछेपेयादिविधि।

अथखल्वातुरचैयःसंशुद्धवपुनादिभिः ॥

दुर्बलकृशमलपाग्निमुक्तसन्धानबन्धनम् ।

निर्वृतानिहविण्मूत्रकफपित्तकृशाशयम् ॥

शून्यदेहंमतीकारासाहिष्णुं परिपालयेत् ।

अर्थ—जो रोगी धमन विरेचनादि सं-  
शोधन द्रव्योंके प्रयोगसे शुद्ध होकर दुर्बल  
कृश, मन्दाग्नि, तथा मुक्तसाधिवन्धन  
[ हाथ पांव आदि की सन्धियोंका दुर्बलता  
के कारण ढीला होना ] होगयाहो, तथा वायु  
विष्टा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलने से  
उसका आशय कृश पडगयाहो। एवं देहके  
शून्य होजाने के कारण औषध को न सह  
सकता हो उसको औषध न देकर केवल  
परिपालन विधिका अवलम्बन करना चाहिये  
यथैवतरुणपूर्णतैलपात्रंतथैवच ॥ गोपा  
लाइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः ।

अर्थ—जैसे तैल से भरेहुए नवीन घडेकी  
रक्षा धनपूर्वक कीजाती है और जिसतरह  
बालिये लड्ढकी सहायता से गौओं को सब  
प्रकारके अपचार से रक्षा करतेहैं, उसी तरह  
बैध को उचित है कि रोगी की रक्षा करें ।

अग्निसंदीपनक्रम ।

अग्निसन्नुषणार्थमनुपूर्वपेयादिभिर्भिषक्  
रसोत्तरैर्नैवचरेत्क्रमेणक्रमकौविदः ।

अर्थ—जठराग्नि के बढ़ाने के निमित्त  
प्रथम पेयादि का पाठन करावे, पाँछे मांस  
रसका व्यवहार करना चाहिये ।

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणैर  
सै ॥ स्वादुतिक्तौततोभूयःकपायकडुकौ  
ततः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रथम स्निग्ध, अम्लस्वादु  
और हृद्य रस का सेवन कराके फिर खट्टे  
और नमकीन रस देवै, उस से पीछे स्वादु  
और तिक्तरस, फिर उससे पीछे कसीले  
और कडवे रसों का सेवन करावै ।

अन्योन्यप्रत्यनीकानारसानांस्निग्धरुक्ष  
योः ॥ व्यत्यासादुपयोगेनमक्रातिगमये  
द्भिषक् ।

अर्थ—इसतरह विपरीत क्रम से रोगी  
को रसों का सेवन करावै अर्थात् किसी  
दिन स्निग्ध रस देदवै और किसी दिन रु-  
क्ष देवै। इस तरह क्रमसे उपचार करने पर  
रोगी अपनी पूर्व प्रकृति पर आजायगा ।

प्रकृतिगतफलक्षण ॥

सर्वसमोनिरासगोरतियुक्तःस्थिरेन्द्रियः  
बलवान्सन्वसम्पन्नोविशेषःप्रकृतिगतः

अर्थ—जब रोगी सब प्रकार के आहार  
विहार करने में समर्थ होजाय, मलमूत्र का  
विवन्ध जातारहै, विषयों में चित्त स्थिर  
होने लगे, सब इन्द्रियां दृढ होकर अपने-  
विषय में प्रवृत्त हो, शरीर में बल बढजाय  
और मन सन्वयुक्त होजाय तब समझना  
चाहिये कि मनुष्य अपनी पूर्वप्रकृति पर  
आगया है ॥

अप्रकृतिगतकोवर्जितकर्म । :

एतांप्रकृतिममाप्तःसर्वदुर्ज्यानिवर्जयेत् ॥

यहादोषकराण्यष्टाविमानितुविशेषतः ॥

उच्चैर्भाष्यरथक्षोभमतिचक्रामणासने ।

अर्जाणांहितभोज्येचदिवास्वप्नसमैथुनम्

अर्थ—जयतक रोगी अपनी प्रकृति पर न आवै तयतक सब प्रकारके वर्जित द्रव्यों को सेवन करना ठीक नहीं है। विशेष कर के अत्यन्त उपद्रवकर्त्ता नीचे लिखे हुए आठ कर्मों का परित्याग कर देवै । यथा उच्च भाषण [ चिल्लाकर घोलना ] रथक्षोभ ( सवारी पर चढ़कर ऊँचे नीचे मार्गों पर चलना ), अतिचक्रमण [ बहुत भ्रमण करना ] अत्यासन ( एक स्थानपर बहुत बैठना ) अर्जाभोजन ( पूर्वाह्न के बिना पचे वा दुग्धाद्यभोजन ), अहित भोजन [ अप्रप्य द्रव्य ] दिवास्वप्न [ दिनमेंसोना ] और मैथुन [ स्त्री सहवास ] ।

वर्जोपचारसेवनकेअवगुण ॥

तज्जादेहोऽर्धसर्वाधोमध्यपीडाभमदोषजाः

इलेप्मजाःक्षयजाश्चैवव्याधयःस्युर्यथाक

मम् ॥

अर्थ—क्योंकि उच्चभाषण से देह के ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न होजाते हैं रथक्षोभ से सर्वांगयातना, अतिचक्रमण से नीचे के देहमें व्याधियां होती हैं, अत्यासन से मध्य देह में रोग होतेहैं, अर्जाभोजन से आमदोषज व्याधियां होती हैं, अहित भोजन से घातज व्याधियां, दिवास्वप्न से कफजव्याधियां और मैथुन से क्षयज व्याधियां उत्पन्न होती है ।

तेषांविस्तरतोलिंगमेकैकस्यसंभेदतः ॥

यथाचतुसंप्रवक्ष्यामिसिद्धान्वर्त्तीश्च यानान् ।

अर्थ....अब हम इन प्रत्येक व्याधियों के

जुदे २ भेद, लक्षण और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे, तथा कुछ अनुभवकी हुई यापनवास्तियों का वर्णन भी करेंगे ।

उच्चभाषणकेउपद्रव ।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यांशिरस्तापः कर्णशेखनिस्तोदस्रोतारोधमुखतालुकण्ठशोषतैमिर्य पिपांसाज्वरतमकहनुमन्याग्रहनिष्ठीवनोरःपार्श्वशूलस्वरभेदादि-  
काश्वासादयःस्युः॥

अर्थ—उच्चभाषण या अतिभाषण से सिर में ताप, कान और कनपटी में सुई छिदने कीसी पीडा, स्रोतःसमूहका अग्रोप मुखशोष, तालुशोष, कण्ठशोष, अन्धकार दर्शन, पिपासा, ज्वर, तमकश्वास, हनुमह, मन्दाग्रह, निष्ठीवन, वक्षःशूल, पार्श्वशूल, स्वरभंग, हिचकी और श्वासादिकरोग उत्पन्न होजाते हैं ॥

रथक्षोभके उपद्रव ॥

रथक्षोभात्मन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्ण शिरःशूलतोदवन्निहिसोभाटपान्त्रकृजना घ्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिकृपार्श्वक्ष णवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवाक्षौ र्वल्याङ्गाभितापपादशोफमस्यापहर्षणा दयः॥

अर्थ—रथक्षोभ से सन्धि और जोड़ों में शिथिलता, ठोड़ी नाक कान और सिर में शूल और सुई छिदने की सी वेदना, मन्दा-



प्रि, आटप, आंतों का कूजना, अफरा, हृदयोपरोध, इन्द्रियगणोपरोध, नितम्ब, पसली वंक्षण अंडकोप कमर और पीठ में वेदना, सन्धि कन्धे और ग्रीवा में दुर्बलता अंगाभिताप, पांशों पर सूजन, प्रस्वाप [ शरीर का सुन्न होजाना ] और रोमहर्षण ये उपद्रव होते हैं ।

**अतिचक्रमण के उपद्रव ।**

अतिचक्रमणात्पादजघोरुजानुवक्षणाश्रोणीपृष्ठशूलसकुथिसादनितोदपिण्डकोट्टनांगमर्दासाभितापशिराधमनीहर्षका सद्यमाः ।

अर्थ—अतिचक्रमण से पांश, जांघ, ऊरु जानु, वंक्षण, श्रोणी, पीठ में शूल होता है, सकुथियों में अवसन्नता और नितोद, पिण्ड लियों में ऐंठन, अंगमर्द, कंधों में ताप, शिरा और धमनियों में हर्षण, खांसी और श्वास आदि उपद्रव भी होते हैं ॥

**अत्यासन के उपद्रव ।**

अत्यासनाद्रथक्षांभजाःस्फिरूपाश्चर्वक्षणावृषणकटीपृष्ठवेदनादयः ।

अर्थ....अत्यासन से वे सब उपद्रव होते हैं जो रथक्षोभ से होते हैं तथा नितम्ब पार्श्व, वंक्षण, अंडकोप, कमर और पीठ में भी वेदना होती है ॥

**अजीर्ण भोजन के उपद्रव ।**

अजीर्णाध्यशनाभ्यांमुखशोषाध्मानशूलनितोदपिपासागात्रसादच्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविपादयः ॥

अर्थ....अजीर्ण भोजन और अध्यशन से मुखशोष, अध्मान, शूल, नितोद, मूर्च्छा

ज्वर, प्रवाहण और आमविष ये उपद्रव होते हैं ॥

**अहित भोजन के उपद्रव ॥**

विपमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषदोषल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसादयथादोषप्रकोपजाश्चग्रहण्यशौविकारादयः ॥

अर्थ—विपम भोजन और अहित भोजन से अन्न में अराचि, देह में दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, अंगावसाद और जैसा दोष प्रकुपित हो उसी के अनुसार ग्रहणी और अर्श रोग उत्पन्न होजाते हैं ।

**दिवास्वप्न के उपद्रव ॥**

दिवास्वप्नाद्रोचकाविपाकाग्निनाशस्तमित्यपाण्डुत्वर्कडूपामादाहच्छर्द्यगमर्दहृत्तम्भजाड्यतन्द्रानिद्रामसंगग्रन्थिजन्मदोषल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपाग्निपासाच ॥

अर्थ—दिन में सोने से अराचि, अविपाक, मन्दाग्नि, स्तिमिता, पाण्डुत्व, खुजली, पामा, दाह, वमन, अंगमर्द, हृत्तम्भ, जडता, तन्द्रा, निद्रानाश, गांठ, होना, दुर्बलता, मूत्र और नेत्रों का लाल पड़जाना, तालु में कफकी सी स्निहायट और पिपासा, ये उपद्रव होते हैं ।

**मैथुन के उपद्रव ॥**

व्यवायादाशुबलसादोरुसादयस्तिशोऽगुदमेद्वंक्षोरुजानुजंघापादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितागमनकासश्वाभशोणितप्लीवितस्वरापसादकटीदीर्घलैकांगमर्गारोगमुष्कश्वपशुवातवर्चोमूत्रासंगशुक्रावसर्गजाड्यवेषशुवाधिर्पविपादाः ॥ उत्पात्यतइवगुद

स्ताड्यतइवमेद्रमवसीदतीवमनोवेगेतेहृद-  
येपीड्यन्तेसन्धयस्तमःप्रविश्यतइवचेत्येव  
मेभिरष्टभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्त्युपद्रवाः॥

अर्थ—स्त्रीगमन से बलहान, ऊरुसाद,  
वृत्ति, प्रदेश, सिर, गुदा, मेदू, वक्षण, ऊरु, जानु,  
जंघा, और दोनों पाँवों में वेदना, हृदय का  
धड़कना, नेत्रों में दर्द, अंग में शिथिलता, वीर्य  
के मार्ग से रुधिरका निकालना, खांसी,  
श्वास, फफूँके साथ रुधिर आना, स्वरभंग,  
कमरमें दुर्बलता, एकांगरोग, सर्वांगरोग,  
आँड़कोप सूजन, अधोवायु विष्टा और  
मूत्रका में विवन्ध, बिना इच्छा ही वीर्यपात  
होना, जडता, कम्पन, बहिरापन, और वि-  
पाद आदि उपद्रव होते हैं । गुदामें फटने  
कीसी पीड़ा होती है, मेदूमें चोट लगने  
कीसी पीड़ा होती है, मन अवसन्न होजाता  
है, हृदय में कम्पन होता है सम्बन्धों में  
पीड़ा होती है, और आँखों के साम्हने अ-  
धेरांसा छाजाता है ॥

इन आठ प्रकार के वर्जित कर्मोंके सेवन  
करने से ऊपर लिखेहुए उपद्रव होते हैं ।

उच्चभाषणजन्यरोगो मे उपाय ॥  
तेषांसिद्धिरुच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानाम-  
भ्यंगस्वेदोपनाहधूमनस्थोपरिभक्तस्नेहपा-  
नरसन्तीरादिभिरातहरःसर्वोविधिर्मानश्च

अर्थ—उच्चभाषण और अतिभाषण  
जन्यरोगों में अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम,  
गन्ध, भोजन के पीछे घृतपान, दुग्धादिसे-  
वन, सब प्रकारकी बातनाशकविधि और  
मौनधारण करने चाहिये ॥

रथक्षोभजन्यरोगोंमेंउपद्रव ॥

रथक्षोभातिचक्रमणाल्यासनजानांस्नेह-  
स्वेदादिवातहरंकर्मसर्वनिदानवर्जम् ।

अर्थ—रथक्षोभ से उत्पन्न हुए रोगों में  
तथा अतिचक्रमण और अत्यासन से हुए  
रोगों में स्नेहन और स्वेदन से आदिलेकर  
वातनाशक कर्म करने चाहिये तथा जिन  
जिन कारणों से ये रोग उत्पन्न हुए हैं उन्हें  
भी छोड़ देना चाहिये ।

अजीर्णाध्यशनजरोगोंमेंउपाय ॥

अजीर्णाध्यशनजानांनिरयशेषनश्चर्दनं  
रूक्षस्वेदधूमपानलंघनीयपाचनीयदीप-  
नीयोपधावधारणश्च ॥

अर्थ—दुष्पाच्य भोजन करने से तथा  
अध्यशन से जो रोग होते हैं उनमें निः-  
शेष वमन, रूक्षस्वेदन, धूमपान तथा लंघ-  
नीय, पाचनीय और दीपनीय औषधोंका  
प्रयोग करना चाहिये ।

विषमभोजनादिजन्यरोगोंमेंउपाय ।

विषमाप्यहताशनजानांयथास्वंदोषक्रियाः

अर्थ—विषम भोजन और अद्विजभोजन  
करने से जो उपद्रव होते हैं उन में जैसा  
दोष हो उसीको नाश करनेवाली चिकित्सा  
करनी चाहिये ।

दिवास्वप्नजन्यरोगोंमेंउपाय ॥

दिवास्वप्नजानांधूमपानलंघनवमनविरे-  
चनन्यायामरूक्षाशनानिद्रीपनीगौपयः  
प्रयोगः । प्रकर्षणान्मर्दनपरिपेचनादि

इच्छन्नेप्स्यहरःसर्वोविधिः ॥

अर्थ—जो रोग दिन में सोने से उत्पन्न  
हुए हैं उन में धूमपान, लंघन, वमन,

शिरोविरेचन, व्यायाम, रुक्षभोजन और अनिष्ट दीपनीय औषधों का प्रयोग हित है इस में छेदन, उन्मर्दन और परिपेचनादि क्रियाओं का करना भी आवश्यक है ॥

मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय ।

मैथुनजनानांजीवनीयसिद्धयोःक्षीरसर्पि-  
पोरुपयोगः।तथावातहराःस्वेदाभ्यंगोप-  
नाहा दृष्याश्चाहाराःस्नेहास्नेहविधयो-  
यापनवस्तयोऽनुवासनश्च ॥ मूत्रवैकृत-  
वस्तिशूलेपुचोत्तरवस्तिः। विदारीगन्धा-  
दिगणजीवनीयगणक्षीरससिद्धैतैलस्या-  
घापनाश्चवस्तयःसर्वकालं देयास्तानुपदे-  
क्ष्यामः ॥

अर्थ—मैथुन से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए दूध और घीका प्रयोगकरों तथा घातको दूर करने वाले स्वेद, अभ्यंग, उपनाह, पुष्टिकारक आहार स्नेहनकर्म, स्नेहविधि, यापनवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोगभी हितहै, मैथुन के कारण जो मूत्र में विकारहो वा वस्ति में शूल होतो उत्तर वस्ति का प्रयोग करना उचित है । विदारीगन्धादि गण, जीवनीय गण और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तैल और यापनवस्ति सदाही हित है ॥

अत्र यहाँ से यापन वस्तियोंका वर्णन करेंगे यापनवस्तिकी विधि ॥

मुस्तोक्षीरपलाशवधारासनामाञ्जिप्राफटुरो-  
हिणीप्रापमाणापुनर्नवाविभीतकगुद्धची-  
स्थिरादिपञ्चमूलानिपालकानिखण्डशः-  
सिंहान्यष्टौचमदनफलाग्निमहालपजला

दकेपरिकाभ्यपादशेषेरसःक्षीरादिप्रस्थसं-  
युक्तःपुनःपुनःक्षीरावशेषेरसःक्षीरदिप्रस्थ-  
संयुक्तःपुनःपुनःपुनःक्षीरशेषःपादजांगल-  
रसस्तुल्यमधुघृतःशतकुसुममधुकुटज-  
फलरसाञ्जनप्रियंगुकल्कीकृतःससंयवः-  
सुखोष्णवस्तिःशुक्रमांसवलयजननःक्षतक्षी-  
णकासगुल्मशूलविषमज्वरयध्मकुण्डलो-  
दावर्तकुक्षिशूलमूत्रकुच्छ्रासृग्रजोविसर्पम-  
वाहिकाशिरोरुजाजानूस्त्वग्वायवस्तिग्रहा-  
श्मयुन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्म-  
न्याधिहरःसथोवलजननोरसायनश्च ।

अर्थ....मोथा, उसीर, खरैटी, अमलतास, रासना, मजीठ, कुटकी, त्रायमाणा, साठ, बहेडा, गिलोय, और शालिपर्णादि पंच-  
मूल इन सब द्रव्यों को एक २ पल लेंवै तथा आठ मेंनफल इन सब के टुकड़े २ कर के पानी से धोकर एक आढ़क जल में पकावै । जब चौथाई शेष रहजाय तब उसे छानकर फिर उस में दो प्रस्थ दूध डालकर फिर ओटावै, जब दूध शेष रहजाय तब उतारले और इस से चौथाई जोगल मांस-  
रस और बराबर का दूध और घी डालै और इसी में सोंफ, मुलहठी, इन्द्रजी, रसोत और प्रियंगु इन के कल्क में संधानमक मिलाकर डालदे फिर गुनगुना करके वस्ति देंवै । यह वस्ति शुक्र, मांस और बलको बढ़ातीहै । तथा क्षतक्षीण, खाँसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, यध्म, कुण्डल, उदावर्त, कुक्षिशूल, मूत्रकुच्छ, रक्तमदर, विसर्प, प्र-  
वाहिका, शिरोरोग, जानुग्रह, ऊरुग्रह, जघाग्र-

ह, वस्तिग्रह, अश्ली, उन्माद, अश्लीरोग, प्रमेह, आध्मान, रक्तपित्त, तथा कफजन्य व्याधियाँ इस वस्ति से दूर होजाती हैं । यह वस्ति सद्यः बलाकारक और रसायन है । दूसरीयापनवस्ति ।

एरण्डमूलपलाशात्पदपलंशालपर्णीपृथ्वीपर्णीवृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकरास्नाभगन्धागुदचीवर्षाभूः आरग्वचदेवदाचित्तिपलिकानिखण्डशः कल्लूमानिफला-निचाष्टौमक्षाल्यजलाढकेक्षीरपादेपचेत् । पादशेषं कपायं पूतं शतकुसुमाकुपुमुस्तापि पलीहपुपाविल्ववचापत्सकफलरसाञ्जनमियंगुयवानीसंक्षेपकलिकतं मधुघृततैलैर्नध्वपुक्तं मुखोष्णं निरुहगेकंद्वौत्रीन्वाद्यात् । सर्वेषामंशस्तोविशेषतोऽलितमुकुमारक्षतक्षणीस्थविराशंसामपत्यकामानाञ्च ।

अर्थ—अरंडकी जड़, और टाक छः २ पल । शालिपर्णी, प्रणिपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सांठ अमलतास, और देवदारु इन में से प्रत्येक एक २ पल लेकर टुकड़े टुकड़े करके फिर इन्हें जल से धोकर एक आढक जल में चौधार्ह आढक जल मिलाकर पकावै, जब चौधार्ह शेष रहजाय तब इनको छान लेवै फिर इस काथ में नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तथा शहत, घी, तेल और संधाननरू मिलाकर एक, दो, या तीन निरुहण वस्ति देवै । कल्कके द्रव्य, यथाः— सोंफ, सूठ, मोथा, पीपल, हाऊबेर, पिल्व, वच, इन्द्रजौ, मेनफळ,

रसीत, प्रियंगु और अजवायन हैं । यह वस्ति मुखोष्ण दीजाती है। यह वस्ति प्रायः सबके लिये हित है परन्तु विशेष करके ललित, सुकुमार, क्षतक्षीण, स्थविर और अश्लीरोगियोंको हित है तथा जो संतान की इच्छा करते हैं उनके लिये भी हित है ॥

तिसरीविधि ।

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसा तथावृहतीकण्टकारीशतावरीछिन्नत-हाशृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्ककृतेन पूर्ववद्वस्तिः ॥

अर्थ—सहचरी, खैरटी, मरोडफळी और अनन्तमूल इनके साथ दूध सिद्ध करके अथवा बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सितावर और गिलोय इनके साथ दूध भोटाकर उसमें मुलहटी, मेनफळ और पीपल का कल्क मिलाकर पहिलेकी तरह वस्ति देवै ।

चौथीविधि ।

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृष्णिपर्णीवृहतीकण्टकारिकादभमूलयवका-श्मर्यपविल्वफलसिद्धेनपयसामधुकमदन कल्कीकृतेनमधुघृतसौषर्चलमयुत्तेनपास उवगुल्मप्लीहादित्स्त्रीमद्यक्लिष्टानांसद्यो बलजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—इसी रीतिसे खैरटी, अतिबला, विदारीकन्द, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी, दामकी जड़, जौ, खंभाये, बेलफल और मेनफळ इनके साथ में सिद्ध कियेहुए दूध में महुआ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और संचर नमक डालकर वस्तिदेवै ॥ यह वस्ति खांसी, ज्वर, गुल्म

और ग्रीहासे पीदित, अर्दितरोगी, स्त्री कर्षित और मद्यकर्षित रोगियों को तत्काल बलकी देनेवाली और रसायन है ।

### पांचवीं विधि ॥

तथावलातिबला रास्ना रग्वधमदनविल्व गुहची पुनर्नवैरण्डाश्वगन्धा सहचरपला-  
शदेवदारुद्विपञ्चमूलानि पिलकानि यवको लकुलस्थ द्विमसृतं शुष्कमूलकानाञ्च जलद्रो  
णासिद्धिं निरुह्यमाणे शेषकपायं पूतं मधुकम दनशतपुष्पाकुपिप्पलीवचायसकफल  
रसाञ्जनमिषंगुयवानीकल्कीकृतं गुडघृततै लक्षौद्रसीरमांसरसाम्लफाञ्जिकसैन्धवयु  
क्तं सुखोष्णं वींस्ति दद्यात् । शुक्रमूत्रवर्चः सं गेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाग्मानवर्ध्मपाश्वर्षु  
कटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षयेपुच ॥

अर्थ—इसी तरह बला, अतिबला, रास्ना अमलतास, मेनफल, बेलफल, गिलोय, सांठ अरंडकीजड़, असर्गंध, सहचर, ढाक, दे-  
वदारु और दशमूल इन को एक एक पल लेंवे तथा जी, बेर और कुलथा तथा सूखी मूली दोदो प्रत्येक लेकर एक द्रोण जलमें पाककर । जितना निरुहके लिये काथ आवश्यक होता है उतना शेष रहने पर छान ले । फिर इस काथ में सुलहटी, मेनफल, सोंफ, कूठ, पीपल, वध, इन्द्रजी, रसौत, मिषंगु और अजवायन का कल्क मि-  
लावे तथा गुड, घी, तेल, शहत, दूध मांसरस, अम्लफांजी और संधानमक मि-  
लाकर सुखोष्ण वस्ति देवे । यह वस्ति शुक्र, मूत्र और विष्टा के विवन्ध में, तथा यातज गुल्मरोग, हृद्रोग, आग्मान, वर्ध्म,

पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटीग्रह, संज्ञानाश और बलक्षय में बहुत उत्तम है ॥

### छठी विधि

हृत्पार्श्वकुडवद्विगुणार्द्धशुण्णयवः क्षीरो-  
दकसिद्धः क्षीरशेषो मधुघृततैललवणयुक्तः  
सर्वांगविस्तृता वातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीसंदि  
ग्धितो वातहरो बुद्धिमेधाग्निबलजननश्च ।

अर्थ—हाऊबेर आधा कुडव, आधे कुटे हुए जौ एक कुडव, इनको समानभाग मिले हुए दूध और जल में औटावे, जब दूध शेष रहजाय तब इस में शहत, घी, तेल, और नमक मिलाकर वस्ति देवे तो सर्वांगगत वातरक्त, विष्टा का विवन्ध, मूत्रका विवन्ध तथा अत्यन्त स्त्री प्रसंग से उत्पन्न हुई क्षीणता को दूर करता है, यह वस्ति वात नाशक, बुद्धिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, अग्नि-  
वर्द्धक और बलवर्द्धक होतरी है ।

### सातवीं विधि

हृत्स्वपूलपञ्चकपायक्षीरोदकसिद्धः पिप्प-  
लीमधुकमदनफलकाः सगुडघृततैललवणः  
क्षीणविषमज्वरकर्षितस्त्ववस्तिः ॥

अर्थ—लघु पंचमूलको समानभाग दूध और जलमें सिद्ध करके दूधके शेष रहने पर इसमें पीपल, सुलहटी, मेनफलका कल्क तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर यह वस्ति वि-  
षमज्वरके कारण हुआ रोगी को देवे ॥

### आठवीं विधि ।

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धशुण्ण  
यवाञ्जलिकपायः पूर्ववद्वास्तिः स्य विरदुर्ब-  
लक्ष्मीस्त्रीनिपेविणां पथ्य उत्तमः ।

अर्थ—बला, अतिबला, आग्मा, कैंचके

बीज ये सब आठपल तथाआधे कुटे हुए जौ एक अंजलि इन को समानभाग दूध और जल में क्वथित करके इस क्वाथ में पूर्वोक्त पीपल आदिका कल्क डालकर तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर वृद्ध दुर्बल, क्षीण और स्त्रीसेवियों को वस्ति देवै । यह वस्ति बहुत उत्तम है ।

नवीं विधि ।

बलामधुकविदारीर्द्धमूलपृद्धाकायवैःकपा  
समाजेनपपसापक्वामधुकल्कितंसमधुघृ  
तसैन्धवज्वरार्तेभ्योवस्तिदद्यात् ॥

अर्थ—खरैटी, मुलहठी विदारीकन्द, दामकी जड़, किसमिस और जौ इनको बकरीके दूध में पकाकर मुलहठी का कल्क तथा घी, शहत और सेंधानमक डालकर ज्वरपीडित रोगियों को वस्ति देवै ।

दसवीं विधि ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्य  
परुषकखर्जूरफलमधुकपुष्पैरजाक्षीरजल  
मस्थाभ्यांसिद्धःकपायःपिप्पलीमधुको  
स्पलकल्कितःसघृतसैन्धवोक्षीणेन्द्रियवि  
पमज्वरकर्पितस्त्वस्तिः ॥

अर्थ....शालपर्णी, पृष्णिपर्णी, गोखरु की जड़, खंभारी, फाउसा, खजूर, मेनफळ, और महुआ इन को एक प्रस्थ बकरी के दूध और जल में कथितकरके, इस काथमें पीपल, मुलहठी और नीलकमंड का कल्क तथा घी और सेंधानमक मिलाकर दुर्बलेन्द्रिय और विपम ज्वर से कर्पित रोगी को वस्ति देवै ॥

ग्यारहवीं विधि ।

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलनशालिपाटि

कयवगोघूममापकपायपञ्चमसृतेनछाग  
पयःशृतं । पादशेषकुक्कुटाण्डरसमधुघृतं  
शर्करासैन्धवसौवर्चलपुक्तोवस्तिवृष्यत  
मोवलजननश्च ॥

अर्थ....शालिपर्ण्यादि पंचमूल के पांचों द्रव्य पांचपल, शालिचांचल, साठी चांचल, जौ, गेंहू और उर्द ये सब पांच प्रसृत इन को बकरी के दूध में सिद्ध करै चौथाई शेष रहने पर उस को छानकर उसमें मुर्गे के अंड का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, संचरनमक, मिलाकर वार देवै । यह वस्ति अत्यन्तवृष्य और बलकारक होती है ।

बारहवीं विधि ।

कल्पश्वैपांशिखिगोनर्द्धसाण्डरसेस्यात् ।

अर्थ....उक्त क्वाथ में भुर्गे के अण्ड के रसकी जगह मोर, सारस या हंस के अंडों का रस डालकर वस्ति दीजाय तौ भी वही गुण करती है ॥

तेरहवीं विधि ।

सतिचिरिःसमयूरःराजहंसपंचमूलीपयः  
सिद्धं । शतकुसुममधुकरास्नाकुटजफल  
पिप्पलीकल्कः ॥ घृततैलगुडसैन्धवपुक्तो  
वस्तिवर्चलवर्णशक्रजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूलको समान भाग दूध और जल में क्वथित करके उन का क्वाथ छेलेवै इस क्वाथ में सांतिर, मोर वा राजहंस का मांसरस तथा सोंफ, मुलहठी, रास्ना, इन्द्रजौ और पीपल इनका कल्क तथा घी, तेल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देनेसे बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है ॥ यह वस्ति रसायन है ।

## चौदहवीं विधि ।

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरसासिजंपयःपादशेषं  
पिप्पलीमधुकरास्नामदनमधुककल्कशर्करा  
रामधुघृतयुक्तस्त्रीप्वतिकामानां वलजन  
नोवस्तिः ॥

अर्थ—दसमूल और मुर्गे के मांसरसको  
एकत्र करके दूध में औटावै जब चौथाई  
शेष रहजाय तब पीपल, मुलहठी, रास्ना,  
मेनफल और मुलहठी का कल्क तथा चीनी  
शहत और घी मिलाकर उनको वस्ति  
देवै जो स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति रखते  
हैं । यह वस्ति बलकारक भी है ।

## पन्द्रहवीं विधि ॥

मयूरमपित्तपक्षयादास्यान्त्रंस्थिरादिभिः  
पलिकैः सह जले पयसि पक्वत्वा क्षीरशेषं मद  
नविदारी शतकुसुमामधुककल्कीकृतं म  
धुघृतसैन्धवयुक्तं वस्ति दद्यात् । स्त्रीप्वति  
मसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्यो हितो बलवर्णकरः ॥

अर्थ—एक मोर के पित्त, पंख, पांव,  
मुख और आंतों को दूर करके केवल  
मांस और हड्डियों को छेलेवै ॥ फिर इस  
मांसको पांच पल जल और दूध में सिद्ध  
करके दूध शेष रहने पर छानले, फिर  
इसमें मेनफल, विदारीकन्द, सोंफ और  
मुलहठी का कल्क तथा शहत, घी और  
संधानमक मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति  
स्त्रियों में अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय  
वालों के लिये हितकारी और बल तथा  
वर्ण को बढ़ानेवाली है ॥

## सोलहवीं विधि ।

फलपंचपविफिरमुदमसहाम्बुचरेपुस्या

## दक्षीरोहितादिपुमत्स्येषु ।

अर्थ—मोर के मांस के बदले बिक्किर,  
प्रतुद, प्रसह और जलचारी जीवों का मांस  
प्रयोग करें, परन्तु रोहू मछली के प्रयोग  
के साथ दूध का प्रयोग न करना चाहिये  
सत्रहवीं विधि ।

गोधानकुलेमार्जारमूपकशलुकमांसानां द  
शपलान् भागान्सपञ्चमूलान् पयसि पक्वत्वा  
तत्पयः पिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलश्च  
कैरामधुघृततैलयुक्तं वस्ति देवै रसायनः  
क्षीणक्षतस्य सन्धानकरो मथितोरस्करथ  
गजहयभग्नवातबलासकफप्रवृत्त्युदावर्तवा  
तसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणां हिततमद्वचः

अर्थ—गोह, नौठा, बिल्ली, चूहा और सेह  
इन सबका मांस पांचपल, पंचमूल पांचपल, इन  
को दूध और जल समान भागमें औटावै, दूध  
शेष रहनेपर छानकर इनमें पीपल और मेन-  
फल का कल्क संधानमक, संचरनमक, चीनी,  
शहत, घी मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति  
बलकारक और रसायन होती है । क्षत  
और क्षीणरोगी को संधान करने वाली है ।  
जिसका हृदय फट गया हो, जिसका शरीर  
रथ, हाथी वा घोड़े से टूट गया हो, जिस  
को वातबलास और उदावर्त रोग हो, तथा  
वातके कारण जिसका मूत्र, विष्टा और  
वीर्य रुक गया हो, ऐसे रोगियों को यह  
वस्ति बहुत हित है ।

## अठारहवीं विधि ।

कूर्मादीनां अन्यतमपिशितसिद्धपयोगोद  
पनागहयनकहंसकुक्कुटान्धरसमधुघृतश  
कैरासैन्धवेचुरकात्मगुप्तफलकल्कसंश्लो

वस्तिः दृढानामपि बलजननः ॥

अर्थ—कछुए, आदि दस प्रकार के जलजन्तुओं में से किसी एकके मांसको दूध में सिद्ध करके उस दूधमें गौ बैल हाथी, घोड़ा का मांसरस, हंस और मोर के अंडों का रस, शहत, घी, चीनी, संधानमक, तालमखाना, केंचके बीज और मेन फल इनका कल्क मिलाकर वस्ति देने से दृढ़ मनुष्य भी बलवान् होजाते हैं ।

उत्तीसर्वा विधि ।

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकसिद्धं क्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतं काश्चेत्त्वणितं वस्तिः ॥

अर्थ—बैल, बिजार, बकरा और गुरा इनके अंडकोप, तथा किरकोटा और चिड़ा इन का मांसरस इन को डालकर औटाये हुए दूध में उच्चटक, तालमखाना और केंचके बीज का कल्क तथा शहत घी और थोड़ा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै ।

वीसर्वा विधि ।

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तः समधुघृतशक्तीरो वस्तिः इत्येते वस्तयः परमवृष्याः ॥

अर्थ—कर्कटरस, चिरोटे के अंडे का रस शहत घी और चीनी मिलाकर वस्ति देवै, ये वस्ति अत्यन्त वृष्य होती है ।

इक्षीसर्वा विधि ।

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताः शृतक्षीरमतिभोजनानुपानाः स्त्रीशतगामिनं कुर्युः ॥

अर्थ—उच्चटा, तालमखाना और केंचके बीज इन के साथ सिद्ध किया हुआ दूध भोजन करनेके साथ वा भोजनसे पछे

पान करे तौ है । द्विपोंसे भोगकी शक्ति होवै ।  
आईसर्वा विधि ।

दशमूलमधुरहंसकुक्कुटकाथात्पञ्चप्रसृतं तैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तं शतं पुष्पां मुस्तहपुष्पाकल्कीकृतं सलवणो वस्तिः पादगुल्फोरुजानुजंघात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणां निलहरः ।

अर्थ—दशमूल, तथा मोर, हंस और मुर्गा इनके मांसका काथ करके पांच प्रसृत लेवै और इस काथमें तेल, घी, चर्बी और और मज्जा चार प्रस्थ तथा सोंफ, मोधा, हाऊवर इनका कल्क और थोड़ा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति पांव, टकना, ऊरु, जानु, जंघा, त्रिक, वंक्षण वस्ति और अंडकोपके वायुसंवंधी रोगोंको दूर करती है ।  
तेईसर्वा विधि ।

मृगविष्करानूपविलेशयानामेतेनैव कल्पेन वस्तयो देयाः ।

अर्थ—मृग, विष्कर, आनूप और विलेशयों के मांस की वस्ति भी इसीतरह से दीजाती है ॥

चौबीसर्वा विधि ।

मधुघृतद्विप्रसृतं तुल्योष्णोदकं शतपुष्पां पलं सैन्धवाद्वासयुक्तो वस्तिर्दीपनो वृंहणो बलवर्णकरो निरुपद्रवो वृष्यतमोरसायनः क्रिमिकुष्ठोदावत्तगुल्फांशो वृंहणो हिमेहहरः ।

अर्थ—शहत और घी दो प्रसृत, गरम जल दो प्रसृत, सोंफ आधापल, संधानमक आधा तोला इनको मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति दीपन, वृंहणकर्ता, बलवर्णवर्द्धक, निरुपद्रव, अत्यन्त वृष्य और रसायन है ।



एपवृष्योवर्ष्योवृंहणआयुष्योवलीपलित  
लुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्राविषमज्वरार्चा

नाड्यपापन्नयोनीनाञ्चपथ्यतमः ॥

अर्थ—खरैटी, गोखरू, रास्ता, असंगंध  
सितावर और सहचर इनमें से प्रत्येक सौ २  
पल लेकर सौ द्रोण जल में पकावे जब  
पकोत २ एक द्रोण रहजाय तब उसे वस्त्र  
में छानलेवे । फिर विदारीकन्द और आंवले  
का रस एक २ प्रस्थ, बकरा, भेंसा, सुअर,  
बैल, मुर्गा, मोर, हंस, कारण्डव और सारस  
इनका मांसरस एक २ प्रस्थ, घृत और  
तेल एक २ प्रस्थ और दूध आठ प्रस्थ  
इन सबको इकट्ठा करे फिर चन्दन, गु-  
लहटी, मधूलिका, वंशलोचन, कमलनाल,  
मृणाल, नीलोत्तर, परवल, मेनफल, केंचके  
बीज, अन्नपाकी, तालका गूदा, खजूर,  
किसमिस, भूआंवला, कटेरी, जीवफ, ऋष-  
भक, मुदमपणी, मापपणी, सितावर, मेदा,  
पीपल, नेत्रवाला, दाउचीनी और तेजपात  
इनका कल्क । इन सबको मिलाकर पूर्ववत्  
वेदध्वनि के साथ सिद्ध करे और फिर  
इसका प्रयोग करे । इस वस्ति के सेवनसे  
मनुष्य में सौ स्त्रियों से गमन करनेकी शक्ति  
होजाती है इसमें आहार विहारकी किसी  
प्रकारकी रोक टोक नहीं है । यह वस्ति  
पुष्टिकारक, वर्णकारक, वृंहण, आयुवर्द्धक और  
बली पलित नाशक है । यह वस्ति क्षतक्षीण  
रोगी, नष्टशुक्ररोगी विषमज्वरपीडित तथा  
योनिरोग से पीडित स्त्रियों के लिये हित है ।

सहचरादिस्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपेक्त्वा

द्रोणशेपेरसेमुपूतविदारीशुरसप्रस्था-  
भ्यामष्टगुणक्षीरघृततैलप्रस्थबलामधुकम  
धूकचन्दनमधूलिकाशारिवामेदामहामे-  
दाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुश  
र्गष्टाव्याघ्रनखशटीसहचरसहस्रवर्ष्याव  
रांगलोघ्राणामससमैद्विगुणशर्करैः कल्कैः  
साधयित्वाघ्नयोपादिविधिना । तत्  
सिद्धंवास्तिदद्यादेपसर्वरोगहरोरसायनो  
ललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षत  
क्षयवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभा  
गमांसिकोवलीपलितनुद्वर्णरूपवलमांस  
शुक्रवर्द्धनः ॥

अर्थ सौपल सहचर को चारद्रोणजल  
में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार  
कर छानले । फिर विदारीकन्दका रस एक  
प्रस्थ, ईख का रस एक प्रस्थ, दूध आठ प्रस्थ  
घृत एक प्रस्थ तेल एक प्रस्थ ग्रहण करे ।  
तथा खरैटी, गुलहटी, महुआ, चन्दन, मधूलिका,  
शारिवा, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकोली,  
भूमिकूष्मांड, अगर, शार्जैष्टा, घघनखी,  
कचूर, सहचरी, दूध, दालचीनी और लोघ  
प्रत्येक एक एक तोला तथा इन सब से  
दूनी चीनी मिलाकर वेदध्वनि के साथ  
पूर्ववत् पाक करे । सिद्ध होने पर वस्ति  
द्वारा इसका प्रयोग करे । यह वस्ति सम्पूर्ण  
रोगोंके नाश करनेवाली, रसायन, सुकुमार  
तथा अन्तःपुर में रहनेवालोंके लिये हित  
है इससे क्षतरोग, क्षयरोग, वातज वेदना,  
पित्तज वेदना, श्वास और खांसी दूर हो  
जाती है । इस स्नेह में तिहाई शहत मित्र

लाकर सेवन करनेसे बली पलित दूर होजा-  
ता है । इससे वर्ण, रूप, बल, मांस और  
वीर्य बढ़ता है ।

इत्येतेरसायनाः स्नेहवस्तयः । सतिविभ  
वेशतपाकावासहस्रपाकावाकार्यावीर्यव-  
लाधानार्थमिति ॥

अर्थ—इस तरह सब रसायन प्रयोग  
और स्नेह वस्तियोंका वर्णन किया गया  
है । विभव होने पर वीर्य और बल बढ़ाने  
के निमित्त इन स्नेहों का शतपाक और स-  
हस्रपाक करके वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये-

भवान्तिचात्र ।

इत्येतेवस्तयः स्नेहाश्चोक्ताप्राणिषु सद्भि-  
ताः । सुस्थानामातुराणाञ्चट्टदानाञ्चा-  
वरोधिनः ॥ अतिव्यवायशीलानां शुक्र  
मांसबलप्रदाः । सर्वरोगप्रशमनाः सदैव  
तृपुयोगिकाः ॥ नारीणामप्रजातानां नरा-  
णाञ्चाप्यपत्यताम् । उभयार्थकः । दृष्टा  
स्नेहवस्तिनिरुहयोः ॥

अर्थ—प्राणियों के हित के लिये इन  
स्नेहवस्तियों का वर्णन किया गया गया है, ये  
वस्तियाँ रोगरहित, रोगप्रस्त और वृद्ध  
सब ही को अनुकूल हैं । जो अत्यन्त स्त्री-  
सेवी हैं उनके शुक्र, मांस और बलको ब-  
ढ़ाती हैं, सम्पूर्ण रोगों को नाश करनेवाली  
हैं ये सब ऋतुओं में दी जा सकती हैं । इन  
का सेवन बन्ध्या स्त्री और निःसन्तान पुरु-  
षोंके सन्तान उत्पन्न करता है ये वस्तियाँ  
अनुपान और निरुहण दोनों का काम देती हैं  
वस्तिसेवनमें वर्जितकर्म ।

व्यायामोऽप्यधुनमधुनमधुनिशिशिराम्युच ।

(१६८)

सम्भोजनं रक्षोभे वस्तिष्वेतेषु गृहीतम् ।

अर्थ—इन वस्तियों में व्यायाम, मैथुन,  
मद्यपान शहत सेवन, शीतल जल, अत्यन्त  
भोजन और रक्षोभ वर्जित हैं ।

वस्तियोंकी संख्या ।

शिश्विगोनर्दहसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः ।  
विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैः प्रसहैस्तथा  
त्रिंशदेकास्तथा सप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः  
नवमत्स्यादिभिश्चैव शिखिकल्पेन वस्तयः ॥  
दशकर्कटकाद्यैश्चूर्मकल्पेन वस्तयः ॥ मृगैः  
सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्नव । आनू  
पैर्दक्षशिखिवद्भुशयैश्चतुर्दश ॥ एकोन  
त्रिंशदित्येते सहस्रैः समासतः । प्रोक्ता  
विस्तरशोभिन्नाश्चेतेषां षोडशोत्तरे ॥ एते  
माक्षिकसंयुक्तः कुर्वन्त्यतिवृषं नरम् ।

अर्थ—गौर, सारस और हंस के अंडे  
की तीन वस्ति, मुर्गेकी एक, विष्किर पक्षी  
बीस प्रकार के होते हैं इस से उनकी बीस  
वस्ति, प्रतुद तीस प्रकार के होते हैं इससे  
उनकी तीस वस्ति, प्रसहोंकी इकतीस वस्ति  
जलचारियों की सत्तारिस, मछलियों की नौ-  
कर्कटकादि की दस, हिरनों की सत्रह, वि-  
ष्किरो की उन्नीस, आनूप की नौ, भुशयों  
की चौदह तथा उन्तीस प्रकार के स्नेह ।  
इस तरह सब प्रकार की वस्तियाँ मिलकर  
दो सौ सोलह हैं पर- इनकी संख्या कुछ  
अधिक होती है ।

इन वस्तियों में यदि शहत और मिलादिय  
जाय तो अत्यन्त पुष्टिकारक हो जाती हैं ।  
नातियोगं न चायोगं स्तम्भितास्ते च कुर्वन्ते  
अर्थ—इन वस्तियोंके प्रयोग से अयोग